दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता

और

उनके ग्रन्थ ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता

और

उनके ग्रन्थ ।

[जैनहितैषीसे उद्धृत]

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय-बम्बई द्वारा

कर्नाटक प्रेसमें छपकर

प्रकाशित ।

श्री वीर नि० सं० २४३७

ईसवी सन् १९११

प्रथमावृत्ति] [मू० तीन आना

प्रस्तावना ।

जैनधर्मका संस्कृत प्राकृत तथा भाषाका साहित्य कितना बड़ा है, यह वतलानेके लिये अभीतक कोई ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी जिससे सर्वसाधारणको लाभ पहुंच सके और साहित्यकी दृष्टिसे इसकी वहुत आवश्यकता थी, इसलिये मैने यह उद्योग किया है। यद्यपि इस कार्यके सम्पादन करनेके लिये जितनी योग्यता चाहिये उसका एक अंश भी मुझमें नहीं है, और ऐसे महत्कार्यके लिये जितने साहित्य तथा समयकी आवश्यकता है, वह भी मेरे पास नहीं है, तो भी अपने समाजकी किसी भी सस्थाकी ओरसे इस विषयमें प्रयत्न होते न देखकर वल्कि इस विषयसे अरुचि देखकर मै अपने उत्साहको रोक नहीं सका और विवश होकर मैंने इस कार्यमें हाथ डाल दिया। मुझमें जितनी शक्ति थी, उसके अनुसार इसके सम्पादन करनेमें मैने कुछ भी उठा नहीं रक्खा है, तो भी इसमें भूलें वहुत हुई होंगी, क्योंकि इसका अधिक भाग दूसरोंकी रिपोर्टों तथा सूचियोंपरसे लिखा गया है—स्वयं ग्रन्थ देखकर तथा उनकी प्रशस्तियां पढ़कर ही नहीं। और यह अपूर्ण भी है। खोज करनेसे इनके सिवाय और भी सैकड़ों ग्रन्थकर्त्ताओंका तथा उनके ग्रन्थोंका पता लग सकता है। परन्तु "निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते" अर्थात् जिस देशमें वृक्ष नहीं होते है, वहां एरंड भी वृक्षका काम देता है।। इस न्यायसे हमको आशा है कि हमारी यह अनेक त्रुटिपूर्ण सूची भी समाजकी दृष्टिमें उपकारी जॅचेगी। और समाजके नेताओंको एक विश्वस्त तथा विशाल सूची तयार करानेके लिये उत्साहित करेगी।

संस्कृत ग्रन्थकर्ताओंकी सूची तयार करनेमें हमको विशेष करके निम्नलिखित पुस्तकों तथा रिपोर्टोंसे सहायता मिली है:—

१. मि० भगवानदास कल्याणजी नामके एक सज्जन डाक्टर पिटर्सनकी ओरसे ग्रन्थसंग्रह करनेवाले एक प्रधान कर्मचारी थे। आपने अनेक रिपोर्टों तथा प्राचीन भंडारोंका निरीक्षण करके दिगम्बरजैनग्रन्थ-कर्त्ताओंकी एक सूची तयार की थीं और उसकी एक नकल उन्होंने मान्यवर पंडित पन्नालालजी वाकलीवालको कृपाकरके प्रदान की थीं, उस सूचीपरसे।

२. बम्बईके सरस्वतीभंडारमें एक पोथी है, जिसे आष्टा (भोपाल)-के किसी सज्जनने दी थी। उक्त पोथीमें किसी विद्वानकी संग्रह की हुई एक पट्टावली है, जिसमें थोड़ेसे आचार्योंके नाम तथा उनके ग्रन्थोंकी सूची दी है. उस पट्टावलीपरसे।

३. दानवीर शेठ माणिकचन्द हीराचन्दजीने ईडरके सरस्वतीभंडारके कई सौ ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंका जो एक संग्रह कराया है, उसपरसे।

४. श्रीवर्धमानजैनग्रन्थालय जयपुरकी ओरसे जो जयपुरके ८ भंडारोंकी सूची हुई है, उसकी नकलपरसे।

५. जैनबोधककी पुरानी फाइलोंमें छपी हुई श्रवणबेलगुल तथा मूडबिद्री आदिके भंडारोंकी सूचीपरसे।

---

१ महासभाकी ओरसे दिगम्बर जैन ग्रन्थोंकी एक सूची तयार होना चाहिये, जिसमें ग्रन्थका नाम, उसकी श्लोकसंख्या, आचार्यका नाम, बननेका समय, जिस भंडारमें यह ग्रन्थ हो उसका ठिकाना, आदि सब बातें हों। श्वेताम्बर जैन-कान्फरेंसकी ओरसे श्वेताम्बर ग्रन्थोंकी "जैनग्रन्थावली" नामकी एक ऐसी ही विस्तृत सूची २५० पृष्ठकी छपी है।

६. डेक्कन कालेज लायब्रेरी पूनामें जो जैनग्रन्थोंका वड़ा भारी संग्रह है, उसके सूचीपत्र परसे।

७. बम्बई सरस्वतीभंडारके ग्रन्थोंपरसे।

इसीप्रकार भाषाग्रन्थकारोंकी सूची तयार करनेमें जयपुर सरस्वती-सदनके सम्पादक वावा दुलीचन्दजीकी छपाई हुई 'जैन शास्त्रनाममाला भाषा'की, लाहौरके वावू ज्ञानचन्द्रजीके छपाई हुई 'नाममाला'की और जयपुरकी वर्धमानग्रंथालयसम्पादित 'सूची' की सहायता ली है।

हमारा विश्वास है कि, यदि प्रयत्न किया जायगा, तो भाषा ग्रन्थोंका इस सूचीके सिवाय और भी पता लगेगा। क्योंकि सत्रहवीं सदीके पहलेकी पुरानी हिन्दीमें जैनकवियोंने सैकड़ों रासा और चरित्र लिखे है। परन्तु इसमें एक दोके सिवाय उनका नाम भी नहीं आया है। युक्तप्रान्त तथा बुन्देलखंडके कवि भी इसमें बहुत थोड़े जान पड़ते है। इस लिये हम अपने पाठकोंसे ऐसे ग्रन्थोंकी खोजमें रहने और उनकी सूचना देनेके लिये प्रार्थना करते है। शेष ग्रन्थकारों तथा उनके ग्रथोंका पता लगनेपर हम इस सूचीका एक परिशिष्ट भाग फिर प्रकाशित कर देंगे।

हमारा यह भी विचार है कि, संस्कृत प्राकृत और हिंदीके समान कानड़ी, तामिल, द्राविड़ और मराठीके दिगम्बर जैनग्रंथकर्ताओंकी भी एक सूची प्रकाशित करें। प्रयत्न हो रहा है, यदि सफलता हुई, तो पाठकोंको वह भी शीघ्र भेंट की जायगी। एवमस्तु।

सरस्वतीसेवक—

नाथूराम प्रेमी.



अनेकान्ताय नमः ।

दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ ।



पाठक ! जरा पूर्वजोंकी, कृति अपरिमित देखिये ।
सानन्द पुलकित होयकर, लोचन सफल निज कीजिये ।
फिर सोचिये कर्तव्य क्या है, आपका इसमें भला ।
उद्धार करना या इन्हें, यों ही सड़ाना है भला ॥

१ अकलंकदेवस्वामी (देवसंघ)–चूर्णी, महाचूर्णी, चूलिका, राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालंकार, अकलकाष्टक[1] ।

२ अकलंकदेव (भट्टारक पोरवाड़ जातीय)––अकलंकसंहिता (प्रतिष्ठाविधिरूपा श्लोक ८०००) और श्रावकप्रायश्चित्त (सं० १२५६ आषाढ शुक्ला १४ को बनाया)[2]।

३ अर्गलदेव कवि––चन्द्रप्रभपुराण (कर्णाटकी भाषामें) ।

४ अजितसेनाचार्य––अलंकारचिन्तामणि[3], छन्दःशास्त्र, वृत्तवाद, छन्दप्रकाश ।

---

१ कई लोगोंकी राय है कि, अकलकाष्टकको स्वय अकलंकदेवने नहीं बनाया है, उनके किसी शिष्यने बनाया है । २ देखो भांडारकरकी रिपोर्ट १८८५–८७ ३ यह ग्रन्थ छप गया है, परन्तु प्रकाशकने न जाने क्या समझकर इसके कर्त्ताका नाम जिनसेनाचार्य छाप दिया है, जिसका कि कोई प्रमाण नहीं है

५ अजितसेन (भट्टारक)—चामुण्डरायपुराण–टीका (संस्कृत–कर्णाटकमिश्र)

६ अजितब्रह्मचारी—ऊर्ध्वपद्धति, हनुमच्चरित्र, उत्सवपद्धति।

७ अजितसागरस्वामी (सिंहसंघ)—सिद्धान्तशिरोमणि, षट्खण्डभूपद्धति।

८ अनंतवीर्यस्वामी (सेनसंघ)—परीक्षामुखकी प्रमेयरत्नमाला–टीका।

९ अनंतकीर्ति—(जाति पोरवाल) आश्विन शुक्ला १० सं० ७६६।

१० अभयचन्द्र—आश्विन सुदी १० संवत् ९७९ अयोध्यापुरीमें श्रावक हुए।

११ अभयचंद्र (द्वितीय)—गोमठसारके कर्मकाण्डकी टीका (७००० श्लोक), जीवकांडकी टीका (८००० श्लोक), शाकटायनप्रक्रियासंग्रह।

१२ अभयकीर्ति—जाति पोरवाल संवत १६६४ आश्विन वदी ३,

१३ अभयनन्दि—संवत् ७७५ में हुए। श्रेयोविधान–पूजा, पूजाकल्प, गोमठसारटीका विना संदृष्टिकी, तात्पर्यतत्त्वार्थकी, वृहज्जैनेन्द्रव्याकरण (श्लोक १८०००), कर्मप्रकृतिरहस्य।

१४ अभिनव (गृहस्थ)—मल्लिनाथपुराण (कर्णाटकी भाषा)

१५ अभ्रदेव (गृहस्थ)—व्रतोद्योतनश्रावकाचार।

१६ अमरकीर्ति भट्टारक—स्वयंभूसहस्रनामस्तोत्रकी टीका।

१७ अमितगति आचार्य (काष्ठासंघ)—सुभाषितरत्नसंदोह, धर्मपरीक्षा, अमितगतिश्रावकाचार, पंचसंग्रह, भावनाद्वात्रिंशति सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति।

१ देखो डॉ० पिटर्सनकी पांचवीं रिपोर्ट। २ देखो डॉ० भांडारकरकी छठी रिपोर्ट।

१८ अमृतपण्डित—व्रतकथाकोष।

१९ अमृतचन्द्रस्वामी (नन्दिसंघ,) वि० स० ९६२ में हुए—समयसारटीका, समयसारकलशा, प्रवचनसारटीका, पंचास्तिकायटीका, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार।

२० अरुणमणि पण्डित—अजितनाथपुराण।

२१ अर्हद्दासश्रेष्ठी (आशाधरके शिष्य)—मुनिसुव्रतकाव्य (श्लो० ४०००), भव्यजनकण्ठाभरण (श्लो० ९००), जीवधरचम्पू (श्लो० ४४४०)।[1]

२२ अशककीर्ति–(भट्टारक) –सं० १९२९ में हुए—चन्द्रप्रभपुराण, शान्तिनाथपुराण।

२३ असगकवि—वर्धमानकाव्य, और उसकी टीका।

२४ आनन्दराम पण्डित—गोमठसारके पूर्वार्धकी टीका, चतुर्विंशतिस्थान (चोवीसठाणा) की टीका।

२५ आशाधर (गृहस्थ)—सागारधर्मामृत, अनगारधर्मामृत, धर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका, पञ्जिका टीका, पूज्यपादके इष्टोपदेशकी टीका, भरताभ्युदयचम्पूकाव्य, जिनयज्ञकल्प, प्रतिष्ठाकल्प, अष्टांगहृदय टीका, भूपालस्तोत्र टीका, रौद्रटके काव्यालंकारकी टीका, जिनसहस्रनाम स्तोत्र, त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र सटीक, नित्यमहोद्योतअभिषेकपाठ, प्रमेयरत्नाकर, आराधनाटीका, रत्नत्रयविधान, राजीमतीविप्रलम्भकाव्य सटीक, अध्यात्मरहस्य, अमरकोषकी क्रियाकलापटीका, पद्मावतीसहस्रनाम, नवग्रहशान्तिक, व्रतप्रकाश (छन्दोग्रन्थ), पंचनमस्कारदीपक, ज्ञानविलास, श्रुतस्कंधविधान[2]।[3]

---

[1] महाकवि हरिचन्द्रके मुद्रित जीवधरचम्पूसे यह भिन्न ग्रन्थ मालूम होता है। [2] यह ग्रन्थ बम्बईके तेरहपंथी मंदिरमें मौजूद है। [3] इन ग्रन्थोंके सिवाय आशाधरके नान्दिमंगलविधान, वास्तुविधान, गणधरवलयपूजा आदि अनेक ग्रन्थ रिपोर्टोंमें लिखे है परन्तु ये सब प्रतिष्ठाकल्पके अन्तर्गत भाग हैं, इसलिये हमने यहां नहीं लिखे।

२६ इन्द्रनन्दि (नन्दिसंघ) वि० सं० ९९० में—अंकुरारोपण-विधान, मातृकायन्त्र पूजा, औषधिकल्प, प्रतिष्ठापाठ, इन्द्रनंदि-संहिता (प्राकृत), शान्तिचक्रपूजा, प्रतिमासंस्कारारोपण पूजा, मुनिप्रायश्चित्त (प्राकृत), समवसरण, छेदापिण्डया (?), पूजाकल्प।

२७ इन्द्रनन्दि मुनि—नीतिसार, समवसरण।

२८ इन्द्रनंदि (भट्टारक)—धर्मप्रबोध. प्रायश्चित्त (प्राकृत), वज्र-पंजरविधान।

२९ इन्द्रदेव—मदनपराजय नाटक।

३० ईश्वरकृष्णदास (ब्रह्मचारी)—मुनिसुव्रतपुराण।

३१ इन्द्रवामदेव—त्रैलोक्यदीपक, त्रैलोक्यचरित्र, त्रैलोक्यदर्पण।

३२ उग्राचार्य—कनकदीप (वैद्यक), कल्याणकारक (वैद्यक-४००० श्लोक)

३३ उग्रादित्याचार्य[3]—भिषक्प्रकाश, रामविनोद (वैद्यकग्रन्थ)

३४ उमास्वामि[4] (नन्दिसंघ—कुन्दकुन्दके शिष्य)—तत्त्वार्थ-महाशास्त्र।

३५ उमास्वामि (लघु)—श्रावकाचार, पंचनमस्कारस्तवन।

३६ ऋषिपुत्र—निमित्तशास्त्र।

३७ ऋषिकेश—चतुर्मुखपूजा।

१–२ ये ग्रन्थ इन्द्रनंदि तृतीयके ग्रंथोंमें भी लिखे हैं। यह निश्चय करना कठिन है कि, यथार्थमें ये किस इन्द्रनंदिके हैं। ३ उग्राचार्य और उग्रादित्याचार्य दोनों एक ही मालूम पड़ते हैं। क्यों कि एक तो नाममें कुछ विशेष अन्तर नहीं है और ग्रन्थ भी दोनोंके एक वैद्यक विषयके ही हैं। ४ एक रिपोर्टमें लिखा हुआ है कि उमास्वामी कार्तिक सुदी ९ सं० २०१ में अयोध्यापुरीमें हुए और आप्टेकी पट्टावलीमें लिखा है कि, सं० ७६ में हुए।

३८ एकसंधि—जिनसंहितासारोद्धार (शिल्पशास्त्र), वेदीनिर्णय, प्रतिष्ठाकल्प, सूत्रविस्तरण, पूजाकल्प, संहिता, श्रावकाचार।

३९ एलाचार्य (भट्टारक)—ज्वालामालिनीकल्प।

४० कनककीर्ति (भट्टारक)—अष्टान्हिकासर्वतोभद्रपूजा, अष्टान्हिकोद्यापन।

४१ कनकनन्दि (भट्टारक)—चतुर्विंशतिस्थानक टीका, ज्ञानसूर्योदय नाटक (प्राकृत)।

४२ कनकनन्दि मुनि—कर्मकांडकी टीका।

४३ कनकसेन कवि—ज्ञानसूर्योदय नाटक।

४४ कमलभव—शान्तिनाथपुराण (कर्णाटक भाषामें)।

४५ कल्याणकीर्ति—मूलाचारकी टीका (८००० श्लोक)।

४६ कार्तिकेयस्वामी (सेनसंघ)—स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा।

४७ कुन्दकुन्दाचार्य (नंदिसंघ) जिनचन्द्र स्वामीके शिष्य वि०सं०४९में हुए—समयसारप्राभृत (पाहुड), पचास्तिकायपाहुड, प्रवचनसारपाहुड, अष्टपाहुड, नियमसारपाहुड, जोणीसारपाहुड, क्रियासारपाहुड, आहारणापाहुड, लब्धिपाहुड, बंधपाहुड, रयणसारपाहुड, पटपाहुड, तत्त्वसारपाहुड, भावसारपाहुड, अंगपाहुड, क्षपणपाहुड, द्रव्यपाहुड, बोधिपाहुड, क्रमपाहुड, पुयपाहुड, विद्यापाहुड, उघातपाहुड, दृष्टिपाहुड, सिद्धांतपाहुड, लोय-

---

१ वि० सं०१४९ पौषसुदी नवमीको पट्टपर विराजमान हुए। कहते हैं कि ये जातिके पल्लीवाल थे। किसी २ का मत है कि, ये सवत् ४९ में हुए हैं। इनके पांच नाम हैं, पद्मनन्दि, एलाचार्य, गृद्धपिच्छ, वक्रगीव और कुन्दकुन्द। यथा,—

आचार्यकुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामतिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छः पद्मनन्दीति तन्नुतिः॥ (गुर्वावलिः)

पाहुड़, चरणपाहुड़, समवायपाहुड़, नयपाहुड, प्रकृतिपाहुड, चूर्णीपाहुड़, पंचवर्गपाहुड़, एयंमपाहुड़, कर्मविपायपाहुड़, विहियापाहुड़, वस्तुपाहुड़, सूत्रपाहुड, वुद्धिपाहुड़, पयद्धपाहुड. उत्पादपाहुड़, दिव्वपाहुड़, सिक्खापाहुड़, जीवपाहुड़, आचारपाहुड़, स्थानपाहुड़, प्रमाणपाहुड़, आलापपाहुड़, चूलीपाहुड़, षड्दर्शनपाहुड़, नोकम्मपाहुड़, संठाणपाहुड़. नितायपाहुड़. साल्मीपाहुड. इत्यादि चौरासीपाहुड़[1]। द्वादशानुप्रेक्षा (प्राकृत)।

४८ कुन्दकुन्द (दूसरे)—वैद्यगाहा (प्राकृत श्लोक ४०००)

४९ कुमुदचन्द्र[2] (नन्दिसघ)—कल्याणमन्दिरस्तोत्र. षट्दर्शनसमुच्चय[3]।

५० कुमारनन्दि—न्यायविजय, भूपालचतुर्विंशतिका स्तवन।

५१ कुमारसेन—वि०सं०७७० में हुए—संहिता।

५२ कृष्णदास ब्रह्मचारी (काष्ठासघ)—विमलनाथपुराण. मुनिसुव्रतपुराण।

५३ केशवचन्द्राचार्य—मार्गशीर्ष कृष्ण ५ सं० १२६।

५४ केशववर्णी—गोमठसारकी संस्कृत टीका वि०सं० १२२७ ज्येष्ठ सुदी ५ आदित्यवारको पूर्ण की[4]।

५५ केशववर्णी (द्वितीय)—गोमटसारकी संस्कृत प्राकृत मिश्रटीका वि० सं० १२८१ चैत सुदी ५ को पूर्ण की[5]।

---

१ यह ग्रन्थ बम्बईमें मौजूद है। २ कुमुदचन्द्रका दूसरा नाम सिद्धसेनदिवाकर भी कहा जाता है। और एक सिद्धसेनदिवाकरको स्वेताम्बरसम्प्रदायवाले भी अपना आचार्य मानते हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि कुमुदचन्द्राचार्य दिगम्बरी ही थे। क्योंकि इनका एक स्वेताम्बराचार्यसे वादानुवाद हुआ था जिसका पता मुद्रितकुमुदचन्द्र नाटकसे लगता है, जो कि काशीकी यशोविजय ग्रन्थमालामें छप चुका है। ३ यह ग्रन्थ स्वेताम्बरसम्प्रदायका ही जान पड़ता है। ४-५ देखो भांडारकरकी रिपोर्ट १८८५-८७।

५६ केशवसेन—षोड़शकारणोद्यापन, रोहण्युद्यापन, षोड़शकारणपूजा, मुनिसुव्रतपुराण, कर्णामृतपुराण, चतुर्विंशतिस्तोत्र (यमकबद्ध) ।

५७ केसरीसिंह (पण्डित)—बृहद्ध्वजारोपण पूजा ।

५८ खड्गसेन (गृहस्थ)—आशाधरकृतकी सहस्रनाम पूजा, त्रिलोकदर्पण कथा ।

५९ खुशाल (पंडित)—मुक्तावल्युद्यापन, काञ्जीद्वादश्युद्यापन ।

६० गंगकीर्ति—माघ वदी ११ सं० ११९९ ।

६१ गंगदेवकवि—श्रावकप्रायश्चित्त ।

६२ गंगादास—पंचक्षेत्रपालपूजा, सुगन्धिदशम्युद्यापन, समेदशिखरपूजा, पुष्पाञ्जल्युद्यापन, समेदाविलास[1] ।

६३ गुणनन्दि—(जाति गोलापूरव) सं० ३६३ जेठ सुदी ४ ।

६४ गुणनन्दि(भट्टारक)—त्रैकालिकचतुर्विंशतिकाका उद्यापन, ऋषिमण्डल विधान, रोटतृतीया कथा ।

६५ गुणायननन्दि—(जाति गगरी) सं० ११९९ मार्गशीर्ष सुदी ११ ।

६६ गुणकीर्ति—(जाति गोलवाल) आश्विन सुदी १ स० १०३७ ।

६७ गुणचन्द्र—(जाति गोलापूरव) भाद्रपद सुदी १४ सं० १०४९ ।

६८ गुणचन्द्र (भट्टारक)—वि० सं० १६०० । जैनपूजापद्धति, अनंतव्रतोद्यापन ।

---

१ डा० पिटर्सनकी ६ ठी रिपोर्ट ।

६९ गुणधरस्वामी—जयधवलसिद्धान्त (प्राकृत गाथा ८०००) तथा चूर्णिसिद्धान्तकी टीका (श्लो० ६,०००)।

७० गुणभद्रस्वामी (जिनसेनके शिष्य)—आदिपुराणका उत्तरभाग पूर्ण किया, उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, भावसंग्रह, जिनदत्तकाव्य, टिप्पण ग्रन्थ।

७१ गुणभद्राचार्य (त्रिभुवनाचार्यके शिष्य)—कुन्देन्दुप्रकाशकाव्य[1], हरिवंशपुराण[2]।

७२ गुणभद्र (भट्टारक)—पूजाकल्प, अनतवृतोद्यापन, धन्यकुमारचरित्र।

७३ गुणभूषण कवि—भव्यजनचित्तवल्लभश्रावकाचार।

७४ गुरुदास—प्रायश्चित्तसमुच्चयटीका।

७५ गुणरत्नाचार्य—षट्दर्शनसमुच्चयकी टीका (६०००श्लोक)

७६ गोविन्द (कायस्थ)—पुरुषार्थानुशासनश्रावकाचार।

७६ गौतम (गृहस्थ)—प्रतिक्रमणटीका (श्लो०३०००) संबोधपंचासिका।

७७ चन्द्रसेनकवि—केवलज्ञानहोरा (ज्योतिःशास्त्र ३००० श्लोक)

७८ चन्द्रकीर्ति (भट्टारक)—पद्मपुराण, छन्दःकोष प्राकृत सटीक, पूजाकल्प, विमानशुद्धिपूजा।

७९ चन्द्रसागर (ब्रह्मचारी)—पाण्डवपुराण (श्लो०५०००), रामायण (श्लो०५०००), नागकुमारषटपदी (संस्कृत कर्णाटकमिश्र ६०००श्लो०)

---

१ इसमें संभवत. कुन्दकुन्दाचार्यका चरित्र होगा। २ यह जिनसेनके हरिवंशसे पृथक् होगा।

८० चामुंडराय (वि०सं०७९९)—चारित्रसार (श्लो० २०००), चामुंडरायपुराण।

८१ चारित्रचूडामणि वा चूडामणि—मंत्रसूत्रामृत, कौमार-व्याकरण।

८२ चरित्रसुंदरकवि—महिपालचरित्र।

८३ चारुकीर्ति—चन्द्रप्रभकाव्यकी टीका (श्लो०६०००),आदिपुराण (२०००श्लो०), यशोधरचरित्र, नेमिनिर्वाणकाव्यकी टीका, पार्श्वनिर्वाणकाव्यकी टीका।

८४ चारुनन्दि—(जाति, सहजवाल) आश्विनसुदी३सं०१२१६

८५ चिकन्ना पण्डित—गुणपाठ (वैद्यकग्रन्थ श्लो०२०००)

८६ चिन्तामणिकवि—चिन्तामणि नामका व्याकरण।

८७ छत्रसेन—आराधनाकथाकोष, क्रियाकोष, पुष्पाञ्जलीउद्यापन।

८८ जखडासाधु—धन्यकुमारचरित्र।

८९ जयवंत—तत्वार्थबालावबोध।

९० जगत्कीर्ति (भट्टारक)—एकीभावोद्यापन।

९१ जयसेन—प्रतिष्ठापाठ, धर्मरत्नाकर।

९२ जयविलास—ज्ञानार्णवकी टीका।

९३ जगदेव—स्वप्नचिन्तामणि।

९४ जगन्नाथ पण्डित—सप्तसन्धानकाव्य, चतुर्विंशतिसन्धान-

---

१ श्रीनेमिचन्द्रचक्रवर्तीके शिष्य चामुण्डरायने गोमठसारकी कर्णाटक-वृत्ति भी बनाई है, जिसके आश्रयसे केशववर्णीने प्रचलित संस्कृत टीका रची है–" कुर्वे कर्णाटवृत्तितः " २ सप्तसन्धानमें प्रत्येक श्लोकके सात सात और चतुर्विंशतिसंधानमें प्रत्येक श्लोकके चौवीस चौवीस अर्थ होते हैं। वडे भारी पाण्डित्यका काम है।

काव्य सटीक, पुरुषार्थसिध्युपायकी टीका, श्रीपालविदेहचरित्र, सुभूमचरित्र ।

९५ जिनचन्द्र—(जाति चौसका पोरवाल) फाल्गुण सुदी १४ सं० १४१ ।

९६ जिनचन्द्र–(जाति अग्रवाल) जेठ वदी ५ स० १५०७ धर्मसंग्रहश्रावकाचार, सिद्धान्तसार (लघु)

९७ जिनदास ब्रह्मचारी—वि० स० १५१० । हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, जम्बूस्वामिचरित्र, हनुचरित्र, होलीचरित्र, रात्रिभोजनकथा जम्बूद्वीपपूजा; अनन्तव्रतपूजा; सार्द्धद्वयद्वीपपूजा, चतुर्विंशत्युद्यापन, मेघमालोद्यापन, चतुस्त्रिंशदुत्तरद्वादशशतोद्यापन; अनन्तव्रतोद्यापन; वृहत्सिद्धचक्रपूजा; धर्मपंचासिका ।

९८ जिनमुनि—त्रिभंगी (प्राकृत भाषामें), नागकुमारषटपदी (मूल संस्कृत कान्यकुब्जभाषामें टीका)

९९ जिनदेव—कारुण्यकलिका, मदनपराजय नाटक ।

१०० जिनधर्म (गृहस्थ)—अनन्तनाथपुराण (कर्णाटक भाषामें ३००० श्लो०)

१०१ जिनाचार्य—चतुर्दशगुणस्थानानि ।

१०२ जिनेद्रभूषण (भट्टारक) वि० सं० १७३३ । जिनेन्द्रमाहात्म्य, सम्मेदशिखरमाहात्म्य, करकंडुचरित्र (प्राकृत) ।

१०३ जैनेन्द्रस्वामी—पाणिनीयसूत्रवृत्ति–काशिका (३०००० श्लो०)

---

१ धर्म-सग्रहश्रावकाचार नामका ग्रन्थ, प० मेधावीने वनाया है, जो कि जिनचन्द्रके शिष्य थे । फिर क्या यह ग्रन्थ उससे जुदा है ? । २ संभवत· यह ग्रन्थ मागधी भाषामें है ।

१०४ जिनसनेस्वामी (सेनसंघ)—वीरसेनके शिष्य सं०७९११। आदिपुराण अपूर्ण, हरिवंशपुराण, पार्श्वाभ्युदयकाव्य ।

१०५ जिनसेन—उपासकाध्ययनसारोद्धार, पार्श्वाभ्युदयकाव्यकी टीका (श्लो० ४४४०), द्रोपदीप्रवन्ध, जिनसहस्रनामकी टीका, जिनसेनसंहिता, निमित्तदीपक, पूजासार, सारसंग्रह, सैन्यकांड, पूजाकल्प, त्रिवर्णाचार, बुद्धिप्रकाश ।

१०६ ज्ञानभूपण (भट्टारक)—वि० सं० १५७५—तत्त्वज्ञानतरंगिणी, पंचास्तिकाय टीका (४००० श्लो०), नेमिनिर्वाणकाव्यकी पंजिका टीका, दशलक्षणोद्यापन, परमार्थोपदेश, आदीश्वरफाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वतीपूजा स्तुति।

१०७ ज्ञानसागर (ब्रह्मचारी)—पोडशकारणोद्यापन, त्रैलोक्यसार पूजा ।

१०८ ज्ञाणज्ञण पंडित—नेमिनाथकाव्य ।

१०९ तेजपाल—सभवनाथपुराण (प्राकृत) ।

११० ताराचन्द्र— प्रतिमाशान्तचतुर्दशीव्रतोद्यापन ।

१११ त्रिलेकेन्द्रकीर्ति—सामायिकसूत्रकी टीका ।

११२ त्रिभुवन —समाधितत्रकी टीका ।

११३ त्रिविक्रमदेव कवि—व्याकरणकी त्रिविक्रमा नामकी वृत्ति (३५०० श्लोक) ।

११४ त्रैविद्यमुनि—सिद्धान्तशिरोमणि ।

११५ दयासुन्दर (कायस्थ)—यशोधरचरित्र ।

११६ दमनान्दि—आर्यतिलक (प्राकृत) ।

---

१ इस नामके और भी आचार्य वा भट्टारक हुए हैं । इन प्रन्थोंके विषयमें निश्चय नहीं है कि, ये सब एकहीके बनाये हुए हैं। दूसरे वा तीसरे जिनसेनके भी हो सकते हैं। २ जिनसहिता और त्रिवर्णाचार शायद ये दो एक ही ग्रन्थके नाम हैं।

११७ दशरथ (पंडित)—रात्रिभोजन कथा ।

११८ दामोदर (धर्मचन्द्रका शिष्य)—चन्द्रप्रभपुराण, व्रतकथाकोश, श्रावकाचार ।

११९ देवदत्त—शिखरमाहात्म्य, जम्बूस्वामीचरित्र (प्राकृत), चारुदत्तचरित्र ।

१२० देवनन्दि (अपर नाम पूज्यपाद चन्द्रगोमि जिनेन्द्रबुद्धि)—जैनेन्द्रव्याकरण (पंचाध्यायी), इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक।

१२१ देवप्रभ (मलधारी ?)—पांडवपुराण (प्राकृत)।

१२२ देवाजित—पञ्चास्तिकायकी टीका ।

१२४ देवसेन (नन्दिसघ)—वि० सं० ९९०। नयचक्र, आलापपद्धति, ज्ञानसार (प्राकृत), भावसंग्रह (प्राकृत), दर्शनसार (प्राकृत)

१२८ देवसेन (भट्टारक) —चन्दनषष्ठ्युद्यापन।

१२२ देवसेनब्रह्मचारी—सुलोचनाचरित्र ।

१२६ देवसेन (काष्ठासंघ)—आराधनासार (संस्कृत), प्रतिष्ठातिलक, सिद्धान्तसंग्रह ।

१२७ देवीदास—तत्त्वार्थसारकी टीका ।

१२८ देवेन्द्रकीर्ति (भट्टारक—सांगानेर पट्टके) वि० स० १६६२। क्षेत्रपालपूजाविधान (५७५ श्लो०), आदित्यव्रतोद्यापन (श्लो० १५०), बुद्धाष्ठम्युद्यापन (श्लो० २२६) ,नन्दीश्वरविधान (लो० ३५०), पुष्पांजलिविधान (श्लो० ५००), केवल-

१ सिद्धप्रिय, पचवास्तुक आदि कई ग्रन्थ भी पूज्यपादके वनाये हुए प्रसिद्ध हैं, परन्तु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद भट्टारकके वनाये हुए हैं. देखो न० १८२। २ यह ग्रन्थ वम्बईके तेरहपंथी मान्दिरके एक गुटकेमें लिखा है, ५०श्लोक हैं।

चान्द्रयणोद्यापन (श्लो० १३०), पल्यव्रतोद्यापन, कल्याणमन्दिरोद्यापन, विषापहारपूजाविधान, त्रिपंचाशत्क्रियोद्यापन, नन्दीश्वरलघुपूजा, सिद्धचक्रपूजा।

१२९ देवेन्द्र—यशोधररास।

१३० देशभूषण (जाति श्रीमाल)—चैत्र वदी १२ स० ७६९।

१३१ धर्मकीर्ति (भट्टारक)—आशाधरकृत यत्याचारकी टीका, धनंजयकृत द्विसन्धानकाव्यकी टीका, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, गणधरवलयपूजा, अष्टहिकोद्यापन, नन्दिशान्तिक।

१३२ धनंजय (श्रेष्ठी)—धनंजयनाममाला; द्विसन्धानकाव्य, विषापहारस्तोत्र; वैद्यकनिघण्टु (५,००० श्लोक)।

१३३ धनपाल—भविष्यदत्ताचरित्र (प्राकृत)।

१३४ धनमित्र—निघण्टु (२००० श्लो०)।

१३५ धर्मघोष—मध्यशान्तिक, चिन्तामणिपार्श्वनाथकल्प।

१३६ धर्मचन्द्र (भट्टारक)—स्वयंभूसहस्रनामपूजा, दशलक्षणपूजा, रत्नत्रयवृहत्पूजा, तीसचौवीसीपूजा, सहस्रगुणीपूजा, अनन्तव्रतोद्यापन, दशलक्षणोद्यापन, गोतमस्वामीचारित्र, भद्रबाहुचरित्र।

१३७ धर्मधर—नागकुमारकथा।

१३८ धर्मदास—उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला (षटकर्मोपदेशरत्नमाला प्राकृत)

१३९ धर्मनन्दि (जाति नागडा)—संवत् ७९५श्रावण सुदी १५।

१४० धर्मभूषण (नन्दिसंघ) न्यायदीपिका, प्रमाणविस्तार।

१४१ धर्मभूषण (भट्टारक)—बृहद्ध्वजारोपणपूजा, परमेष्ठीपूजाविधान, सप्तऋषिपूजा, शीतलशान्तिक, रत्नत्रयोद्यापन।

---

१ भोजराजके समकालीन।

१४२ **धर्मसेन** (भट्टारक) सप्तव्यसनचरित्र (श्लो० ११००)

१४३ **धर्मसागरस्वामी** (सिंहसंघ)—जीवविचार, सप्ततत्त्वी, नयचक्र, नवपदार्थी, द्रव्यचक्र, कालज्ञान ।

१४४ **नक्षत्रदेव**—श्रुतस्कन्धोद्यापन ।

१४५ **नयननन्दि**—भाद्रपद सुदी ३ स० ९३९ ।

१४६ **नन्दगणि**—भगवत्याराधना ।

१४७ **नन्दिगुरु**—प्रायश्चित्तसमुच्चयकी टीका, प्रायश्चित्तचूलिका टीका।

१४८ **नन्दिमुनि**—(विशाखाचार्यके शिष्य) वि० सं० १६ । यतिसार ।

१४९ **नन्दिषेण** (भट्टारक)—यतिसारसटीक ।

१५० **नयसेन**—श्रावकाचार (कर्णाटक भाषामें श्लो० १००००)।

१५१ **नरदेव वा नरसेन**—श्रीपालचरित्र (प्राकृत), चन्द्रप्रभपुराण (प्राकृत)

१५२ **नरेन्द्रसेन**—(काष्ठासंघ) प्रतिष्ठादीपक, प्रमाणप्रमेयकलिका, विद्यानुवाद, व्रतकथाकोष ।

१५३ **नरसिंहभट्ट**—समन्तभद्रकृत जिनशतककी टीका ।

१५४ **नागचन्द्रमुनि**—तत्त्वानुशासन , लब्धिसारकी टीका ।

१५५ **नागचन्द्र** (गृहस्थ)—पद्मपुराण (कर्णाटक भाषा श्लो० ६०००)

१५६ **नागदेव पण्डित**—शारदीनाममाला ।

१५७ **नागदेव कवि**—शीतलनाथपुराण (प्राकृत), पार्श्वनाथपुराण (प्राकृत), मदनपराजय (संस्कृत)[1]।

---

१ यह ग्रन्थ बम्बईके मारवाडी मंदिरमें मौजूद है ।

१५८ नागसेन कवि—लघु आराधनासार (श्लो० १०३०)।

१५९ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति (नन्दिसंघ—अभयनन्दि-स्वामीके शिष्य)—वि०सं० ७९४। गोमटसार, त्रैलोक्यसार, लब्धिसार, क्षपणासार, द्रव्यसग्रह।

१६० नेमिचन्द्रकवि—द्विसन्धानकाव्यकी टीका, द्विसन्धानकाव्य द्वितीय (श्लो० ३०००), उत्सवपद्धति, प्रतिष्ठातिलक (श्लो० ६०००) त्रैवर्णिकाचार (श्लो० ३०००), प्रवचनपरीक्षा (श्लो० १०००)।

१६१ नागकुंजरस्वामी (देवसंघ)—जैनेन्द्रव्याकरणाब्धि (१) व्याकरणसूत्रकी पंचाग टीका।

१६२ नेमिदेवकवि—नेमिदूत काव्य।

१६३ नेमिचन्द्र (भण्डारी)—उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला प्राकृत, षष्ठीशतक।

१६४ नेमिदत्त ब्रह्मचारी—वि० सं० १५७५। नेमिनाथपुराण वर्धमानपुराण, धर्मपीयूपवर्षण श्रावकाचार, आराधना कथाकोश, धन्यकुमारचरित्र, प्रियंकरचरित्र, सुदर्शनचरित्र, सुकौशलचरित्र, श्रीपालचरित्र, यशोधरचारित्र, सीताचारित्र, रात्रिभोजन चरित्र, कार्तिकेयकथा, समन्तभद्रकथा, धर्मोपदेशना।

१६५ पद्मनन्दि (कुडलपुरनिवासी)—चलिकासिद्धान्तव्याख्या-वृत्ति (श्लोक १२०००)।

१६६ पद्मनन्दि स्वामी (नन्दिसंघ)—पद्मनन्दि पंचविंशतिका, चरणसार (प्राकृत), धर्मरसायन (प्राकृत), जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (प्राकृत श्लो०३८००)

१ वर्धमान कविके नेमिदूतकाव्य (मुद्रित) से यह भिन्न ही प्रतीत होता है।
२ यह ग्रन्थ करमसद (खेडा) के भंडारमें मौजूद है।

१६७ पद्मनन्दि (भट्टारक) —वि० सं० १३६२। यत्याचार, आराधनासंग्रह, परमात्मप्रकाशकी टीका, निघण्टु (वैद्यक), श्रावकाचार, कलिकुंडपार्श्वनाथविधान, अनन्तकथा, रत्नत्रयकथा।

१६८ पद्मनन्दि (कर्णखेट ग्रामवासी)—सुगन्धदशम्युद्यापन।

१६९ पद्मराजदेव, (गृहस्थ,)-क्षपणासार टीका (श्लो० २०००)

१७० पद्मप्रभमलधारिदेव—नियमसार टीका।

१७१ पद्मसेनकवि—निघण्टु (वैद्यक)।

१७२ पण्डिताचार्य (भट्टारक) सप्तभंगीतरंगिणीटीका (श्लो० १०००), चन्द्रप्रभकाव्यकी टीका (कर्णाटकी भाषामें), मुनिसुव्रतकाव्यकी टीका (श्लो० २०००), ज्ञानभानूदय नाटक।

१७३ पद्मसिंह—ज्ञानसागर (प्राकृत)।

१७४ पर्वसेन (पंडित)—समाधितंत्रकी बालावबोध टीका।

१७५ परिमल—श्रेयांसरास।

१७६ पार्श्वनाथ कवि—पार्श्वनाथपुराण (कर्णाटक भाषामें)

२७७ पिहिताश्रव स्वामी (सिंहसंघ)—सिद्धंभूपद्धति टीका।

१७८ पुष्पदन्त कवि—वि०सं० ६०६। आदिपुराण (प्राकृत) उत्तरपुराण (प्रा०), पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, यशोधरचरित्र, आदीश्वरफाग, सुकुमालचरित्र।

१८० पुष्पदन्त पण्डित —यशोधरकाव्यकी पञ्जिका टीका, षट्खंडप्राभृतकी टीका (३०००० श्लो०)।

१८१ पुष्पसेनकवि—द्विसन्धानकाव्यकी टीका (श्लो० ४०००), सप्तसन्धानकाव्य टीका।

१८२ पूज्यपाद (द्वितीय)—पूजाकल्प, सिद्धप्रिय, पाणिनीय-

सूत्रवृत्ति [1]काशिका (श्लो० ३००००), जैनेन्द्रपंचाध्यायीकी टीका, पंचवास्तुक, श्रावकाचार, वैद्यक, जैनेन्द्रव्याकरणकी लघुटीका ।

१८३ पूर्णदेव—प्रतिष्ठापाठ ।

१८४ पेशली—प्रलम्बकोश ।

१८५ प्रभाकरसेन—प्रतिष्ठाकल्प ।

१८६ प्रभाचन्द्र स्वामी—(नन्दिसघ, लोकचन्द्रके शिष्य)—पशमश्रावकजातीय भाद्रपद सुदी १४ वि०सं०४५३ । न्यायकुमुदचन्द्रोदय, प्रमेयकमलमार्तण्ड,राजमार्तंड, प्रमाणदीपक, वादिकौशिकमार्तण्ड, अर्थप्रकाश ।

१८७ प्रभाचन्द्र (रक्ताम्बर)—भगवतीआराधनाकी टीका ।

१८८ प्रभाचन्द्र (भट्टारक)—वि०सं० १३१६ फीरोजशाहके समयमें । तत्त्वप्रकाशिका टीका (तत्वार्थकी), अष्टपाहुड़टीका, आत्मानुशासनटीका, पद्मनन्दिपंचविंशतिकाटीका, नेमिनिर्वाणकाव्यटीका, रत्नकरण्डश्रावकाचारटीका, समाधितंत्रटीका, चन्द्रप्रभकाव्यटीका, भगवतीआराधनाटीका, बट्टकेरस्वामीकृत मूलाचारकी टीका, समयसारटीका, प्रवचनसारटीका, पंचास्तिकायटीका, स्वयंभूस्तोत्रटीका, प्रतिक्रमणसूत्रकी टीका, पुष्पदन्तकविकृत प्राकृत आदिपुराण—उत्तरपुराण—हरिवंशपुराण—पद्मपुराणकी पंजिका, यशोधरचरित्रपंजिका, यशस्तिलककाव्यपंजिका, द्रव्यसंग्रहपंजिका, पार्श्वपुराणपंजिका, भगवज्जिनसेनगुणभद्रकृत महापुराणकी पंजिका, देवागमस्तोत्रपंजिका, षट्पाहुड—पंजिका, दशलक्षणगुणप्रकरणकी

---

१ काशिकाका कर्ता ऊपर जैनेन्द्रस्वामीको लिखा है । तब क्या पूज्यपादका ही दूसरा नाम जैनेन्द्रस्वामी है? इस बातको तो अन्य धर्मके विद्वान् भी मानते हैं कि, काशिकाका कर्त्ता कोई जैनी है ।

पंजिका, दशभक्तिपंचस्तोत्रोंकी टीका. क्रियासंग्रह, कर्णामृतपुराण, मतिसार, क्रियाकलाप, क्षपणासारकी टीका, अध्यात्मतरंगिणी टीका अमोघवृत्ति न्यास, चिन्तामणिव्याकरणका टिप्पण (३००० श्लोक), जिनसेनकृत हरिवंशपुराणकी टीका, वीरसेनकृत पद्मपुराणकी टीका।

१८९ प्रभाचन्द्र (भट्टारक)—वि०सं० १५८० । रोहिण्युद्यापन माघमालिन्युद्यापन, अकलंककथा, प्रतिष्ठापाठ, सिद्धचक्रपूजा ।

१९० प्रभादेव स्वामी—प्रमितिवाद, युक्तिवाद, अन्यासवाद, तर्कवाद, नयवाद ।

१९१ प्रश्नकीर्ति (भट्टारक)—समयसारकी टीका ।

१९२ बालकरामकवि—विश्वनामावली (कोष) ।

१९३ बालचन्द्रमुनि—तत्वसारदीपिका (कान्यकुब्जभाषामें श्लो० ६०००). समयासार-प्रवचनसार-पंचास्तिकायकी टीका (कर्णाटकी भाषामें) ।

१९४ बालसुख (पण्डित)—आत्मसम्बोध (प्राकृतकाव्य)

१९५ ब्रह्मदेव (ब्रह्मचारी)—प्राकृतपरमात्माप्रकाशकी टीका (श्लो० ४५०००), तत्वदीपक, ज्ञानदीपक, त्रिवर्णाचारदीपक. द्रव्यसंग्रहटीका, प्रतिष्ठातिलकटीका, विवाहपटलपूजा, कथाकोश ।

१९६ ब्रह्मजित—हनुमानचरित्र ।

१९७ बाहूबलि—धर्मनाथपुराण (कर्णाटकी भाषामें) ।

१९८ ब्रह्मकामराज— जयपुराण ।

१९९ ब्रह्मसूरि—यज्ञोपवीतविधान, प्रतिष्ठातिलक, त्रैवर्णिकसंग्रह-श्रावकाचार ।

२०० भद्रबाहु—भद्रबाहुसंहिता, क्रियाप्राकृत, ज्योतिर्दीपक (संस्कृतप्राकृतमिश्र) ।

२०१ भद्रबाहु (भट्टारक)--संहिता, होमशान्तिक।

२०२ भानुकीर्ति (भट्टारक)—सिद्धचक्रकी बृहत्पूजा, रोहिणी-कथा।

२०३ भानुनन्दि—पौषवदी ९ सं ४९७ जाति हूमड़।

२०४ भावचन्द्र—चैतवदी ९ सं० १०९६।

२०५ भावनन्दि—भाद्रपद सुदी ९ सं० ११६० जाति हूमड़।

२०६ भावशर्म्मा—दशलक्षणगुण(प्राकृत),तेरहद्वीपपूजा,जिनयज्ञ।

२०७ भावसेन कवि—विश्वतत्त्वप्रकाश (न्यायग्रन्थ), सिद्धान्तसार (श्लो० २०००), निघण्टु भावप्रकाश (श्लो० २४०००), कातंत्रव्याकरणसार (रूपमाला[१]) वृत्ति (श्लो० २०००), क्रमवृत्ति-व्याकरण (श्लो० ६०००), मनोरमा (व्याकरण), अशेषपरमतत्त्व विचार[१]।

२०८ भास्करानन्दमुनि—तत्त्वार्थकी सुखबोधिनी टीका (श्लो० ९०००)।

२०९ भूपालकवि—भूपालचतुर्विंशतिका (स्तोत्र)।

२१० भूतबलिस्वामी—पड्खण्डप्राभृत।

२११ मङ्गरस—हरिवंशपुराण (कर्णाटकी भाषामें श्लो० १००००) सम्यक्त्वकौमुदी (संस्कृत श्लो० २०००)।

२१२ मङ्गल--धर्मरत्नाकर (संग्रहग्रन्थ)।

२१३ मनोगेहदीपक कवि--नेमिनाथपुराण (कर्णाटकी भाषामें)।

२१४ मनोहर (पण्डित)--समयसारकी टीका, चतुःसन्धान-काव्य, त्रिलोकसारपूजा।

---

१ इन ग्रन्थोंमें वादिपर्वतवज्र-श्रीभावसेनत्रैविद्यदेवके सिवाय अन्य किसी भावसेनके भी कुछ ग्रन्थ जान पड़ते हैं।

२१५ मल्लिभूषण (भट्टारक)—सं० १५१० । भैरवपद्मावती कल्प, नागकुमारचरित्र, पात्रकेसरीकथा, श्रीपालचरित्र, सज्जनचित्तवल्लभ ।

२१६ मल्लिषेण (उभयभाषाकविचक्रवर्ती)—वज्रपञ्जरविधान, पद्मावतीकल्प, ब्रह्मविद्या, नागकुमारकाव्य, आदिपुराण (श्लो० ४०००), मल्लिषेणप्रशस्ति ।

२१७ महावीर—सारसंग्रह (ज्योतिर्गणित), ज्योतिषपटल ।

२१८ महाचन्द्र—चैतवदी ५ संवत् १११५ जाति श्रीमाल ।

२१९ महासेन (सेनसंघ)—धर्मशर्माभ्युदयकाव्य, प्रद्युम्नकाव्य (२००० श्लोक), महापुराण ।

२२० महाकीर्ति—मार्गशीर्ष सुदी १५ संवत् ६९६ जाति सहजवाल, मालवदेशके भाडलपुरमें हुए ।

२२१ महीचन्द्र—श्रावण सुदी ९ सं० ९७४ जाति धाकड़या ।

२२२ महेन्द्रकीर्ति—पोष सुदी १० सं० १७९२ जाति पापडीवाल (खंडेलवाल) दिल्लीमें हुए ।

२२३ महेन्द्रकीर्ति—सं० १८५२ । सर्वदोषप्रायश्चित्तपूजा ।

२२४ माघचन्द्र—सं० ११४० भाद्रपद सुदी ५ जाति पंचमश्रावक ।

२२५ माघनन्दि स्वामी—(अर्हद्बलीके शिष्य) सं० ३६ विक्रम । संहिता, वंदेतानमरप्रवेकादि जयमाला ।

२२६ माघनन्दि—आश्विन सुदी १४ स० १२६ को पट्टपर बैठे जाति जैसवाल ।

२२७ माघनन्दि (भट्टारक)—श्रावकाचार (संस्कृतयुक्त कर्णाटकी भाषामें)

२२८ माणिक्यचन्द्र—सप्तव्यसनचरित्र ।

२२९ माणिक्यनन्दि (नन्दिसंघ)—आषाढ़वदी २ वि० सं० ५६९ ।

२३० माधवचन्द्रदेव मुनि—क्षपणासारकी टीका, सागरसेन-सैद्धान्तिककृत त्रिलोकसारकी टीका ।

२३१ माधवचन्द्र—माघसुदी १० सवत् ९९९ जाति पदमावती-पुरवार ।

२३२ माधवानन्द—द्विसन्धानकाव्यकी टीका ।

२३३ मानतुंगसूरि—आदिनाथस्तोत्र (भक्तामरस्तोत्र) ।

२३४ मानतुंग (भट्टारक)—उपसर्गहरस्तव, चिन्तामणिकल्प, भयहरणस्तव, मणिकल्प ।

२३५ मुद्रापण्डित—द्विसन्धानकाव्यकी टीका ।

२३६ मृदुकीर्ति—समवसरणविधान (श्लो० १०००) ।

२३७ मेघचन्द्र—पौपवदी ३ संवत् ६०१ जाति खंडेलवाल । समाधिशतककी टीका ।

२३८ मेधावीपण्डित—तत्वसार, धर्मसंग्रहश्रावकाचार, त्रिलोक-प्रज्ञप्ति, अष्टाङ्गोपाख्यान, वसुनन्दिकृतमूलाचार टीकाकी प्रशस्ति (?)

२३९ मेरुकीर्ति—श्रावणसुदी ५ संवत् ६४२ जाति जैसवाल ।

२४० मोहन पण्डित—कलशारोहण पूजा ।

२४१ यक्षवर्म्मा—शाकटायनव्याकरणकी टीका, चिन्तामणि व्याकरणकी टीका ।

२४२ यशःकीर्ति—हरिवंशपुराण (प्राकृत), पांडवपुराण (प्राकृत), गौतमचरित्र, प्रबोधसार, जगत्सुन्दरी (वैद्यक), शृंगारार्णव-चन्द्रिका, श्रावकाचार, धर्मशर्माभ्युदयकाव्यकी टीका, प्रद्युम्नकाव्यकी [illegible]ा ।

२४३ **यशःकीर्ति**—आषाढ सुदी ९ सं० २५९ जाति पोरवाल।

२४४ **यशःसेन**—चन्दनाचरित्र (प्राकृत)।

२४५ **यशोनन्दि** (नन्दिसंघ)—वि० संवत् ३६।

२४६ **यशोनन्दि** (द्वितीय)—वि० सं० ३६८। व्रतकथाकोश (प्राकृत), पंचपरमेष्ठीपूजा, धर्मचक्रपूजा।

२४७ **यशोभद्रस्वामी** (सेनसंघ)—पंचाध्यायी।

२४८ **योगदेव** (देवसंघ)—प्रायश्चित्तग्रन्थ (श्रावकोंका प्राकृतमें), सुखबोध, द्रव्यसंग्रहकी टीका, तत्त्वार्थवृत्ति।

२४९ **योगीन्द्रदेव** (देवसंघ)—परमात्मप्रकाश, योगसार, अध्यात्मसन्दोह, सुभाषिततत्त्व, सूत्रकी तत्त्वप्रकाशिका टीका, नोकारश्रावकाचार।

२५० **रत्नकवि**—अजितनाथपुराण (कर्नाटकीभाषामें श्लो० ३०००)।

२५१ **रत्नकीर्ति**[३]—आराधनासार (सस्कृत), भद्रबाहुचरित्र[२], दशलक्षणोद्यापन, मुक्तावल्युद्यापन।

२५२ **रत्नधार यति**—वाग्भटालंकारकी टीका।

२५३ **रत्नचन्द्र** (भट्टारक)—वि० सं० १६००। अनन्तव्रतोद्यापन, भद्रबाहुचरित्र, सुभूमचरित्र, पुष्पाञ्जलिपूजा।

२५४ **रत्ननन्दि**—माघ वदी ५ संवत् ५६१ जाति बागड्या।

२५५ **रत्ननन्दि** (भट्टारक)—भद्रबाहुचरित्र, पल्यविधान पूजा।

---

१ यह ग्रन्थ कुछ दिन पहले छप चुका है। सोमदेवसूरिकी रचनामें भी इसी नामका ग्रन्थ है। २ भद्रबाहुचरित्र रत्नकीर्ति, रत्नचन्द्र, और रत्नकीर्ति तीनोंकी रचनामें लिखा है, क्या आश्चर्य जो किसी एकहीका हो, और नामसाम्यसे सबकी रचनाके खातोंमें उसकी खतौनी हो गई हो। ३ रत्नकीर्ति नामके एक भट्टारक स० १२९६ में हो गये हैं, और एक सवत् १५२५ में।

२५६ रविनन्दि (मुनि)—तत्वार्थकी सुखबोधिनी टीका (५००० श्लो०)।

२५७ रविषेणाचार्य— (काष्ठासंघ) वि० सं० ७९५। पद्मपुराण (श्लो० १८०००)।

२५८ रविषेण (भट्टारक)—त्रिकुण्डीहोमशान्तिक, पूजाकल्प, शिल्पसंहिता, होमशान्तिक।

२५९ रविकीर्ति कवि—शक संवत् ५५६। चालुक्यवंशीय पुलकेशी महाराजाश्रित।

२६० राजसिंह (सिंहसंघ)—धर्मरत्नाकरश्रावकाचार।

२६१ रामचन्द्र—आषाढ़ वदी १२ सं० ९४७। पंचमश्रावक।

२६२ रामचन्द्र मुमुक्षु—पुण्यास्रव कथाकोश, चतुर्विंशतितीर्थंकर-पूजा।

२६३ रामसेन (अपर नाम पात्रकेसरी)—अष्टशती अपूर्ण जिसे धर्मभूषणने पूर्ण की (?)

२६४ रामसिंह मुनि —प्राभृत (दोहा)।

२६५ रायमल्ल (पण्डित)—समयसारटीका, प्रवचनसार-टीका, पंचास्तिकायटीका, षट्पाहुडटीका, द्रव्यसंग्रहटीका, सिन्दूरप्रकार-टीका, एकीभावस्तोत्रटीका, भक्तामरटीका, भक्तामरचरित्र, श्रावका-चार, अध्यात्मकमलमार्तण्ड।

२६६ रूपचन्द्र (पण्डित)—श्रावकप्रायश्चित्त, समवसरणपूजा, शीलकल्याणकोद्यापन।

२६७ रेवाणसिद्ध कवि—निघण्टु वैद्यक (श्लो० १२०००)।

२६८ रैधू कवि—श्रीपालचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, व्रतसार, कारण-गुणषोड़सी, दशलक्षणजयमाला, रत्नत्रयी, मेघेश्वरचरित्र, षट्ध-र्मोपदेशरत्नमाला, भविष्यदत्ताचरित्र, करकंडुचरित्र (सब ग्रन्थ प्राकृत)।

२६९ ललितसेन—इष्टोपदेशकी टीका, श्रावकाचार।

२७० लक्ष्मीचन्द्र—ज्येष्ठ वदी १२ सं० १०३३ जाति अग्रवा (ल

२७१ लक्ष्मीचन्द्र (पंडित)—श्रावकाचार (दोहाछन्दोबद्ध)।

२७२ लक्ष्मीदेव—तत्वार्थटीका, समवसरणलघुपूजा।

२७३ लोकचन्द्र—ज्येष्ठ सुदी ४ संवत् ४२७ जाति लमेचू।

२७४ लोकचन्द्र—ज्येष्ठ सुदी १ संवत् १०६६ जाति सहजवाल

२७५ लक्ष्मणपण्डित—शिक्षानुशासन।

२७६ लक्ष्मीसेन—ज्वालामालिन्युद्यापन. कर्मचूरोद्यापन, चन्द-नषष्ठीपूजा।

२७७ ललितकीर्ति (भट्टारक)—काष्ठासंघी वि० स१६०१। जिनसेनकृत आदिपुराणकी टीका (श्लो० ५००००), त्रिलोकसारपूजा, सिद्धचक्रपूजा।

२७८ लोहाचार्य—वि० सं० १४२।

२७९ लोहाचार्य—आषाढ़ सुदी १४ सं० २४३ जातिलमेचू सम्मेदशिखरमाहात्म्य (प्राकृत)।

२८० वट्टकेरस्वामी (सेनसंघ)—बृहन्मूलाचार (प्राकृत)।

२८१ वज्रनन्दि—भाद्रपद सुदी १४ संवत् ३६४ जाति गोला-पूरव।

२८२ वर्द्धमानकवि (हस्तिमल्लका भाई)—गणरत्नमहोदधि स्वकृतटीकासहित, नेमिदूतकाव्य।

२८३ वर्द्धमान (भट्टारक)—तत्त्वनिश्चय, द्वादशांगचरित्र, वरांगचरित्र।

२८४ वसुनन्दिस्वामी (नन्दिसंघ)—वि० सं० ५२६। यत्याचार आचारसार, प्रतिष्ठासार, श्रावकाचार (प्राकृत), अष्टशती (?),

संहिता, मूलाचारकी टीका, जिनसत्तालकारकी टीका, विपुलमतिसार (गाथा २५००), भावसंग्रह (प्राकृत), नित्यमहपूजा।

२८५ वसुनन्दि—सं० ७०४ जाति बागड।

२८६ वाग्भट—नेमिनिर्वाणकाव्य, वाग्भटालकार, काव्यानुशासन, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका, प्राकृतपिंगलसूत्राणि, वृत्तिचिकित्सा, निघण्टुवैद्यक, अष्टांगहृदय (वैद्यकग्रन्थ)।

२८७ वाणिवल्लभ—महावीरपुराण (कर्णाटक भाषा)।

२८८ वादिचंद्रसूरि—वि० सं० १६८३। ज्ञानसूर्योदयनाटक, पार्श्वपुराण, पाण्डवपुराण, पवनदूत काव्य, होलिकाचरित्र।

२८९ वादिराजमुनि (सेनसंघ)—एकीभावस्तोत्र, वादमंजरी, धर्मरत्नाकर।

२९० वादिराज कवि—यशोधरकाव्य, पार्श्वनाथनिर्वाण काव्य, अकलकाष्टककी टीका।

२९१ वादीभसिंह कवि (ओडयदेव)—गद्यचिन्तामणि, क्षत्र-चूडामणि काव्य, श्रावकाचार (?)।

२९२ वामदेव—प्रतिष्ठासूत्रसंग्रह, श्रावकाचार, भावसंग्रह, तत्वार्थसार, त्रिलोकदीपिका, श्रुतज्ञानोद्यापन, त्रिलोकसारपूजा, मन्दिरसंस्कार।

२९३ वासवचन्द्र—जेठ सुदी १ संवत् १०६६ जाति सहजवाल।

---

१ वसुनन्दि नामके एक आचार्य स० ७०४ में और एक भट्टारक वि०स० १३९५ में हुए हैं। इनके भी कुछ ग्रन्थ इसमें शामिल हैं, जो पृथक् निश्चय नहीं किये जा सकते।

२ वाग्भट्ट नामके अनेक विद्वान हो गये हैं, प्रथम अष्टागहृदयके कर्त्ता सिंहगुप्तके पुत्र, द्वितीय वाग्भटालकार और नेमिनिर्वाणके कर्ता सोमके पुत्र, और तृतीय काव्यानुशासनके कर्ता नेमिकुमारके पुत्र।

२९४ वासवसेन (सेनसंघ)—ठाणा ६२ (प्राकृत), अनन्तनाथपुराण, व्याकरणकौमुदी, यशोधरचरितकाव्य, मुनिप्रायश्चित्त ।

२९५ वासवसेन (गृहस्थ)—द्वादशस्थानक ।

२९६ वासासाहु—नेमिनाथपुराण (प्राकृत) ।

२९७ वरसुख (पण्डित)—आत्मसंम्बोधन ।

२९८ वासुपूज्य (मुनि)—दानसार (२००० श्लो०) ।

२९९ वादिसिंह—प्रमाणनौका, तर्कदीपिका, धर्मसंग्रह ।

३०० विजयप्रभ—प्रक्रियावद्ध जैनेन्द्रव्याकरण ।

३०१ विजयकुमारस्वामी (देवसंघ)—अर्थानुशासन, द्रव्यसंग्रह, भावसंग्रह, क्रियासंग्रह ।

३०२ विजयवर्णी (विजयकीर्तिके शिष्य)—शृंगारार्णवचन्द्रिका (अलंकारग्रंथ) ।

३०३ विजयसेन—व्रतोद्यापनसूत्र, धर्मरत्नाकर, सूत्रोद्यापन ।

३०४ विद्यानन्दिस्वामी—वि० सं० ६८१ । विद्यानन्दमहोदय, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, तर्कपरीक्षा. पत्रपरीक्षा, प्रमाणमीमांसा देवागमालंकृति, तत्त्वार्थालंकार, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, श्लोकवार्तिकालंकार ।

३०५ विद्यानन्दि—जेठ सुदी १५ वि० सं० ९०९ जाति बघेरवाल ।

३०६ विद्यानन्दि (भट्टारक)—सप्तपरमस्थान, सुदर्शनचरित्र, श्रीपालचरित्र ।

३०७ विद्याधर (पण्डित)—लब्धिविधानोद्यापन ।

३०८ विद्याचन्द्र—फाल्गुणवदी ५ सं ११७० जाति बागडा ।

३०९ विनयचन्द्र—द्विसन्धानकाव्यकी टीका ।

३१० विद्याभूषण (भट्टारक)—त्रिचतुर्विंशतिविधान (श्लो०-२९००)।

३११ विमलदास—सप्तभंगीतरंगिणी ।

३१२ विश्वभूषण (भट्टारक)—संवत् १८१० । इन्द्रध्वजपूजा दशलक्षणोद्यापन, भक्तामरकथा, पद्मपुराण, षण्णवतिक्षेत्रपालशान्ति, जिनगुणसम्पत्ति–उद्यापन, मांगीतुंगीगिरिपूजा ।

३१३ विश्वबोध (भट्टारक)—श्रावकाचारधर्म ।

३१४ विश्वसेन (भट्टारक)—होमशान्तिक, क्षेत्रपालपूजा ।

३१५ वीर (पण्डित)—नेमिनाथकाव्य, वर्धमानपुराण, ऋषि-मण्डलपूजा, शकुनदीपक, धर्मचक्रपूजा ।

३१६ वीरनन्दि महाकवि (नन्दिसंघ)—वि० संवत् ५९६ । आचारसार, चन्द्रप्रभचरित, शिल्पसंहिता ।

३१७ वीरनन्दि—पौष सुदी १ सं० ५३१ जाति लमेचू ।

३१८ वीरभद्राचार्य—माघमालिनीकाव्य ।

३१९ वीरसेनाचार्य (भगवज्जिनसेनके गुरु)—सिद्धभूपद्धति, प्रमाणनौका, विजयधवल टीका, पूजाकल्प ।

३२० वोसटीभट्ट—आर्यतिलक टीका (श्लो० २०००) ।

३२१ व्याघ्रनन्दि—आश्विन सुदी १० वि० सं० ११९४ जाति चतुर्थश्रावक ।

३२२ शक्तिदास—मायाकल्प ।

३२३ शान्तिकीर्ति—आषाढ वदी ६ स० ६२७ जाति सहजवाल ।

३२४ शान्तिदास ब्रह्मचारी—अनन्तव्रतपूजा, द्वादशव्रतोद्यापन

३२५ शिवनन्दि—वैशाख वदी १४ सं० ११४९ जाति सहजवाल ।

३२६ शिवायनस्वामी (अपरनाम अनन्तनान्दि,, नन्दिसघ)—वि० सं० ९६० आराधनासार, दर्शनसार।

३२७ शिवकोटि—भगवतीआराधना (प्राकृत)।

३२८ शिवघोप—रससार।

३२९ शिवजीलाल (रक्ताम्बरशिष्य)—भगवतीआराधना टीका

३३० शीलचन्द्र—वैशाख सुदी९ सं० ७३९ जाति श्रीमाल।

३३१ शुभकर्ण (पंडित)—होलिकाचरित्र।

३३२ शुभचन्द्राचार्य (प्रथम)—ज्ञानार्णव (योगप्रदीप)।

३३३ शुभचन्द्र (भट्टारक)—माघ सुदी९ सं० १४९० जाति अग्रवाल।

३३४ शुभचन्द्र (त्रिविधविद्याधरषट्भाषाकविचक्रवर्ती)—वि० संवत् १६८० सागवाड़ापट्टाधीश—सुभषितरत्नावली, जीवंधरचरित्र पांडवपुराण, प्रद्युम्नचरित्र, करकण्डुचरित्र, जिनयज्ञकल्प श्रेणिकचरित्र, सुभाषितार्णव, सम्यक्त्वकौमुदी, श्रीपालचरित्र, पद्मनाभपुराण, अंगप्रज्ञप्ति त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, चिन्तामणिलघुव्याकरण, अपशब्दखण्डन, तर्कशास्त्र, स्तोत्रपञ्चक, सहस्रनामस्तोत्र, षट्पदस्तोत्र, नन्दीश्वरकथा, षोडश-कारणोद्यापन, चतुर्विंशतिपूजा, सर्वतोभद्रपूजा, चारित्रशुद्धितपसो-द्यापन, तेरहद्वीपपूजा, पंचपरमेष्ठीपूजा, चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतो-द्यापन, पल्यव्रतोद्यापन, कर्मदहनपूजा, सिद्धचक्रवृहत्पूजा, समयसा-

---

१ विक्रान्तकौरवीयनाटकके कर्ताने शिवायन और शिवकोटिको स्वामी-समन्तभद्रके शिष्य वतलाये हैं, यथा—**शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायनः शास्त्रविदां वरिष्ठौ। कृत्स्नश्रुतश्रीगुणपादमूले ह्यधी-तिमन्तौ भवतः कृतार्थौ॥** ऐसी अवस्थामें शिवायनका वि० स० ५६० में होना कुछ शकाप्रद है क्योंकि समन्तभद्रका समय इससे पहले स० १२५ का माना जाता है।

रपूजा, सार्द्धद्वयदीपपूजा, गणधरवलयपूजा, चिन्तामणियंत्रपूजा, सारस्वतयंत्रपूजा, विमानशुद्धिशान्तिक, अम्बिकाकल्प, स्वरूपसम्बो-नकी टीका, अध्यात्मपदकी टीका, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका, अष्टपाहुड़की टीका, तत्वार्थटीका, पार्श्वनाथकाव्यकी पंजिकाटीका, आशाधरकृत पूजाकी टीका, पद्मनन्दिपचविंशतिकाकी टीका।

३३५ शुभकीर्ति—वि० सं० १२६९।

३३६ शुभशील पण्डित—पचवर्गीकोश

३३७ शोभन पण्डित—चतुःसन्धानकाव्य, शोभनचर्तुर्विंशतिका।

३३८ श्रीपर्वत (पण्डित)—समाधितंत्रकी टीका।

३३९ श्रीचन्द्र—श्रावकाचाररत्नकरंड (प्राकृत श्लो० ४४००), सम्यक्त्वरत्नकरंड (प्राकृत)।

३४० श्रीचन्द्र—पद्मपुराणकी पंजिका टीका, श्रावकाचार (सप्त-व्यसननिरोधात्मक) पंचकल्याणक पूजा।

३४१ श्रीनन्दि—भाद्रपद सुदी १० सं० ७४९।

३४२ श्रीदत्त पण्डित—पांडवपुराण, करकंडुचरित्र।

३४३ श्रीदेव—यशस्तिलक काव्यकी पंजिका, नेमिनिर्वाणकाव्यकी पंजिका।

३४४ श्रीधरसेन—विश्वलोचनकोश (मुक्तावली अपर नाम)।

३४५ श्रीधर—भविष्यदत्तचरित्र।

३४६ श्रीभूषण—चैत्र सुदी ९ सं० ७२६ जाति सहजवाल।

३४७ श्रीभूषण (भट्टारक)—चारित्रशुद्धिपूजा चतुर्विंशतिपूजा, हरिवंशपुराण, भक्तामरकथा, अनन्तव्रतपूजा, पांडवपुराण, द्वादश-शतोद्यापन।

श्रीचन्द्रनामके एक आचार्य फाल्गुन सुदी ११ सं० १२१४ में हुए हैं।

३४८ श्रुतकीर्ति—हरिवंशपुराण(प्राकृत),गोमटसारके कर्मकांडकी टीका, गोमटसार टिप्पण (श्लो० ९०००)।

३४९ श्रुतमुनि—त्रिभंगीटीका (कर्णाटक भाषामें श्लोक २०००), कर्मप्रकृतिटीका, (श्लो० १०००), आरोग्यस्तोत्र, परमागमसार (प्राकृत ९०० गाथा), भावसंग्रह ।

३५० श्रुतसागरस्वामी (सेनसंघ)—भद्रोत्तंस, समतितर्क, गृहिणीसूत्र, कल्पसूत्र ।

३५१ श्रुतसागर—तत्त्वार्थकी सुबोधिनी टीका, तर्कदीपक, षट-पाहुड़की टीका, यशस्तिलककाव्यकी टीका, विक्रमप्रबन्ध, क्रियापाठ-स्तोत्र, व्रतकथाकोश, श्रुतस्कन्धावतार, ज्ञानार्णवटीका, आशाधरकृत पूजाप्रबन्धकी टीका, सारस्वतयंत्रपूजा, नन्दीश्वरउद्यापन, अष्टान्हि-कोद्यापन, आकाशपञ्चमी कथा, आदित्यवार कथा, भक्तिपाठ, सहस्र-नामस्तोत्रकी टीका, लक्षणपंक्ति कथा, जैनेन्द्रयज्ञविधि, एकीभावकी कथा, चन्दनषष्ठी कथा, अष्टान्हिका कथा ।

३५२ सकलकीर्ति (भट्टारक)—वि० स० १४९९ । सिद्धा-न्तसार, तत्त्वार्थसारदीपक, सारचतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचार-प्रदीपक, प्रश्नोत्तर, श्रावकाचार, यत्याचार, सद्भापितावली, आदि-पुराण, उत्तरपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, वर्द्धमानपुराण, सिद्धांतमुक्तावली, कर्मविपाक, देव-सेनकृत तत्त्वार्थसारकी टीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामीचरित्र, श्रीपालचरित्र, गजसुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, यशोधरचरित्र, अष्टान्हिकासर्वतोभद्र,उपदेशरत्नमाला, सुकुमालचरित्र ।

३५३ सकलकीर्ति (द्वितीय)—षोडशकारणकथा, श्रुतकथाको-ष, अष्टान्हिकोद्यापन, कातंत्ररूपमाला लघुवृत्ति, गुलावली कथा (?)

रक्षांबन्धन कथा, त्रिवर्णाचार कथा, जिनरात्रि कथा (?) सहस्रनाम-स्तोत्र, लब्धिविधान ।

३५३ सकलभूषण—वि० सं० ६२७। षट्कर्मोपदेशरत्नमाला।

३५४ सगर (गृहस्थ)—वर्द्धमानपुराण ।

३५५ सत्यवाक्य (हस्तिमल्ल कविका भाई)—श्रीमतीकल्याणनी नाटिका ।

३५६ सर्वसेन कवि—यशोधरचरित्र ।

३५७ सहस्रकीर्त्ति—त्रिलोकसार प्राकृतकी टीका, धर्मशर्माभ्युदय काव्यकी टीका, त्रिलोकसारमहापूजा ।

३५८ स्वामिसमन्तभद्र (सेनसंघ)—वि० सं० १२५। गन्धहस्तिमहाभाष्य, देवागमस्तोत्र (गन्धहस्तिका मगलाचरण), जिनसत्तालङ्कार, विजयधवल टीका, तत्त्वानुशासन, युक्त्यनुशासन, स्वयभूस्तोत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, जिनशतक[1] ।

३५९ समन्तभद्र (द्वितीय)—चिन्तामणिव्याकरणका टिप्पण, अष्टसहस्रीविषमपदव्याख्या ।

३६० सागरसेन (सैद्धान्तिक)—त्रिलोकसारलघु (प्राकृत) ।

३६१ सिद्धकवि—प्रद्युम्नचरित्र (प्राकृत)।

३६२ सिद्धसेनाचार्य—नमस्कारमाहात्म्य ।

३६३ सिद्धचन्द्र—मार्गशीर्ष सुदी ९ सं० ११९९ जाति बडनेरा।

३३४ सिंहकीर्त्ति—फाल्गुण वदी १४ संवत् १२०६ जाति नरसिंहपुरा ।

३६५ सिंहनन्दि—माघ सुदी १५ स० ५०९ जाति श्रीमाल।

---

१ इसकी टीका नरसिंहभट्टने की है ।

३६६ सिंहनन्दि—प्रायश्चित्तसमुच्चय, आराधनाकथाकोश, पंच-नमस्कारकल्पमाहात्म्य, घण्टाकरणकल्प, पद्मावतीपूजा, शारदोत्सव कथा, तीर्थव्रतनिर्णय, अकलंककथा, नेमिनाथपुराण।

३६७ सुन्दरकवि—पार्श्वाभ्युदयकाव्यकी टीका।

३६८ सुमतिकीर्ति—प्रवचनसारकी टीका, गोमटसारके कर्मकाडकी टीका, आशाधरकृत सहस्रनामकी टीका, चतुर्विंशतिस्थानकी टीका।

३६९ सुमतिसागर (भट्टारक)—जिनगुणसम्पत्युद्यापन, पंच-कल्याणकपूजा, त्रिलोकसारपूजा, षोडशकारणोद्यापन, दशलक्षणोद्यापन।

३७० सुरेन्द्रभूषण—वि० सं० १८८२। मुनिसुव्रतपुराण, श्रेयांसनाथपुराण, सार्द्धद्वयदीपपूजा, श्रेयस्करणोद्यापन, सुखसंपति-व्रतोद्यापन, चतुर्दशोद्यापन, भक्तामरोद्यापन, कल्याणमन्दिरोद्यापन, रोहिणीकथा, सारसंग्रह, चर्चाशतक, पचकल्याणकपूजा।

३७१ सुरेन्द्रकीर्ति—अष्टान्हिकाकथा।

३७२ सुवर्णभद्राचार्य—माघमालिनिकाव्यकी टीका।

३७३ सोमकीर्ति—प्रद्युम्नचरित्र, सप्तव्यसनचरित्र, सुकौ-शलचरित्र, चन्दनषष्ठ्युद्यापन, कर्मदहनपूजा, यशोधरचरित्र, चतु-र्विंशतिस्थानकी टीका,

३७४ सोमदत्त (भट्टारक)—जम्बूस्वामीचरित्र।

३७५ सोमदेवसूरि—वि० सं० ८८१। यशस्तिलकचम्पू, नी-तिवाक्यामृत, शब्दार्णवचन्द्रिका, अध्यात्मतरंगिणी, षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणि, त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प, योगमार्ग, नीतिसार, ंचसंग्रह, राजनीतिपद्धति, पंचाध्यायी, भावसंग्रह।

३७६ सोमदेवभट्ट—पार्श्वनाथस्तोत्र।

३७७ सोमदेवसूरि—शक संवत् ११२७। शब्दार्णवचान्द्रिका[1] (जैनेन्द्रव्याकरणकी टीका।)

३७८ सोमप्रभ (भट्टारक)—वि० सं० १४७९। स्तवरहस्य।

३७९ सोमप्रभाचार्य (नन्दिसंघ)—लघु पद्मनन्दिके शिष्य–सिन्दूरप्रकर (सूक्तमुक्तावली)।

३८० सोमसेन[2]—स्थाण्डिल्यहोमपूजा, शुक्लपञ्चम्युद्यापन, रामपुराण, प्रद्युम्नचरित्र, सप्तर्षिपूजा, भक्तामरोद्यापन, यशोधर-चरित्र, धर्मरसिकत्रिवर्णाचार, दशलक्षणपूजाविधान, कर्मदहन-व्याख्यान, लघुशान्तिक।

३८१ स्वयंभूकवि—वि० सं० ३७० (?)–पद्मपुराण प्राकृत, हरिवंशपुराण प्राकृत।

३८२ हंस—मध्यशान्तिक, धर्मबृहत्पूजा।

३८३ हरिषेणकवि—धर्मपरीक्षा (प्राकृत), श्रावकाचार, मुनिसुव्रतपुराण।

३८४ हरिषेण (भट्टारक)—बृहत् आराधनाकथाकोश, अष्टाह्निका कथा, धर्मपरीक्षा (संस्कृत)।

३८५ हरिभट्ट—षट्पंचास्तिकाय (प्राकृत श्लो० ९६)।

३८६ हरिनन्दि (नन्दिसंघके आचार्य)—भाद्रपद सुदी ३ सं० ९३९ में पट्टपर बैठे।

---

१ नं० ३७५ के सोमदेवसूरिके ग्रन्थोंमें शब्दार्णवचन्द्रिका भूलसे लिखी गई है। व्याकरणकी यह टीका यशस्तिलकके कर्त्ताकी बनाई हुई नहीं है।

२ सोमसेन नामके कई ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं। प्रद्युम्नचरित्रके कर्त्ता काष्ठासंघी थे और संवत् १६२५ के लगभग मौजूद थे।

३८७ हरिनन्दि (नन्दिसंघके आचार्य)—श्रावण सुदी ६ सं० ११५६ में पट्टपर बैठे।

३८८ हरिचन्द्र महाकवि (कायस्थ)—धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य, जीवंधरचम्पू, पुरुदेवचम्पू।

३८९ हरिश्चन्द्र (पंडित)—धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यकी टीका (श्लोक २०००)।

३९० हरीचन्द्र (नन्दिसंघके आचार्य)—जाति बघेरवाल, आषाढ़ वदी ८ सं० ९४८ को पट्टपर बैठे।

३९१ हस्तिमल्ल (पंडित)—गणधरवलयपूजा, संजीवनस्तोत्र।

३९२ हस्तिमल्ल कवि (गोविन्दभट्टका पुत्र)—सुभद्रानाटक (प्राकृत), विक्रान्तकौरवपौरवीयनाटक (सुलोचनानाटक), अंजना-पवनंजयनाटक, मैथिलिपरिणयनाटक।

३९३ हेमचन्द्रदेव—रत्नमालाकाव्य, विश्वप्रकाशकोश, शब्दप्रकाशकोश, श्रुतस्कन्ध (प्राकृत), मदनपराजय।

३९४ हेमचन्द्र (भट्टारक)—हरिवंशपुराण, त्रिषष्ठिशलाकाचरित्र।

३९५ हेमचन्द्रकवि—रत्नमंजूषा (छन्दोग्रन्थ)।

परिशिष्ट[1]।

* अकलंकदेवभट्ट—भाषामजरी[2] (२४०० श्लोक), न्यायकुमुदचन्द्र[3], शब्दानुशासन[4] (संस्कृतमें कानड़ीभाषाका व्याकरण)।

---

१ परिशिष्टके जिन आचार्योंके नामपर * ऐसा फूलका चिन्ह लगा हुआ है, वे आचार्य अक ५–६ में आ चुके हैं। उनके बनाये हुए जो ग्रन्थ पीछेसे मालूम हुए हैं, वे यहांपर लिखे गये हैं। परिशिष्टके ग्रन्थ प्राय. श्रवणबेलगुल, ईडर, जयपुर तथा बम्बईके भडारोंकी सूचीपरसे सग्रह किये गये हैं। २ यह ग्रन्थ डेक्कन कालेज पूनाकी लायब्रेरीमें मौजूद है। इसकी ८००० श्लोककी एक वृत्ति भी है। ३ प्रभाचन्द्रका न्यायकुमुदचन्द्रोदय इसकी वृत्ति है। ४ यह ग्रन्थ कनड़ी लिपिमें छप चुका है।

३९६ अनन्ताचार्य (बड़े)—न्यायविनिश्चयालंकारकी वृत्ति।

* अभिनव—निघण्टु वैद्यकग्रन्थ (४००० श्लोक)।

* अमितगति (काष्ठासंघी)—योगसारप्राभृत (अध्यात्म-तरंगिणी)।

* अमरकीर्ति (भट्टारक)—यमकाष्टकस्तोत्रकी टीका।

३९७ अमरसिंह—अनेकार्थध्वनिमंजरी (२७७ श्लोक)।

३९८ अमोघवर्ष महाराज—प्रश्नोत्तररत्नमाला संस्कृत, कविराज-मार्ग (कानड़ीमें अलंकारविषयक)।

३९९ आर्यपार्य—जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय काव्य (२हजारश्लोक)।

* आशाधर—जिनकल्याणमाला, तर्कामृत।

* ईश्वरकृष्णदास (कृष्णदास ब्रह्मचारीश्वर)—विमलनाथ-चरित्र।

४०० उदयप्रभदेवसूरि—व्यवहारचर्या।

४०१ कणयामर मुणि (?)—करकंडुमहाराजचरित प्राकृत (१५०० श्लोक)।

* कार्तिकेयस्वामी (स्वामिकुमार)—उपासकाध्ययन।

४०२ कुमारविन्दु—जिनसंहिता।

४०३ कुमारकवि (हस्तिमल्लका भाई)—आत्मप्रबोध (१५० श्लोक)।

४०४ क्षेमराज—णमोकारध्यानार्णव (१४४६ श्लोक)।

४०५ चण्ड—प्राकृतलक्षण (व्याकरण)।

* गौतमस्वामी कवि—इष्टोपदेशशास्त्र सटीक, होराज्ञान (ज्योतिष)।

४०६ चारित्रसिंह साधु—कातंत्रविभ्रमावचूरि।

* चारुकीर्ति[1] पण्डिताचार्य—गीतवीतराग (जयदेवकृत गीतगोविन्दके ढंगपर ५७२ श्लोक)।

* जयसेनाचार्य—नाटकसमयसार, पंचास्तिकाय और प्रवचनसारकी टीकाएं।

* जिनसेनाचार्य—शृंगारमंजरी।

४०७ जिनदाससूरि—उपासकाध्ययन।

४०८ ज्ञानकीर्ति (वादिभूषणके शिष्य)—वि० सं० १६५९, यशोधरचरित्र (१४०० श्लोक)।

* ज्ञानसागर—नेमिनाथकाव्य।

* जिनचन्द्र—नाभिराजस्तोत्र।

४०९ दुर्गसिंह कवि—कातंत्रव्याकरणकी वृत्ति।

४१० देवतिलक—कल्याणमन्दिरस्तोत्रकी टीका(४०० श्लोक)।

४११ देवसुन्दर—भक्तामरस्तोत्रकी टीका।

* देवसेन (विमल गणधरके शिष्य)—तत्त्वार्थसार (प्राकृत), आराहणासार (प्राकृत), धर्मसंग्रह, द्रव्यगुणपर्यायनिरूपण।

* देवेंद्रकीर्ति—रैदव्रतकथा, व्रतकथाकोश।

४१२ धरसेनाचार्य—योनिप्राभृत (संवत् १२० में बना)।

* धर्मकीर्ति—सहस्त्रगुणपूजा।

४१३ धर्मदास ब्रह्मचारी—जम्बूस्वामिचरित्र (२२०० श्लोक)।

४१४ नरचन्द्र[2]—ज्योतिषसार (श्लोक २४०)।

* नागचन्द्रसूरि (परवादिगजकेसरी)—विषापहारकी टीका।

* नरेंद्रसेन—सिद्धान्तसारसंग्रह।

---

१ एक चारुकीर्ति नामके आचार्य ज्येष्ठ सुदी ११ सं० १२९२ में पट्टपर बैठे थे। २ नरचन्द्रनामके एक आचार्य नन्दिसंघके पट्टपर कार्तिकसुदी ११ सं० ८९७ में बैठे हैं।

* प्रभाचन्द्राचार्य—आराधनाकथाकोश गद्य (२०४९ श्लोक), प्रवचनसरोजभास्कर उपासकाध्ययन, महापुराणटिप्पण (३३०० श्लोक) माघनंदिकृत शास्त्राचारसमुच्चयकी व्याख्या (२०००)।

४१५ पद्मप्रभसूरि—गृहभावप्रकाश (८२ श्लोक), यमकाष्टक ("लक्ष्मीर्महास्तुल्य सती सती सती" आदि)।

४१६ पद्मनाभि (कायस्थ)—यशोधरचरित्र (१५०० श्लोक)।

* पद्मनन्दि—धर्मोपदेशामृत (१९९ श्लोक)।

४१७ पितामह—सरस्वतीस्तोत्र (बहुत ही उत्तम)।

४१८ पंचाख्यब्रह्मचारी—तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतिपदटीका।

* पण्डिताचार्य (योगिराट्)—पार्श्वाभ्युदयकाव्यकी टीका, प्रमेयरत्नालंकार (६ हजार श्लोक), प्रमेयरत्नमालिकाप्रकाशिका।

४१९ पार्श्वनाग—आत्मानुशासन टीका (सं० १०४२ में)

* पूज्यपाद—शान्तिनाथस्तुति।

४२० फतेहलाल (पण्डित)—जैनविवाहपद्धति, धर्मदशावतार।

* भद्रबाहु—भद्रबाहुक नैमित्तकग्रन्थ (१६०० श्लोक)।

४२१ भावसिंहसूरि—लोकविभाग (२२३० श्लोक)।

४२२ भावसेनाचार्य—न्यायदीपिका (२००० श्लोक)।

* भावशर्म—लघुस्नपनटीका।

४२३ मदनकीर्ति[2]—शासनचतुस्त्रिंशतिका।

४२४ माघनन्दि[3]—शास्त्राचारसमुच्चय मूल सूत्र।

* माधवचन्द्र—गोमठसार, क्षपणासार, त्रैलोक्यसारकी कर्णाटकी टीका (४००० श्लोक)।

---

१ यह ग्रन्थ लींबडीके स्वेताम्बरभंडारमें है। २ क्या आशाधरकी प्रशंसा करनेवाले ?। ३ माघनन्दि नामके एक आचार्य आश्विन सुदी १० सं० ११८४ मे हो गये हैं।

* मल्लिषेण (उभयभाषाकविचक्रवर्ती)—प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, ज्वालिनीकल्प, महापुराण।

* माणिक्यनंदी—परीक्षामुखसूत्र।

४२५ मोक्षाकर गुप्त—तर्कभाषा।

४२६ यशःकीर्ति (ललितकीर्तिशिष्य)—धर्मशर्माभ्युदयकी सन्देहध्वान्तनाशिनी टीका।

* मेधावी—पचास्तिकाय टीका, द्रव्यसंग्रह टीका, भक्तामरकथा, चित्रबद्ध स्तोत्र।

* यशःकीर्ति (गुणकीर्तिका शिष्य)—चन्द्रप्रभचरित, गोमठसारचूनी कर्मकांडटीका, नेमिनाथपुराण, अकलंककथा, घण्टाकरण कल्प, नमस्कारमाहात्म्य।

४२७ योगचन्द्र—योगसार प्राकृत (१०८ गाथा)।

४२८ रत्नसिंह (धर्मसिंहके शिष्य)—प्राणप्रियकाव्य।

* रायमल्ल—त्रैलोक्यसार टीका, लाटीसंहिता (२००० श्लोक), हनुमानचरित्र (भाषापद्य), सूक्तमुक्तावली टीका।

४२९ वच्छेराज—कर्मप्रकृति (प्राकृत १६० श्लोक)

* वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती—देवागमवृत्ति।

* वादिचन्द्रसूरि—सुभगसुलेचनचरित्र।

४३० वादिराजकवि (पोमराजश्रेष्ठिसुत)—वाग्भटालंकारकी टीका, ज्ञानलोचन शास्त्र।

४३१ वादिसिंह—धर्मरत्नाकर, प्रमाणनौका।

---

१ ब्रह्म रायमल्लका नाम पीछेसे श्रीरत्ननन्दि हुआ था। कविवर बनारसीदासजीने आपहीकी बनाई हुई समयसारकी बालावबोधिनी टीकापरसे अध्ययन किया था। २ सुप्रसिद्ध प्राकृत कवि पुष्पदन्तने जिन वच्छराजकृत यशोधरचरित्रकी छायासे अपने ग्रन्थकी रचना की है, शायद वे ये ही हैं। ३ आपने अपनेको आशाधर, धनजय, और वाग्भटका समकक्षी बतलाया है। आप राज्यमंत्री थे।

४३२ विक्रमकवि (साङ्गणसुत)—नेमिदूतकाव्य[1] ।

* विद्यानन्दि (सकलतार्किकचूडामणि पात्रकेसरी अपरनामा) —युक्त्यनुशासनकी टीका (३ हजार श्लोक), पंचनमस्काराख्यस्तोत्र, पात्रकेसरीस्तोत्र ।

* विनयचन्द्र (नरेन्द्र)—भूपालचतुर्विंशतिका टीका ।

४३३ विष्णुसेन (त्रिविद्याधिपगणि)—समवसरणस्तोत्र ।

४३४ विबुधसेन—तत्त्वार्थसूत्रटीका (३२९० श्लोक) ।

* वीरसेन स्वामी—धवलसिद्धान्त टीका (सत्तर हजार श्लो०)।

४३५ शर्ववर्माचार्य—कातन्त्रव्याकरणसूत्र ।

४३६ शाकटायनाचार्य—शाकटायनव्याकरण सूत्र ।

४३७ शान्तिसूरि—प्रमाणप्रमेयकलिका वृत्ति (२८७३ श्लोक) ।

४३८ शालिपण्डित—नेमिनाथस्तोत्र ।

* शिवघोप—वृत्तसार ।

* श्रीचंन्द्र[2] (भोजदेवके समय धारामें)—पुराणसार (२१०० श्लोक) ।

४४९ शुभचन्द्राचार्य—संशयिवदनविदारण (श्लो० १०३२, श्वेताम्बरमतखण्डन सं० १९८८ की लिखी हुई प्रति), तर्कशास्त्र ।

४४० शुभचन्द्र—करकंडुमहाराजचरित्र (वि० सं० १६११ में बनाया), शीलविलासचन्दनाचरित्र (२०२ पद्य), इन्द्रध्वजविधान, पुण्याहवाचन ।

* श्रीधर—श्रुतावतार (गद्य) ।

* श्रीधरसेन—नागकुमारपचमी कथा ।

---

१ पिछले अकमें वर्द्धमान कविकी रचनामें भूलसे नेमिदूत छप गया है ।
२ एक श्रीचन्द्राचार्य वि० स० १२४१ में हुए हैं ।

* समन्तभद्र (लघु)—पूजाविधि ।

* सिद्धसेनाचार्य—बृहत्षट्दर्शनसमुच्चय ।

४४१ सिंहनन्दि (विद्यानन्दिके शिष्य)—ज्ञानार्णवकी तत्त्वत्रय-प्रकाशिका टीका (गद्यभागकी) ।

४४२ सुप्रभाचार्य—प्राकृत दोहा सटीक ।

४४३ सुधीसागर—पंचकल्याणपूजा ।

४४४ नयविलास—ज्ञानार्णवकी टीका ।

४४५ विजय कीर्ति—श्रेणिक चरित्र ।

४४६ वृषभमुनि—चूर्णिसिद्धान्त टीका, जयधवल चूर्णि ।

४४७ समयभूषणमुनि—धर्मप्रबोध ।

४४८ केशवराज—शब्दमणिव्याकरण, शब्दमणिदर्पण टीका ।

४४९ देवसेन स्वामी—महाधवल सिद्धान्त (४० हजार श्लोक)।

४५० पुष्पदन्तस्वामी—षट्खण्डपाहुड सिद्धान्तकी टीका ।

इति संस्कृतप्राकृतग्रन्थकर्तृणां नामावली ।

भाषाके[1] ग्रन्थकार और उनकी रचना ।

१ अक्षय श्रीमाल—चर्चाका ग्रन्थ वचनिका[2] ।

२ अचलकीर्ति(भट्टारक)—विषापहारस्तोत्र भाषाछन्दोबद्ध।

३ अभयचन्द्र—भक्तामरचरित्र छन्दोबद्ध, दशलक्षणव्रतकथा छन्दोबद्ध ।

४ अमरचन्द्र लुहाड़ा—चौवीसीपूजा, वीसविहरमानपूजा, द्वादशांगपूजा ।

---

१ ढूंढारी, मारवाडी, व्रजभाषा, बुन्देलखडी, आदि भाषाओंका मिश्रण लगभग सवत् १५५० से लेकर अब तकका । २ वचनिका अर्थात् गद्य ।

५ आशाराम—समवसरणपूजा, अहिक्षेत्रविधान ।

६ आशकरण—नेमिचन्द्रिका छंदोवद्ध ।

७ इन्द्रजीत—मुनिसुव्रतपुराण छंदोवद्ध ।

८ उदयचन्द (खंडेलवाल)—रत्नकरंडश्रावकाचारवचनिका ।

९ ऋषभदास निगोत्या—मूलाचारवचनिका (नन्दलाल छावड़ासे मिलकर वनाई) ।

१० कँवरपाल—वनारसीकृत सूक्तमुक्तावलीके कुछ छन्द ।

११ काशीदास—सम्यक्त्वकौमुदी छंदोवद्ध ।

१२ संघीकिशुनसिंह पाटणी (सांगानेरनिवासी)—रात्रिभोजन-कथा छं० (१७७३ में), क्रियाकोश छंदोवद्ध (सं० १७८४ में), भद्रवाहुचरित्र छदोवद्ध (१७८५ में) ।

१३ केसरीसिंह—(जयपुरनिवासी)—वर्द्धमानपुराणवचनिका ।

१४ खड्गसेन (नारनौलवालेने आगरामें)—त्रिलोकदर्पण छं० ब० (सं० १७१३में), ज्ञानदर्पण छंदोवद्ध ।

१५ खुशालचन्द काला (सांगानेरवाले)—हरिवंशपुराण पद्य (१७८० में), यशोधरचरित्र पद्य (१७८१ में), पद्मपुराण पद्य (१७८३ में), उत्तरपुराण पद्य (१७९९ में,) धन्यकुमारचरित्र पद्य, चौवीसीपूजापाठ, जम्बूचरित्र, व्रतकथाकोश ।

१६ खुशालचन्द—सद्भाषितावली छंदोवद्ध (रामचन्द्रके साथ मिलकर वनाई सं० १७७३ में) ।

१७ खेतसी—जम्बूचरित्र छन्दोवद्ध, सम्यक्त्वकौमुदी छन्दोवद्ध ।

१८ गुलजारीलाल—आत्मविलास पद्य ।

१९ गुलावराय—शिखरविलास पद्यवद्ध (इटावामें मोतीराम और सिंहलालके साथ मिलकर वनाया सं० १८४२ में) ।

२० गूजरमल—जिनदत्तचरित्र पद्यबद्ध (बखतावरके साथ मिलकर) बनाया।

२१ गोकुल—सुकुमालचरित्र वचनिका।

२२ गोपीलाल—नागकुमारचरित्र पद्य, जम्बूद्वीपपूजा, तीस चौबीसीपूजा।

२३ गौरवदास (फफोंदू निवासी)—यशोधरचरित्र पद्य (सं० १५८१ में)

२४ चंपाराम (पाटननिवासी)—गौतमपरीक्षा (सं० १९१६ में),वसुनन्दिश्रावकाचार, चर्चासागर वचनिका, योगसागर वच-निका।

२५ चुन्नीलाल वैनाड़ा—तीसचौबीसीपूजा लघु, चौबीसीपूजा।

२६ चैनसुख (जयपुरनिवासी)—अकृत्रिमचैत्यपूजा।

२७ छत्रपति (पद्मावतीपुरवार कोकानिवासी)—द्वादशानुप्रेक्षा पद्य (१९०७ में), मनमोदनपंचासिका पद्य (१९१६ में), उद्यम-प्रकाश पद्य (१९२२ में), शिक्षाप्रधान पद्य।

२८ छोटेलाल जैसवाल—चौबीसीपूजा, पंचकल्याणपूजा, सूत्रजी पद्यबद्ध, नित्यनियमपूजा।

२९ जगजीवन (अग्रवाल आगरानिवासी)—बनारसीकृत समय-सारकी टीका[1], बनारसीदासजीकी समस्त कविताओंको एकत्र करके बनारसीविलास बनाया (संवत् १७७१ में)।

३० जगतराय—आगमविलास पद्यबद्ध, सम्यक्त्वकौमुदी छन्दो-बद्ध पद्मनन्दिपंचविंशतिका छन्दोबद्ध (सं०१७२१ में)।

---

१ प्रकरणरत्नाकर नामक स्वेताम्बर ग्रन्थसंग्रहमें जो नाटकसमयसारकी गुजराती टीका छपी है, वह इसी टीकापरसे की गई है।

३१ **जयचंदराय छावड़ा**—सर्वार्थसिद्धि वचनिका (१८६१ में) परीक्षामुख वचनिका (१८६३ में), द्रव्यसंग्रह वचनिका (१८६३ में), द्रव्यसंग्रह छन्दोबद्ध, स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षा वचनिका(१८६६में), आत्मख्यातिसमयसार वचनिका (१८६४ में), देवागम वचनिका (१८६६ में), अष्टपाहुड़ वचनिका (१८६७ में), ज्ञानार्णव वचनिका (१८६९ में), भक्तामरचरित्र वचनिका (१८७० में), चन्द्रप्रभकाव्यके द्वितीय सर्गस्थ न्यायके श्लोकोंकी वचनिका, मतसमुच्चय, पत्रपरीक्षा, फुटकर पद वीनती (११०० श्लोक[1])।

३२ **जयचन्द**—मिथ्यात्वखण्डन वचनिका।

३३ **जयवन्त**—तत्वार्थसूत्रकी वचनिका।

३४ **जवाहिरलाल**—सिद्धक्षेत्र पूजा, सम्मेदशिखरमाहात्म्य पूजाविधानसहित, त्रैलोक्यसारपूजा, तीनचौवीसी पूजा।

३४ **जसकरण संघी**—मल्लिनाथपुराण छन्दोबद्ध (लालचन्दके साथ मिलकर बनाया)।

३६ **जिनदास पांडे**—जम्बूचरित्र छन्दोबद्ध (सं० १६४२ में), ज्ञानसूर्योदयनाटक छन्दोबद्ध, सुगुरुशतक, फुटकर पद जकड़ी।

३७ **जिनहर्ष** (पाटननिवासी)—श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्ध (१७२४ में)।

३८ **जिनेन्द्रभूषण**—चन्द्रप्रभपुराण छन्दोबद्ध।

३९ **जीवराज** (बड़नगरनिवासी खडेलवाल)—परमात्मप्रकाश वचनिका (१७६२ में)।

---

१ प० जयचन्द्रजीने कविवर वृन्दावनजीको जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें इन ग्यारहसौ श्लोक परिमित पदोंका उल्लेख है (देखो वृन्दावनविलास पृष्ट १३२) परन्तु जयचन्दजीके पद अभी तक कहीं सुननेमें नहीं आये हैं।

४० जीवसुखराय—ज्ञानसूर्योदयनाटक छन्दोबद्ध, वैराग्यशतक छन्दोबद्ध ।

४१ जोधराज गोदीका (सांगानेर)—प्रीतंकरचरित्र छ० (१७२१ में), धर्मसरोवर छ०, कथाकोश छ० (१७२२ में), सम्यक्त्वकौमुदी छ० (१७२४ में), प्रवचनसार छ० (१७२६ में), भावदीपिका वचनिका, ज्ञानसमुद्र ।

४२ जौहरीलाल शाह—सम्मेदशिखरपूजा, पद्मनन्दिपंचविंशतिकाकी वचनिका (१९१९ में मुन्नालालजीकी सहायतासे)।

४३ झुनकलाल—चौवीसी पूजनपाठ, पंचकल्याणकपूजा, पंचपरमेष्ठीपूजा ।

४४ टेकचन्द—अध्यात्म बारहखड़ी ।

४५ टेकचन्द(भद्रपुरनिवासी)—तत्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका (१८३७ में), सुदृष्टतरंगिनी वचनिका(१८३८ में), कथाकोश छन्दोबद्ध, बुधप्रकाश छ०, षटपाहुड़ वचनिका, ढालगण छ०, कर्मदहन पूजा, सोलहकारण-दशलक्षण-रत्नत्रय-नन्दीश्वर-तीनलोक-पंचपरमेष्ठी-पंचकल्याणकपूजा ।

४६ टोडरमल्ल (सुप्रसिद्ध विद्वान्)—गोमठसार वचनिका, क्षपणासार वचनिका (सं० १८१८ में), लब्धिसार वचनिका, त्रिलोकसार वचनिका, आत्मानुशासन वचनिका, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय वचनिका अधूरी (दौलतरामने पूर्ण की), मोक्षमार्गप्रकाश वचनिका अधूरी, चिट्ठी ।

४७ ठकुरसी (घेल्हका पुत्र)—कृपणचरित्र (पुरानी हिन्दीमें बहुत अच्छा) ।

४८ डालूराम अग्रवाल (माधवराजपुरनिवासी)—गुरूपदेशश्रावकाचार छन्दोबद्ध (१८६७ में), श्रीमत्सम्यक्प्रकाश छ०

(१८७१ में), पंचपरमेष्ठी--अष्टाह्निका--शिखरविलास--पंचकल्याणक-इन्द्रध्वज--अढाईद्वीप--द्वादशांग--पंचमेरु--रत्नत्रय--दशलक्षण--तीन--चौवीसीपूजा।

४९ डूंगरमल्ल--पीपलरासा।

५० तनसुखदास--चन्द्रप्रभकाव्यकी वचनिका (वीरनन्दिकृतकी)।

५१ ताराचन्द--ज्ञानार्णव छन्दोबद्ध (सं० १७२८ में तिलोकचन्द और लक्ष्मीचन्दके साथ मिलकर बनाया)।

५२ ताराचन्द--तीसचौवीसी पूजा लघु।

५३ तिलोकचन्द्र--(भट्टारक) सामायिक वचनिका।

५४ थानसिंह--सुबुद्धिप्रकाश छन्दोबद्ध (१८४७ में), वीसविहरमान पूजा।

५५ दरयाव (परवार)--ज्ञानोदधिविलास।

५६ दरिगहमल्ल[1]--(विनोदीलालके पिता)--फुटकर पद जकड़ी।

५७ दशरथ धर्मार्थी--धर्मपरीक्षाकी तात्पर्यार्थप्रकाशिका वचनिका।

५८ देवीदास (खंडेलवाल, बसवानिवासी)--सिद्धान्तसारसंग्रह वचनिका (१८४४ में भेलसामें बनाई), तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिका।

५९ देवीदास (दुगोदह केलगवां जिला झांसीनिवासी)--परमानन्दविलास[2] छन्दोबद्ध (संवत् १८१२ में), प्रवचनसार[3] छन्दोबद्ध, चिद्विलास वचनिका, चौवीसीपूजापाठ।

६० देवीदास (वृन्दावनजीके साथी)--फुटकर पद भजन।

---

१ यदि कभी स्थान मिला, तो दरिगहका एकाध पद हम जैनहितैषीके पाठकोंको भेंट करेंगे। २ श्री जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयकी औरसे शीघ्रही छपनेवाला है। इसमें चित्रवद्ध कविता बहुत सी है। ३ शंका है कि, यह प्रवचनसार परमानन्दविलास कर्त्ताका ही है, अथवा अन्य किसी देवीदासका

६१ देवीसिंह (नरवरनिवासी)—उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला छन्दोवद्ध (सं० १७९६ में) ।

६२ दीपचन्द[1] काशलीवाल (आमेर निवासी)—अनुभवप्रकाश वचनिका, अनुभवप्रकाश छन्दोवद्ध, अनुभवविलास छन्दो०, आत्मावलोकन छ०, चिद्विलास वचनिका, परमात्मपुराण छ०, स्वरूपानन्द बृहत् तथा लघु छन्दो०, ज्ञानदर्पण, गुणस्थानभेद, उपदेशरत्नछ०, अध्यात्मपचीसी छ०।

६३ दौलतराम कासलीवाल (वसवानिवासी)—पुण्यास्रव वचनिका (१७७७ में), क्रियाकोश छ० व० (१७९५ में), अध्यात्म वारहखड़ी छ० (१७९८ में), पद्मपुराण वचनिका (१८२३ में), आदिपुराण वचनिका (१८२४ में), हरिवंशपुराण वचनिका (१८२९ में), परमात्मप्रकाश वचनिका, श्रीपालचरित्र वच०, चौवीसदंडक, पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी टीका अधूरी (टोड़रमलजीकृत टीकाकी पूर्ति) ।

६४ दौलतराम पल्लीवाल (शासनीनिवासी)—दौलतपदसंग्रह, छहढाला ।

६५ द्यानतराय (आगरानिवासी)—चर्चाशतक छन्दोवद्ध, द्रव्यसंग्रह छ०, द्यानतविलास (सं० १७८८ में)।

६६ धन्नालालशाह—भविष्यदत्तकथा छन्दोवद्ध ।

६७ धर्मदास—धर्मोपदेशश्रावकाचार छन्दोवद्ध (सं० १५७८ में) ।

६८ धर्मचन्द—दंडक छन्दोवद्ध ।

---

१ आप एक अच्छे नामी आध्यात्मिक कवि थे । आपकी जितनी कविता है, प्रायः सब निश्चय नयसम्बन्धी है ।

६९ नयनसुख (यति नयनानन्द[1])—नैनसुखविलास (१९ हजार श्लोक)।

७० नथमल विलाला (भरतपुरनिवासी)-जिनगुणविलास छन्दोबद्ध, सिद्धान्तसार छ० (१८२३ में), नागकुमारचरित्र छ० (१८३४ में), जीवंधरचरित्र छन्दोबद्ध (१८३९ में), जम्बूस्वामीचरित्र छन्दोबद्ध।

७१ नन्दकवि—सुदर्शनचरित्र।

७२ नन्दलाल छावड़ा—मूलाचार वचनिका (ऋषभदास निगोत्याके साथ मिलकर सं० १८८८ में बनाया)।

७३ नन्दराम—योगसारवचनिका (सं० १९०४ में), त्रैलोक्यसारपूजा, यशोधरचरित्र छन्दोबद्ध।

७४ नन्दलाल—तीसचौवीसीपूजा लघु समुच्चय।

७५ नवलराम (बसवानिवासी)—वर्द्धमानपुराण छन्दोबद्ध (सं १८२९ में)।

७६ नाथूलाल दोसी—(जयपुरनिवासी)—सुकुमालचरित्र वचनिका, महीपालचरित्र वचनिका, दर्शनसार छन्दोबद्ध, समाधितंत्र वचनिका (४८९० श्लोक), परमात्मप्रकाश दोहाबद्ध (सं० १९१९ में), सिद्धप्रियस्तोत्र छ०, रत्नकरंडश्रावकाचार छ०, षोड़शकारणजयमाल वचनिका, अष्टाह्निकाकथा वचनिका, रत्नत्रयजयमाल वचनिका तथा छन्दोबद्ध।

७७ निर्मलदास—पंचाख्यान छन्दोबद्ध।

---

१ पहले आप श्वेताम्बर यति थे, पीछेसे दिगम्बर हुए थे। आपकी कोई २ कविता बहुत ही अच्छी है। २ इस ग्रन्थमें आपने अपना नाम नथमल्ल दिया है, इससे प० नथमल विलालाका भ्रम होता है।

७८ नेमिचन्द् (जयपुरनिवासी)—चौवीसीपूजा, तीस चौवीसीपूजा, तीनलोक पूजा (सं० १९२१ में)।

७९ नारायण श्रीमाल (स्वेताम्बर)—नयचक्र वचनिका ।

८० पन्नालाल (दूनीवाले)—समवसरणपूजा, पंचकल्याणकपूजा, पञ्चपरमेष्ठीपूजा, सरस्वतीपूजा, नित्यनियमपूजा, विद्वज्जनबोधक वचनिका, उत्तरपुराणवचनिका, दिवालीतिथिनिर्णय, पूज्यापूज्यनिर्णय ।

८१ पन्नालाल चौधरी (जयपुरनिवासी)—वसुनन्दिश्रावकाचार, सुभाषितार्णव, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, जिनदत्तचरित्र, तत्त्वार्थसार, सद्भाषितावली, भक्तामरकथा, आराधनासार, धर्मपरीक्षा, यशोधरचरित्र, योगसार, पांडवपुराण, समाधिशतक, सुभाषितरत्नसंदोह, आचारसार, नवतत्त्व, गोतमस्वामीचरित्र, जम्बूस्वामीचरित्र, जीवंधरचरित्र, भविष्यदत्तचरित्र, तत्त्वार्थसारदीपक, श्रावकप्रतिक्रमण, स्वाध्यायपाठ, सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति, योगभक्ति, श्रुतभक्ति, चरित्रभक्ति, वीरभक्ति, निर्वाणभक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, कल्याणमन्दिर, एकीभावस्तोत्र, विषापहारस्तोत्र, भूपालस्तोत्र, सिद्धप्रियस्तोत्र. इन ३६ ग्रंन्थोंकी वचनिका की।

८२ पर्वत धर्मार्थी—द्रव्यसंग्रह वचनिका, सामायिक वचनिका, समाधितन्त्र वचनिका, बालावबोध छन्दोबद्ध ।

८३ परिमल वरैया—श्रीपालचरित्र छन्दो०, श्रेणिकचरित्र छ०।

---

१ बम्बईके सरस्वती भंडारमें इस ग्रन्थकी खरडाप्रति खास ग्रन्थकर्ताके हाथकी लिखी हुई मौजूद है। इसमें—अभिषेक, केशरचर्चा पुष्पपूजन आदि बातोंका खडन किया है। २ वचनिकामें मूल ग्रन्थके बहुतसे श्लोक जो भाषाकारको इष्ट नहीं थे, निकाल दिये हैं। ३ अंक ५-६ की संस्कृत ग्रन्थकर्ताओंकी सूचीमें इनका (श्रीपर्वत) नाम भूलसे लिख गया है। वहां जो समाधितन्त्रकी टीका ...ी है, उसे संस्कृत न समझके भाषा वचनिका ही समझना चाहिये।

८४ **पृथ्वीपाल**—व्रतकथाकोश छन्दोबद्ध ।

८५ **पारसदास** (जयपुरनिवासी)–ज्ञानसूर्योदयनाटक वचनिका, सारचतुर्विंशतिकाकी वचनिका, पारसविलास ।

८६ **प्यारेलाल**—सझापितावली छन्दोबद्ध ।

८७ **फकीरचन्द**—समवसरण पूजा ।

८८ **फतेहलाल**—विवाहपद्धति मूल और वचनिका, दशावतारनाटक वचनिका, राजवार्तिकालंकारकी वचनिका, रत्नकरंडश्रावकाचारकी वचनिका, न्यायदीपिका वचनिका, तत्त्वार्थसूत्र वचनिका, विम्बनिर्मापण वचनिका ।

८९ **बखतावरमल-रतनलाल** (दिल्लीनिवासी)–चौवीसी पूजा, जिनदत्तचरित्र छन्दोबद्ध, नेमिनाथपुराण छ०, चन्द्रप्रभपुराण छ०, भविष्यदत्तचरित्र छ०, प्रीतंकरचरित्र छ०, प्रद्युम्नचरित्र छ० (ज्वालानाथ और बखतावरकृत १९१६ में), व्रतकथाकोश, तत्त्वार्थसूत्रवचनिका, पंचकल्याणपूजा ।

९० **बखतराम** (चाटसूं निवासी)—धर्मबुद्धिकी कथा, मिथ्यात्वखंडननाटक वचनिका, बुद्धिविलास छ० ।

९१ **बद्रीचन्द**—समाधिशतक छन्दोबद्ध ।

९२ **बलदेव**—वर्द्धमानपुराण छन्दोबद्ध ।

९३ **बुलाकीदास**—पांडवपुराणछन्दोबद्ध, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार छ० ।

९४ **ब्रह्मगुलाल**—ब्रह्मगुलालपचीसी छन्दो० ।

९५ **भगवतीदास** (ओसवाल आगरानिवासी)—ब्रह्मविलास छन्दोबद्ध, चेतनचरित्र छ० (सं० १७३२ में), द्रव्यसंग्रह छन्दोबद्ध (मानसिंहके साथ मिलकर) ।

९६ **भज्जूलाल** (अग्रवाल बनारसनिवासी)-पंचकल्याणकपूजा ।

९७ भाऊकवि—नेमीश्वररासा, रविव्रतकथा ।

९८ भागचन्द्र (ईसागढ़निवासी ओसवाल)—ज्ञानसूर्योदयनाटक वचनिका, उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला वच०, अमितगतिश्रावकाचार वचनिका, प्रमाणपरीक्षा व०, नेमिनाथपुराण व०, महावीराष्टकस्तोत्र संस्कृत, जिनेताडव सस्कृत, शिखरपूजा सस्कृत, फुटकर पद ।

९९ भारामल खरौआ (भीड़वाला)—चारुदत्तचरित्र छ०, सप्तव्यसनचरित्र छ०, शनिकथा छ०, दानकथा छ०, शीलकथा छ०, दर्शनकथा छ०, रात्रिभोजनकथा छ० ।

१०० भूधरदास (खंडेलवाल आगरानिवासी)—पार्श्वपुराण छन्दोबद्ध (स०१७८९ में), जैनशतक छ०, एकीभावस्तोत्र छ०, भूपालचौवीसी छ०, भूधरविलास छन्दोबद्ध ।

१०१ भूधरमिश्र (शाहगजनिवासी)—पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी[3] वचनिका (वि० स०१८७१ में), चर्चासमाधान[4] वचनिका ।

१०२ भूरजी अग्रवाल—यशोधरचरित्र छन्दोबद्ध ।

१०३ भैरवलाल—पचकल्याणक पूजा ।

१०४ मकरन्द—तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिका ।

१०५ मन्नालाल सागाका—चारित्रसारवचनिका (१८७१ में) ।

१०६ मन्नालाल वैनाड़ा (दिल्लीनिवासी)—प्रद्युम्नचरित्र वचनिका (१९१६ में) ।

---

१ इस ग्रन्थमें वनानेका समय तो नहीं लिखा है, परन्तु कविताकी भाषा सोलहवीं शताब्दीके लगभगकी मालूम होती है । २ शिवताडवके ढगपर वना है । भागचन्द्रजीकी अनेक कृतिया ऐसी हैं, जिन्हें वहुत थोडे लोग जानते हैं, और उनके साथी जो हैं वे किसीको वतलाना नहीं चाहते हैं । ३ यह टीका वहुत ही अच्छी है । मिश्रजी वैष्णवसे जैन हुए थे, अच्छे विद्वान् थे । ४ चर्चासमाधानको वहुतसे लोग पं० भूधरदासजीका समझते हैं, पर यह भ्रम है ।

१०७ मनमोद अग्रवाल—यशोधरचरित्र छन्दोवद्ध।

१०८ मनरंगलाल—चौवीसीपूजापाठ, नेमिचंद्रिका छ०, सप्त-व्यसनचरित्र छ०, सप्तऋषि पूजा।

१०९ मनसुखसागर (काष्ठासंघी)-शिखरविलास वड़ा छ०।

११० मनोहरदास (सागानेर निवासी)—धर्मपरीक्षा छ०।

१११ महाचन्द्र—तीनचौवीसी पाठ।

११२ महाचन्द्र (सीकरवाले)—महापुराण संस्कृत प्राकृत और भाषावचनिका (अधूरा), सामायिकपाठ भाषा, फुटकर संस्कृतके और भाषाके पद।

११३ माणिकचन्द्र—समाधितंत्रवचानिका, माणिकविलास।

११४ मिहिरचन्द्र[१]—सज्जनचित्तवल्लभ संस्कृतटीका, वचनिका और पद्यानुवाद।

११५ मेघराज—चन्द्रप्रभपुराण छन्दोवद्ध।

११६ रत्नकीर्ति—चतुर्विंशतिस्तवन (छप्पय छन्दमें बहुत उत्तम)।

११७ रामचन्द (खंडेलवाल दिल्लीनिवासी)—चौवीसी पूजा-पाठ, सम्मेदशिखर पूजा, सीताचरित्र (सं० १७१३ में)।

११८ राजाराम—धन्यकुमारचरित्र छ०।

११९ रायमल्लब्रह्मचारी (अनन्तकीर्तिके शिष्य)—हनुमच्चरित्र छन्दोवद्ध (सं० १६१६ में), समयसारकी बालावबोधिनी वच-निका टीका।

---

१ संस्कृतके सिवाय आप फारसीके भी अच्छे विद्वान थे। शेखशादीकी गुलिस्ता और वोस्ताका भी आपने हिन्दी अनुवाद किया था, जो शायद छप चुका है।

१२० रायमल्ल[1]—भविष्यदत्तचरित्र छं० (सं० १६६३ में) सीताचरित्र छं०, ज्ञानानन्दनिजरसनिर्भरश्रावकाचार, चर्चाग्रन्थ वचनिका ।

१२१ रामसिंह—सीताचरित्र छन्दोबद्ध ।

१२२ रूपचन्द पांडे (बनारसीदासके समकालीन)—परमार्थी दोहाशतक, गीतपरमार्थी, पद जकड़ी, पंचकल्याणमंगल ।

१२३ रूपचन्द (द्वितीय)—बनारसीकृत नाटक समयसारकी टीका (सं० १७९८ में) ।

१२४ लक्ष्मीचन्द्र (भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य)—यशोधरचरित्र छं० ।

१२५ लक्ष्मीदास—यशोधरचरित्र वच०, श्रेणिकचरित्र छं० ।

१२६ लालचन्द्र (सागानेरी)—षट्कर्मोपदेशरत्नमाला (सं० १८१८ में), वरागचरित्र छं०, विमलनाथपुराण छं०, शिखरविलास छं०, सम्यक्त्वकौमुदी छं०, अकृत्रिमचैत्यालय पूजा, इन्द्रध्वज पूजा, आगमशतक छं०, पंचपरमेष्ठीपूजा, समवसरणपूजा, त्रिलोकसारपूजा, तेरहद्वीपपूजा, पंचकल्याणकपूजा, पंचकुमारपूजा ।

१२७ लालचन्द (पद्मावती पुरवार)—समवसरणपूजा ।

१२८ दीवान लालमणि—रसप्रकाशअलंकार छन्दोबद्ध ।

१२९ लालजीमल्ल—बासठगणपूजा ।

१३० लालचन्द-नथमल—भक्तामरचरित्र छन्दोबद्ध ।

१३१ बनवारीलाल—भविष्यदत्तचरित्र छन्दोबद्ध ।

---

1. रायमल्ल नामके कई विद्वान् भाषाकार हो चुके हैं। उनके ग्रन्थ देखे विना यह नहीं कहा जा सकता है कि कौन किस रायमल्लका बनाया हुआ है । पहले रायमल्ल संस्कृतके भी विद्वान् थे । भक्तामरटीका आदि कई ग्रन्थ आपके बनाये हुए संस्कृतमें भी हैं ।

१३२ **बनारसीदास** (श्रीमाल, जौनपुरनिवासी)—नाटक-समयसार छ० (१६९३ में), बनारसीपद्धति[1] (१६९८ में), नाममाला (हिन्दीकोश), फुटकर कविताएं सूक्तमुक्तावली वगैरह (बनारसीविलास)।

१३३ **विजयकीर्ति** (भट्टारक कारंजा)–श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्ध।

१३४ **विजयनाथमाथुर** (टोडानगर निवासी)—वर्धमान-पुराण छन्दो०।

१३५ **विनोदीलाल** (दरिगहमल्लसुत) भक्तामरचरित्र छन्दो०, नेमिनाथका व्याहला, नमोकार पचीसी, अकृत्रिमचैत्यालयकी पूजा, फूलमाल पचीसी, अरहंतपासा केवली (संस्कृत)।

१३६ **विरधीचन्द्र** (बुधजन, जयपुरनिवासी) बुधजनविलास, बुधजनसतसई (सं० १८७९ में), योगसार छन्दो०, तत्वार्थ[2]-बोध छ०, पंचास्तिकाय छ०, द्वादशानुप्रेक्षा छन्दो०।

१३७ **विलासराय** (इटावा निवासी)—नयचक्रकी वचनिका (सं० १८६७ में), पद्मनन्दिपंचविंशतिका वचनिका।

१३८ **विश्वभूषण**—जिनदत्तचरित्र छन्दो० (सं० १७३८ में)।

१३९ **विहारीलाल**[3] (छत्रपुरवाले)—फुटकर पदसंग्रह।

१४० **वीरदास**—धर्मपरीक्षा छन्दो०।

१४१ **वृंदावन** (अग्रवाल)—प्रवचनसार छन्दोबद्ध, (सं० १९०५ में), चोवीसीपूजापाठ, तीस चौवीसीपूजा पाठ, छन्दशतक

---

१ इसका दूसरा नाम अर्धकथानक भी है। इसमें बनारसीदासजीने अपना ५५ वर्षका चरित्र लिखा है। २ इसमें तत्वार्थकी कविता की गई है। ३ आपके बनाये हुए पदोंका बुन्देलखडमें बहुत प्रचार है। पदोंके सिवाय सुनते हैं, आपने और भी कई ग्रन्थ बनाये हैं।

भाषापिंगल, अरहंतपासा केवली, फुटकर कविताएं स्तुतिपद वगैरह (वृंदावनविलास)।

१४२ वंशीधर—द्रव्यसंग्रह वचनिका।

१४३ शान्तिदास—विषापहारस्तोत्र छन्दो०।

१४४ शिवचन्द (देहलीवाले भट्टारकके शिष्य)—सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृतकी वचनिका, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार वचनिका, तत्त्वार्थसूत्र वचनिका।

१४५ शिवजीलाल (जयपुरनिवासी)—रत्नकरडकी वचनिका, चर्चासग्रहकी वचनिका, नयचक्र वचनिका, उमास्वामिकृत श्रावकाचारकी वचनिका, पूज्यापूज्यनिर्णय, बोधसार, तत्त्वज्ञानतरंगिणी, अध्यात्मतरंगिणी, क्रियाविचार, प्रतिष्ठासूक्तिसंग्रह, विवाहपद्धति, प्रतिष्ठाविधि सामग्री, तेरहपंथखंडन, दर्शनसार वचनिका (१९२३)।

१४६ शिवप्रसाद—कर्मचूर छन्दो०।

१४७ शिरोमणिदास—धर्मसार छन्दो० (सं० १७३२ में)।

१४८ सदासुख (काशलीवाल)—भगवतीआराधनासार वचनिका (स० १९०८), तत्त्वार्थसूत्रकी छोटी टीका, अर्थप्रकाशिका वचनिका, अकलंकाष्टक वचनिका, रत्नकरडश्रावकाचार वचनिका, नित्यनियमपूजा वचनिका, बनारसीदासजीकृत नाटकसमयसारकी वचनिका टीका।

१४९ सम्पतराय—ज्ञानसूर्योदयनाटक छन्दो०।

१५० सर्वसुखराय—समवसरणपूजा (सं० १८९६ में)।

१५१ सुखलाल—सुखलाल भाषा छन्दो०।

१५२ सुखवन्धन—लीलावतीचरित्र छन्दोवद्ध।

१५३ सुन्दरलाल लमेचू—सिन्दूरप्रकरण वचनिका।

१५४ सुन्दरदास—सुन्दरसतसई, सुन्दरविलास ।

१५५ सुगनचन्द—चौवीसीपूजापाठ ।

१५६ सुन्दर खुशाल रक्ताम्बर—यशोधरचरित्र छन्दोवद्ध ।

१५७ सूरजभान—परमात्माप्रकाशकी वचनिका ।

१५८ सूरत—बारहखड़ी छन्दोवद्ध ।

१५९ सेवाराम शाह (जयपुरनिवासी)—चौवीसमहाराजपूजा (सं० १८५४ में), धर्मोपदेश छन्दोवद्ध ।

१६० सेवाराम (राजपूत)—हनुमेच्चरित्र छन्दोवद्ध (स० १८३१ में) शान्तिनाथपुराण छ०, भविष्यदत्तचरित्र ।

१६१ स्वरूपचन्द (जयपुरनिवासी)—त्रैलोक्यसार चौपाई०, ऋद्धिशतक छ०, मदनपराजय वचनिका (स० १९१८में), वीरनाथस्तोत्र, जिनपजरस्तोत्र, दर्शनस्तोत्र, निर्वाणक्षेत्र अतिशयक्षेत्र सहस्रनाम, चौसठऋद्धि, सुगन्धदशमी और चमत्कारजीकी पूजा ।

१६२ हरगुलाल (अग्रवाल, खतौलीनिवासी)—सज्जनाचितवल्लभकाव्य वचनिका ।

१६३ हरजीमल शुद्धजीव पाटणी—चरचाशतककी टीका ।

१६४ हरिकिशुनलाल (ईसागढ़ निवासी)—पंचकल्याणकपूजा ।

१६५ हरिराय—हरिवंशपुराण छन्दो०, पचकल्याणकपूजा ।

१६६ हरिचन्द—पंचकल्याणकमहामहोत्सव छन्दो० (स० १८३३ में) ।

१६७ हीराचन्द अमोलक (फलटण निवासी हूंवड़)—पचपूजा, हिन्दीके फुटकर पद भजन, मराठीकी वहुतसी कविता ।

---

१ त्रिविधविद्याविशद कवि ब्रह्माजितकृत सस्कृत हनुमचरित्रका यह पद्यानुवाद है । २ आपकी मातृभाषा गुजराती और देशभाषा मराठी थी, तो भी आपने हिन्दीमें कविता की थी और सो भी अच्छी ।

१६८ हीरानन्द (आगरानिवासी)—पंचास्तिकाय छन्दो॰ (१७ १८ में)।

१६९ हीरालाल (अग्रवाल बड़ोतनिवासी)—चन्द्र पुराण छन्दो॰, तत्त्वार्थसूत्र छन्दो॰, चौवीसीपूजापाठ।

१७० हेमराज—नयचक्रकी वचनिका (सं॰ १७२४ में); गोमठसारकी संक्षिप्त वचनिका, प्रवचनसार वचनिका, (१७०९ में) पचास्तिकाय वचनिका, भक्तामरस्तोत्र छन्दो॰, प्रवचनसार छन्दो॰, चौरासी वोल छ॰ (श्वेताम्बरमतखंडन)।



Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी ।

दशवाँ भाग ।	कार्तिक श्रीवीर नि० संवत् २४४०	पहला अंक ।

विषयसूची ।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाव, बम्बई ।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

केशर।

काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है। नई फसलकी उम्दा केशर शीघ्र मगाईये। दर १) तोला।

सूतकी मालायें।

सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती हैं। जिन भाइयोंको सूतकी मालाओंकी जरूरत होवे हमसे मंगावें। हर वक्त तैयार रहती हैं। दर एक रुपयेमे दश माला।

मिलनेका पता—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग पो० गिरगाँव, बम्बई।

फूलोंका गुच्छा।

सम्पादक–जैनहितैषीसम्पादक नाथूराम प्रेमी।

पृष्ठ सख्या १२०। छपाई बढ़ियाँ। मूल्य ॥=)।

इस गुच्छेमें चपला, वीरपरीक्षा, कुणाल, विचित्रस्वयंवर, मधुस्रवा, शिष्यपरीक्षा, अपराजिता, जयमाला, कञ्चुकी, जयमती और ऋणशोध ये ११ पुष्प हैं। प्रत्येक पुष्पकी सुगन्धि, सौन्दर्य और माधुर्यसे आप मुग्ध हो जावेंगे। हिन्दीमें खण्ड-उपन्यासों या गल्पोंका यह सर्वोत्तम संग्रह प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक कहानी जैसी सुन्दर और मनोरंजक है वैसी ही शिक्षाप्रद भी है। इन कहानियोंमेंसे कुछ कहानियाँ पहले जैनहितैषीमें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इसकी एक एक प्रति अवश्य मँगाइए।

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग पो० गिरगाँव–बम्बई।



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

१० वाँ भाग] कार्तिक, श्री० वी० नि० स० २४४०। [१ ला अंक

विद्यार्थीके जीवनका क्या उद्देश्य होना चाहिए?

जिन लोगोंने मनुष्यके जीवन पर विचार किया है वे सब इस बातपर सहमत हैं कि बहुधा मनुष्य किसी वस्तुकी इच्छा करके उसके लिए उद्योग करते हैं किन्तु परिणाम उसके विपरीत होता है। क्योंकि प्रकृतिकी कोई शक्ति ऐसी नहीं जो पूरी तरह हमारे आधीन हो बहुतसी ऐसी शक्तियाँ हैं जो लगातार अपना कार्य किए जाती है परन्तु कभी कभी हमारे कामोंमें बाधा डाल देती हैं। इस कारणसे कभी कभी जिस कामके लिए मनुष्य उद्योग करता है उसीके विपरीत परिणाम दृष्टिगोचर होता है। यही चीज है, जिसने दैव, भाग्य, और लाचारीके खयालको लोगोंके दिलोंमें दृढताके साथ बिठा दिया है। जितनी ही लोगोंको अपने इरादो और कामोंमें सफलता होती जाती है उतना ही उनका उत्साह और कार्यसम्पादनका शौक बढ़ता जाता है। मानवी शक्ति और बुद्धि पर उनको एक प्रकारका भरोसा होता जाता है और उनका जीवन संसारके अनुकूल होता जाता है। परन्तु

जब कामोंमें हानि पर हानि होती है, उद्योग और परिश्रम अपना फल नहीं दिखाते या यह कि मनुष्य ऐसी बातोंके लिए उद्योग करता है जिनका प्राप्त करना सम्भव नहीं, तो अपनी शक्ति और मानवी बुद्धि पर भरोसा कम होते होते उसको इस बातका श्रद्धान हो जाता है कि मनुष्य एक कलके समान है। अपनी ओरसे अधिक उद्योग और परिश्रम करना व्यर्थ है। वह भाग्यका उपासक होकर एकान्त-वास करने लगता है और या तो जीवनकी कठिनाईयोंको संतोष-पूर्वक सहन करता है या भाग्यको उलहना देता है। उद्योग और परिश्रम उसके लिए ऐसे शब्द हैं जिनका मनुष्यसे कुछ सम्बन्ध नहीं। जब यह विचार जातिके उच्च पुरुषोंके दिलोंपर अधिकार कर लेता है तब लोगोंकी मानसिक और मस्तकसम्बन्धी उन्नतिमें शिथिलता पैदा हो जाती है। जीवनकी घटनाओंसे उन्हे कुछ रुचि नहीं रहती। संसारसे उनको इतना भी सम्बन्ध नहीं रहता जितना ज्योतिषियोंका तारागणके भ्रमणसे रहता है।

यदि पूर्ण उद्योग करने पर भी निराशा हो जाती है तो उत्तम मनुष्य तो एक प्रकारकी निद्रामें अचेत रहते है—उनका दूसरों पर कुछ असर नहीं पड़ता और यदि पड़ता है तो केवल इतना ही कि और लोग भी उनके समान ध्यानस्थ होना चाहते हैं। हां, साधारण मनुष्य जो न तो तत्त्वज्ञानी हैं और न जगतके रहस्यसे परिचित हैं, ससारिक कार्योंमे लगे रहते हैं और उनकी दूरदर्शिता और उनका साहस जो कुछ हो केवल इतना ही है कि जो कुछ उनके बापदादा करते आए हैं धीरे धीरे अवकाश मिलने पर उन्हीं कामोंको किए जाऐं। जगतकी गतिको वे स्थिर समझते है। बुराई, भलाई, पुण्य, पाप, धर्म, अधर्म आदि उनकी सब चीजे एक स्थान पर खड़ी रहती है। अंतर

केवल इतना होता है कि चूँकि वे कोई क्रिया नहीं करते इस कारण उनकी सब चीजें सड़ती जाती हैं और उनकी दशा धीरे धीरे खराब होती जाती है।

यही विचार नवयुवकों पर भिन्न भिन्न प्रभाव डालता है। उनके निकट भी उत्तम संकल्प और दृढ विचार निरर्थक वस्तुएँ हैं। अतएव वे वर्तमान समयको ही धन्य समझते हैं। न वे किसी धर्मका पालन करते हैं, न ज्ञान और सिद्धान्तका उनपर शासन है और न वे किसी रीतिरिवाजको मानते हैं। अतएव न तो उनके जीवनका कोई उद्देश्य होता है और न उनका कोई आदर्श होता है जो सदैव उनके सम्मुख रहे। जो वात किसी समय उनके मनमें आई, चाहे वह सच्चरित्रताके अनुसार अच्छी हो चाहे वुरी, संसारको उपयोगी हो अथवा हानिकारक, उचित हो अथवा अनुचित, वे उसे तत्काल कर डालते हैं। उसके परिणामपर विचार करना तो वडी वात है, वे यह भी नहीं जानते कि परिणाम कोई वस्तु भी है या नहीं। निन्द्य पुरुषोंपर इस विचारका यह प्रभाव पड़ता है कि वे अपनी दशाके सुधारनेको एक व्यर्थ वात समझकर केवल अपने जीवनको सुख चैनसे विताना चाहते हैं। उनकी रायमें श्रमसे और धीरे धीरे अपने कर्तव्यका पालन करनेसे कष्टके सिवा और कुछ फल नहीं होता। इच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए जो मार्ग उन्हे सबसे सरल जान पड़ता है वे उसे ही ग्रहण करते हैं। गरज यह कि श्रम और उद्योगसे उत्तम और उपयोगी फल प्राप्त करनेका विचार जिस समय मनुष्योंके दिलोंमेंसे निकल जाता है उस समय जो परिणाम होता है वह वड़ेसे लेकर छोटे तक सबके लिए हानिकारक है। मनुष्य एक विचित्र कलकी तरह चल रहा है, इस विचारके अनुसार कार्य करनेसे वास्तवमे मनुष्य एक विचित्र कल हो जाता है।

परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उसके मनकी इच्छाएँ, उसके दिलकी उमगे, सुधार और उन्नतिके विचार, दूसरोंका दुख दूर करनेकी अभिलापा, आदर, सन्मान अथवा धनप्राप्तिकी आशाऐं सब घुलकर नष्ट हो जाती हैं। असफलता उसके मनको मुरझाकर मानवी उद्योगको निरर्थक सिद्ध करती हैं। इसी भावको कवियों और बुद्धिमानोंने सैकड़ो स्थानोपर बड़ी उत्तमतासे पुष्ट किया है। ऐसी ही निराशा प्रायः उन लोगोको होती है जो अपनी सतानको, अपने सम्बन्धियोंको अथवा अपनी जातिको एक अभिप्रायसे शिक्षा दिलवाना चाहते हैं परतु जो परिणाम होता हैं वह यदि विपरीत नहीं तो उससे भिन्न अवश्य होता है। कुछ लोग अपने बच्चोंको केवल इस लिए शिक्षा दिलाते है कि वे धर्मशास्त्र पढ़कर बड़े धर्मज्ञ और धार्मिक नेता हो जाएँ; परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि वे बालक बड़े होकर महान् धूर्त और पापी निकलते हैं। बहुतसे मनुष्य अपनी सतानको अँगरेजी इसलिए पढ़ाते हैं कि लड़का पढ़ लिखकर रुपया पैदा करेगा और मा बापकी सहायता करेगा; किन्तु परिणाम यह होता है कि वह उनकी सहायता तो क्या करेगा उल्टा कभी कभी स्वयं उनपर भार हो जाता है। किसी किसी की यह इच्छा होती है कि मेरे लडके अँगरेजी पढ़ लें जिससे उनकी अँगरेजो तक गति हो जाए और उनके सहारेसे हमारा घराना उन्नति करे; परन्तु सम्भव है कि लड़केको इस प्रकारके व्यवहारसे घृणा हो जाए। हमारे इस बातके कहनेका अभिप्राय यह है कि जो उद्देश्य मातापिता अथवा अध्यापक या शिक्षाप्रेमी शिक्षासे रखते हैं वह बहुत कम सिद्ध होता है। वास्तवमें वह उद्देश्य शिक्षाका होना ही न चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक मनुष्यका शिक्षा दिलानेसे कोई मुख्य अभिप्राय जरूर होता है। एक

विकालतके लिए पढ़ता है, दूसरा डाक्टरीके लिए, तीसरा अध्यापकीके लिए, चौथा जमींदारीका प्रवन्ध करना चाहता है, पाँचवाँ अपनी शिक्षासे व्यापारमें लाभ उठाना चाहता है। ऐसे ही और बहुतसे काम हैं। जनसाधारणका यही विचार है कि विद्यार्थीके जीवनका यही उद्देश्य है कि वह अधिक धन और मान प्राप्त करे। यह उद्देश्य प्रारम्भसे विद्यार्थीके इतना सन्मुख नहीं रहता जितना उसके माता पिताके।

अब प्रश्न यह है कि आजीविकाका प्राप्त करना विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य होना चाहिए या नहीं?

(२)

इसमें संदेह नही कि विद्यार्थीको पढ़ते समय यह खयाल बहुत कम होता है कि जो कुछ मैं पढ़ता हूँ अथवा सीखता सोचता या लिखता हूँ उसका असली अभिप्राय यह है कि मेरे घर इतना सोना चाँदी हो जाए अथवा इतना माल असबाब जमा हो जाए; परन्तु मातापिताके दिलोंमें इसका विचार शुरूसे मौजूद रहता है। इसका कारण यह नहीं कि वे स्वार्थी अथवा लोभी है। सम्भव है कि किसी दशामें यह वात हो; किंतु प्रायः ऐसा होता है कि जवान बूढ़ोंकी अपेक्षा, पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा और धनवान निर्धनोकी अपेक्षा अधिक स्वार्थी होते हैं और अपने थोडे सुखके लिए दूसरोंके अधिक सुखकी कुछ परवा नही करते। किन्तु इसका कारण यह हैं कि उन्होंने ससारमें अत्यंत शोकप्रद अनुभवके पश्चात् रुपयेका मूल्य और सासारिक धनकी आवश्यकताको समझा है। वे जानते है कि सबसे ज्यादह जरूरी चीज दौलत। है इसके विना क्या विद्या, क्या धर्म, क्या उत्तम विचार, क्या शुभ सकल्प सब तुच्छ है।

वे यह भी देखते है कि अनेक व्यक्ति जो कल उनके समान थे, विद्याके कारण दिन दिन धन और सन्मानमें उनसे आगे बढते चले जाते है। इसलिए वे भी सोचते है कि जिस लाभसे अर्थात् शिक्षासे हम वंचित रहे हैं, हमारी सन्तान उससे वंचित न रहे। उनको आशा है कि विद्याकी कृपासे हमारे पुत्र भी जगत्‌रूप नाटकशालामे बहुतोको धकेल कर आगे बढ जावेंगे। इसी कारण जब शिक्षासे कोई यथोचित आर्थिक लाभ नहीं होता तो ऐसे मातापिताओंको जो निराशा होती है वह स्वाभाविक है और इस कारण उनपर दूषण लगाना और उनको तुच्छ स्वार्थी कहना असभ्यता ही नही किन्तु मूर्खता भी है।

अतएव प्रत्येक विद्यार्थीका कर्तव्य है कि यदि उसके कुटुम्बका पालनपोषण उसपर निर्भर है और मातापिताको उसी सहारेकी आशा है, तो जिस योग्य रीतिसे हो सके उनका और अपना निर्वाह करनेका उद्योग करे। इसके सिवा यह कहना भी ठीक है कि प्रत्येक व्यक्तिकी आर्थिक उन्नतिसे सम्पूर्ण समाजकी उन्नति होती है। यद्यपि आजीविकाकी खोज करना उसका कर्तव्य है किन्तु विद्यार्थी होनेके कारण केवल धन प्राप्त करने अथवा आजीविकाकी खोज करनेको जीवनका उद्देश्य बनाना विद्यार्थीका ही नहीं किन्तु मनुष्यका भी अनादर है। विचार कीजिए कि आजकल जगत्‌में विद्याका कितना आन्दोलन है। कितने शास्त्रोंकी प्रतिदिन रचना होती है। कौन कौनसे सिद्धान्तोका महत्त्व स्थापित होता जाता है। यदि इन तमाम बातोंका कारण धनप्राप्ति ही है तो धिक्कार है! उस विद्यार्थीकी दशा शोचनीय है जो माघ और कालिदासके ग्रंथोंका अवलोकन करता है, सादी अथवा उमरख्यामके उच्च विचारोंको दृष्टिके सामने रखता है, शेक्सपियरके नाटकों ओजस्विनी कविताओं, अकलातून और केटके सिद्धांतोंसे

लाभ उठा रहा है परन्तु इनके साथ ही यह खयाल करता जाता है कि इन सबका तात्पर्य यह है कि मेरे पास इतने रुपये आएँगे, मैं अच्छे अच्छे कपडे पहनूँगा, गाडीपर सवार होऊँगा और उच्चाधिकारियोंसे हाथ मिलाऊँगा। यदि कोई मनुष्य ऐसा नीच और मूर्ख हो जो ऐसे विचार रखता हो तो उसको इसके सिवा और क्या कह सकते हैं कि रे मूर्ख, तू तोल लिया गया, तू वजनमे कम निकला।

सार यह है कि धनप्राप्तिके लिए अपने जीवनको अर्पण कर देना तुच्छ उद्देश्य है। विद्यार्थीका यह उद्देश्य कदापि न होना चाहिए।

धन प्राप्त करना एक ऐसा काम है कि इसपर बहुतसी व्यक्तिओंका सुख और आजीविका निर्भर है। अतएव यदि केवल अपने सम्बन्धियोके लाभके लिए आवश्यकतासे अधिक भी धनप्राप्त किया जाए तो प्रशसनीय है किन्तु सब चीजोको छोडकर धनको ही अपना रक्षक तथा आराध्यदेव समझना एक प्रकारका पाप है।

जिस तरह धन प्राप्त करना विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य नहीं हो सकता, उसी तरह भोगविलासोंकी प्राप्ति करना भी उसका उद्देश्य न होना चाहिए। इनसे पृथक् रहना ही उसका सर्वोपरि धर्म है। यदि कोई ऐसी वस्तु है जो विद्यार्थीके साथ कदापि नहीं रहनी चाहिए तो वह भोगविलासकी इच्छा है। यह इच्छा देखनेमें बिलकुल मामूली जान पड़ती है किन्तु यह एक ऐसी जड है जिसकी शाखाओंसे असख्यात अवगुण नित्य निकलते हैं। मै नहीं समझता कि लोग किस कारणसे इस बातको सम्भव समझते है कि विद्यार्थीके साथ साथ आराम-तलबी भी रह सकती है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनके लिए और विशेष कर विद्यार्थीके लिए आरामतलबीसे बढकर कोई हानिकारक वस्तु नहीं। आरामतलबी अधिकतर धनवानोंके पुत्रोंमे पाई जाती

है। इसका परिणाम केवल यह ही नहीं होता कि मनुष्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकता किंतु और बहुतसी बातोंमें असफलीभूत होता है। वह प्रायः खानेपीने और रहनेसहनेमे दूसरोसे बढ़ चढ़कर खर्च करता है और रातदिन अपने यहाँ मूर्खों और अशिक्षितोंकी मंडली जोड़े रहता है। इस मडलीमें या तो वे लोग होते हैं जिनको सोसायटीके नियमोंने आज्ञा दे दी है कि विना श्रम किये लोगोके रुपयेको जिस तरह चाहे खर्च करें और अपने सुखके लिए दूसरोंके कष्टोकी कुछ भी चिंता न करें, या वे लोग होते है जो निर्धन है किन्तु सुखप्राप्तिके लिये अपव्यय करते हैं, या वे लोग होते है जो दरिद्र होनेपर भी ऐसे धनवानोंकी मूर्खतासे लाभ उठाते है और उनके संग रहकर उनको बुराइयोंमे दृढ़ करते जाते है। ये तीन प्रकारके मनुष्य विद्यार्थियोंके समूहसे बाहर है; परन्तु ये विद्यार्थी समझे जाते है, इस कारण इनका इनके साथियोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

विद्यार्थियोंमें चाहे वे किसी जाति अथवा किसी धर्मके हो, धनवान् हो, अथवा दरिद्री हों, बहुमूल्य रेशम मखमलके वस्त्र पहिने हो अथवा गाढ़ेगजीके लपेटे हों, किसी प्रकारका पक्षपात न होना चाहिए सबको समान दृष्टिसे देखना योग्य है। धर्म, कुल, जाति, घर, सम्पदाका कुछ भी विचार न करना चाहिए। जिन वस्तुओंके अभाव अथवा सद्भावका विद्यार्थियोंके श्रम और उद्योगसे कोई सम्बन्ध नहीं, उनके कारण कुछ विद्यार्थियोका अधिक आदर करना और कुछका कम, यह अति निन्धनीय है। कोई सभ्य पुरुप ऐसा नहीं कर सकता। केवल दो बाते हैं जो हर समय और हर स्थानपर देखना चाहिए। एक भलाई और दूसरी योग्यता। ये ही दो चीजे हैं जिनको मिस्टर बर्कने कहा है कि 'हर जगह बड़ाई देनी चाहिए।' अतएव

विद्यार्थियोंमें इन दो बातोंके कारण तो बड़ाई छुटाई होना आवश्यक है। इनके विना विद्यार्थीमें उन्नतिकी इच्छा होना कठिन है; पर इनके अतिरिक्त अन्य बातोमे समानता होना जरूरी है। जिन लोगोका इस ओर ध्यान नही है वे शिक्षा और सभ्यतासे अपरिचित हैं।

अभी तक तो हमने उन बातोंका जिक्र किया है जिन्हे विद्यार्थियोंको अपने जीवनका उद्देश्य नहीं बनाना चाहिए; पर अब प्रश्न यह है विद्यार्थीके जीवनका क्या उद्देश होना चाहिए। केवल सभ्य और शिक्षित सृष्टिमे ही नही किन्तु, अशिक्षित देशोंमें भी विद्यार्थीका जीवन एक विशेप उद्देश्यके लिए निर्णीत होता है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि विद्या क्या वस्तु है और क्या क्या विद्या किस किस अवस्थामे पढ़ना योग्य है, परन्तु यह बात सब जानते और मानते है कि हर प्रकारकी शिक्षाका अभिप्राय केवल एक होता है। वह मानवीय उन्नति है। मानवीय उन्नति कोई सन्देहजनक बात नहीं। ऐसें पुरुप बहुत कम होंगे जिन्होंने वह अवस्था न देखी होगी जब किसीके घर पुत्र उत्पन्न होता है तो मातापिताके मनमें अकथनीय अपार आनन्द होता है; परन्तु इतना प्रेम होनेपर भी वे बहुत थोड़ी ही अवस्थामें उसपर जीवनका भार डाल देते है। हमारे देशमें तो ३, ४ वर्षकी उमरमें ही उन्हें पाठशालादिमे बिठा देते हैं। यद्यपि ऐसी अवस्थामें शिक्षा देना अत्यन्त हानिकर है। कमसे कम ६, ७ वर्प तक घर ही धीरे धीरे मातापिता द्वारा शिक्षा होनी चाहिए; किन्तु इससे इतना अवश्य जान पडता है कि मातापिताकी यह इच्छा होती है कि यथासम्भव उनकी सन्तानकी दशा अच्छी हो। इस कारणसे मैने कहा है कि शिक्षाका अभिप्राय सदा उन्नत होता है। चाहे यह शिक्षा स्कूलमे दी जाए, चाहे पाठशालामें और चाहे घरपर। अतएव विद्यार्थीके जीवनका

मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रतिदिन अपनी मानसिक और मस्तकसम्बन्धी शक्तिमे वृद्धि करे। परन्तु प्रत्येक मनुष्यके अधिकारमे यह बात नहीं है कि वह बड़ा विद्वान्, तत्त्ववेत्ता अथवा शिक्षक हो। ससारके और बहुतसे कार्य भी हैं जिनके करनेमें उसके समयका बडा भाग व्यय होगा; परन्तु अपनी दशा सुधारनेका ऐसा काम है जिसको मनुष्य हर समय पूरा कर सकता है। हॉ, यह जरूर है कि कोई विद्यार्थी अपनी दशाको नहीं सुधार सकता और न दूसरोपर उसका कोई उत्तम प्रभाव ही पड़ सकता है जबतक कि वह दृढताके साथ इस बातका उद्योग न करे कि जीवनकी कठिनाइयोमे अपने चरित्रको बनाए रक्खूॅ और अपने कर्तव्यका भली भॉति पालन करता रहूॅ। उन मनुष्योंको विद्यार्थी सज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती जो गम्भीरतासे अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते और अपने समयको एक अमूल्य धन समझनेके बदले व्यर्थ कार्योंमे खर्च करते हैं।

यदि विद्यार्थी अपने छिछोरपन, असभ्यता और आलस आदि बुरी वासनाओंको धीरे धीरे दृढताके साथ दूर न करे और आशा यह रक्खे कि ज्यों ज्यो समय बढ़ता जायगा मेरी दशा सुधरती जायगी तो वह उस किसानके सदृश हैं कि जो खेतमें काटे और घास बोता है और आशा रखता है कि आप ही आप उत्तम फल, उसमें फल आऍगे।

बहुतसे लोग है जिनको न अपने कर्तव्यका विचार है, न वे मानसिक अथवा मस्तकसम्बन्धी उन्नति करते है और न उनमें वे उत्तम गुण है जिनसे मनुष्य मनुष्य कहलानेके योग्य होते है। उनका विद्याप्राप्ति अथवा उन्नतिकी अभिलाषा करना मातापिताके लिए एक धोखा है, सोसायटीका एक अपराध है और देशके लिए हानिकर है। जो नव-

युवक बजाए इसके कि जी तोड़कर परिश्रमके और स्वाध्यायादिमें अपने समयके उत्तम भागको व्यय कर अपना समय केवल खेलकूद और भोगविलासमें व्यय कर देते हैं वे अपने ही लिए हानिकर नहीं, किंतु अधिकतर उनके लिए होते हैं जो बेसमझ होते हैं और अल्पावस्था या अल्पबुद्धिके कारण सरलमार्गको ग्रहण कर लेते हैं। उनमें विचारशक्ति नहीं होती। इसकारण सर्व साधारण और बेसमझ लोग जिन कामोंको प्रसिद्धि और प्रतिष्ठाका कारण समझते हैं उनका ही ये विद्यार्थी अनुकरण करते है। अतएव सच्चरित्रता और योग्यताका उत्तम आदर्श स्थापित करना, अपने साथियोंके सुधारकी चिन्ता करना और जीवनके असंख्यात कष्टों और दु खोंका वीरतासे सामना करना ऐसा काम है जिसका परिणाम करनेवालेके लिए कुछ विशेष लाभदायक नहीं होता। जो मनुष्य विचारशील हैं वे तो सदा उसका आदर करते हैं परन्तु जो बेसमझ हैं उनमें जितनी बुद्धि और ज्ञान बढता जाता है उतनी ही ऐसे मनुष्योंकी प्रतिष्ठा बढती जाती है। यदि जन साधारण और अविवेकी पुरुष उसके कामोंको न समझें और इस लिए उसे कष्ट दें अथवा उसका विरोध करें तो उससे दुखी होना एक अवगुण है। जिन मनुष्योंकी सम्मति आदरणीय है उनकी दृष्टिमें तुच्छ होना ही वास्तवमें शोकप्रद है, किन्तु जो मनुष्य उत्तम गुण और उच्चावस्थाके जीवनसे अपरिचित हैं उनकी दृष्टिमें बुरा होना अच्छा होनेकी दलील है।

शायद महात्मा सुकरातका कथन है और स्टोक सम्प्रदायके विद्वान् भी इसका पालन करते थे कि रात्रिको सोते समय दिन भरके कामोंपर दृष्टि डालनी चाहिए और बुरे कामों व अच्छे कामोकी परीक्षा करनी चाहिए। यही स्वभावका बड़ा संशोधन है। सारांश, विद्यार्थीका जीवन

एक सीढ़ीके समान है जिसपर वह प्रति दिन चढ़ता है। अतएव जो मनुष्य इस सीढ़ी पर नहीं चढ़ता वह विद्यार्थी नहीं है। कभी कभी विद्यार्थियोंको यह बाधा भी होती है कि जो लोग उनकी दशाके निरीक्षक और उनकी शिक्षाके उत्तरदाता है वे ऐसी बातोंको पसंद करते है जिनसे विद्याका वास्तविक तात्पर्य नहीं निकलता। वे उन बातोंको नापसद करते है जिनसे विद्यार्थियोंमें असली योग्यता प्राप्त होती है। ऐसी दशामे यह काम अत्यन्त दृढता और वीरताका है कि मनुष्य अपने विचारो पर स्थिर रहे। उसे चाहिए कि अपनी सम्मतिको दूसरोकी इच्छाके आधीन न करे और जो बात उसने अच्छी तरह विचार कर स्थिर कर ली है उसे अपनेसे बड़े आदमियोको खुश करनेके लिए त्याग न करे। पहले कहा है कि विद्यार्थी उस समय तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसमे विचारशक्ति और गम्भीरता पैदा न हो। जीवनके वर्तमान अभ्यास मनुष्यके शेष जीवन पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। यदि विद्यार्थीकी दृष्टि दीर्घ और विचार उच्च न हो तो वह भी लाखों मनुष्योके समान पशुवत् जीवन व्यतीत करेगा और शिक्षासे उसके जीवन पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा; बल्कि यह कहना चाहिए कि वह शिक्षासे वञ्चित रहेगा। हम पूर्वमे कह आए हैं कि वास्तवमें विद्याका यह अभिप्राय है कि मनुष्य इस बातको भली भाँति समझ ले कि मुझे किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना है। उन तमाम कठिनाइयोंके सामना करनेकी शक्ति उसमे पैदा होनी चाहिए जो प्रत्येक मनुष्यके सामने है। जो सम्बन्ध उसको अपने कुटुम्बियो सम्बन्धियों, जाति या पड़ोसियोंसे है उसकी पूर्तिमें यदि उसे सफलता न हुई अर्थात् स्वार्थ अथवा अज्ञानताके कारण यदि वह अपने कर्तव्यका पालन न कर सका तो उसकी शिक्षा अपूर्ण है, वह असभ्य है और उसका

जीवन व्यर्थ है। यदि उसने यह समझा कि मैं कुछ नहीं कर सकता तो वह कुछ भी न कर सकेगा; किन्तु यदि वह अपना कर्तव्यपालन करनेके लिए तत्पर हो तो उस काममें अवश्य उसे सफलता होगी।

गरज यह कि विद्यार्थीके जीवनके कार्य बड़े कठिन है। उससे आशा की जाती है कि वह परिश्रम और उद्योगसे विद्योपार्जन करे, अपनेमें विचारशक्ति उत्पन्न करे और मनुष्यके स्वभावसे भली भाँति परिचित हो। केवल यह ही नहीं है, किंतु अपने विचारोंसे उन मानवीय गुणोंको प्राप्त करे जिनका प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यके लिए सम्भव है। बहुतसी व्यर्थ बातोंको जिनकी अल्पावस्थाके कारण इच्छा होती है एक हद्दतक रोकना पड़ता है। सभ्यता और सच्चरित्रताके नियमोका पालन करना सबके लिए आवश्यक है, परन्तु उससे आशा की जाती है कि शिक्षाकी कृपासे उसमें उसके पूर्वजोकी अपेक्षा अधिकतर गम्भीरता पैदा हो और वह उचित कार्य्य करे। विद्यार्थियो, तुमसे यह भी आशा की जाती है कि जब ससारिक कार्योंके करनेका तुमको अवसर मिले तो तुम पूर्ण स्वतंत्रता और दृढ़तासे अपने उत्तम विचारोंका प्रकाश करो।

जो आज विद्यार्थी है वह कलको एक पुराधिकारी होगा। यदि उसको आत्मोन्नति अथवा समाजोन्नतिकी चिन्ता न होगी तो उसमें और सकुचित हृदयवाले अशिक्षित मनुष्योंमें कुछ भी भेद न होगा। सम्पूर्ण समाज उसकी ओर टकटकी बाँधकर देख रहा है। भावी आशाएँ उसपर निर्भर है। लाखों करोड़ो जीव जो नानाप्रकारके असह्य दुःख सह रहे हैं और जिनको अपनी उन्नति करनेका कोई अवसर नहीं मिलता, वे हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना कर रहे हैं कि उस कर्त्तव्यका पालन कर जो एक भाग्यशाली भ्राताके सिरपर अन्य

दुखी जनोंकी सहायता करनेका होता है। यह विद्यार्थी सहस्रो उपाय करता है कि यह बोझ उसपरसे उठा लिया जावे। आजीविकाकी चिन्ताका बहाना भी करता है; परन्तु अच्छी तरह जानता है कि कैसा ही परिश्रम मनुष्य करता हो फिर भी उसको सदा समय मिल सकता है कि अपनी उन्नतिके साथ साथ परोन्नतिके लिए भी थोड़ा थोड़ा समय व्यय करे। वह परिश्रमसे जी चुराता है और शिक्षाकी कठिनाइयोके सम्मुख कायरतासे सिर झुका देता है। जब उससे कहा जाता है कि उस आशाको पूरी क्यों नहीं करता जो उसके विषयमे की गई थी तो यद्यपि वह मनमें अच्छी तरह जानता है कि मैंने असली शिक्षा नहीं पाई किन्तु अपनी अज्ञानतासे इन सब आशाओं व विचारोको व्यर्थ समझकर वैसा ही निरुद्देश जीवन व्यतीत करता है जिसके सुधारके लिए ही शिक्षा प्रारम्भ की गई थी। वह किसी भाषाके बुरा भला लिखने पढ़ने अथवा कतिपय सर्टीफिकटोंकी प्राप्तिसे शिक्षाकी इतिश्री मानता है और सदा यह उद्योग करता है कि जिस तरह हो परिश्रम करके लोगोंको यह धोखा दे कि मेरी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी हुई है। उसके आगे और पीछे कर्त्तव्य हैं। यही कर्त्तव्य उसके दाएँ बाएँ है। हर तरफसे वह जकड़ा हुआ है किन्तु वह अपने आवश्यकीय कामोको भूलना चाहता है और अपनी जंजीरके तोडनेकी चिन्तामे रहता है। अन्तमें इसी गड़बड़मे वह अज्ञानता और अपमानके भयकर भॅवरमे गिर पड़ता है। उस समय उसको पशुवत् स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है अर्थात् वह अज्ञानताके बंधनमे पड़ जाता है। परन्तु मानवीय स्वतन्त्रता—जिसके अर्थ अपने आपको वशमे करना, जीवनके कर्तव्योका पालन करना और सदा आगे बढ़े जाना है—उसमेंसे नष्ट हो जाती है।

इस विषयमे हमने अधिकतर यह कहा है कि शिक्षाका उद्देश्य और उसका अभिप्राय यही होना चाहिए कि वह हमको एक सभ्य, सुशिक्षित पुरुष बनाए—जिससे हम अपने कर्तव्यपालनके लिए कटिबद्ध हों और उन सर्व उत्तम गुणोसे—जिनका होना मनुष्यमें सम्भव है—विभूषित हो। शिक्षाका उद्देश्य और विद्यार्थीकी दृष्टि केवल बहुतसी बातोंके सग्रह कर लेने और बहुतसी कठिन समस्याओंके हल कर लेने तक ही नहीं होना चाहिए। सारांश, जो शिक्षा विद्यार्थीको मनुष्य न बनाए वह शिक्षा कदापि शिक्षा कहलानेके योग्य नहीं है। जो कुछ हमने पढा और सोचा है तदनुसार करनेकी शक्ति और कार्यतत्पर होनेका उत्साह और जीवनकी आवश्यकताओंको उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेकी योग्यताका होना भी आवश्यक है। इस बातपर जहाँ तक जोर दिया जाए थोड़ा है। परन्तु इसके साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि विद्यार्थी अवस्थाका प्रारम्भिक और वास्तविक उद्देश्य यही है कि हम अपनी शक्तिको बढ़ावे और उत्तम विचारोंसे अज्ञानता और मूर्खताका परदा अपने ऊपरसे उठा दें। जो मनुष्य तुमसे यह कहे कि तुमको बड़ा विद्वान् बननेकी आवश्यकता नहीं, कोई जरूरत नहीं कि तुम कालिजो और यूनीवर्सिटियोंसे डिगरियाँ लेकर निकलनेका उद्योग करो, क्यों व्यर्थमे पुस्तकोके कीड़े बन रहे हो? उनकी बातको शांति और धैर्यके साथ सुन लेना चाहिए परन्तु तुममें जो बुद्धि है उससे भी तो काम लो। तुम्हे सोचना चाहिए कि वे तुमसे क्या चाहते हैं और तुम कहाँ तक उनकी शिक्षा मान सकते हो।

आजकल कुछ लोगोकी यह आदत हो गई है कि वे मानसिक और मस्तकसम्बन्धी शक्तिके बढ़ानेके विषयमे असावधान ही नहीं है

किन्तु उस असावधानीपर अभिमान भी करते है और हमसे यह आशा करते है कि हम भी उनकी प्रशसा करें। कौन कहता है कि हमारा सभ्य और सत्यप्रिय बनना विद्वान् बननेसे भी ज्यादह जरूरी नहीं है? कौन नहीं जानता कि केवल विद्याकी पूर्णतासे संसारिक कार्य नहीं चल सकते; परन्तु दुहाई परमात्माकी, ऐसा विचार तो हममें पैदा न करो जिससे हम विद्याको ही तुछ दृष्टिसे देखने लगें और जो व्यक्ति हमसे अधिक विद्वान् और बुद्धिमान् हैं उनको हम अपनेसे तुच्छ समझने लगे। इस प्रकारकी मूर्खतासे क्या लाभ है? सभ्यता, सुशीलता आदि उत्तम गुण एक विद्वान् मनुष्यमें भी वैसी आसानीसे पैदा हो सकते हैं जैसे उन मनुष्योंमें जिनको ये महाशय पसंद करते है—बल्कि असली सभ्यता और सच्चरित्रता उच्च शिक्षाके विना एक तरहसे असभव है। हम यह सुनकर आश्चर्य करेंगे; परन्तु विचार कीजिए कि चरित्रसम्बन्धी गुणोंको कौन समझ सकता है। क्या वह व्यक्ति जिसका मस्तक विद्या और तत्त्वोंसे शून्य है? भूत अवस्थाकी घटनाओंसे कौन पुरुप शिक्षा ग्रहण कर सकता है? इतिहास और सम्पत्ति-शास्त्रके स्वाध्याय करनेवालोंने सोच विचारके बाद जो फल निश्चय किया है उसको जीवनकी दैनिक घटनाओंपर कौन घटित कर सकता है? क्या वे जो इन विद्याओंसे शून्य हैं या वे जो इनसे अपरिचित हैं? सबसे आसान और साफ बात यह है कि जब तक मनुष्यका मस्तक उच्चावस्थापर न पहुँच जाय, तब तक यह उसकी समझमे नहीं आ सकता। यह बात जानते हुए भी विचार-शक्तिकी असावधानी करना मानो अपनी शिक्षाकी जड़को काट डालना है। विशेष कर समाजकी ऐसी अवस्थामे जिसमें हम रहते हैं और जहाँ विद्योन्नति, बुद्धि वृद्धि अभी प्रारम्भिक दशामें ही हैं, इस प्रकारकी शिक्षासे लाभ कम और हानि अधिक होगी। यह

भी प्रत्यक्ष है कि एक नवयुवकको इस बातका समझा देना कि वह अति उत्तम पुरुष है और सारे सद्गुण उसमें एकत्रित है, कुछ कठिन नहीं। उसके जीमें यह बात बिठा देना कि मस्तकसम्बन्धी शक्तिकी बढ़तीके लिए परिश्रम करना व्यर्थ है फिर भी वह अपनेको विद्यार्थियोंसे उत्तम ही समझे कुछ कठिन नहीं; परन्तु हमको उचित है कि हम इस व्यर्थ पागलपनसे बचें।

अन्तमें यह और कह देना चाहता हूँ कि हमको इस बातका खयाल रखना जरूरी है कि जब हम शिक्षासे निर्वृत्त हो और हमारी विद्यार्थी अवस्था समाप्त हो, उस समय शिक्षाका कोई न कोई विशेष फल हममें अवश्य पाया जाना चाहिए जो साधारण जनोंमे न पाया जाय। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि शिक्षित जनोंमे अन्य मनुष्योसे कोई भिन्नता प्रतीत हो। यह तो अत्यन्त घृणित है। हाँ, मेरी इच्छा यह जरूर है कि हम उन मनुष्योंकी तरह न हो जायें जो देखनेमे उत्तम शिक्षा पाये हुए हैं; परन्तु उनसे संभाषण कीजिए, उनके पास रहिए, उनके विचार सुनिए और उनके अभ्यास और चरित्रपर दृष्टि डालिए तो कठिनाईसे उनमें और अत्यन्त संकुचित विचारवाले मूर्ख लोगोंमें कोई भेद होगा। शिक्षाके प्रचलित सिक्कोंमें ऐसे खोटे सिक्के भी आपको बहुत मिलेंगे, परतु उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। ऐसे मनुष्य जिनके हृदयोंमे उत्तम विचारोने प्रवेश ही नहीं किया, जिनके दिलमें असली शिक्षाका महत्त्व ही स्थापित नहीं हुआ, आपको प्रतिदिन मिल सकते हैं। हमारी यही प्रार्थना होनी चाहिए कि हम उनके समान अपनी जातिके हानिकर सदस्य न हों और शिक्षाको कलंकित न करें।*

—दयाचन्द गोयलीय, बी. ए.

* आनरेबल मौल्वी खुवाजा गुलामुस्सकलीन बी. ए एलएल. बी केम्ब्रिज प्राइज स्पाकीकर, लॅसिडोन मेडलिस्टके उर्दू लेखका अनुवाद।

जैनइतिहासकी दुर्दशा ।

आलस्य-निद्रामें सोये हुए जैनियोंको अब यह प्रतीत हो चला है कि सर्वश्रेष्ठ जैनजाति उन्नतिके शिखरसे गिर कर अवनतिके गढ़ेमे पहुँच चुकी है । प्रिय बंधुओ, यदि तुम्हें अपनी प्राचीन श्रेष्ठता और सभ्यताका भलीभाँति कोई अनुभव करावे तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि तुम एक क्षण भी इस गढ़ेमें पड़ा रहना कदापि न सहन कर सकोगे; किन्तु इस अवनतिके बधनको एकदम तोड़कर उन्नति-शिखरकी ओर शक्तिपूर्वक गमन करनेको उत्कंठित हो जाओगे। क्या तुम अन्तिम तीर्थकर श्रीवर्द्धमान महावीरस्वामीका जीवनचरित्र भूल गये ? क्या तुमको नहीं याद कि उन्होंने स्वात्मकल्याण, और प्राणी-मात्रके हितके लिए कैसे कैसे कष्ट उठाये थे ? क्या तुमको नहीं माऌम कि जिस समय बौद्ध आदिक अनेक धर्मावलम्बी हमको हड़प जानेको कटिबद्ध थे और हमारा अस्तित्व ही मिटा देना चाहते थे, उस समय हमारे आचार्योंने हमारे धर्मकी कैसे रक्षा की थी और अनेक दिग्गज वादियोंपर विजय प्राप्त करके जैनधर्मकी विजय-पताका फहरायी थी ? क्या तुम भूल गये कि श्रीअकलङ्कदेवने बाल–ब्रह्मचारी रह-कर बौद्धोंके यहाँ विद्याध्ययन किया और अतमें उनका महत्त्व मिट्टीमें मिला दिया ? क्या तुम श्रीजिनसेनाचार्यके पाण्डित्यसे अपरचित हो ? क्या तुमने श्रीसमंतभद्र और श्रीमानतुङ्गका नाम नहीं सुना ? क्या श्रीरामचंद्र सरीखे धार्मिक महात्माओंका प्रभाव तुम्हारे हृदयसे सर्वथा ही उठ गया ? क्या तुमको अविदित है कि एक ऐसा भी समय था जब तुम्हारे पूर्वजोके प्रभावसे जैनधर्मका डंका भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक बज रहा था ? क्या तुम्हें इन बातोको मनन करते हुए भी यह प्रतीत नहीं होता कि तुम जिन महात्माओं और विद्ववरोकी

सन्तान हो उन्हींके नाम पर धब्बा लगा रहे हो? क्या तुम ऐसी अवस्थासे संतुष्ट हो?

प्रिय भ्राताओ, जरा दृष्टि पसार कर देखो तो सही, कि तुम्हें सर्व साधारण क्या कह रहे हैं; तुम्हारे उत्कृष्ट धर्मके विषयमें कैसी कैसी किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं? तुम्हारी हीनावस्थाके कारण तुम्हारे विषयमें सर्व साधारणका कैसा मिथ्या ज्ञान हो रहा है? तुम्हारे ऊपर कैसे कैसे आक्षेप हो रहे है किन्तु तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। जब तक तुम बडे जोरके साथ इन आक्षेपोंका निवारण न करोगे तब तक याद रक्खो कि तुम जैनधर्मका महत्त्व सर्व साधारण पर प्रकट करनेमें असमर्थ रहोगे और अतएव तुम्हारे भाई स्वात्म-कल्याण और वास्तविक सुखसे वञ्चित रहेगे। यदि तुम विचार करके देखो तो तुमको ज्ञात होगा कि ये आक्षेप दो प्रकारके हैं; एक तो तात्त्विक जो जैनधर्मके तत्त्वो अथवा सिद्धान्तोंसे संवध रखते हैं और दूसरे ऐतिहासिक जो जैनधर्मके प्रचारकों और अनेक आचार्यों, महात्माओं और राजा महाराजादिकोंके समय, राज्य इत्यादिसे सबध रखते हैं, किन्तु कुछ आक्षेप ऐसे भी है जो दोनों विभागोंमें गर्भित हो जाते है। दोनो ही प्रकारके आक्षेपोंका निवारण करना अति आवश्यकीय है। यहाँ पर मैं पहिले प्रकारके आक्षेपोंके विषयमें कुछ न कह कर ऐतिहासिक आक्षेपोकी ही चर्चा करूंगा और अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार उनके निवारणार्थ उपाय भी बतानेका प्रयत्न करूँगा।

आजकलके समयमें अन्ध-विश्वासकी परम्परा सर्वथा ही उठ गई है। आजकल बच्चे बच्चेके मुँहमें 'क्या,' 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्न सदैव उपस्थित रहते हैं। बीसवीं शताब्दिमें सर्व साधारणके सम्मुख सब बातें सप्रमाण उपस्थित करनी पड़ेंगी। भारतवर्षका प्राचीन इतिहास बड़े

अधकारमें पडा हुआ है और विशेष कर जैन इतिहासकी तो वड़ी दुर्दशा हो रही है। आजकलके इतिहासमर्मज्ञोंने भारतवर्षके प्राचीन इतिहासको चार बातोपर निर्भर कर दिया है.—

(१) वैदिक, वौद्ध और जैनधर्मसम्बन्धी पुराण जो कि विशेष कर सस्कृत, पाली, प्राकृत, आदि भाषाओंमें लिखे हुए है;

(२) अनेक भारतवर्षीय विद्वानोंके प्राचीन काव्य अथवा प्रामाणिक ग्रंथ;

(३) भारतभ्रमण करनेवाले विदेशी यात्रियोंकी लिखित पुस्तकें;

(४) प्राचीन इमारतें, शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के।

इनमेसे पुराणोपर तो लोगोंकी वहुत ही कम श्रद्धा है क्योंकि उनमे परस्पर वड़ा मतभेद मिलता है, और अंतिम प्रमाण अर्थात् शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि पर भारतवर्पके प्राचीन इतिहासका सबसे अधिक आधार रक्खा गया है। इसी आधार पर पुरातत्त्वान्वेषी महाराज विक्रमादित्यका अस्तित्व ईसाके ५७ वर्ष पूर्व (जैसा कि होना चाहिए) मानते ही नहीं। क्योंकि विक्रमादित्य सरीखे पराक्रमी राजाका कोई शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्का इत्यादि आज तक मिला ही नहीं— जब कि इनके पूर्व और समकालीन अशोक इत्यादि अनेक राजाओंके शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि मिलते है। इसी आधार पर अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानोंने विक्रमके समयनिर्णयार्थ अपनी अपनी कल्पनायें स्थापित करके आकाश पाताल एक कर डाले है। विषयान्तर हो जानेके कारण उनका उल्लेख यहॉ नहीं किया जा सकता।

हमारे तीर्थंकरो और जैनधर्मानुयायी राजा, महाराजाओं कवियो और ग्रथकारोंके विपयमें वड़ी निर्मूल कल्पनाये प्रचलित हैं और उनसे सर्व साधारणका इस विपयमें वड़ा मिथ्या ज्ञान हो रहा है। सरकारी

स्कूलो और कालिजोकी ऐतिहासिक पुस्तकोंमें ऐसी बहुतसी बातें मिलती है। विशेषकर इन पुस्तकोंमें जैनधर्मका संस्थापक श्रीमहावीर स्वामीको ही बतला दिया है और किसी किसी पुस्तकमें श्रीपार्श्वनाथको लिखा है। कहीं पर जैनमत बौद्धधर्मकी शाखा मात्र है, अथवा जैनधर्मकी वैदिक धर्मसे उत्पत्ति हुई ऐसे भी उल्लेख हैं। मगधाधिपति श्रेणिक महाराज (अपर नाम बिम्बसार) को पाश्चात्य विद्वानोंने जैन लिखा ही नहीं। यही बात उनके पुत्र कोणिक (अपरनाम अजातशत्रु) के विषयमें है। मौर्यवंशी महाराज चद्रगुप्त (दीक्षित नाम प्रभाचद्र) को जो श्रीभद्रबाहुस्वामीके शिष्य थे कई विद्वानोंने बौद्धधर्मावलम्बी बताया है। उनके पौत्र महाराज अशोकने तेरह वर्षतक जैनधर्म पालन किया और इसके पश्चात् धर्मपरिवर्तनकरके बडे जोरोशोरसे बौद्ध मतका प्रचार किया। उनके समयके अनेक स्तम्भ, शिला इत्यादि अब तक विद्यमान् हैं जिनके लेख इस बातको सूचित कर रहे हैं कि महाराज अशोकने बौद्धधर्मका प्रचार किया था। परन्तु खेदका विषय है कि उनके बौद्धधर्म ग्रहण करनेके पूर्वके शिलालेख आजतक कोई मिले ही नहीं और यदि अन्वेषण किया जाय तो उनकी प्राप्ति बहुत सम्भव है। इसी आधार पर विद्वानोंकी बहुसम्मति यही है कि महाराज अशोक कभी जैन थे ही नहीं, किन्तु कोई कोई तो यह कहते है कि वह प्रारम्भमें वैदिक धर्मके अनुयायी थे*-अशोकके पुत्र संप्रति जिन्होंने अपनी राजधानी उज्जैन बनाई थी जैनधर्मानुयायी थे, किंतु

---

* अशोक जैनधर्मके अनुयायी थे, सचमुच ही इसका अब तक कोई सुबूत नहीं मिला है। जैनग्रन्थोंमें भी इस विषयका कोई उल्लेख नहीं। अशोकके एक शिलालेखमें लिखा है कि मेरी भोजनशालामें पहले बहुतसे पशुओंका घात किया जाता था, पर अब केवल एक जीवकी हत्या होती है और आगे वह भी नहीं होगी। इससे यही सिद्ध होता है कि बौद्ध होनेके पहले अशोक वेदानुयायी थे।—सम्पादक जै० हि०।

बहुतसे इतिहासकारोंने ऐसा नहीं लिखा। विन्सैन्ट स्मिथने वड़ी दवी जवा-नसे लिखा है कि पुराणोंके अनुसार संप्रति जैनधर्मपर कृपादृष्टि रखते थे। गुजरात और दक्षिणके अनेक जैन राजाओका प्राय उल्लेख ही नहीं मिलता। यह तो राजा महाराजाओके विषयकी वात हुई, अव ग्रन्थकारों और विद्वानोका हाल यह है कि हजारों जैनग्रंथ जैनमतके विरोधियोंने जलमें डुवो दिये अथवा वे ईंधनकी जगह काममे लाये गये, वहुतसे कीटादिके भक्ष्य वन गये, कुछ विरोधियोंने चुरा कर और उनमें इधर उधर परिवर्तन करके और नाम वदल कर अपने वना लिये, * वहुतसे सात तालोंके भीतर पडकर जीर्णशीर्ण हो गये और उनको वायु और सूर्यके दर्शन तक नहीं होते। शेपकी दशा भी वड़ी शोचनीय है। सर्व साधारणने पंचतत्रके कर्त्ताको वैदिक धर्मानुयायी ही मान रक्खा था किन्तु हर्पका विपय है कि एक विदेशी विद्वाने यह सिद्ध कर दिया है कि इसके कर्त्ता जैन थे। श्रीजिन-सेन, शाकटायन, श्रीमहावीराचार्य इत्यादिकी विद्वत्ता अभी सर्व साधारण पर प्रकट ही नहीं हुई। श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीके पश्चात्के इतिहासकी जव यह दशा है तो उनके पूर्वके इतिहासका क्या कहना ? श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरोको तो पूछता ही कौन है ?

इस प्रकारकी और भी सैकडों वातें लिखी जासकती है। इन्हींके कारण हमारे महत्त्वसे सर्व साधारण वंचित हैं। यदि इनकी सत्यता प्रकाश कर दी जाय तो हमारी श्रेष्ठता सर्व साधारणके हृदयपर अंकित हो जाय। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि इस ओर ध्यान दें और अपने प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि खोज कर जैन इतिहासका उद्धार करें और सर्व साधारण पर उसका तिमिरनाशक

---

* लेखक महाशयको ऐसे किसी एकाध ग्रन्थका प्रमाण देना था।—

—सम्पादक।

प्रभाव। डाले ऐतिहासिक अन्वेपणके अर्थ रोयल एशियाटिक सोसायटीका अटूट परिश्रम और उसका फल आपको अविदित नहीं है। सौ वर्ष हुए सर्व साधारण महाराज अशोकका नाम तक न जानते थे और उनके स्तभ जिन ग्रामोंमे हैं वहाके निवासी अज्ञातवश उनको 'भीमकी गदा' इत्यादि कहा करते थे। किन्तु इस सुसायटीके परिश्रमसे यह अज्ञान दूर होगया। इसी प्रकारकी सैकडों वातोंकी खोज इस सोसाइटीने कर डाली है। यदि हमारे जैनी भाई भी इस ओर ध्यान दे तो जैन इतिहाससवधी वहुतसे अन्वेपण हो जायॅ जिससे वर्तमान ऐतिहासिक पुस्तकोंमें वड़ा भारी परिवर्तन हो जाय और जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना हो।

परम हर्षका विषय है कि स्वर्गीय वावू देवकुमारजीकी उदारतासे आरा (विहारप्रान्त) मे 'श्रीजैनसिद्धान्तभवन' नामकी एक उच्च श्रेणीकी सस्था खुल गई है और इसके अन्वेषण और परिश्रम, इसकी वार्षिक रिपोर्ट और इसके मुखपत्र 'श्रीजैनसिद्धान्त-भास्कर' से भली भाति प्रकट है। इतने अल्प कालमें और कार्यकर्ताओंकी कमी होनेपर इस सस्थाने जितनी सामग्री एकत्रित की है और जो जो कार्य किये है वे वहुत ही प्रशसनीय है। किंतु क्या आप इसको पर्याप्त समझते है? कदापि नहीं। अभी हमको वहुत परिश्रम करना है अतएव यह हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है कि तन मन धनसे ऐतिहासिक उद्धारमे लग जावें और यथाशक्ति इस सस्थाकी सहायता करें। अपने अपने अन्वेषणोंसे, लेखोंसे, सामग्रीसे और धनसे इस सस्थाको परिपूर्ण और चिरस्थायी कर दें। थोडेसे स्वार्थत्यागसे वहुत कुछ हो सकता है।

जातिसेवक—

मोतीलाल जैन, सी. टी.,

आगरा।

ग्वालियरके किलेकी जैनमूर्तियाँ।

ग्वालियरका किला बहुत पुराना है। यह बात इतिहासोंको देखनेसे स्पष्ट हो जाती है। यह संभव है कि उसके बनानेवालेका पता आजतक न चला हो और उसके बनाए जानेकी बाबत जो ख्यायतें मशहूर हो रही हैं उनमें भले ही इख्तलाफ हो; मगर इस बातको आम तौरपर सब इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं कि यह किला बहुत प्राचीन है। किलेकी बुनियाद हिन्दू राजाओंने डाली यह भी ठीक है। कछवाहे और परिहार राजपूतोंने बहुत समय तक इस किलेको अपने अधिकारमें रखकर इस प्रान्तका राज्य किया। राजपूतोंके अलावा जैनलोगोंके कब्जेमे भी यह किला बहुत दिनोतक रहा।

किलेपर जो जैन मूर्तियाँ हैं वे जैनधर्मकी दृष्टिसे जितने महत्त्वकी हैं उतने ही महत्त्वकी ये चित्रनिर्माणशास्त्रकी दृष्टिसे भी हैं। उनको देखनेसे प्राचीन समयकी उत्तम कारीगरीका अपूर्व उदाहरण हमे दिखाई पडने लगता है। ग्वालियरके अलावा हिन्दुस्थानमें इसी प्रकारकी अपूर्व मूर्तियाँ एलोरा, एलिफेंटा और एजंटामें देखी जाती हैं और उनकी कारीगरीकी, आजकलके विदेशी गृहनिमाणशास्त्रवेत्ता लोग मुक्तकठसे प्रशसा करते हैं। परन्तु उन स्थानकी मूर्तियोंसे ग्वालियरके किलेकी मूर्तियोमे विशेषता है। क्योंकि ग्वालियर दिगम्बरी जैनियोंका प्राचीन समयसे विद्यापीठ रहा है।

किलेके अन्दर जैनियोंके पूजनीय देव पार्श्वनाथका एक छोटासा मन्दिर भी मौजूद है। अलावा इसके अन्य जैनमन्दिरोंके चिह्न भी अब तक पाये जाते हैं। जहाँ तक पता चला है उससे जाना जाता है कि बारहवीं शताब्दीमें जैनियोंका इस किलेपर पूरा अधिकार था।

किलेमें जो सासबहूके उत्तम मन्दिर हैं वे ग्यारहवीं शताब्दीकी कारीगरीका नमूना बताये जाते हैं। पार्श्वनाथमन्दिर भी बारहवीं शताब्दीका ही है। सासबहूका मन्दिर हिन्दुओंकी कारीगरीका नमूना है या जैनलोगोंका, इस विषयमें अनेक मतभेद है। सासबहूके मन्दिरको सहस्रबाहुका मन्दिर भी कहते है और इस नामपरसे यह हिन्दुओंकी कारीगरीका नमूना जान पड़ता है।

किलेमें जो जैनमूर्तियाँ है उन्हें जैनियोंने अपने पूजनीय देवताओंके स्मरणार्थ बनवाया था। ये मूर्तियाँ भारतवर्षकी अन्य जैनमूर्तियोसे सर्वोत्तम समझी जाती हैं। कनिंघम साहबने इनकी उत्तमताकी बहुत प्रशसा की है। ग्वालियरके किलेमें बहुतसे मन्दिर, महलात और इमारतें होनेके कारण दर्शक लोग बहुधा समयाभावसे इन महत्त्वपूर्ण मूर्तियोकी ओर दुर्लक्ष्य कर जाते है। परन्तु ये मूर्तियाँ भी चित्रनिर्माणशास्त्र और जैनधर्मकी प्राचीनताकी झलकके कारण बहुत बड़े महत्त्वकी है।

ग्वालियरके किलेमे मानसिंहके महलके पास पहुँचते ही महलकी दीवारपर कई छोटी छोटी मूर्तियाँ दिखाई पड़ती है; परन्तु वे अधिक महत्त्वकी नहीं है। पश्चिमकी ओर जानेसे और भी मूर्तियाँ दिखाई पडती है। परन्तु उस ओरकी सडक बन्द होनेसे दर्शक उनके दर्शनोंका लाभ नहीं उठा सकते। दक्षिण पश्चिमकी ओर जानेसे भी कुछ मूर्तियाँ मिलती है, इनकी भी गणना उत्तम मूर्तियोंमें नहीं की जाती। दक्षिण पूर्वकी ओर जानेसे जो मूर्तियाँ उर्वाई दरवाजेके पास मिलती है उन्हें ग्वालियरका किला देखनेवाले दर्शकोंको कभी नहीं भूलना चाहिए। उर्वाई दरवाजेसे किलेके ऊपर चढते ही थोड़ी दूर आगे चलकर पहाड़की कन्दरामें पत्थरमें ही कटी हुई ये विशालकाय मूर्तियाँ

दृष्टिगोचर होने लगती है। जहाँपर ये मूर्तियॉ विराजमान है, वहांका दृश्य भी वडा मनोहर है। उर्वाई दरवाजेके ऊपरी फाटकपरसे पहाड ढाल्ह हो गया है। इसी ढालमे ये मूर्तियाँ काटी गई हैं। ये मूर्तियाँ कब बनाई गई इस वातका भी पता चलता है। सम्वत् १४९१ व १५१० में जब तॅवर राजपूत यहॉ राज्य करते थे उस समयकी वनी हुई ये मूतिंयॉ है। अर्थात् ईस्वी १५ वीं शताब्दीकी ये मूर्तियॉ है। ये मूर्तियॉ बहुत ऊंची है। इनकी ऊँचाईका इसीसे अनुमान कर लेना चाहिए कि उर्वाई दरवाजेकी एक मूर्ति ५१ फूट ऊॅची है! जैनियोके धार्मिक विचारके अनुसार ये सब मूर्तियॉ नंगी खडी है। मुसलमानी राज्यकालमें इस किलेकी बहुतसी मूर्तियाँ तोड़ी गई; परन्तु जो मूर्तियॉ पहाडीमे अधर वनी थीं वे ज्यादातर नहीं टूटी। वावरने एक स्थान पर लिखा है कि "मैने इन तमाम मूर्तियोंको तोड़नेका हुक्म दे दिया था मगर वे ही मूर्तियॉ किसी कदर तोडी गई जिन तक आसानीसे पहुँच हो सकती थी।" अब यह बात सोचने की है कि इन मूर्तियोंको ढाल्ह पहाड़ीके वीचोंबीच अधर बनानेमें कितनी विद्या, बुद्धि और परिश्रम खर्च करना पड़ा होगा। इन मूर्तियोंको देखनेसे इस देशकी प्राचीन कारीगरी और गृहनिर्माणशास्त्रकी जानकारीका बहुत कुछ पता चलता है।

(जयाजी प्रतापसे उद्धृत)

कर्मवीर।

एक विद्वान् कहता है कि "डरपोक अपनी मौतसे पहले ही हजारों बार मर चुकते है पर वीर पुरुष एक ही वार मरता है।" वीरोंको लेनेके लिए मौत एक ही वार आती है और वह उन्हें सोनेके सिंहासन पर चढ़ाके अपने अमर धाममें ले जाती है; किन्तु होना चाहिए कर्मवीर। उसी वीरके गुणगानसे लेखककी लेखनी तीखी मानी जाने लगती है और कविकी कविता जीवित हो जाती है। वह वीर बाते नहीं बनाता बल्कि काम करता है और उसका काम ही उसे एकदम ससारके सामने लाके खड़ा कर देता है। तमाम मनुष्य उसे अपना पूज्य मानते है और सब जातियाँ उसे देवता कहती हैं। बुद्ध धर्मके जमानेमें कोई नही जानता था कि एक मनुष्यका हृदय धार्मिक प्रेमकी आगसे धधक रहा है। उस समय कोई नहीं जानता था कि एक हृदयमे वड़ी बडी भीषण लपटें उठ रही है; किन्तु समय कुछ आगे बढ़ा और ससारके सामने अकलङ्कदेवका शरीर आगया। इस कर्मवीरने ससारमें वह आग फूँक दी कि जो अब तक शान्त नही हुई और न होगी; क्योंकि यह उस कर्मवीरके हृदयकी सच्ची आग थी—यह आग—यह बिजली बड़े बडे पहाड़ोंको भेदती हुई, नदियोंको उलाँघती हुई और समाजोको चमकाती हुई एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जा पहुँची। दूसरी आग अरबमें उस समय उठी थी, जब सब मनुष्य अज्ञानके गढ़ेमें गिरकर अत्याचारोंकी सीमा पर पहुँच चुके थे। फिर एक हृदयमें धार्मिक अग्नि जलने लगी और उस आगका स्फोट इतना भयङ्कर हुआ कि उससे ससारकी जड़ें हिल गईं और अरबके नीरव जङ्गलोके रेतीले मैदानों, नदियों और पश्चिमोत्तर वायुसे भी वे शब्द सुनाई देने लगे। ये कर्मवीर हजरत मुहम्मद थे जिनके

हार्दिक समुद्रने अरबसे विन्ध्याचल तकको अपनी लहरोंसे डुबो दिया था। यही सच्ची आग योरपमें उस समय निकली थी, जब वहाँके निवासी अपने कर्तव्यज्ञानसे शून्य हो चुके थे और उनमें निर्जीवता आगई थी। तब वहाँके जंगल और पहाड़ोंमें भटकनेवाला एक मनुष्य बस्तीमें आगया और उसने वह कूक संसारमें मचा दी जो सूलीकी तीखी नोकको भेदती हुई आज तक सुनाई दे रही है। इस महात्मा क्राइस्टके पौद्गलिक शरीरका सूलीके ऊपर ही परिवर्तन होगया; पर वह वीर नहीं है जो मुर्देमें भी जान न डाल दे। क्राइस्टके स्पर्शने वह शूली आज एक तिहाई संसारकी प्रिय होगई है और अपने गलेमें डालके हजारों मनुष्य उसी क्रॉससे अपना परिचय देते हैं। भारतवर्षमें जिस समय यज्ञोंमें जीवोंका हवन होता था उस समय भी एक पहाड़की खोहमें सोनेवाला पुरुष जाग उठा था और उसकी "बुद्धोऽहं" की आवाज पर संसार चकित होगया था। उस समय उसका कोई सहायक नहीं था किन्तु वह कर्मवीर था। उसकी अवाजसे पाखंडियोंके घटाटोप जाल टूट गये, उसका स्वागत करनेके लिए प्रकृतिने उसके गमनका मार्ग साफ कर दिया और पक्षियोंने उसके जानेसे पहले ही उसके शब्दोंको पहुँचाया, नदियां उसीका गान गाने लगीं और आज भी उसकी जीती जागती वाणी संसारके अधिकांश मनुष्योंमें भिद रही है।

संसारमें समय समय पर ये कर्मवीर आये और अपना अपना काम करके चले गये। जो रोनेवाले हैं वे अपना रोना लिए बैठे ही रहे और जो आलसी थे वे पड़े पड़े मिट्टी हो गये, आज संसार नहीं जानता कि वे कहाँ हुए थे और क्यों हुए थे? यदि तुम कुछ चाहते हो तो अपने मनसे चाहनाको निकाल डालो और संसारको अपने सामने

रखके उसीके हितमे लग जाओ। ससार कर्मक्षेत्र है। इसमें जिसने अपने अस्तित्वको जितना ही अधिक नष्ट करके ससारका काम किया है ससारने उसे उतना ही ऊपर उठा लिया है। जिसने ससारकी जितनी अधिक निस्वार्थ सेवा की, उतना ही अधिक संसारने उसके निकट अपना हृदय खोल दिया। किन्तु जहाँ चाहनाका सबसे बडा स्वार्थ भरा है वहाँ लोग जाते हुए डरते है। यदि चित्त है तो उन दुतकारनेवाले लोगोंसे मत डरो—बल्कि याद रक्खो कि सबसे पहले वे ही तुम्हारे भक्त बनेंगे। इन बादलोंकी गड़गडाहटसे मत डरो, क्योंकि तुम इनमें बिजली बनके चमकोगे, धुँएँमें अग्निशिखा तुहीं बनोगे और कूड़े करकटमे पुष्परूपसे तुम्हारा ही जन्म होगा।

ससारने उसीको अपना पूजनीय माना है जो इसके काममें अपने आपको भूल गया है; यह संसार उन्हींकी मूर्ति बनाके पूजता है जो इसीके चिन्तनमे मग्न रहते थे।

प्रात काल होता है, सूर्यकी चमकसे दिशाएँ चमकने लगती हैं, पक्षी आनन्दके मारे नाचने लगते है; परन्तु मनुष्य कहानेवाले जीवो, तुम मिट्टीके ढेलेकी तरह क्यो निर्जीव पडे रहते हो? तुम्हारी चैतन्यता क्यो पत्थरके समान स्थिर रहती है? बल्कि पत्थरपर भी यदि प्रातःकाल हाथ लगाओगे तो ठडा माळूम होगा और दिनमें गर्म हो जायगा, पर तुम्हारे मनपर इतना सा भी परिवर्तन नही होता। यह हम जानते हैं कि तुम हरसमय चिन्तामें मग्न रहते हो, पर वह चिन्ता केवल तुम्हारे लिए ही है, तुम केवल अपने ही घाटे और नफेका विचार करते हो इसीलिए तुम्हारी निर्जीवता पत्थरसे गई बीती है। तुम्हे कभी इस बातका विचार नहीं आया कि अब हमारी संख्या केवल साड़े तेरह लाख ही रह गई है। तुमने कभी यह नही सोचा

कि हमारी संख्या थोड़ी होनेपर भी हममे आपसमे ऐक्य नहीं है। तुमने कभी विचार नहीं किया कि हम किस ओर जा रहे हैं। यही कारण है कि हम निर्जीव है। पर अब हम निर्जीव नहीं रहेगे:—

आये हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही होगा या अब मरके उठेंगे॥

—देवदूत।

शिक्षा-समस्या।

हम स्कूलोंको एक प्रकारकी शिक्षा देनेकी मशीने या कलें समझते हैं। मास्टर लोग इस कारखानेके एक तरहके पुरजे है। साढ़े दश बजे घण्टा बजाकर कारखाना खुलता है और कलका चलना आरम्भ हो जाता है। मास्टरोंके मुँह भी चलने लगते है। चार बजे कारखाना बन्द होता है, मास्टररूपी पुरजे भी अपने मुँह बन्द कर लेते हैं। तब विद्यार्थी इन पुरजोंकी काटी-छाँटी हुई दो चार पन्नोकी विद्या लेकर अपने अपने घर लौट आते हैं। इसके बाद परीक्षाके समय इसविद्याकी जॅाच होती है और उसपर मार्क लगा दिये जाते हैं।

कलो या मशीनोंमें एक बड़ी भारी खूबी यह रहती है कि जिस मापकी और जिस ढँगकी चीजकी फरमायश की जाती है ठीक उसी माप और ढॅगकी चीज तैयार हो जाती है। एक कलसे तैयार हुई सामग्रीमे और दूसरी कलसे तैयार हुई सामग्रीमें कोई बडा फर्क नहीं पड़ता और इससे मार्क लगानेमे बड़ा सुभीता होता है।

किन्तु एक मनुष्यके साथ दूसरे मनुष्यका मिलान नहीं हो सकता-दोनोंमें बड़ा अन्तर रहता है; यहॉ तक कि एक ही मनुष्यके एक दिनके साथ उसीके दूसरे दिनकी समानता नहीं देखती जाती।

इसके सिवा मनुष्य जो कुछ मनुष्यके पाससे पा सकता है वह कलके पाससे नहीं पा सकता। कल किसी वस्तुको सामने तो उपस्थित कर देती है परन्तु दान नहीं कर सकती। वह तेल तो दे सकती है; परन्तु चिराग जला देना उसकी शक्तिसे वाहर है।

यूरोपकी दशा हमारे देशसे भिन्न है। वहाँ मनुष्य समाजके भीतर रहकर मनुष्य वनता है, स्कूल उसे थोड़ीसी सहायता-भर देते हैं। लोग जो विद्या प्राप्त करते हैं, वह वहाँके मनुष्यसमाजसे जुदा नहीं—वहीं उसकी चर्चा होती है और वहीं उसका विकाश होता है। समाजके वीच नाना आकारों और नाना भावोंसे उसका सञ्चार होता रहता है—लिखने पढ़नेमे, वातचीतमे, कामकाजमे वह निरन्तर प्रत्यक्ष हुआ करती है। वहाँ जनसमाजने जो कुछ समय समय पर, नाना घटनाओं और नाना लोगोंके द्वारा पाया है, सञ्चय किया है और अपना भोग्य बनाया है, उसीको विद्यालयोंके भीतर होकर वालकोंको परोस देनेका केवल एक उपाय कर दिया है—इससे अधिक और कुछ नहीं।

इसी लिए वहाँके विद्यालय समाजके साथ मिले हुए हैं—वे समाजकी मिट्टीमेंसे ही रस खींचते हैं और समाजको ही फल देते है।

किन्तु, जहाँ विद्यालय अपने चारों ओरके समाजके साथ इस तरह एक होकर नहीं मिल मकते—समाजके ऊपर वाहरसे चिपकाये हुए होते हैं वहाँ वे शुष्क और निर्जीव बने रहते है। हमारे यहाँके विद्यालय ठीक इसी प्रकारके हैं। उनसे हम जो कुछ पाते हैं, वह कष्टसे पाते हैं और वह पाई हुई विद्या ऐसी होती है कि प्रयोग करनेके समय कुछ काम नहीं दे सकती। दशसे लेकर चार वजे तक हम जो कुछ कण्ठ करते है, जीवनके साथ, चारों ओरके मनुष्यसमाजके साथ,

और घरके साथ उसका कोई मेल नहीं दीख पड़ता। घरोंमें मा वाप, भाई वन्धु जो कुछ वातचीत करते हैं और जिन विषयोंकी आलोचना करते हैं हमारे विद्यालयोंकी शिक्षाके साथ उनका कोई मेल नहीं, वल्कि अकसर विरोध ही रहता है। ऐसी अवस्थामें हमारे विद्यालय एक प्रकारके एञ्जिन हैं—वे वस्तुयें तो वना सकते हैं, पर उनमें प्राण नहीं डाल सकते। हमे उनसे प्राणहीन विद्या मिलती है।

इसी लिए कहते हैं कि यूरोपके विद्यालयोंकी ठीक ज्योंकी त्यों वाहरी नकल करनेसे ही ऐसा न समझ लेना चाहिए कि हमने वैसे ही विद्यालय पा लिये जैसे कि यूरोपमें हैं। इस नकलमें वैसी ही वेञ्चें, वैसी ही कुर्सियाँ, टेविलें और वैसी ही कार्यप्रणालियाँ मिल सकती हैं— इनमें कोई फर्क नहीं रहता; परन्तु हमारे लिए ये सव ऊपरी पदार्थ एक तरहके वोझे हैं।

पूर्वकालमें जव हम गुरुओंसे शिक्षा पाते थे शिक्षकोंसे नहीं, मनुष्योंसे ज्ञान प्राप्त करते थे कलोंसे नहीं, तव हमारी शिक्षाके विषय इतने वहुत और विस्तृत नहीं थे और उस समय हमारे समाजमें जो भाव और मत प्रचलित थे उनके साथ हमारी पोथी-शिक्षाका कोई विरोध नहीं था। परन्तु यदि ठीक वैसा ही समय हम आज फिर लाना चाहें—इसके लिए प्रयत्न करें, तो यह भी एक प्रकारकी नकल ही होगी, उसका वाहरी आयोजन वोझा हो जायगा—किसी काममें नहीं लगेगा।

अतएव यदि हम अपनी वर्तमान आवश्यकताओंको अच्छी तरह समझते हों तो हमे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे विद्यालय हमारे घरका काम कर सकें; पाठ्य विषयोंकी विचित्रताके साथ

अध्यापनकी सजीवता मिल सके; पोथियोंकी शिक्षा देना और हृदय तथा मनोंको गढ़ना ये दोनों ही भार विद्यालय ग्रहण कर लें। हमको देखना होगा कि हमारे देशमे विद्यालयोंके साथ विद्यालयोंके चारों ओरका जो विच्छेद या विरोध है उससे छात्रोंका मन विक्षिप्त न हो जाय और इस प्रकारकी विद्याशिक्षा केवल दिनके कुछ घण्टोंके लिए बिलकुल स्वतन्त्र होकर, वास्तविकतासे रहित एक अत्यन्त कठिनाईसे हजम होनेवाली चीज न बन जाय।

विलायतमें विद्यालयोंके साथ घर या बोर्डिंग स्कूल रहते है। हमारे यहॉ भी इनकी नकल होने लगी है। परन्तु इस प्रकारके बोर्डिंग-स्कूलोंको एक तरहकी बारकें, पागलखाने, अस्पताल या जेलखाने ही समझने चाहिए।

अतएव विलायतके दृष्टान्तोंसे हमारा काम न चलेगा–उन्हें छोड़ ही देना पड़ेगा। कारण विलायतका इतिहास और विलायतका समाज हमारा नहीं है—हममें और उसमें बहुत प्रभेद है। हमारे देशके लोगोंके मनको कौनसा आदर्श बहुत समयसे मुग्ध कर रहा है और हमारे देशके हृदयमें रस–सञ्चार कैसे होगा, यह हमें अच्छी तरह समझ लेना होगा।

परन्तु यह हम समझ नहीं सकते। क्योंकि हमने अँगरेजी स्कूलोंमें पढ़ा है। हम जिस ओर देखते है उसी ओर अँगरेजोका दृष्टान्त हमारे नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। और इसकी ओटमें, हमारे देशका इतिहास–हमारी स्वजातिका हृदय छुप जाता है–स्पष्ट नहीं रहता। हम नेशनल पताकाको ऊँची उठाकर स्वाधीन चेष्टासे काम करेंगे, इस खयालसे जब हम कमर कसके तैयार होते हैं, तब भी विलायतकी बेड़ी कमरबन्द बनकर हमें बॉध लेती है और हमें नजीर या दृष्टान्तसे बाहर हिलने डुलने नहीं देती।

हमारे लिए बड़ी भारी कठिनाई यह है कि हम अँगरेजी विद्या और विद्यालयोंके साथ साथ अँगरेजी समाजको अर्थात् वहाँकी विद्या और विद्यालयोंको यथास्थान नहीं देखने पाते। हम इसे सजीव लोकालयके साथ मिश्रित करके नहीं जानते। और इसीसे हम यह भी नहीं जानते कि विलायती विद्यालयोंके प्रतिरूप जो हमारे देशके विद्यालय है उन्हें अपने जीवनके साथ किस तरह मिला लेना होगा; और यह जानना ही सबसे अधिक प्रयोजनीय है। विलायतके किस कालेजमें कौनसी पुस्तक पढ़ाई जाती है और उसके नियम क्या है, इन बातोंको लेकर तर्कवितर्क करते हुए कालक्षेप करना ठीक नहीं इससे समयका दुरुपयोग होता है।

इस विषयमें हमारी हड्डियोंके भीतर एक अन्धविश्वास घुस गया है। जिस तरह तिब्बतनिवासी समझते है कि किसी मनुष्यको किरायेसे लेकर उसके द्वारा एक मन्त्रलिखित चक्र चलवा देनेसे ही पुण्यलाभ हो जाता है, उसी तरह हम भी समझते है कि किसी तरह एक सभा स्थापित करके यदि वह एक कमेटीके द्वारा चलाई जा सके, तो बस हमें फलकी प्राप्ति हो जायगी। मानो सभा स्थापन कर लेना ही एक बड़ा भारी लाभ है। कई वर्ष वीत गये, हमने एक विज्ञानसभा स्थापित कर रक्खी है। तबसे हम बराबर प्रतिवर्ष विलाप करते आ रहे हैं कि देशवासी विज्ञानशिक्षासे उदासीन हैं। किन्तु विज्ञानसभा स्थापित करना एक बात है और देशवासियोंके चित्तको विज्ञानशिक्षाकी ओर आकर्षित करना दूसरी बात है। सभास्थलमें कूद-पड़ते ही लोग विज्ञानी हो जावेंगे, ऐसा समझना इस घोर कलियुगकी कलनिष्ठाका परिचय देना है।

असली बात यह है कि हमें मनुष्यके मनको पाना चाहिए। जब हम उसे पालेंगे तब ही हम जो कुछ आयोजन या उद्योग करेंगे वह

पूर्ण फलप्रद होगा। हमें इस बातका अच्छी तरहसे विचार कर लेना चाहिए कि जिस समय भारतवर्ष अपनी निजी शिक्षा देता था उस समय उसने मनुष्यका मन किस तरह पाया था। विदेशी यूनिवर्सिटियोंके क्यालेण्डर खोलके, उनका रस बाहर करनेके लिए उनपर पेन्सिलके दाग लगानेसे हम आपको मना नहीं करना चाहते, परन्तु साथ ही यह अवश्य कहे देते है कि यह विचार भी उपेक्षा या उदासीनताका विषय नहीं है। विद्यालयोंमें क्या सिखाना चाहिए, यह बात भी विचारणीय अवश्य है; परन्तु जिन्हें सिखाना है उनके मन किस तरह पाये जा सकते है, यह उससे भी अधिक विचारणीय है।

भारतवर्षके गुरुगृह एक समय तपोवनोंमें थे। अवश्य ही इस समय उन तपोवनोंका स्पष्ट चित्र हमारे मनमे नहीं उठता—वह अनेक अलौकिकताओंके कुहासेसे छुप गया है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय उनका अस्तित्व अवश्य था।

जिस समय उक्त आश्रम थे उस समय उनका वास्तविक स्वरूप क्या था, इस विषयको लेकर हम तर्क नहीं करना चाहते और कर भी नहीं सकते। परन्तु यह निश्चय है कि इन आश्रमोंमें जो लोग निवास करते थे, वे गृही थे और उनके शिष्य सन्तानके समान उनकी सेवा करके उनसे विद्या प्राप्त करते थे।

हमारे देशकी कहीं कहींकी विशेष कर बगालकी पुरानी सस्कृत पाठशालाओंमें (टोलेमें) आज भी उक्त भाव थोड़े बहुत अशोंमें दिखलाई देता है।

इन पाठशालाओंपर दृष्टि डालनेसे माळूम होता है कि उनमे केवल पोथियॉ पढ़ना ही सबसे अधिक महत्त्वकी बात नहीं है—वहॉ चारों ही ओर अध्ययन अध्यापनकी हवा वहती है। स्वयं गुरु भी वहॉ पढ़ना

लिखना लिए बैठे रहते है। केवल इतना ही नहीं, वहाँ जीवनयात्रा बिलकुल ही साधीसादी रहती है; धनदौलत, विलासिताकी खेंचतान नहीं है और इस लिए वहाँ शिक्षा एक साथ स्वभावके साथ मिल जानेका समय और सुभीता पा लेती है। पर इस कहनेसे हमारा यह मतलब नहीं है कि यूरोपके बड़े बड़े विद्यालयोंमें भी यह, शिक्षाका स्वभावके साथ मिल जानेका भाव नहीं है।

प्राचीन भारतवर्षका यह सिद्धान्त था कि अध्ययन करनेका जितना समय है उतने समयतक विद्यार्थीको ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए और गुरुगृहमें निवास करना चाहिए।

जो संसारके बीच रहते है वे ठीक स्वभावके मार्गपर नहीं चल सकते। तरह तरहके लोगोके सघातमें नाना दिशाओंसे नाना लहरें आकर जब तब बिना जरूरत ही उन्हें चञ्चल किया करती है—जिस समय हृदयकी वृत्तियाँ भ्रूण अवस्थामे रहती है उस समय वे कृत्रिम आघातोंसे बिना समयके ही उत्पन्न हो जाती है। इससे शक्तिका बड़ा भारी अपव्यय होता है और मन दुर्बल तथा लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है। इस लिए जीवनके आरम्भकालमें स्वभावको विकारोंके सारे कृत्रिम कारणोंसे बचाके रखना बहुत ही आवश्यक है। प्रवृत्तियाँ असमयमें ही न जाग उठें और विलासिताकी उग्र उत्तेजनासे मनुष्यत्वकी नवोद्गम अवस्था झुलस न जावे—वह स्निग्ध और सजीव बनी रहे, यही ब्रह्मचर्यपालनका उद्देश्य है। वास्तवमें देखा जाय तो बालकोका इस स्वाभाविक नियमके भीतर रहना उनके लिए सुखकर है। क्योंकि इससे उनके मनुष्यत्वका पूर्ण विकाश होता है, इससे ही वे जैसी चाहिए वैसी स्वाधीनताका आनन्द भोग सकते है और इससे उनका वह निर्मल और उज्ज्वल मन—जो कि उसी समय अंकुरित होता है—उनके सारे शरीरमें प्रकाशका विस्तार करता है।

आजकल ब्रह्मचर्यपालन करानेके बदले नीतिपाठ पढ़ानेकी पद्धति निकली है। देशके सुशिक्षित नेता और बालकोंके मातापिता समझते है कि छात्रोंको नीतिका उपदेश देना बहुत ही जरूरी है। परन्तु हमारी समझमें यह भी एक तरहका कल या मशीन जैसा काम है। प्रतिदिन नियमपूर्वक थोडासा 'सालसा' पीलेनेके समान ही यह नीति-उपदेश है। मानो बच्चोंको अच्छा बनानेका यह एक निर्दिष्ट उपाय है।

नीतिका उपदेश यह एक विरोधी विषय है। यह किसी भी तरह मनोहर नहीं हो सकता। क्योंकि जिसको उपदेश दिया जाता है वह मानो आसामियोंके कठघरेमें खड़ा किया जाता है और ऐसी अवस्थामें या तो वह उपदेश उसका मस्तक लॉघकर चला जाता है या उस पर चोट करता है। इससे केवल हमारा यह प्रयत्न ही निष्फल नहीं होता है बल्कि कभी कभी इससे उलटा अनिष्ट हो जाता है। अच्छी बातको विरस और विफल कर डालना, इसके समान हानिकर कार्य मनुष्यसमाजके लिए और दूसरा नहीं है। नीत्युपदेश जैसी अच्छी बात, बच्चोंको विना जरूरत और बिना समय देनेका प्रयत्न कर विरस और विफल बना डाली जाती है। परन्तु लोग इस विषयको समझते नहीं; अच्छे अच्छे सुशिक्षितोंका झुकाव भी इस ओर अधिकतासे देखकर मनमें बड़ी आशङ्का होती है।

जहॉ इस कृत्रिम जीवनयात्रामें हजारों तरहके असत्य और विकार हर घड़ी हमारी रुचिको नष्ट किया करते है, वहॉ यह आशा कैसे की जा सकती है कि स्कूलके दशसे लेकर चार बजे तकके थोड़ेसे समयमें एक दो पोथियोंके वचन हमारा संशोधन कर डालेंगे—हमारे चरित्रको नीतिपूर्ण बनाये रक्खेंगे। इससे और तो कुछ नहीं होता—केवल बहा-

नेवाजीकी सृष्टि होती है और नैतिक ढोग—जो कि सब तरहके ढोंगों-से अधम है—सुबुद्धिकी स्वाभाविकता और सुकुमारताको नष्ट कर देता है।

ब्रह्मचर्यपालनके द्वारा धर्मके सम्बन्धमें सुरुचिको स्वाभाविक कर दिया जाता है। कोरा उपदेश नहीं दिया जाता, शक्ति दी जाती है। नीतिकी बाते बाहरी आभूषणोकी तरह जीवनके ऊपर लटका दी जाती है उनका भीतर प्रवेश नहीं होता; परन्तु ब्रह्मचर्यपालन ऐसा नहीं है। इससे जीवन ही धर्मके साथ गढ दिया जाता है और इस तरह धर्मको विरुद्ध पक्षमें खड़ा न करके वह अन्तरगमें मिला दिया जाता है—तन्मय कर दिया जाता है। अतएव जीवनके आरम्भमें मनको और चरित्रको गढनेके समय नीतिके उपदेशोंकी जरूरत नहीं; किन्तु अनुकूल अवस्था और अनुकूल नियमोंकी ही सबसे अधिक आवश्यकता है।

केवल ब्रह्मचर्यपालन ही नहीं, इस अवस्थामें विश्वप्रकृतिकी अनुकूलता भी होनी चाहिए। शहर हमारे स्वाभाविक निवासस्थान नहीं है—मनुष्यके कामकाजोंकी जरूरतसे और मतलबसे ये बन गये है। विधाताकी यह इच्छा नहीं थी कि हम जन्म लेकर ईंट-काठ-पत्थ-रोंकी गोदमें पलकर मनुष्य बनें। हमारे आफिसोके और शहरोंके साथ फल-फूल-पत्र-चन्द्र-सूर्यका कोई सम्बन्ध नहीं। ये शहर हमें सजीव सरस विश्वप्रकृतिकी छातीसे छीनकर अपने उत्तप्त उद-रमें डालकर पका डालते हैं। पर जिन लोगोंको इनमें रहनेका अभ्यास हो गया है और जो कामकाजके नशेमे विह्वल रहते हैं, वे इस शहर-निवासमें कष्टका अनुभव नहीं करते—वे धीरे धीरे स्वभावसे भ्रष्ट होकर विशाल जगतसे बराबर जुदा होते जाते है।

किन्तु, कामके चक्करमें पड़कर सिर टकरानेके पहले, सीखनेके समय —उस समय जब कि बच्चोकी मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ बढ़ती है, उन्हें प्रकृतिकी सहायता बहुत ही जरूरी है। फूल पत्ते, स्वच्छ आकाश, निर्मल जलाशय और विस्तृत दृश्य ये सब वस्तुयें बेंच और बोर्ड, पुस्तक और परीक्षाओंसे कम जरूरी नहीं है।

भारतवर्षका मन चिरकालतक इन सब विश्वप्रकृतियोंके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहनेसे ही गढा गया है और इस लिए जगत्की जड-चेतन सृष्टिके साथ आपको एकात्मभावसे व्याप्त कर देना—मिला देना भारतवर्षके लिए बिलकुल स्वभाव सिद्ध है। भारतके तपोवनोंमें द्विजातियोंके बालक निम्नलिखित मन्त्रकी आवृत्ति किया करते थे:——

यो देवोऽग्न्यौ योऽप्सु यो विश्वभुवनमाविवेश।
यो औपधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

अर्थात् जो प्रकृति देवता अग्निमें, जलमे, विश्वभुवनमें प्रविष्ट हो रही है और जो औपधियोमें तथा वनस्पतियोंमें है उसे नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अग्नि, वायु, जल, स्थलरूप विश्वको विश्वात्माके द्वारा सहज ही परिपूर्ण करके देखना सीखना ही सच्चा सीखना या शिक्षा है। यह शिक्षा शहरोंके स्कूलोंमे ठीक ठीक नहीं दी जा सकती। क्योंकि वहाँ विद्या सिखानेके कारखानोंमें हम जगतको एक प्रकारका यन्त्र समझना ही सीख सकते हैं।

किन्तु आजकलके दिनोंमें जो कामकाजमें मस्त रहनेवाले लोग है वे इन सब बातोंको मिस्टिसिजम् या भावकुहेलिका समझ कर उडा देवेंगे—इस पर उनकी श्रद्धा न होगी। अतएव हम नहीं चाहते कि इस विषयको लेकर हम अपनी सारी आलोचनाको ही अश्रद्धाभाजन

वना डालें। तो भी मालूम होता है कि इस बातको तो कामकाजी लोग भी एकबार ही न उड़ा दे सकेंगे कि खुला आकाश, खुली हवा और फूलपत्ते मानवसन्तानके शरीर और मनकी परिणतिके लिए बहुत ही आवश्यक है। जब उमर बढ़ेगी, ऑफिस जिस समय अपनी ओर खींचेंगे, लोगोंकी भीड़ जब हमें ठेलकर चलेगी, और मन जब नाना प्रयोजनोंसे नाना दिशाओंमें घूमेगा, तब विश्वप्रकृतियोंके साथ हमारे हृदयका प्रत्यक्ष मिलाप होना बन्द हो जायगा। इस लिए इसके पहले हमने जिस जल-स्थल-आकाश-वायु-रूप माताकी गोदमें जन्म लिया है, उसके साथ जब हम अच्छी तरह परिचय कर ले, माताके दूधके समान उसका अमृतरस खींच लें और उसका उदार मन्त्र ग्रहण कर लें, तब ही सच्चे और पूरे मनुष्य बन सकेंगे। बालकोंका हृदय जब नवीन रहता है, उनका कौतूहल जब सजीव होता है और उनकी सारी इन्द्रियोंकी शक्ति जब सतेज रहती है, तब उन्हें खुले हुए आकाशमें जहाँ कि मेघ और धूप खेलती रहती है--खेलने दो। उन्हें इस पृथ्वी माताके आलिङ्गनसे वंचित करके मत रक्खो। सुन्दर और निर्मल प्रातःकालमें सूर्यको उनके प्रत्येक दिनका द्वार अपनी ज्योतिर्मय उँगलियोंके द्वारा खोलने दो और सौम्य गंभीर सन्ध्याको उनका दिवावसान नक्षत्रखचित अन्धकारमें चुपचाप निमिलित होने दो। वृक्ष और लताओंके शाखा पल्लवोंसे सुशोभित नाटकशालामें छह अकोंमें छह ऋतुओंका नानारसविचित्र गीतिनाटकका अभिनय उनके सामने होने दो। वे झाड़ोंके नीचे खडे होकर देखे कि नव वर्षा यौवराज्यपदपर अभिषिक्त राजपुत्रके समान अपने दलके दल सजल बादल ले कर आनन्द गर्जन करती हुई चिरकालकी प्यासी वनभूमिके ऊपर आसन्न वर्षणकी छाया डाल रही है और शरत्कालमे अन्नपूर्णा धरतीकी

छातीपर ओससे सींची हुई, वायुसे लहराती हुई, तरह तरहके रंगोंसे चित्रित, चारों दिशाओंमें फैली हुई खेतोंकी शोभाको अपनी आँखोंसे देखकर उन्हें धन्य होने दो। हे बालकोंके रक्षक अभिभावकगण, तुम अपनी कल्पनावृत्तिको चाहे जितनी निर्जीव और अपने हृदयको चाहे जितना कठिन बना लो; परन्तु दोहाई तुम्हारी, यह बात कमसे कम लज्जाकी खातिर ही मत कहना कि, इसकी कुछ आवश्यकता नहीं है। अपने बच्चोंको इस विशाल विश्वमें रहकर विश्वजननीके लीलास्पर्शका अनुभव करने दो। तुम्हारे इन्स्पेक्टरोंके मुलाहिजों और परीक्षकोंके प्रश्नपत्रोंकी अपेक्षा यह कितना उपयोगी है इसका भले ही तुम अपने हृदयमें अनुभव न कर सकते हो, तो भी बालकोंके कल्याणके लिए इसकी बिलकुल उपेक्षा न करना। * (अपूर्ण)

ग्रन्थ-परीक्षा।

(१)

उमास्वामि-श्रावकाचार।

(लेखक—बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, देवबन्द)

जैनसमाजमें उमास्वामि या उमास्वाति नामके एक बड़े भारी विद्वान् आचार्य होगये हैं; जिनके निर्माण किये हुए तत्त्वार्थसूत्रपर सर्वार्थ-सिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और गंधहस्तिमहाभाष्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण बड़ी बड़ी टीकायें और भाष्य बन चुके हैं। जैन सम्प्रदायमें भगवान् उमास्वामिका आसन बहुत ऊँचा है और उनका पवित्र-नाम बड़े ही आदरके साथ लिया जाता है। उमास्वामि महाराज श्रीकुन्दकुन्द मुनिराजके प्रधान शिष्य थे और उनका अस्तित्व विक्र-

---

* श्रीयुक्त कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगलालेखका अनुवाद।

मंकी पहली शताब्दीके लगभग माना जाता है। तत्त्वार्थसूत्रके सिवा उमास्वामिने किसी अन्य ग्रंथका प्रणयण किया या नहीं? और यदि किया तो किस किस ग्रंथका? यह बात अभीतक प्रायः अप्रसिद्ध है। आमतौर पर जैनियोमे, आपकी कृतिरूपसे, तत्त्वार्थसूत्रकी ही सर्वत्र प्रसिद्धि पाई जाती है। शिलालेखों तथा अन्य आचार्योंके बनाए हुए ग्रंथोंमें भी, उमास्वामिके नामके साथ, तत्त्वार्थसूत्रका ही उल्लेख मिलता है। *

"उमास्वामि–श्रावकाचार" भी कोई ग्रंथ है, इतना परिचय मिलते ही पाठकहृदयोमे स्वभावसे यह प्रश्न उत्पन्न होना संभव है कि क्या उमास्वामि महाराजने कोई पृथक् 'श्रावकाचार' भी बनाया है? और यह श्रावकाचार, जिसके साथमें उनके नामका सम्बन्ध है, वास्तवमें उन्हीं उमास्वामि महाराजका बनाया हुआ है जिन्होने कि 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना की है? अथवा इसका बनानेवाला कोई दूसरही व्यक्ति है? जिस समय सबसे पहले मुझे इस ग्रंथके शुभ नामका परिचय मिला था उस समय मेरे हृदयमे भी ऐसे ही विचार उत्पन्न हुए थे। मेरी बहुत दिनोंसे इस ग्रंथके देखनेकी इच्छा थी। परन्तु ग्रंथ न मिलनेके कारण वह अभीतक पूरी न हो सकी थी। हालमें श्रीमान्

---

* यथा —

"अभूदुमास्वातिमुनि पवित्रे वशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूत्रीकृत येन जिनप्रणीतशास्त्रार्थजात मुनिपुगवेन ॥"

—शिलालेखः

"श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्त्वार्थसूत्र प्रकटीचकार।
यन्मुक्तिमार्गाचरणोद्यताना पाथेयमर्घ्यं भवति प्रजानाम् ॥"

—वादिराजसूरिः

साहु जुगमन्दरदासजी रईस नजीवावादकी कृपासे मुझे ग्रथका दर्शन-- सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिये मैं उनका हृदयसे आभार मानता हूँ और वे मेरे विशेप धन्यवादके पात्र हैं।

इस ग्रथपर एक हिन्दी भाषाकी टीका भी मिलती है, जिसको किसी 'हलायुध' नामके पडितने बनाया है। हलायुधजी कब और कहाँपर हो गये हैं और उन्होने किस सन् या सम्वत्में इस भापा-टीकाको बनाया है, इसका कुछ भी पता उक्त टीकासे नहीं लगता। इस विषयमें, हलायुधजीने अपना जो परिचय दिया है उसका एक मात्र परिचायक, ग्रथके अन्तमें दिया हुआ, यह छन्द है.—

"चंद्रवाडकुलगोत्र सुजानि। नाम हलायुध लोक वखानि।
तानें रचि भापा यह सार। उमास्वामिको मूल सुसार॥"

इस ग्रथके श्लोक नं० ४०१ की टीकामें, 'दुश्रुति' नामके अनर्थ-दडका वर्णन करते हुए, हलायुधजीने मोक्षमार्गप्रकाश, ज्ञानानंद-निर्भरनिजरसपूरितश्रावकाचार, सुदृष्टितरंगिणी, उपदेशसि-द्धान्तरत्नमाला, रत्नकरंडश्रावकाचारकी प० सदासुखजीकृत, भापावचनिका और विद्वज्जनवोधकको पूर्वानुसाररहित, निर्मूल और कपोलकल्पित वतलाया है। साथ ही यह भी लिखा है कि "इन शास्त्रोंमे आगम-विरुद्ध कथन किया गया है; ये पूर्वापरविरुद्ध होनेसे अप्रमाण, वाग्जाल हैं; भोले मनुष्योंको रजायमान करें हैं, ज्ञानी जनोंके आदरणीय नहीं हैं, इत्यादि।" प० सदासुखजीकी भाषावचनि-काके विषयमें खास तौरसे लिखा हैं कि, "रत्नकरड मूल तो प्रमाण है वहुरि देशभाषा अप्रमाण है। कारण पूर्वापरविरुद्ध, निन्दाबाहुल्य, आगमविरुद्ध, क्रमविरुद्ध, वृत्तिविरुद्ध, सूत्रविरुद्ध, वार्तिकविरुद्ध कई दोषनिकरि मडित है यातैं अप्रमाण, वाग्जाल है।" इन ग्रथोंमें क्षेत्र--

पालपूजन, शासनदेवतापूजन, सकलीकरणविधान और प्रतिमाके चंदन-चर्चन आदि कई वातोका निषेध किया गया है, जलको अपवित्र वतलाया गया है, खड़े होकर पूजनका विधान किया गया है; इत्यादि कारणोंसे ही शायद हलायुधजीने इन ग्रंथोंको अप्रमाण और आगम-विरुद्ध ठहराया है। अस्तु इन ग्रथोंकी प्रमाणता या अप्रमाणताका विषय यहाँ विवेचनीय न होनेसे, इस विपयमें कुछ न लिखकर मैं यह वतला देना जरूरी समझता हूँ कि हलायुधजीके इस कथन और उल्लेखसे यह वात विलकुल हल हो जाती है और इसमें कोई संदेह वाकी नहीं रहता कि आपकी यह टीका 'रत्नकरंडश्रावकाचार' की (पं० सदासुखजीकृत) भाषावचनिका तथा 'विद्वज्जनवोधक' की रचनाके पीछे वनी है; तभी उसमे इन ग्रंथोंका उल्लेख किया गया है। पं० सदासुखजीने रत्नकरंडश्रावकाचारकी उक्त भाषावचनिका विक्रम सम्वत् १९२० की चैत्र कृष्ण १४ को वना कर पूर्ण की है और विद्वज्जनवोधककी रचना उसके वाद संघी पन्नालालजी दूणीवालोंके द्वारा हुई है, जो पं० सदासुखजीके शिष्य थे और जिनका देहान्त वि० स० १९४० के ज्येष्ठमासमें हुआ है। इसलिए हलायुधजीकी यह भाषाटीका विक्रम संवत् १९२० के कई वर्ष वादकी वनी हुई निश्चित होती है। वल्कि उपर्युक्त श्लोक (नं० ४०१) की टीकामें विद्वज्जनवोधकके सम्वन्धमें दिये हुए, "स्वगृहमें ही गुप्त विद्वज्जनवोधक नाम कारि" इत्यादि वाक्योंसे यहाँ तक माळूम होता है कि यह टीका उस वक्त लिखी गई है जिस वक्त कि विद्वज्जनवोधक वनकर तय्यार ही हुआ था और शायद एक दो वार शास्त्रसभामें पढ़ा भी जाचुका था, किन्तु उसकी प्रतियें होकर उसका प्रचार होना प्रारंभ नहीं हुआ था। इसी लिए उसका 'स्वगृहमें ही गुप्त' ऐसा विशेषण

किया गया माॡम होता है। विद्वज्जनबोधक किस सालमें बनकर तय्यार हुआ है, यह बात उसके देखनेसे माॡम हो सकती है।

पर यह बात निसंदेह कही जा सकती है कि इस टीकाके बनाने-वाले हलायुधजी सघी पन्नालालजीके समकालीन थे, जयपुर या उसके निकटवर्ती किसी ग्रामके रहनेवाले थे और उन्होंने विक्रम सं० १९३० से १९४० के दरम्यानमें ही इस टीकाको बनाया है।

हलायुधजीने अपनी इस टीकामें स्थान स्थान पर इस बातको प्रगट किया है कि यह 'श्रावकाचार' सूत्रकार भगवान् उमास्वामी महाराजका बनाया हुआ है। और इसके प्रमाणमें आपने निम्नलिखित श्लोक पर ही आधिक जोर दिया है। जैसा कि उनकी टीकासे प्रगट है:—

" सूत्रे तु सप्तमेप्युक्ताः पृथक् नोक्तास्तदर्थतः।
अवशिष्टः समाचारः सोऽत्र वै कथितो ध्रुवम् ॥ ४६२ ॥"

टीका—" ते सत्तर अतीचार मै सूत्रकारने सप्तम सूत्रमें कह्यो है ता प्रयोजन तै इहा जुदा नहीं कह्या है। जो सप्तमसूत्रमें अवशिष्ट समाचार है सो यामैं निश्चय करि कह्यो है। अब याकू जो अप्रमाण करै ताकूं अनतसंसारी, निगोदिया, पक्षपाती कैसे नहीं जाण्यो जाय जो विना विचारया याका कर्त्ता दूसरा उमास्वामी है सो याकूं किया है (ऐसा कहै)। सो भी या वचन करि मिथ्यादृष्टि, धर्म-द्रोही, निंदक, अज्ञानी जाणना ! ॥ "

इस श्लोकसे भगवदुमास्वामिका ग्रन्थ-कर्तृत्व सिद्ध हो या न हो; परन्तु इस टीकासे इतना पता जरूर चलता है कि जिस समय यह टीका लिखी गई है उस समय ऐसे लोग भी मौजूद थे जो इस 'श्रावकाचार' को भगवान् उमास्वामि सूत्रकारका बनाया हुआ नहीं मानते

थे; बल्कि इसे किसी दूसरे उमास्वामिका या उमास्वामिके नामसे किसी दूसरे व्यक्तिका बनाया हुआ बतलाते थे। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे लोगोंके प्रति हलायुधजीके कैसे भाव थे और वे तथा उनके समान विचारके धारक मनुष्य उन लोगोंको कैसे कैसे शब्दोंसे याद किया करते थे। 'सशयतिमिरप्रदीप' में, **पं० उदयलालजी** काशलीवाल भी इस ग्रंथको भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ लिखते हैं। लेकिन, इसके विरुद्ध **पं० नाथूरामजी प्रेमी**, अनेक सूचियोंके आधारपर संग्रह की हुई अपनी 'दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' नामक सूचीद्वारा यह सूचित करते हैं कि यह ग्रथ तत्त्वार्थसूत्रके कर्त्ता भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है, किन्तु किसी दूसरे (लघु) उमास्वामिका बनाया हुआ है। परन्तु दूसरे उमास्वामि या लघु उमास्वामि कब हुए है और किसके शिष्य थे, इसका कहीं भी कुछ पता नहीं है। दरयाफ्त करनेपर भी यही उत्तर मिलता है कि हमें इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। जो लोग इस ग्रथको भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ बतलाते है उनका यह कथन किस आधारपर अवलम्बित है और जो लोग ऐसा मान-नेसे इनकार करते है वे किन प्रमाणोसे अपने कथनका समर्थन करते हैं, आधार और प्रमाणकी ये सब बातें अभी तक आम तौरसे कहींपर प्रकाशित हुई माळूम नहीं होतीं; न कहींपर इनका जिकर सुना जाता है और न श्रीउमास्वामि महाराजके पश्चात् होने-वाले किसी माननीय आचार्यकी कृतिमें इस ग्रंथका नामोल्लेख मिलता है। ऐसी हालतमें इस ग्रंथकी परीक्षा और जाँचका करना बहुत जरूरी माळूम होता है। ग्रथ-परीक्षाको छोडकर और कोई समुचित साधन इस बातके निर्णयका प्रतीत नहीं होता कि यह ग्रथ वास्त-वमें किसका बनाया हुआ है और कब बना है?

ग्रन्थके साथ उमास्वामिके नामका सम्बन्ध है; ग्रन्थके अन्तिम श्लोकसे पूर्वके काव्यमे *'स्वामी' शब्द आया है अथवा खुद ग्रन्थ-कार उपर्युक्त श्लोक नं. ४६९ द्वारा यह प्रगट करते हैं कि इस ग्रन्थमें सातवें सूत्रसे अवशिष्ट समाचार वर्णन किया गया है। इसी लिये ७० अतीचार जो सातवें सूत्रमें वर्णन किये गये हैं वे यहा पृथक् नहीं कहे गये, इन सब बातोंसे यह ग्रन्थ सूत्रकार भगवदुमा-स्वामिका बनाया हुआ सिद्ध नहीं हो सकता। एक नामके अनेक व्यक्ति भी होते हैं; जैन साधुओंमें भी एक नामके धारक अनेक आ-चार्य और भट्टारक हो गये हैं, किसी व्यक्तिका दूसरेके नामसे ग्रन्थ बनाना भी असभव नहीं है। इस लिए जब तक किसी माननीय प्राचीन आचार्यके द्वारा यह ग्रन्थ भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ स्वीकृत न किया गया हो या खुद ग्रन्थ ही अपने साहित्यादिसे उसका साक्षी न हो तब तक नामादिकके सम्बन्ध मात्रसे इस ग्रथको भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ नहीं कह सकते। किसी माननीय आचार्यकी कृतिमें इस ग्रंथका कहीं नामोल्लेख तक न मिलनेसे अब हमें यही देखना चाहिए कि यह ग्रथ, वास्तवमें, सूत्रकार भगवदुमा-स्वामिका बनाया हुआ है या कि नहीं। यदि परीक्षासे यह ग्रथ, वास्तवमें, सूत्रकार श्रीउमास्वामिका बनाया हुआ सिद्ध हो तब ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जिससे यह ग्रंथ अच्छी तरहसे उपयोगमें लाया जाय और तत्त्वार्थसूत्रकी तरह इसका भी सर्वत्र प्रचार हो। अन्यथा विद्वानोको सर्व साधारणपर यह प्रगटकर देना चाहिए कि, यह ग्रथ-

---

* अन्तिम श्लोकसे पूर्वका वह काव्य इस प्रकार है —

"इति हतदुरितौघ श्रावकाचारसार गदितमतिसुबोधावसथक स्वामिभिश्च विनयभरनतागा सम्यगाकर्णयन्तु विशदमतिमवाप्य ज्ञानयुक्ता भवतु ॥ ४७३ ॥

सूत्रकार भगवदुमास्वामिका वनाया हुआ नहीं है; जिससे लोग इस ग्रंथको उसी दृष्टिसे देखें और वृथा भ्रममें न पड़ें।

ग्रथको परीक्षा-दृष्टिसे अवलोकन करनेपर माळूम होता है कि इस ग्रंथका साहित्य वहुतसे ऐसे पद्योंसे वना हुआ है जो दूसरे आचार्योंके बनाये हुए सर्वमान्य ग्रथोसे या तो ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे गये है या उनमें कुछ थोड़ासा शव्द-परिवर्त्तन किया गया है। जो पद्य ज्योंके त्यो उठाकर रक्खे गये हैं वे 'उक्तं च' या 'उद्धृत' रूपसे नहीं लिखे गये हैं और न हो सकते हैं; इसलिए ग्रंथकर्त्ताने उन्हे अपने ही प्रगट किये हैं। भगवान् उमास्वामि जैसे महान् आचार्य दूसरे आचार्योंके वनाये हुए ग्रथोंसे पद्य लेवें और उन्हें अपने नामसे प्रगट करें, यह कभी हो नहीं सकता। यह उनकी योग्यता और पदस्थके विरुद्ध ही नहीं वल्कि महापापका काम है। श्रीसोमदेव आचार्यने साफ तौरसे ऐसे लोगोंको '**काव्यचोर**' और '**पातकी**' लिखा है। जैसा कि 'यशस्तिलक' के निम्नलिखित श्लोकसे प्रगट है:—

"कृत्वा कृतीः पूर्वकृता पुरस्तात्प्रत्यादर ताः पुनरीक्षमाणः।
तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचोरोस्तु स पतकी च॥"

लेकिन पाठकोंको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस ग्रंथमें जिन पद्योंको ज्योंका त्यों या परिवर्तन करके रक्खा गया हैं वे अधिकतर उन आचार्योंके वनाये हुए ग्रंथोंसे लिये गये हैं जो सूत्रकार श्रीउमास्वामिसे अनेक शताब्दियोंके पीछे हुए हैं। वे पद्य, ग्रंथके अन्य स्वतंत्र वने हुए पद्योंसे, अपनी शव्दरचना और अर्थ-गार्भीर्यादिके कारण स्वतः भिन्न माळूम पड़ते हैं। और उन मणिमा-लाओं (ग्रंथों) का स्मरण कराते हैं जिनसे वे पद्यरत्न लेकर इस ग्रंथमें गूथे गये हैं। उन पद्योंमेंसे कुछ पद्य, नमूनेके तौरपर, यहां पाठकोंके अवलोकनार्थ प्रगट किये जाते है:—

(१) ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे हुए पद्य—

क—पुरुषार्थसिद्ध्युपायसे।

"आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः॥ ६६॥
ग्रथार्थोभयपूर्णे काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिह्नवं ज्ञानमाराध्यम्॥ २४९॥
संग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामं च।
वाक्कायमनःशुद्धिरेषणशुद्धिश्चविधिमाहुः॥ ४३७॥
ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वं।
अविषादित्वमुदित्वे निरहंकारत्वमिति हि दातृगुणाः॥४३८॥"

उपर्युक्त चारों पद्य श्रीअमृतचंद्राचार्य विरचित 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपायसे' लिये हुए मालूम होते हैं। इनकी टकसाल ही अलग है, ये 'आर्या' छदमें है। समस्त पुरुषार्थसिद्ध्युपाय इसी आर्याछदमें लिखा गया है। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें इन पद्योके नम्बर क्रमशः ३०, २६, १६८ और १६९ दर्ज हैं।

ख—यशस्तिलकसे।

"यदेवाङ्गमशुद्धं स्यादद्भिः शोध्य तदेव हि।
अंगुलौ सर्पदष्टायां न हि नासा निकृत्यते॥४५॥
संगे कापालिकात्रेयी चांडालशवरादिभिः।
आप्लुत्यदंडवत्सम्यग्जपेन्मंत्रमुपोषितः॥ ४६॥
एकरात्रं त्रिरात्रं वा कृत्वा स्नात्वा चतुर्थके।
दिने शुध्यन्त्यसंदेहमृतौ व्रतगता स्त्रियः॥ ४७॥
जीवयोग्या विशेषेण मयमेषादिकायवत्।
मुद्गमाषादिकायोऽपि मांसमित्यपरे जगुः॥ २७३॥
मांसं जीवशरीर जीवशरीर भवेन्नवा मांसम्।
यद्वन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्नवा निम्बः॥ २७६॥
शुद्ध दुग्ध न गोमांस वस्तुवैचित्र्यमीदृशं।
विषघ्न रत्नमाहेय विषं च विपदे यतः॥ २७९॥

हेयं पलं पयः पेयं समे सत्यपि कारणे
विषद्रोरायुषे पत्रं मूलं तु मृतये मतम् ॥ २८० ॥
तच्छाक्यसांख्यचार्वाकवेदवैद्यकपर्दिनाम् ।
मतं विहाय हातव्यं मांसं श्रेयोर्थिभि सदा ॥ २८४ ॥
शरीरावयवत्वे पि मांसे दोपो न सर्पिषि ॥ २८२ ॥ ”

उपर्युक्त पद्य श्रीसोमदेवसूरिकृत यशस्तिलकसे लिये हुए मालूम होते है। इन पद्योंमें पहले तीन पद्य यशस्तिलकके छट्ठे आश्वासके और शेप पद्य सातवे आश्वासके हैं।

ग—योगशास्त्र (श्वेताम्बरीय ग्रंथ) से ।

“सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि ।
कृपाहीनोऽपि धर्मश्चेत्कष्टं नष्टं हहा जगत् ॥ १९ ॥
म्रियस्वेत्युच्यमानोऽपि देही भवति दुःखित ।
मार्यमाणः प्रहरणैर्दारुणै· स कथं भवेत् ॥ ३३४ ॥
कुणिर्वरं वरं पंगुरशरीरी वरं पुमान् ।
अपि संपूर्णसर्वांगो न तु हिंसापरायणः ॥ ३४१ ॥
हिंसा विघ्नाय जायेत विघ्नशांत्यै कृतापि हि ।
कुलाचारधियाप्येपा कृता कुलविनाशिनी ॥ ३३९
मांसं भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वे निरुक्तिं मनुरब्रवीत् ॥ २६५ ॥
उलूककाकमार्जारगृध्रशंबरशूकराः ।
अहिवृश्चिकगोधाश्च जायंते रात्रिभोजनात् ॥ ३२६ ॥”

उपर्युक्त पद्य श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित ‘योगशास्त्र’ से लिये हुए मालूम होते हैं। इनमेसे शुरूके चार पद्य योगशास्त्रके दूसरे प्रकाश (अध्याय) के है और इस प्रकाशमे क्रमशः नं १४-२७ २८-२९ पर दर्ज हैं। अन्तके दोनों पद्य तीसरे प्रकाशके हैं और इनकी सख्या १६ और १६७ है।

घ—कुन्दकुन्दश्रावकाचारसे* ।

"आरभ्यैकांगुलाद्विम्बाद्यावदेकादशांगुलं । (उतरार्ध) १०३ ॥
गृहे संपूजयेद्बिम्बमूर्ध्वं प्रासादगं पुनः ।
प्रतिमा काष्ठलेपाश्मस्वर्णरूप्यायसां गृहे ॥ १०४ ॥
मानाधिकपरिवाररहिता नैव पूजेयत् । (पूर्वार्ध) १०५ ॥
प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकं ।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥ १०७ ॥
अतीताब्दशतं यत्स्यात् यच्च स्थापितमुत्तमैः ।
तद्व्यंगमपि पूज्यं स्याद्बिम्बं तन्निष्फलं न हि ॥ १०८ ॥"

उपर्युक्त पद्य कुन्दकुन्दश्रावकाचारसे लिये हुए मालूम होते है। इनमेंसे अन्तके दो पद्य आठवें उल्लासके है जिनका नम्बर, इस उल्लासमें, ७९ और ८० दिया है। शेष पद्य प्रथम उल्लासके है। प्रथम उल्लासमें इन पद्योंका नम्बर क्रमशः १३७, १७१ और १३३ दिया है। ऊपर जिन उत्तरार्ध और पूर्वार्धोंको मिलाकर दो कोष्टक दिये गये है, कुन्दकुन्दश्रावकाचारमें ये दोनों श्लोक इसी प्रकार स्वतंत्र रूपसे न. १३७ और १३८ पर लिखे हैं। अर्थात् उत्तरार्धको पूर्वार्ध और पूर्वार्धको उत्तरार्ध लिखा है । उमास्वामिश्रावकाचारमें उपर्युक्त श्लोक नं. १०३ का पूर्वार्ध और श्लोक नं. १०५ का उत्तरार्ध इस प्रकार दिया है:—

"नवांगुले तु वृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडांगुले (पूर्वार्ध) १०३ ॥"
"काष्ठलेपायसां भूताः प्रतिमाः साम्प्रतं न हि (उत्तरार्ध) १०५ ॥"

* यद्यपि इस श्रावकाचारकी कुछ सधियोंमें यह प्रगट किया गया है कि यह ग्रथ श्रीजिनचद्राचार्यके शिष्य कुन्दकुन्दस्वामीका बनाया हुआ है। और मगलाचरणमें 'वन्दे जिनविधुं गुरुं' इस पदके द्वारा ग्रथकर्ताने जिनचन्द्र गुरुको नमस्कार भी किया है। तथापि यह ग्रथ समयसारादि ग्रथोंके प्रणेता भगवत्कुदकुन्दाचार्यका बनाया हुआ नहीं है। परंतु उमास्वामिश्रावकाचारसे पहलेका बना हुआ जरूर मालूम होता है। इस ग्रथकी परीक्षा फिर किसी स्वतत्र लेख द्वार की जायगी।

लेखक।

श्लोक नं. १०५ के इस उत्तरार्धसे मालूम होता है कि उमास्वामिश्रावकाचारके रचयिताने कुन्दकुन्दश्रावकाचारके समान काष्ठ लेप और लोहेकी प्रतिमाओंका श्लोक नं. १०४ में विधान करके फिर उनका निषेध इन शब्दोंमें किया है कि आजकल ये काष्ठ, लेप और लोहेकी प्रतिमायें पूजनके योग्य नहीं हैं? इसका कारण अगले श्लोकमे यह बतलाया है कि ये वस्तुयें यथोक्त नहीं मिलतीं और जीवोत्पत्ति आदि बहुतसे दोषोंकी सभावना रहती है। यथा:--

"योग्यास्तेषां यथोक्तानां लाभस्यापित्वभावतः।
जीवोत्पत्त्यादयो दोषा बहवः संभवंति च॥ १०६॥"

ग्रंथकर्त्ताका यह हेतु भी विद्वज्जनोंके ध्यान देने योग्य है।

ङ—उपासकाचारसे*।

"एतेषु निश्चयो यस्य विद्यते स पुमानिह।
सम्यग्दृष्टिरिति ज्ञेयो मिथ्यादृक्तेषु संशयी॥ २०॥
मांसरक्तार्द्रचर्मास्थिसुरादर्शनतस्त्यजेत्।
मृताङ्गिवीक्षणादन्नं प्रत्याख्यानान्नसेवनात्॥ ३१५॥"

ये दोनो श्लोक पूज्यपादकृत उपासकाचारमें नं. ८ और ३८ पर दर्ज हैं। वहींसे उठाकर रक्खे हुए मालूम होते हैं।

च—धर्मसंग्रहश्रावकाचारसे।

"माल्यधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम्।
सावद्यसंभवाद्वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते॥ १३७॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्बिषं हन्ति या कृता।
सा किन्न यजनाचारैर्भवं सावद्यमांगिनाम्॥ १३८॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः।
तत्राल्पशक्तितेजस्सु दंशकादिषु का कथा॥ १३९॥

---

* यह उपासकाचार ग्रंथ, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथोंके प्रणेता श्रीमत्पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ नहीं है। इसकी परीक्षा भी फिर किसी स्वतन्त्र लेख द्वारा की जायगी।

—लेखक।

भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम्।
जीवनाय मरीचादिसदौषधविमिश्रितम् ॥ १४० ॥
तथा कुटुम्बभोग्यार्थमारंभः पापकृद्भवेत्।
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा ॥ १४१ ॥"

ये पाचों पद्य पं० मेधावीकृत 'धर्मसग्रहश्रावकाचारके' ९ वें अधिकारमें नम्बर ७२ से ७६ तक दर्ज है। वहींसे लिये हुए मालूम होते हैं।

छ—अन्यग्रंथोंके पद्य।

"नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधात्स्वर्गस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ २६४ ॥
आसन्नभव्यता कर्महानिसंज्ञित्वशुद्धपरिणामाः।
सम्यक्त्वहेतुरन्तर्बाह्योऽप्युपदेशकादिश्च ॥ २३ ॥
संवेगो निर्वेदो निन्दा गर्हा तथोपशमभक्ति।
वात्सल्यं त्वनुकम्पा चाष्टगुणाः सन्ति सम्यक्त्वे ॥ ७० ॥"

इन तीनों पद्योंमेंसे पहला पद्य मनुस्मृतिके पाचवें अध्यायका है। योगशास्त्रमें श्रीहेमचन्द्राचार्यने इसे, तीसरे प्रकाशमें, उद्धृत किया है और मनुका लिखा है। इसीलिये या तो यह पद्य सीधा 'मनुस्मृति' से लिया गया है या अन्य पद्योंकी समान योगशास्त्रसे ही उठाकर रक्खा गया है। दूसरा पद्य यशस्तिलकके छट्ठे आश्वासमें और धर्मसंग्रहश्रावकाचारके चौथे अधिकारमे 'उक्त च' रूपसे लिखा है। यह किसी दूसरे ग्रंथका पद्य है– इसकी टकसाल भी अलग है–इसलिए ग्रंथकर्त्ताने या तो इसे सीधा उस दूसरे ग्रंथसे ही उठाकर रक्खा है और या उक्त दोनों ग्रंथोंमेसे लिया है। तीसरा पद्य 'वसुनन्दिश्रावकाचार' की निम्नलिखित प्राकृत गाथाकी सस्कृत छाया है:—

"संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥ ४९ ॥

इस गाथाका उल्लेख 'पंचाध्यायी' में भी, पृष्ठ १३३ पर, 'उक्तं च' रूपसे पाया जाता है। इसलिये यह तीसरा पद्य या तो वसुनन्दिश्रावकाचारकी टीकासे लिया गया है या इस गाथापरसे उल्था किया गया है। (शेप आगे)

लक्खी बाई।

(पद्यगल्प)

(१)

कार्शीमें थी एक अनोखी लक्खी बाई।
रंभासे भी रुचिररूपवाली मनभाई ॥
दूर दूर तक थी प्रसिद्ध उसकी सुघराई।
चित्र देखकर हुए हजारों थे सौदाई ॥
कथकोंने की शायरी, भाव बतानेके लिए।
कितनोंने तोड़े कलम कवि कहलानेके लिए ॥

(२)

मिला बाहरी रूप-रंग था उसको जैसा।
था स्वभाव भी सहृदयतासे सुन्दर वैसा ॥
कामशास्त्रका ग्रंथ चाहिए उसको कहना।
थे सब सिद्ध प्रयोग, सदा लड़ता था लहना ॥
नाच और गाना कभी उसका होता था कहीं।
तिल रखनेको भी जगह तो फिर मिलती थी नहीं ॥

(३)

धनी, सेठ, जौहरी, महाराजा, रजवाड़े।
जिनके देखे दूत अनेकों तिरछे आड़े ॥

आते–जाते और बुलाते थे आदरसे।
वरसाते थे रत्न और धन लाकर घरसे॥
एक लाख रुपया अगर कोई देता था कभी।
एक रात उसके निकट रहती थी लक्खी तभी॥

(४)

किन्तु उधर जो दीन दुखी दुख रोता आकर।
जाता वह होकर निहाल मनमाना पाकर॥
विश्वनाथको अगर कभी घरसे जाती थी।
या गंगापर पर्व दिवसमें वह आती थी॥
तो लक्खी पर दृष्टियाँ पड़तीं थीं इस ढंगसे।
ज्यों भौंरोकी पंक्तियाँ मिलें कमलके अंगसे॥

(५)

कोढी छूले एक विप्र थे उसी पुरीमें।
होता था रोमाञ्च देखकर दशा बुरीमें॥
पीव अंगसे वस्त्र फोड़ बाहर छनता था।
'त्राहि त्राहि भगवान!' यही कहते बनता था॥
प्रायश्चित्त उसे समझ अपने पहले कर्मका।
सहते थे चुपचाप सब कष्ट हृदयके मर्मका॥

(६)

पापी थे, पर पुण्य न-जाने कौन किया था।
जिससे पत्नी पतिव्रताने साथ दिया था॥
चन्द्र साथ चाँदनी और काया सँग छाया।
वह थी पति-अनुचरी, जीवके जैसे माया॥
सेवा करती हरघड़ी अपने पतिकी भक्तिसे।
होने देती थी नहीं कष्ट उन्हें निज शक्तिसे॥

(७)

करती थी सब काम सबेरे उठकर अपने।
पतिके पैरों पास लगे फिर हरिको जपने ॥
पतिकी आँखें खुली देखकर लाती पानी।
करती उन्हें प्रसन्न बोलकर मीठी बानी ॥
शौच कराकर प्रेमसे धोती थी सब अंगको।
अपने हाथोंसे उन्हें घोट पिलाती भंगको ॥

(८)

भोजन कर तैयार खिलाती अपने क र।
और सुलाती पलँग बिछाकर अति आदरसे ॥
फिर करके सत्कार अतिथिका भोजन करती।
तन मन धनसे आठ पहर पतिका दम भरती ॥
एक अलौकिक तेजका परिचय मुखमें मिल रहा।
दया शान्ति सन्तोष था आँखों भीतर खिल रहा ॥

(९)

स्वामीका मुख मलिन देखकर इतने पर भी।
पतिव्रताने चैन न पाई फिर दम भर भी ॥
बोली दोनों हाथ जोड़कर—"बोलो प्यारे।
चिन्तित सा है चित्त कौनसे दुखके मारे? ॥
वारूँ तुमपर नाथ, मैं, हँसते हँसते जान भी।
पूर्ण करूँगी कामना, आप कहेंगे जो, अभी" ॥

(१०)

कई बार यों कहा, कबूला मगर न स्वामी।
टाल दिया, 'कुछ नहीं प्रिये।' कह भरी न हामी

पीछे जब पड गई, लगी रोने वह बाला।
हाथोंसें मुँह ढॉप विप्रने तब कह डाला ॥
" मैं पामर हूँ पातकी, किस मुँहसे प्यारी, कहूँ।
लक्खी पर आसक्त हूँ—इसी हेतु दुःखित रहूँ ॥

(११)

मुझको है यह विदित, रूपधन उसको प्यारा।
मै हूँ कोढी घृणित बना वैतरणी-धारा ॥
कपडा देते लोग नाकमें देख मुझे सब।
लक्खीबाई फिर दरिद्रको मिलनेकी कब ?
किन्तु, नीच मन यह तदपि होता नहीं निरस्त है।
लोक–हँसाई तुच्छ कर अपनी धुनमें मस्त है " ॥

(१२)

पतिकी सुनकर बात सतीने सोचा दिलमें।
" डालूँगी मै हाथ, नाथ, नागिनके बिलमें ॥
इच्छा पूरी करूँ, जिस तरह वह हो पूरी।
हूँ पतिव्रता तो न रहेगी बात अधूरी " ॥
यों विचार कर ब्राह्मणी, बोली उस दम कुछ नहीं।
पतिको सोया देखकर, चल दी फिर घरसे कहीं ॥

(१३)

लक्खी सन्ध्यासमय द्वारपर आजाती थी।
होता था जो दुखी उसे घरमें लाती थी ॥
जो वह मॉगे वही उसे देकर आदरसे।
करती थी वह विदा नित्य ही अपने घरसे ॥
देखा उसने एक दिन देवी सी कोई खडी।
किसी प्रतीक्षामें अड़ी, चिन्तित सी है हो पड़ी ॥

(१४)

आँखे मिलते हाथ जोड़कर लक्खी बोली।
" किसकी तुम्हें तलाश ? किधरको इच्छा डोली ?
जो चाहो सो देवि, यहाँपर मिल सकता है।
नव आशामय मुकुल–मनोरथ खिल सकता है ॥
खड़े न होने योग्य है किन्तु राह यह पापकी।
लक्खी बाई अति अधम दासी हूँ मैं आपकी" ॥

(१५)

युक्तिपूर्ण यह उक्ति श्रवण कर ब्राह्मणबाला।
बोली, " मैंने यहाँ ढंग सब देखा भाला ॥
पुण्य कार्यको पापपथ पर जो हो जाना।
तो उसमे कुछ दोष नहीं ऋषियोंने माना ॥
गुण–धर जीवन नीचसे पावें ऐसी चाहमें।
यही सोचकर आज मैं आई हूँ इस राहमे " ॥

(१६)

सुन सादर ले गई उसे घर लक्खी बाई।
पतिव्रताने बात खुलासा सभी सुनाई ॥
चुप रहकर कुछ देर, सोचकर बाई बोली।
"देखो देवी, आठ रोजमें होगी होली ॥
उस दिन ब्राह्मणदेवको दावत दूँगी भौनमें।
दासी होकर करूँगी जौन कहेंगे तौन मैं " ॥

(१७)

ब्राह्मणको जब मिला निमन्त्रण बाईजीका।
विस्मित तकता रहा देरतक मुख पत्नीका ॥

बुरी दुराशा हृदय बीच जो देती थी दुख।
वह आशा बन लगी कल्पनाका देने सुख॥
ज्यों त्यों काटे आठ दिन, होलीका दिन आगया।
गली गलीके गोलमें होलीका रँग छागया॥

(१८)

उबटन सौरभ-सना बनाकर घना लगाया।
फिर नहलाकर, बाँध पट्टियाँ, साफ बनाया॥
वस्त्र इतरमें बसे हाथसे फिर पहनाये।
करके यों सिंगार सतीने सब सुख पाये॥
लक्खीकी थी पालकी आई लेने द्वारपर।
भेज दिया पतिदेवको उसपर स्वयं सवारकर॥

(१९)

अतिथि-आगमन समाचार सुनकर उठ धाई।
अगवानीको आप द्वारपर लक्खी आई॥
आदरसे ले गई भवनके भीतर बाई।
पैर पखारे प्रथम आरती फिर उतराई॥
फल, गोरस, मिष्टान्न कुछ ब्राह्मणको अर्पण किया।
और रसीली दृष्टिसे उनको सुखी बना दिया॥

(२०)

आया फिर दो जगह भरा पानी पीनेका।
एक स्वर्णका कलश, काम जिसपर मीनेका॥
मिट्टीका भी वहीं दूसरा और पात्र था।
जो जलका सामान्य एक आधार मात्र था॥
ब्राह्मणको यह देखकर, मनमें कौतूहल हुआ।
पूछा, यह क्यों, किस लिए, दो पात्रोंमें जल हुआ?॥

(२१)

तब लक्खीने कहा, "बात यह है साधारण।
जरा सोचिए, जान पड़ेगा इसका कारण ॥
स्वर्ण-कलशमे भरा वर्फका ठंडा जल है।
मिट्टीकेमें भरा हुआ गंगाका जल है ॥
क्षणिक तृप्तिके बाद ही तृष्णा बढ़ती एकसे।
और मिटे सन्ताप सब ठंडक पड़ती एक से ॥

(२२)

आडम्बर है उधर, इधर गुण-गरिमा सोही।
इनमेंसे जो रुचे ग्रहण करिए उसको ही"॥
सुनकर सोचे विप्र, ग्रहण गंगाजल करना।
जो न सुलभ, मन उसी तरफ क्यों चञ्चल करना ॥
बोले-"बाईजी सुनो, मैं ब्राह्मण हूँ जातिका।
गंगाजलको छोड़कर, पिऊँ न जल इस भाँतिका" ॥

(२३)

तब होकर कुछ नम्र, दृष्टि अपनी थिर करके।
बोली लक्खी विप्र ओर यो ही फिर करके ॥
"योग्य आपके देव, आपका यह विचार है।
फिर गणिकाकी चाह हृदयमें किस प्रकार है?
स्वर्ण-कलशका वर्फ-जल मेरे मिलन-समान है।
इस सु-वर्णकी चमकमे बड़े बड़ोंका ध्यान है ॥

(२४)

जैसे ठंडी वर्फ तापको क्षणभर हरती।
फिर न मिले, तो और प्यासको दूना करती॥

वैसे गणिका-प्रणय-साधनाका सुख होता ।
बढ़ती जीकी जलन शान्तिका सूखे सोता ॥
गगाजल है आपकी शीतल विमल पतिव्रता ।
उसे छोड क्या उचित है करना ऐसी मूर्खता ?"

(२५)

सुन वेश्याके वचन विप्र जैसे जागेसे ।
मोह होगया दूर, हटा पर्दा आगेसे ॥
" सच तो है, यह कहाँ रूप-मृगतृष्णा ऐसी ?
और कहाँ वह शान्ति-रूपिणी गगा जैसी ?
मुझसे तो वेश्या भली, इतना जिसे विचार है ।
मेरी मतिको, ज्ञानको, शिक्षाको धिक्कार है !"

(२६)

लक्खीने ऐसे उपायसे काम निकाला ।
विप्र बचे, वह बची, प्रतिज्ञाको भी पाला ॥

* * *

ब्राह्मणने फिर अनुष्ठान गगापर ठाना ।
गायत्रीसे मिटा कोढ, पाया मनमाना ॥

* * *

पतिव्रता भी अन्त तक पतिपदपूजारत रही ।
पाठकगण, तुम भी कहो—' धन्य धन्य भारतमही !"

रूपनारायण पाण्डेय ।

विविध समाचार।

कुमारोंकी संख्या—पृथ्वीके सब देशोकी अपेक्षा भारतवर्षमें अविवाहितोंकी संख्या वहुत ही कम है। यहाँ कोई अविवाहित रहना ही नहीं चाहता अथवा और देशोंकी अपेक्षा यहाँ विवाह करना एक वहुत ही मामूली वात है। सारे वंगालमें जिसकी जन संख्या ५ करोड़ है केवल ६७८७ मनुष्य कौमार्य जीवन भोगनेवाले हैं। इग्लेण्डमे जब हजार पुरुषोंमे ३५७ पुरुष और हजार स्त्रियोंमें ३४० स्त्रियाँ विवाहित जीवन भोगनेवाली है तव वंगालमे यथाक्रम ४४९, और ४६३, मद्रासमें ४२७ और ४३९, पंजावमे ३८८ और ४८० मध्यम प्रदशमे ५१९ और ५२९, बम्बईमे ४७४ और ५११ पुरुष स्त्रियां वैवाहिक सुख भोगनेवाली है। यहाँ तो साल साल दो दो सालके ही वालक वालिकाये विवाहसूत्रमें वँध जाते है। फिर अविवाहितोकी संख्या अधिक क्यो होगी? जो कुछ है वह उन जातियोकी कृपासे है जिनमें लडकियोंका मूल्य कई हजार तक वढ़ गया है।

पतित जातियोंका उद्धार—भारतवर्षमें कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो अस्पर्श्य समझी जाती है और उनके स्पर्शसे उच्च जातियोका धर्म चला जाता है। ऐसे लोगोकी संख्या वहुत ही ज्यादा कई करोड़ है। ये लोग अस्पर्श्य तो है ही, इसके सिवा इनकी विद्या शिक्षा आदिका कोई प्रवन्ध न होनेसे ये मनुष्यत्वसे भी वंचित रहते हैं। पशुओंसे भी ये गये वीते हैं। इनके प्रति देशवासियोके असद्व्यवहारका एक वड़ा भारी कटुक फल यह हो रहा है कि देशमे ईसाइयोंकी संख्या वड़ी ही तेजीसे वढ़ रही है। ईसाई लोग सहज ही इन अस्पृश्य लोगोंको ईसाई वनाकर ऊँचा उठा लेते हैं। यह देख सारे देशके शिक्षितोने इन लोगोंके उद्धार करनेके लिए कमर कस ली है।

कहीं इनके लिए स्कूल खोले जा रहे हैं, कहीं छात्रालय बनाये जा रहे है और कहीं इनकी शुद्धि की जा रही है। वड़ौदा, कोल्हापुर, महसूर, आदिके बड़े बडे राजा भी इस विषयमें खूब प्रयत्न कर रहे है। पाठकोंको मालूम है कि कर्नाटकके समान मद्रासमें भी एक 'पचम' नामकी जाति है। जहाँ तक खोजकी गई है उससे मालूम होता है कि ये लोग पहले जैनी थे और जैनद्वेषी ब्राह्मणोंने इन्हें चतुर्वर्णसे बहिर्भूत पचम वर्णके नामसे प्रसिद्ध किया था। इस समय इस जातिकी वड़ी ही दुर्दशा है। यह अत्यंत ही दरिद्री है और नाई धोबी आदि नीचे जातियोंसे भी अधिक नीच समझी जाती है। जिस कुए या तालावसे सर्व साधारण पानी ले सकते है उससे इन्हे पानी लेनेका भी अधिकार नहीं। यह देखकर पालघाटकी वेदान्त सभाके कुछ दयाप्रवण लोगोंने इस जातिके उद्धारके लिए कमर कसी है। श्रीयुक्त शेषार्य और व्येंकटराव नामके दो सज्जन इस कार्यके अगुए है। इन्होंने रात दिन परिश्रम करके पालघाटमें पंचम लोगोंके लिये एक प्राथमिक विद्यालय स्थापित किया है जिसमे शिल्पशिक्षाका भी प्रवन्ध किया गया है। लगभग ८० लडके इसमे पढ़ने लगे है। उन्हे शिक्षापयोगी वस्तुये तथा कपडे लत्ते और भोजन भी दिया जाता है। और और तरहसे भी पचम लोगोको सहायता दी जाती हैं। उनके लिए एक जुदा जलाशय भी बना दिया गया है। क्या कभी जैनियोंका ध्यान भी अपने इन बिछुड़े हुए दरिद्र भाइयोंकी ओर जायगा?

कविसम्मान—वंगालके सुप्रसिद्ध लेखक और कवि श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरको ससारका सवसे वडा पारितोपिक 'नोबेल प्राइज' मिला है। सवा लाख रुपयेका यह पारितोषिक है। आज तक किसी

भी भारतवासीको यह पारितोषिक न मिला था—भारत ही क्यों इंग्लेण्डमे भी अब तक केवल एक ही विद्वान् इसे प्राप्त कर सका था। रवीन्द्रबाबू इस समय संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकवि गिने जाने लगे हैं। रवीन्द्रबाबू बडे ही उदार है। उन्होंने पारितोषिककी यह बड़ी रकम बोलपुरके महाविद्यालयको दे डाली है जो कि गुरुकुलके ढंगकी एक बहुत ही ऊँचे दर्जेकी सस्था है।

आदर्शविवाह—जयपुरके लाला मोतीलालजी सघईके पुत्र सूर्यनारायणजीका विवाह लाला फूलचन्द्रजी गोधा बाकीवालोंकी कन्या कमलादेवीके साथ आदर्श पद्धतिसे हुआ। इस विवाहमें सब कार्य नई सशोधित पद्धतिके अनुसार हुए। पिताने विदाके समय अपनी लडकीको बहुत ही आवश्यक उपदेश दिये और उन्हें ग्रहण कर लड़कीने अपनी कृतज्ञता प्रगट की। दहेजमें जेवर न देकर पुस्तकोंका एक अच्छा समूह दिया गया। और सब दस्तूरोंको तोड़कर १०१) भारतकी जैन और अजैन सस्थाओंको दान दिया गया।

मारवाड़ी विद्यालय—कानपुरके मारवाड़ियोंने अभी हालही एक विद्यालय स्थापित किया है। सेठ विलासराय हरदत्तरायजीने इस विद्यालयके लिए ४५ हजार रुपयेका दान किया।

विद्यार्थियोंकी आवश्यकता—जैन बोर्डिंगहाउस वर्धा (सी. पी.) के सैक्रेटरी प० जयचन्द्र श्रावणे सूचित करते हैं कि बोर्डिंग हाउसमें विद्यार्थियोकी जरूरत है। गरीब विद्यार्थियोंको भोजनादिका खर्च दिया जाता है। समर्थ विद्यार्थियोंसे ७) मासिक लिया जाता है।

नई जैनग्रन्थमाला—बम्बईसे पं० उदयलालजी काशलीवालने 'जैनसाहित्यसीरीज' नामकी एक ग्रन्थमाला निकालनेका प्रारभ किया है। पहला ग्रन्थ नागकुमारचरित तैयार है। जैनीभाइयोंको ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक बन जाना चाहिए।



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१० वाँ भाग] मार्गशीर्ष, श्री० वी० नि० स० २४४०। [२ रा अंक

प्राचीन भारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श।

(टी. पी कुप्पूस्वामी शास्त्री, एम. ए, असिस्टेंट, गवर्नमेंट म्यूजियम, तंजौरके एक अंगरेजी लेखका अनुवाद।)

यह निधड़क कहा जा सकता है कि वेदानुयायियोंके समान जैनियोंकी प्राचीन भाषा (प्राकृतसहित) संस्कृत थी। जैनी अवैदिक भारतीय-आर्योंका एक विभाग है। जैन, क्षपण, श्रमण, अर्हत् इत्यादि शब्द जो इस विभागके सूचक हैं, सब संस्कृतमूलक हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर यह दो शब्द भी, जो इस विभागकी संप्रदायोंके बोधक हैं, स्पष्टतया संस्कृतके हैं। जैन-दर्शनमें नौ पदार्थ माने गए हैं—जीव, अजीव, आस्रव (कर्मोंका आना), बंध (कर्मोंका आत्माके साथ बँधना), संवर (कर्मोंके आगमनका रुकना), निर्जरा (बँधे कर्मोंका नाश होना), मोक्ष (आत्माका कर्मोंसे सर्वथा रहित होना), पुण्य (शुभ कर्म) और पाप (अशुभ कर्म)। इन पदार्थोंमेंसे पहिले सात जैन-दर्शनमें तत्त्व कहे जाते हैं। हम यह भी देखते

है कि उपर्युक्त नौ पदार्थोंके नाम और वे शब्द भी, जो इनके अनेक विभागोके सूचक हैं, सब संस्कृतशब्द-संग्रहसे लिए गये हैं।

२—इसके अतिरिक्त सब तीर्थंकर, जिनसे जैनियोंके विख्यात सिद्धांतोंका प्रचार हुआ है, आर्य्य–क्षत्रिय थे। यह बात सर्वमान्य है कि आर्य्य–क्षत्रियोंके बोलने और विचार करनेकी भाषा संस्कृत थी। जैसे कि वेदानुयायियोंके वेद हैं इसी प्रकार जैनियोंके प्राचीन सस्कृत ग्रंथ है जो जैनमतके सिद्धांतोसें विभूपित हैं और वर्तमान-कालमे भी दक्षिण कर्नाटकमें मूडबद्रीके मंदिरोंके शास्त्रभंडारों और कुछ अन्य स्थानोंमे संग्रहीत हैं। ये प्राचीन लेख विशेषकर भोज-पत्रो पर संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमे हस्तलिखित हैं। प्रसिद्ध मुनिवर उमास्वातिविरचित तत्त्वार्थ–शास्त्र, जो कि जैनधर्मके तत्त्वोसे परि-पूर्ण है, संस्कृतका एक स्मारक ग्रंथ है; यह ग्रंथ महात्मा वेदव्यास कृत उत्तरमीमासाके समान है। ईस्वी सन्‌की द्वितीय शताब्दिके आरंभमें प्रसिद्ध समंतभद्रस्वामीने विख्यात गंधहस्ति महाभाष्य रचा। जो कि पूर्वोक्त ग्रंथकी टीका है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त दोनों ग्रंथोंपर औरोंने भी संस्कृतकी कई टीकायें रचीं। समंतभद्रस्वामीने उत्तरमें पाटलीपुत्रनगरसे दक्षिणी भारतवर्षमें भ्रमण किया। यही महात्मा पहले पहल दक्षिणमें दिगम्बरसंप्रदायके जैनियोंके निवास करनेमे सहायक और वृद्धिकारक होनेमे अग्रगामी हुए थे। इस संबंधमें यह बात याद रखने योग्य है कि श्वेताम्बरसंप्रदायके जैनी आजकल भी दक्षिण भारतवर्षमें बहुत ही कम हैं।

३–ऐसा मालूम होता है कि बहुत प्राचीन कालसे जैनियोमें भी उपनयन (यज्ञोपवीत–धारण) और गायत्रीका उपदेश प्रचलित है। आजकल भी जैनमंदिरोमें पूजन करनेमे और उन संस्कारोमें जो

साधारणतया जैनियोंके घरोंमें किये जाते है जिस भाषाका प्रयोग किया जाता है वह सस्कृत ही है।

४—जैनग्रथकारोंने अपना ध्यान केवल धर्म–विषयमें ही नही किन्तु सर्व–रोचक विषयोंपर भी लगाया है, संस्कृतमें ऐसे, अगणित अन्यान्य ग्रंथ हैं जो कि अटूट परिश्रम करनेवाले जैनियोंने रचे है। शाकटायन व्याकरण, जो सस्कृत व्याकरणका एक ग्रंथ है, एक जैन ग्रथकर्ता शाकटायनका रचा हुआ कहा जाता है। "लङः शाकटायनस्यैव," "व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य," पाणिनिके सूत्र है जो इस बातको स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि शाकटायनकी स्थिति पाणिनिके पूर्व थी। शाकटायन–व्याकरणके टीका–कर्त्ता, यक्षवर्माचार्यने ग्रंथकी प्रस्तावनाके श्लोकोमें यह स्पष्टतया प्रगट किया है कि शाकटायन जैन थे और वे श्लोक ये हैं:—

स्वस्ति श्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान्।
महाश्रमणसङ्घाधिपतिर्यः शाकटायनः ॥१॥
एकः शब्दाम्बुधिं बुद्धिमन्दरेण प्रमथ्य यः।
स यशःश्रियं समुद्दध्रे विश्वं व्याकरणामृतम् ॥२॥
स्वल्पग्रंथं सुखोपायं संपूर्णं यदुपक्रमम्।
शब्दानुशासनं सार्वमर्हच्छासनवत्परम् ॥३॥

* * * * * *

तस्यातिमहती वृत्तिं संहृत्येयं लघीयसी।
संपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा ॥५॥

इनका अर्थ यह है कि "सकलज्ञान–साम्राज्यपदभागी श्रीशाकटायनने,–जो कि जैन समुदायके स्वामी थे–अपने ज्ञानरूपी मंद्राचलसे (संस्कृत) शब्दरूपी सागरको मथ डाला और व्याकरणरूपी अमृ-

तको यशरूपी लक्ष्मी सहित प्राप्त किया। यह महाशास्त्र—जो कि अर्हत् भगवानके शासनके समान है—सर्वसाधारणके हितार्थ संपूर्ण, सुगम, और संक्षिप्त रीतिसे लिखा गया है। यह सरल टीका जो इसी ग्रंथकी (अमोघवृत्ति नामक) वृहद् टीका है—के आधारपर रची गई है और व्याकरणके सर्व गुणोंसे अलकृत है—यक्षवर्मोकृत है"।

५—इसके उपरान्त अमरकोश नामक प्राचीन कोशके रचयिता एक जैन कोशकार अमरसिंह[1] थे जो कि महाविद्वान् तथा संस्कृत साहित्यके अष्ट—जगद्विख्यात—वैयाकरणोंमेंसे थे। सर्व टीकाकारोंने इस, अमर ग्रंथका जैनकृत होनेपर भी सदृश मान किया है। क्रमशः ब्राह्मणोंके समान जैनियोंने भी उन लोगोंकी भाषा ग्रहण कर ली जिनके मध्यमें उन्होंने निवास किया; किन्तु कई शताब्दि होजानेपर भी वह आदर और प्रेम, जो उनको अपनी मातृ-भाषा संस्कृतसे था, नहीं घटा। क्योंकि उस अपूर्व विद्वत्तासे जो उन्होंने संस्कृतसाहित्यमें आगामी कालमें प्राप्त की, यह स्पष्ट है कि संस्कृतके अर्थ उनका आवेश अपरमित था। निम्नलिखित ग्रंथ जैनग्रंथकर्ताओंके रचे हुए हैं। **व्याकरणके ग्रंथ**—न्यास (प्रभाचंद्रकृत), कातंत्रव्याकरण अपरनाम कौमार व्याकरण (शर्ववर्मकृत), शब्दानुशासन (हेमचंद्रकृत), प्राकृत-व्याकरण (त्रिविक्रमकृत), रूपसिद्धि (दयापाल मुनिकृत), शब्दार्णव (पूज्यपादस्वामीकृत), इत्यादि; **कोश**—त्रिकाण्डशेष, नाममाला (धनञ्जयकृत), अभिधानचिंतामणि, अनेकार्थसंग्रह और हेमचन्द्रकृत अन्य कोश; **पुराण**—महापुराण, पद्मपुराण, पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण (प्राकृतमें),

---

[1] अमरसिंह बौद्धसम्प्रदायके थे ऐसा प्रसिद्ध है। इनके जैन होनेके विषमें अभीतक कोई सन्तोषयोग्य प्रमाण नहीं मिला है। —सम्पादक।

त्रिषष्ठिशलाका महापुराण और अन्य ग्रंथ; **गद्यग्रंथ**—गद्य-चिन्तामणि, तिलकमजरी, इत्यादि; **पद्यग्रंथ**—पार्श्वाभ्युदय, पार्श्वनाथचरित, चंद्रप्रभचरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाणकाव्य, जयतचरित, राघवपाडवीय (उपनाम द्विसंधानकाव्य), त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, यशोधरचरित, क्षत्रचूड़ामणि, मुनिसुव्रतकाव्य, बालभारत, बालरामायण, नागकुमारकाव्य और अन्यग्रथ; **चम्पू**—जीवंधरचम्पू, यशस्तिलकचम्पू, पुरुदेवचम्पू, इत्यादि; **अलंकारग्रंथ**—वाग्भटालङ्कार, अलकारचिंतामणि, अलकारतिलक, हेमचंद्रकृत काव्यानुशासन, इत्यादि; **नाटक**—विक्रातकौरवपौरवीय, अजनापवनजय, ज्ञानसूर्योदय, इत्यादि; **चिकित्साग्रंथ**—अष्टागहृदय; **गणित** (**खगोल**) **व फलित** ज्योतिषग्रथ—गणितसारसग्रह, त्रिलोकसार, भद्रबाहुसहिता, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चद्रसूर्यप्रज्ञप्ति, इत्यादि; **न्यायग्रंथ**—आप्तपरीक्षा, पत्र परीक्षा, समयप्राभृत(?)न्यायविनिश्चयालकार, न्यायकुमुदचद्रोदय, आप्तमीमासालकृति (अष्टसहस्री), इत्यादि; हेमचंद्रकृत योगशास्त्र और अन्यग्रंथ। जैन महात्माओं द्वारा रचित सैकडों ग्रथोंकी गणना करना यहाँ सभव नहीं है। इनमेंसे कुछ ग्रंथ तो प्रभावशाली और अग्रशाली मनुष्योद्वारा, जिन्होंने इस कार्यको प्रेम-कृत्य समझा है, प्रकाशित हो चुके हैं और शेष अभी समयके प्रकाशकी प्रतीक्षा कर रहे है।

६—प्राचीन जैनियोंने अपने निवासस्थानोमें अपने मतका प्रचार करनेके लिये बहुतसे अनुपम और उत्तम ग्रथ लिखे। उन स्थानोंकी देशी भाषाओंके साहित्यकी वृद्धि करनेमें भी उन्होंने कुछ कम परिश्रम न किया। जो ग्रथ उन्होंने देशी भाषाओंमें लिखे है वे अधिक-

---

१ अष्टाङ्गहृदयके कर्ता वैद्यवर वाग्भट जैन थे, इसमें भी सन्देह है। अब तककी खोजोंसे वे बौद्ध प्रतीत होते हैं। —सम्पादक।

तर सस्कृत मूलग्रंथोंके आधारपर हैं। कुछ अज्ञात कारणोंके वश जैनी पराक्रम और संख्यामें घटने लगे, तव उनका गौरव भी नष्ट होने लगा। उपर्युक्त वातोपर विचार करनेसे यही अकाट्य अनुमान होता है कि प्राचीनकालमे जैनियोंकी भाषा सस्कृत थी।

७—इसके पश्चात् अव हम इस वातपर विचार करेंगे कि जैनियोंने दक्षिण भारतवर्षमें अपने ग्रहण किये हुए देशोंके साहित्यकी उन्नतिके अर्थ क्या किया। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण भारतवर्षकी चार मुख्य द्रविडभाषाओं अर्थात् तामिल, तैलग, मलायालम और कानडीमेंसे केवल प्रथम और अतिमके साथ जैनियोंका सवंध रहा। यह वात वडी आश्चर्यजनक है कि तैलंग तथा मलायाल्म भाषामें ऐसे किसी भी ग्रंथका अस्तित्व नहीं है जो किसी जैनकी लेखनीसे निकला हो। जवसे जैनी कर्नाट अथवा कनडी वोलनेवाले लोगोंके देशमें गए तवसे उन्होंने कनडी भाषामे हजारो ग्रथ रच डाले है किन्तु इस छोटेसे लेखमें उनके विस्तारपूर्वक वर्णन करनेका अवकाश नहीं। तामिल भाषाके साहित्यमें जो उन्नति जैनग्रथकारोंने की है, उसके विषयमें ये वातें जानने योग्य हैं:—

(क) तिरुकुरलको, जो एक शिक्षाप्रद ग्रंथ है, और वास्तविकमें तामिल काव्य है, अमर तिरुवल्लुवानयनरने रचा था। इनका यश इतना अधिक है कि कदाचित् हिन्दू इन्हे अपनोंमेंसे ही वतावें किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि वे जैन थे। इस ग्रथमें सदाचार, धन और प्रेमका वर्णन १३३ अध्यायोंमें है और प्रत्येक अध्यायमें १० दोहे हैं। यह ग्रंथ अपने स्वभावमे ऐसा सर्वदेशीय है कि इसको वडे वडे लेखकोंने, जो कि भिन्न भिन्न धर्मोंके

अनुयायी हैं सहर्ष उद्धृत किया है और इसका अनुवाद यूरोपकी चारसे अधिक भाषाओंमें हो चुका है ।*

(ख) नालदियार नामक ग्रथका संबध कई जैन मुनियोंसे है और यह कहा जाता है कि इसको पद्मनार नामक जैनने उन्हीं मुनियोंके ग्रथोंसे संग्रह किया था । इस काव्य-संग्रहमें ४०० चौपाइयाँ है और इसमें उन्हीं विषयोकी व्याख्या है जिनकी कि तिरुक्कुलमें है। यह ईस्वी सन्‌की आठवीं शताब्दिके अतिम अर्धभागमें रचा गया था जैसा कि मद्रूराके " सडोंमिल" (वौल्यूम न० ४,५ और ६)में इस लेख लेखकके दिये हुए एक लेखके अवलोकनसे मालूम होगा। इस ग्रथमे कई छंद है जो भर्तृहरि और अन्य संस्कृत लेखकोंके श्लोकोंके, आधारपर लिखे गये हैं।†

---

* इस मतकी पुष्टिमें डाक्टर जी ए. ग्रियर्सन लिखते हैं कि " इस (तिरुवल्लुवानयर कृत कुरलमें . ...२६६० छोटे छद हैं । इसमें सदाचार, धन और सुखके तीन विषय हैं । यह तामिल साहित्यका सर्वमान्य महाकाव्य है । शैव, वैष्णव अथवा जैन प्रत्येक सप्रदायवाले इसके कर्त्ताको अपनी ही सप्रदायका बतलाते है, परन्तु विशप कौल्डवैलका विचार है कि इस ग्रथका ढग औरोंकी अपेक्षा जैन है । इसके कर्त्ताकी विख्यात भगिनी जिसका नाम औवेयार "प्रतिष्ठित माता " था सबसे अधिक प्रशसनीय तामिल कवियोंमेंसे हैं । (देखो इम्पीरियल गजेटियर, वौल्यूम २, पृष्ठ ४३४) । —अनुवादक

† डा० ग्रियर्सन इस सवधमें लिखते हैं कि मुख्य तामिल साहित्य जैनियोंके ही परिश्रमका फल है । जिन्होंने ८ या ९ से लेकर १३ वीं शताब्दि तक इस भाषामें ग्रथ रचनेका उद्योग किया। सबसे प्राचीन महत्त्वका ग्रथ 'नालदियार' समझा जाता है और कहा जाता है कि इसमें पहिले ८००० छद थे जिनको एक एक करके उतने ही जैनियोंने लिखा था । एक राजाने इसके लेखकोंसे विरोध किया और इन छदोंको नदीमें फेंक दिया । इनमेंसे केवल ४०० छद पानीके ऊपर तैरे और शेष लोप हो गए। आजकल 'नालदियार' में ये ही ४०० छद हैं । प्रत्येक छद सदाचारकी एक एक पृथक् सूक्ति है और शेषसे कोई सवध नहीं रखता । इस सग्रहकी बहुत प्रतिष्ठा है और यह अब भी तामिल भाषाकी प्रत्येक पाठशालामें पढाया जाता है। (इ० ग० वौ० २, पृष्ठ ४३४)

(ग) जीवकचिन्तामणि अर्थात् पौराणिक जीवक राजाका चरित जो एक विख्यात जैन मुनि तिरुत्तकुदेवर रचित है। इस पुस्तकमें १३ खंड अर्थात् लम्बक हैं जिनमें ३१४५ गाथायें है। इस सबंधमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसकी कुछ गाथाओंकी ठीक ठीक छाया (बिम्ब-प्रतिबिंब) वादीभसिंहकृत (संस्कृत) क्षत्रचूडामणिमें है और दोनोमें इतनी समानता है कि यह बतलाना सर्वथा सम्भव नहीं है कि किसने किसका अनुकरण किया है। तामिल साहित्यके पंच-महाकाव्योंमें इसका स्थान प्रथम है। शेष चार काव्योंमेसे दो काव्य अर्थात् 'वलयाति' और 'कुंदलकेसी' दो ग्रन्थ जैन लेखकोके बनाये हुए हैं। मालूम होता है कि इन दोनोंमेंसे कुंदलकेसीका अस्तित्व तो है नहीं और दूसरे काव्यके भी टुकडे ही समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

(घ) पांच लघु कवितायें भी (जिनको सिरु-पंचकाव्य कहते है) सब जैनियोंद्वारा रची गई है।

(१) तोलामोलित्तेवर (विवादमें अजेय) कृत चूलामणिमें २१३१ चौपाइयॉ १२ सर्गोमें है और यह ग्रंथ ईसाकी दसवीं शताब्दिके आरंभमें रचा गया था। मिस्टर टी. ए. गोपीनाथ एम. ए., सुपरिन्टेंडेन्ट ऑफ आर्किऔलाजी, ट्रावनकोर, ने जो संस्कृत यशोधरकाव्यकी प्रस्तावना लिखी है उसमें स्पष्टतया अपनी यह सम्मति दी है कि श्रवणबेलगोलाके मल्लिषेणके समाधिलेखके श्रीवर्द्धदेव और तोलामोलित्तेवर एक ही है और जिस ग्रंथका हवाला उस लेखमें दिया है वह उसी नामका तामिल काव्य ही है।

(२) यशोधरकाव्य एक अज्ञात जैन कृत है। इसमे चार सर्ग है जिनमें ३२० छंद है। यह पौराणिक राजा यशोधरका चरित्र है। इस

---

१. चूलामणि. कर्त्तारा चूलामणिनामसेव्यकाव्यकविः।
श्रीवर्द्धदेव एव हि कृतपुण्य कीर्त्तिमाहर्त्तुम्॥

ग्रंथमें कई ऐसी गाथायें हैं जो उसी नामके संस्कृत ग्रंथके कई श्लोकोंसे इतनी विशेषतर मिलती जुलती हैं कि यह तामिलका ग्रंथ उस संस्कृत ग्रन्थका पद्यानुवाद कहा जा सकता है।

(३) उदयानन गधई, जो कि वत्सदेशके राजा उदयनका चरित है। छह सर्गोंका एक अज्ञात जैन कृत ग्रथ है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रंथको एक दूसरे उदयन-काव्य नामक ग्रंथके साथ न मिला देना चाहिए। क्योंकि उसमें भी वही चरित है किन्तु वह एक दूसरे ग्रंथकर्ताका बनाया हुआ है। इसमें ६ सर्ग हैं जिनमे ३६७ गाथायें सर्वथा भिन्न भिन्न छदोंकी है। वह ग्रथ जिसकी गणना पांच लघु कविताओंमें है उपर्युक्त पहला ग्रथ है, क्योकि विख्यात टीकाकार जैसे 'नच्छनर्किनियर' इत्यादिने अपने ग्रन्थोंमे इसी ग्रंथ-मेंसे वचन उद्धृत किये है।

(४) नागकुमार काव्य, जो कि कालके विनाशसे बञ्चित नहीं रहा है।

(५) नीलकेसी जो १० सर्गोंमें है। इस ग्रथमें जैनधर्मके तत्त्वोंकी पुष्टि की गई है; इसके कर्त्ताका पता नहीं। इस ग्रंथपर मुनि 'समय दिवाकर' की लिखी हुई एक बड़ी टीका है।

(ङ) पंडित गुणवीररचित 'वज्रिरानादिमलई,' जो कि एक कविता है।

(च) मेरुमंदरपुराण, जिसके कर्ता वामनाचार्य है जो कि संस्कृत और तामिल दोनोंके समान पडित हैं। इस ग्रथमें १४०६ गाथायें है जो १२ सर्गोंमें हैं। इसमें दो भाई मेरू और मंदरका वृत्तांत और जैनमतका संपूर्ण विवरण दिया है।

(छ) शिक्षाप्रद कवितायें—

(१) ' पलामोली,' जैनकवि ' मुतरुरई अरायनर ' कृत बुद्धिविषयक सूक्तियोका ग्रंथ है जिसमे ४०० गाथायें हैं और प्रत्येक गाथामे किसी विख्यात सूक्तिकी व्याख्या है जो उसीके अंतमें दी गई है।

(२) ' आचारकोवई, ' ' पेरूवेपीमुल्लेर ' कृत (१०० गाथाओंका) ग्रंथ है जिसमें सदाचारके नियम लिखे हैं।

(३) तिरुकडुकम, जो ' नल्लुत्तागर ' कृत है।

(४) सिरुपंचमूलम, जो ' ममूलनर ' के एक शिष्यकृत है।

(५) पेलदी, जिसके कर्त्ता ' मदुरई मामिलसंगमफेम ' के 'मकापनर' के एक शिष्य हैं; इत्यादि अन्य ग्रंथ।

(ज) व्याकरण—

(१) 'अहापोरुलिलक्कानम,' जो कि तामिलकी सबसे प्राचीन तोलकाप्पियम नामक व्याकरणके तृतीय भागका संक्षेप है। इसमें पांच अध्याय हैं और ' नरक्कवि राजनंदी ' जैन कृत है।

(२) पप्परुंकलम, मुनिकनकसागर कृत छंद और अलंकारका ग्रंथ है, जिसमे तीन सर्ग हैं और ९५ गाथायें हैं।

(३) यप्पुरकल करिकई, अमृतसागर मुनि कृत पूर्वोक्त ग्रंथकी टीका है।

(४) विराचोलियम, जो राजा वीरचोलको समर्पित एक व्याकरणका ग्रंथ है। इसके कर्त्ता बुद्धमित्र है जो संभवतः जैन थे। इसमें १५१ गाथायें हैं और उसीकी एक टीका भी है। इसमें वर्ण, शब्द, वाक्य, छंद तथा अलकारोंका वर्णन है। यह ग्रंथ ईस्वी सन्‌की ११ वीं शताब्दिके लगभग लिखा गया था, (देखो " सॅडामिल,", वौल्यूम १०, पृष्ठ २८७।)

(५) नन्नुल, इसके कर्ता प्रसिद्ध पवनदी (भवनान्दिन) थे, जिन्होंने यह ग्रंथ चोल वंशके कुलोत्तुंग तृतीयके एक जागीरदार अमराभरण सिपा गगाके अनुरोधसे १२ वीं शताब्दिके अतमें लिखा था, क्योंकि यह भली भाँति माल्म है कि कुलोत्तुग तृतीय ईस्वी सन् ११७८ में सिंहासनारूढ़ हुए थे। इस ग्रंथमे केवल वर्णों और शब्दोका विवरण है और वर्तमान कालमें अधिकतासे प्रामाणिक समझा जाता है।

(६) नेमिनिदम पडित गुणवीर कृत एक व्याकरण ग्रथ है जिसमे वर्णों और शब्दोका विवरण है। इसमें ९६ गाथायें है और उनकी टिप्पणियाँ भी हैं।

(ज) कोष—चूडामणि निघटु, मंडलपुरुष कृत, १२ अध्यायोंमें है और दो अन्य कोशों 'दिवाकरनिघटु' और 'पिंगलंतई' के आधार पर है। मडलपुरुपने अपने आपको उत्तरपुराणके कर्ता गुणभद्राचार्यका शिष्य वताया है। क्योंकि यह अच्छी तरह माल्म है कि उत्तरपुराण ईस्वी सन् ८८८ मे समाप्त हुआ और क्योंकि मंडलपुरुपने राष्ट्रकूटवशीय राजा अकालवर्प कृष्णराजका वर्णन किया है जो ईस्वी सन् ८७५ और ९११ के मध्यमें राज्य करते थे, अतएव यह ग्रथ ईस्वी सन्‌की १० वीं शताब्दिके प्रथम चतुर्थांशमें लिखा गया होगा।

(झ) ज्योतिप—जिनेद्रमलई, जो कि ज्योतिपका सर्व प्रिय तामिल ग्रथ है। प्रायः इसके रचयिता जिनेन्द्र व्याकरणके कर्त्ता (पूज्यपाद) थे।

८—हमको वर्तमान कालमे जैनियो कृत केवल उपर्युक्त ग्रथ ही माल्म हैं। मद्रास यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) ने अपनी आर्ट्स परीक्षाओंके लिए इनमेंसे कई ग्रन्थोंको पाठ्य पुस्तकें नियत कर दिया है। इनमेंसे अधिकाश ग्रन्थोंको आधुनिक तामिल विद्वानोंने, जो कि अजैन

है, प्रकाशित किया है और इनमेंसे बहुतसोको उत्तम टीकाओं सहित प्रकाशित किया है। यह खेदका विषय है कि दक्षिणी भारतवर्षके जैनियोने अपने सहधर्मियोंके दक्षिणी भारतके साहित्यके इन बहुमूल्य ग्रंथोंके मुद्रित करनेमें तथा उन कई अन्य अत्यन्त निर्मल, और स्वच्छ किरणोंवाले रत्नोंको, जो बहुतसे प्राचीन जैन घरों और मठोंके जीर्णशास्त्रभडारो, और अंधेरी गुफाओंमे गढे हुए पड़े हैं, प्रकाशित करनेमें अब तक वहुत कम रुचि प्रकट की है जब कि उनके उत्तरीय साथी अपनी स्वाभाविक उदारतासे जैन-गौरवको फैलानेमें, अग्रसर हुए हैं; क्योंकि उन्होंने ऐसे विद्यालय और छात्रालय खोले है जो कि विशेपकर उन्हींकी जातिके व्यक्तियोंके निमित्त हैं, जैनकर्त्ताओंके ग्रथ प्रकाशित किये हैं, सार्वजनिक पुस्तकालय जिनमें संस्कृत, बंगला, हिंदी, तामिल इत्यादिके केवल जैनग्रंथ है स्थापित किये है, और ऐसे ही अन्य कार्य किये हैं जो उनको सहधर्मियोंकी, जो उत्तरीय भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैले हुए है, उन्नति और वृद्धिमे सहायक हैं। आशा की जाती है कि दक्षिण भारतवर्षके जैनी भी अपनी जात्युन्नतिकी अनुयोग्यता (जिम्मेवारी) को, जो उनके ऊपर है, समझ कर जागृत हो जावेंगे और अपने उत्तरीय भाइयोंके उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

मोतीलाल जैन,

आगरा

ग्रन्थपरीक्षा।

(१)

उमास्वामि श्रावकाचार।

(गताङ्कसे आगे।)

(२) अब, उदाहरणके तौरपर, कुछ परिवर्तित पद्य, उन पद्योंके साथ जिनको परिवर्त्तन करके वे बनाये गये मालूम होते हैं, नीचे प्रगट किये जाते हैं। इन्हें देखकर परिवर्त्तनादिकका अच्छा अनुभव हो सकता है। इन पद्योंका परस्पर शब्दसौष्ठव और अर्थगौरवादि सभी विषय विद्वानोंके ध्यान देने योग्य है:—

१—स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥
(रत्नकरण्डश्रावकाचार)

स्वभावादशुचौ देहे रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्घृणा च गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥४१॥
(उमास्वामि श्राव०)

२—ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥
(रत्नकरंड श्रा०)

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्यमानित्वं गतदर्पमिदं विदुः ॥८५॥
(उमा० श्रा०)

३—स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥
(रत्नकरंड श्रा०)

धर्मकर्मरतेर्दैवात्प्राप्तदोषस्य जन्मिनः।
वाच्यतागोपनं प्राहुरार्याः सदुपगूहनम् ॥५४॥
(उमास्वामि श्रा०)

४—दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
(रत्नकरण्ड० श्रा०)

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयाद्भ्रष्टस्य जन्मिनः।
प्रत्यवस्थापनं तज्ज्ञा स्थितीकरणमूचिरे ॥ ५८ ॥
(उमा० श्रा०)

५—स्वयूथ्यान्प्रतिसद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥
(रत्नकरण्ड० श्रा०)

साधूनां साधुवृत्तीनां सागाराणां सधर्मिणाम्।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं तज्ज्ञैर्वात्सल्यमुच्यते ॥ ६३ ॥
(उमा० श्रा०)

६—सम्यग्ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं वदन्ति जिनाः।
ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानंतरं तस्मात् ॥ ३३ ॥
(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)

सम्यग्ज्ञानं मतं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं यतः।
ज्ञानस्याराधन प्रोक्तं सम्यक्त्वानंतर ततः ॥ २८७ ॥
(उमा० श्रा०)

७—हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
वहवो जीवा योनौ हिस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥ १०८ ॥
(पुरुषार्थसि०)

तिलनाल्यां तिला यद्वत् हिंस्यन्ते वहवस्तथा।
जीवा योनौ च हिंस्यन्ते मैथुने निंद्यकर्मणि ॥ ३७० ॥
(उमा० श्रा०)

× × × × × ×

८—मनोमोहस्य हेतुत्वान्निदानत्वाच्चदुर्गतेः।
मद्यं सद्भिः सदात्याज्यमिहामुत्र च दोषकृत् ॥
(यशस्तिलक)

---

१ यह पूर्वार्ध 'स्वयूथ्यान्प्रति' इस इतनेही पदका अर्थ मालूम होता है। शेष सद्भावसनाथा..." इत्यादि गौरवान्वित पदका इसमें भाव भी नहीं आया।

मनोमोहस्यहेतुत्वान्निदानत्वाद्भवापदाम् ।
मद्यं सद्भिः सदा हेयमिहामुत्र च दोषकृत् ॥ २६१ ॥
(उमा० श्रा०)

९—मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् ।
अष्टौ शंकादयश्चेतिदृग्दोषा पंचविंशतिः ॥
(यशस्तिलक)

मूढत्रिक चाष्टमदास्तथानायतनानि षट् ।
शंकादयस्तथाचाष्टौ कुदोषाः पचविंशतिः ॥ ८० ॥
(उमा० श्रा०)

* * * * * *

१०—साध्यसाधनभेदेन द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते ।
कथ्यते क्षायिकं साध्यं साधनं द्वितयं परं ॥ २-५८॥
(अमितगत्युपासकाचार)

साध्यसाधनभेदेन द्विधासम्यक्त्वमीरितम् ।
साधन द्वितय साध्यं क्षायिक मुक्तिदायकम् ॥२७॥
(उमा० श्रा०)

* * * * *

११—या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः ।
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ २-२ ॥
देवे देवमतिर्धर्मेधर्मधीर्मलवर्जिता ।
या गुरौ गुरुताबुद्धिः सम्यक्त्वं तन्निगद्यते ॥ ५ ॥

१२—हन्ता पलस्य विक्रेता संस्कर्ता भक्षकस्तथा (उमा० श्रा०)
क्रेतानुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनुः ॥३-२०
(योगशास्त्र)

हन्ता दाता च संस्कर्त्तानुमन्ता भक्षकस्तथा ।
क्रेतापलस्य विक्रेता यः स दुर्गतिभाजनं ॥ २६३ ॥
(उमा० २५७)

१३—स्त्रीसंभोगेन यः कामज्वरं प्रति चिकीर्षति ।
स हुताशं घृताहुत्या विध्यापयितुमिच्छति । (योगशास्त्र)

---

१ इसके आगे 'मनुस्मृति'के प्रमाण दिये है, जिनमेंसे एक प्रमाण "नाकृत्वा प्राणिना हिंसा......" इत्यादि ऊपर उद्धृत किया गया है ।

मैथुनेन स्मराग्निं यो विध्यापयितुमिच्छति ।
सर्पिषा सज्वरं मूढः प्रौढं प्रति चिकीर्षति ॥ २७१ ॥
(ज्ञा० १५)

१४-कम्पः स्वेदः श्रमो मूर्छा भ्रमिर्ग्लानिर्बलक्षयः ।
राजयक्ष्मादिरोगाश्च भवेयुर्मैथुनोत्थिताः ॥२-७२ (योगशास्त्र)
स्वेदो भ्रान्तिः श्रमो ग्लानिर्मूर्च्छा कम्पो बलक्षयः ।
मैथुनोत्था भवन्त्येते व्याधयोऽप्याधयस्तथा ॥ ३६५ ॥
(उपा. श्रा०)

१५-वासरे च रजन्यां च यः खादन्नेव तिष्ठति ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टः स्पष्टं स पशुरेव हि ॥३६२ (योगशास्त्र)
खादन्त्यहर्निशं येऽत्र तिष्ठंति व्यस्तचेतना : ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टास्ते कथं पशवो न वा॥३२३(उपा० श्रा०)
अह्नो मुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनं ॥ ३६३ ॥
वासरस्य मुखे चान्ते विमुच्य घटिकाद्वयम् ॥ ३२४ ॥
योऽशनं सम्यगाधत्ते तस्यानस्तमितव्रतम् ॥ (उपा०श्रा०)
रजनीभोजनत्यागे ये गुणाः परितोऽपि तान् ।
न सर्वज्ञादृते कश्चिदपरो वक्तुमीश्वरः ॥ ३७० ॥ (योगशास्त्र)
रात्रिभुक्तिविमुक्तस्य ये गुणाः खलु जन्मिनः ।
सर्वज्ञमन्तरेणान्यो न सम्यग्वक्तुमीश्वरः ॥ ३२७ ॥
(उपासका० श्रा०)

योगशास्त्रके तीसरे प्रकाशमें, श्री हेमचंद्राचार्यने १५ मलीन कर्मादानोंके त्यागनेका उपदेश दिया है। जिनमें पंच जीविका, पांच वाणिज्य और पंच अन्यकर्म हैं। इनके नाम दो श्लोकों (नं. ९९–१००) में इस प्रकार दिये हैं:—

१ अंगारजीविका, २ वनजीविका, ३ शकटजीविका, ४ भाटकजीविका, ५ स्फोटकजीविका, ६ दन्तवाणिज्य, ७ लाक्षावाणिज्य,

८ रसवाणिज्य, ९ केशवाणिज्य, १० विषवाणिज्य, ११ यंत्रपीडा, १२ निर्लांछन, १३ असतीपोषण, १४ दवदान और १५ सरःशोष। इसके पश्चात् (श्लोक नं ११३ तक) इन १४ कर्मादानोंका पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णन किया है। जिसका कुछ नमूना इस प्रकार है:—

" अंगारभ्राष्ट्रकरणांकुंभाय स्वर्णकारिता।
ठठारत्वेष्टकापाकाविती ह्यंगारजीविका॥ १०१॥
नवनीतवसाद्रक्षौद्रमद्यप्रभृतिविक्रयः।
द्विपाच्चतुष्पाद्विक्रयो वाणिज्यं रसकेशयोः॥ १०८॥
नासावेधोऽङ्कनमुष्कच्छेदनं पृष्टगालनं।
कर्णकम्बलविच्छेदो निर्लांछनमुदीरितं॥ १११॥
सारिकाशुकमार्जाराश्वकुर्कटकलापिनाम्।
पोषो दास्याश्च वित्तार्थमसतीपोषणं विदु॥ ११२॥

(योगशास्त्र)

इन १५ कर्मोंका निषेध किया गया है, प्रायः इन सभी कर्मोंक निषेध उमास्वामिश्रावकाचारमें भी श्लोक न. ४०३ से ४१२ तक पाया जाता है। परन्तु १४ कर्मादान त्याज्य है; वे कौन कौनसे है और उनका पृथक् पृथक् स्वरूप क्या है; इत्यादि वर्णन कुछ भी नहीं मिलता। योगशास्त्रके उपर्युक्त चारों श्लोकोंसे मिलते जुलते उमास्वामिश्रावकाचारमें निम्नलिखित श्लोक पाये जाते हैं; जिनसे माल्डम हो सकता है कि इन पद्योंमें कितना और किस प्रकारका परिवर्त्तन किया गया है:—

"अंगारभ्राष्ट्रकरणमयःस्वर्णादिकारिता।
इष्टकापाचनं चेति त्यक्तव्यं मुक्तिकांक्षिभिः॥ ४०४॥
नवनीतवसामद्यमध्वादीनां च विक्रयः।
द्विपाच्चतुष्पाच्चविक्रेयो न हिताय मतः क्वचित्॥ ४०॥

कंदनं नासिकावेधो मुष्कच्छेदोंघ्रिभेदनम् ।
कर्णापनयनं नामनिर्लोछनमुदीरितम् ॥ ४११ ॥
केकीकुक्कटमार्जारसारिकाशुकमंडलाः ।
पोष्यं तेन कृतप्राणिघाताः पारावता अपि ॥ ४०३ ॥
(उमास्वा० श्रा०)

भगवदुमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्रपर 'गंधहस्ति' नामका महाभाष्य रचनेवाले और रत्नकरंड श्रावकाचारादि ग्रंथोंके प्रणेता विद्वच्छिरोमणि स्वामी **समन्तभद्राचार्यका** अस्तित्व विक्रमकी दूसरी शताब्दीके लगभग माना जाता है; पुरुषार्थसिद्ध्युपायादि ग्रंथोंके रचयिता **श्रीमदमृतचंद्रसूरिने** विक्रमकी १० वीं शताब्दीमें अपने अस्तित्वसे इस पृथ्वीतलको सुशोभित किया है; यशस्तिलकके निमार्णकर्ता **श्रीसोमदेवसूरि** विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें विद्यमान् थे और उन्होंने वि. सं. १०१६ (शक सं. ८८१) में यशस्तिलकको बनाकर समाप्त किया है; धर्मपरीक्षा तथा उपासकाचारादि ग्रंथोंके कर्ता **श्रीअमितगत्याचार्य** विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं; योगशास्त्रादि बहुतसे ग्रंथोंके सम्पादन करनेवाले श्वेताम्बराचार्य **श्रीहेमचंद्रसूरि** राजा कुमारपालके समयमें अर्थात् विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमे (सं. १२२९ तक) मौजूद थे; और पं. मेधावीका अस्तित्वसमय १६ वीं शताब्दी है। आपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारको विक्रम संवत् १५७१में बनाकर पूरा किया है।

अब पाठकगण स्वयं समझ सकते है कि यह ग्रथ (उमास्वामिश्रावकाचार), जिसमें बहुत पीछेसे होनेवाले इन उपर्युक्त विद्वानोंके ग्रंथोंसे पद्य लेकर उन्हें ज्योंका त्यों या परिवर्तित करके रक्खा है, कैसे सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ हो सकता है? सूत्रकार भगवान्

१ 'निर्लाछन' का जब इससे पहले इस श्रावकाचारमें कहीं नामनिर्देश नहीं किया गया, तब फिर यह लक्षण निर्देश कैसा ?

उमास्वामिकी असाधारण योग्यता और उस समयकी परिस्थितिको, जिस समयमें कि उनका अवतरण हुआ है, सामने रखकर परिवर्तित पद्यों तथा ग्रंथके अन्य स्वतंत्र बने हुए पद्योंका सम्यगवलोकन करनेसे साफ माळूम होता है कि यह ग्रंथ उक्त सूत्रकार भगवान्का बनाया हुआ नहीं है। बल्कि उनसे दशोंशताब्दी पीछेका बना हुआ है।

इस ग्रंथके एक पद्यमें व्रतके, सकल और विकल ऐसे, दो भेदोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि सकल व्रतके १३ भेद और विकल व्रतके १२ भेद हैं। वह पद्य इस प्रकार है:—

"सकलं विकलं प्रोक्तं द्विभेदं व्रतमुत्तमं।
सकलस्य त्रिदश भेदा विकलस्य च द्वादश॥ २५७॥

परन्तु सकल व्रतके वे १३ भेद कौनसे हैं? यह कहींपर इस शास्त्रमें प्रगट नहीं किया। तत्त्वार्थसूत्रमें सकलव्रत अर्थात् महाव्रतके पांच भेद वर्णन किये हैं। जैसा कि निम्नलिखित दो सूत्रोंसे प्रगट है:—

"हिंसानृतस्तेयब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥ ७-१॥
"देशसर्वतोऽणुमहती"॥ ७-२॥

संभव है कि पंचसमिति और तीन गुप्तिको शामिलकरके तेरह प्रकारका सकलव्रत ग्रंथकर्त्ताके ध्यानमें होवे। परन्तु तत्त्वार्थसूत्रमें, जो भगवान् उमास्वामिका सर्वमान्य ग्रंथ है, इन पंचसमिति और तीन गुप्तियोंको व्रतसंज्ञामें दाखिल नहीं किया है। विकलव्रतकी संख्या जो बारह लिखी है वह ठीक है और यही सर्वत्र प्रसिद्ध है। तत्त्वार्थसूत्रमें भी १२ व्रतोंका वर्णन है जैसा कि उपर्युक्त दोनों सूत्रोंको निम्नलिखित सूत्रोंके साथ पढ़नेसे ज्ञात होता है:—

"अणुव्रतोऽगारी"॥ ७-२०॥
"दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च"॥ ७-२१॥

इस श्रावकाचारके श्लोक नं. ३५८*में भी इन गृहस्थोचित व्रतोंके पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे, बारह भेद वर्णन किये हैं। परन्तु इसी ग्रंथके दूसरे पद्यमें ऐसा लिखा है कि—

"एवं व्रतं मया प्रोक्तं त्रयोदशविधायुतम्।
निरतिचारकं पाल्य तेऽतीचारास्तु सप्ततिः ॥ ४६१ ॥

अर्थात्—मैंने यह तेरह प्रकारका व्रतवर्णन किया है जिसको अतीचारोंसे रहित पालना चाहिये और वे (व्रतोंके) अतीचार संख्यामे ७० है।

यहापर व्रतोंकी यह १३ संख्या ऊपर उल्लेख किये हुए श्लोक नं. २५९ और ३२८ से तथा तत्त्वार्थसूत्रके कथनसे विरुद्ध पड़ती है। तत्त्वार्थसूत्रमें 'सल्लेखना'को व्रतोंसे अलग वर्णन किया है। इस लिये सल्लेखनाको शामिल करके यह तेरहकी संख्या पूरी नहीं की जा सकती।

व्रतोंके अतीचार भी तत्त्वार्थसूत्रमें ६० ही वर्णन किये है। यदि सल्लेखनाको व्रतोंमें मानकर उसके पाच अतीचार भी शामिल कर लिये जावे तब भी ६५ (१३×५) ही अतिचार होगे। परन्तु यहांपर व्रतोंके अतीचारोंकी सख्या ७० लिखी है, यह एक आश्चर्यकी बात है। सूत्रकार भगवान् उमास्वामिके वचन इस प्रकार परस्पर या पूर्वापर विरोधको लिये हुए नहीं हो सकते। इसी प्रकारका परस्परविरुद्ध कथन और भी कई स्थानोंपर पाया जाता है। एक स्थानपर शिक्षाव्रतोंका वर्णन करते हुए लिखा है:—

---

* "अणुव्रतानि पच स्युस्त्रिप्रकार गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि सागाराणा जिनागमे" ॥ ३५८ ॥
(उमा० श्रा०)

"स्वशक्त्या क्रियते यत्र संख्याभोगोपभोगयोः।
भोगोपभोगसंख्याख्यं तत्तृतीयं गुणव्रतम्॥ ३३०॥"
(उमा० श्रा०)

इस पद्यसे यह साफ प्रगट होता है कि ग्रंथकर्त्ताने, तत्त्वार्थसूत्रके विरुद्ध, भोगोपभोग परिमाण व्रतको, शिक्षाव्रतके स्थानमें तीसरा गुण-व्रत वर्णन किया है। परन्तु इससे पहले खुद ग्रथकर्त्ताने 'अनर्थदण्ड-विरति' को ही तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है। और वहां दिग्विरति देशविरति तथा अनर्थदडविरति, ऐसे तीनों गुणव्रतोंका कथन किया है। गुणव्रतोंका कथन समाप्त करनेके बाद ग्रथकार इससे पहले आद्यके दो शिक्षाव्रतों (सामायिक—पोषधोपवास) का स्वरूप भी दे चुके हैं। अब यह तीसरे शिक्षाव्रतके स्वरूपकथनका नम्बर था जिसको आप 'गुणव्रत' लिख गये। कई आचार्योंने भोगोपभोगपरिमाण व्रतको गुणव्रतोंमें माना है। मालूम होता है कि यह पद्य किसी ऐसे ही ग्रथसे लिया गया है जिसमें भोगोपभोगपरिमाण व्रतको तीसरा गुण-व्रत वर्णन किया है और ग्रन्थकार इसमे शिक्षाव्रतका परिवर्तन करना भूल गये अथवा उन्हे इस बातका स्मरण नहीं रहा कि हम शिक्षा-व्रतका वर्णन कर रहे हैं। योगशास्त्रमें भोगोपभोगपरिमाणव्रतको दूसरा गुणव्रत वर्णन किया है और उसका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

भोगोपभोगयोः संख्या शक्त्या यत्र विधीयते।
भोगोपभोगमानं तद्द्वितीयीकं गुणव्रतम्॥ ३-४॥

यह पद्य ऊपरके पद्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। सभव है कि इसीपरसे ऊपरका पद्य बनाया गया हो और 'गुणव्रतम्' इस पदका परिवर्त्तन रह गया हो। इस ग्रथके एक पद्यमें 'लोंच'का कारण भी वर्णन किया गया है। वह पद्य इस प्रकार है:—

"अदैन्यं वैराग्यकृते कृतोऽयं केशलोचकः।
यतीश्वराणां वीरत्वं व्रतनैर्मल्यदीपकः ॥ ५० ॥
(उमा० श्रा०)

इस पद्यका ग्रंथमें पूर्वोत्तरके किसी भी पद्यसे कुछ सम्बंध नहीं है। न कहीं इससे पहले लोंचका कोई जिकर आया और न ग्रंथमें इसका कोई प्रसंग है। ऐसा असम्बद्ध और अप्रासंगिक कथन उमास्वामि महाराजका नहीं हो सकता। ग्रंथकर्त्ताने कहाँपरसे यह मजमून लिया है और किस प्रकारसे इस पद्यको यहाँ देनेमें गल्ती खाई है, ये सब बातें, जरूरत होनेपर, फिर कभी प्रगट की जायँगी।

इन सब बातोंके सिवा इस ग्रंथमें, अनेक स्थानोंपर, ऐसा कथन भी पाया जाता है जो युक्ति और आगमसे बिलकुल विरुद्ध जान पड़ता है और इस लिये उससे और भी ज्यादह इस बातका समर्थन होता है कि यह ग्रंथ भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है। ऐसे कथनके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

(१) ग्रंथकार महाशय एक स्थानपर लिखते है कि जिस मंदिर पर ध्वजा नहीं है उस मंदिरमे किये हुए पूजन, होम और जपादिक सब ही विलुप्त हो जाते हैं अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता। यथा:—

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥१०७॥ (उमा०श्रा)

इसी प्रकार दूसरे स्थानपर लिखते हैं कि जो मनुष्य फटे पुराने, खंडित या मैले वस्त्रोंको पहिनकर दान, पूजन, तप, होम या स्वाध्याय करता है तो उसका ऐसा करना निष्फल होता है। यथा:—

"खंडिते गलिते छिन्ने मलिने चैव वाससि।
दानं पूजा तपो होमःस्वाध्यायो विफलं भवेत् ॥ १३६ ॥
(उमा० श्रा०)

मालूम नहीं होता कि मंदिरके ऊपरकी ध्वजाका इस पूजनादिकके फलके साथ कौनसा सम्बंध है और जैनमतके किस गूढ़ सिद्धान्तपर ग्रथकारका यह कथन अवलम्बित है। इसी प्रकार यह भी मालूम नहीं होता कि फटे पुराने तथा खंडित वस्त्रोंका दान, पूजन, तप और स्वाध्यायादिके फलसे कौनसा विरोध है जिसके कारण इन कार्योंका करना ही निरर्थक हो जाता है। भगवदुमास्वामिने तत्त्वार्थसूत्रमें और **श्रीअकलंकदेवादिक** टीकाकारोंने 'राजवार्तिकादि' ग्रंथोंमें शुभाशुभ कर्मोंके आस्रव और बन्धके कारणोंका विस्तारके साथ वर्णन किया है। परन्तु ऐसा कथन कहीं नहीं पाया जाता जिससे यह मालूम होता हो कि मांदिरकी एक ध्वजा भी भावपूर्वक किये हुए पूजनादिकके फलको उलटपुलट कर देनेमें समर्थ है। सच पूछिये तो मनुष्यके कर्मोंका फल उसके भावोंकी जाति और उनकी तरतमतापर निर्भर है। एक गरीब आदमी अपने फटे पुराने कपड़ोंको पहिने हुए ऐसे मादिरमें जिसके शिखरपर ध्वजा भी नहीं है बड़े प्रेमके साथ परमात्माका पूजन और भजन कर रहा है और सिरसे पैर तक भक्ति रसमें डूब रहा है, वह उस मनुष्यसे अधिक पुण्य उपार्जन करता है जो अच्छे सुन्दर नवीन वस्त्रोको पहिने हुए ध्वजावाले मन्दिरमें विना भक्ति भावके सिर्फ अपने कुलकी रीति समझता हुआ पूजनादिक करता हो। यदि ऐसा नहीं माना जाय अर्थात् यह कहा जाय कि फटे पुराने वस्त्रोंके पहिनने या मन्दिरपर ध्वजा न होनेके कारण उस गरीब आदमीके उन भक्ति भावोंका कुछ भी फल नहीं है तो जैनियोंको अपनी कर्म फिलासोफीको उठाकर रख देना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। इसलिये इन दोनों पद्योका कथन युक्ति और आगमसे विरुद्ध है।

(२) इस ग्रंथके पूजनाध्यायमे, पुष्पमालाओसे पूजनका विधान करते हुए, एक स्थानपर लिखा है कि चम्पक और कमलके फूलका, उसकी कली आदिको तोड़नेके द्वारा, भेद करनेसे मुनिहत्याके समान पाप लगता है। यथा:—

"नैव पुष्पं द्विधाकुर्यान्न छिंद्यात्कलिकामपि।
चम्पकोत्पलभेदेन यतिहत्यासमं फलम्॥ १२७॥
(उमा० श्रा०)

यह कथन बिलकुल जैनसिद्धान्त और जैनागमके विरुद्ध है। कहाँ तो एकेंद्रियफूलकी पखंड़ी आदिका तोड़ना और कहाँ मुनिकी हत्या! दोनोंका पाप कदापि समान नहीं हो सकता। जैनशास्त्रोंमें एकेंद्रिय जीवोंके घातसे पचेंद्रिय जीवोके घात पर्यंत और फिर पचेंद्रियजीवोंमें भी क्रमशः गौ, स्त्री, बालक, सामान्यमनुष्य, अविरतसम्यग्दृष्टि, व्रती श्रावक और मुनिके घातसे उत्पन्न हुई पापकी मात्रा उत्तरोत्तर अधिक वर्णन की है। और इसीलिये प्रायश्चित्तसमुच्चयादि प्रायश्चित्तग्रंथोंमें भी इसी क्रमसे हिंसाका उत्तरोत्तर अधिक दंड विधान कहा गया है। कर्मप्रकृतियोंके बन्धादिकका प्ररूपण करनेवाले और 'तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकारणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः' इत्यादि सूत्रोंके द्वारा कर्मास्रवोंकी न्यूनाधिकता दर्शानेवाले सूत्रकार महोदयका ऐसा असमंजस वचन, कि एक फूलकी पंखडी तोडनेका पाप मुनिहत्याके समान है, कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकारके और भी बहुतसे असमंजस और आगमविरुद्ध कथन इस ग्रंथमें पाए जाते हैं जिन्हें इस समय छोडा जाता है। जरूरत होनेपर फिर कभी प्रगट किये जाएँगे।

जहांतक मैंने इस ग्रंथकी परीक्षा की है, मुझे ऐसा निश्चय होता है और इसमें कोई सदेह बाकी नहीं रहता कि यह ग्रंथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामि महाराजका बनाया हुआ है। और न किसी

दूसरे आचार्यने ही इसका सम्पादन किया है। ग्रथके शब्दों और अर्थोंपरसे, इस ग्रंथका बनानेवाला कोई मामूली, अदूरदर्शी और क्षुद्र हृदय व्यक्ति माल्रूम होना है। और यह ग्रथ १६ वीं शताब्दीके बाद १७ वीं शताब्दीके अन्तमें या उससे भी कुछ कालबाद, उस वक्त बनाया जाकर भगवान् उमास्वामीके नामसे प्रगट किया गया है जब कि तेरहपथकी स्थापना हो चुकी थी और उसका प्राबल्य बढ़ रहा था। यह ग्रंथ क्यों बनाया गया है? इसका सूक्ष्मविवेचन फिर किसी लेख द्वारा जरूरत होनेपर, प्रगट किया जायगा। परन्तु यहाँपर इतना बतला देना जरूरी है कि इस ग्रथमें पूजनका एक खास अध्याय है और प्राय: उसी अध्यायकी इस ग्रंथमें प्रधानता माल्रूम होती है। शायद इसीलिये हलायुधजीने, अपनी भाषाटीकाके अन्तमें, इस श्रावकाचारको "पूजाप्रकरण नाम श्रावकाचार" लिखा है।

अन्तमें विद्वज्जनोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि वे इस ग्रथकी अच्छी तरहसे परीक्षा करके मेरे इस उपर्युक्त कथनकी जॉच करें और इस विषयमें उनकी जो सम्मति स्थिर होवे उससे, कृपाकर मुझे सूचित करनेकी उदारता दिखलाऍ। यदि परीक्षासे उन्हें भी यह ग्रथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ साबित न होवे तब उन्हें अपने उस परीक्षाफलको सर्वसाधारणपर प्रगट करनेका यत्न करना चाहिये। और इस तरहपर अपने साधारण भाइयोंका भ्रम निवारण करते हुए प्राचीन आचार्योंकी उस कीर्तिको संरक्षित रखनेमे सहायक होना चाहिये, जिसको कषायवश किसी समय कलंकित करनेका प्रयत्न किया गया है।

आशा है कि विद्वज्जन मेरे इस निवेदनपर अवश्य ध्यान देंगे और अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। इत्यलंविज्ञेषु।

जातिसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार, देवबन्द।

शिक्षासमस्या ।

(२)

जिस समय मन बढ़ता रहता है उस समय उसके चारों ओर एक बडा भारी अवकाश रहना चाहिए। यह अवकाश विश्वप्रकृतिके बीच विशाल भावसे विचित्र भावसे और सुन्दर भावसे विराजमान है। किसी तरह साढ़े नव और दश बजेके भीतर अन्न निगलकर शिक्षा देनेकी मृगशालामें पहुँचकर हाजिरी देनेसे बच्चोंकी प्रकृति किसी भी तरह सुस्थभावसे विकसित नहीं हो सकती। शिक्षा दिवालोंसे घेरकर, दरवाजोंसे रुद्धकर, दरवान बिठाकर, दण्ड या सजासे कण्टकितकर, और घण्टाद्वारा सचेत करके कैसी विलक्षण बना दी गई है! हाय! मानवजीवनके आरम्भमें यह क्या निरानन्दकी सृष्टि की जाती है! बच्चे बीजगणित न सीखकर और इतिहासकी तारीखें कण्ठ न करके माताके गर्भसे जन्म लेते हैं, इसके लिए क्या ये बेचारे अपराधी हैं? मालूम होता है इसी अपराधके कारण इन हतभागियोंसे उनका आकाश वायु और उनका सारा आनन्द अवकाश छीनकर शिक्षा उनके लिए सब प्रकारसे शास्ति या दण्डरूप बना दी जाती है। परन्तु जरा सोचो तो सही कि बच्चे अशिक्षित अवस्थामें क्यों जन्म लेते हैं? हमारी समझमें तो वे न-जाननेसे धीरे धीरे जाननेका आनन्द पावेंगे, इसीलिए अशिक्षित होते हैं। हम अपनी असमर्थता और वर्बरताके वश यदि ज्ञानशिक्षाको आनन्दजनक न बना सकें, तो न सही, पर चेष्टा करके, जान बूझकर अतिशय निष्ठुरतापूर्वक निरपराधी बच्चोंके विद्यालयोंको कारागार (जेलखाने) तो न बना डालें! बच्चोंकी शिक्षाको विश्वप्रकृतिके उदार रमणीय अवकाशमेंसे होकर उन्मेषित करना ही विधाताका अभिप्राय था—इस अभि-

प्रायको हम जितना ही व्यर्थ करते है उतना ही अधिक वह व्यर्थ होता है। मृगशालाकी दीवालें तोड़ डालो,—मातृगर्भके दश महीनोंमें बच्चे पण्डित नहीं हुए, इस अपराधपर उन बेचारोंको सपरिश्रम कारागारका दण्ड मत दो, उनपर दया करो।

इसीसे हम कहते है कि शिक्षाके लिए इस समय भी हमें वनोंका प्रयोजन है और गुरुगृह भी हमें चाहिए। वन हमारे सजीव निवासस्थान है और गुरु हमारे सहृदय शिक्षक हैं। आज भी हमें उन वनोमे और गुरुगृहोंमें अपने बालकोंको ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक रखकर उनकी शिक्षा पूर्ण करनी होगी। कालसे हमारी अवस्थाओंमे चाहे जितने ही परिवर्तन क्यों न हुआ करें परन्तु इस शिक्षानियमकी उपयोगितामें कुछ भी कमी नहीं आ सकती, कारण यह नियम मानवचरित्रके चिरस्थायी सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है।

अतएव, यदि हम आदर्शविद्यालय स्थापित करना चाहें तो हमें मनुष्योंकी वस्तीसे दूर, निर्जन स्थानमें, खुले हुए आकाश और विस्तृत भूमिपर झाड़ पेड़ोंके बीच उनकी व्यवस्था करनी चाहिए। वहाँ अध्यापकगण एकान्तमें पठनपाठनमे नियुक्त रहेंगे और छात्रगण उस ज्ञानचर्चाके यज्ञक्षेत्रमे ही बढा करेंगे।

यदि बन सके तो इस विद्यालयके साथ थोडीसी फसलकी जमीन भी रहनी चाहिए;—इस जमीनसे विद्यालयके लिए प्रयोजनीय खाद्यसामग्री सग्रह की जायगी और छात्र खेतीके काममें सहायता करेंगे। दूध घी आदि चीजोंके लिये गाय भैसें रहेंगी और छात्रोंको गोपालन करना होगा। जिस समय बालक पढ़ने लिखनेसे छुट्टी पावेंगे, उस विश्रामकालमें वे अपने हाथसे बाग लगावेंगे, झाडोंके चारों ओर खड्डे खोदेंगे, उनमे जल सींचेंगे और बागकी रक्षाके लिए बाढ लगावेंगे।

इस तरह वे प्रकृतिके साथ केवल भावका ही नहीं, कामका सम्बन्ध भी जारी रक्खेंगे।

अनुकूल ऋतुओंमें बड़े बड़े छायादार वृक्षोंके नीचे छात्रोंकी क्लासें वैठेंगीं। उनकी शिक्षाका कुछ अश अध्यापकोंके साथ वृक्षोके नीचे घूमते घूमते समाप्त होगा और सन्ध्याका अवकाशकाल वे नक्षत्रोंकी पहचान करनेमें, सङ्गीतचर्चामें, पुराणकथाओंमें और इतिहासकी कहानिया सुननेमें व्यतीत करेंगे।

कोई अपराध वन जानेपर छात्र हमारी प्राचीन पद्धतिके अनुसार प्रायश्चित्त करेंगे। शास्ति अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्तमें वहुत वड़ा अन्तर है। दूसरेके द्वारा अपराधका प्रतिफल पाना शास्ति है और अपने ही द्वारा अपराधका सशोधन करना—उससे मुक्त होना प्राय-श्चित है। छात्रोंको इस प्रकारकी शिक्षा शुरूसे ही मिलना चाहिए कि दण्डस्वीकार करना खुदका ही कर्तव्य है—उसके स्वीकार किये विना हृदयकी ग्लानि दूर नहीं होती। दूसरेके द्वारा आपको दण्डित करना मनुष्योचित कार्य नहीं हो सकता।

यदि आप लोग क्षमा करें तो इस मौकेपर साहस करके मैं एक वात और कह दूँ। इस आदर्शविद्यालयमें वेच टेविल कुर्सी और चौकियोकी जरूरत नहीं। मै यह वात अँगरेजी चीजोंके विरुद्ध आन्दो-लन करनेके लिए नहीं कहता हूँ। नहीं, मेरा वक्तव्य यह है कि हमें अपने विद्यालयमें अनावश्यकताकी आवश्यकता न वढ़ने देनेका एक आदर्श सव तरह स्पष्ट कर रखना होगा। टेविल, कुर्सी, वेच आदि-चीजें मनुष्यको हर वक्त नहीं मिल सकतीं; किन्तु भूमितल एक ऐसी चीज है कि उसे कोई कभी छीन नहीं ले सकता। इसके विरुद्ध कुर्सी टेविलें अवश्य ऐसी हैं कि वे हमारे भूमितलको छीन लेती हैं। क्योंकि

अभ्यास पड़ जानेपर हमारी ऐसी दशा हो जाती है कि यदि कभी भूमितलपर बैठनेके लिए हमें लाचार होना पडता है तो न तो हमें आराम मिलता है और न सुविधा ही मालूम पडती है। विचार करके देखा जाय तो यह एक बड़ी भारी हानि है। हमारा देश शीतप्रधान देश नहीं है, हमारा पहनाव ओढाव ऐसा नहीं है कि हम नीचे न बैठ सकें, तव परदेशोंके समान अभ्यास डालके हम असबाबकी बहुलतासे अपना कष्ट क्यो बढ़ावें? हम जितना ही अनावश्यकको अत्यावश्यक बनावेंगे उतना ही हमारी शक्तिका अपव्यय होगा। इसके सिवा धनी यूरोपके समान हमारी पूँजी नहीं है; उसके लिए जो बिलकुल सहज है हमारे लिए वहीं भार रूप है। हम ज्यों ही किसी अच्छे कार्यका प्रारभ करते है और उसके लिए आवश्यक इमारत असबाब, फरनीचर आदिका हिसाब लगाते है त्यो ही हमारी आँखोके आगे अँधेरा छा जाता है। क्योकि इस हिसाबमे अनावश्यकताका उपद्रव रुपयेमें बारह आने होता है। हममेंसे कोई साहस करके नहीं कह सकता कि हम मिट्टीके साधे घरमें काम आरभ करेंगे और धरतीमे आसन बिछाकर सभा करेंगे। यदि हम यह वात जोरसे कह सकें और कर सकें तो हमारा आधेसे अधिक वजन उतर जाय और काममे कुछ अधिक तारतम्य भी न हो। परन्तु जिस देशमें शक्तिकी सीमा नहीं है, जिस देशमे धन कौने कौनेमें भरकर उछला पड़ता है, उस धनी यूरोपका आदर्श अपने सब कामोंमें बनाये विना हमारी लज्जा दूर नहीं होती —हमारी कल्पना तृप्त नहीं होती। इससे हमारी क्षुद्र शक्तिका बहुत बड़ा भाग आयोजनोंमें—तैयारियोंमे ही निःशेष हो जाता है, असली चीजको हम खुराक ही नहीं जुटा पाते। हम जितने दिन पट्टियोंपर खड़िया पोतकर हाथ घसीटते रहे, तव तक तो पाठशालाये स्थापन

करनेका हमारा विचार ही नहीं था, अब बाजारोमे स्लेट पेंसिलोंका प्रादुर्भाव हो गया है परन्तु पाठशाला स्थापित करना मुश्किल हो गया है। सब ही विषयोंमें यह बात देखी जाती है। पहले आयोजन कम थे, सामाजिकता अधिक थी; अव आयोजन वढ़ चले हैं, और सामाजिकतामें घाटा आ रहा है। हमारे देशमें एक दिन था, जव हम असबाब आडम्बरको ऐश्वर्य कहते थे किन्तु सभ्यता नहीं कहते थे; कारण उस समय देशमें जो सभ्यताके भाण्डारी थे उनके भाण्डारमे असबावकी अधिकता नहीं थी। वे दारिद्र्यको कल्याणमय वना करके सारे देशको सुस्थ स्निग्ध रखते थे। कमसे कम शिक्षाके दिनोंमे यदि हम इस आदर्शसे मनुष्य हो सके—तो और चाहे कुछ न हो हम अपने हाथमें कितनी ही क्षमता या सामर्थ्य पा सकेंगे—मिट्टीमें वैठ सकनेकी क्षमता, मोटा पहननेकी मोटा खानेकी क्षमता, यथासंभव थोड़े आयोजनमें यथासंभव अधिक काम चलानेकी क्षमता—ये सब मामूली क्षमता नहीं हैं और ये साधनाकी—अभ्यासकी अपेक्षा रखती हैं। सुगमता, सरलता, सहजता ही यथार्थ सभ्यता है—इसके विरुद्ध आयोजनोंकी जटिलता एक प्रकारकी वर्वरता है। वास्तवमें वह पसीनेसे तरवतर अक्षमताका स्तूपाकार जंजाल है। इस प्रकारकी शिक्षा विद्यालयोंमें शिशुकालसे ही मिलना चाहिए और सो भी निष्फल उपदेशोंद्वारा नहीं, प्रत्यक्ष दृष्टान्तो द्वारा कि—थोड़ी बहुत जड़ वस्तुओंके अभावसे मनुष्यत्वका सन्मान नष्ट नहीं होता वरन् बहुधा स्थलोंमे स्वाभाविक दीप्तिसे उज्ज्वल हो उठता है। हमें इस विलकुल सीधीसादी बातको सब तरह साक्षात् भावसे वालकोंके सामने स्वाभाविक कर देना होगा। यदि यह शिक्षा न मिलेगी तो हमारे बालक केवल अपने हाथोपावोंका, और घरकी मिट्टीका ही अनादर न करेंगे किन्तु अपने पिता पितामहोको

घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे और प्राचीन भारतवर्षकी साधनाका माहात्म्य यथार्थरूपसे अनुभव न कर सकेंगे।

यहाँ शंका उपस्थित होगी कि यदि तुम बाहरी तड़कभडक चाकचिक्यका आदर नहीं करना चाहते तो फिर तुम्हें भीतरी वस्तुको विशेष भावसे मूल्यवान् बनाना होगा—सो क्या उस मूल्यके देनेकी शक्ति तुममें है? अर्थात् क्या तुम उस बहुमूल्य आदर्श शिक्षाकी व्यवस्था कर सकते हो? गुरुगृह स्थापित करते ही पहले गुरुओंकी आवश्यकता होगी। परन्तु इसमें यह बडी भारी कठिनाई है कि शिक्षक या मास्टर तो अखबारोंमे नोटिस दे देनेसे ही मिल जाते है पर गुरु तो फरमायश देनेसे भी नहीं पाये जा सकते।

इसका समाधान यह है—यह सच है कि हमारी जो कुछ सङ्गति है—पूंजी है उसकी अपेक्षा अधिकका दावा हम नही कर सकते। अत्यन्त आवश्यकता होनेपर भी सहसा अपनी पाठशालाओंमें गुरु महाशयोंके आसनपर याज्ञवल्क्य ऋषिको ला बिठाना हमारे हाथकी बात नहीं है। किन्तु यह बात भी विवेचना करके देखनी होगी कि हमारी जो सङ्गति या पूँजी है अवस्थादोपसे यदि हम उसका पूरा दावा न करेंगे तो अपना सारा मूलधन भी न बचा सकेंगे। इस तरहकी घटनाये अकसर घटा करती है। डाकके टिकिट लिफाफेपर चिपकानेके लिए ही यदि हम पानीके घड़ेका व्यवहार करें तो उस घड़ेका अधिकाश पानी अनावश्यक होगा; पर यदि हम स्नान करें तो उस घड़ेका जल सबका सब खाली किया जा सकता है;—अर्थात् एक ही घडेकी उपयोगिता व्यवहार करनेके ढँगोंसे कम बढ़ हो जाती है। ठीक इसी तरह हम जिन्हे स्कूलके शिक्षक बनाते हैं उनका हम इस ढँगसे व्यवहार करते है कि उनके हृदय मनोंका

बहुत ही कम अंश काममें लगाता है—वे कलके समान काम किया करते हैं। फोनोग्राफ यन्त्रके साथ यदि हम एक बेत और थोड़ासा मस्तक जोड़ दें तो बस वह स्कूलका शिक्षक बन सकता है। किन्तु यदि इसी शिक्षकको हम गुरुके आसनपर बिठा दें तो स्वभावसे ही उसके हृदय मनकी शक्ति समग्र भावसे शिष्योंकी ओर दौड़ेगी। यह सच है कि उसकी जितनी शक्ति है उससे अधिक वह शिष्योंको न दे सकेगा किन्तु उसकी अपेक्षा कम देना भी उसके लिए लज्जाकर होगा। जबतक एक पक्ष यथार्थ भावसे दावा न करेगा तबतक दूसरे पक्षमें सम्पूर्ण शक्तिका उद्बोधन न होगा। आज स्कूलके शिक्षकोंके रूपमें देशकी जो शक्ति काम कर रही है, देश यदि सच्चे हृदयसे प्रार्थना करे तो गुरुरूपमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति काम करेगी।

आजकल प्रयोजनके नियमसे शिक्षक छात्रोंके पास आते हैं—शिक्षक गरजी बन गये हैं; परन्तु स्वाभाविक नियमसे शिष्योंको गुरुके पास जाना चाहिए—छात्रोंकी गरज होनी चाहिए। अब शिक्षक एक तरहके दूकानदार हैं और विद्या पढ़ाना उनका व्यवसाय है। वे ग्राहकों या खरीददारोंकी खोजमें फिरा करते हैं। दूकानदारके यहाँसे लोग चीज खरीद सकते हैं, परन्तु उसकी विक्रेय चीजोंमें स्नेह, श्रद्धा, निष्ठा आदि हृदयकी चीजें भी होंगी, इस प्रकारकी आशा नहीं की जा सकती। इसी कारण शिक्षक वेतन (तनख्वाह) लेते हैं और विद्याको बेच देते हैं—और यहीं दूकानदार और ग्राहकके समान शिक्षक और छात्रोंका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। इस प्रकारकी प्रतिकूल अवस्थामें भी बहुतसे शिक्षक लेन देनका सम्बन्ध छोड़ देते है। हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरुके

आसनपर बैठे हैं; और हमें अपने जीवनके द्वारा छात्रोंमें जीवनसञ्चार करना है, अपने ज्ञानके द्वारा छात्रोंमें ज्ञानकी बत्ती जलानी है, अपने स्नेहके द्वारा बालकोंका कल्याणसाधन करना है, तब ही वे गौरवान्वित हो सकेंगे—तब वे ऐसी चीजका दान करनेको तैयार होंगे जो पण्यद्रव्य नहीं है, जो मूल्य देकर नहीं पाई जा सकती और तब ही वे छात्रोंके निकट शासनके द्वारा नहीं किन्तु धर्मके विधान तथा स्वभावके नियमसे भक्ति करने योग्य—पूज्य बन सकेंगे। वे जीविकाके अनुरोधसे वेतन लेनेपर भी बदलेमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक देकर अपने कर्तव्यको महिमान्वित कर सकेंगे। यह बात किसीसे छुपी नहीं है कि अभी थोडे दिन पहले जब देशके विद्यालयोंमें राजचक्रकी शनिदृष्टि पड़ी थी, तब बीसों प्रवीन और नवीन शिक्षकोंने जीविका लुब्ध शिक्षकवृत्तिकी कलङ्ककालिमा कितने निर्लज्ज भावसे समस्त देशके सामने प्रकाशित की थी। यदि वे भारतके प्राचीन गुरुओंके आसनपर बैठे होते तो पदवृद्धिके मोहसे और हृदयके अभ्यासके वशसे छोटे २ बच्चोंपर निगरानी रखनेके लिए कनस्टेबल बिठाकर अपने व्यवसायको इस तरह घृणित नहीं कर सकते। अब प्रश्न यह है कि शिक्षारूपी दूकानदारीकी नीचतासे क्या हम देशके शिक्षकोंको और छात्रोंको नहीं बचा सकते?

किन्तु हमारा इन सब विस्तृत आलोचनाओंमें प्रवृत्त होना जान पड़ता है कि व्यर्थ जा रहा है—मालूम होता है बहुतोंको हमारी इस शिक्षाप्रणालीकी मूल बातमें ही आपत्ति है। अर्थात् वे लिखना पढ़ना सिखलानेके लिए अपने बालकोंको दूर भेजना हितकारी नहीं समझते।

इस विषयमें हमारा प्रथम वक्तव्य यह है कि हम आजकल जिसको लिखना पढ़ना समझते हैं उसके लिए तो केवल इतना ही काफी है कि अपने मुहल्लेकी किसी गलीमें कोई एक सुभीतेका स्कूल देख लिया

और उसके साथ बहुत हुआ तो एक प्राइवेट ट्यूटर भी रख लिया। जो शिक्षा इस उद्देश्यको सामने रखकर दी जाती है कि—"लिखना पढ़ना सीखे जोई, गाड़ी घोड़ा पावे सोई।" वह शिक्षा ही नहीं, इस प्रकारकी शिक्षा मानवसन्तानको अतिशय दीन और कृपण बनानेवाली अतएव सर्वथा अयोग्य है।

दूसरा वक्तव्य यह है कि, 'शिक्षाके लिए बालकोंको घरसे दूर भेजना उचित नहीं है' इस बातको हम तब मान सकते थे जब हमारे घर वैसे होते जैसे कि होने चाहिए थे। कुम्हार, लुहार, बढ़ई, जुलाहे आदि शिल्पकार अपने बच्चोंको अपने पास रखकर ही मनुष्य बना लेते हैं और वे उन्हीं जैसा काम करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि वे जितनी शिक्षा देना चाहते हैं वह घर रखके ही अच्छी तरहसे दी जा सकती है—उनका घर उसके योग्य होता है। पर शिक्षाका आदर्श यदि इससे कुछ और उन्नत हो तो बालकोंको स्कूल भेजना होगा। तब यह कोई न कहेगा कि मा बापके पास शिखाना ही सर्वापेक्षा अच्छा है; क्योंकि अनेक कारणोंसे ऐसा होना संभव नहीं। शिक्षाके आदर्शको यदि और भी ऊंचा उठाना चाहें, यदि परीक्षा फल-लोलुप पुस्तक शिक्षाकी ओर ही हम न देखें, यदि सर्वाङ्गीण मनुष्यत्वकी दीवाल खड़ी करनेको ही हम शिक्षाका लक्ष्य निश्चय करें, तो उसकी व्यवस्था न तो घर हीमें हो सकेगी—और न स्कूलोंमें ही हो सकेगी।

संसारमें कोई वणिक है, कोई वकील है, कोई धनी जमींदार है और कोई कुछ और है। इन सबहीके घरकी आब हवा स्वतन्त्र या जुदा जुदा तरहकी है और इसलिए इनके घरकी बच्चोंपर छुटपन हीसे जुदा जुदा तरहकी छाप लग जाती है।

जीवनयात्राकी विचित्रताके कारण मनुष्यमें अपने आप जो एक विशेषत्व घटित होता है वह अनिवार्य है और इस प्रकार एक एक

व्यवसायका विशेष आकार प्रकार लेकर मनुष्य जुदा जुदा कोठोंमें विभक्त हो जाता है; किन्तु जब बालक संसारक्षेत्रमें पैर रखते हैं तब उसके पहले उनका उनके पालनपोषण कर्त्ताओंके या अभिभावकोंके साचेमें ढलना उनके लिए कल्याणकारी नहीं है।

उदाहरणके लिये एक धनीके लड़कोंको देखिए। यह ठीक है कि धनीके घरमें लड़के जन्म लेते हैं किन्तु वे कोई ऐसी विशेषता लेकर जन्म नहीं लेते कि जिससे माऌम हो कि वे धनीके लडके हैं। धनीके लड़के और गरीबके लड़केमें उस समय कोई विशेष प्रभेद नहीं होता। जन्म होनेके दूसरे दिनसे मनुष्य उस प्रभेदको अपने हाथों गढ़ता है।

ऐसी अवस्थामें माबापके लिए उचित था कि वे पहले लड़कोंके साधारण मनुष्यत्वको पक्का करके उसके बाद उन्हे आवश्यकतानुसार धनीकी सन्तान बनाते। किन्तु ऐसा नहीं होता, वे सब प्रकारसे मानव सन्तान बननेके पहले ही धनीकी सन्तान बन जाते हैं—इससे दुर्लभ मानव जन्मकी बहुतसी बातें उनके भाग्यमें बाद पड़ जाती हैं—जीवन-धारणके अनेक रसास्वादोंकी क्षमता ही उनकी नष्ट हो जाती है। पहले तो पिंजरेके बद्धपक्ष पक्षाके समान धनिक पुत्रको उसके माबाप हाथ पैरोंके रहते हुए भी पगु बना डालते हैं। वह चल नहीं सकता, उसके लिए गाडी चाहिए; बिलकुल मामूली बोझा उठानेकी शक्ति नहीं रहती, कुली चाहिए; अपने काम कर सकनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, चाकर चाहिए। केवल शारीरिक शक्तिके अभावसे ही ऐसा होता हो, सो नहीं है,—लोकलज्जाके मारे उस हतभागेको सुस्थ तथा सुदृढ अङ्ग प्रत्यङ्ग होने पर भी पक्षाघात (लकवा) ग्रस्त होना पड़ता है। जो सहज है वह उसके लिए कष्टकर है, और जो स्वाभाविक है वह उसके लिए लज्जाकर हो जाता है। समाजके लोगोंके मुँहकी ओर

देखकर—वे हमारे कामको अनुचित न कहने लगें इस खयालसे उसे जिन अनावश्यक शासनोंमे कैद होना पड़ता है उनसे वह सहज मनुष्यके बहुतसे अधिकारोंसे वञ्चित हो जाता है। पीछे कहीं उसे कोई धनी न समझे, इतनी सी भी लज्जा वह नहीं सह सकता, इसके लिये उसे पर्वततुल्य भार वहन करना पड़ता है और इसी भारके कारण वह पृथिवीमें पैर पैर पर दबा जाता है। उसको कर्तव्य करना हो तो भी इस सारे बोझेको उठा करके करना होगा, आराम करना हो तो भी इस भारको लादकर करना होगा—भ्रमण करना हो तो भी इस सब भारको साथ २ खींचते हुए करना होगा। यह एक बिलकुल सीधी और सत्य बात है कि सुख मनसे सम्बंध रखता है—आयोजनों या आडम्बरोंसे नहीं। परन्तु यह सरल सत्य भी वह जानने नहीं पाता—इसे हर तरहसे भुलाकर वह हजारों जड़ पदार्थोंका दासानुदास बना दिया जाता है। अपनी मामूली जरूरतोंको वह इतना बढ़ा डालता है कि फिर उसके लिए त्याग स्वीकार करना असाध्य हो जाता है और कष्ट स्वीकार करना असंभव हो जाता है। जगतमें इतना बड़ा कैदी और इतना बड़ा लँगड़ा शायद ही और कोई हो। इतनेपर भी क्या हमें यह कहना होगा कि—ये सब पालन पोषण कर्ता मा-बाप जो कृत्रिम असमर्थताको गर्वकी सामग्री बनाकर खड़ी कर देते हैं और पृथिवीके सुन्दर शस्यक्षेत्रोंको काँटेदार झाड़ोंसे छा डालते है—अपनी सन्तानके सच्चे हितैषी हैं? जो जवान होकर अपनी इच्छासे विलासितामें मग्न हो जाते हैं उन्हें तो कोई नहीं रोक सकता किन्तु बच्चे, जो धूल मिट्टीसे घृणा नहीं करते, जो धूप, वर्षा और वायुको चाहते हैं, जो सजधज करानेमें कष्ट मानते है, अपनी सारी इन्द्रियोंकी चालना करके जगतको प्रत्यक्ष भावसे परीक्षा करके

देखनेमें ही जिन्हें सुख मालूम होता है, अपने स्वभावके अनुसार चलनेमें जिन्हें लज्जा, संकोच, अभिमान आदि कुछ भी नहीं होता, वे जान बूझकर बिगाडे जाते है, चिरकालके लिए अकर्मण्य बना दिये जाते हैं, यह बडे ही दुःखका विषय है। भगवान्, ऐसे पितामाता-ओंके हाथसे इन निरपराध बच्चोंकी रक्षा करो, इनपर दया करो।

हम जानते हैं कि बहुतसे घरोंमें बालक बालिका साहब बनाये जा रहे है। वे आयाओं या दाइयोंके हाथोंसे मनुष्य बनते है, विकृत बेढंगी हिन्दुस्थानी सीखते है, अपनी मातृभाषा हिन्दी भूल जाते है और भारतवासियोंकें बच्चोंके लिए अपने समाजसे जिन सैंकडों हजारों भावोंके द्वारा निरन्तर ही विचित्र रसोंका आकर्षण करके पुष्ट होना स्वाभाविक था, उन सब स्वजातीय नाडियोंके सम्बन्धसे वे जुदा हो जाते हैं और इधर अँगरेजी समाजके साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं रहता। अर्थात् वे अरण्यसे उखाड़े जा कर विलायती टीनके टबोंमे बड़े होते हैं। हमने अपने कानोसे सुना है इस श्रेणीका एक लड़का दूरसे अपने कई देशीय भावापन्न रिश्तेदारोको देखकर अपनी मासे बोला था—"Mamma, mamma, look, lot of Babus are coming" एक भारतवासी लड़केकी इससे अधिक दुर्गति और क्या हो सकती है? बड़े होनेपर स्वाधीन रुचि और प्रवृत्तिके वश जो साहबी चाल चलना चाहे वे भले ही चलें, किन्तु उनके बचपनमे जो सब माबाप बहुत अपव्यय और बहुतसी अपचेष्टासे सन्तानोंको सारे समाजसे बाहर करके स्वदेशके लिये अयोग्य और विदेशके लिए अग्राह्य बना डालते हैं, सन्तानोंको कुछ समयके लिए केवल अपने उपार्जनके बिलकुल अनिश्चित आश्रयके भीतर लपेट रखकर भवि-ष्यतकी दुर्गतिके लिए जान बुझकर तैयार करते है, उन सब अभि-

भावकोंके निकट न रहकर बालक यदि दूर रक्खे जावें तो क्या कोई बड़ी भारी दुश्चिंताका कारण हो जायगा?

हमने जो ऊपर एक दृष्टान्त दिया है उसका एक विशेष कारण है। साहबीपनका जिन्हे अभ्यास नहीं है, यह दृष्टात उनके चित्तोंपर बड़े जोरसे चोट पहुँचावेगा। वे सचमुच ही मन-ही-मन सोचेंगे कि लोग यह इतनी सी मामूली बात क्यों नहीं समझते—वे सारा भविष्यत् भूलकर केवल अपने कितने ही विकृत अभ्यासोकी अंधताके वश बच्चोंका इस प्रकार सर्वनाश करनेके लिए क्यों तत्पर हो जाते हैं।

किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जिन्हें साहबीपनका अभ्यास हो रहा है, वे यह सब काम बहुत ही सहज भावसे किया करते है। यह बात कभी उनके मनमें ही नहीं आ सकती कि हम सन्तानको किसी दूषित अभ्यासमें डाल रहे हैं। क्योंकि हमारे निजके भीतर जो सब ख़ास ख़ास विकृतियाँ होती हैं उनके सम्बन्धमें हम एक तरहसे अचेतन ही रहते हैं—उन्होंने हमें अपनी मुट्ठीमें इस तरह कर रक्खा है कि उनसे और किसीका अनिष्ट तथा असुविधा होनेपर भी हम उनकी ओरसे उदासीन रहते हैं—यह नहीं सोचते कि इनसे दूसरोंको हानि पहुँच रही है। हम समझते हैं कि परिवारके भीतर क्रोध, द्वेष, अन्याय, पक्षपात, विवाद, विरोध, ग्लानि, बुरे अभ्यास, कुसंस्कार आदि अनेक बुरी बातोंका प्रादुर्भाव होनेपर भी उस परिवारसे दूर रहना ही बालकोंके लिये सबसे बड़ी विपत्ति है। यह बात कभी हमारे मनमें उठती ही नहीं कि हम जिसके भीतर रहकर मनुष्य हुए हैं उस (परिवार) के भीतर और किसीके मनुष्य बननेमें कुछ क्षति है या नहीं। किन्तु यदि मनुष्य बनानेका आदर्श सच हो, यदि बालकोंको अपने ही जैसा काम चलाऊ आदमी बनानेको हम यथेष्ट

न समझते हों तो यह बात हमारे मनमें जरूर उठेगी कि बालकोंको शिक्षाके समय ऐसी जगह रखना हमारा कर्तव्य है कि जहाँ वे स्वभावके नियमानुसार विश्वप्रकृतिके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखकर ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक गुरुओंके सहवासमें ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बन सकें।

भ्रूणको गर्भके भीतर और बीजको मिट्टीके भीतर अपने उपयुक्त खाद्यसे परिवृत होकर गुप्त रहना पड़ता है। उस समय रात दिन उन दोनोंका एक मात्र काम यही रहता है कि खाद्यको खींचकर आपको आकाशके लिए और प्रकाशके लिए तैयार करते रहना। उस समय वे आहरण नहीं करते, चारों ओरसे शोषण करते हैं। प्रकृति उन्हें अनुकूल अन्तरालके भीतर आहार देकर लपेट रखती है—बाहरके अनेक आघात और अपघात उनपर चोट नहीं पहुँचा सकते और नाना आकर्षणोंमें उनकी शक्ति विभक्त नहीं हो पड़ती।

बालकोंका शिक्षा समय भी उनके लिए इसी प्रकारकी मानसिक भ्रूण-अवस्था है। इस समय वे ज्ञानके एक सजीव वेष्टनके बीच रात दिन मनकी खुराकके भीतर ही वात करके बाहरकी सारी विभ्रान्तियोंसे दूर गुप्त रूपसे अपना समय व्यतीत करते हैं, और यही होना भी चाहिए—यह स्वाभाविक विधान इस समय चारों ओरकी सभी बातें उनके अनुकूल होना चाहिए,—जिससे उनके मनका सबसे आवश्यक कार्य होता रहे अर्थात् वे जानकर और न जानकर खाद्यशोषण करते रहें, शक्तिसंचय करते रहें और आपको परिपुष्ट करते रहें।

संसार कार्यक्षेत्र है और नाना प्रवृत्तियोंकी लीलाभूमि है—उसमें ऐसी अनुकूल अवस्थाका मिलना बहुत ही कठिन है जिससे बालक शिक्षाकालमें शक्तिलाभ और परिपूर्ण जीवनकी मूल पूँजी सग्रह कर सकें। शिक्षा समाप्त होनेपर गृहस्थ होनेकी वास्तविक क्षमता उनमें

उत्पन्न होगी—किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जो संसारके समस्त प्रवृत्ति-संघातोंके बीच रहकर यथेच्छ मनुष्य वन जाते है, उन्हें गृहस्थ होनेके योग्य मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता—जमींदार वनाया जा सकता है, व्यवसायी वनाया जा सकता है परन्तु मनुष्य वनना वहुत ही कठिन है। हमारे देशमें एक समय गृहधर्मका आदर्श वहुत ही ऊँचा था, इसीलिए समाजमें तीनों वर्णोंको संसारमें प्रवेश करनेके पहले ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा आपको तैयार करनेका उपदेश और व्यवस्था थी। यह आदर्श बहुत समयसे नीचे गिर गया है और उसके स्थानपर हमने अब तक और कोई महत् आदर्श ग्रहण नहीं किया, इसीसे हम आज क्लर्क, सरिश्तेदार, दारोगा, डिपुटी मजिस्ट्रेट वनकर ही सन्तुष्ट हैं—इससे अधिक वननेको यद्यपि हम वुरा नहीं समझते तथापि वहुत समझते है।

किन्तु इससे बहुत अधिक भी वहुत नहीं है। हम यह वात केवल हिन्दुओंकी ओरसे नहीं कहते है—नहीं, किसी देश और किसी देश समाजमें भी यह वहुत नहीं है। दूसरे देशोंमें ठीक इसी प्रकारकी शिक्षाप्रणाली प्रचलित नहीं की गई और वहाके लोग युद्धोंमें लड़ते है, वाणिज्य करते है, टेलीग्राफके तार खटखटाते हैं, रेलगाड़ीके एञ्जिन चलाते है—यह देखकर हम भूले है;—और यह भूल ऐसी है कि किसी सभामें एकाध प्रवन्धकी आलोचना करनेसे मिट जायगी ऐसी आशा नहीं की जा सकती। इसलिए आशङ्का होती है कि आज हम ‘जातीय’ शिक्षापरिषत्‌की रचना करनेके समय अपने देश और अपने इतिहासको छोडकर जहाँ तहाँ उदाहरण खोजनेके लिए घूम फिरकर कहीं और भी एक संचेमे ढला हुआ कलका स्कूल न खोल वैठें। हम प्रकृतिका विश्वास नहीं करते, मनुष्यके प्रति भरोसा नहीं रखते, इसलिए कलके बिना हमारी गति नहीं है। हमने मनमें

निश्चय कर रक्खा है कि नीतिपाठोंकी कल चलाते ही मनुष्य साधु वन जायँगे और पुस्तकें पढ़ानेका बड़ा फंदा डालते ही मनुष्यका तृतीय चक्षु जो ज्ञाननेत्र है वह आप ही उघड़ पड़ेगा !

इसमें सन्देह नहीं कि प्रचलित प्रणालीके एक स्कूल खोलनेकी अपेक्षा ज्ञानदानका कोई उपयोगी आश्रम स्थापित करना बहुत ही कठिन है । किन्तु स्मरण रखिए कि इस कठिनको सहज करना ही भारतवर्षका आवश्यक कार्य होगा। क्योंकि, हमारी कल्पनामेंसे यह आश्रमका आदर्श अभी तक लुप्त नहीं हुआ है और साथ ही यूरोपकी नाना विद्याओंसे भी हम परिचित हो गये हैं । विद्यालाभ और ज्ञान-लाभकी प्रणालीमें हमें सामञ्जस्य स्थापित करना होगा । यह भी यदि इससे न हो सका तो समझ लो कि केवल नकलकी ओर दृष्टि रखकर हम सब तरह व्यर्थ हो जायँगे—किसी कामके न रहेंगे। अधिकार-लाभ करनेको जाते ही हम दूसरोंके आगे हाथ फैलाते हैं और नवीन गढनेको जाते ही हम नकल करके बैठ जाते है। अपनी शक्ति और अपने मनकी और देशकी प्रकृति और देशके यथार्थ प्रयोजनकी ओर हम ताकते भी नहीं हैं—ताकनेका साहस भी नहीं होता। जिस शिक्षाकी कृपासे हमारी यह दशा हो रही है उसी शिक्षाको ही एक नया नाम देकर स्थापन कर देनेसे ही वह नये फल देने लगेगी, इस प्रकार आशा करके एक और नई निराशाके मुखमें प्रवेश करनेकी अब हमारी प्रवृत्ति तो नहीं होती । यह बात हमे याद रखनी होगी कि जहाँ चन्देके रुपये मूसलधारके समान आ पडते हैं शिक्षाका वहीं अच्छा जमाव होता है, ऐसा विश्वास न कर बैठना चाहिए। क्योंकि मनुष्यत्व रुपयोंसे नहीं खरीदा जा सकता। जहाँ कमेटीके नियमोंकी धारा निरन्तर बरसती रहती है, शिक्षाकल्प-

लता वहीं जल्दीसे बढ़ उठती है, यह भी कोई बात नहीं है। क्योंकि केवल नियमावली अच्छी होनेपर भी वह मनुष्यके मनको खाद्य नहीं दे सकती। अनेकानेक विषयोंके पढ़ानेकी व्यवथा करनेसे ही शिक्षा अधिक और अच्छी होने लगी, ऐसा समझना भी भूल है क्योंकि मनुष्य जो बनता है सो " न मेधाया न बहुना श्रुतेन।" जहाँ एकान्तमें तपस्या होती है, वहीं हम सीख सकते हैं; जहाँ गुरुरूपसे त्याग होता है, जहाँ एकान्त अभ्यास या साधना होती है, वहीं हम शक्ति चढ़ा सकते हैं, जहाँ सम्पूर्ण भावसे दान होता है वहीं सम्पूर्ण भावसे ग्रहण भी सभव हो सकता है; जहाँ अध्यापकगण ज्ञानकी चर्चामें स्वयं प्रवृत्त रहते हैं वहींपर छात्रगण विद्याके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं; बाहर विश्वप्रवृत्तिका आविर्भाव जहाँ बिना रुकावटके होता है, भीतर वहींपर मन सम्पूर्ण विकसित हो सकता है; ब्रह्मचर्यकी साधनामें जहाँ चरित्र सुस्थ और आत्मवश होता है, धर्मशिक्षा वहाँ ही सरल और स्वाभाविक होती है; और जहाँपर केवल पुस्तक और मास्टर, सेनेट और सिंडिकेट, ईंटोके कोठे और काठका फर्नीचर है, वहाँ हम जितने बड़े आज हो उठे हैं, उतने ही बड़े होकर कल भी बाहर होंगे। *

---

* श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी शिक्षानिबन्धावलीके एक बगला लेखका अनुवाद।

वन-विहंगम ।

(१)

वन बींच बसे थे, फँसे थे ममत्वमें,
एक कपोत क़पोती कहीं ।
दिन-रात न एकको दूसरा छोड़ता,
ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं ॥
बढ़ने लगा नित्य नयानया नेह,
नई नई कामना होती रहीं ।
कहनेका प्रयोजन है इतना,
उनके सुखकी रही सीमा नहीं ॥

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा,
अनुरागके रागमें मस्त हुआ ।
करती थी कपोती कभी यदि मान,
मनाता था पास जा व्यस्त हुआ ॥
जब जो कुछ चाहा कबूतरीने,
उतना वह वैसे समस्त हुआ ।
इस भांति परस्पर पक्षियोंमें भी,
प्रतीतिसे प्रेम प्रशस्त हुआ ॥

(३)

सुविशाल वनोंमे उड़े फिरते,
अवलोकते प्राकृत चित्र छटा ।
कहीं शस्यसे श्यामल खेतखड़े,
जिन्हें देख घटाका भी मान घटा ॥

कहीं कोसों उजाड़मे झाड़पड़े,
कहीं आड़में कोई पहाड़ सटा ।
कहीं कुंज, लताके वितान तने,
घने फूलोंका सौरभ था सिमटा ॥

(४)

झरने झरनेकी कहीं झनकार,
फुहारेका हार बिचित्र ही था ।
हरियाली निराली न माली लगा,
तब भी सब ढंग पवित्र ही था ॥
ऋषियोंका तपोवन था, सुरभीका,
जहॉ पर सिंह भी मित्र ही था ।
बस जान लो, सात्त्विक सुन्दरता—
सुख-सयुत शान्तिका चित्र ही था ॥

(५)

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम,
गृहस्थ-निवास बने हुए थे ।
खपरैलोंमें कद्दू करैलोंकी बेलके
खूब तनाव तने हुए थे ॥
जल शीतल, अन्न, जहां पर पाकर
पक्षी घरोंमें घने हुए थे ।
सब ओर स्वदेश-समाज-स्वजाति—
भलाईके ठान ठने हुए थे ॥

(६)

इस भाति निहारते लोककी लीला
प्रसन्न वे पक्षी फिरे घरको ।
उन्हें देखके दूरहीसे मुँह खोलते

बच्चे चलें चट बाहरको ॥
दुलराने खिलाने पिलानेसे था
अवकाश उन्हे न घडी भरको ।
कुछ ध्यान ही था न कबूतरको
कहीं काल चला रहा है शरको ॥

(७)

दिन एक बडा ही मनोहर था,
छवि छाई वसन्तकी थी वनमें ।
सब ओर प्रसन्नता देख पडी,
जड चेतनके तनमें मनमें ॥
निकले थे कपोत-कपोती कहीं,
पड़े झुडमें, घूमते काननमें ।
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी,
शिकारकी, ताकसे निर्जनमें ॥

(८)

उस निर्दयने उसी पेड़के पास
बिछा दिया जालको कौशलसे ।
वहीं देखके अन्नके दाने पड़े,
चले बच्चे, अभिज्ञ न थे छलसे ॥
नहीं जानते थे कि "यहींपर है,
कहीं दुष्ट भिड़ापडा भूतलसे ।
बस फॉसके बॉसके बन्धनमे,
कर देगा हलाल हमें बलसे" ॥

(९)

जब बच्चे फॅसे उस जालमें जा,
तब वे घबडा उठे बन्धनमे ।

इतनेमें कबूतरी आई वहाँ;
दशा देखके व्याकुल ही मनमें—
कहने लगी, हाय, हुआ यह क्या!
सुत मेरे हलाल हुए वनमें।
अब जालमें जाके मिलूं इनसे,
सुख ही क्या रहा इस जीवनमें॥

(१०)

उस जालमें जाके बहेलिए के,
ममतासे कबूतरी आप गिरी।
इतनेमे कबूतर आया वहाँ;
उस घोसलेमें थी विपत्ति निरी॥
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ,
घटनाकी घटा वह घोर घिरी।
नयनोंसे अचानक बूँद गिरे,
चेहरेपर शोककी स्याही फिरी॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुखसे
कहने लगा—हा अति कष्ट हुआ!
'निबलोहीको दैव भी मारता है,'
ये प्रवाद यहाँपर स्पष्ट हुआ॥
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया,
सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भांति अभागा अतृप्त ही मैं,
सुख भोगके स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ॥

(१२)

कल कूजन केलि-कलोलमें लिप्त हो,
बच्चे मुझे जो सुखी करते।

जब देखते दूरसे आते मुझे,
किलकारिया मोदसे जो भरते ॥
समुहायके धायके आयके पास
उठायके पंख, नहीं टरते।
वही हाय, हुए असहाय अहो!
इस नीचके हाथसे हैं मरते।

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा—
करती थी सदा सुख कल्पनाको।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हींके लिए,
सहता इस दारुण वेदनाको ॥
वह सामने ही परिवार पड़ा पडा
भोग रहा यम–यातनाको।
अब मैं ही वृथा इस जीवनको रख,
कैसे सहूँगा विडम्बनाको ?

(१४)

यही सोचता था यों कपोत, वहाँ
चिड़ीमारने मार निशाना लिया।
गिर लोट गया धरती पर पक्षी,
बहेलिएने मनमाना किया ॥
पलमें कुलका कुल काल करालने,
भूत–भविष्यमें भेज दिया।
क्षणभंगुर जीवनकी गतिका
यह देखो, निदर्शन है बढिया ॥

(१५)

हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्त्वमें,
तत्त्व-महत्त्वको भूलता है।

उसके सिर पै खुला खड्ग सदा
बँधा धागेमे धारसे झूलता है।
वह जाने बिना विधिकी गतिको
अपनी ही गढन्तमें फूलता है।
पर अन्तको ऐसे अचानक, अन्तक—
अस्त्र अवश्य ही हूलता है॥

(१६)

पर जो जन भोगके साथ ही योगके
काम अकाम किया करता।
परिवारसे प्यार भी पूरा करे
पर-पीर परन्तु सदा हरता॥
निज भावको भाषाको भूले नहीं,
कहीं विघ्न--व्यथाको नहीं डरता।
कृतकृत्य हुआ हंसते हंसते
वह सोच सकोच बिना मरता॥

(१७)

प्रिय पाठक, आप तो विज्ञ ही हैं,
फिर आपको क्या उपदेश करें?
शिरपै शर ताने बहेलिया काल
खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें॥
दशा अन्तको होनी कपोतकी ऐसी
परन्तु न आप जरा भी डरें।
निज धर्मके कर्म सदैव करें,
कुछ चिन्ह यहांपर छोड़ मरें॥

रूपनारायण पाण्डेय।

विविध प्रसंग।

१. संस्कृत भाषाके प्रचारकी आवश्यकता।

गृहस्थ नामक वंगला पत्रके अगहनके अकमें श्रीयुक्त विधुशेखर शास्त्रीका एक 'वहुत ही महत्वका लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने संस्कृत भाषाके सम्बंधमें लिखते हुए कहा है कि—"संस्कृत साहित्यने सारे ससारमें अपनी महिमा स्थापित की है। संस्कृतके साथ भारतीय भाषाओंका वहुत ही निकट सम्वन्ध है। संस्कृतसे हमारी भाषाओंने वहुत कुछ ग्रहण किया है और आगे भी उन्हें वहुत कुछ ग्रहण करना होगा। उसे छोड देनेसे इनकी परिपुष्टि होना असंभव है। हिन्दी भाषाके अभ्युदयके लिए सस्कृतका प्रचार वहुत ही आवश्यक है। जिले जिलेमें संस्कृतका वहुत प्रचार करनेके लिए हम सवको तन मन धनसे उद्योग करना चाहिए। इसके साथ हम और भी दो भाषाओंका प्रचार कर सकते है और करना भी चाहिए। पालि और प्राकृत साहित्यको हम किसी भी तरह परित्याग नहीं कर सकते। क्योंकि भारतके मध्य युगके इतिहासको सम्पूर्ण करनेके लिये पालि और प्राकृत साहित्य ही समर्थ है। भारतके मध्ययुगके धर्म और समाजमें तीन धाराओंका आविर्भाव हुआ था, एक ओर बौद्ध, एक ओर जैन, और मध्यमे ब्राह्मणधारा। पालि-साहित्यकी तो थोडी वहुत आलोचना हुई भी है, परन्तु प्राकृत निवद्ध जैनसाहित्य अव भी हमारी आलोचनाके मार्गमें उपस्थित नहीं हुआ है। सस्कृतके साथ पालि और प्राकृतका इतना घनिष्ठ सम्वन्ध है कि उसके साथ इनकी विना परिश्रमके ही अच्छी आलोचना हो सकती है।" शिक्षाप्रचारकोंको शास्त्रीजीके उक्त कथनपर ध्यान देना चाहिए।

२. एक प्राचीन राज्यका ध्वंसावशेष।

पृथ्वीके गर्भमे मनुष्य जातिका अनन्त इतिहास भरा पडा है। कुछ समयसे प्राचीन बातोंकी खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर बहुत कुछ आकर्षित हुआ है। जगह जगह भूगर्भ खोदकर प्राचीन स्थानोका और इतिहासोका पता लगाया जा रहा है। और इस कार्य-में कहीं कहीं तो आशासे अधिक सफलता हुई है। पाठकोको माळूम होगा कि भारतवर्षमें ऐसे कई स्थान खोदे जा चुके हैं--प्राचीन पाटलीपुत्र या पटनाकी खुदाईका काम तो अब तक जारी है और इसके लिए सुप्रसिद्ध दानी तातानें सरकारको एक अच्छी रकम देना स्वीकृत किया है। भारतके बाहर इस प्रकारकी खोजे और भी अधिक उत्साहके साथ हो रही है। एशियाके ब्याविलन नामक देशका नाम पाठकोने सुना होगा। यहाँ कई वर्षोंसे पृथ्वी खोदी जा रही है। इससे वहाँके प्रसिद्ध राजा नेबूकाडनेजर और उसकी राजधानीकी अनेक गुप्त बातोका पता लगा है। साथ ही ब्याविलोनियाकी अतिशय प्राचीन राजधानी किस नग-रकी बहुत सी चीज़े हाथ लगी है। राजमहलके विशाल आँगनमें एक बड़े भारी मन्दिरका कुछ भाग मिला है।जिसका नाम है--'स्वर्गमर्त्यकी दीवाल, जातीय देवता जमामाका मन्दिर।' इस मन्दिरमे जो मूर्तियाँ और वर्तन आदि पाये गये हैं वे ४ हजार वर्षसे भी पुराने है। बग-दाद और निनेभके मध्यवर्ती असुरनगरके खोदनेसे जो कुछ मिला है उससे प्राचीन असीरिया वासियोंके एक सुगठित सभ्यताके इतिहासका मार्ग सुगम हो गया है। कालडिया और असीरियावालोके जो मका-नात मिले हैं वे सब ईटोंके बने हुए हैं। एक पूराका पूरा मकान मिला वह सात मजिलका है। प्रत्येक मंजिलमें सात सात कमरे है और वे जुदा जुदा रग और आकारकी ईटोंसे बने हुए है। निनेभ शहरके

असुर-वनिपाल राजाके राजमहलमें एक वड़ी भारी लायब्रेरी मिली है। लायब्रेरीमें ईंटोंपर लिखे हुए कई हजार फलक हैं। इनके पढ़नेसे मालूम होता है कि ये दूसरे फलकोंपरसे किये गये हैं। अर्थात् इसके पहले भी इन लिपियोंका साहित्य था। इन फलक लिपियोंमें जुदा जुदा प्रसिद्ध भापाओंका साहित्य, अकशास्त्र, पशु पक्षी, वनस्पतियोंकेनाम, भूगोल वृत्तान्त, और पौराणिक कथायें सगृहित हैं। ये फलक वडी सावधानीसे संरक्षित करके रक्खे गये हैं। इनके सिवा और प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानोंकी तथा शिल्पादि वस्तुओंका आविष्कार हुआ है जिससे वडे ही महत्वकी वातें मिली हैं, वहुतसे मकान और वस्तुयें तो ऐसी मिली हैं जो वाइविल वननेके पाच हजार वर्ष पहलेकी वतलाई जाती हैं। इसकी ऐतिहासिक पडितोंमें वड़ी चर्चा है। इतिहास हमको धीरे धीरे वतलाता जा रहा है कि मनुष्य जातिकी सम्यता जितनी पुरानी वतलाई जाती है उससे वहुत ही पुरानी—अतिशय प्राचीनतम है।

३. चार लाखका महान् दान।

वड़े ही आनन्दका विपय है कि जैनसमाजके धनिकोंने समयोपयोगी कार्योंके लिए अपना हाथ आगे वढाया है। इस विपयमें इन्दौरके सेठोने वडी ही उदारता दिखलाई है। पाठकोंको मालूम होगा कि अभी कुछ ही दिन पहले श्रीमान् सेठ कल्याणमलजीने दो लाख रुपयेका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूलकी नींव डाल दी है। हाईस्कूलका विल्डिंग प्राय: पूरा वन चुका है और दूसरी तैयारियाँ खूव तेजीके साथ हो रही हैं। जैनियोंका यह एक आदर्श स्कूल होगा और सुना है कि सेठजी स्वीकृत रकमसे भी इस काममें अधिक रकम लगानेके लिए प्रस्तुत हैं। इधर पालीताणाके अधिवेशनमें श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजीने विद्याप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी रकम और

भी देना स्वीकार की है। जहा तक हमारा ख़याल है वर्तमान समयमें विद्योन्नतिके लिए दिगम्बर जैनसमाजमें यह सवसे वड़ा दान हुआ है। इससे बड़ी रकम इस कार्यके लिए यही सवसे पहली निकली है। इसमें सन्देह नहीं कि यह उदारता प्रगट करके सेठजीने अपना नाम युग युगके लिए अमर कर लिया है! यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि सेठजी सम्पूर्ण शिक्षित जनोंकी सम्मति लेकर इस रकमसे एक सर्वोपयोगी सर्वजनसम्मत संस्था खोलना चाहते हैं। इस विषयमें बहुत जल्दी सब लोगोंसे सम्मति माँगी जायगी और एक कमेटी संगठित करके संस्था खोलनेका निश्चय किया जायगा। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि इस रकमसे कोई आदर्श संस्था खुले और जैनियोंकी जो आवश्यकतायें है उनमेंसे किसी एककी सन्तोप योग्य पूर्ति हो।

४. शिक्षितोंका कर्तव्य।

जैनसमाजमें शिक्षितोंकी कमी नहीं। अँगरेजी और संस्कृतके ढेरके ढेर विद्वान् हमारे यहाँ हैं। इनमेंसे जो जितना उच्च शिक्षा प्राप्त है, संस्थाओंके विपयमे उसका सुर उतना ही ऊँचा है। कोई जैनहाईस्कूल खोलना आवश्यक वतलाता है, कोई जैनकालेजके विना जैनसमाजकी स्थिति ही असंभव समझता है और कोई एक वड़े भारी संस्कृत विद्यालयकी आवश्यकता प्रतिपादन करता है। इस विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक है वह होना ही चाहिए, परन्तु हम यह पूछते हैं कि क्या ये आवश्यकतायें सच्चे जीसे वतलाई जा रही हैं? इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए क्या किसीके हृदयमे कुछ उद्योग करनेकी या थोड़ा वहुत स्वार्थ त्याग करनेकी इच्छा भी कभी उत्पन्न हुई है? एक दिन था जव आप लोगोंके मुँहसे इस प्रकारका रोना शोभा देता था कि क्या करें जैनियोमें कोई धन लगानेवाला नहीं है। परन्तु अव

वह वक्त जा रहा है। मैं आज इन्दौरमे बैठा हुआ अनुभव कर रहा हूँ कि रुपया लगानेवाले तो तैयार हो गये, परन्तु हाईस्कूलों और कालेजकी चिल्लाहटसे कानकी झिल्लियॉ फाडनेवालोंका कहीं पता नहीं है। यहॉ क्यों मै तो प्रत्येक सस्थामें यही हाल देखता हूँ। जैनियोंकी प्रायः सब ही सस्थाओंकी दुर्दशा है और इसका एक मात्र कारण यह है कि हमारे यहॉ सुयोग्य काम करनेवाले नहीं मिलते। एक संस्था खुलती है, कुछ दिनोंके लिए अपनी टीमटाम दिखा जाती है और अन्तमें वे ही 'ढाकके तीन पात' रह जाते हैं—अच्छे शिक्षित कार्यकर्त्ताओंके अभावसे वह अपना पैर नहीं बढा सकती। प्यारे शिक्षित भाइयो, अब यह समय आलस्यमें या केवल स्वार्थकी कीचडमें पड़े रहनेका नहीं है। इस समय यदि आप कार्यक्षेत्रमें न आवेंगे तो बस समझ लीजिए कि जैनसमाजकी उन्नति हो चुकी। इन नवीन सस्थाओंको अपने अपने कन्धोंपर नहीं रक्खा तो बस आगे इनका खुलना ही बन्द हो जायगा और यदि अपने अपने कर्तव्यका पालन किया तो अभी क्या हुआ इस धनिक जैनजातिमें प्रतिवर्ष ही ऐसी लाख दो लाख चार चार लाखकी अनेक संस्थाओंका जन्म होगा। और आपको काम करते देखकर आपके पीछे सैकड़ों कर्मवीर इन सस्थाओंके चलानेके लिए तैयार होते रहेंगे। इस समय तो काम करनेवाले कहीं दिखते ही नहीं हैं। मालूम नहीं आज वे स्टेजपर खड़े होकर बड़े बड़े लेक्चर झाड़नेवाले कहॉ हैं? भाइयो, लेक्चरोंका काम अब नहीं रहा, वह तो हो चुका। अब तो कामका वक्त आया है। दयानन्द कालेज, पूना कालेज, हिन्दू कालेज, गुरुकुल आदि सस्थाओंको देखकर सीखो कि देश और समाजकी सेवा कैसे की जाती है और फिर अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार

जिससे जितनी हो सके इन संस्थाओंकी सेवाके लिए कटिबद्ध हो जाओ—और लोगोंको दिखला दो कि शिक्षा प्राप्त करनेका फल केवल धन कमाना नहीं, किन्तु देश और समाजकी सेवा करना है।

५. पदवियोंका लोभ.

देखते हैं कि आजकल जैन समाजमें पदवियोंका लोभ बे तरह बढ़ता जाता है। एक तो सरकारकी ओरसे ही प्रतिवर्ष चार छह जैनी रायसाहब, रायबहादुर आदिकी वीररसपूर्ण पदवियोंसे विभूषित हो जाते हैं और फिर जैनियोंकी ख़ास टकसालमें भी दश पाँच सिंगई, सवाई सिंगई, श्रीमन्त आदि प्रतिवर्ष गढे जाते हैं। उधर सरकारी यूनीवर्सिटियोंकी भी कम कृपा नहीं है। उनके द्वारा भी बहुतसे बी. ए., एम. ए., शास्त्री, आचार्य आदि बना करते हैं। परन्तु माल्रम होता है कि लोगोंको इतनेपर भी सन्तोष नहीं। उनके आत्माभिमानकी पुष्टि इतनेसे नहीं हो सकती। पदवी पानेके ये द्वार उन्हें बहुत ही संकीर्ण माल्रम होते हैं। इनसे तंग आकर अब उन्होंने सभा समितियोंका आश्रय लिया है। चूंकि पदवी दान सरीखा सहज काम और कोई नहीं इस लिए सभाओंने बड़ी खुशीसे यह काम स्वीकार कर लिया है। अभी कुछ समयसे प्रांतिक सभा महासभा आदि एक दो सभाओंने इस कामको अपने हाथमें लिया था और दो चार व्यक्तियोंको अपने कृपा कटाक्षसे ऊँचा उठाया था। परन्तु इनका यह कार्य बड़ी ही मन्दगतिसे चल रहा था। यह देख भारत जैन महामण्डलसे न रहा गया उसने अबके बनारसके अधिवेशनपर सारी संकीर्णताको अलग कर दिया और एक दो नहीं दर्जनों पदवियाँ अपने कृपापात्रोंको दे डालीं। इस विषयमे उसने इतनी उदारता दिखलाई जितनी शायद ही कोई दिखा सकता। सुनते तो यहाँ तक है कि मण्डलके बहुतसे मेम्ब-

रोंसे इस विषयमें सम्मति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी गई। अस्तु, जब पदवियाँ दी जा चुकी है और उनका व्यवहार भी किया जाने लगा है, तब इस विषयको लेकर तर्क वितर्क करनेमें कुछ फल नहीं कि जिन लोगोंको पदवियाँ दी गई हैं वे वास्तवमे उनके योग्य थे या नहीं और कमसे कम पदवी देनेवाले अपनी दी हुई पदवियोंका कुछ अर्थ समझते थे या नहीं, किन्तु यह हमें ज़रूर देख लेना चाहिए कि पदवी देना कहाँ तक अच्छा है, पानेवालेपर उसका क्या परिणाम होता है और हमारी पदवियोंकी कहाँ तक कदर करते है। यह सच है कि जो लोग धर्म और समाजकी सेवा कर रहे हैं उनका सत्कार करना, उनको गौरवकी दृष्टिसे देखना हमारा कर्तव्य है। हमारे ऊपर उनके जो सैकड़ों उपकारोंका बोझा है उसे हम और किसी तरह नहीं तो उनके प्रति अपनी शाब्दिक भक्ति प्रगट करके हलके ही होना चाहते है; परन्तु साथ ही हमे इस बातका खयाल अवश्य रखना चाहिए कि वर्तमानमें हमें ऐसे नेताओंकी और काम करनेवालोंकी ज़रूरत है जो सच्चे कर्मवीर है। अर्थात् जो किसी भी प्रकारके फलकी आकाक्षा रक्खे बिना ही देश, समाज और धर्मकी सेवा अपना कर्तव्य समझकर करें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी इस शाब्दिक भक्तिसे या पदवीदानसे वे गुमराह हो जावे और अपने कर्तव्यको भूलकर हमारे दो चार शब्दोंके लोभसे मार्गच्युत हो जावे। उन्हें अपने कर्तव्यका अभिमान होना चाहिए न कि पदवीका। इसके सिवा जैसे पुरुषोंकी हमारे यहां आवश्यकता है हमारी इस पदवीवर्षासे उनका आदर्श गिर जाता है। सच पूछिए तो अभी तक जैन समाजने एक भी नेता कार्यकर्त्ता और सच्चा सेवक ऐसा उत्पन्न नहीं किया है जो हमारा आदर्श हो सके और जिसके प्रति भक्ति करनेके लिए हमें पदवियाँ

देनेकी चिन्ता करनी पड़े। हम यह नहीं कह सकते कि जिन्हें पद-वियॉ दी गई हैं वे योग्य नहीं हैं; नहीं, परन्तु यह अवश्य है कि पद-वियॉ देकर हमने एक तरहके आदर्श लोगोंके सामने खड़े कर दिये हैं कि हमारे आदर्श ये है। इतना होते ही हम कृतकृत्य हो सकते है। और यह वहुत ही बुरी बात है। हमारे आदर्श पुरुष बहुत ही ऊंचे होने चाहिए और रात दिन अपने कर्तव्य करते हुए उत्कण्ठाके साथ हमे देखते रहना चाहिए कि ऐसे महात्माओंके जन्मसे हमारा देश कब पवित्र होता है। यदि हम वर्तमान उपाधिधारियोंसे ही तृप्त हो गये तो सब हो चुका; हमे अपनेसे और अधिक आशा न रखनी चाहिए। इस समय हमें दूसरे समाजोंके तथा सर्वसाधारणके नेताओको देखना चाहिए कि उन्हे कितनी पदवियाँ दी गई हैं। मान्यवर तिलक, मि० गोखले, लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, श्रीयुक्त गॉधी आदि आदर्श पुरुषोको बतलाइए कितनी पदवियॉ दी गई हैं? कई महाश-योंका यह कथन है कि हमारा समाज अभी औरोंसे बहुत पीछे है, इस लिए उसमें जो काम करनेवाले है उनका सत्कार करके उन्हें उत्साहित करना चाहिए। परन्तु सच पूछा जाय तो यह पालिसी अच्छी नहीं। लोभसे या ऐहिक अभिमान पुष्ट करके जो लोग तैयार किये जावेंगे वे उनसे कदापि अच्छे और ऊचे नहीं हो सकते जो अपना कर्तव्य समझ कर, समाजसेवाको अपना पवित्र कर्म मानकर काम करते है। जिसको पदवी दी जाती है उससे मानो कह दिया जाता है कि तुम अपना काम कर चुके, कृतकृत्य हो चुके, अब तुम्हें कुछ भी करना बाकी नहीं है। आशा है कि हमारे इन थोडेसे शब्दोंपर पदवी देनेवाले और लेनेवाले दोनों ही कृपादृष्टि करेंगे और आगे जिससे यह पदवियोंका लोभ बढ़ने न पावे इसकी उचित व्यवस्था करेंगे।

६. हमारी संस्थायें और उनपर लोगोंकी सम्मतियाँ।

ज्यों ही कोई पढ़ा लिखा या प्रसिद्ध पुरुप किसी सस्थामें पहुँचा और एकाध दिन रहा कि उसके आगे सस्थाकी व्हिजीटर्स बुक रख दी जाती है। उससे कहा जाता है कि इस सस्थाके विपयमें आप अपनी राय लिखिए। एक तो जैन समाचारपत्रोंकी कृपासे उस निरीक्षकका पहलेहींसे कुछका कुछ विश्वास वना हुआ होता है। क्योंकि समाचारपत्रोंके सम्पादक एक तो सस्थाकी भीतरी हालतसे स्वयं ही अपरिचित होते हैं, दूसरे सस्थाके सचालक लोग उसकी प्रसिद्धिके लिए प्रायः दवाव ही डाला करते हैं और तीसरे सम्पादक महाशय भी संस्थाको कुछ प्राप्ति हो जाया करे इस खयालको अधिक पसन्द करते हैं। फल यह होता है कि निरीक्षक महाशय अपने पूर्व विश्वासके अनुसार सस्थाकी प्रशंसा कर देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। वास्तवमें जव तक दश वीस दिन रहकर किसी सस्थाका वारीकीसे अवलोकन न किया जाय तव तक कोई भी उसका भीतरी रहस्य नहीं जान सकता है। परन्तु यहाँ तो एक ही दिनमें निरीक्षक महाशय अपनी कलमसे उसे सर्वोपरि वना देते है। इसके वाद संस्थाके सचालक उस रिमार्कको समाचारपत्रोंमें तथा वार्पिक रिपोर्टमें प्रकाशित कर देते हैं। लोग समझते है कि सचमुच ही यह सस्था अच्छा काम कर रही है—इसमें कोई दोप नहीं है। परन्तु इस पद्धतिसे समाजको और सस्थाको वहुत ही हानि पहुँचती है। समाजमें उसके विपयमें कुछका कुछ खयाल हो जाता है और संस्थाके संचालक इन प्रशसासूचक सम्मतियोंसे गुमराह हो जाते है। इस विपयमें लोगोंको सचेत हो जाना चाहिए।

७. संस्थाओंमें अंधाधुंध खर्च।

हमारे एक पाठक लिखते हैं कि जैनियोंकी सस्थाओमें विशेष

करके जो नईनई खुलती है, अन्धाधुन्ध ख़र्च किया जाता है। यह न होना चाहिए। संचालकोंको समाजके धनको अपना अपना कमाया हुआ समझकर बहुत खयालसे ख़र्च करना चाहिए। और सस्थाओंकी आवश्यकताओंको जहाँ तक बने कम करना चाहिए। आयोजनों और आडम्बरोंकी ओर कम दृष्टि रखकर कामकी ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिए। इस विषयमें इसी अङ्कमे प्रकाशित ' शिक्षासमस्या नामक लेखकी ओर हम पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित करते है। उसमें इस विषयको बहुत ही स्पष्टतासे समझाया है।

८. जैन साहित्य सम्मेलन।

आगामी मार्चकी ता० २—३—४ को जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन होगा। उस समय जोधपुरमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध साधु श्रीविजयधर्म सूरि रहेंगे और उनसे मिलनेके लिए जर्मनीके विद्वान् डाक्टर हरमन जैकोवी पधारेगे। इस शुभ सम्मिलनके अवसरपर जैनसाहित्य सम्मेलनका अधिवेशन एक तरहसे बहुत ही उचित हुआ है। सम्मेलनके सेक्रेटरीसे मालूम हुआ है कि जैनोंके तीनों सम्प्रदायके साहित्यसेवियोंको इस जल्से पर शामिल होनेका निमत्रण दिया गया है। यह एक और भी बहुत अच्छी बात है। यदि हम सब साहित्य जैसे विषयकी चर्चा करनेके लिए भी एकत्र न हो सके तो और किस काममें एक हो सकेंगे? जिन जिन कामोको तीनों सम्प्रदायवाले एक साथ मिलकर कर सकते है उनमे एक यह भी है। इस सम्मेलनमें अनेक विषयोंपर निबन्ध पढे जावेगे और निम्नलिखित विषयोंकी ख़ास तौरसे चर्चा होगी:—१ प्राकृत भाषाका कोश और व्याकरण नई पद्धतिके अनुसार तैयार करवाना। यूनीवर्सिटियोंमें प्राकृत भाषा दाखिल करवानेकी आवश्यकता। ३ जैन-

पाठ्य पुस्तकें तैयार करवानेकी जरूरत। ४ जैनसाहित्यका प्रसार करनेके लिए पाश्चात्य विद्वानोंने जो प्रयत्न किया है, उसके विषयमें धन्यवाद देना और विशेष प्रयत्न करनेके लिए प्रेरणा करना। ५ जैन इतिहास तैयार करनेकी आवश्यकता। ६ जैन म्यूजियमके स्थापित करनेकी आवश्यकता। ७ प्राचीन खोजोंके द्वारा जैन साहित्य प्रगट करनेकी आवश्यकता। ८ भिन्न भिन्न भाषाओंके द्वारा जैनसाहित्य प्रगट करानेकी आवश्यकता। ९ प्रगट होनेवाले साहित्यको पास करनेवाले एक मण्डलकी आवश्यकता। इसमें सन्देह नहीं कि जैनियोंमें एक साहित्यसम्मेलनकी बहुत बडी जरूरत है, परन्तु यह बात अभी विचारणीय ही है कि इसका समय अभी आया है या नहीं। दिगम्बर सम्प्रदायके शिक्षितोंसे हमारा जो कुछ परिचय है और अपने श्वेताम्बरी और स्थानकवासी मित्रोंसे हमारी जितनी जानकारी है उसके खयालसे हम समझते हैं कि अभी हममें साहित्यसेवी बहुत ही कम हैं और जब तक साहित्यसेवियोंकी एक अच्छी सस्था न हो जाय तब तक इस विषयमें सफलताकी बहुत ही कम आशा है।

---

९. बालक साधु न होने पावें।

बहुतसे साधु वेषधारी लोग छोटे छोटे बच्चोंको फुसलाकर साधु बना लेते हैं और उनसे अपनी शिष्यमण्डलीकी वृद्धि करते है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायके जैनियोंमें तो इसका बहुत ही जोर है। प्रतिवर्ष बीसों ना समझ बच्चे साधुका वेष धारण किया करते हैं और जब ये जवान होते है तब इनके द्वारा ढोंग और दुराचारोकी वृद्धि होती है। इनमें बहुत ही कम साधु ऐसे निकलते हैं जो इस पवित्र नामके धारण करने योग्य हो यह देखकर प्रान्तीय व्यवस्था-

एक कौसिलमें आनरेवल लाला सुखवीरसिंहजीने बालक साधुओंको रोकनेके लिए एक बिल पेश किया है। हर्षका विषय है कि अभी हाल ही इस बिलका काशीके पण्डितोने पं० शिवकुमार शास्त्रीकी अध्यक्षतामे खूब दृढताके साथ समर्थन किया इसके पहले काशीके निर्मले साधुओंने भी इसका अनुमोदन किया था। प्रायः सभी समझदार लोग इसके पक्षमें है। परन्तु हमको यह जानकर बडा दुःख हुआ कि कलकत्तेके कुछ जैनी भाइयोंने इसका विरोध किया है और कुछ दिन पहले जैनमित्रके सम्पादक महाशयने भी लोगोंको कलकत्तेके भाइयोका साथ देनेके लिए उत्साहित किया था। हमारी समझमें उक्त सज्जन या तो इन बालक साधुओंके विकृत जीवनसे परिचित नहीं हैं या इन्हे यह भय हुआ है कि कहीं इससे हमारे धर्ममार्गमें कुछ क्षति न पहुँचे। वह समय चला गया; वह धर्मपूर्ण समाज अब नहीं रहा और वे भाव अब लोगोमें नहीं रहे। जब छोटीसी उमरमें बालकोको वैराग्य हो जाता था। और उमरमें केवलज्ञान होनेकी संभावना थी। यह समय उससे ठीक उलटा है इन बालक साधुओंके द्वारा कितने कितने अनर्थ होते हैं उन्हें देख सुनकर रोम खडे होते है। इस लिए इस विषयमें कुछ रुकावट हो जाय तो अच्छा ही होगा। हाँ, हम इतनी प्रार्थना कर सकते हैं कि इस कानूनका वर्ताव समझ बूझकर किया जाय इसमें सख्ती न की जाय।

१० एक शिक्षितके अपने पुत्रके विषयमें विचार।

हमारे पाठक जयपुरनिवासी श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. को अच्छी तरहसे जानते हैं। कुछ दिन पहले आपने अपने पुत्र चिरजीवि प्रकाशचन्द्रकी नवम वर्षगाठका उत्सव किया था। यह उत्सव बिलकुल ही नये ढगका और प्रत्येक शिक्षितके अनुकरण करने योग्य हुआ था।

स्थानकी कमीसे हम उत्सवका पूरा विवरण न देकर केवल उतने ही शब्द यहाँ प्रकाशित करेंगे जो श्रीसेठीजीने उस समय कहे थे—"सज्जन-वृन्द, आज आप लोगोंने बड़ी भारी कृपा करके मेरे इस गरीब घर-को पवित्र किया। इसका मैं बहुत ही आभारी हूँ। आज प्रकाश-चन्द्रका जन्म दिन है। यह जब पैदा हुआ था तब इसने इस घरमें आन-न्दके बाजे बजवाये थे और आज यह नौवें वर्षका उल्लंघन कर दशवें-में पदारोपण करता है, इसलिए आज भी आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। किन्तु मेरी समझमें उस खुशीमें और इस खुशीमे बहुत अन्तर है। इसका वर्णन करनेके लिए बहुत समय चाहिए इसलिए मैं उसका जिक्र न करके अपने उद्देश्यकी ओर झुकता हूँ। बान्धवो, मैं अपने लख्ते जिगर प्रकाशचन्द्रसे आम लोगोंकी तरह यह आशा नहीं रखता कि यह मुझे धन कमा कर दे। मै नहीं चाहता कि प्रकाशचन्द्र बडे बड़े महल मकानात चुनावे और बुढ़ापेमें मेरी सेवा करे। मै नहीं चाहता कि यह बी. ए, एम. ए, पासकर तहसीलदारी या नाजिमी कर गुलाम बने। मैं सौ दो सौ रुपये मासिक वेतनमे इसका जीवन नहीं बिक-वाना चाहता। मैं चाहता हूँ कि जिस भूमिपर जन्म लेकर इसने आपको इतना बड़ा किया है, जिसके अन्न जल वायुसे पालित पोषित होकर यह अपनी प्राणरक्षा कर सका है, जिसके सन कपासादिके कपडोंसे अपने शरीरको बचा सका है उसी जन्म भूमिकी भलाईके लिए उस-की बहबूदीके लिए और उसकी उन्नतिके लिए यह अपना सर्वस्व अर्पण कर दे। बेटा प्रकाश, आजसे मैंने तुमको उस स्वर्णमयी धरा-का, उस भीमार्जुन जैसे वीरोंको जन्म देनेवाली वसुन्धराका, कर्ण सदृश दानियोंकी जन्मदातृ भूमिका, समन्तभद्राचार्य, शंकराचार्य, हेम-चन्द्राचार्य, अकलङ्क भट्टादि तत्त्ववेत्ताओंकी धारक धरणीका, गौत-

मादि जैसे प्रेमपाठक महात्माओंको उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीका, महावीर पार्श्वनाथादि जैसे तीर्थकरोंको अपनी गोदमें पालन करनेवाली मेदिनीका त्राण करनेके लिए उसके उद्धारार्थ अपर्ण किया। वत्स, आजसे तुम इसी भारतभूमिको अपनी जननी समझना, समाज व धर्मको अपना पिता मानना, देशहितैषिता व समाजहितैपितामें महाराणा प्रताप व शिवाजीका अनुकरण करना, अपने धर्ममें दृढ़ रहना, प्राणके रहने तक अपने देशव्रतका व धर्मव्रतका पालन करना, महात्मा ईसाकी भाँति शूलीपर चढ़ने पर भी अपने धर्मकी रक्षा करना, साक्रेटीजकी भाँति यदि जहरका प्याला पीना पड़े तो बेधड़क होकर पीना, गुरु गोविन्दसिंहके नौ और ग्यारह वर्षके बालकोंकी भाँति यदि धर्मके लिए तुम्हे कोई दीवालमें चुनवा देनेकी आज्ञा दे तो तुम बेधड़क होकर दीवालके साथ अपली इस नाशमान देहको चूने मिट्टीकी भाँति चुने जाने देना, अपने पूर्वज निकलङ्ककी भाँति यदि तुम्हें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़े तो बेधड़क होकर करना। किन्तु अपने धर्मको किसी तरह कलङ्कित न होने देना। सेठीजीके वचन बडे ही मार्मिक है। प्रत्येक शिक्षित पिताको अपने पुत्रसे इसी प्रकारकी पवित्र आशायें रखनी चाहिए।

११- बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिकोत्सव।

अबकी वार बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिक अधिवेशन शत्रुजय सिद्धक्षेत्रपर धूमधामके साथ हो गया। लगभग दो ढाई हजार दर्शक उपस्थित हुए थे। अधिवेशनमे सिवा इसके कि सभापति साहब

श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजीने शिक्षाप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी एक मुश्त रकम देनेका वचन दिया और महत्त्वका कार्य नहीं हुआ। स्वागतकारिणी समितिके सभापतिका और सभापतिका व्याख्यान हुआ, मामूली प्रस्ताव पेश हुए और पास किये गये, इस तरह सभाका जलसा समाप्त हो गया। सभाएँ और उनके अधिवेशन करते हुए हमे वहुत दिन हो गये। इनसे हमारा इतना अधिक परिचय हो गया है कि अब इनमें हमें पहले जैसा आनन्द नहीं आता; अब ये काम भी एक प्रकारकी रूढियेंका रूप धारण करते जाते है और हमारे उत्साह आनन्द आदिमें कुछ विशेष उत्तेजना नहीं ला सकते हैं। इसलिए हमे अब अपने मार्गको कुछ बदलना चाहिए और अपनी प्रत्येक सभाके जलसेको ऐसा रूप देना चाहिए जिससे वह हमारे हृदयमें कुछ नवीन उत्साह और आनन्दकी वृद्धि करे, किसी खास कार्य करनेके लिए हममे उत्तेजना उत्पन्न करे, हमारे नवयुवकोंको नये नये कर्तव्यके पथ सुझावे और आगे अपनी अपनी जिम्मेदारियोंको अधिकाधिक समझने लगें। यदि हम ऐसा न कर सकें तो कहना होगा कि समाजके सिरपर विवाह शादियों या मेला उत्सवोंके समान यह एक और नया खर्च मढ दिया है।

१२ एक वालिकाकी अतिशय शोकजनक मृत्यु।

जिस तरह इस ओर कन्याविक्रयका जोरोशोर है उसी प्रकार बगालमें कन्याके पितासे मनमाना रुपया लेकर पुत्रकी सगाई करनेका अत्यधिक प्रचार है, यह धन जो कन्याके पितासे लिया जाता है यौतुक कहलाता है, विना हजारों रुपया यौतुक दिये कोई पिता अपनी कन्या अच्छे वरके साथ सम्बन्ध नहीं विवाह पाता। इससे जिन साधारण स्थितिके गृहस्थोंके एक साथ दो कन्याएँ विवाहने योग्य हो गईं उनके दु.खका कुछ पारावार नहीं रहता। फाल्गुणके प्रवासीसे मालूम हुआ

है कि १४ वर्षकी लड़कीका एक शिक्षित युवकके साथ विवाहसम्बन्ध स्थिर हुआ। वरका पिता जितना यौतुक चाहता था उस सबको जुटा न सकनेके कारण आखिर उसने अपने रहनेका मकान तक गिरवी रख दिया। परन्तु यह वात कोमलचित्ता वालिकासे न देखी गई। उसने सोचा, मेरे लिए मेरे मातापिता सदाके लिए दारिद्र कूपमें पड़ते है, यह कितने सतापका विषय है। इन्हें इस दुःख-से अवश्य मुक्त करना चाहिए। और कुछ उपाय न देखकर वह आगमें पड़कर मर गई। हाय जिस भारतवर्षको यह अभिमान था कि हमारे यहाँके विवाहसम्वन्ध एक प्रकारके आध्यात्मिक व्यापर हैं, भारतवासी अपने विवाह इहलौकिक शान्ति और पारलौकिक कल्याणके लिए करते थे, उसी देशमे अव यह क्या हो रहा है। कहीं कन्यायें वेचीं जाती है और कहीं पुत्र वेचे जाते है। क्या जाने हमारा समाज इस योग्य कव होगा जव इन कुरीतियोंसे पिण्ड छुड़ाकर अपने गौरवकी रक्षा कर सकेगा।

क्षमा-प्रार्थना।

मैं पॉच महीनेसे वीमार हूँ। खॉसी मेरा पीछा नहीं छोड़ती। कोई एक महीनेसे यहॉ इन्दौरमे इलाज करा रहा हूँ। अभी तक कुछ भी आराम नहीं हुआ। जैनहितैषी इसी कारण समयपर प्रकाशित नहीं हो सकता, सम्पादनमे भी वहुत कुछ शिथिलता होती है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि यदि कुछ समय और भी हितैषी समयपर न निकल सके, तो उसके लिए वे उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान करेंगे।



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१० वाँ भाग] पौष, श्री० वी० नि० सं० २४४०। [३ रा अंक।

वसन्त और बालक।

(१)

सुन्दर सुखद वसन्त, नवल शोभा ले आया।
सबके मन उत्साह, पड़ी ज्यों उसकी छाया॥
चेतनकी क्या बात, रूख रूखे जड़ जो हैं।
वे भी होकर सरस, प्रफुल्लित, मनको मोहैं॥
शान्तिपूर्ण ऋतुराजका, अब सुराज्य संस्थित हुआ।
जड़ जाड़ेके जुल्मका, 'कम्प' आज प्रशमित हुआ॥

(२)

प्रथम हुआ पतझाड़, झड़पड़े पत्र पुराने।
आये पल्लव नये, नम्रताको गुण जाने॥
ऊंचे होकर रहें नम्र, सम्मानित होंगे।
इन्हें देखकर लोग, परम आनन्दित होंगे।
मंगलके हर काममें, सादर लाये जायँगे।
देखो देवस्थानमें, ललित लगाये जायँगे॥

(३)

कर्कश, कुटिल, न नम्र कर्मचारी सम सारे—
पदभ्रष्ट होगये पुराने पत्ते न्यारे ॥
देखो सुन्दर स्वच्छ हृदयके कोमल पल्लव,
श्री-सम्पादन लगे वहीं पर करने अभिनव ॥
सुप्रबंधसे दूरकर, पक्षपात अविचारको।
मानो इस ऋतुराजने, जमा लिया अधिकारको ॥

(४)

प्यारे बालकवृन्द, कहो, क्या शिक्षा पाई ?
नवपल्लवके सदृश बनोगे तुम सुखदाई ?
ज्यों अपने सौन्दर्य और रंगीनीसे ही।
खुश करते ये सभी जगतको, सहज सनेही ॥
वैसे ही तुम भी, कहो, पाकर गुणसम्पन्नता—
रूपरंगके ढंगसे, दोगे हमें प्रसन्नता ?

(५)

यथासमय ज्यों मुकुलपुंज, मंजुलता धारे—
खिलकर खुलकर हुए गन्धसे सबको प्यारे,
निजविकाससे जन्मभूमिको किया सुगंधित;
वैसे ही तुम हृदय-कलीको करो सुविकसित ॥
विद्या-बुद्धि-चरित्रके शुद्ध प्रशस्त सुवाससे—
श्रेष्ठ बना दो देशको तुम हार्दिक उल्लाससे ॥

(६)

देखो, पावन पवन, यथा वह गन्ध मनोहर—
दिग्दिगन्तमें व्याप्त कर रहा, जाकर घर घर ॥
वैसे ही सबलोग तुम्हारे गुणगण गावें।
सुयश तुम्हारा स्वयं जगत भरमें फैलावें ॥
फूल, न चेष्टा कुछ करे, गुनगुन गुण गावें भ्रमर।
तुम भी गुण-संग्रह करो, होगा सुयश स्वयं अमर ॥

(७)

शिक्षा यह भी ग्रहण करो पतझाड़ देखकर।
रह सकती है चीज़ कामहीकी निजपद पर॥
हुआ निकम्मा, वही गिरा, ज्यों पत्र पुराने।
कर्मी इससे बनो; 'प्रकृति'को निजगुरु जाने॥
स्वयं निकम्मे मत बनो, औरोंको उपदेश हो।
कर्मनिष्ठ उत्कर्षयुत, फिर भी अपना देश हो॥

(८)

देखो गति, कर्तव्यनिष्ठ निरपेक्ष पवनकी।
है न इसे कुछ चाह सुगन्धित इस उपवनकी॥
तो भी गुणमें फँसी सुगन्ध न इसको छोड़े।
हो इसकी सहचरी आप ही नाता जोड़े॥
यश-लक्ष्मीकी लालसा छोड़, करो कर्तव्यको।
भजती है वह आपही योग्यपुरुषको-भव्यको॥

(९)

देखो, यह सहकार, मधुरतामयी सरसता—
और श्रेष्ठताके घमंडसे भरा, दरसता॥
फूल रहा है, और सफलताकी आशा पर—
बौराया है, यथा गुणी उद्धत कोई नर॥
तुम पाकर कुछ योग्यता, या धनाढ्य होकर कभी,
बनो न ऐसे बावले; मिट्टी होंगे गुण सभी॥

(१०)

स्पष्टवादिता और मित्रका धर्म निभाता।
यह कोकिल है धन्य, इसीसे आदर पाता॥
वह रसालके पास बैठकर चिल्लाता है।
'कु—ऊ, कु—ऊ'* कह रहा, मित्रको समझाता है॥
स्वार्थी भ्रमरोंके वृथा साधुवादमें पड़ अहह!
उसकी कुछ सुनता नहीं श्रीमदान्ध जड़ आम यह॥

---

* अर्थात् यह बुरा है

(११)

होगा क्या परिणाम, सुनो, सब फूल झड़ेंगे।
यथासमय फल सभी भूमिपर टपक पड़ेंगे॥
सुन्दरताके साथ मित्र भी त्याग करेंगे।
जान वही जड़ रूख, न हम अनुराग करेंगे॥
इससे तुम निज मित्रकी सम्मतियोंपर कान दो।
अच्छे जो उपदेश हों, उनके ऊपर ध्यान दो॥

(१२)

वह अशोकका वृक्ष, शोकसे आप रहित है।
और स्निग्धता-शीतलता-सौभाग्य-सहित है॥
छाया अपनी घनी सुविस्तृत करके वनमे,
करता सुखसञ्चार पथिक-आश्रितके मनमें॥
सबको, करे अशोकः यों शुभ शोभा रमणीय है।
इसका पर-उपकार यह, सचमुच अनुकरणीय है॥

(१३)

देखो फूलोंको, विचित्रता इनमे वह हैः
जो उन्नतिका मूलमन्त्र सुखका संग्रह है॥
इन फूलोंमे अगर न होती यह विचित्रता।
जो आकार-आकारमे न होती विभिन्नता॥
होते एकसमान जो रूप-रंगमे ये सभी।
तो शोभासे विश्वको मुग्ध न करसकते कभी॥

(१४)

है विभिन्नता यद्यपि इनके रंग ढंगमे।
पर सब है, उद्देश्य एकसे, लगे संगमें।
अपने अपने रूप-रंग-सौरभ-विलाससे।
जन्मभूमिको करे सुशोभित निज विकाससे॥
होनहार हे बालको, ये जड़ हैं, पर धन्य हैं।
जन्मभूमि-सेवा निरत, उसके भक्त अनन्य हैं॥

(१५)

भिन्न वर्ण या भिन्नजातिके तुम भी सब हो।
किन्तु तुम्हारा एक लक्ष्य हो, एकी ढब हो॥
मुसलमान, या आर्य जैन, ईसाई, तुम हो।
स्मरण रहे, इस जन्मभूमिमें भाई तुम हो॥
रूप-रंग-आकारमें भाषामें तुम भिन्न हो।
जन्म-भूमि-सेवा करो, यह कर्तव्य अभिन्न हो॥

—रूपनारायण पाण्डेय।

ग्रन्थ-परीक्षा।

(२)

कुन्दकुन्द-श्रावकाचार।

जैनियोंको भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका परिचय देनेकी जरूरत नहीं है। तत्त्वार्थसूत्रके प्रणेता श्रीमदुमास्वामी जैसे विद्वानाचार्य जिनके शिष्य थे, उन श्रीकुन्दकुन्द मुनिराजके पवित्र नामसे जैनियोंका बच्चा बच्चातक परिचित है। प्राय· सभी नगर और ग्रामोंमें जैनियोंकी शास्त्रसभा होती है और उस सभामें सबसे पहले जो एक बृहत् मगलाचरण (ॐकार) पढ़ा जाता है, उसमें 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यः' इस पदके द्वारा आचार्य महोदयके शुभ नामका बराबर स्मरण किया जाता है। सच पूछिए तो, जैनसमाजमें, भगवान् कुन्दकुन्दस्वामी एक बडे भारी नेता, अनुभवी विद्वान् और माननीय आचार्य होगये है। उनका अस्तित्व विक्रमकी पहली शताब्दीके लगभग माना जाता है। भगवत्कुदकुदाचार्यका सिक्का जैनसमाजके हृदयपर यहाँ-तक अंकित है कि बहुतसे ग्रथकारोंने और खासकर भट्टारकोंने अपने आपको आपके ही वशज प्रगट करनेमें अपना सौभाग्य और गौरव

समझा है। बल्कि यो कहिए कि बहुतसे लोगोंको समाजमे काम करने और अपना उद्देश्य फैलानेके लिए आपके पवित्र नामका आश्रय लेना पड़ा है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैनियोमे श्रीकुन्दकुन्द कैसे प्रभावशाली महात्मा होचुके हैं। भगवत्कुंदकुंदाचार्यने अपने जीवनकालमें अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंका प्रणयन किया है। और उनके ग्रंथ, जैनसमाजमें बड़ी ही पूज्यदृष्टिसे देखे जाते हैं। **समयसार, प्रवचनसार** और **पंचास्तिकाय** आदि ग्रथ उन्हीं ग्रंथोमेंसे है जिनका जैनसमाजमें सर्वत्र प्रचार है। आज इस लेखद्वारा जिस ग्रंथकी परीक्षा की जाती है उसके साथ भी श्रीकुंदकुंदाचार्यका नाम लगा हुआ है। यद्यपि इस ग्रंथका, समयसारादि ग्रथोंके समान, जैनियोमे सर्वत्र प्रचार नहीं है तो भी यह ग्रंथ जयपुर, बम्बई और महासभाके सरस्वती भंडार आदि अनेक भडारोंमें पाया जाता है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ (श्रावकाचार) भी उन्हीं भगवत्कुदकुदाचार्यका बनाया हुआ है जो **श्रीजिनचंद्राचार्यके** शिष्य थे। और न सिर्फ कहा ही जाता है बल्कि खुद इस श्रावकाचारकी अनेक संधियोंमे यह प्रकट किया गया है कि यह ग्रथ श्रीजिनचंद्राचार्यके शिष्य कुदकुंदस्वामीका बनाया हुआ है। साथ ही ग्रथके मंगलाचरणमें '**वन्दे जिनविधुं गुरम्**' इस पदके द्वारा ग्रथकर्त्ताने 'जिनचंद्र' गुरुको नमस्कार करके और भी ज्यादह इस कथनकी रजिस्टरी कर दी है। परन्तु जिस समय इस ग्रथके साहित्यकी जॉच की जाती है उस समय ग्रंथके शब्दों और अर्थों परसे कुछ और ही मामला माळूम होता है। श्वेताम्बर

---

१. कुन्दकुन्दस्वामी जिनचन्द्राचार्यके शिष्य थे और उमास्वामीके गुरु कुन्दकुन्द थे, इस बातका अभीतक कोई दृढ प्रमाण नहीं मिला है। केवल एक पट्टावलीके आधारसे यह बात कही जाती है। —**सम्पादक**।

सम्प्रदायमें श्रीजिनदत्तसूरि नामके एक आचार्य विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें होगये हैं। उनका बनाया हुआ 'विवेक-विलास' नामका एक ग्रंथ है। सम्वत् १९५४ में यह ग्रथ अहमदाबादमें गुजराती भाषाटीकासहित छपा था। और इस समय भी बम्बई आदि स्थानोंसे प्राप्त होता है। इस 'विवेकविलास' और कुदकुदश्रावकाचार दोनों ग्रथोका मिलान करनेसे माऌम होता है कि, ये दोनों ग्रंथ वास्तवमें एक ही है और यह एकता इनमें यहॉतक पाई जाती है कि, दोनोंका विषय और विषयके प्रतिपादक श्लोक ही एक नहीं, बल्कि दोनोकी उल्लाससख्या, आदिम मंगलाचरण* और अन्तिम काव्य+ भी एक ही है। कहनेके लिए दोनों ग्रथोंमें सिर्फ २०--३० श्लोकोंका परस्पर हेरफेर है। और यह हेरफेर भी पहले, दूसरे, तीसरे, पॉचवें और आठवें उल्लासमें ही पाया जाता है। वाकी उल्लास (न. ४, ६, ७, ९, १०, ११, १२) विलकुल ज्यों के त्यों एक दूसरेकी प्रतिलिपि (नकल) माऌम होते हैं। प्रशस्तिको छोडकर विवेकविलासकी पद्यसंख्या १३२१ और कुदकुदश्रावकाचारकी १२९४ है। विवेकविलासमें अन्तिम काव्यके वाद १० पद्योंकी एक 'प्रशस्ति' लगी हुई है, जिसमें जिनदत्तसूरिकी गुरुपरम्परा आदिका वर्णन है।

---

*दोनों ग्रथोंका आदिम मंगलाचरण —

"शाश्वतानन्दरूपाय तमस्तोमैकभास्वते।
सर्वज्ञाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परमात्मने ॥ १ ॥

(इसके सिवाय मगलाचरणके दो पद्य और हैं।)

+दोनों ग्रथोंका अन्तिम काव्य —

"स श्रेष्ठ. पुरुषाग्रणी स सुभटोत्तस प्रशसास्पदम्,
स प्राज्ञ स कला निधि स च मुनि स क्ष्मातले योगवित्।
स ज्ञानीं स गुणिव्रजस्य तिलक जानाति य स्वा मृतिम्,
निर्मोह समुपार्जयत्यथ पद लोकोत्तर शाश्वतम् ॥ १२-१२ ॥"

परन्तु कुंदकुंदश्रावकाचारके अन्तमें ऐसी कोई प्रशस्ति नहीं पाई जाती है। दोनों ग्रंथोंके किस किस उल्लासमें कितने और कौनकौनसे पद्य एक दूसरेसे अधिक हैं, इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

न० उल्लास	उन पद्योंके नम्बर जो कुद्कुंद् श्रा. में अधिक हैं।	उन पद्योंके नम्बर जो विवेक विलासमें अधिक हैं।	कैफियत (Remarks)
१	६३ से ६९ तक और ७० का पूर्वार्ध, (७½ श्लोक)	८४ से ९८ तक (१४ श्लोक)	कुदकुद श्रा० के ये ७½ श्लोक दन्तधावन प्रकरणके हैं। यह प्रकरण दोनों ग्रथोंमें पहलेसे शुरू हुआ और बादको भी रहा है। किस किस काष्ठकी दतौन करनेसे क्या लाभ होता है, किस प्रकारसे दन्तधावन करना निषिद्ध है और किस वर्णके मनुष्यको कितने अगुलकी दतौन व्यवहारमें लानी चाहिए, यही सब इन पद्योंमें वर्णित है। विवेकविलासके ये १४ श्लोक पूजनप्रकरणके हैं। और किस समय, कैसे द्रव्योंसे किस प्रकार पूजन करना चाहिए, इत्यादि वर्णनको लिये हुए हैं।
२	३३,३४, (२ श्लोक)	३९ (१ श्लोक)	कुदकुद श्रा० के दोनों श्लोकोंमें मूषकादिकके द्वारा किसी वस्त्रके कटेफटे होनेपर छेदाकृतिसे शुभाशुभ जाननेका कथन है। यह कथन कई श्लोक पहलेसे चल रहा है। विवेकविलासका श्लोक न ३५ ताम्बूल प्रकरणका है जो पहलेसे चल रहा है।
३	×	६० (१ श्लोक)	भोजनप्रकरणमें एक निमित्तसे आयु और धनका नाश मालूम करनेके सम्बधमें।

५	×	१०, ११, ५७, १४२, १४३, १४४, १४६, १८८ से १९२ तक (१२ श्लोक)	पद्य न. १०–११ में सोते समय ताम्बूलादि कई वस्तुओंके त्यागका कारण-सहित उपदेश है; ५७ वाँ पद्य पुरुषपरीक्षामें हस्तरेखा सम्बधी है। दोनों ग्रन्थोंमें इस परीक्षाके ७५ पद्य और हैं, १४२, १४३, १४४ में पद्मिनी आदि स्त्रियोंकी पहचान लिखी है। इनसे पूर्वके पद्यमें उनके नाम दिये हैं।१४६ में पतिप्रीति ही स्त्रियोंको कुमार्गसे रोकनेवाली है, इत्यादि-कथन है। शेष ५ पद्योंमें ऋतुकालके समय कौनसी रात्रिको गर्भ रहनेसे कैसी सतान उत्पन्न होती है, यह कथन पाँचवीं रात्रिसे १६ वीं रात्रिके सम्बधमें है। इससे पहले चार रात्रियोंका कथन दोनों ग्रथोंमें है।
८	२५३ (१ श्लो)	४९, ६०, ६१, ७४, ८५, २५५, २९३ का उत्तरार्ध ३४३ का उत्तरार्ध, ३४४ का पूर्वार्ध, ३६६ का उत्तरार्ध, ३६७ का पूर्वार्ध, ४२० के अन्तिम तीन चरण और ४२१ का पहला चरण, (९½ श्लोक)	२५३ वाँ पद्य ममिासक मतके प्रकरण-का है। इसमें ममिासक मतके देवताके निरूपण और प्रमाणोंके कथनकी प्रतिज्ञा है, अगले पद्यमें प्रमाणोंके नाम दिये हैं। और दर्शनोंके कथनमें भी देवताका वर्णन पाया जाता है। पद्य न ४९ में अल्पवृष्टिका योग दिया है, ६० में किस किस महीनेमें मकान वनवानेसे क्या लाभ हानि होती है, ६१ में कौनसे नक्षत्रमें घर वनानेका सूत्रपात करना, ७४ में यक्षव्ययके अष्ट भेद, इससे पूर्वके पद्यमें यक्षव्यय अष्ट प्रकारका है ऐसा दोनों ग्रथोंमें सूचित किया हैं, ८५ वाँ पद्य 'अपर च' करके लिखा है, ये चारों पद्य गृहनिर्माण प्रकरणके हैं। २५५ वॉ पद्य जैनदर्शन प्रकरणका है। इसमें श्वेताम्बर साधुओंका स्वरूप दिया है। इससे अगले पद्यमें दिगम्बर साधुओंका स्वरूप है।

			२९३ वॉ पद्य शिवमतके प्रकरणका है। उत्तरार्धके न होनेसे साफ अधूरापन प्रगट है। क्योंकि पूर्वार्धमें नव द्रव्योंमेंसे चारके नित्यानित्यत्वका वर्णन है बाकीका वर्णन उत्तरार्धमें है। शेष पद्योंका वर्णन आगे दिया जायगा।

ऊपरके कोष्टकसे दोनों ग्रंथोंमें पद्योकी जिस न्यूनाधिकताका बोध होता है, बहुत संभव है कि वह लेखकोंकी कृपा ही का फल हो—जिस प्रतिपरसे विवेकाविलास छपाया गया है और जिस प्रतिपरसे कुंदकुंद-श्रावकाचार उतारा गया है, आश्चर्य नहीं कि उनमें या उनकी पूर्व प्रतियोंमें लेखकोंकी असावधानीसे ये सब पद्य छूट गये हो—क्योंकि पद्योंकी इस न्यूनाधिकतामे कोई तात्त्विक या सैद्धान्तिक विशेषता नहीं पाई जाती। बल्कि प्रकरण और प्रसगको देखते हुए इन पद्योके छूट जानेका ही अधिक ख़याल पैदा होता है। दोनों ग्रंथोसे लेखकोंके प्रमादका भी अच्छा परिचय मिलता है। कई स्थानोंपर कुछ श्लोक आगे पीछे पाये जाते हैं—विवेकविलासके तीसरे उल्लासमें जो पद्य नं. १७, १८ और ६२ पर दर्ज है वे ही पद्य कुंदकुंद श्रावकाचारमें क्रमशः नं. १८, १७ और ६० पर दर्ज हैं। आठवें उल्लासमें जो पद्य नं. ३१७–३१८ पर लिखे है वे ही पद्य कुदकुंदश्रावकाचारमे क्रमशः नं. ३११–३१० पर पाये जाते है अर्थात् पहला श्लोक पीछे और पीछेका पहले लिखा गया है। कुदकुंदश्रावकाचारके तीसरे उल्लासमे श्लोक नं. १६ को 'उक्तं च' लिखा है और ऐसा लिखना ठीक भी है; क्योंकि यह पद्य दूसरे ग्रंथका है और इससे पहला पद्य नं० १५ भी इसी अभिप्रायको लिये हुए है। परन्तु विवेकविलासमें इसे 'उक्तं च' नहीं लिखा।

इसी प्रकार कहीं कहीं पर एक ग्रंथमें एक श्लोकका जो पूर्वार्ध है वही दूसरे ग्रंथमें किसी दूसरे श्लोकका उत्तरार्ध हो गया है। और कहीं कहीं एक श्लोकके पूर्वार्धको दूसरे श्लोकके उत्तरार्धसे मिलाकर एक नवीन ही श्लोकका संगठन किया गया है। नीचेके उदाहरणोंसे इस विषयका और भी स्पष्टीकरण हो जायगा:—

(१) विवेकविलासके आठवें उल्लासमे निम्नलिखित दो पद्य दिये हैं:—

"हरितालप्रभैश्चक्री नेत्रैर्नीलैरहं मद ।
रक्तैर्नृपः सितैर्ज्ञानी मधुपिङ्गैर्महाधनः ॥३४३॥
सेनाध्यक्षो गजाक्षः स्याद्दीर्घाक्षश्चिर जीवित ।
विस्तीर्णाक्षो महाभोगी कामी पारावतेक्षणाः॥३४४॥"

इन दोनों पद्योंमेंसे एकमे नेत्रके रंगकी अपेक्षा और दूसरेमें आकार विस्तारकी अपेक्षा कथन है। परन्तु कुंदकुंदश्रावकाचारमें पहले पद्यका पूर्वार्ध और दूसरेका उत्तरार्ध मिलाकर एक पद्य दिया है जिसका नं. ३३६ है। इससे साफ़ प्रगट है कि बाकी दोनों उत्तरार्ध और पूर्वार्ध छूट गये है।

(२) विवेकविलासके इसी आठवें उल्लासमें दो पद्य इस प्रकार हैं:—

"नद्याः परतटाद्गोष्टात्क्षीरद्रोः सलिलाशयात् ।
निवर्त्तेतात्मनोऽभीष्टाननुव्रज्य प्रवासिनः ॥३६६॥
नासहायो न चाज्ञातै नैव दासैः समं तथा।
नाति मध्यं दिनेनार्धरात्रौ मार्गे बुधो व्रजेत् ॥ ३६७॥"

इन दोनों पद्योंमेंसे पहले पद्यमें यह वर्णन है कि यदि कोई अपना इष्टजन परदेशको जावे तो उसके साथ कहाँ तक जाकर लौट आना

चाहिए। और दूसरेमें यह कथन है कि मध्याह्न और अर्ध रात्रिके समय विना अपने किसी सहायकको साथ लिये, अज्ञात मनुष्यो तथा गुलामोंके साथ मार्ग नहीं चलना चाहिए। कुंदकुंदश्रावकाचारमें इन दोनो पद्योंके स्थानमें एक पद्य इस प्रकारसे दिया है:—

**"नद्याः परतटाद्गोष्ठात्क्षीरद्रो सलिलाशयात्।
नातिमध्य दिने नार्धे रात्रौ मार्गे बुधो व्रजेत्॥३६८॥**

यह पद्य बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। पूर्वार्धका उत्तरार्धसे कोई सम्बध नहीं मिलता, और न दोनोंको मिलाकर एक अर्थ ही निकलता है। इससे कहना होगा कि विवेकविलासमें दिये हुए दोनों उत्तरार्ध और पूर्वार्ध यहाँ छूट गये है और तभी यह असमंजसता प्राप्त हुई है। विवेकविलासके इसी उल्लाससंबंधी पद्य नं. ४२० और ४२१ के सम्बन्धमें भी ऐसी ही गड़बड़ की गई है। पहले पद्यके पहले चरणको दूसरे पद्यके अन्तिम तीन चरणोंसे मिलाकर एक पद्य बना डाला है; बाकी पहले पद्यके तीन चरण और दूसरे पद्यका पहला चरण; ये सब छूट गये हैं। लेखकोंके प्रमादको छोड़कर, पद्योंकी इस घटा बढ़ीका कोई दूसरा विशेष कारण मालूम नहीं होता। प्रमादी लेखकों द्वारा इतने बड़े ग्रंथोंमें दस बीस पद्योंका छूट जाना तथा उलट फेर हो जाना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इसी लिए ऊपर यह कहा गया है कि ये दोनों ग्रंथ वास्तवमें एक ही है। दोनों ग्रथोंमें असली फर्क सिर्फ ग्रंथ और ग्रंथकर्ताके नामोका है—विवेकविलासकी सधियोंमें ग्रंथका नाम 'विवेकविलास' और ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनदत्तसूरि' लिखा है। कुदकुंदश्रावकाचारकी सधियोंमें ग्रथका नाम 'श्रावकाचार' और ग्रथकर्ताका नाम कुछ सधियोंमें 'श्रीजिनचंद्राचार्यके शिष्य कुन्दकुन्दस्वामी' और शेष

सधियोंमें केवल ' कुन्दकुन्द स्वामी ' दर्ज है---इसी फर्कके कारण प्रथम उल्लासके दो पद्योंमें इच्छापूर्वक परिवर्तन भी पाया जाता है। विवेकविलासमें वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं:—

"जीववत्प्रतिभा यस्य वचोमधुरिमां चितम्।
देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे सूरिवरं गुरुम्॥ ३॥
स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।
श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रंथ. प्रारभ्यते मितः॥४॥"

इन दोनों पद्योंके स्थानमें कुदकुंदश्रावकाचारमें ये पद्य हैं:—

"जीववत्प्रतिभा यस्य वचो मधुरिमांचितम्।
देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे जिनविधुं गुरुम्॥ ३॥
स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।
श्रावकाचारविन्यासग्रंथ प्रारभ्यते मित ॥ ४॥"

दोनों ग्रथोंके इन चारों पद्योंमें परस्पर ग्रथ नाम और ग्रथकर्ताके गुरुनामका ही भेद है। समूचे दोनो ग्रथोंमें यही एक वास्तविक भेद पाया जाता है। जब इस नाममात्रके (ग्रथनाम--ग्रथकर्ता-नामके) भेदके सिवा और तौर पर ये दोनो ग्रथ एक ही हैं तब यह जरूरी है कि इन दोनोंमेंसे, उभयनामकी सार्थकता लिये हुए, कोई एक ग्रथ ही असली हो सकता है, दूसरेको अवश्य ही नकली या बनावटी कहना होगा।

अब यह सवाल पैदा होता है कि इन दोनों ग्रंथोंमेंसे असली कौन है और नकली बनावटी कौनसा? दूसरे शब्दोंमें यों कहिए कि क्या पहले कुदकुदश्रावकाचार मौजूद था और उसकी सधियों तथा दो पद्योंमें नामादिकका परिवर्त्तनपूर्वक नकल करके जिनसूरि या उनके नामसे किसी दूसरे व्यक्तिने उस नकलका नाम

'विवेकविलास' रक्खा है; और इस प्रकारसे दूसरे विद्वानके इस ग्रथको अपनाया है अथवा पहले विवेकविलास ही मौजूद था और किसी व्यक्तिने उनकी इस प्रकारसे नकल करके उसका नाम 'कुदकुद श्रावकाचार' रख छोडा है; और इस तरहपर अपने क्षुद्र विचारोंसे या अपने किसी गुप्त अभिप्रायकी सिद्धिके लिए इस भगवत्कुदकुंदके नामसे प्रसिद्ध करना चाहा है।

यदि कुदकुदश्रावकाचारको, वास्तवमें जिनचंद्राचार्यके शिष्य श्रीकुदकुंदस्वामीका बनाया हुआ माना जाय, तब यह कहना, ही होगा कि विवेकविलास उसी परसे नकल किया गया है। क्यों कि भगवत्कुंद-कुदाचार्य जिनदत्तसूरिसे एक हजार वर्षसे भी अधिक काल पहले हो चुके है। परन्तु ऐसा मानने और कहनेका कोई साधन नहीं है। कुदकुदश्रावकाचारमें श्रीकुदकुदस्वामी और उनके गुरुका नामोल्लेख होनेके सिवा और कहीं भी इस विषयका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, जिससे निश्चय किया जाय कि यह ग्रंथ वास्तवमे भगवत्कुं-दकुदाचार्यका ही बनाया हुआ है। कुदकुंदस्वामीके बाद होनेवाले किसी भी माननीय आचार्यकी कृतिमे इस श्रावकाचारका कहीं नामो-ल्लेख तक नहीं मिलता; प्रत्युत इसके विवेकविलासका उल्लेख जरूर पाया जाता है। जिनदत्तसूरिके समकालीन या उनसे कुछ ही काल बाद होने वाले वैदिकधर्मावलम्बी विद्वान् श्रीमाधवाचार्यने अपने 'सर्वदर्शनसंग्रह' नामके ग्रथमे विवेकविलासका उल्लेख किया है और उसमें बौद्धदर्शन तथा आर्हत्दर्शनसम्बंधी २३ श्लोक विवेक-विलास और जिदत्तसूरिके हवालेसे उद्धृत किये है। ये सब श्लोक

१ देखो 'सर्वदर्शनसग्रह' पृष्ठ ३८–७२, श्रीव्यकटेश्वरछापखाना बम्बई द्वारा सवत् १९६२ का छपा हुआ।

कुन्दकुन्दश्रावकाचारमें भी मौजूद है। इसके सिवा विवेकविलासकी एक चारसौ पाँचसौ वर्षकी लिखी हुई प्राचीन प्रति वम्बईके जैनमंदिरमें मौजूद है। * परन्तु कुंदकुंदश्रावकाचारकी कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती। इन सब वातोंको छोड कर, खुद ग्रंथका साहित्य भी इस वातका साक्षी नहीं है कि यह ग्रथ भगवत्कुंदकुंदाचार्यका वनाया हुआ है। कुंदकुंदस्वामीकी लेखनप्रणाली उनकी कथन शैली–कुछ और ही ढगकी है; और उनके विचार कुछ और ही छटाको लिये हुए होते हैं। भगवत्कुंदकुंदके जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हुए है वे सव प्राकृत भाषामें हे। परन्तु इस श्रावकाचारकी भाषा सस्कृत है; समझमें नहीं आता कि जब भगवत्कुंदकुंदने वारीकसे वारीक, गूढसे गूढ और सुगम ग्रंथोंको भी प्राकृत भाषामें रचा है, जो उस समयके लिए उपयोगी भाषा थी तब वे एक इसी, साधारण गृहस्थोंके लिए वनाये हुए, ग्रथको संस्कृत भाषामें क्यों रचते? परन्तु इसे रहने दीजिए। जैन समाजमें आजकल जो भगवत्कुंदकुंदके निर्माण किये हुए समयसार, प्रवचनसारादि ग्रंथ प्रचलित हैं उनमेंसे किसी भी ग्रथकी आदिमें कुंदकुंद स्वामीने अपने गुरु 'जिनचंद्राचार्य' को नमस्काररूप मगलाचरण नहीं किया है। परन्तु श्रावकाचारके, ऊपर उद्धृत किये हुए, तीसरे पद्यमें 'वन्दे जिनविधुं गुरुम्' इस पदके द्वारा जिनचद्र' गुरुको नमस्कार रूप मंगलाचरण पाया जाता है। कुंदकुंदस्वामीके ग्रंथोंमें आम तौर पर एक पद्यका मगलाचरण है। सिर्फ़ 'प्रवचनसार' में पाँच पद्योंका मगलाचरण मिलता है। परन्तु इस पाँच पद्योंके विशेष मंगलाचरणमें भी जिनचंद्रगुरुको नमस्कार नहीं किया

---

* विवेकविलासकी इस प्राचीन प्रतिका समाचार अभी हालमें मुझे अपने एक मित्र द्वारा मालूम हुआ है।

गया है। यह विलक्षणता इसी श्रावकाचारमे पाई जाती है। रही मगलाचरणके भाव और भाषाकी बात, वह भी उक्त आचार्यके किसी ग्रंथसे इस श्रावकाचारकी नहीं मिलती। विवेकविलासमे भी यही पद्य है; भेद सिर्फ़ इतना है कि उसमे ' जिनविधु , के स्थानमें ' सुरिवर ' लिखा है। जिनदत्तसूरिके गुरु ' जीवदेव , का नाम इस पद्यके चारों चरणोंके प्रथमाक्षरोंको मिलानेसे निकलता है। यथा:—

जीववत्प्रतिभा यस्य, वचो मधुरिमाचितम्। देहं गेहं श्रियस्तं स्वं, वन्दे सूरिवर गुरुम् ॥ २ ॥	जी+व+दे+व=जीवदेव।

वस, इतनी ही इस पद्यमें कारीगरी (रचनाचातुरी) रक्खी गई है। और तौरपर इसमे कोई विशेष गौरवकी बात नहीं पाई जाती। विवेकविलासके भाषाकारने भी इस रचनाचातुरीको प्रगट किया है। इससे यह पद्य कुंदकुदस्वामीका बनाया हुआ न होकर जीवदेवके शिष्य जिनदत्तसूरिका ही वनाया हुआ निश्चित होता है। अवश्य ही कुदकुद-श्रावकाचारमें ' सूरिवरं ' के स्थानमें ' जिनविधु'की वनावट की गई है। इस वनावटका निश्चय और भी अधिक दृढ होता है जब कि दोनों ग्रंथोंके, उद्धृत किए हुए, पद्य न. ९ को देखा जाता है। इस पद्यमें ग्रथके नामका परिवर्त्तन है--विवेकविलासके स्थानमे 'श्रावकाचार' बनाया गया है—वास्तवमे यदि देखा जाय तो यह ग्रथ कदापि ' श्रावकाचार' नहीं हो सकता। श्रावककी ११ प्रतिमाओं और १२ व्रतोंका वर्णन तो दूर रहा, इस ग्रंथमें उनका नाम तक भी नहीं है। भगवत्कुंदकुदने स्वयं षट्र् पाहुड़के अंतर्गत ' चरित्र पाहुड'में ११ प्रतिमा

और १२ व्रतरूप श्रावकधर्मका वर्णन किया है। और इस कथनके अन्तकी २७ वीं गाथामें, '**एव सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं**' इस वाक्यके द्वारा इसी (११ प्रतिमा १२ व्रतरूप सयमाचरण)को श्रावकधर्म वतलाया है। परन्तु वे ही कुदकुद अपने श्रावकाचारमें जो ख़ास श्रावकधर्मके ही वर्णनके लिए लिखा जाय उन ११ प्रतिमादिकका नाम तक भी न देवें, यह कभी हो नहीं सकता। इससे साफ़ प्रगट है कि यह ग्रन्थ श्रावकाचार नहीं है; वल्कि विवेकविलासके उक्त ९ वें पद्यमे '**विवेकविलासाख्यः**' इस पदके स्थानमें '**श्रावकाचारविन्यास**' यह पद रखकर किसीने इस ग्रंथका नाम वैसे ही श्रावकाचार रख छोड़ा है। अब पाठकोंको यह जाननेकी ज़रूर उत्कंठा होगी कि जब इस ग्रथमें श्रावकधर्मका वर्णन नहीं है तव क्या वर्णन है? अतः इस ग्रथमें जो कुछ वर्णित है, उसका दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है:—

"सवेरे उठनेकी प्रेरणा; स्वप्नविचार; स्वरविचार; सवेरे पुरुषोको अपना दाहिना और स्त्रियोंको बायाँ हाथ देखना; मलमूत्र त्याग और गुदादि प्रक्षालनविधि; दन्तधावनविधि, सवेरे नाकसे पानी पीना; तेलके कुरले करना; केशोंका सँवारना; दर्पण देखना, मातापितादिककी भक्ति और उनका पालन; देहली आदिका पूजन; दक्षिण वाम स्वरसे प्रश्नोंका उत्तरविधान; सामान्य उपदेश; चंद्रवलादिकके विचार करनेकी प्रेरणा; देवमूर्तिके आकारादिका विचार; मंदिरनिर्माणविधि; भूमिपरीक्षा; काष्टपाषाणपरीक्षा, स्नानविचार, क्षौरकर्म (हजामत) विचार; वित्तादिकके अनुकूल शृंगार करनेकी प्रेरणा; नवीनवस्त्रधारणविचार; ताम्बूल भक्षणकी प्रेरणा और विधि; खेती, पशुपालन और अन्नसग्रहादिकके द्वारा धनोपार्जनका विशेष वर्णन, वणिक्व्यवहारविधि;

राज्यसेवा; राजा, मंत्री, सेनापति और सेवकका स्वरूपवर्णन; व्यवसाय महिमा; देवपूजा; दानकी प्रेरणा; भोजन कब, कैसा, कहाँ और किस प्रकार करना न करना आदि; समय मालूम करनेकी विधि, भोजनमें विषकी परीक्षा; आमदनी और खर्च आदिका विचार करना; संध्या-समय निषिद्ध कर्म; दीपकशकून; रात्रिको निषिद्ध कर्म; कैसी चारपाई पर किस प्रकार सोना; वरके लक्षण; वधूके लक्षण; सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार शरीरके अंगोपांग तथा हस्तरेखादिकके द्वारा पुरुषपरीक्षा और स्त्रीपरीक्षाका विशेष वर्णन लगभग १०० श्लोकोंमें; विषकन्याका लक्षण; किस स्त्रीको किस दृष्टिसे देखना; त्याज्य स्त्रियाँ; स्त्रियोंके पद्मिनी, संखिनी आदि भेद; स्त्रियोंका वशीकरण; सुरतिके चिह्न; ऋतुभेदसे मैथुनभेद; स्त्रियोंसे व्यवहार; प्रेम टूटनेके कारण; पतिसे विरक्त स्त्रियोंके लक्षण; कुलस्त्रीका लक्षण और कर्त्तव्य; रजस्वलाका व्यवहार; मैथुनविधि; वीर्यवर्धक पदार्थोंके सेवनकी प्रेरणा; गर्भमें बालकके अंगोपांग बननेका कथन, गर्भस्थित बालकके स्त्रीपुरुष नपुसक होनेकी पहचान; जन्ममुहूर्त्तविचार, बालकके दाँत निकलनेपर शुभाशुभविचार; निद्राविचार; ऋतुचर्या; वार्षिक श्राद्ध करनेकी प्रेरणा; देश और राज्यका विचार; उत्पातादि निमित्त विचार, वस्तुकी तेजी मंदी जाननेका विचार; ग्रहोंका योग, गति और फल विचार; गृहनिर्माणविचार; गृहसामग्री और वृक्षादिकका विचार; विद्यारंभके लिए नक्षत्रादि विचार; गुरुशिष्यलक्षण और उनका व्यवहार; कौन कौन विद्यायें और कलायें सीखनी; विषलक्षण तथा सर्पादिकके छूनेका निषेध; सर्पादिक दुष्ट मनुष्यके विष दूर होने न होने आदिका विचार और चिकित्सा (८५ श्लोकोंमें); षट्दर्शनोंका वर्णन; सविवेक वचनविचार; किस किस वस्तुको देखना और किसको

नहीं; दृष्टिविचार और नेत्रस्वरूपविचार, चलने फिरनेका विचार; नीतिका विशेषोपदेश (६५ श्लोकोंमें), पापके काम और क्रोधादिके त्यागका उपदेश; धर्म करनेकी प्रेरणा, दान, शील, तप और १२ भावनाओंका सक्षिप्त कथन, पिंडस्थादिध्यानका उपदेश; ध्यानकी साधक-सामग्री; जीवात्मासबधी प्रश्नोत्तर, मृत्युविचार और विधिपूर्वक शरीर-त्यागकी प्रेरणा।"

यही सब इस ग्रथकी संक्षिप्त विषय-सूची है। सक्षेपसे, इस ग्रंथमें सामान्यनीति, वैद्यक, ज्योतिष, निमित्त, शिल्प और सामुद्रकादि शास्त्रोंके कथनोंका संग्रह है। इससे पाठक खुद समझ सकते हैं कि यह ग्रंथ असलियतमें 'विवेकविलास' है या 'श्रावकाचार'। यद्यपि इस विषयसूचीसे पाठकोंको इतना अनुभव जरूर हो जायगा कि इस प्रकारके कथनोंको लिये हुए यह ग्रंथ भगवत्कुदकुंदाचार्यका बनाया हुआ नहीं हो सकता। क्योंकि भगवत्कुदकुंद एक ऊँचे दर्जेके आत्मा-नुभवी साधु और ससारदेहभोगोंसे विरक्त महात्मा थे और उनके किसी भी प्रसिद्ध ग्रथसे उनके कथनका ऐसा ढंग नहीं पाया जाता है। परन्तु फिर भी इस नाममात्र श्रावकाचारके कुछ विशेष कथ-नोंको, नमूनेके तौरपर, नीचे दिखलाकर और भी अधिक इस बातको स्पष्ट किये देता हूँ कि यह ग्रंथ भगवत्कुंदकुंदाचार्यका बनाया हुआ नहीं है:—

(१) भगवत्कुदकुदाचार्यके ग्रथोंमें मंगलाचरणके साथ या उसके अनन्तर ही ग्रथकी प्रतिज्ञा पाई जाती है और ग्रंथका फल तथा आशीर्वाद, यदि होता है तो वह, अन्तमें होता है। परन्तु इस ग्रथके कथनका कुछ ढंग ही विलक्षण है। इसमें पहले तीन पद्योंमें तो मगलाचरण किया गया; चौथे पद्यमें ग्रथका फल, लक्ष्मीकी प्राप्ति

आदि बतलाते हुए ग्रंथको आशीर्वाद दिया गया; पांचवेंमें लक्ष्मीको चंचल कहनेवालोंकी निन्दा की गई, छट्ठे सातवेमें लक्ष्मीकी महिमा और उसकी प्राप्तिकी प्रेरणा की गई; आठवें नौवेमें (इतनी दूर आकर) ग्रंथकी प्रतिज्ञा और उसका नाम दिया गया है; दसवेंमें यह बतलाया है कि इस ग्रंथमें जो कहीं कहीं (?) प्रवृत्तिमार्गका वर्णन किया गया है वह भी विवेकी द्वारा आदर किया हुआ निर्वृत्तिमार्गमें जा मिलता है; ग्यारहवें बारहवेंमें फिर ग्रंथका फल और एक बृहत् आशीर्वाद दिया गया है; इसके बाद ग्रंथका कथन शुरू किया है। इस प्रकारका अक्रम कथन पढनेमे बहुत ही खटकता है और वह कदापि भगवत्कुदकुंदका नहीं हो सकता। ऐसे और भी कथन इस ग्रथमें पाये जाते हैं। अस्तु। इन पद्योंमेंसे पॉचवॉ पद्य इस प्रकार है:—

> चंचलत्वं कलंकं ये श्रियो ददति दुर्धियः।
> ते मुग्धाः स्वं न जानन्ति निर्विवेकमपुण्यकम् ॥ ५ ॥

अर्थात्—जो दुर्बुद्धि लक्ष्मीपर चंचलताका दोष लगाते है वे मूढ यह नहीं जानते है कि हम खुद निर्विवेकी और पुण्यहीन है। भावार्थ, जो लक्ष्मीको चंचल बतलाते है वे दुर्बुद्धि, निर्विवेकी और पुण्यहीन हैं।

पाठकगण! क्या अध्यात्मरसके रसिक और अपने ग्रंथोंमें स्थान स्थानपर दूसरोंको शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्ति करनेका हार्दिक प्रयत्न करनेवाले महर्षियोंके ऐसे ही वचन होते है? कदापि नहीं। भगवत्कुंदकुंद तो क्या सभी आध्यात्मिक आचार्योंने लक्ष्मीको '**चंचला**' '**चपला,**' '**इन्द्रजालोपमा,**' '**क्षणभंगुरा,**' इत्यादि विशेषणोके साथ वर्णन किया है। नीतिकारोने भी '**चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणाः. ..**' इत्यादि वाक्योंद्वारा ऐसा ही प्रतिपादन किया है और वास्तवमें लक्ष्मीका स्वरूप है भी ऐसा ही। फिर इस कहनेमें दुर्बुद्धि

और मूढताकी बात ही कौनसी हुई, यह कुछ समझमें नहीं आता। यहाँपर पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न ज़रूर उत्पन्न होगा कि जब ऐसा है तब जिनदत्तसूरिने ही क्यों इस प्रकारका कथन किया है? इसका उत्तर सिर्फ़ इतना ही हो सकता है कि इस बातको तो जिनदत्त-सूरि ही जानें कि उन्होंने क्यों ऐसा वर्णन किया है। परन्तु ग्रंथके अंतमें दी हुई उनकी 'प्रशस्ति'से इतना जरूर मालूम होता है कि उन्होंने यह ग्रंथ जाबालि—नगराधिपति उदयसिंह राजाके मंत्री देवपालके पुत्र धनपालको खुश करनेके लिए बनाया था। यथाः—

"तन्मनःतोपपोपाय जिनाद्यैर्दत्तसूरिभिः।
श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रंथोऽयं निर्ममेऽनघः॥ ९॥

शायद इस मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए ही जिनदत्तसूरिको ऐसा लिखना पड़ा हो। अन्यथा उन्होने खुद दसवें उल्लासके पद्य नं० ३१ में धनादिकको अनित्य वर्णन किया है।

(२) इस ग्रंथके प्रथम उल्लासमें जिनप्रतिमा और मंदिरके निर्माणका वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भगृहके अर्धभागके भित्तिद्वारा पाँच भाग करके पहले भागमें यक्षादिक की; दूसरे भागमें सर्व देवियोंकी, तीसरे भागमें जिनेंद्र, सूर्य, कार्तिकेय और कृष्णकी; चौथे भागमें ब्रह्माकी और पाँचवें भागमें शिवलिंगकी प्रतिमायें स्थापन करनी चाहिये। यथाः—

"प्रासादगर्भगेहार्द्धे भित्तित पंचधा कृते।
यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वा द्वितीयके॥ १४८॥
जिनार्कस्कन्दकृष्णानां प्रतिमा स्युस्तृतीयके।
ब्रह्मा तु तुर्यभागे स्याल्लिंगमीशस्य पंचमे॥ १४९॥"

यह कथन कदापि भगवत्कुंदकुंदका नहीं हो सकता। न जैनमतका ऐसा विधान है और न प्रवृत्ति ही इसके अनुकूल पाई जाती है। श्वेता-म्बर जैनियोंके मंदिरोंमें भी यक्षादिकको छोड़कर महादेवके लिंगकी

स्थापना तथा कृष्णादिककी मूर्तियाँ देखनेमे नहीं आतीं। शायद यह कथन भी जिनदत्तसूरिने मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए, जिसे प्रशस्तिके सातवें पद्यमें सर्व धर्मोंका आधार बतलाया गया है, लिख दिया हो।

(३) इस ग्रथके दूसरे उल्लासका एक पद्य इस प्रकार है:—

" साध्वर्थे जीवरक्षायै गुरुदेवगृहादिषु।
मिथ्याकृतैरपि नृणां शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ ६९ ॥ "

इस पद्यमे लिखा है कि साधुके वास्ते, और जीवरक्षाके लिए गुरु तथा देवके मंदिरादिकमें झूठी क़सम (शपथ) खानेसे कोई पाप नहीं लगता। यह कथन जैनसिद्धान्तके कहाँ तक अनुकूल है यह विचारणीय है।

(४) आठवे उल्लासमें ग्रथकार लिखते है कि बहादुरीसे, तपसे, विद्यासे या धनसे अत्यंत अकुलीन मनुष्य भी क्षणमात्रमें कुलीन हो जाता है। यथा:—

" शौर्येण वा तपोभिर्वा विद्यया वा धनेन वा।
अत्यन्तमकुलीनोऽपि कुलीनो भवति क्षणात् ॥ ३९१ ॥"

मालूम नहीं होता कि आचारादिकको छोड़कर केवल बहादुरी, विद्या या धनका कुलीनतासे क्या संबंध है और किस सिद्धान्तपर यह कथन अवलम्बित है।

(५) दूसरे उल्लासमें ताम्बूलभक्षणकी प्रेरणा करते हुए लिखा है कि—

" यः स्वादयति ताम्बूलं वक्त्रभूषाकरं नरः।
तस्य दामोदरस्येव न श्रीस्त्यजति मंदिरम् ॥ ३९ ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मुखकी शोभा बढ़ानेवाला पान चबाता है उसके घरको लक्ष्मी इस प्रकारसे नहीं छोड़ती जिस प्रकार वह श्री-

कृष्णको नहीं छोड़ती। भावार्थ, पान चबानेवाला मनुष्य कृष्णजीके समान लक्ष्मीवान् होता है।

यह कथन भी जैनमतके किसी सिद्धान्तसे सम्बंध नहीं रखता और न किसी दिगम्बर आचार्यका ऐसा उपदेश हो सकता है। आजकल वहुतसे मनुष्य रात दिन पान चबाते रहते है परन्तु किसीको भी श्रीकृष्णके समान लक्ष्मीवान् होते नहीं देखा।

(६) ग्यारहवें उल्लासमें ग्रंथकार लिखते है कि जिस प्रकार वहुतसे वर्णोंकी गौओंमें दुग्ध एक ही वर्णका होता है उसी प्रकार सर्व धर्मोंमें तत्त्व एक ही है। यथा—

" एकवर्णं यथा दुग्धं वहुवर्णासु धेनुषु।
तथा धर्मस्य वैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं पुन ॥ ७३ ॥

यह कथन भी जैनसिद्धान्तके विरुद्ध है। भगवत्कुदकुंदके ग्रंथोंसे इसका कोई मेल नहीं मिलता। इसलिए यह कदापि उनका नहीं हो सकता।

(७) पहले उल्लासमें एक स्थानपर लिखा है कि जिस मांदिर पर ध्वजा नहीं है उस मंदिरमें किये हुए पूजन, होम और जपादिक सव ही विलुप्त हो जाते है; अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता। यथाः—

" प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥ १७१ ॥

यह कथन विलकुल युक्ति और आगमके विरुद्ध है। इसको मानते हुए जैनियोको अपनी कर्मफिलासोफीको उठाकर रख देना होगा। उमास्वामिश्रावकाचारमें भी यह पद्य आया है। इस ग्रंथपर जो लेख नं० १ इससे पहले दिया गया है उसमें इस पद्यपर विशेष लिखा जा चुका है। इस लिए अब पुनः अधिक लिखनेकी ज़रूरत नहीं है।

(८) ग्रंथकार महाशय एक स्थानपर लिखते हैं कि—कपट करके भी यदि निःस्पृहत्व प्रगट किया जाय तो वह फलका देनेवाला होता है। यथाः—

" नराणां कपटेनापि निःस्पृहत्वं फलप्रदम् ॥ ८-३९६ (उत्तरार्ध)

इस कथनसे कपट और बनावटका उपदेश पाया जाता है। इतना नीचा और गिरा हुआ उपदेश भगवत्कुदकुंद और उनसे घटिया दर्जेके दिगम्बर मुनि तो क्या, उत्तम श्रावकोंका भी नहीं हो सकता।

(९) दशवें उल्लासमें छह प्रकारके बाह्य तपके नाम इस प्रकार लिखे हैः—

" रसत्यागस्तनुक्लेश औनोदर्यमभोजनम्।
लीनता वृत्तिसंक्षेपस्तपःषोढा वहिर्भवम् ॥ २५ ॥"

अर्थात्—१ रसत्याग, २ कायक्लेश, ३ औनोदर्य, ४ अनशन, ५ लीनता और ६ वृत्तिसंक्षेप (वृत्तिपरिसंख्यान), ये छह बाह्य तपके भेद हैं।

इन छहों भेदोंमें 'लीनता' नामका तप श्वेताम्बर जैनियोंमें ही मान्य है। श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रसूरिने 'योगशास्त्र' में भी इन्हीं छहों भेदोंका वर्णन किया है। परन्तु दिगम्बर जैनियोंमें 'लीनता' के स्थानमें ' विविक्तशय्यासन, वर्णन किया है; जैसा कि तत्त्वार्थसूत्रके निम्नलिखित सूत्रसे प्रगट हैः—

" अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तप. ॥ ९-१९ ॥ "

इससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ श्वेताम्बर जैनियोंका है। दिगम्बर ऋषि भगवत्कुंदकुंदका बनाया हुआ नहीं है।

(१०) आठवें उल्लासमें जिनेंद्रदेवका स्वरूप वर्णन करते हुए अठारह दोषोंके नाम इस प्रकार दिये हैं:—

१ वीर्यान्तराय, २ भोगान्तराय, ३ उपभोगान्तराय, ४ दानान्तराय, ५ लाभान्तराय, ६ निद्रा, ७ भय, ८ अज्ञान, ९ जुगुप्सा, १० हास्य, ११ रति, १२ अरति, १३ राग, १४ द्वेष, १५ अविरति, १६ काम, १७ शोक और १८ मिथ्यात्व। यथा:—

" बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः।
नान्तरायस्तथा निद्रा, भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२४१॥
हासो रत्यरती रागद्वेषावविरतिःस्मरः।
शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादशदोषा न यस्य सः ॥२४२॥"

अठारह दोषोंके ये नाम श्वेताम्बर जैनियोंद्वारा ही माने गये हैं। प्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु आत्मारामजीने भी इन्हीं अठारह दोषोंका उल्लेख अपने 'जैनतत्त्वादर्श' नामक ग्रंथके पृष्ठ ४ पर किया है। परन्तु दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें जो अठारह दोष माने जाते हैं और जिनका बहुतसे दिगम्बर जैनग्रंथोंमें उल्लेख है उनके नाम इस प्रकार हैं:—

" १ क्षुधा, २ तृषा, ३ भय, ४ द्वेष, ५ राग, ६ मोह, ७ चिन्ता, ८ जरा, ९ रोग, १० मृत्यु, ११ स्वेद, १२ खेद, १३ मद, १४ रति, १५ विस्मय, १६ जन्म, १७ निद्रा, और १८ विषाद।"

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंकी इस अष्टादशदोषोंकी नामावलीमें बहुत बड़ा अन्तर है। सिर्फ़ निद्रा, भय, रति, राग और द्वेष, ये पाँच दोष ही दोनोंमें एक रूपसे पाये जाते हैं। बाकी सब दोषोंका कथन परस्पर भिन्न भिन्न है और दोनोंके भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। इससे निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह ग्रंथ

श्वेतांवर सम्प्रदायका ही है। दिगम्बरोंका इससे कोई सम्बंध नहीं है। और श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी यह कोई सिद्धान्त ग्रंथ नहीं है बल्कि मात्र विवेकविलास है, जो कि एक मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए बनाया गया था। विवेकविलासकी सधियॉ और उसके उपर्युल्लिखित दो पद्यों (नं० ३,९) में कुछ ग्रंथनामादिकका परिवर्तन करके ऐसे किसी व्यक्तिने, जिसे इतना भी ज्ञान नहीं था कि दिगम्बर और श्वेताम्बरों द्वारा माने हुए अठारह दोषोंमें कितना भेद है, विवेकविलासका नाम 'कुन्दकुन्दश्रावकाचार' रक्खा है। और इस तरह पर इस **नकली श्रावकाचारके** द्वारा साक्षी आदि अपने किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। अस्तु। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस व्यक्तिने यह परिवर्तन-कार्य किया है वह बड़ा ही धूर्त और दिगम्बर जैनसमाजका शत्रु था। परिवर्त्तनका यह कार्य कब और कहॉपर हुआ है इसका मुझे अभी-तक ठीक निश्चय नहीं हुआ। परन्तु जहॉतक मै समझता हूँ इस परिवर्त्तनको कुछ ज्यादह समय नहीं हुआ है और इसका विधाता जयपुर नगर है।

अन्तमें जैन विद्वानोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि यदि उनमेंसे किसीके पास कोई ऐसा प्रमाण मौजूद हो, जिससे यह ग्रथ भगवत्कुंदकुंदका बनाया हुआ सिद्ध हो सके तो वे खुशीसे बहुत शीघ्र उसे प्रकाशित कर देवें। अन्यथा उनका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस भंडारमें यह ग्रंथ मौजूद हो, उस ग्रंथपर लिख दिया जाय कि 'यह ग्रंथ श्रीजिनचंद्राचार्यके शिष्य कुंदकुंदस्वामीका बनाया हुआ नहीं है। बल्कि यह ग्रंथ श्वेताम्बर जैनियोंका 'विवेकविलास' है। ...सी धूर्तने ग्रंथकी संधियों और तीसरे व नौवें पद्यमें ग्रंथ नामादिक-

का परिवर्त्तन करके इसका नाम 'कुदकुदश्रावकाचार' रख दिया है'—साथ ही उन्हें अपने भडारोंके दूसरे ग्रथोंको भी जॉचना चाहिए और जाचके लिए दूसरे विद्वानोंको देना चाहिए। केवल वे हस्त-लिखित भंडारोंमें मौजूद हैं और उनके साथ दिगम्बराचार्योंका नाम लगा हुआ है, इतनेपरसे ही उन्हें दिगम्बर-ऋषि-प्रणीत न समझ लें। उन्हें खूब समझ लेना चाहिए कि जैन समाजमें एक ऐसा युग भी आचुका है जिसमें कषायवश प्राचीन आचार्योंकी कीर्तिको कलकित करनेका प्रयत्न किया गया है और अब उस कीर्तिको संरक्षित रखना हमारा खास काम है। इत्यल विज्ञेपु।

देववंद (सहारनपुर)
ता० १७-२-१४।

जुगलकिशोर मुख्तार।

जैन-जीवनकी कठिनाइयाँ।

(१)

मेरा जन्म एक जैनकुलमें हुआ था, इस लिए बचपनमें मैं समझता था कि जिस तरह यूरोपियन, अमेरिकन, जापानी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियाँ हैं उसी तरह जैन भी एक जाति है और उसमें मैंने जन्म लिया है। यद्यपि नव वर्षकी उमर तक मुझे इतना ज्ञान नहीं था कि मैं 'जैन' हूँ। परन्तु ज्यों ही मैं दश वर्षका हुआ त्यों ही एक जैन पडितने मुझे नमोकार मत्र, पचमंगल, दो चार विनती आदि रटा दीं और तबसे मैंने यह कहना सीख लिया कि 'मैं एक जैन हूँ।' उस समय मैं यह नहीं जानता था कि जैन बननेमें कोई विशेष आनन्द या लाभ है। अर्थात् तब तक मेरे शरीरपर, मनपर और जीवनपर जैनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। मेरी यह दशा

सत्रह वर्षकी उमर तक रही और जब अठारहवें वर्षमें मै बुद्धिविषयक ग्रन्थोंका स्वतंत्र रूपसे अध्ययन करने लगा तब मेरे मनमें इस प्रकारके विचार उठने लगे कि 'जैन' किसे कहते हैं, और जैन बननेमें विशेष लाभ कौनसा है।

अब मैंने जैनधर्मके आधुनिक ग्रन्थोंका पढ़ना प्रारंभ किया, उनपर मैं तर्कवितर्क करने लगा और जैन साधुओंके तथा विद्वानोके सहवासमें रहकर उनके स्वभावका, वर्तावका और आचार विचारोंका अनुभव प्राप्त करने लगा। फल यह हुआ कि जैनजातिमें रहनेसे मुझे विरक्ति हो गई। जैन बने रहनेमें न तो मुझे कुछ लाभ नजर आया और न कोई आनन्द। धीरे धीरे जैनोंके लोकव्यवहारानुसार मन्दिरोंमें जाना, साधु ब्रह्मचारियोकी सेवा शुश्रूषा करना, मेला प्रतिष्ठाओंमें जाना और पंचायती कामकाजोंमें शामिल होना आदि सब काम मैंने छोड़ दिये। यद्यपि जैनकुलमें जन्म लेनेके कारण लोग मुझसे जैन कहते थे परन्तु अब मुझे स्वयं आपको 'जैन' कहलानेमें संकोच होने लगा।

(२)

दिन, महीना और वर्ष बीतने लगे। बावीसवें वर्षमें उच्चश्रेणीकी अँगरेज़ी शिक्षाने मेरी बुद्धिको तीव्र बनाई और प्रत्येक विषयकी गहरी जॉच करनेकी ओर मेरी रुचि बढ़ी। इसी समय अनायास ही मुझे जैन फिलासोफीके कई ग्रन्थ प्राप्त हो गये और उनके पढ़नेसे मेरे हृदयमें प्रेरणा उत्पन्न हुई कि जैनधर्मका खास तौरसे मनन और परिशीलन करना चाहिए। नीतिके ग्रन्थ और पाश्चात्य फिलासोफीकी पुस्तकें पढ़ते समय मुझे जो जो शंकायें उत्पन्न होती थीं इन ग्रन्थोंका मनन करनेसे उनका समाधान आप ही आप होने लगा। अस्थ दशासे लेकर सर्वज्ञ केवलीकी दशा तककी बीचकी शृङ्खला

परसे मैं विकाशसिद्धान्तके नियमोंका (Law of Evolution) मुझे ज्ञान होने लगा; अर्थात् इस जन्मके आशय और कर्तव्यको मैं समझने लगा। पुनर्जन्मका सिद्धान्त, कर्मसिद्धान्त, जड चेतनकी शक्ति और उनकी खूबियाँ, अनेक दृष्टिबिन्दुओंसे प्रत्येक विचार करनेवाली नय निक्षेपोंकी योजना, स्थूल औदारिक शरीरके सिवा तैजस कार्माण शरीरोंका अस्तित्व, मनुष्यशरीर और विश्वरूपकी समानता, स्वर्गादि सूक्ष्म अदृष्ट भवनोंका अस्तित्व और सौन्दर्य, लेश्याओ (सूक्ष्म देहके रगों) का स्वरूप और उनसे होनेवाले परिणाम इत्यादि बातोंने मेरे मनपर वडा भारी प्रभाव डालना शुरू किया। ऐसा माळूम होने लगा कि मै अँधेरेमेंसे एकाएक प्रकाशमें आ रहा हूँ। मुझे विश्वास होने लगा कि इस नवीन प्राप्त किये हुए ज्ञानसे जीवनकी प्रत्येक घटनाका कारण ढूँढा जा सकता है। मुझे अपने भीतर छुपे हुए 'कोई' का अनुभव होने लगा।

जिस ज्ञानसे मेरे नेत्र खुल गये, और जिस ज्ञानसे समझमें नहीं आनेवाली बातोंका भेद समझमें आने लगा उस ज्ञानपर मोहित हो जाना मेरे लिए बिलकुल स्वाभाविक था। अब मुझे इस बातके कहनेमें कुछ भी लज्जा या सकोच नहीं रहा कि एक दिन मै जिस 'जैन' शब्दका कहना अपने लिए अच्छा नहीं समझता था वही 'जैन' शब्द अपने नामके साथ जुड़ा हुआ देख सुनकर मुझे प्रसन्नता होने लगी।

(३)

परन्तु मेरा यह आनन्द और उत्साह चिरस्थायी नहीं हुआ। ज्ञानकी नवीनतासे उत्पन्न हुआ आनन्द चिरस्थायी हो भी कहाँ सकता है। क्या थोड़ेसे सिद्धान्तोंका रहस्य समझ लेनेसे चिरस्थायी आनन्द प्राप्त हो सकता है? यदि ऐसा होता तो चाहे जो मनुष्य वर्ष दो वर्ष ज्ञान प्राप्त करके सुखी हो जाता।

दिन पर दिन जाने लगे और ज्यों ज्यों ज्ञानकी नवीनता घटने लगी त्यों त्यों मेरा आनन्द भी कम होने लगा। अब जीवन मुझे भाररूप मालूम होने लगा और मै फिरसे जीवन और आनन्दरहित बनकर दिन बिताने लगा।

मेरी यह शुष्क अवस्था लगभग दो वर्ष तक रही। एक दिन मैं अपना दाहिना हाथ कपालपर रक्खे हुए बैठा था और अपनी इस अवस्थाका विचार कर रहा था। मै लगभग स्थिर कर चुका था कि जैनतत्त्वज्ञानमें भी कोई वास्तविक आनन्द देनेकी शक्ति नहीं है। इतनेमें मेरी दृष्टि उस बटनपर पड़ी जो कि मेरी आँखके सामने ही था और कमीजकी दाहिनी बाँहमें लगा हुआ था। इस बटनको मैंने कोई दो वर्ष पहले खरीदा था। यह सुवर्णका नहीं था—सोनेके बटन खरीदनेकी मेरी शक्ति भी नहीं थी, परन्तु देखनेमें सुवर्ण ही जैसा मालूम होता था। किसी हल्की धातुपर सोनेका मुलम्मा चढ़ाकर यह बनाया गया था। मैंने देखा कि अब वह पहले जैसा नहीं रहा है—शोभारहित प्रकाशरहित हो गया है।

अब मैंने समझा कि केवल ऊपरका भाग प्रकाशित करनेसे काम नहीं चल सकता; केवल मस्तकको ज्ञानसे भर देनेसे चिरस्थायी आनन्द या प्रकाशकी आशा नहीं की जा सकती। 'मैं' सम्पूर्ण प्रकाशित बनूँ, मेरा हृदय और मेरा आचरण सुवर्णमय बने, तभी जीवन 'जीवनमय' और 'प्रकाशमय' हो सकता है। अब मुझे विश्वास हो गया कि सुवर्ण एक बहुमूल्य वस्तु है और वह गरीबोंके लिए नहीं है। आनन्द और जीवन जितने आकर्षक है उतने ही वे अधिक मूल्यमें मिल सकते हैं। जो दुःखको दूर करना चाहता है उसे दुःख भोगनेके लिए—परिश्रम करनेके लिए भी तैयार होना चाहिए।

यह सोचकर मैंने 'जैनजीवन' बनानेका निश्चय किया। अर्थात् अब मै जैनतत्त्वज्ञानको चारित्ररूपसे व्यवहारमें लानेके लिए तत्पर हो गया। जिन बारह व्रतोंका रहस्य समझ कर मै जहाँ तहाँ उनकी प्रशसा किया करता था उन्हींका पालन करनेका मैंने पक्का निश्चय कर लिया।

(४)

वास्तवमें सारी कठिनाइयाँ मेरे सामने इसी समय उपस्थित हुई। बीड़ी भंग आदि पदार्थोंके सेवनका मुझे बहुत ही शौक था। परन्तु अब इनके छोड़े बिना व्रतोंका पालन करना कठिन हो गया। रात्रि-भोजन, दुष्पाच्य भोजन और तीक्ष्ण चरपरे पदार्थोंका त्याग व्रतीको करना ही चाहिए। नाटक, तमाशे, हँसी दिल्लगी, गपशप, मनोहर दृश्य, फेशन, वासनाओंको जागृत करनेवाले उपन्यास और काव्य, आकुलता बढ़ानेवाले रोजगार; इन सब बातोंका त्याग किये बिना व्रतोंका पालन नहीं हो सकता। गरज यह कि मुझे अपना सारा जीवन बदल डालना चाहिए—नवीन जीवन प्रारभ करनेके समान 'इकना एक' से गिनना शुरू करना चाहिए, ऐसा मुझे मालूम हुआ। वास्तवमें यह काम बहुत ही कठिन था, परन्तु यह सोचकर कि गिनतीके पहाड़े घोंटे बिना गणितज्ञ बनना असभव है—मैंने अपने जीवनका साहसपूर्वक फिरसे प्रारभ किया।

जिन्हें उक्त वस्तुओंके छोड़नेकी कठिनाइयोंका अनुभव होगा वे ही मेरी इस समयकी असुविधाओंका, बीच बीचमें आनेवाली कमजोरि-योंका और कठिनाइयोंका ख़याल कर सकेंगे।

केवल मनोनिग्रह सम्बन्धी कठिनाइयोंसे ही मेरे दुःखकी पूर्ति नहीं हुई। लोगोंके साथ मिलना जुलना बन्द कर देनेके कारण मेरे सम्ब-न्धी तथा इष्टमित्र मुझे मनहूस, वक्रव्रती, स्वार्थी, अर्द्धविक्षिप्त आदि

पदवियोंसे विभूषित करने लगे। फेशनकी चुंगलमेंसे निकलनेके साथ ही मेरे कुटुम्बी जन मुझसे असन्तुष्ट जान पड़े। मायाचारी 'कथन अथवा मुँहदेखी बाते कहना छोड़ देनेका और अमिश्र सत्य कहने-का परिणाम यह हुआ कि धनिक, अगुए और त्यागी नामधारी लोग मुझसे रुष्ट हो गये—वे मेरे विरुद्ध आन्दोलन करने लगे।

(५)

जैनतत्त्वज्ञानकी प्राप्ति तो मुझे शुरूसे ही आनन्द देने लगी थी परन्तु यह 'जैनजीवन' तो मेरे लिए शुरूसे ही कष्टकर और असह्य हो गया।

परन्तु, इतना ही कष्ट मेरे लिए बस न हुआ। पहले प्राप्त किये हुए ज्ञानने इस कष्टमें और भी वृद्धि की। पूर्वजन्मोका स्मरण होनेसे, मन—वचन—कायरूप शस्त्र हिंसक कार्योंमे निरन्तर प्रवृत्त करनेसे जो आत्माका प्रत्येक प्रदेश अन्धकारसे छा रहा था उसका ख़याल आ-नेसे, और जीवन अनिश्चित है इसका विश्वास हो जानेसे, मै प्रत्येक मिनिट, प्रत्येक पाई, और प्रत्येक मौका खो देनेके पहले हज़ारों तरहके विचार करने लगा। भला, ऋणी तथा भिखारीका उड़ाऊ या अपव्ययी होनेसे कैसे काम चल सकता है? मनुष्यका जीवन अनिश्चित है। उसे पूर्व कर्मोंरूपी बड़े भारी कर्जको अदा करना है। तब वह अपने हाथकी सम-यरूप लक्ष्मी, द्रव्यरूप लक्ष्मी, शरीरबलरूप लक्ष्मी और विचारबलरूप लक्ष्मी; इन सबका बिना विचारे उड़ाऊकी तरह कैसे ख़र्च कर सकता है? इससे मै उन विषयोका भी गहरा पैठकर विचार करने लगा कि जिन्हें दुनिया बिलकुल मामूली समझ रही थी। सचमुच ही सच्चा ज्ञान बड़ी भारी जोखिमदारी उत्पन्न कर देता है। प्रत्यक कार्य करते समय मुझे पूर्व कर्मोंका, वर्तमान देशकालका और आगामी परिणामका

विचार करनेका अभ्यास पड़ गया। यह शरीर ही 'मै' नहीं हूँ, यह शरीर केवल मेरे अकलेका ही शरीर नहीं है, वर्तमान ही केवल एक समय नहीं है, भिन्न दिखनेवाले जीवोंमें और मुझमे निश्चयसे कोई भेद नहीं है; इन सब सिद्धान्तोंके स्मरणने मुझे बहुत ही मितव्ययी, साधा और सरल बननेके लिए लाचार कर दिया और जैसे बने तैसे दूसरोंकी उत्क्रान्ति उन्नति या सुखके लिए अपनी सारी शक्तियोंका व्यय करनेकी ओर तत्पर कर दिया। इससे मेरे कुटुम्बके लोग जो कि ऊपरकी श्रेणीपर नहीं चढे थे मुझसे बहुत ही चिढ़ गये और असन्तोप प्रगट करने लगे।

इस तरह एक ओरसे तो कुटुम्बी जन, जान पहचानवाले, जाति बिरादरीके अगुए और धर्मगुरु मेरे विरुद्ध खड़े हो गये और दूसरी ओरसे जैनतत्त्वज्ञानने मेरी आँखोंके सामने जो विशाल ज्ञान और जोखिमदारियाँ उपस्थित की थीं उनके मारे मैं हैरान परेशान होने लगा। वास्तवमें मुझे इसी समय यह मालूम हुआ कि जैन बननेमें कितना कष्ट उठाना पड़ता है।

ऊपर बतलाई हुई कठिनाइयोंमेंसे उन कठिनाइयोंको तो शायद सब ही मान लेंगे जो कुटुम्ब तथा समाजादिकी ओरसे * सामने आती

---

* जो वास्तविक जैनी है उसकी दृष्टि दूसरे लोगोंकी अपेक्षा वहुत आगे पहुँचती है। उसकी नैतिक पद्धति वर्तमानका नहीं किन्तु भविष्यतका अवलम्वन करती है। उसके लिए वर्तमानका मार्ग यथेष्ट नहीं, कारण वह आज कोई ऐसी वस्तुके प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है कि जिसे दुनियाके दूसरे लोग शायद कल प्राप्त करें। एक जैन आज ऐसे आचारके चलानेका प्रयत्न करता है जो दुनियाकी समझमें कल उतरेगा और जिसका अगीकार दुनियाके लिए परसों शक्य होगा। जैनके विचार, दृष्टिविन्दु और मार्ग ज्यों ज्यों अधिकाधिक आगे बढते जाते हैं त्यों त्यों वे और लोगोंके विचारों, दृष्टिविन्दुओं और मार्गोंसे भिन्न होते जाते हैं।

हैं परन्तु इस वातको शायद ही कोई स्वीकार करे कि विशाल ज्ञान और जोखिमदारियोके ख़यालसे भी दुःख होता है। अच्छा तो ठहरिए, मै एक दो दृष्टान्त देकर इसके समझानेका प्रयत्न करता हूँ:—

१—परमार्थ या परोपकार करना अच्छा है, इस आशयसे व्यापारादिमें रुपया कमाकर उन्हें लोगोंके उपकारमे खर्च करना अच्छा है या इसी आशयसे ज्ञानमें गहरा प्रवेश करके—' गुप्तदृष्टा ' बनकरके दुनियाको उपदेश देनेमे लग जाना और उसके घनघोर अन्धकारपूर्ण मार्गमें थोड़ा वहुत प्रकाश डालना अच्छा है ? अर्थात् इन दो वातोमेंसे किसके करनेसे जीवनका विशेप उपयोग हो सकता है ?

२—मेरे वालक और मेरे वालबुद्धि सहधर्मी बुरे रास्ते जा रहे हैं। यदि उन्हें सीधी तरहसे सीधा रास्ता बतलाया जाता है तो वे मानते नहीं है परन्तु यदि मनमें दयाभाव रखके वाहरसे कुछ डॉटदपट की जाती है तो वे डरसे सीधे रास्ते पर चलने लगते है और कुछ समय तक चलते रहनेसे उनको अभ्यास हो जाता है- वह उनके लिए स्वाभाविक हो जाता है। पर उक्त कृत्रिम डाँटदपट दिखलानेसे कभी कभी मेरी आन्तरिक शान्तिमें वाधा पड़ने लगती है ? (यहाँ यह मान लेना चाहिए कि कुछ न करके केवल आत्मसुधारणामें ही संतोष मान कर वैठ रहना जैनजीवनसे विरुद्ध है।)

कौनसा रास्ता अधिक सुगम है इसका नहीं, किन्तु कौनसा रास्ता अधिक हितावह है इसके निर्णय करनेका काम ज्यों ज्यो ज्ञान

तव दुनियाके विचारों, दृष्टिविंदुओं, मार्गों, रीति रवाजोंसे जुदा होना, दुनियाके मनुष्योंके कानून जालसे मुक्त होना, नियमोंके पुतलेके आगे सिर झुकानेसे इकार करना यह क्या कोई दुनियाकी दृष्टिमें छोटा मोटा अपराध है ? ऐसे लोगोंको कड़ीसे कडी सजा कैसे देना चाहिए इस कामको दुनिया अच्छी तरह जानती है।

चढता जाता है त्यों त्यों अधिक कष्टदायक होता जाता है। राजा होनेसे कितनी कठिनाइयाँ झेलना पडती हैं इसका अनुभव एक भिखारीको नहीं हो सकता। अर्द्धदग्ध लेभागू लोगोंको नई नई योजनायें गढ़ना बहुत सहज मालूम होता है, परन्तु विद्वानोंको नहीं। "जहाँ देवता पैर रखनेमें भी डरते हैं वहाँ मूर्खलोग खूब धूमधामसे चलते हैं।"

पहले 'जैन' कहलवानेसे अप्रसन्न, पीछे थोड़ेसे जैनतत्वज्ञानके प्राप्त होनेसे प्रसन्न, फिर 'जैनजीवन' व्यतीत करनेका इच्छुक और पीछे 'जैनजीवन' से उत्पन्न होनेवाली बाहरी और भीतरी कठिनाइयोंसे दुःखी; इस तरह मै क्रमक्रमसे अनेक अवस्थाओंमें प्रगति करने लगा।

इस पिछली अवस्थाका मैंने अभी आतिक्रमण नहीं किया है इसलिए इसके पीछेकी स्थितियोंका स्वरूप चित्रित करके बतलाना मेरे लिए अशक्य है। अभी मैं 'जैनजीवन' बिता रहा हूँ और इस जीवनको अधिकसे अधिक निर्दोष और अधिकसे अधिक सम्पूर्ण बनानेके लिए अधिकाधिक प्रयत्न कर रहा हूँ। यहाँ मैं यह अवश्य कहूँगा कि जैनजीवन अगीकार करनेके बाद मुझे जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है वे अनुभवसे ऐसी मालूम हुई हैं कि उन्नातिक्रमका आशय समझ लेने पर वे असह्य नहीं जान पडती हैं और उनसे विरक्ति भी नहीं होती है।

जो मनुष्य सुगम या सहज जीवन व्यतीत करता है, जिसकी दृष्टिके आगे कभी भयकर कठिनाइयाँ और बडी बडी विघ्नबाधायें खड़ी नहीं हुई हैं, वह मनुष्य वास्तवमें देखा जाय तो ईर्षा करनेके योग्य नहीं किन्तु दया करनेके योग्य है। क्योंकि इनके बिना उसकी उत्क्रान्ति नहीं हो सकती। बालकोंको सीखा हुआ पाठ बोल जानेमें

कोई कठिनाई नहीं पड़ती; परन्तु नये और कठिन पाठ सीखनेका कष्ट भोगे विना वे विद्वान् नहीं हो सकते। हम देखते हैं कि जो विद्यार्थी कठोर गुरुके पास पढ़ता है वह बहुत प्रवीण होता है। गुप्तज्ञानके प्रेमियोंको नई नई भूमिकाओंपरसे उत्तीर्ण होना चाहिए, नये नये पदचिह्न बनाना चाहिए, नवीन राज्योंको जीतनेवालों और पता लगानेवालोंको जितना साहस और सहनशीलता धारण करनी पड़ती है उससे भी अधिक साहस और सहनशीलता धारण करनी चाहिए। क्योंकि स्थूल राज्योंका पता लगानेकी अपेक्षा सूक्ष्म भवनोंके पता लगाने और प्राप्त करनेका काम बहुत ही कठिन और बहुमूल्य है। क्या आप समझते हैं कि महावीर भगवान् जैसे महात्माओंको भी यह काम सहज मालूम हुआ था? उनका तप, उनका विहार, उनका कायोत्सर्ग और उनका परीषहसहन ये सब बातें क्या सूचित करती हैं? दुःख दुःखसे ही दूर होता है। सोना महँगा ही मिलता है। कायर, डरपोंक, सुखिया और सिर्फ ज्ञानकी ही बाते करनेवालोंको स्थूल अथवा सूक्ष्म राज्य प्राप्त करनेका अधिकार नहीं।

जैनधर्म यह कोई जातिविशेष नहीं, किन्तु एक जीवन है। यह कोई कोरी फिलासोफी भी नहीं है किन्तु फिलासोफीकी नीवपर खड़ा किया हुआ आध्यात्मिक जीवन है। इस जीवनको जिस तरह वैश्य प्राप्त कर सकते है उसी तरह ब्राह्मण, क्षत्री, भंगी, चमार, यूरोपियन, जापानी आदि भी प्राप्त कर सकते हैं। वैश्य-ब्राह्मण-क्षत्री–भंगी–चमार-यूरोपियन–जापानी आदि भेदोंका जैनजीवनमें–जैनधर्ममें आस्तित्व ही नहीं है। यह विश्वकी सर्वसाधारण सम्पत्ति है, विश्वके रहस्यकी कुंजी है और समस्त जीवोंको परस्पर जोड़नेवाली सुवर्णमय संकल है।

सचमुच ही जैनधर्म यह एक बहुत ही अच्छा आश्रयस्थल है—बहुत ही कीर्तिमय आश्रयस्थल है; परन्तु वह सुखचैन और मौज शौकको उत्तेजित करनेवाला स्थल नहीं है। जैनधर्ममें अगणित जीवोंको शान्ति मिली है; सचमुच ही उसमें महती शान्ति विद्यमान है परन्तु डरपोंक और युद्धोंसे डरनेवाले लोग जिस शान्तिकी खोजमें रहते है वह शान्ति जैनधर्म नहीं दे सकता। जैनधर्ममें अगणित जीवोंको प्रकाश मिला है। सचमुच ही उसमें सम्पूर्ण प्रकाश समाया हुआ है; परन्तु वह ऐसा प्रकाश नहीं है जो अपने ग्राहकोंके लिए मार्ग साफ बना दे। वह ऐसा प्रकाश है कि जो सामने फैलेहुए घनघोर अन्धकारके आरपार जानेकी शक्ति देता है और स्वीकृत मार्गकी कठिनाइयोंको स्पष्ट करके बतला देता है। और जैनधर्म ऐसा है यह बड़े भारी सौभाग्यका विषय है। *

ऐतिहासिक लेखोंका परिचय।

इस समय भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके अन्वेषणके लिए शिलालेख इत्यादि ही मुख्य आधार हैं इस बात पर सर्व विद्वान् सहमत है। ये लेख केवल पर्वत–शिलाओं पर ही नहीं हैं, किन्तु अन्य कई पदार्थोंपर भी मिले है। ये लेख (१) किन किन पदार्थोंपर हैं? (२) किन भाषाओंमें हैं? (३) इनमें क्या लिखा है और (४) इनका इतिहासमें इतना मान क्यों है? इन प्रश्नोंके उत्तरको ऐतिहासिक अन्वेषणकी वर्णमाला कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। सक्षेपमें इन प्रश्नोंके उत्तर ये हैं:—

---

* जैनहितेच्छुमें प्रकाशित गुजराती लेखका अनुवाद।

(१) पदार्थ ।

पदार्थ जिन पर ये लेख मिले है अनेक प्रकारके है; लेकिन वे तीन विभागोंमें विभक्त किये जा सकते है,––पाषाण, धातु और मिट्टी। सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण लेख पाषाणशिलाओं पर मिले है।

पाषाण––पाषाणके लेख अधिकांश पर्वतोंकी शिलाओं अर्थात् चट्टानो पर है। इनमे महाराजा अशोकके १४ लेख अधिक प्रसिद्ध है। ये लेख गिरनार (जूनागढ़), कालसी (देहरादून), और धौली (उड़ीसा) इत्यादि स्थानोंमें है। इन १४ लेखोंके अतिरिक्त महाराजा अशोकके और भी बहुतसे लेख हैं। अन्य राजाओके लेख भी बहुत है जिनमेंसे मुख्य मुख्य काँगड़ा और बीजापुरके ज़िलोंमें और मैसूर राज्यमें हैं। इनसे अनेक राजाओकी राज्यसबधी वहुतसी बातोंका पता चलता है। जैनशिलालेख भी वहुतसे स्थानोपर हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणवेलगुलमें चंद्रगिरि और विंध्यगिरि पर्वतोपर जैनियोके अनेक महत्त्वसूचक शिलालेख संस्कृत और कनड़ी भाषाओमें हैं जिनसे जैन-इतिहाससबंधी बहुतसी बातोंका पता लगता है।* शत्रुंजय (पालीताना) तीर्थपर श्रीआदीश्वरभगवानके मंदिर पर और आवू और गिरनारके अनेक मंदिरोमे भी कई जैन शिलालेख है। थोड़े ही वर्ष हुए उड़ीसा (कलिंग) में भी कई लेख मिले हैं जिनसे प्रकट होता है कि कलिंगाधिपति राजा खारवेल जैनधर्मानुयायी ही थे। यदि ये शिलालेख न

---

* इन लेखोंका विस्तारपूर्वक विवरण 'जैनसिद्धान्तभास्करकी १ और २-३ किरणों, 'ऐपीग्राफिका कर्नाटिका' और 'ईन्स्क्रपशनूस् ऐट श्रवणवेलगोला में दिया है। इन लेखोंके सबधमें वहुतसी ऐतिहासिक और मनोज्ञ वातें हैं परतु वे इस लेखकी सीमासे वाहर है अतएव उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जासकता।

मिलते तो कौन जानता कि जैनधर्मका प्रचार किसी समय उड़ीसा-में भी बहुलतासे था।*

चट्टानोंके अतिरिक्त कुछ लेख शिल्पकारो द्वारा बनाये हुए स्तभों-पर मिलते है। ये स्तभ आकारमे गोल है और बहुत ऊँचे हैं। इनमें महाराजा अशोकके स्तभ अधिक प्रसिद्ध है। ये स्तभ इलाहा-बाद, दिल्ली, जिला चंपारन (बंगाल) इत्यादि स्थानोंमें हैं। इनके लेखोंसे महाराजा अशोककी शासन और धर्मसबधी बहुतसी बातोंका परिचय मिलता है। अन्य स्तभ मैसूर, बीजापूर, मालवा आदि स्था-नोंमें है।

बहुतसे लेख इमारतोंपर भी मिले है। डाक्टर फुहररको मथुरामें ककाली टीलेके खोदे जानेपर बहुतसी इमारतें और लेख मिले। इनसे कई जैनमदिरो और स्तभोंका परिचय मिला है। जिनपर कई अत्यंत प्राचीन जैनधर्मसंबंधी लेख है † बौद्धोंके भी बहुतसे स्तूप है। ये स्तूप ईंट और पत्थर दोनोंहीके बने हुए हैं। इनमें भूपाल राज्यमे साचीके स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँका सबसे बडा स्तूप ३५ गज लम्बे व्यासके वृत्तपर बना है, और १९ गज ऊँचा है। ये स्तूप बहुधा उलटे हुए कटोरेके आकारके बने हुए हैं। इलाहाबादके दक्षिणमें बरहुतमे भी एक विशाल स्तूप है। इन स्तूपोंके बाहरी भाग और फाटकोंपर अनेक लेख, चित्र और मूर्तियाँ हैं जिनसे बहुतसे प्राचीन राजाओंका पता लगा है। इन स्तूपोंके भीतर भी कुछ कम ऐतिहा-

---

* जैनशिलालेखोंका विस्तृत वृत्तात 'जैनहितैषी' के श्रावण वीर स० २४३८ के अकमें या 'जैनशासन' के वी० स० २४३८ के खास अक (पृष्ठ १२९–१३२) में देखो।

† ये लेख अब लखनऊके अजायबघरमें रक्खे हुए हैं।

सिक सामग्री नहीं है। इनके भीतर पत्थरके संदूक मिले हैं जिसमें बौद्धोंके मृत शरीरोंकी भस्म रक्खी जाती थी। इन संदूकोंके ऊपर बहुतसे लेख खुदे हुए मिले हैं: जिनसे बौद्धधर्मके प्रचारके विषयमें बहुतसी बातोंका परिचय मिला है। कहीं कहीं यह लेख संदूकोंके ढक्कनोंके भीतरकी ओर केवल स्याहीसे ही लिखे मिले हैं। अभी हालमें तक्षशिला (पंजाब) के खोदे जानेपर जो अन्वेषण हुए हैं वे डाक्टर मारशलने ४ सितम्बर १९१२ ई० को शिमलामें पंजाब ऐतिहासिक सोसाइटीको पढ़कर सुनाए थे। तक्षशिलाके टीलोंमें बहुतसे स्तूप और इमारतें मिली हैं जिनसे राजा कनिष्कके समयके सम्बंधमें कुछ नवीन बातें हाथ लगी हैं। इन इमारतोंमेंसे कई सिक्के भी मिले हैं जिनसे भारतवर्षके इतिहासकी बहुतसी बातोंका परिचय मिला है। मुसलमानोंकी तो ऐसी बहुतसी इमारतें आगरा, देहली, सीकरी, बीजापुर इत्यादि स्थानोंमें विद्यमान हैं जिनपर ऐतिहासिक लेख हैं।

विहार प्रांतके अंतर्गत गया जिलेमें बहुतसी गुफायें हैं जिन पर महाराजा अशोकके लेख मिले हैं। ऐसी गुफायें और भी कई स्थानोंमें हैं। कहीं इन गुफाओंमें चैत्यालय भी बने हैं। जूनागढ़ और उड़ीसाकी गुफाओंमें कई जैनलेख और प्रतिमायें मिली हैं जो जैनधर्मके लिए बड़े महत्त्वकी हैं।

वैदिक, जैन और बौद्धधर्मसंबंधी प्रतिमाओंपर सैकड़ों ही लेख मिलते हैं। श्रवणबेलगुलमें विंध्यगिरि पर्वतपर श्रीबाहुबलि स्वामीकी एक विशाल मूर्ति हैं जिस पर एक बहुत प्राचीन शिलालेख है।

धातु—अब तक सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, लोहा इत्यादि अनेक धातुओंपर लेख मिल चुके हैं। इनमेंसे अधिकांश लेख ताम्रपत्रोंपर हैं। इन पत्रोंकी लम्बाई चौड़ाई २ इंचसे लेकर २॥ फुट तक पाई

गई है। किसी किसी पत्र पर केवल एक ओर लेख है और किसी किसी पर दोनों ओर। कोई कोई लेख ऐसे भी हैं जो कई पत्रोंमे समाप्त हुए हैं। जब राजा अपनी प्रजामेंसे किसी पुरुषको ग्राम इत्यादि दान देते थे तो यह बात इन ताम्रपत्रोंपर लिख कर उस व्यक्तिविशेषको दे दी जाती थी, अतएव यह ताम्रपत्र अधिकतर उन लोगोंके यहाँ मिले हैं जिनके पूर्वजोंको दान दिये गये थे। कहीं कहीं ये खेतों और दीवारोंमें भी गढ़े हुए मिले हैं जो कि बहुत काल व्यतीत होनेपर अपने अधिकारियोंके हाथसे निकल गये अथवा खो गये हैं। इन पत्रोंपर दानी राजाओंकी छापें अंकित हैं। ये छापें अलग भी मिली हैं।

सोने, चॉदीके पत्रों और मुद्राओंपर लेख बहुधा स्तूपोंमें ही मिले हैं। पीतलकी प्रतिमाओंपर बहुत लेख मिले हैं। सोने, चाँदी, इत्यादिके सिक्के भी बहुत मिले हैं जिनके लेख इतिहासके लिए अत्यंत उपयोगी है।

जिला देहलीमे महरौनी ग्राममें एक लोहेका स्तभ है। इसकी ऊँचाई ९ गज है। इस पर एक छोटीसी कविता अंकित है जो महाराजा चद्रगुप्त द्वितीयको समर्पित है।

मिट्टी—बहुधा मिट्टीके घट और अन्य प्रकारके बरतन जिन पर स्याहीसे लिखे हुए या खुदे हुए लेख हैं, मिले हैं। पश्चिमोत्तर सरहदी प्रांतमें मिले हुए कुछ बरतनोंके लेख यह सूचित करते हैं कि वे बौद्ध साधुओंको दानमें अर्पण किये गये थे।

मिट्टीके बने हुए और अग्निमें पकाये हुए बहुतसे चौरस टुकड़े मिले हैं जिन पर बौद्धोंके लेख और चित्र अंकित हैं।

ईंटों पर भी लेख मिले हैं। ये लेख ईंटोंके साथ साँचेमें ढाले हुए हैं। ये बहुधा पंजाब और संयुक्त प्रातमें मिले है। जिला गाजीपुरमें बहुतसी ईंटे मिली है जिन पर राजा कुमारगुप्तके लेख है। कुछ ईंटों पर बौद्धधर्मसंबंधी सूत्र भी लिखे मिले हैं।

२ भाषा।

ये लेख अनेक भाषाओं और लिपियोंमें हैं। अधिकतर लेख सस्कृत प्राकृत और पाली भाषाओंमें हैं; अन्य भाषाओंमें कनड़ी, तैलग, मलयाल्म, मराठी इत्यादि मुख्य हैं। मुसलमान बादशाहोंके लेख फ़ारसी और अरबी भाषाओंमें है। अधिकांश लेख गद्यमें हैं; कुछ पद्यमें तथा मिश्रित गद्य और पद्यमें भी हैं। कई प्रकारकी प्राकृत भाषाओं और पाली भाषाके पढ़ने और समझनेमें पहले बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। कुछ लेखोंके पढ़नेमे तो अनेक विद्वानोंको बरसों तक सरतोड़ परिश्रम करना पड़ा है। किन्तु बड़े परिश्रमके पश्चात् अब इन भाषाओंके कोश और व्याकरण बन गये है। अतएव वर्तमान और आगामी पुरातत्त्वान्वेषियोंके लिए बड़ी सुगमता हो गई है। इन लेखों पर सवत् भी भिन्न भिन्न मिलते हैं; कलियुग, विक्रम, मालव, शक, गुप्त, चेदी, लक्ष्मणसेन, नेवाड़ इत्यादि कई संवत् है। बहुतसे लेखोमें मास और तिथियाँ तक लिखी हैं। कई लेखोंमे संवत्के अंक तो दिये हैं किन्तु यह नहीं लिखा कि वे कौनसे संवत् है। ऐसे लेखोंके कालनिर्णय करनेमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। लेखोंके संवतोके विषयमें भी विद्वानोने कई पुस्तकें लिख डाली हैं जिनसे कालनिर्णयमें बहुत सहायता मिलती है। (अपूर्ण)

मोतीलाल जैन, आगरा।

चार लाखके दानसे कौनसी संस्था खुलनी चाहिए।

इन्दौरके दानवीर सेठ हुकुमचन्दजीने अभी हाल जो चार लाख रुपया दान करनेकी घोपणा की है, उससे कौनसी और कैसी सस्था खोली जानी चाहिए इस विषयमें सर्व साधारणसे सम्मतियाँ माँगी गई है और उन सब सम्मतियोपर विचार करनेका विश्वास दिलाया गया हैं। मेरी समझमें सेठजीकी यह उदारता उस उदारतासे भी बहुत बडी है जो उन्होंने चार लाख रुपयाका महान् दान करनेमें प्रकट की है। जैन समाजके लिए इससे अधिक सौभाग्यका विषय और क्या हो सकता है कि उसके अगुए और धनीमानी लोग उसकी सम्मतिसे उसका हित करनेके लिए तत्पर हो रहे है।

मै समाजका एक अल्पज्ञ सेवक हूँ, अतएव मै भी इस विषयमे अपने विचार प्रगट कर देना उचित समझता हूँ। आशा है कि उदार-हृदय सेठजी इनपर एक दृष्टि डालजानेकी कृपा करेगे।

जहाँतक मै जानता हूँ सेठजी अपने इस द्रव्यसे इन्दौरमें ही सस्था खोलना चाहते है। इन्दौरसे बाहर किसी दूसरे स्थानमें सस्था खोल-नेकी उनकी इच्छा नहीं है। अतएव इन्दौरकी परिस्थितियों सुविधाओ और आवश्यकताओंका खयाल रखके मै इस विपयपर विचार करूँगा।

यहाँ मै यह कह देनेमे कुछ हानि नहीं समझता कि बहुतसे सज्जन जो इस रकमसे एक 'जैनकालेज' खोलनेकी सम्मति दे रहे हैं वह ठीक नहीं है। कारण एक तो, एक कालेजके लिए यह रकम बहुत ही कम है दूसरे इन्दौरमें दो कालेज हैं उनमें ही विद्यार्थियोंकी सख्या यथेष्टसे बहुत कम है। तब इस तीसरे कालेजको यथेष्ट विद्यार्थी मिलना कठिन है। यदि बाहरके जैन विद्यार्थियोंके आकर रहनेकी आशा की जाय,

तो वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि उन प्रान्तोंसे यह स्थान बहुत ही दूर है जहाँ कि कालेजोंमें पढ़नेवाले जैन विद्यार्थियोंकी बहुलता है। जैन कालेजके योग्य स्थान देहली है, वहाँ चाहे जितने विद्यार्थी मिल सकते हैं परन्तु सेठजी अपनी संस्था इन्दौरमें ही स्थापित करना चाहते है। तीसरे जैन समाजमें अभीतक ऐसे स्वार्थत्यागी और सुयोग्य वर्कर या काम करनेवाले नहीं दिखलाई देते जो एक अच्छे कालेजको चला सकें। यदि इन्दौरके सेठ तिलोकचन्द हाईस्कूलको ही हम लोग अच्छी तरह चला सके और उसे एक आदर्श शिक्षा संस्था बना सके तो मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उक्त हाईस्कूल ही थोडे समयमें जैन कालेजका रूप धारण कर लेगा, अर्थात् इस हाईस्कूलको ही जैन कालेजका प्रारंभ समझना चाहिए। उदारहृदय सेठ कल्याणमलजी इसमें और भी कई लाख रुपया लगा देनेकी पवित्र इच्छा रखते है। ऐसी अवस्थामें उक्त चार लाखकी रकमसे हमे कालेजके सिवा और ही किसी आवश्यक संस्थाके खुलनेकी प्रतीक्षा करना चाहिए। जैनसमाजमे अभी बीसों उपयोगी संस्थाओंकी आवश्यकता है जिनमेसे यहाँ मै दो चार संस्थाओका उल्लेख किये देता हूँ:—

१ **जैनशिक्षाप्रचारकभण्डार**—इस समय एक ऐसी संस्थाकी बड़ी भारी जरूरत है कि जिससे चाहे जहाँ चाहे जिस प्रकारकी शिक्षा पानेवाले जैन विद्यार्थियोंको मासिक वृत्तियाँ, एक मुश्त पारितोषक या सहायतायें दी जा सके। ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँपर जैनविद्यार्थी रहते हैं और सरकारी या गैरसरकारी शिक्षासंस्थायें भी हैं। परन्तु द्रव्याभावसे स्कूलोंकी फीस न दे सकनेके कारण वे पढ़ नहीं सकते हैं। बहुतसे विद्यार्थी उच्चश्रेणीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए देशके ही अन्य स्थानोंमें या विदेशोंमें जाना चाहते हैं परन्तु सहायताके बिना

नहीं जा सकते। बहुतसे स्थान ऐसे हैं जहाँ पढ़नेवाले विद्यार्थी तो बहुत हैं परन्तु स्थानीय जैनी अपनी निर्धनताके कारण वहाँ कोई पाठशाला स्थापित नहीं कर सकते हैं, अथवा थोड़ी बहुत बाहरी सहायताकी आशा रखते है। बहुतसी पाठशालाये ऐसी हैं जहाँ पठनपाठनका प्रवन्ध तो अच्छा है परन्तु विद्यार्थियोंको स्कालर्शिप देकर रखनेकी गुजाइश नहीं है। इस भंडारसे इस तरहके अनेक विद्यार्थियोंका और पाठशालाओंको सहायता दी जा सकेगी और सारे देशके जैनी इससे लाभ उठा सकेंगे। चार लाख रुपयोंका मासिक व्याज लगभग १५००) के होगा। यदि पाँच रुपया महीनाके हिसाबसे एक एक विद्यार्थीको सहायता दी जायगी, तो इस भडारकी ओरसे कोई चार सौ पाँच सौ लड़के निरन्तर विद्या प्राप्त करते रहेगे। अन्य संस्थाओंके समान प्रवन्धादिकी झंझटें भी इसमें वहुत कम है; एक आफिस और दो तीन कर्मचारी रखनेसे ही इसका अच्छा प्रवन्ध हो सकता है। पुण्यके समान यश भी इससे वहुत होगा।

कुछ वृत्तियाँ ऐसी भी इस भडारकी ओरसे रक्खी जावें जो देश भरके हाईस्कूलों, कालेजों और सस्कृत पाठशालाओंमें पढ़नेवाले जैन अजैन विद्यार्थियोंको सस्थाकी ओरसे नियत किये हुए ग्रन्थोंकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर दी जावें। ऐसा करनेसे सैकडों जैन और अजैन विद्यार्थी जैनसाहित्यसे परिचित होने लगेंगे। इसका प्रवन्ध शिक्षाखातेके अधिकारियोंसे लिखापढी करनेपर अच्छी तरहसे हो सकता है।

एक फंड इस संस्थामे इस तरहका भी खोला जावे जिससे उच्च श्रेणीकी विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले किन्तु शिक्षा व्ययका

प्रवन्ध न कर सकनेवाले विद्यार्थियोंको विना सूदके उधार रुपया दिया जावे और इस वातकी लिखा पढी कर ली जाय कि जीविकाकी व्यवस्था हो जानेपर वे धीरे धीरे अपना कर्ज अदा कर देंगे। इससे सैकडों विद्यार्थियोंके लिए विद्याप्राप्तिका मार्ग सुगम हो जायगा। वम्बईमें इस प्रकारकी एक संस्था वहुत दिनोंसे चल रही है। आजतक उसके द्वारा सैकड़ों विद्यार्थी अपनी ज्ञानपिपासाको शान्त कर सके हैं।

२. **औद्योगिक विद्यालय**–देश दिनपर दिन दरिद्र होता जा रहा है। लोग विना उद्योगके मारे मारे फिरते हैं। शिक्षितोंको औद्योगिक शिक्षा नहीं मिलती, इससे वे नोकरीके सिवा ओर कोई भी उद्योग नहीं कर सकते है और नौकरियॉ देशमें थोड़ी हैं। शिक्षा इस प्रकारकी दी जाती है कि शिक्षितोंसे परिश्रम नहीं हो सकता–शिक्षागृहोमें वे सुकुमार वना दिये जाते हैं। इससे एक ऐसे विद्यालयकी वडी भारी जरूरत है जिसमें पढ़ना लिखना सिखलानेके साथ साथ तरह तरहके उद्योग सिखलाये जावें और मानसिक परिश्रमके साथ साथ शारीरिक श्रम भी विद्यार्थियोंसे लिया जावे। जैनसमाजमे भी उद्योगहीनता वेतरह बढ़ रही है। देहातोंमें जाइए, वहॉ आपको हजारों जैनी ऐसे मिलेंगे जो उद्योगके विना उदरपोषण करनेके लिए दूसरोंका मुँह ताकते हैं। इस विद्यालयसे हजारो निरुद्योगी सीख जावेंगे और थोडे ही समयमें स्वाधीन जीविका प्राप्त करनेमें समर्थ हो जावेंगे। यह विद्यालय अमेरिकाके कर्मवीर डा० टी. वुकर वाशिंगटनके आदर्शविद्यालयके ढँगका खोलना चाहिए। आगेके अंकमें वाशिंग्टनका जीवनचरित दिया गया है उससे उनकी संस्थाका परिचय मिल सकता है। इस विद्यालयमे और सव प्रकारकी शिक्षाओंके साथ साथ धार्मिक शिक्षाका भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इस प्रकारकी सस्थाको चलानेकी योग्यता रखनेवाले कहाँसे आवेंगे ? जैनियोंमें सचमुच ही ऐसे वर्कर मिलना कठिन है, परन्तु अजैनोंमें प्रयत्न करने पर बहुतसे लोग मिल सकते हैं और वे बड़ी सफलतासे ऐसी सस्थाओंको चला सकते हैं। एक औद्योगिक सस्थाके लिए यह आवश्यक भी नहीं है कि जैनी ही कार्यकर्त्ता मिलें। धर्मशिक्षाका प्रबन्ध जैनियोंके द्वारा हो ही जायगा।

३ **सरस्वतीसदन**—इस सस्थाके चार विभाग किये जावें। १ लगभग एक लाख रुपयेके खर्चसे जैनधर्मके सस्कृत, प्राकृत, मागधी और हिन्दी भाषाके तमाम हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थ संग्रह किये जावें और उनसे एक अद्वितीय जैनपुस्तकालय स्थापित किया जाय। ५० हज़ार रुपये खर्च करके सर्वसाधारणोपयोगी सब तरहके विशेष करके सस्कृत, हिन्दी और अँगरेजीके ग्रन्थ संग्रह किये जावें और इन्दौरमें जो एक अच्छे सार्वजनिक पुस्तकालयकी कमी है उसकी पूर्ति की जाय। २९ हजारकी पूँजीसे एक अच्छा जैनप्रेस खोला जाय और ७५ हजार की पूँजीसे सस्कृत हिन्दी अँगरेजी आदि भाषाओंमें जैनग्रन्थ छपवा छपवाकर लागतके दामों-पर, अर्धमूल्यमें अथवा बिना मूल्य वितरण किये जावें। ऐसा प्रयत्न किया जाय जिससे थोड़े ही समयमें प्रत्येक स्थानके मन्दिरमें एक एक अच्छा पुस्तकालय बन जावे। इसी विभागसे अच्छे लेखकोंको पारि-तोषिक आदि देनेकी भी व्यवस्था की जाय। लगभग ५० हजारकी पूँजीसे एक अच्छे साप्ताहिक पत्रके और एक उच्चश्रेणीके मासिक पत्रके निकालनेकी व्यवस्था की जाय। ये दोनों पत्र इस ढगके निकाले जावें कि जिससे जैन और अजैन सब ही लाभ उठा सकें। शेष रकमसे इमारतों और कर्मचारियोंकी व्यवस्था की जाय।

४ संस्कृतविद्यालय—हमारे यहाँ सस्कृतकी कई पाठशालायें हैं परन्तु धनाभावसे उनकी अवस्था जैसी चाहिए वैसी सन्तोषजनक नहीं है। इसलिए अबतक एक आदर्श संस्कृतविद्यालयकी आवश्यकता बनी ही है। यह ठीक है कि संस्कृत भाषा अब कोई जीवित भाषा नही है। संसारकी सर्वश्रेष्ठ भाषा होनेपर भी उसमें हमारी नवीन जीवन समस्याओंके हल करनेकी शक्ति नहीं है; तो भी हमें यह न भूल जाना चाहिए कि वह हमारे पूर्वजोंके यशोराशिकी स्मृति है और हमारी प्राचीन सभ्यताकी उज्ज्वल निदर्शन है। और धर्मतत्त्वोंका मर्म समझना तो उसकी शरण लिये बिना अब भी एक तरहसे बहुत कठिन है। अतएव अँगरेज़ी और हिन्दीके विद्यालयोंके समान इस पवित्र देववाणीकी रक्षाके लिए संस्कृतविद्यालयकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है। चार लाखकी रकमसे संस्कृतविद्यालय बहुत अच्छी तरहसे चल सकता है। संस्कृत विद्यार्थियोंके विषयमें अकसर यह शिकायत सुनी जाती है कि वे पण्डिताई करनेके सिवा और किसीके कामके नहीं होते हैं; परन्तु प्रयत्न करनेसे यह शिकायत दूर हो सकती है। संस्कृतके साथ साथ उन्हे अच्छी हिन्दी, काम चलाऊ अँगरेज़ी और किसी एक उद्योगकी शिक्षा देनेका भी प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसा करनेसे वे जीविकाके लिए चिन्तित न रहेंगे। शिक्षापद्धतिका ज्ञान भी उन्हें अच्छी तरहसे करा देना चाहिए जिससे यदि वे अध्यापकी करना चाहें तो योग्यतापूर्वक कर सकें। संस्कृतके अध्यापकोंकी आवश्यकता भी हमारे यहाँ कम नहीं है।

अन्तमें मै यह निवेदन कर देना भी आवश्यक समझा हूँ कि इस बड़ी रकमसे केवल एक ही अच्छी सस्था स्थापित करना चाहिए— इसका एकसे अधिक जुदाजुदा कामोंमें बाँटना उन लोगोंके लिए

वहुत कष्टप्रद होगा, जो इससे बडी बड़ी आशाये कर रहे है। क्योंकि छोटी छोटी संस्थाओंके खोलनेवाले तो वहुतसे है-छोटी सस्थायें है भी अनेक; परन्तु एकमुश्त इतनी बड़ी रकम देकर एक विशाल संस्था खोलनेवाले एक सेठजी ही हैं। उन्हें अपनी इस विशेषतापर ध्यान रखना चाहिए।

कविवर बनारसीदासजी पर एक भ्रममूलक आक्षेप।

"सुनी कहै देखी कहैं, कलपित कहै वनाय।
दुराराध ये जगतजन, इन सौं कछु न वसाय॥"

—अर्धकथानक।

नाटकसमयसार, बनारसीविलास आदि आध्यात्मिक ग्रन्थोंके कर्त्ता काविवर वनारसीदासजीसे प्रायः सारा जैनसमाज परिचित है। जैन-धर्मके भाषासाहित्यमें उनकी जोड़का शायद ही और कोई कवि हुआ हो। उनकी रचना वहुत ही उच्चश्रेणीकी है। वे केवल अनुवादक, या टीकाकार नहीं थे—किन्तु धर्मके मर्मको समझकर और उसे अपने रगमें रगकर अपेन शब्दोंमें प्रगट करनेवाले महात्मा थे। वे स्वयं अपना ५५ वर्षका जीवनचरित (अर्धकथानक) लिखकर भाषासा-हित्यमें एक अपूर्व कार्य कर गये है और वतला गये है कि भारत-वासी विद्वान् भी इतिहास और जीवनचरितका महत्त्व समझते थे और उनका लिखना भी जानते थे। उनके ग्रन्थोंका जैनधर्मके तीनों सप्रदायोंमें एकसा आदर है; सब ही उन्हे भक्तिभावपूर्वक पढकर आत्म-कल्याण करते है।

उनके इस आदर और भक्तिभावको क्षीण करनेके लिए सहयोगी जैनशासनने अपने २४ दिसम्बरके अंकमें एक लेख प्रकाशित किया है और उसमे बनारसीदासजीको एक नवीन मतका प्रवर्तक और निन्हव ठहराया है। हम इस लेखके द्वारा यह बतला देना चाहते हैं कि बनारसीदासजी जैसा कि सहयोगी समझता है शुष्क अध्यात्मी निन्हव या किसी पाखण्डमतके प्रवर्तक नहीं थे।

बनारसीदासजीके समयमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके एक विद्वान् हो गये हैं। उनका नाम था श्रीमेघविजयजी उपाध्याय। उपाध्यायजीने 'युक्ति-प्रबोध' नामका एक प्राकृत नाटक और उसकी स्वोपज्ञसंस्कृत टीका लिखी है। यह नाटक बनारसीदासजीके मतका खण्डन करनेके लिए लिखा गया था जैसा कि नाटककी इस प्रारंभिक गाथासे मालूम होता है:—

पणमिय वीरं जिणंदं दुम्मयमयमयविमद्दणमयंदं।
वोच्छं सुयणहियत्थं वाणारसीयस्समयभेयं॥

अर्थात् दुर्मतरूपी मृगके नाश करनेके लिए मृगेन्द्रके समान महावीर भगवानको नमस्कार करके, मैं सुजनोंके हितार्थ वानारसीदासके मतका भेद बतलाता हूँ।

उक्त नाटकके अभी तक हमें दर्शन नंही. हुए परन्तु जैनशासनके कथनानुसार उसमें लिखा है कि "बनारसीदास आगरेके रहनेवाले श्रीमाली वैश्य थे और लघु खरतरगच्छके अनुयायी थे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके माने हुए तत्त्वोंपर उनकी श्रद्धा थी। उनकी धर्मदृढता रुचि और श्रद्धा प्रशसनीय थी। समय समयपर वे प्रोषध उपवासादि तप और उपधान वग़ैरह किया करते थे; सामायिक प्रतिक्रमण आदि नित्यनियमोंकी भी वे पालना करते थे। इसके साथ ही वे साधु और

गृहस्थोंके आचार विचारोंके भी अच्छे ज्ञाता थे। यद्यपि इस समय उन्हें अध्यात्मसे अतिशय प्रेम था, परन्तु वह नाममात्रका अध्यात्म नहीं सच्चा अध्यात्म था। इसके बाद दर्शनमोहके उदयसे उनके मनमे इस प्रकारकी भावना हुई कि 'साधु और श्रावकोंके आचारमें अनेक अतीचार लगते हैं। शास्त्रोंमें साधुओं और श्रावकोंका जैसा आचार वर्णन किया गया है वैसा न साधु पालते हैं और न श्रावक उसके अनुसार चलते हैं। अर्थात् आजकल न तो साधुपना है और न श्रावकपना, और जो द्रव्यक्रियायें की जाती हैं उनसे कोई फल निकलनेवाला नहीं। अतएव केवल अध्यात्ममें लीन होना ही सर्वश्रेष्ठ है।' जब उनके मनमें इस प्रकारका विश्वास हुआ तब उसे उन्होंने अपने गुरुपर भी प्रकट कर दिया। गुरु महाराजने बहुत ही अच्छी युक्तियाँ देकर समझाया कि व्यवहारकी बड़ी भारी आवश्यकता है। केवलीभगवान् भी व्यवहारका त्याग नहीं करते हैं। दिगम्बराचार्योंने भी समयसारमूल तथा उसकी टीकामे और दूसरे अनेक ग्रन्थोंमें व्यवहारकी पुष्टि की है। परन्तु दर्शनमोहके उदयसे उन्हें कोई भी बात न रुची। बाद उन्होने प० रूपचंद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदासके साथ मिलकर श्वेताम्बर दिगम्बरका खिचड़ारूप एक जुदा मत चलाया और हिन्दीमें जो समयसारनाटक बनाया उसमें भी मूल समयसारके अतिरिक्त बहुतसी नई बातें घुसेड दीं। श्वेताम्बरसम्प्रदाय छोडके जब वे दिगम्बरसम्प्रदायमें गये तब वहाँ भी उन्हें गुरुकी पींछी कमण्डलुपर शका हुई और वे दिगम्बर पुराणोंको अप्रमाणिक मानने लगे। बनारसीदासजीने अपना मत सं० १६८० में प्रगट किया।"

युक्तिप्रबोधमें यह भी लिखा है कि "जब बनारसीदासजीकी मृत्यु हो गई, तब उन्होने अपनी गादीपर कुँवरपालको बैठाया। क्योंकि उनके

कोई सन्तान नहीं थी। उनके पीछेकी परम्परा उन्हें गुरुके तुल्य गिनती थी और उनकी परम्पराके माननेवाले समय समयपर 'श्वेताम्बर, दिगम्बर सम्प्रदायमे ऐसा कहा है,' इस प्रकार न कहकर यह कहते थे कि 'गुरुमहाराजने ऐसा कहा है'।"

सहयोगी जैनशासनके उक्त आक्षेपका सारा दारोमदार इसी युक्ति-प्रबोध नाटक पर है। नाटकके उक्त कथनपर विश्वास करके ही उसने बनारसीदासजीपर कई इलजाम लगा डाले है, पढ़ने या विचारनेका उसने कष्ट नहीं उठाया। यदि वह ऐसा करता तो एक महात्माकी कीर्तिको कलङ्कित करनेका अपराध उससे न होता।

युक्तिप्रबोधके कर्ताका पहला आक्षेप यह है कि बनारसीदासजी केवल अध्यात्ममें लीन हो गये थे और द्रव्य क्रियाओको उन्होने कष्ट-क्रियायें समझकर छोड दी थीं। अर्थात् व्यवहारको छोड़कर वे केवल निश्चयावलम्बी होगये थे और इस तरह निश्चय और व्यवहार दोनोंकी साधना करनेवाले जैनधर्मको उन्होने केवल निश्चयसाधक बनानेका प्रयत्न किया था। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना एक नया ही मत प्रचलित किया था। परन्तु बनारसीदासजीके ग्रथोंसे इस बातका प्रमाण नहीं मिलता। यद्यपि अध्यात्म या निश्चयकी ओर उनका अधिक झुकाव माळूम होता है परन्तु व्यवहारको भी उन्होंने छोड़ न दिया था; उनके ग्रन्थोंमे बीसों स्थल ऐसे हैं जिनमें व्यवहारकी पुष्टि मिलती है। यथा:—

जो बिन ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो बिन क्रिया मोक्षपद चाहै।
जो बिन मोक्ष कहै मै सुखिया, सो अजान मूढ़नमें मुखिया॥

—नाटकसमयसार।

इसमें जो बिना क्रियाके मोक्ष चाहता है उसे मूर्ख बतलाकर क्या बनारसीदासजीने यह स्पष्ट सिद्ध नहीं कर दिया कि मै क्रिया या व्यव-

हारको आवश्यक समझता हूँ? नीचे लिखे पद्योंसे भी मालूम होता है कि वे व्यवहारके उच्छेदक नहीं थे:—

जाकी भगति प्रभावसौं, कीनौं ग्रन्थ निवाहि।
जिन प्रतिमा जिन सारिखी, नमैं बनारसि ताहि ॥७३॥

जौलौं ग्यानकौ उदोत तौलौं नहिं बंध होत,
बरतै मिथ्यात तब नानाबंध होहि है।
ऐसौ भेद सुनिकै लग्यौ तू विषय भोगनिसौं,
जोगनिसौं उद्दिमकी रीतितैं बिछोहि है॥

सुनि भैया संत तू कहै मैं समकितवंत,
यह तौ एकंत परमेसरकी दोहि है।
विषयसौं विमुख होहि अनुभवदसा अरोहि,
मोखसुख टोहि तोहि ऐसी मति सोहि है ॥९-१६

बंध बढ़ावैं अंध है, ते आलसी अजान।
मुकति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान॥

विवहार दिष्टिसौं विलोकति बंध्यौ सौ दीसै,
निहचै निहारत न बांध्यौ इन किन ही।
एक पच्छ बंध्यौ एक पच्छसौं अबंध सदा,
दोऊ पच्छ अपने अनादि धरे इन ही॥

कोऊ कहै समल विमलरूप कहै कोऊ,
चिदानंद तैसौई बखान्यौ जैसौ जिन ही।
बंध्यौ मानै खुल्यौ मानै दुहूं नैको भेद जानै,
सोई ग्यानवंत जीव तत्त्व पायौ तिन ही ॥४-२४

इसके सिवाय बनारसीविलास और नाटकसमयसार इन दोनों ही ग्रन्थोंमें जिनपूजा, प्रतिमापूजा, बाईस अभक्ष्य, ग्यारह प्रतिमा, तप, दान, नौधाभक्ति, आदिका सुन्दर वर्णन है और ये सब विषय व्यवहार-

मे ही गर्भित हैं। जो केवल निश्चयका पोषक है वह इन विषयोंका वर्णन नहीं कर सकता।

बनारसीदासजीने कोई नवीन मत चलाया था, उनके ग्रन्थोंसे इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। युक्तिप्रबोधके कर्त्ताको छोड़कर और कोई इस बातका कहनेवाला नहीं है। आगरेमें बनारसीदासजीके पीछे दिगम्बर-सम्प्रदायके अनेक ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं जिन्होंने उनका नाम बड़े आदरसे लिया है। यदि उनका कोई नवीन मत होता और उसकी परम्परा कँवरपाल आदिसे चली होती, तो यह कभी संभव न था कि दूसरे ग्रन्थकर्त्ता जो कि अपने सम्प्रदायके कट्टर श्रद्धालु थे, बनारसीदासजीकी प्रशंसा करते। बनारसीदासजीके ग्रन्थोंका प्रचार भी अधिकतासे न होता। उनका नाटकसमयसार तो ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है कि उसे जैनोंके तीनों सम्प्रदाय ही नहीं अजैन लोग भी पढ़कर अपना कल्याण करते हैं।

दूसरा आक्षेप यह है कि 'बनारसीदास न तो दिगम्बरी थे और न श्वेताम्बरी—उन्होने दोनोंका एक खिचड़ा बनाया था।' यह ठीक है कि बनारसीदास श्रीमाल वैश्य थे, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उनका जन्म हुआ था और खरतरगच्छीय यति भानुचन्द्र उनके गुरु थे; परन्तु पीछे दिगम्बर सम्प्रदायके ही अनुयायी हो गये थे ऐसा उनकी रचनासे स्पष्ट मालूम होता है। साधुवन्दना नामक कवितामे उन्होने मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुणोंका वर्णन किया है और उसमे मुनिके लिए वस्त्रोंका त्याग करना या दिगम्बर रहना आवश्यक बतलाया है। इसके सिवा उत्तम कुलके श्रावकके यहाँ भोजन करना उचित बतलाया है। ये दोनों बातें श्वेताम्बर सम्प्रदायसे विरुद्ध हैं—

लोकलाजविगलित भयहीन, विषयवासनारहित अदीन।
नगन दिगम्बर मुद्राधार, सो मुनिराज जगत सुखकार ॥२८

उत्तमकुल श्रावक संचार, तासु गेह प्रासुक आहार।
भुंजै दोष छियालिस टाल, सो मुनि वंदौं सुरत सँभाल॥ ११

एक जगह वस्त्रसहित प्रतिमाका निषेध करते हुए लिखा है:-

पटभूषन पहरे रहै प्रतिमा जो कोई।
सो गृहस्थ मायामयी, मुनिराज न होई॥ २
जाके तिय संगत नहीं, नहिं वसन न भूषन।
सो छवि है सरवग्यकी, निर्मल निर्दूषन॥ ३

—वनारसीविलास, पृष्ठ २३४

और भी, नाटकसमयसारमें अठारह दोषोंका वर्णन करते हुए केवलीको भूखप्यासरहित वतलाया है, मक्खनको अभक्ष्य वतलाया है और स्थविरकल्प जिनकल्पके वर्णनमें लिखा है-; 'थविरकलपी जिन-कलपी दुविध मुनि, दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहत है।" ये सब बातें श्वेताम्बर मानतासे विरुद्ध हैं।

किसी नये या मिश्रित मतके स्थापित करनेको वे बुरा समझते थे, ऐसे पुरुषको उन्होंने स्वय ही विपरीत मिथ्यादृष्टि कहा है:—

ग्रंथ उकत पथ उथपि जो, थापै कुमत सुकीय।
सुजस हेत गुरुता गहै, सो विपरीती जीय॥

—समयसार।

तीसरा आक्षेप यह है कि उन्होंने दिगम्बर पुराणोंकी मानता छोड दी थी। परन्तु युक्तिप्रबोधके लेखको छोडकर इसका भी कोई प्रमाण नहीं हैं। विरुद्ध इसके दो चार रचनाओसे यही सिद्ध होता है कि वे पुराणोको मानते थे। वनारसीविलासमें 'त्रेसठ शलाका पुरुषोकी नामावली,' 'नवसेना विधान,' वेदनिर्णय पंचासिका,' आदि कवितायें पुराणोंके अनुसार ही लिखी गई हैं। एक कवितामे जुगलियोंके धर्मका भी वर्णन किया गया है।

चौथा आक्षेप यह है कि 'उन्होंने हिन्दीमें नाटकसमयसार बनाया और उसमें मूल समयसारके अतिरिक्त बहुतसी बातें घुसेड़ दीं।' इससे युक्ति-प्रबोधके कर्त्ताका यदि यह आशय हो कि उन्होंने मूलसमयसारके अभिप्रायोंसे विरुद्ध बातें अपने भाषासमयसारमें मिला दीं, तो इसके लिए कोई प्रमाण नहीं। जिन लोगोंने इस ग्रन्थका और आत्मख्याति टीकाका स्वाध्याय किया है वे मुक्तकण्ठसे इस बातको स्वीकार करेंगे कि बनारसीदासजीको मूल ग्रंथकर्ताके और संस्कृतटीकाके भावोंकी रक्षा करनेमें और उनके अभिप्रायोंको स्पष्ट करनेमें भाषाटीकाओंके जितने रचयिता हुए हैं उन सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। और यदि नवीन बातें घुसेड़ देनेका यह मतलब हो कि उन्होंने मूलग्रन्थका शब्दशः अनुवाद नहीं किया है, बहुतसी बातें अपनी ओरसे कहीं हैं तो इसमें बनारसीदासजीकी निन्दा नहीं उलटी प्रशंसा है। सच्चा टीकाकार या भाषान्तरकार वही है जो मूल ग्रन्थके विचारोंको आत्मसात करके उन्हें अपने शब्दोंमें अपने ढंगसे एक निराले ही रूपमें प्रकाशित करे; न कि विभक्त्यर्थ या शब्दार्थ मात्र लिखकर छुट्टी पा ले। समयसारके अन्तिम भागमें मूल प्राकृत ग्रन्थसे दो तीन बातें अधिक हैं और उनका उल्लेख भाषामें स्पष्ट शब्दोंमें कर दिया गया है—एक तो अमृतचन्द्रसूरिने अपनी टीकामें जो स्याद्वादका स्वरूप और साधकसाध्यद्वार नामके दो अध्याय अधिक लिखे हैं और जिनकी मूलग्रन्थको समझनेके लिए बहुत ही आवश्यकता है, दूसरे गुणस्थानोंका स्वरूप। इसके लिए बनारसीदासजी कहते हैं:—

परम तत्त्व परचै इसमाहीं। गुनथानककी रचना नाहीं।
यामैं गुनथानक रस आवै, तो गिरंथ अति शोभा पावै॥

अर्थात् गुणस्थानोंका स्वरूप इस ग्रन्थके लिए शोभावर्द्धक होगा। समझकर उन्होंने इसका लिखना आवश्यक समझा। अतः

यह आक्षेप व्यर्थ है कि "समयसारमें बहुतसी नई बातें घुसेड दी गई हैं।"

इस तरह जितने आक्षेप बनारसीदासजी पर किये गये हैं, उन सबका निराकरण हो जाता है। अब प्रश्न यह है कि उपाध्याय मेघविजयजीने अपने ग्रन्थमें उनपर आक्षेप क्यों किये? क्या वे सर्वथा निर्मूल हैं?

नहीं, बनारसीदासजीकी एक समय ऐसी अवस्था अवश्य ही हो गई थी—वे व्यवहारको सर्वथा ही छोड़कर केवल अध्यात्मको पकड बैठे थे। इसका उल्लेख उन्होंने अपने अर्धकथानक नामक जीवनचरितमें स्वयं ही किया है। वि० स० १६८० के लगभग जब उन्होंने अर्थमल्लजी नामक अध्यात्मप्रेमी सज्जनके कहनेसे नाटक-समयसारका अध्ययन किया तब वे बाह्य क्रियाओंसे बिलकुल ही हाथ धो बैठे। उनके चन्द्रभान, थानमल और उदयकरन नामक मित्रोंकी भी यही दशा हुई। और तो क्या भगवानको चढ़ाया हुआ खानेमें भी इन्होंने कोई दोष न समझा। आपको ये मुनिराज भी बना लेते थे:—

"नगन होंहिं चारो जने, फिरहिं कोठरी माहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं।"

उनकी इस अवस्थाको देखकर,—

"कहहिं लोग श्रावक अरु जती, बानारसी खोसरामती!"

अपनी इस अवस्थाका उन्होंने इन शब्दोंमें परिहास किया है:—

"करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद।
भई बनारसीकी दसा, जथा ऊँटको पाद॥"

उनकी यह दशा वि० सं० १६८० से १६९२ तक रही। मालूम होता है कि उपाध्यायजीने इसी समय अपने ग्रन्थकी रचना की होगी

और जैसा कि वनारसीदासजीने स्वयं लिखा है कि उस समय श्रावक और यति लोग मुझे 'खोसरा-मती' कहते थे—उन्हें एक नवीन मतका प्रवर्तक लिख दिया होगा। परन्तु कविवरकी आगे यह दशा नहीं रहीं थी। वि० सं० १६९२ में पं० रूपचन्दजीका आगरेमें आगमन हुआ। उन्होंने इन्हे अध्यात्मके एकान्त रोगमें ग्रसित देखकर गोम्मटसाररूप औषधि देना प्रारंभ कर दिया। तव गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाका विधान सुनते ही वनारसीदासजीके हृदयके पट खुल गये। वे कहते है:—

तव वनारसी औरहि भयौ, स्यादवादपरणति परणयो।
सुनि सुनि रूपचंदके वैन, वानारसी भयो दिढ़जैन॥
हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन वीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊँच न नीच॥

इससे स्पष्ट है कि जिस अवस्थाका वर्णन उपाध्यायजीने किया है वह * संवत् १६८० से लेकर १६९२ तककी है—परन्तु आगे वनारसीदासजी दृढश्रद्धानी जैन वन गये थे।

इस वीचमें कविवरने वहुतसी पद्यरचना की थी। उसका संग्रह भी वनारसीविलासमें किया गया है। यद्यपि उक्त रचना उस समय की है जव वे केवल निश्चयावलम्वी थे तो भी उसमें कोई दोष नहीं है। जीवनचरितमें उसके विषयमें कहा है:—

सोलह सौ वानवै लौं, कियौ नियतरसपान[1]।
पै कवीसुरी[2] सव भई, स्यादवाद परमान॥

इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि वनारसीदासजीकी रचना सर्वथा निर्दोष और कल्याणकारिणी है; उससे जैनधर्मको या

* उपाध्यायजीने वनारसीदासजीके मतकी उत्पत्तिका समय भी यही १६८० बतलाया है। १ नियतरस–निश्चयनय। २ कविता।

जैनसमाजको किसी प्रकारकी हानि पहुँचनेकी सभावना नहीं। और नाटकसमयसारकी रचना तो उन्होने उक्त अवस्थासे उत्तीर्ण हो जानेके बाद सवत् १६९३ मे की है। इससे उसके विषयमें किसी प्रकारकी शका ही नहीं हो सकती।

युक्तिप्रबोधकी रचना किस समय हुई, यह हमें अभीतक माल्म नहीं है। यदि उपाध्याय मेघविजयजीने उसे सत्यकी भित्तिपर बनाया है तो वह संवत् १६९२ के पहले पहलेका बना हुआ होना चाहिए। परन्तु जैनशासनके कथनानुसार यदि उसमें बनारसीदासजीकी मृत्युका और कॅवरपालजीके द्वारा उनकी परम्परा चलनेका भी जिकर है तो कहना होगा कि या तो स्वयं उपाध्यायजीने किसी द्वेपके वश, उनके निर्दोप सत्यमार्गानुयायी हो जानेपर भी, उनपर दोपारोप किया है और यह सभव भी है क्योंकि बनारसीदासजी अन्तमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी हो गये थे और उपाध्यायजी स्वय श्वेताम्बर थे, या युक्तिप्रबोध बना तो होगा उसी १६८० से १६९२ तकके बीचमे, जब बनारसीदासजी एकान्तनिश्चयावलम्बी थे परन्तु पीछे अनावश्यक हो जाने पर भी उसको आवश्यक बनाये रखनेके खयालसे उन्होंने स्वय या उनके किसी शिष्यने उक्त परम्परा चलनेकी बात लिख दी होगी। इस बातका निर्णय युक्तिप्रबोधके देखनेसे हो सकता है। कुछ भी हो, पर बनारसीदासजीकी रचना और उनकी आत्मकहानी (जीवनचरित) इस बातको अच्छी तरह स्पष्ट कर देती है कि वे किसी नये मतके प्रवर्तक, निन्हव या पाखण्डी नहीं थे। आशा है कि जैनशासनके सम्पादक महाशय इस लेखपर विचार करेंगे और एक महात्मापर उन्होने जो आक्षेप किये है उनको दूर करनेकी उदारता दिखलावेगे।

विविध प्रसङ्ग।

१ इन्दौरका उत्सव।

इन्दौरका उत्सव आनन्दके साथ समाप्त हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इसके साथ ही 'जैनहाईस्कूल' के खोलनेका भी समारम्भ होता तो उत्सवका रंग कुछ और ही हो जाता, परन्तु स्कूल न खुल सका, इससे लोगोंका उत्साह कुछ मन्दसा रहा—तो भी उत्सव खासा हुआ और अच्छी सफलताके साथ हुआ। उपदेश और व्याख्यानोंकी, शास्त्रचर्चा और उन्नतिचर्चाकी, सभाओं और प्रस्तावोंकी कई दिन तक अच्छी चहल पहल रही। मालवा प्रान्तिक सभाकी ता० २ और ३ अप्रैलको दो बैठकें हुई। उनमें दो बातें महत्त्वकी हुई—एक तो सभापति सेठ हीराचन्द नेमीचन्दका विचारपूर्ण व्याख्यान और दूसरी, सभाके स्थायी फण्डके लिए लगभग सात हजार रुपयोंका चन्दा। एक दिन मोरेनाकी जैनसिद्धान्तपाठशालाके स्थायी फण्ड खोलनेका विचार किया गया। एक लाख रुपयेकी आवश्यकता समझी गई। स्थायी फण्डके लिए एक ट्रस्टकमेटी चुनी गई और चन्दा एकत्र करनेके लिए एक 'डेप्युटेशन पार्टी' वनाई गई। दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने डेप्युटेशनके साथ घूमनेकी वड़ी प्रसन्नतासे स्वीकारता दी और जब सभाके सम्मुख चन्देकी अपील की गई तब आपने पाठशालाको बडे ही उत्साहसे १०००० रुपया देकर उसके स्थायी फण्डकी नीव डाल दी। लगभग डेड हजार रुपयेके और भी चन्दा हुआ। गरज यह कि अब सिद्धान्तपाठशालाके स्थायी होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा। डेप्युटेशन पार्टीका दौरा वहुत जल्दी शुरू होगा। इस उत्सवमें दो कार्य और भी बडे महत्त्वके हुए —एक तो रायवहादुर सेठ कल्याणमजीने इन्दौरमें एक कन्यापाठशाला खोलनेके लिए २५००० रु० देना स्वीकार किया और ता० ६ अप्रैलको उसका प्रारभिक मुहुर्त भी कर दिया और दूसरा इन्दौरमें एक 'उदासीनाश्रम' खोलनेका निश्चय किया गया। इसके लिए दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने १०००० रु० (आश्रमकी इमारतके लिए) रायवहादुर सेठ कल्याणमलजीने १०००० रु० और अण्यान्य धर्मात्माओंने लगभग ५००० रु० का और भी चन्दा देना स्वीकार किया। इस ...इस उत्सवमें सव मिला कर लगभग ७० हजार रुपयोंका दान हुआ। इसमें ...ह नहीं कि इस समय इन्दौरकी धनिक्मण्डलीकी उदारताका स्रोत खूव ही

वेगसे वह रहा है। भगवानसे प्रार्थना है कि यह वेग वहुत समय तक जारी रहे और इससे सारा जैनसमाज हराभरा सुस्निग्ध सफल होता रहे।

२ इन्दौरकी उल्लेख योग्य घटनायें।

इन्दौरके इस उत्सवमें कुछ घटनायें ऐसी हुई हैं जिनका उल्लेख करना हम वहुत ही आवश्यक समझते हैं और उनसे हम वहुत कुछ लाभ उठानेकी आशा रखते हैं। ता० १ अप्रैलकी रातको श्रीयुक्त शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीका एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। उसमें आपने जैनधर्म और जैनसमाजकी उन्नतिके उपाय वतलाते हुए कहा कि " वर्तमान जैनसमाज अनेक जातियोंसे वना हुआ है और उनमें प्राय ऐसी ही जातियाँ अधिक हैं जिनकी जनसख्या वहुत ही थोडी है। इन सव जातियोंमें परस्पर विवाहसम्वन्ध नहीं होता है और इससे वडी भारी हानि यह हो रही है कि हमारी सख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। प्राचीन समयमें इस प्रकारका वन्धन नहीं था। हमारे ग्रन्थोंमें अनेक जातियोंके परस्पर विवाह होनेके वहुतसे प्रमाण मिलते हैं। इस लिए यदि अव भी हमारी जातियोंमें परस्पर विवाह होने लगे तो कुछ हानि नहीं है।" यह प्रस्ताव ब्रह्मचारीजीने वहुत ही नम्रतासे पेश किया था और प्रारभमें यह भी कह दिया था कि प्रत्येक मनुष्यको अपने विचार प्रगट करनेका अधिकार है, इस लिए मैं अपने विचार आप लोगों पर प्रकट कर देना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि इसे मान ही लेवें, मानने न माननेके लिए आप स्वतन्त्र है, पर इस प्रस्ताव पर आप विचार अवश्य ही करें। इसके वाद प० दरयावसिंहजी सोधियाने उक्त प्रस्तावका शान्तिके साथ विरोध किया और वतलाया कि इसकी आवश्यकता नहीं है। इस तरह यह विषय यहाँ ही समाप्त हो चुका था। परन्तु कुछ महाशय इससे वहुत ही क्षुब्ध हुए और सभाविसर्जित हो जानेपर सभास्थानमें ही उन्होंने गालागालि शुरू करके एक तरहका हुल्लड मचा दिया। इसके वाद दूसरे दिन एक महात्माने सभामें खडे होकर ब्रह्मचारीजीके कथनका लोगोंको मनमाना ऊँटपटॉग अर्थ समझाकर उनकी शानके खिलाफ वहुतसी वातें कहीं। चाहिए यह था कि इसपर ब्रह्मचारीजीको भी वोलनेका मौका दिया जाता, परन्तु वे कहते कहते रोक दिये गये और इस तरह न केवल उनके विचारोंके गले पर छुरी चलाई गई, किन्तु उनका अपमान भी किया गया। इसी तरहकी एक घटना और भी ता० ३ की रातको हुई। कुँवर दि-

ग्विजयसिंहजीका व्याख्यान हो रहा था। उन्होंने कहा कि जैनियोंकी जनसंख्या घट रही है। और यह नियम है कि जब किसी चीजका खर्च तो जारी रहता है पर आमदनीकी कोई सूरत नहीं होती तब उसका एक न एक दिन शेष हो ही जाता है। इस लिए हमें चाहिए कि अजैनोंको जैन बनाकर अपनी संख्याको क्षीण होनेसे रोकें। बस, इतना सुनते ही बहुतसे लोग भडक उठे और हुल्लड मचानेके लिए खडे हो गये। यह देखकर सेठ हुकुमचन्दजी खडे होगये और उन्होंने बहुत कुछ समझा बुझाकर बड़ी मुश्किलसे उन्हें शात किया। सेठजीने कहा कि "इसमें भडकनेकी कोई बात नहीं है। प्रत्येक जातिका मनुष्य जैनधर्म धारण कर सकता है। यह आपका सामाजिक या जातीय प्रश्न नहीं है—ये यह नहीं कहते कि जो लोग जैनधर्म धारण करलें उनके साथ तुम रोटी बेटी व्यवहार भी जारी कर दो। फिर इतनी उछल कूद मचानेकी क्या आवश्यकता है। इत्यादि।" इन दो घटनाओंसे हमारे शिक्षित भाइयोंको जानना चाहिए कि हमारे समाजमें विचारसहिष्णुताकी कितनी कमी है और जब तक लोगोंमें इतना भी धैर्य नहीं है—वे दूसरोंकी बातोंको सुन भी नहीं सकते हैं तबतक समाजमें किसीभी सुधारको आश्रय मिलनेकी आशा कैसे की जा सकती है? इस विषयमें मालवा आदि प्रान्त तो बहुत ही बढे चढे हैं—उनकी रूढ़ियों या संस्कारोंके विरुद्ध एक शब्द भी यदि कोई कह दे तो उनके मिजाजकी गर्मीका पारा १०५ डिग्रीपर जा पहुँचे। इसका कारण उनकी घोर अज्ञानता है। जब उनके कानोंतक कभी ऐसे शब्द गये ही नहीं, अपनी संकीर्ण परिधिके बाहर भी कुछ है यह जब उन्हें मालूम ही नहीं, तब ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस लिए सबसे पहले हमारा यह कर्तव्य होना चाहिए कि सर्व साधारणमें विचारसहिष्णुता उत्पन्न करें। इसके लिए कुछ नये विचारोंके परन्तु शान्त दूरदर्शी और सदाचारी उपदेशक नियत किये जावें और वे जगह जगह घूमकर विचारसहिष्णुताके सिद्धान्त समझावें, नये विचारोंको उत्तमताके साथ लोगोंके कानोंतक पहुँचावें, देश और समाजकी वर्तमान परिस्थितियोंका ज्ञान करावें। सुधारसम्बन्धी कुछ ट्रेक्ट छपाकर जगह जगह वितरण किये जावें और समाचारपत्रोंमें सुधारसम्बन्धी लेख खूब स्वाधीनताके साथ लिखे जावें। यदि वर्तमान समाचारपत्रोंसे काम न चले—वे यदि अपनी दब्बू दुरंगी और गिरी हुई पालिसीको छोडना पसन्द न करें। एक दो बिलकुल स्वाधीन और शानदार पत्र निकालनेका प्रयत्न किया जाय।

यह हमें याद रखना चाहिए कि जवतक हमारा नये उत्थानका संदेशा लोगोंके कानोंतक इस जोरसे न पहुँचेगा कि उनकी झिल्लियाँ फटने लगें और वे सुनते सुनते ऊव जावें, तवतक उनमें विचारसहिष्णुता नहीं आ सकती—उन्हें सुननेका अभ्यास नहीं हो सकता और तव तक कोई भी नये सुधारके होनेकी आशा नहीं की जा सकती। इस खयालसे कि जव ये समझने लगेंगे तव हम कुछ सुनावेंगे हमें सैकडों वर्ष तक भी सुनानेका अवसर नहीं मिलेगा। सफलता की कुंजी यही है कि हम उद्योग करते रहें—कर्तव्य करते रहें और विघ्नबाधाओंकी और भ्रूक्षेप भी न करें।

३ जैन हाईस्कूल क्यों न खुला?

पाठकोंको मालूम है कि जयपुरनिवासी प० अर्जुनलालजी सेठी बी ए. को हाईस्कूलकी प्रवन्धकारिणी कमेटीने इस लिए चुनकर इन्दौर वुला लिया था कि वे जैन हाईस्कूलके प्रिंसिपाल वनकर कार्य करें। सेठीजी लगभग १० वर्षसे शिक्षाप्रचार सम्वन्धी कार्य कर रहे हैं। शिक्षापद्धति और शिक्षासंस्थाओंके विषयमें उन्होंने वहुत उच्च श्रेणीका ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया है। इस विषयमें वे जैन समाजमें अद्वितीय हैं। धार्मिक ज्ञान भी उनका वहुत वढा चढा है। इन वातोंपर ध्यान देनेसे कहना पडता है कि प्रवन्धकारिणी कमेटीने उनके चुननेमें वहुत वडी योग्यताका परिचय दिया था और सेठीजीके द्वारा उसका हाईस्कूल भारतवर्षका एक आदर्श हाईस्कूल वन जाता, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। परन्तु 'यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति' जो कभी सोचा भी नहीं था वह हो गया, हमारे दुर्भाग्यसे सेठीजीपर एक भयंकर विपत्ति आकर टूट पडी जिससे उत्सवके समय हाईस्कूल खुल न सका और यदि हमारा अनुमान सत्य हो तो जैन हाईस्कूल सदाके लिए एक उत्साही स्वार्थत्यागी संचालकसे वंचित हो गया। जहाँ तक हम जानते हैं सेठीजी आज तक कभी किसी राजनैतिक आन्दोलनमें शामिल नहीं हुए है। वे शान्तिप्रिय और राजभक्त जैनजातिके केवल एक धार्मिक और सामाजिक शिक्षक थे। उन्होंने शिक्षाप्रचारका जो वडा भारी भार उठा रक्खा था उसको छोडकर और किसी काममें हाथ डालनेके लिए उनके पास समय भी न था। परन्तु आज कल देशकी दशा ही कुछ ऐसी हो रही है कि राजनैतिक मामलोंसे दूर रहनेवाले लोग भी सुखकी नींद नहीं सोने पाते। यह सुनकर सारा जैनसमाज दहल उठा कि ता० ८ मार्चको सेठीजी और उनके शिष्य कृष्णलालजीको पुलिस गिरिफ्तार कर ले गई। वीचमें जव यह सुना कि

सेठीजी और उनके शिष्य देहलीसे वापिस लाकर छोड दिये गये है तब बहुत कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु थोडे ही दिन बाद ता० २३ को जब वे फिर गिरिफ्तार कर लिए गये और साथ ही शिवनारायण द्विवेदी, मोतीचन्द शाह आदि उनके तीन चार विद्यार्थी भी गिरिफ्तार किये गये, तब हम लागोंके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा। अब तक सब लोग हवालातमें ही हैं परन्तु स्पष्टतः यह किसी पर भी प्रकट नहीं है कि ये सब क्यों गिरिफ्तार किये गये हैं। केवल यही सुना जाता है कि देहलीके राजद्रोहसम्बधी मामलेमें सन्देहके कारण ये सब पकडे गये हैं। जब तक यह मामला अदालतमें न आ जावे और कुछ खुलासा मालूम न हो तब तक इस विषयमें हमें कुछ लिखनेका अधिकार नहीं। परन्तु यह हम अवश्य कहेंगे कि सरकारको बहुत सोच समझकर ये मामले चलाने चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ ही निरुपद्रवी और शान्तिप्रिय लोग सताये जावें और इसका लोगोंके चित्तपर कुछ और ही परिणाम हो। हमें विश्वास है कि जैनप्रजा 'जिसे, वास्तवमें राजद्रोह कहते हैं उससे कोसों दूर है।

४ रोगनिवारिणी रमणी।

पेरिस (फ्रान्स)के पत्रोंमें वहाँकी 'मेडम ललोज' नामकी एक स्त्रीके सम्बन्धामें वडी ही आश्चर्यजनक बातें प्रकाशित हुई है। बचपनमें ज्योंही वह किसी झाडपर अपना हाथ रखली थी त्योंही उसके पत्ते और फूल खिल उठते थे। इस समय वह चाहे जिस रोगीको हाथसे स्पर्श करके या केवल दृष्टिपात करके नीरोग कर सकती है। इस तरह रोग दूर करते समय उसके हाथमेंसे एक प्रकारका प्रवाह निकलता है। यह प्रवाह यदि फोटो लेनेके काच पर डाला जाता है तो उसपर सुनहरी या गुलाबी निशान हो जाते हैं। जब वह दूसरोंका दर्द दूर कर चुकती है तब उसे थोडी देरके लिए दर्द होने लगता है जो कि आपही आप आराम हो जाता है। सैकडों मीलकी दूरी पर रहनेवाले रोगीको भी वह अपने घर बैठे आराम पहुँचा सकती है। वह न तो विज्ञापन प्रकाशित कराती है और न मान तथा धनकी वह इच्छा रखती है। वह बहुत ही धर्मपरायणा है। यह एक आत्माकी अद्भुत शक्तियोंका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

भ्रमसंशोधन।

जैनहितैषीके पिछले अकके 'ग्रन्थपरीक्षा' नामक लेखका प्रूफ सावधानीसे नहीं देखा गया, इस लिए उसमें बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। श्लोकोंके नम्बरों और शब्दोंमें बहुत प्रमाद हुआ है। इसका हमें खेद है। आशा है कि पाठक इसके लिए हमें क्षमा करेंगे और लेखको विचारपूर्वक पढनेकी कृपा करेंगे।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

!०वाँ भाग] माघ,फा०श्री०वी०नि०सं०२४४०।[४,५ वाँ अं.

बुकर टी० वाशिंगटन।

आफ्रिकाके मूलनिवासियोंकी नीग्रो (हबशी) नामक एक जाति ।। सत्रहवीं सदीमें इस जातिके लोगोंको गुलाम बनाकर अमेरिकामे चिनेका क्रम आरंभ हुआ। यह क्रम लगभग दो सदियोंतक जारी रहा। तने समय तक दासत्वमें रहनेके कारण उन लोगोंकी कैसी अवनति ई होगी, उन्हें कैसा भयकर कष्ट सहन करना पड़ा होगा और उनी स्थिति कैसी निकृष्ट हुई होगी, सो सभी अनुमान कर सकते है। न लोगोंके साथ पशुओंसे भी बढ़कर बुरा वर्ताव किया जाता था। बुरी तरहसे मारे पीटे जाते थे, कुटुम्बियोंसे जुदा कर दिये जाते ।, और एक साधारण चीजके समान चाहे जिसके हाथ बेच दिये गते थे। यह अत्याचार सन् १८६२ तक जारी रहा। आखिर हात्मा लिंकनकी अनुकम्पा और आन्दोलनसे १८६३ के प्रारंभमें ीग्रो जातिके तीस चालीस लाख आदमियोंको स्वाधीनता मिल गई; ोरोंके समान ये काले लोग भी मनुष्य समझे जाने लगे।

बुकर टी० वाशिंगटनका जन्म सन् १८५२--५८ में इसी नीग्रो जातिके एक अत्यन्त गरीब दासकुलमें हुआ। जिस समय अमेरिकाके सब दास मुक्त किये गये उस समय उसकी अवस्था तीन चार वर्षकी थी। स्वतंत्र होनेपर उसके मातापिता अपने बच्चेको लेकर कुछ दूर माल्डन नामक गॉवको, नमककी खानमें मजदूरी करनेके लिए, चले गये। वहॉ बुकरको भी दिनभर खानके भीतर नमककी भट्टीमें काम करना पड़ता था। यद्यपि बालक बुकरके मनमें लिखना पढ़ना सीखनेकी बहुत इच्छा थी, तथापि उसके पिताका ध्यान केवल कुटम्बके निर्वाहके लिए पैसा कमानेहीकी ओर था। ऐसी अवस्थामें शिक्षाप्राप्तिकी अनुकूलता नहीं हो सकती। इतनेमें उस गॉवके समीपही नीग्रो जातिकी शिक्षाके लिए एक छोटीसी पाठशाला खोली गई। इस पाठशालामें वह रातको जाकर पढ़ने लगा। मजदूरीके कष्टप्रद जीवनमें भी वह अपनी ज्ञान बढ़ानेकी इच्छाको चरितार्थ करने लगा। सन् १८७२ में, वह हैम्पटन नगरके नार्मल स्कूलमें पढ़नेके लिए गया। बिना पैसेके अत्यन्त कष्ट सहन करके मजदूरी करते हुए उसने हैम्पटनकी ५०० मीलकी लम्बी सफ़र तै की। स्कूलके अध्यक्ष बड़े ही परोपकारी थे। उनकी कृपासे बुकर चार वर्षमें ग्रेजुएट होगया। इस स्कूलमें वाशिंगटनने जिन बातोंकी शिक्षा पाई उनका सारांश यह है:—

१ "पुस्तकोंके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षासे वह शिक्षा अधिक उपयोगी और मूल्यवान् है जो सत्पुरुषोंके समागमसे मिलती है।"

२—"शिक्षाका अन्तिम हेतु परोपकार ही है। मनुष्यकी उन्नति केवल मानसिक शिक्षासे नहीं होती। शारीरिक श्रमकी भी बहुत

आवश्यकता है। श्रमसे न डरनेसे ही आत्मविश्वास और स्वाधीनता प्राप्त होती है । जो लोग दूसरोंकी उन्नतिके लिए यत्न करते हैं जो लोग दूसरोंकी सुखी करनेमें अपना समय व्यतीत करते हैं-वे ही सुखी और भाग्यवान् हैं। "

२—" शिक्षाकी सफलताके लिए ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण और कर्मेंद्रियकी एकता होनी चाहिए । जिस शिक्षासे श्रमके विषयमें घृणा उत्पन्न होती है उससे कोई लाभ नहीं होता। "

वुकर स्कूलमें पढ़ने और वोरडिंगमें रहनेका खर्च न सकता था, इस लिए वह स्कूलमें द्वारपालकी नोकरी करके और छुट्टीके दिनोंमें शहरमें मजदूरी या नौकरी करके द्रव्यार्जन करता था। इस प्रकार स्वयं परिश्रम करके अपने आत्मविश्वासके वलपर उसने हेम्पटन स्कूलका क्रम पूरा किया। उसका नाम पदवीदानके समय माननीय विद्यार्थियोंमें दर्ज किया गया।

ग्रेजुएट होनेके वाद वाशिंगटन अपने घर लौट आया और वहाँ एक नीग्रो-स्कूलमें शिक्षकका काम करने लगा। कोई दोवर्ष तक यह काम करके वह शिक्षाविपयक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वाशिंगटन शहरमें आठ महिने रहा। वहाँ उसने नीग्रो लोगोंकी सामाजिक दशाके सम्वन्धमें वहुतसा ज्ञान प्राप्त किया। इसके वाद उसने हेम्पटन स्कूलमें दो वर्षतक शिक्षकका काम किया और एक सुप्रसिद्ध शिक्षक हो गया।

सन् १८८१ में, अलावामा रियासतके टस्केजी 'नामक ग्रामके निवासियोंने एक आदर्शस्कूल खोलना चाहा और इसके लिए उन्होंने मि० वाशिंगटनको अपने यहाँ वुला लिया। वहाँ पहुंचकर वाशिंगटनने दो महिने तक उस प्रदेशके निवासियोंकी सामाजिक और आर्थिक

दशाकी अच्छी तरह जॉच की और इसके वाद उसने एक टूटीसी झोपड़ीमें पाठशाला खोल दी। इस पाठशालामें वाशिंगटन ही अकेले शिक्षक थे। लड़के और लड़कियॉ मिलकर सव ३० छात्र थे। वे सव व्याकरणके नियम और गणितके सिद्धान्त मुखाग्र जानते थे परन्तु उनका उपयोग करना न जानते थे। वे शारिरीकश्रम या मिहनत करनेको नीच काम समझते थे। ऐसी अवस्थामे, पहले पहल वाशिंगटनको अपने नूतन तत्त्वोंके अनुसार शिक्षा देनेमे वहूत कठिनाइयॉ हुई। उसने निश्चय किया कि इस प्रान्तके निवासियोंको कृषिसम्वन्धिनी शिक्षा दी जानी चाहिए और एक या दो ऐसे भी व्यवसायोंकी शिक्षा दी जानी चाहिए जिसके द्वारा लोग अपना उदरनिर्वाह अच्छी तरह कर सके। उन्होंने ऐसी शिक्षा देनेका सकल्प किया जिससे विद्यार्थियोके हृदयमें शारीरिक श्रम, व्यवसाय, मितव्यय और सुव्यवस्थाके विपयमें प्रेम उत्पन्न हो जाय; उनकी बुद्धि, नीति और धर्ममें सुधार हो जाय; और जव वे पाठशालासे निकलें तव अपने देशमे स्वतन्त्र रीतिसे उद्यम करके सुखप्राप्ति कर सकें तथा उत्तम नागरिक वन सकें। परन्तु ऐसी शिक्षा देनेके लिए वाशिंगटनके पास एक भी साधनकी अनुकूलता न थी। इतनेमे उन्हें मालूम हुआ कि टस्केजी गॉवके पास एक खेत विकाऊ है। इसपर हैम्पटनके कोषाध्यक्षसे ७५० रुपया कर्ज लेकर उन्होंने वह जमीन मोल ले ली। उस खेतमें दो तीन पुरानी झोपड़ियॉ थीं। उन्हींमें वे अपने विद्यार्थियोंको पढ़ाने लगे। पहले पहल विद्यार्थी किसी प्रकारका शारीरिक काम न करना चाहते थे; परन्तु जव उन्होंने अपने हितचिन्तक शिक्षक वाशिगटनको हाथमे कुदाली फावडा लेकर काम करते देखा तव वे वड़े उत्साहसे काम करने लगे।

जमीन मोल लेनेके वाद इमारत वनानेके लिए धनकी आवश्यकता हुई। तव वे गॉव गॉवमे भ्रमण करके द्रव्य एकट्ठा करने लगे। इस

काममें उन्होंने बडे बडे कष्ट उठाये; परन्तु अन्तमें उनका प्रयत्न सफल हुए विना न रहा। धन एकट्ठा करनेके विषयमें वाशिंगटनके नीचे लिखे अनुभवसिद्ध नियम बड़े कामके हैं—

१. तुम अपने कार्यके विषयमें अनेक व्यक्तियो और संस्थाओंको अपना सारा हाल सुनाओ। यह हाल सुनानेमें तुम अपना गौरव समझो। तुम्हें जो कुछ कहना हो संक्षेपमें और साफ़ साफ़ कहो।

२. परिणाम या फलके विषयमें निश्चिन्त रहो।

३. इस बातपर विश्वास रक्खो कि सस्थाका अन्तरंग जितना ही स्वच्छ, पवित्र और उपयोगी होगा उतना ही अधिक उसको लोकाश्रय भी मिलेगा।

४. धनी और गरीब दोनोंसे सहायता माँगो। सच्ची सहानुभूति प्रकट करनेवाले सैकड़ों दाताओंके छोटे छोटे दानोंपर ही परोपकारके बडे बड़े काम होते हैं।

५. चन्दा एकट्ठा करते समय दाताओंकी सहानुभूति, सहायता और उपदेश प्राप्त करनेका यत्न करो।

आत्मावलम्बन और परिश्रमसे धीरे धीरे टस्केजी सस्थाकी उन्नति होने लगी। सन् १८८१ में इस सस्थाकी थोडीसी जमीन, तीन इमारतें, एक शिक्षक और तीस विद्यार्थी थे। अब वहाँ १०६ इमारते २,३९० एकड़ जमीन, और १५०० जानवर है। कृषिके उपयोगी यत्रों और अन्य सामानकी कीमत ३८,८५, ६३९ रुपया है। वार्षिक आमदनी ९,००,००० रुपया है और कोषमे ६,४९००० रुपया जमा हैं। यह रकम घर घर भिक्षा माँगकर एकट्ठा की जाती है। इस समय सस्थाकी कुल जायदाद एक करोडसे अधिककी है जिसका प्रबन्ध पंचोंद्वारा किया जाता है। शिक्षकोंकी संख्या १८० और वि-

द्यार्थियोंकी १६४९ है। १००० एकड जमीनमें विद्यार्थियोंके श्रमसे खेती होती है। मानसिक शिक्षाके साथ साथ भिन्न भिन्न चालीस व्यवसायोकी शिक्षा दी जाती है। इस संस्थामे शिक्षा पाकर लगभग ३००० आदमी दक्षिण अमेरिकाके भिन्न भिन्न स्थानोंमें स्वतन्त्र रीतिसे काम कर रहे हैं। ये लोग स्वयं अपने प्रयत्न और उदाहरणसे अपनी जातिके हज़ारों लोगोंको आधिभौतिक और आध्यात्मिक, धर्म और नीतिविषयक शिक्षा दे रहे हैं।

वाशिंगटनको टस्केजी संस्थाका जीव या प्राण समझना चाहिए। आपहींके कारण इस संस्थाने इतनी सफलता प्राप्त की है। आप पाठशालामें शिक्षकका काम भी करते हैं और सस्थाकी उन्नतिके लिए गॉव गॉव, शहर शहर, भ्रमण करके धन भी एकट्ठा करते है। उन्हें अपनी स्त्रीसे भी बहुत सहायता मिलती है। वे यह जाननेके लिए सदा उत्सुक रहते है कि अपनी संस्थाके विषयमे कौन क्या कहता है। इससे संस्थाके दोष मालूम हो जाते हैं और सुधार करनेका मौका मिलता है। आपका अपनी सफलताका रहस्य इस प्रकार बतलाते हैं:—

१. ईश्वरके राज्यमें किसी व्यक्ति या जातिकी सफलताकी एक ही कसौटी है। वह यह कि प्रत्येक प्रयत्न सत्कार्य करनेकी प्रेरणासे प्रेरित होकर करना चाहिए।

२. जिस स्थानमे हम रहे उस स्थानके निवासियोंकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति करनेका यत्न करना ही सबसे बड़ी बात है।

३. सत्कार्यप्रेरणाके अनुसार प्रयत्न करते समय किसी व्यक्ति, समाज या जातिकी निन्दा, द्वेष और मत्सर न करना चाहिए। जो काम

भ्रातृभाव, बन्धुप्रेम और आत्मीयतासे किया जाता है, वही सफल और सर्वोपयोगी होता है।

४. किसी कार्यका यत्न करनेमें आत्मविश्वास और स्वाधीनभावको न भूल जाना चाहिए। यदि एक या दो प्रयत्न निष्फल हो जायँ तो भी हताश न होना चाहिए। अपनी भूलोंकी ओर ध्यान देकर विचार-पूर्वक वार वार यत्न करते रहना चाहिए।

वाशिंगटनका यह विश्वास है कि योग्यता अथवा श्रेष्ठता किसी भी वर्ण, रंग और जातिके मनुष्यमें हो, वह छिप नहीं सकती। गुणोंकी परीक्षा और चाह हुए विना नहीं रहती। अमेरिका निवासि-योंने बुकर टी० वाशिंगटन जैसे सद्गुणी और परोपकारी कार्यकर्ताका उचित आदर करनेमें कोई वात उठा नहीं रक्खी। हारवार्ड—विश्ववि-द्यालयने आपको 'मास्टर आफ आर्ट्स' की सन्मानसूचक पदवी दी है। अमेरिकाके प्रेसीडेंटने आपकी संस्थामें पधारकर कहा था—" यह संस्था अनुकरणीय है। इसकी कीर्ति यहीं नहीं, किन्तु विदेशोंमें भी बढ रही है। इस संस्थाके विषयमें कुछ कहते समय मि० वाशिंगटनके उद्योग, साहस, प्रयत्न और बुद्धिसामर्थ्यके सम्बन्धमें कुछ कहे बिना रहा नहीं जाता। आप उत्तम अध्यापक हैं, उत्तम वक्ता हैं और सच्चे परोपकारी हैं। इन्हीं सद्गुणोंके कारण हम लोग आपका सम्मान करते हैं।"

सोचनेकी वात है कि जिस आदमीका जन्म दासत्वमें हुआ, जिसको अपने पिता या और पूर्वजोंका कुछ भी हाल मालूम नहीं, जिसको अपनी वाल्यावस्थामें स्वयं मजदूरी करके पेट भरना पड़ा, वही इस समय अपने आत्मविश्वास और आत्मबलके आधारपर कितने ऊँचे पद पर पहुँच गया है। वाशिंगटनका जीवनचरित पढकर कहना

पड़ता है कि "नर जो पै करनी करे तो नारायण ह्वै जाय।" प्रतिकूल दशामें भी मनुष्य अपनी जाति, समाज और देशकी कैसी और कितनी सेवा कर सकता है, यह बात इस चरितसे सीखने योग्य है। यद्यपि हमारे देशमें अमेरिकाके समान दासत्व नहीं है तथापि, वर्तमान समयमे, अस्पृश्य जातिके पाँच करोड़से अधिक मनुष्य सामाजिक दासत्वका कठिन दुःख भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ, वाशिंगटनके समान, इन लोगोंका उद्धार करनेके लिए कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या इस देशकी शिक्षापद्धतिमें शारीरिक श्रमकी ओर ध्यान देकर कभी सुधार किया जायगा? जिन लोगोने शिक्षाद्वारा अपने समाजकी सेवा करनेका निश्चय किया है क्या वे लोग उन तत्त्वोंपर उचित ध्यान देंगे जिनके आधारपर टस्केजीकी संस्था काम कर रही है?*

कन्या-निर्वाचन।

शायद ही कोई अभागा ऐसा हो, जिसे अपने जीवनमे कमसे कम एक वार किसी न किसीकी कन्याको देखनेके लिए न जाना पड़े। किन्तु वह क्या देखता है? कन्याका रंग गोरा है या काला, आँखे छोटी हैं या वड़ीं, नाक ऊँची है या वैठी इत्यादि। अधिक हुआ तो कोई यह भी पूछ लेता है कि कन्या पढ़ना लिखना जानती है या नहीं? इसके उत्तरमें कन्याका पिता और कुछ नहीं तो यह अवश्य कह देता है कि लड़की घरका काम काज करना सीखी है। इसके वाद ही कन्या पसन्द हो जाने पर विवाहकी तैयारिया होने लगती है।

---

* फरवरीकी 'सरस्वती' के लेखका सार।

किन्तु वास्तवमें ही क्या कन्याका निर्वाचन करना इतना सहज है? हमे जानना चाहिए कि हिन्दूविवाहमे न तो छोडछुट्टी या स्तीफेका रिवाज है और न कोर्टशिप है, इसी लिए पात्रीनिर्वाचन करते समय बहुत कुछ सोच विचार करनेकी जरूरत है। पहले देखना चाहिए कन्याका चरित्र, इसके बाद उसकी बुद्धि और अन्तमे उसका रूप। अब प्रश्न यह है कि एक छोटीसी अपरिचित बालिकाके चरित्र और बुद्धिका निर्णय कैसा किया जा सकता है? उत्तर यह है कि मनुष्यके चरित्रका और बुद्धिका निदर्शन उसके मुखकी आकृतिमें मौजूद रहता है। हमें चाहिए कि मुखकी आकृति देखकर लोगोंके स्वभावका निर्णय करना सीखे। किसीके उज्ज्वल नेत्रोमे बुद्धिकी ज्योति दिखलाई देती है, किसीके नेत्रोंसे उसके स्नेहालु हृदयका पता लगता है, किसीकी चितवन और अधर देखते ही दुश्चरित्रताका सन्देह होता है और किसीकी उन्नत भौहें, चौडा ललाट, तथा अधरोष्ठोंकी गठन देखते ही उसकी चिन्ताशीलता और दृढ प्रतिज्ञाका परिचय मिलता है। जो अपनी तीक्ष्ण बुद्धिकी सहायतासे मुख देखकर अन्तःकरणकी परीक्षा करनेमें सिद्धहस्त है, उन्हें ही कन्याको देखनेके लिए भेजना चाहिए—उन्हींसे कन्यानिर्वाचनका उद्देश्य सिद्ध हो सकता है।

एक उपाय और भी है, वह यह कि अपने सगे सम्बन्धियो या रिश्तेदारोंसे कन्याके सम्बन्धमें पूछताछ करना। यह जरूर है कि इस तरहकी पूछताछ करनेसे जो बातें मालूम होती है उनके झूठ और सच होनेका निर्णय सावधानीसे करना पडेगा। क्योंकि ऐसे बहुत लोग होते हैं जो निःस्वार्थ और निरपेक्ष भावसे ऐसी बातें नहीं बतलाते। परन्तु कन्याके पक्षी और विपक्षी दोनोंकी बाते मालूम करके बहुत कुछ निर्णय किया जा सकता है। एक बात और है,—अपरि-

चिता कन्याकी अपेक्षा परीचिता कन्याका चुनाव करना बहुत सहज है। इस लिए पाठको, तुम्हे चाहिए कि अपने दरिद्र पड़ोसीकी जिस हँस-मुख कन्याको तुम सुशीला और बुद्धिमती जानते हो, अन्यत्रकी अपरिचिता रूपवती और धनी कन्याका त्याग करके भी उसके साथ विवाह कर लो। ऐसा करनेसे तुम्हारा गृहस्थजीवन बहुत कुछ सुखमय हो जायगा।

तीसरा उपाय यह है कि कन्याके पिता, भाई, मामा आदिका स्वभाव जानकर उसके स्वभावका पता लगाना। कन्यामे बहुतसे गुण तो ऐसे होते है जो उसकी वंशपरम्परोंसे चले आये हैं और बहुतसे ऐसे होते हैं जो उसके पालनपोषण करनेवाले लोगोंके सहवास या प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण उसके कुटुम्बियोंका परिचय पाकर स्वयं उसका भी बहुत कुछ परिचय पाया जा सकता है। जिस घरके लोग मूर्ख और दुराचारी हैं उसे छोड़कर जिस घरके लोग सच्चरित्र और विद्वान् है उसी घरकी कन्या लाना चाहिए।

अब रूपके विषयमें विचार करना चाहिए। अँगरेज़ीमें एक कहावत है कि Health is beauty, अर्थात् स्वास्थ्य या निरोगता ही सौन्दर्य्य है। जहाँ नीरोगता नहीं वहाँ रूप नहीं। नीरोग शरीर और प्रफुल्ल मनके लिए अगोंका लावण्य अवश्य ही प्रयोजनीय है, परन्तु उसका अधिक विचार करनेकी ज़रूरत नहीं है। यदि अधिक रूप हुआ तो अच्छा ही है और न हुआ तो कोई हानि भी नहीं है। हमें उस सौन्दर्यके समझनेका अभ्यास करना चाहिए जो मनकी अच्छी वृत्तियोंके प्रभावसे मुखकी आकृतिमें झलका करता है और जो केवल आँखोंकी विशालता और नाककी ऊँचाईपर अवलम्बित नहीं है। प्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचन्द्रने अपने 'कुन्दनन्दिनी (विषवृक्ष)'

और 'कृष्णकान्तका विल' नामक उपन्यासोंमें रूपज मोह और गुणज प्रेमका विश्लेषण करके दिखलाया है कि स्त्रीके रूपकी अपेक्षा गुणका मूल्य वहुत ही अधिक है।

इसके वाद कन्याकी शिक्षाके प्रबन्धमे विचार करना चाहिए। केवल पढ़ना जान लेनेसे शिक्षा नहीं होती। हमारी कन्यायें प्रायः ऐसे स्कूलोंमें शिक्षा पाती हैं जहॉ वे हमारी जातीय विशेषता और गौरवकी एक भी वात नहीं सीखतीं। जो अच्छी कन्यापाठशालायें या कन्याविद्यालय है वहॉ पढ़ाईका ख़र्च अधिक है इस लिए दरिद्र-ताके कारण लोग उनमें पढ़ानेका प्रबन्ध नहीं कर सकते। बहुत लोग यह सोच कर भी रह जाते हैं कि लड़कीके विवाहमें हज़ार दो हज़ार रुपये लगेंगे ही, तव उसको पढ़ानेके लिए ऊपरसे और अधिक ख़र्च क्यो करें? परन्तु अव उन्हें यह जाना लेना चाहिए कि आज कलके वर सुशिक्षित कन्याओंको वहुत पसन्द करते हैं इसलिए वे उन्हें मामूलीसे भी कम ख़र्च कराके खुशी खुशी लेनेके लिए राजी हो सकते है, और इस तरह केवल ख़र्चकी ओर नज़र रखकर भी विचार किया जाय तो कन्याकी शिक्षाके लिए खर्च करना फिजूल ख़र्च नहीं कहा जा सकता।

हमारी कन्याओंको किस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिए, इस वि-विषयका विस्तारपूर्वक विवेचन करनेके लिए यहॉ स्थान नहीं है। तो भी सक्षेपतः यह कहा जा सकता सकता है कि स्कूलों और घरोंमे लड़कियोंको ऐसी शिक्षा मिलना चाहिए जिससे वे विवाह होनेके पश्चात् आदर्श गृहणियॉ वन सके। एक ओर तो वे पति और दूसरे कुटुम्बी जनोंकी सेवा शुश्रूषा कर सकें और दूसरी ओर अपनी स-न्तानको वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार लालित पालित और शिक्षित कर

सकें। इसके लिए उन्हे किसी चतुर स्त्रीसे घरके काम काज अच्छी तरहसे सीखना चाहिए, रक्षकोंके पास या पुस्तक समाचारपत्रोंके द्वारा यह जानना चाहिए कि आजकलके युवकोंका चिन्ताप्रवाह किस प्रणालीसे वह रहा है और किस ओर जा रहा है, आरोग्यविज्ञान और शिशु-शिक्षाविज्ञानकी सहज सरल पुस्तकें पढ़ना चाहिए और पुराणादि धर्मशास्त्रोंके स्वाध्याय और व्रतपालनके द्वारा धर्मनिष्ठ होना चाहिए। इस प्रकारकी सुशिक्षिता कन्याओंके साथ विवाह करनेके लिए किसी प्रकारके आर्थिक लाभकी अपेक्षा रक्खे विना वहुतसे शिक्षित वर उत्सुक होंगे, इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं है। यह बड़े ही दुःखकी बात है कि हम लोगोंमें बहुत ही कम लोग ऐसे है जो स्त्रीशिक्षाके सम्बन्धमे विचार करते है और उसके लिए कुछ यत्न करते हैं। इस समय उपयोगी पुस्तकें रचने और आदर्श कन्याविद्यालय स्थापित करनेके लिए प्रत्येक देशहितैषी व्यक्तिको उद्योग करना चाहिए।

कन्याकी परीक्षा कर चुकनेपर उसके वंशका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इस विषयमें प्राचीन विद्वानोंकी सम्मति सर्वथा आदर-णीय है। जिस वशमें उन्माद, मूर्च्छा आदि वंशानुक्रमिक रोग हैं, जो वंश मूर्ख और अधार्मिक है, उसमे धन होनेपर भी कभी विवाह-सम्बन्ध न करना चाहिए। जिस वंशमें अनेक पंडितों और धर्मात्मा-ओंने जन्म लिया है, विवाहके लिए वही वश अच्छा और कुलीन है।

अन्तमें कन्यानिर्वाचनमें जो एक बड़ा भारी असुभीता है, उसका उल्लेख कर देना हम यहाँपर बहुत आवश्यक समझते हैं। इस समय हमारे देशमें चारों वर्णोंके भीतर इतनी अधिक जातियाँ और उपजातियाँ वन गई हैं कि उनकी गणना करना कठिन हो गया है। हमारे जैन-समाजमें भी जातियों और उपजातियोंकी कमी नहीं है और इससे प्रत्येक

जाति उपजातिकी सख्या वहुत ही कम हो गई है। एक उपजाति विवाहके लिए अपने ही भीतर सीमाबद्ध रहती है दूसरी उपजाति या जातिसे वह सम्बन्ध नहीं कर सकती और इससे वहुत स्थानोमे न तो योग्य वर मिल सकते है और न योग्य कन्यायें ही मिल सकती हैं। लाचार वेजोड़ या अयोग्य विवाहोसे गृहस्थजीवन अतिशय दुःखपूर्ण बनाया जाता है। इसके सिवा वहुतसे वर कन्याओंका रक्तसम्बन्ध अतिशय निकटका हो जाता है और इससे प्राचीन ऋषियोकी आज्ञाका पालन नहीं हो सकता है। शरीरशास्त्रज्ञ विद्वानोका सिद्धान्त है कि रक्तसम्बन्ध जितना ही दूरका होगा उतना ही अच्छा होगा। निकटका रक्तसम्बन्ध वशवृद्धिका वहुत वडा घातक है। इस विपत्तिसे उद्धार पानेके लिए आवश्यक है कि उपजातियों और जातियोंका विवाहसम्बन्ध जारी कर दिया जाय। इसके द्वारा समाजका बहुत वडा उपकार होगा। *

आवरण।

मनुष्यके पदतल (तलुवे) ऐसी खूबीसे बनाये गये थे कि खड़े होकर पृथ्वीपर चलनेके लिए इससे अच्छी व्यवस्था और हो नहीं सकती थी। परन्तु जिस दिनसे जूतोका पहनना शुरू हुआ उस दिनसे पदतलोंको धूल और मिट्टीसे बचानेकी चेष्टाने उनका प्रयोजन ही मिट्टी कर दिया। जिस गरजसे वे बनाये गये थे, उसे ही लोग भूल गये। इतने दिनोंतक पदतल सहज ही हमारा भार वहन करते थे, परन्तु अव पदतलोंका भार स्वय हम ही वहन करने लगे हैं। क्योंकि इस समय यदि हमें खाली पैर बिना जूतोंके चलना पड़ता है

* एक वगला लेखका परिवर्तित अनुवाद।

तो पदतल हमारे सहायक न बनकर उलटे पदपद पर दुःखके कारण हो जाते है। केवल इतना ही नहीं, उनके लिए हमें सर्वदा ही सतर्क और सावधान रहना पड़ता है। क्योंकि यदि हम मनको अपने पदतलोंकी सेवामें नियुक्त न रक्खे तो आपत्ति उठानी पड़े। यदि उनमें थोड़ीसी सर्दी लग जाय तो छींके आने लगें और पानी लग जाय तो ज्वर चढ़ने लगे। तब लाचार होकर मोजे, स्लीपर, जूते, बूट आदि नाना उपचारोंसे हम इस उपाङ्गकी पूजा करते हैं और इसे सारे कर्मोंसे विमुक्त कर देते हैं अर्थात् पैरोंको किसी कामका नहीं रखते। ईश्वरने हमें यथेष्ट नहीं दिया, इसलिए मानो हम उसके प्रति यह एक प्रकारका उलहना देते हैं—यह बतलाते हैं कि तुम्हारे दिये हुए पदतल हमारी उक्त बाह्य पूजासामग्रीके बिना किसी कामके नहीं।

विश्वजगत्, और अपनी स्वाधीन शक्तिके बीच, सुविधाओंके प्रलोभनसे हमने इसी तरह न जाने कितनी 'चीनकी दीवाले' खड़ी कर दी हैं। इस तरह संस्कार और अभ्यासपरम्परासे हम उन कृत्रिम आश्रयोको सुविधा और अपनी स्वाभाविक शक्तियोको असुविधा समझने लगे है। कपड़े पहन पहन कर हमने उन्हें इस पदपर पहुँचा दिया है कि कपड़े हमारे चमडेसे भी बड़े हो गये है। अब हम विधाताके बनाये हुए इस आश्चर्यमय सुन्दर अनावृत्त (नग्न) शरीरकी अवज्ञा या अवहेलना करने लगे हैं।

किन्तु जब हम पुराने समयपर दृष्टि डालते है तो माळूम होता है कि कपड़ों और जूतोंको एक अन्धेकी मूठके समान पकड़ रखना हमारे इस गर्मदेशमें नहीं था। एक तो सहज ही हम बहुत कम कपड़ोंका उपयोग करते थे; और फिर बचपनमें हमारे बच्चे बहुत समय तक कपड़े जूते न पहनकर अपने नग्न शरीरके साथ नग्न जगतका योग

विना संकोचके बहुत अच्छी तरह किया करते थे। परन्तु इस समय हमने अँगरेज़ोंकी नकल करके शिशुओंके शरीर देखकर भी लज्जित होना शुरू कर दिया है। केवल विलायतसे लौटे हुए ही नहीं, शहरोंके रहनेवाले साधारण गृहस्थ भी आजकल अपने बच्चोंको किसी पाहुनेके सामने नंगा उघाडा देखकर सकुचित होते हैं और इस तरह बच्चोंको भी निजकी देहके सम्बन्धमें सकुचित कर डालते है।

ऐसा करनेसे हमारे देशके शिक्षितोंमें एक प्रकारकी बनावटी लज्जाकी सृष्टि हो रही है। जिस उमरतक शरीरके सम्बन्धमे किसी प्रकारकी कुण्ठा या लज्जा नहीं होनी चाहिए, उस उमरको अब हम पार नहीं कर सकते हैं—अब हमारे लिए मनुष्य, जन्मसे लेकर मरणतक लज्जाका विषय बनता जाता है। यदि कुछ समय तक और भी हमारी यही दशा रही, तो एक दिन ऐसा आ जायगा कि हम चौकी टेबिलोंके पायोंको भी बिना ढका या नग्न देखकर लाल पीले होने लगेंगे !

यदि यह केवल लज्जाकी ही बात होती, तो मैं आक्षेप नहीं करता। किन्तु इससे पृथ्वीपर दुःखकी वृद्धि होती है। हमारी लज्जाके कारण बच्चे व्यर्थ ही कष्ट पाते है। इस समय वे प्रकृतिके ऋणी हैं, सभ्यताका ऋण लेना उन्हें पसन्द ही नहीं। परन्तु बेचारे क्या करें; रोनेके सिवा उनके पास और कोई बल नहीं। अपने पालनपोषण करनेवालोंकी लज्जा निवारण करनेके लिए और उनके गौरवको बढानेके लिए उन्हें जरी और रेशमके कपड़ोंसे घिरकर वायुके करस्पर्श और प्रकाशके चुम्बनसे वंचित होना पडता है। इससे वे रोकर और चिल्लाकर बधिर विचारकके कानोंके समीप शिशुजीवनका अभियोग उपस्थित किया करते है। परन्तु बेचारे यह नहीं जानते कि पितामातामें एक्जिक्यूटिव् (कारगुज़ार) और जुडीशल् (अदालती) एकत्र हो जानेसे उनका सारा आन्दोलन और आवेदन व्यर्थ हो जाता है।

इससे पालनपोषण करनेवालोंको भी दुःख भोगना पडता है। क्यों कि अकाल लज्जाकी सृष्टि होनेसे अनावश्यक उपद्रव बढ़ जाते हैं। जो सभ्य जन नहीं है केवल सरल सीधे सादे बच्चे है उन पर भी निरर्थक सभ्यता लादकर धनका अपव्यय करना शुरू कर दिया जाता है। नग्नता या नंगेपनमें एक बड़ी भारी खूबी यह है कि उसमें प्रतियोगिता या बदाबदी नहीं है। किन्तु कपडोमें यह बात नहीं है। उनसे इच्छाओकी मात्राये और आडम्बरोंके आयोजन तिल तिल करके बढ़ते ही चले जाते है। बच्चोका नवनीत-कोमल, सुन्दर शरीर धनाभिमान प्रकाशित करनेका एक उपलक्ष्य बन जाता है और सभ्यताका बोझा निष्कारण अपरिमित और असह्य होता जाता है।

इस विषयमें अब हम डाक्टरी और अर्थनीतिकी युक्तियाँ और नही देना चाहते। क्योंकि यह लेख हम शिक्षाके सम्बन्धमें लिख रहे हैं। मिट्टी-जल-वायु-प्रकाशके साथ पूरा पूरा सम्बन्ध न होनेसे शरीरकी शिक्षा पूर्ण नहीं हो सकती। हमारा मुख जाडोंमे और गर्मियोंमें सर्वदा ही खुला रहता है, इसीसे हमारे मुखका चमड़ा अन्य सारे शरीरके चमडेकी अपेक्षा अधिक शिक्षित है—अर्थात् वह (मुख) इस बातको अच्छी तरहसे जानता है कि बाहरके साथ अपना सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिए किस तरह चलना चाहिए। वह अपने आप ही सम्पूर्ण है—उसे कृत्रिम आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ हम यह कह देना आवश्यक समझते है कि हम मेंचेस्टरके व्यापारियोंको हानि पहुँचानेके लिए अँगरेजोंके राज्यमे नग्नताका प्रचार नहीं करना चाहते हैं। हमारा मतलब यह है कि शिक्षा देनेकी एक खास अवस्था है—और वह बाल्यकाल है। उस समय शरीर और मनको परिणत परिपक्व करनेके लिए प्रकृति देवीके साथ हमारा

बाधारहित—वेरोक संयोग होना चाहिए। वह ढँकने मूँदनेका समय नहीं है—उस समय सभ्यताकी जरा भी जरूरत नहीं। किन्तु उस उमरसे ही बच्चोंके साथ सभ्यताकी लडाई छिड़ी देखकर वड़ा ही दुःख होता है। बच्चा कपडा फेंक देना चाहता है; परन्तु हम उसे ढँके रखना चाहते हैं। वास्तवमे देखा जाय तो यह झगड़ा बच्चेके साथ नहीं किन्तु प्रकृतिजननीके साथ छिडा है। प्रकृतिमें एक बहुत पुराना ज्ञान मौजूद है। जिस समय कोई बच्चेको कपडा पहनाया जाता है उस समय प्रकृतिका वही ज्ञान उस बच्चेके रोनेके भीतरसे प्रतिवाद करने लगता है। हम सब उस प्रकृतिजननीके ही तो पुत्र हैं।

चाहे जैसे हो, सभ्यताके साथ थोडेसे अलगावकी ज़रूरत है। बच्चोंको कमसे कम सात वर्षकी अवस्थातक सभ्यताके इलाकेसे जुदा रखना ही चाहिए। ये सात वर्ष हमने बहुत ही कम करके कहे हैं। इस अवस्थातक बच्चोंको न सज्जा (साज श्रृंगार) की जरूरत है और न लज्जाकी। इस समय तक वर्बरता या जगलीपनकी शिक्षा ही बहुत आवश्यक शिक्षा है—यह प्रत्येक बच्चेको मिलना ही चाहिए। प्रकृति देवीको यह शिक्षा वे-रोक टोक देने दो। इस समय भी यदि बच्चे पृथिवी माताकी गोदमें गिरकर धूल मिट्टीसे अपने शरीरको न रँगेगे, तो उन वेचारोंको यह सौभाग्य और कव प्राप्त होगा? वे यदि इस उमरमें भी झाड़ोंपर चढकर फल न तोड सके, तो हतभागे सभ्यताकी लोकलज्जामें उलझकर झाड़ पेडों और फल फूलोंसे जीवन भर भी हार्दिक सख्य न जोड सकेंगे। इस समय वायु, आकाश, मैदान, वृक्ष, पत्र, फूल आदिकी ओर उनके शरीर और मनका जो एक स्वाभाविक खिंचाव हुआ करता है—सब ही स्थानोंसे उनके पास जो निमत्रण आया करता है, उसके बीच यदि कपड़े लत्तोंकी, द्वार दीवालोंकी

रुकावट डाल दी जाय तो बच्चोंका सारा उद्यम रुक जाय और सड़ने लगे। क्योंकि जो उत्साह खुला हुआ क्षेत्र पाकर स्वास्थ्यकर होता है, वही बद्ध होकर दूषित हो जाता है।

ज्यों ही बच्चेको कपड़े पहनाये जाते हैं त्यों ही उसे कपड़ोंके विषयमें सावधान रखना पड़ता है--समझा देना पड़ता है कि कपड़े मैले न होने पावें। बच्चेका भी कुछ मूल्य है या नहीं, यह बात तो हम अकसर भूल जाते हैं; परन्तु दर्जीका हिसाब मुश्किलसे भूलते हैं। यह कपड़ा फट गया, यह मैला हो गया, उस दिन इतने दाम देकर इस सुन्दर अँगरखेको बनवाया था, अभागा न जाने कहाँसे इसमें स्याहीके दाग लगा लाया, इस तरह बीसों बातें कहकर बच्चेको खूब चपतें लगाई जाती हैं और कान ऐंठे जाते हैं। इस तरहकी शास्ति या दंडसे उसे सिखाया जाता है कि शिशुजीवनके सारे खेलों और सारे आनन्दोंकी अपेक्षा कपड़ोंकी कितनी अधिक खातिर करनी चाहिए-खेल कूद और आनन्दसे कपड़ोंका मूल्य कितना अधिक है। हमारी समझमें नहीं आता कि जिन कपड़ोंकी बच्चोंको कुछ भी आवश्यकता नहीं, उन कपड़ोंके लिए बेचारे इस तरह उत्तरदाता क्यों बनाये जाते हैं? और ईश्वरने जिन बेचारोंके लिए बाहरसे अनेक अबाध सुखोंका आयोजन कर रक्खा है और भीतर मनमें अव्याहत सुखोंके भोगनेका सामर्थ्य दिया है, उनके जीवनारम्भके सरल आनन्दपूर्ण क्षेत्रको न कुछ-अतिशय अकिंचित्कर पोशाककी ममतासे इस तरह व्यर्थ ही विघ्नसङ्कुल बनानेकी क्या जरूरत है? क्या यह मनुष्य सब ही जगह अपनी क्षुद्रबुद्धि और तुच्छ प्रवृत्तिका शासन फैलाकर कहीं भी स्वाभाविक सुखशान्तिके लिए स्थान न रहने देगा? यह एक बड़ी भारी जबर्दस्तीकी युक्ति है कि जो हमें अच्छा लगता है वह

चाहे जिस तरह हो दूसरोको भी अच्छा लगना चाहिए। माद्धम होता है कि हमने इस ज़बर्दस्तीकी युक्तिसे चारो ओर केवल दु ख विस्तार करनेकी ही ठान ली है।

जो हो, प्रकृतिके द्वारा जो कुछ किया जाता है वह हमारे द्वारा किसी भी तरह नहीं हो सकता। इस लिए इस प्रकारका हट नहीं करके कि 'मनुष्यकी सारी भलाइयॉ केवल हम बुद्धिमान लोग ही करेंगे' हमे प्रकृतिदेवीके लिए भी थोड़ासा मार्ग छोड देना उचित है। प्रारंभमें ही ऐसा करनेसे अर्थात् बालकोंको प्रकृतिके स्वाधीन राज्यमें विचरण करने देनेसे सभ्यताके साथ कोई विरोध खडा नहीं होता और दीवाल भी पक्की हो जाती है। ऐसा न समझ लेना चाहिए कि इस प्राकृतिक शिक्षासे केवल बच्चोंको ही लाभ होता है। नहीं, इससे हमारा भी उपकार होता है। हम अपने ही हाथोंसे सब कुछ आच्छन्न कर डालते है और धीरे धीरे उसासे अपने अभ्यासको इतना विकृत बना लेते हैं कि फिर स्वाभाविकको किसी प्रकार भी सहज दृष्टिसे नहीं देख सकते। हम यदि मनुष्यके सुन्दर शरीरको निर्मल बाल्यावस्थासे ही नग्न देखनेका निरन्तर अभ्यास न रक्खेंगे तो हमारी भी वही दशा होगी जो विलायतके लोगोंकी हो गई है। उनके मनमें शरीरके सम्बन्धमें एक विकृत सस्कार जड पकड गया है और वास्तवमे वह संस्कार ही वर्वर और लज्जाके योग्य है; बच्चोंको नग्न रखना वर्वरता या लज्जाका विषय नहीं है।

हम मानते हैं कि सभ्य समाजमें कपडेलत्तोकी और जूते मोजोंकी भी आवश्यकता है और इसीसे इनकी सृष्टि हुई है– किन्तु यह याद रखना चाहिए कि इन सब कृत्रिम आश्रयो या उपकरणोंको अपना स्वामी बना डालना और उनके कारण आपको कुण्ठित या संकुचित कर रखना

कभी अच्छा नहीं हो सकता। इस विपरीत व्यापारसे कभी भलाई नहीं हो सकती। कमसे कम भारतवर्षका जल वायु तो ऐसा अच्छा है कि हमें इन सब उपकरणोंके चिर-दास बननेकी कोई ज़रूरत नहीं है। पहले भी कभी हम इनके दास नहीं थे; हम आवश्यकता पड़नेपर कभी इनको काममें भी लाते थे और कभी इन्हें खोल कर भी रख देते थे। हम जानते थे कि वेश भूपा (कपड़े लत्ते पहनना, साज श्रृंगार करना) एक नैमित्तिक वस्तु है—इससे अधिक इसमें और कोई महत्त्व नहीं है कि यह कभी कभी हमारे प्रयोजनको साध देता है, अर्थात् हमे शीतादिके कष्टसे बचा देता है। बस, इसका हम पर इतना ही स्वामित्व था। इसी कारण हम खुला शरीर रखनेमे लज्जित नहीं होते थे और दूसरोंका भी खुला शरीर देखकर अप्रसन्न न होते थे। इस विषयमें विधाताके प्रसादसे यूरोप निवासियोकी अपेक्षा हमे विशेप सुविधा थी। हमने आवश्यकतानुसार लज्जाकी रक्षा भी की है और अनावश्यक अतिलज्जाके द्वारा अपनेको भारग्रस्त होनेसे भी बचाया है।

यह वात स्मरण रखना चाहिए कि अतिलज्जा लज्जाको नष्ट कर देती है। कारण, अतिलज्जा ही वास्तवमें लज्जाजनक है। इसके सिवा जब मनुष्य 'अति' का बन्धन बिलकुल ही छोड़ देता है अर्थात् प्रत्येक बातमें जियादती करने लगता है तव उसे और किसी तरहका विचार नहीं रहता। यह हम मानते हैं कि हमारे देशकी स्त्रियाँ अधिक कपड़ा नहीं पहनती हैं किन्तु वे (विलायती मेमोंके समान) जान बूझकर सचेष्ट भावसे छाती और पीठके आवरणका बारह आना हिस्सा खुला रखके पुरुपोंके सामने कभी नहीं जा सकतीं। अवश्य ही हम लज्जा नहीं करते हैं, परन्तु साथ ही लज्जापर इस तरहका आघात भी [illegible]ीं करते है।

इस प्रबन्धमें लज्जातत्त्वकी मीमासा करना हमारा उद्देश्य नहीं है, इस लिए इन बातोंको जाने दीजिए। हमने अभी तक जो कुछ कहा है उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि मनुष्यकी सभ्यताको कृत्रिमकी सहायता लेनी ही पडती है। इस लिए इस ओर हमें सर्वदा ही दृष्टि रखनी चाहिए कि कहीं अभ्यासदोषसे यह 'कृत्रिम' हमारा स्वामी न वन बैठे और हम अपनी गढी या तैयार की हुई सामग्रीकी अपेक्षा अपने मस्तकको सर्वदा ही ऊँचा रख सकें। हमारे रुपये जब हमको ही खरीद वैठें, हमारी भाषा जब हमारे ही भावोंकी नाकमें नकेल डालकर उन्हे घुमा मारे, हमारा साज-शृगार जब हमारे अगोंको ही अनावश्यक करनेके लिए जोर लगावे, और हमारे 'नित्य' जब 'नैमित्तिकों' के सामने अपराधियोंके समान कुठित हो रहें तब इस सभ्यताके सत्यानाशी अंकुशको जरा भी न मानकर हमें यह बात कहनी ही होगी कि यह ठीक नहीं हो रहा है। भारतवासियोंका खुला शरीर जरा भी लज्जाका कारण नहीं है; जिन सभ्यजनोंके नेत्रोंमें यह खटकता है उनके नेत्र ही स्वच्छ नहीं है—उनमे विकार हो गया है।

इस समय कपडों, जूतों और मोजोंका जैसा सम्बन्ध शरीरके साथ बढ़ गया है उसी तरह पुस्तकोंका सम्बन्ध हमारे मनके साथ बढता जा रहा है। अब हम लोग इस बातको भूलते जा रहे हैं कि पुस्तक पढ़ना शिक्षाका केवल एक सुविधाजनक सहारा भर है और पुस्तक पढनेको ही शिक्षा या शिक्षाका एक मात्र उपाय समझने लगे हैं। इस विषयमें हमारे इस सस्कारको हटाना बहुत ही कठिन हो गया है।

यह ठीक है कि आजकल शिक्षासम्बन्धी जो उल्टी गगा बह रही है उसके कारण हमें बचपनहीसे पुस्तकें रटना पडती हैं; परन्तु

वास्तवमें पुस्तकोंमेंसे ज्ञानसञ्चय करना हमारे मनका स्वाभाविक धर्म नहीं है। पदार्थको प्रत्यक्ष देख सुनकर, हिला डुलाकर, परीक्षा करके ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और यही हमारे स्वभावका विधान है। दूसरोंका जाना हुआ या परीक्षा किया हुआ ज्ञान भी यदि हम उनके मुँहसे सुनते है (न कि पुस्तकोंमेसे पढ़ते हैं) तो हमारा मन उसे सहज ही स्वीकार कर लेता है। क्योंकि मुँहकी वात केवल 'वात' ही नहीं है, वह 'मुँहकी वात' है। उसके साथ प्राण हैं; मुख और नेत्रोंकी भाव भंगी है, कण्ठका तीव्र मन्द स्वर है और हाथोंके इशारे हैं। इन सबके द्वारा जो भाषा कानोंसे सुनी जाती है वह सङ्गीत और आकारमें परिणत होकर नेत्र और कान दोनोंकी ज्ञेय या ग्रहणसामग्री वन जाती है। केवल यही नहीं, यदि हमको मालूम हो जाय कि कोई मनुष्य अपने मनकी सामग्री हमें प्रसन्न और ताजा मनसे दे रहा है—वह सिर्फ़ एक पुस्तक ही नहीं पढ़ता जा रहा है, तो मनके साथ मनका एक प्रकारसे प्रत्यक्ष मिलन हो जाता है और इससे ज्ञानके वीच रसका सचार होने लगता है।

किन्तु दुर्भाग्यवश, हमारे मास्टर पुस्तक पढ़नेके केवल एक उपलक्ष्य है और हम पुस्तक पढ़नेके केवल एक उपसर्ग। अर्थात् हम जो पुस्तकें पढ़ते हैं उनमें मास्टर केवल थोड़ीसी सहायता देते हैं और पुस्तक पढ़नेमें हमारा अन्तःकरण केवल उतना ही काम करता है जितना उपसर्ग किसी शब्दके साथ मिलकर। इसका फल यह हुआ है कि जिस तरह हमारा शरीर कृत्रिम पदार्थोंकी ओटमें पड़कर पृथ्वीके साक्षात् सयोगसे वंचित हो वैठा है, और वंचित होकर इतना अभ्यस्त हो गया है कि उस संयोगको हम आज क्लेशकर और लज्जाकर समझने लगे है, उसी तरह हमारा मन, जगतके साथ

प्रत्यक्ष संयोग होनेसे जो स्वाद आता है उसकी शक्तिको एक तरहसे खो बैठा है। अर्थात् हमे सब पदार्थोंको पुस्तकके द्वारा जाननेका एक अतिशय अस्वाभाविक अभ्यास पड गया हैं। जो पदार्थ हमारे बिलकुल ही पास है उसे भी यदि हम जानना चाहते है तो पुस्तकके मुँहकी ओर ताकते है। एक नबाबसाहबके विपयमें सुनते हैं कि वे एक वार जूता पहना देनेके लिए नौकरके आनेकी राह देखने लगे और इतनेमे दुश्मनके हाथों कैद हो गये। पुस्तककी विद्याके फेरमें पड़कर हमारी मानसिक नवाबी भी इसी तरह बहुत ज़ियादा बढ़ गई है। तुच्छसे तुच्छ विषयके लिए भी यदि पुस्तक नहीं होती है तो हमारे मनको कोई आश्रय नहीं मिलता। और बडे भारी आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस विकृत सस्कारके दोषसे हममें जो यह नवाबी आ गई है उसे हम लज्जाकर नहीं किन्तु उलटी गौरवजनक समझते हैं—पुस्तकोंके द्वारा जानी हुई बातोंसे ही हम आपको पण्डित शिरोमणि मानकर गर्व करते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम जगतको मनसे नहीं किन्तु पुस्तकोंसे टटोलते हैं!

इस बातको हम मानते है कि मनुष्यके ज्ञान और भावोंको सञ्चित कर रखनेके लिए पुस्तक जैसी सुभीतेकी चीज और कोई नहीं है। पुस्तकोंकी कृपासे ही आज हम मनुष्यजातिके हजारों वर्ष पहलेके ज्ञान और भावोंको हृदयस्थ कर सकते है। किन्तु यदि हम इस सुभीतेके द्वारा अपने मनकी स्वाभाविक शक्तिको बिलकुल ही ढँक डालें तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारी बुद्धि 'बाबू' बन जायगी। इस 'बाबू' नामक जीवसे पाठक अवश्य ही परिचित होगें। जो जीव नौकर चाकर, माल असबाव, चीज़ वस्तुके सुभीतेके अधीन रहता है उसे 'बाबू' कहते है। बाबू लोग यह नहीं समझते कि अपनी शक्ति या

चेष्टाका प्रयोग करनेमे जो कष्ट और जो कठिनाई भोगनी पड़ती है उसी-से ही हमे वास्तविक सुख होता है और उसीसे, हम जो कुछ प्राप्त करते है, वह कीमती हो जाता है। पुस्तकपाठी बाबूपनेमें भी, वह आनन्द और वह सार्थकता नहीं रहती जो ज्ञानको स्वयं अपनी चेष्टासे प्राप्त करनेमें या कठिन परिश्रमसे सत्यकी खोज करनेमें है। पुस्तकोंपर ही सारा दारोमदार रखनेसे धीरे धीरे मनकी स्वाधीन शक्ति नष्ट हो जाती है और उस शक्तिके संचालन करनेमें जो सुख है वह भी नहीं रहता, बल्कि यदि कभी उसको संचालन करनेकी आवश्यकता होती है तो उलटा कष्ट होता है।

इस तरह जब हमारा मन बचपनसे ही पुस्तक पढ़नेके आवरणसे ढँक जाता है तब हम मनुष्योंके साथ सहज भावसे मिलने जुडनेकी शक्तिको खो बैठते है। जो दशा हमारे कपडोंसे ढँक हुए शरीरकी हुई है—वह उघड़ा होनेमें संकोच करने लगा है वही दशा हमारे पुस्तकावृत मनकी भी हो गई है—वह भी बाहर नहीं आना चाहता। इस बातको हम प्रतिदिन ही देखते है कि सर्व साधारणका सहज भावसे आदर सत्कार करना, उनके साथ आत्मभावसे मिल जुलकर बातचीत करना आजकलके शिक्षितोके लिए दिनपर दिन कठिन होता जाता है। वे पुस्तकके लोगोंको पहचानते हैं परन्तु पृथिवीके लोगोंको नहीं पहचानते;—उनके लिए पुस्तकके लोग तो मनोहर है परन्तु पृथिवीके लोग श्रान्तिकर हैं। वे बड़ी बड़ी सभाओंमें व्याख्यान दे सकते है परन्तु सर्वसाधारणके साथ बातचीत नहीं कर सकते। बड़ी बड़ी पुस्तकोंकी आलोचना तो कर सकते है परन्तु उनके मुँहसे सहज बोलचाल—साधारण बातचीत भी अच्छी तरह बाहर नहीं निकलना चाहती। इन सब बातोंसे कहना पड़ता है कि दुर्भाग्यवश ये

लोग पण्डित तो हो गये है किन्तु सच्चे मनुष्यत्वको खो बैठे है। यदि मनुष्योंके साथ मनुष्यभावसे हमारी गतिविधि या मेलजोल होता रहे, तो घरद्वारकी वार्ता, सुखदुःखकी जानकारी, बालबच्चोंकी खबर, प्रतिदिनकी अलोचना आदि सब बातें हमारे लिए बहुत ही सहज और सुखकर मालूम हों। परन्तु हमारी दशा इससे उलटी है। हमारे लिए ये सब बातें कठिन और कष्टकर हैं। पुस्तकोंके मनुष्य गढ़ी–गढाई बाते ही बोल सकते है और इसलिए वे जिन सब बातोंमें हँसते है वे सचमुच ही हास्यरसात्मक होती है और जिन बातोमे रोते हैं वे अतिशय करुण होती है। किन्तु जो वास्तविक मनुष्य हैं उनका विशेष झुकाव रक्तमासमय प्रत्यक्ष मनुष्योकी ओर होता है और इसीलिए उनकी बातें, उनका हँसना–रोना पहले नम्बरका नहीं होता। और यह ठीक भी है। वास्तवमें उनका, वे स्वभावतः जो हैं उसकी अपेक्षा अधिक होनेका आयोजन न करना ही अच्छा है। मनुष्य यदि पुस्तक बननेकी चेष्टा करेगा, तो इससे मनुष्यका स्वाद नष्ट हो जायगा–उसमे मनुष्यत्व न रहेगा।

चाणक्य पण्डित कह गये है कि जो विद्याविहीन हैं वे "सभा-मध्ये न शोभन्ते" अर्थात् सभाके बीच शोभा नहीं पाते। किन्तु सभा तो सदा नहीं रहती- समय पूरा हो जानेपर सभापतिको धन्यवाद देकर उसे तो विसर्जन करना ही पड़ती है। कठिनाई यह है कि हमारे देशके आजकलके विद्वान् सभाके बाहर "न शोभन्ते" शोभा नहीं देते।—वे पुस्तकके मनुष्य है, इसीसे वास्तविक मनुष्योंमें उनकी कोई शोभा प्रतिष्टा नहीं। (अपूर्ण।)



पुस्तक-परिचय।

१. प्राचीन भारतवासियोंकी विदेशयात्रा और वैदेशिक व्यापार।–लेखक, पं० उदयनारायण वाजपेयी। प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थप्रकाशकमंडली, औरैया (इटावा)। पृष्ठ संख्या ७२। मूल्य आठ आना। यह पुस्तक बड़े ही महत्त्वकी है। इसमे दश अध्याय हैं:— १ विदेशयात्रा (संस्कृतग्रन्थोक्त प्रमाण), २ विदेशयात्रा (विदेशी-ग्रन्थोक्त प्रमाण), ३ प्राचीन भारतवासियोंके एशिया और मिश्रमें उपनिवेश, ४ भारतवर्षीय बौद्धोंका अमेरिकामें धर्मप्रचार, ५ पश्चिम एशियामें भारतवासियोंका राज्य, ७ भारत और फिनिशिया देशका व्यापार, ७ भारत और उसके निकटवर्ती पश्चिमी देशोंका व्यापार, ८ भारत और मिश्रका व्यापार, ९ भारत और रोमका व्यापार, १० भारत और अन्यान्य देशोंका व्यापार। इनके पढ़नेसे अच्छी तरह विश्वास हो जाता है कि भारतवासी प्राचीन समयमें एक संकीर्ण परिधिके भीतर रहनेवाले कूपमण्डूक न थे; वे दूरसे दूर तकके देशो और द्वीपोमें जाते थे, दूर दूर जाकर वसते थे, राज्य स्थापित करते थे, अपने धर्मोंका और सभ्यताका प्रचार करते थे और इन सब कार्योंसे वे आपको सर्वशिरोमणि वनाये थे। इस प्रकारकी पुस्तकोंकी इस समय वड़ी आवश्यकता है। हमारा उक्त प्राचीन गौरव हममें यथेष्ट उत्साह और कार्यतत्परताकी वृद्धि करता है। पुस्तककी भापा मार्जित और शुद्ध है। मूल्य बहुत जियादह है। मण्डलीको इस बात पर ध्यान देना चाहिए। एक बात और भी है, वह यह कि जिस बंगला मूल पुस्तकका यह सक्षिप्त और कुछ परिवर्तित अनुवाद है उसके लेखकका नामोल्लेख भी इसमें नहीं किया गया है। बंगला पुस्तकका नाम है 'भारतवासी दिगेर समुद्रयात्रा ओ वाणिज्यविस्तार'।

२. **शिवाजीका आत्मदमन** । लेखक प० काशीनाथ शर्मा । प्रकाशक, पं० खुन्नूलाल रावत, फर्रुखावाद । पृष्ठसख्या ६६ । मूल्य ≡)॥ आना। यह 'सुभे कल्याण' नामक मराठी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इसमें वीरकेसरी शिवाजीके इन्द्रियनिग्रह सच्चरित्र और औदार्यका एक उपन्यास रूपमें प्रभावशाली चित्र खींचा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद उपन्यास हिन्दीमें वहुत थोडे है। यद्यपि इसकी भापा जितनी चाहिए उतनी अच्छी नहीं लिखी गई; उसमे मराठीपन वहुत अधिक रह गया है, तो भी भाव और शिक्षाके लिहाजसे इसकी गणना अच्छी पुस्तकोंमें करनी चाहिए। अनुवाद जिस भाषासे किया जाय, यदि अनुवादक उसका केवल भाव समझकर अपने शब्दोंमें उसे प्रकाशित करे—शब्दश अनुवाद न करें, तो वे इस प्रकारके भापादोपोंसे बच सकते है।

३. **स्वर्गमाला**—वनारससे इस नामकी एक ग्रन्थमाला अभी कुछ ही महीनोंसे प्रकाशित होने लगी है। इसके लेखक और प्रकाशक बाबू महावीरप्रसादजी गहमरी है। एक वर्पमें डवल क्राउन १६ पेजी साइजके १००० पृष्ठ निकलेंगे और उनका मूल्य सिर्फ दो रुपया होगा। अव तक इसके तीन खण्ड प्रकाशित हुए हैं और उनमें 'स्वर्गके रत्न' नामकी पुस्तक निकल रही है। सभवत' चौथे खण्डमे यह पुस्तक समाप्त हो जायगी। वडी ही अच्छी पुस्तक है। इसमें लगभग १०० उपदेश हैं और प्रत्येक उपदेश विस्तारके साथ तरह तरहके दृष्टान्तोंसे समझाया गया है। भाषा भी सरल और सवकी समझमें आने योग्य है। इसका प्रत्येक उपदेश सचमुच ही स्वर्गीय रत्न है। ग्रन्थकर्त्ताके वडे ही ऊँचे उदार और धर्ममय भाव है। प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायका पुरुष इनसे लाभ उठा सकता है। इस समय भार-

-तवर्ष पाश्चात्य सभ्यताकी नकल करके अपने आदर्शसे गिरता जाता है। उसका सहज सादा और सुखद जीवन, विलास वैभव और बाहरी आडम्बरोंसे दुरूह, पकिल और क्लेशमय बनता जाता है। ऐसे समयमें इस प्रकारके उपदेशोंकी बहुत बडी जरूरत है। प्रकाशक महाशय हिन्दी साहित्यके एक बहुत आवश्यक भागकी पूर्ति करनेके लिए उद्यत हुए हैं। हमे उनका उपकार मानना चाहिए और ग्रन्थमालाके ग्राहक बनकर उनके उत्साहको बढ़ाना चाहिए। ग्रन्थमालामें आगे स्वर्गका खजाना, स्वर्गकी कुंजी, स्वर्गका विमान, आदि और इसी तरहकी कई पुस्तके निकलनेवाली है। अपने जैन भाइयोंसे हम खास तौरसे सिफारिश करते है कि वे इस मालाको मँगाकर अवश्य ही पढ़ें।

४. शुश्रूषा—लेखक, पं० श्रीगिरिधरशर्मा, झालरापाटन। प्रकाशक, एस० पी० ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, झालरापाटण। पृष्ठसंख्या २८२। मूल्य १) रु०। इन्दौर के सुप्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर तॉबके मराठी ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद है। रोगियोंको आरोग्य करनेके लिए जितनी आवश्यकता अच्छे डाक्टरोकी चिकित्साकी है उतनी ही बल्कि उससे भी अधिक आवश्यकता रोगीकी सेवा या शुश्रूषाकी है। शुश्रूषा किस तरह करना चाहिए इसका ज्ञान न होनेसे हजारों रोगी औषधोपचार करते हुए भी जीवन खो बैठते है। यदि औषधिका भी प्रबन्ध न हो और रोगीकी अच्छी शुश्रूषा होती रहे, तो इससे उसके प्राण बच सकते है। इससे शुश्रूषाका महत्त्व मालूम होता है। साधारण लोग भी शुश्रूषा सम्बन्धी बातोंको समझ जावें, इसके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। रोगीकी सेवा करनेका प्रसंग कभी न कभी सभी लोगोंपर आ जाता है. इसलिए

प्रत्येक गृहस्थके यहाँ ऐसी पुस्तकका रहना आवश्यक है। पुस्तकका प्रूफ अच्छी तरहसे नहीं देखा गया इस लिए भाषासम्बन्धिनी अशुद्धियाँ बहुत रह गई है। कागज भी हलका लगाया गया है। परन्तु पुस्तककी उपयोगिता देखते हुए ये दोष सर्वथा क्षम्य हैं। पं० श्री गिरधरशर्माको पुस्तकप्रणयनमें प्रवृत्त देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है। आशा है कि आपकी कलमसे हिन्दी साहित्यमें और भी अनेक ग्रन्थोंकी वृद्धि होगी।

नवजीवन बुकाडिपो, बनारससे हमें निम्नालिखित चार पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—

५–६. **धर्मशिक्षा** प्रथम भाग और द्वितीय भाग—मूल्य चार आना और छह आना। कविराज पं० केशवदेव शास्त्री काशीके एक जोशीले विद्वान् हैं। हिन्दुओंमें नवीन जीवन डालनेके लिए आप बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। वैदिक धर्मपर आपकी विशेष आस्था है। वैदिक सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिए इस समय आप अमेरिकामें घूम रहे हैं। ये दोनों पुस्तकें आपहीकी लिखी हुई हैं। दयानन्द हाईस्कूल काशीके विद्यार्थियोंकी ये पाठ्य पुस्तकें है। पहले भागमें मनुजीके बतलाये हुए धर्मके दशलक्षणों (धृति, क्षमा, दमन, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध)की व्याख्या है और वह बहुत अच्छे ढँगसे अनेक उदाहरण देते हुए की है। हमारी समझमें धर्मके उक्त लक्षण ऐसे हैं कि इनसे सब ही लोग लाभ उठा सकते हैं। दूसरे भागमें सदाचार निर्माणके मैत्री, करुणा, मुदता (प्रमोद) और उपेक्षा (माध्यस्थ) इन चार साधनोंका विस्तारपूर्वक व्याख्यान है। जैनधर्ममें ये ही चार साधन चार भावनाओंके नामसे प्रसिद्ध है। इनसे विद्यार्थियोंके चारित्र पर सचमुच ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

७. उपदेशमाला प्रथम भाग—यह पुस्तक भी उक्त शास्त्रीजीकी ही लिखी हुई है। मूल्य चार आना। इसमें सत्य, आत्मविश्वास, उद्यम, जीवनसाफल्य, पुरुषार्थ, मधुर भाषण, शील, आदि विषयोंपर अच्छे अच्छे उपदेश है और साथ ही प्रत्येक विषयके कण्ठ करने योग्य सस्कृत श्लोक भी है।

८. महाराष्ट्रोदय—लेखक, प० रामप्रसाद त्रिपाठी, बी. ए.। मूल्य डेढ़ आना। इस छोटेसे २३ पेजके निबन्धमें—महाराष्ट्र राज्यके उत्थानका, शिवाजी महाराजके चरितका और उनकी कार्यकुशलता वीरता आदिका वर्णन है। पढ़ने योग्य है।

९. धर्मवीर गाँधी—लेखक, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द बी. एस सी.। प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशक समिति, काशी। पृष्ठसख्या ९०। मूल्य चार आने। पाठकोंको दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंकी लज्जा रखनेवाले और भारतका मुख उज्ज्वल करनेवाले कर्मवीर गांधीका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। इस पुस्तकमे उक्त महात्माका ही आदर्श चरित लिखा गया है। प्रत्येक भारतवासीको यह चारित पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए कि देशसेवा करनेके लिए कैसे दृढ विश्वास, अध्यवसाय और पवित्र भावोंकी आवश्यकता है। इस पुस्तकसे जो कुछ लाभ होगा उसे समिति दक्षिण आफ्रिकाप्रवासियोंकी सहायतामे अर्पण करना चाहती है।

१०. अनुभवानन्द—लेखक, श्रीयुत शीतलप्रशादजी ब्रह्मचारी और प्रकाशक, जैनमित्र कार्यालय बम्बई। पृष्ठ संख्या १२८। मूल्य आठ आने। इस पुस्तकका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसके सब लेख दो तीन वर्ष पहले जैनमित्रमे निकल चुके है। इसमें आध्यात्मिक विचार रूपकके रूपमे प्रगट किये गये हैं।

जैनसाहित्यमे अपने ढँगकी यह एक अच्छी पुस्तक है। इसकी समालोचना करनेके हम अधिकारी नहीं; परन्तु यह कह सकते है कि जैसी सरल और सुगम भाषामें यह लिखी जानी चाहिए था वैसीमे नहीं लिखी गई। वाक्यरचना और शब्द प्रयोगोंमे भी असावधानी हुई है। अनुभव और आनन्दकी एक स्वतत्र लेख द्वारा विस्तृत व्याख्या कर दी जाती तो इसके पाठकोंको वहुत लाभ होता।

११. नवनीत-प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशक समिति, काशी। वार्षिक मूल्य दो रुपया। यह भी हिन्दीका एक मासिक पत्र है। इसके अवतक ७ अक निकल चुके हैं। ७ वॉ अक हमारे सामने है। यह रामनवमीका अक है, इस लिए इसमें अधिकाश लेख और कवितायें श्रीरामके सम्बन्धमें हैं। लेख प्राय सभी अच्छे और पढने योग्य है। इसके कई लेखक दाक्षिणत्य हैं और वे अच्छी हिन्दी लिख सकते हैं। 'युधिष्टिरकी कालगणना' नामक लेखमें विष्णुपुराणके प्रमाणसे कृष्ण और युधिष्टिरका समय निश्चित किया गया है। श्रीकृष्णजी इस ससारमे १२५ वर्ष रहे। कलिसंवत् १२००के लगभग महाभारतके युद्धके ३६ वर्ष वाद उनका तिरोधान हुआ। भारतके वाद १००० वर्ष तक जरासन्धके वशमें, १३८ वर्ष प्रद्योत अमात्यके वशमें, ३६२ वर्ष शिशुनागवशमे, और १०० वर्ष नवनन्दोंके वशमे भारतका राज्य रहा। इसके वाद मौर्य चन्द्रगुप्त राजा हुआ। चन्द्रगुप्त ईसाके ३१५ वर्ष पहले हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि आजसे १९१३+३१५+१००×१००० +३८+३६२−३६=३७९२ वर्ष पहले श्रीकृष्णका देहान्त हुआ था। एक लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि रामायणसे महाभारत पीछेका ग्रन्थ है। परन्तु इस लेखकी केवल उत्थानिका ही इस अंकमें है। ऐसे लेख जहॉ तक हो अधूरे प्रकाशित न किये

जावें तो अच्छा हो। रामचरितसे क्या क्या शिक्षाये मिल सकती है और रामचरितमे क्या महत्त्व है यह कई लेखोंमे समझाया गया है। हम आशा करते है कि हिन्दीप्रेमी इस पत्रका आदर करेंगे।

१२. आरोग्यसिन्धु—सम्पादक, राधावल्लभ वैद्यराज और प्रकाशक प० व्रजवल्लभ मिश्र, अलीगढ़। वार्षिक मूल्य १॥)। यह खुशीकी वात है कि हिन्दीमें अव वैद्यकसम्बन्धी भी कई पत्र निकलने लगे है। इसके अब तक ६-७ अंक निकल चुके हैं। चौथा पॉचवॉ सयुक्त अंक हमारे पास समालोचनाके लिए आया है। इसमें क्षयरोग, रसायन औषधियोंसे आयुवृद्धि, आयुर्वेदका ऐतिहासिक महत्त्व, वेदोंमें औषधि-प्रार्थना, आयुर्वेदमें भूतविद्या आदि कई उपयोगी लेख है। जो लोग वैद्यकसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं इस पत्रको उन्हें आश्रय देना चाहिए। पत्रकी भाषामें कुछ संशोधनकी आवश्यकता है।

१३. मनोरंजनका विशेष अङ्क—सम्पादक और प्रकाशक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, आरा। मूल्य १)। यह बड़ी ही प्रसन्नताकी वात है कि हिन्दीका मासिक साहित्य दिनों दिन उन्नति कर रहा है। इस विषयमें वह मराठी और गुजरातीका भी नम्बर ले रहा है। इस समय हिन्दीमे कई अच्छे मासिक पत्र निकल रहे है। आराका मनोरंजन भी उनमेंसे एक है। इसने अब दूसरे वर्षमें पैर रक्खा है और बड़े उत्साहसे अपना यह विशेष अंक प्रकाशित किया है। इस अंकमें ६-७ चित्र और ३५ लेख तथा कविताये है। हिन्दीके नामी नामी लेखको और कवियोंकी रचनासे यह विभूपित है। कवरपेज कई रंगोमे सचित्र छपा है। खर्च खूब किया गया है। हिन्दी प्रेमियोंको से अपनाना चाहिए।

१४. जैनहितेच्छु अक १, २—प्रकाशक, शकराभाई मोतीलाल शाह, सारगपुर, अहमदाबाद। यह गुजराती भाषाका मासिक पत्र है। हिन्दीके भी एक दो लेख इसमें रहते हैं। नये वर्षसे इसकी पृष्ठसख्या लगभग दूनी कर दी गई है। मूल्य मय उपहारकी पुस्तकके दो रुपया वार्षिक है। इसके मुख्य लेखक श्रीयुत वाडीलालजी वड़े ही उदार और मार्मिक लेखक हैं। इस अकके प्रत्येक पृष्ठसे उनकी उदारता, समदृष्टिता और मार्मिकता प्रगट होती है। जैनधर्मके तीनों सम्प्रदायोकी भलाई, उन्नति और प्रगतिका इसमें सदेशा है। इसका 'जूनु अने नवुं' नामका पहला लेख वडा ही हृदयद्रावक है। प्रासंगिक नोट वड़ी ही निष्पक्ष दृष्टिसे लिखे गये हैं। इसके 'जैन बनवा थी उभी थती मुश्केलीओ' शीर्षक लेखका अनुवाद हम पिछले अंकमें प्रकाशित कर चुके हैं। जो सज्जन गुजराती समझ सकते हैं उन्हें इस पत्रके अवश्य ही ग्राहक होना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, यदि इस पत्रका एक हिन्दी संस्करण भी निकलने लगे।

१५. जैनांतील पोटजाति—दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाकी ओरसे एक ट्रेक्ट-माला प्रकाशित होती है। उसका यह ५ वॉ ट्रेक्ट है। इसके लेखक है प्रसिद्ध जैनकवि दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे। इसमें सुधारक और रूढिभक्त ऐसे दो जैन बन्धुओंका मराठी पद्यरूपमें वार्तालाप है और उसमें यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है कि जैनोंमें सैकडो अन्तर्जातियॉ हैं और उनमें पारस्परिक रोटीबेटी-व्यवहार नहीं होता है। इससे जैनसमाजकी वहुत हानि हो रही है। यह भेद एकता, समता, पारस्परिक सहानुभूति, परदु:खकातरता, वात्सल्य आदि गुणोंका घातक है। इससे व्यर्थ अभिमान, घृणा, द्वेष आदि दुर्गुणोंकी सृष्टि होती है। यह भेदभाव पहले नहीं था।

प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पिछले अशान्तिप्रद और कष्टकर समयमें इसकी उत्पत्ति हुई है। इत्यादि। रचना प्रभावशालिनी है। जोशमें आकर कवि महाशय कहीं कहीं वहुत आगे वढ़ गये हैं। इस तरहके समाजसुधार सम्वन्धी ट्रेक्टोंकी हिन्दीमें भी वहुत जरूरत है।

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो चुकी हैं:—

१ माधवी और २ श्रीदेवी—लेखक, रूपकिशोर जैन। प्रकाशक, फ्रेंड एंड कम्पनी, मथुरा। ३ विद्योन्नति संवाद और ४ पद्यकुसुमावली (मराठी)—प्रकाशक, हीराचन्द मल्लकचन्द काका, शोलापुर। ५ प्रार्थनाविधि—प्रकाशक, कविराज पं० केशवदेवशास्त्री, काशी। ६ हस्तिनापुर तीर्थकी रिपोर्ट। ७ चतुर्विध दानशाला शोलापुरकी रिपोर्ट। ८ जैन पाठशाला मुड़वाराकी रिपोर्ट। ९ अभिनन्दन पाठशाला ललितपुरकी रिपोर्ट। १० श्रीसामायिक सूत्र।

तेरापंथियोंका सौभाग्य और गुरुओंकी दुर्दशा।

पाठक महाशय, मैं दिगम्बर जैनधर्मका अनुयायी हूँ और आम्नाय मेरी तेरापंथी है। आप जानते हैं कि तेरापंथियोंमें इस समय गुरुपरम्परा नहीं है। महावीर भगवानने जिस प्रकारके साधुओं या गुरुओंको पूज्य वतलाया है उस प्रकारके गुरु इस कालमें नहीं हैं, इस कारण तेरापंथी किसीको अपना गुरु नहीं मानते। जिस समय मेरे विचार वहुत ही अपरिपक्व थे, उस समय मैं यह जानकर वहुत ही दुखी होता था कि हम लोगोंमें गुरुओंका अभाव है और इस कारण हमसे लोग 'निगुरिया' कहते हैं। मैं समझता था कि हमारा धर्म वहुत ही श्रेष्ठ

है—उसके सिद्धान्त बहुत ही उच्चश्रेणीके हैं, परन्तु गुरुओंके अभावसे उनका प्रचार नहीं हो सकता है। गृहस्थ लोग जैनधर्मका थोडा बहुत प्रचार बढा सकते है परन्तु जिसको सच्चा या पूरा प्रचार कहते है वह विना गुरुओंके नहीं हो सकता। इसके बाद जब मैं कुछ अधिक समझने लगा;—जैनधर्मके दूसरे सप्रदायोंका हाल समाचारपत्रोंके द्वारा जानने लगा, तब मैं गुरुओंकी आवश्यकताको और भी अधिक अनुभव करने लगा। अब मुझे धार्मिक कार्योंके समान सामाजिक कार्योंके लिए भी गुरु आवश्यक जान पड़े। इस समय मुझे लेख लिखनेका शाक होगया था—दो चार छोटे मोटे लेख मैं प्रकाशित भी करा चुका था। मेरा साहस बढ़ गया था, इसलिए मैंने इस विषयमें भी एक लेख लिख डाला और एक जैनपत्रमें उसको प्रकाशित भी करा दिया। उसमें सबसे अधिक जोर इस बातपर दिया था कि जैसे बने तैसे गुरुपरम्पराको फिरसे जारी करना चाहिए। हमारी जो धार्मिक और सामाजिक अधोगति हुई है उसका कारण गुरुओका ही अभाव है। गुरुओंका शासन न होनेसे हमारे आचारविचार उच्छृंखल होगये है, धर्मके उपदेशोंसे हम वंचित रहते है और सामाजिक कामोंमें निडर होकर मनमाना वर्ताव करते हैं। हमारी पचायतियाँ अन्तःसारशून्य हो गई है। उनमें न्याय नहीं होता, क्योंकि स्वयं न्याय करनेवाले ही अन्यायाचरण करते हैं। इसके कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि दक्षिण तथा गुजरातमे भट्टारक लोग हैं और वे दिगम्बर सम्प्रदायके गुरु समझे जाते हैं। मैं जहाँका रहनेवाला हूँ, वहाँ केवल एक तेरापथ आम्नायके ही माननेवाले हैं, इसलिए उस समय मेरा भट्टारकोंसे अपरिचित होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। भट्टारकोंके माहात्म्यकी कुछ कल्पित और सच्ची किंवदन्तियाँ मैंने उसी समय सुनीं। फिर क्या था,

मुझे भट्टारकोंपर श्रद्धा होने लगी। यद्यपि मैं यह जानता था कि परिग्रहके धारण करनेवाले साधु दिगम्बर सम्प्रदायके गुरु नहीं हो सकते हैं; परन्तु गुरुओंकी आवश्यकता मुझे इतनी अधिक प्रतीत होती थी उनके विना मैं अपने धर्म और समाजकी इतनी अधिक हानि समझ रहा था कि भट्टारकोंके अस्तित्वकी अवहेलना मुझसे न हो सकी। मैंने अपने दिगम्बरानुरक्त मनको इस युक्तिसे सन्तुष्ट किया कि भट्टारक हमारे गुरु अवश्य हैं परन्तु वे निर्ग्रन्थाचार्य नहीं किन्तु गृहस्थाचार्य हैं और एक प्रकारके गृहस्थ होकर भी वे हमारे गुरुओंके अभावको थोड़ा वहुत पूर्ण कर सकते हैं। इस विश्वाससे मैं भट्टारकश्रद्धा वढ़ाने और उसके प्रचार करनेका प्रयत्न करने लगा।

इसी समय मुझे दो चार श्वेताम्बर साधुओंके कार्योंका पता लगा। उनके प्रयत्नसे तथा उपदेशसे अनेक धनी श्रावकोंने विद्याप्रचार, पुस्तकप्रचार आदिकी कई संस्थाये खोली थीं और उनमे लाखों रुपया खर्च किया था। यह उस समयकी वात है जव कि दिगम्बरसमाज विल्कुल निश्चेष्ट था। महाविद्यालयादि एक दो छोटी छोटी संस्थाओंको छोड़कर उसकी और कोई संस्था नहीं थी। ऐसी अवस्थामें गुरुओंके अभावको अतिशय दुःखमय अनुभव करना मेरे लिए विलकुल स्वाभाविक था। मैं निरन्तर इसी विचारमें निमग्न रहने लगा। कई वार मेरी इच्छा हुई कि भट्टारकोंके विषयमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करूँ; परन्तु विचारसहिष्णुताकी एक तिनकेके भी वरावर कदर न करनेवाले कट्टर तेरापंथियोंके डरके मारे मुझे साहस न हुआ। अपने विचारोंको अपने ही मनमें मसोसकर मैं संसारकी प्रगतिको चुपचाप देखने लगा।

तवसे अव तक कई वर्ष वीत गये। इस वीचमें मुझे कई भट्टारकोंसे, कई श्वेताम्बर साधुओंसे, कई स्थानकवासी मुनियोंसे, कई क्षु-

ल्लक ऐलकोंसे, कई गुसाईयोंसे, और कई वैष्णव, रामानुजी आदि साधुओंसे मिलनेका तथा परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। विचार सदा एकसे नहीं रहते, उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन निरन्तर ही हुआ करता है। इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि मैं अपने वर्तमान विचारोंपर आगे भी स्थिर रहूँगा; परन्तु इस समय उक्त सब साधुओंको देखकर मेरे जो विचार बने हैं उनका प्रकट कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ और उनसे कमसे कम उन लोगोंको लाभ पहुँचनेकी आशा करता हूँ जो कि मेरे ही जैसे अपरिणतबुद्धि हैं।

पाठक, अब मुझे गुरुओंकी उतनी अधिक आवश्यकता नहीं मालूम होती जितनी कि पहले मालूम होती थी। मुझे इस बातसे अब दुःख नहीं होता बल्कि प्रसन्नता होती है कि हमारे यहाँ गुरु नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदायके एक बड़े भारी हिस्सेका मैं यह बड़ा भारी सौभाग्य समझता हूँ कि वह गुरुओंके दुःशासनकी पीड़ासे द्रोपदीके समान दुःख और लज्जासे म्रियमाण होनेके लिए लाचार नहीं हुआ है। क्यों कि इस समय इनके नाम बड़े और दर्शन छोटे हैं। साधु, मुनि, यति, भट्टारक, महात्मा आदि नामोंको ये बदनाम कर रहे हैं। यह इन्हीं महात्माओंके चरित्रोंका प्रभाव है जो विदेशी लोग हमारे भारतके धर्मोंको घोर कुसस्काराच्छन्न और गिरा हुआ समझते हैं और उनपर तरह तरहकी वाग्बाणवर्षा किया करते हैं। वे समझते है कि वर्तमान साधु सन्यासी ही भारत धर्मोंके प्रतिपादित साधु हैं। यहाँके धर्मोंमें साधुओंके चरित्रकी परिभाषा यही है।

भारतका साधुसम्प्रदाय नीचताकी चरम सीमापर आपहुँचा है। इससे अधिक इसकी और क्या दुर्दशा होगी कि आज यहाँके जितने भिखमंगे हैं वे प्रायः अपनेको साधु ही बतलाते हैं! अर्थात् साधुका

अर्थ अब भिखमंगा हो गया है और इस समय दरिद्र भारतवासियोंके सिरपर इस प्रकारके ५२ लाख साधुओंके पालनपोषणका असह्य भार पड रहा है।

हाय! जिन साधुओ और स्वार्थत्यागियोंकी कृपासे भारतवर्ष सदाचारकी मूर्ति, नीतिमत्ताका उदाहरण, विद्याका भण्डार, धार्मिक भावोंका आदर्श, धनी, मानी, वीर और जगद्गुरु समझा जाता था, उन्हींके भारसे अब यह इतना पीडित है कि देखकर दया आती है। इनेगिने थोड़ेसे महात्माओंको छोड़कर जितने साधु नामधारी है वे सब इसकी जर्जर देहको और भी जर्जरित कर रहे है। कोई हमें धर्मका भयंकर रूप दिखलाकर जडकाष्ठवत् बनकर पडे रहनेका उपदेश रहा है, कोई अंधश्रद्धाके गहरे गढेमें ढकेल रहा है, कोई कुसंस्कारोंकी पट्टीसे हमारी ऑखें बन्द कर रहा है, कोई आपको ईश्वरका अवतार बतलाकर हमसे अपना सर्वस्व अर्पण करा रहा है, कोई तरह तरहके ढोंगोसे अपनी दैवीशक्तियोंका परिचय देता हुआ हमारा धन लूट रहा है, कोई व्यर्थ कार्योंमें हमारे करोड़ों रुपया बरबाद करा रहा है, कोई गृहस्थोंको धर्मशास्त्रोंके पढ़नेके अधिकारसे वञ्चित कर रहा है, कोई अपनी प्रतिष्ठाके लिए हमारे समाजोको कलहक्षेत्र बना रहा है, कोई गॉजा, भॉग, तमाखूको योगका साधक बतला रहा है और कोई अपने पतित चरित्रसे दूसरोंको पतित करनेका मार्ग साफ कर रहा है। शिक्षित समाजका अधिकांश तो इनकी चुगलमें नहीं फँसता है परन्तु हमारे अशिक्षित भाइयोंको तो ये रसातलमें पहुँचा रहे है। ऐसी दशामें मै सोचता हूँ कि यदि तेरापथी लोग गुरुरहित है, तो इसको उनके बड़े भारी पुण्यका ही उदय समझना चाहिए।

इस विषयमें तो तेरापथी ही क्यों एक तरहसे समग्र जैन धर्मानुयायी ही भाग्यशाली है कि उनके यहॉ उक्त ५२ लाखकी श्रेणीवाले

साधु ऊर्फ भिखमगोंकी गति नहीं है—इस श्रेणीके साधुओंका भार उनके सिरपर नहीं है। अभी तक जैनधर्मके 'साधु' नामकी वहुत कुछ प्रतिष्ठा वनी हुई है।

किन्तु जैनधर्मके साधुओंका जो अतिशय उच्च आदर्श है, उससे तो हमारे वर्तमान साधु भी कुछ कम पतित नहीं हुए है—इस खयालसे तो उन्हें औरोंसे भी अधिक गिरा हुआ कहना पडता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार साधु, मुनि या यति वह कहला सकता है जिसने सासारिक विषयवासनाओंसे सर्वथा मुँह मोड लिया है, किसी भी प्रकारका परिग्रह जिसके पास नहीं है, संसारके कोलाहलसे ऊब कर जो निर्जन स्थानोंमें रहकर मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंको वढाता है,संसारके लोगोंसे जिसका केवल इतना ही सम्वन्ध है कि उनके कल्याणकी वह इच्छा रखता है और अवसर मिलनेपर उन्हें धर्मामृतका पान कराता है, सारी इन्द्रियाँ जिसकी दासी है, धनमान प्रतिष्ठाको जो तुच्छ समझता है, वुराई करनेवालोंका भी जो कल्याण चाहता है, करुणा और क्षमाका जो अवतार है, किसी भी धर्म, मत या सम्प्रदायसे जिसे द्वेप नहीं, जो सत्यका परम उपासक है, हठ या आग्रह जिसके पास नहीं और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी एकतासे जो मोक्ष मार्ग मानता है। देखिए, यह कितना ऊँचा आदर्श है और फिर अपने साधु महात्माओंकी ओर भी एक नजर डालिए कि वे इस आदर्शसे कितने नीचे गिरे हुए है।

पहले भट्टारकोंको ही लीजिए। उनके पास लाखोंकी दौलत है, गाडी, घोडा, पालकी, नोकर, चाकर, आदि राजसी ठाटवाट है, जो भोगोपभोगकी सामग्रियाँ गृहस्थोंको भी दुर्लभ है वे उनके सामने हर वक्त उपस्थित हैं। दयामया इतनी है कि श्रावकोंके द्वारपर धरना

देकर रुपया अदा करते हैं। ज्ञान इतना है कि स्वयं ही आपको कुन्दकुन्द महर्षिके प्रतिरूप समझते हैं। श्रद्धान इतना दृढ है कि हमारी पादपूजा किये विना श्रावकोंका कल्याण ही नहीं हो सकता और चारित्र—चारित्रके विषयमें तो कुछ न कहना ही अच्छा है। यह दशा होनेपर भी ये समझते हैं कि श्रावकोंपर शासन करनेका हमको स्वाभाविक स्वत्व है—हम भगवान्के यहाँसे इनके साथ मनमाना वर्ताव करनेका पट्टा ही लिखा कर ले आये हैं।

अब जरा श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंकी ओर भी एक दृष्टि डाल जाइए। इनमें यति महाशय तो इतने अधिक गिर गये हैं कि उनपरसे स्वयं श्वेताम्बरी श्रावकोंकी ही श्रद्धा हट गई है! सुनते हैं कि अधिकांश यति लोग साधारण श्रावकोंके समान परिग्रह रखते और रोजगार आदि करते हैं। वैद्यक, ज्योतिष, मंत्र, यंत्र, तंत्रादि इनके प्रधान व्यवसाय हैं। दूसरे प्रकारके संवेगी आदि साधुओंमे वहुतसे सज्जन विद्वान् और धर्मोन्नति करनेवाले हैं और उनका आचरण भी प्रशंसनीय है। परन्तु औरोंके विषयमें यह वात नहीं है; वे अपने पदसे वहुत ही नीचे गिरे हुए हैं।*

---

* श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायमें मुनि आर्यिकाओंकी संख्या वहुत अधिक है—प्रतिवर्ष ही अनेक नये साधु और आर्यिकायें वनती हैं। इन नये दीक्षितोंमें अधिक लोग ऐसे ही होते हैं जिनकी उमर वहुत कम होती है और इसका फल यह होता है कि युवावस्थामे जब उनकी इन्द्रियोंका वेग वढ़ता है तव वर्तमान देशकालकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी वन रही है कि वे आपको नहीं सँभाल सकते और वहुत ही नीचे गिर जाते हैं। अपरिपक्वावस्थाका उनका क्षणिक वैराग्य और संयम इस समय उनकी रक्षा नहीं कर सकता। दीक्षाकी इस प्रणालीको संशोधन करनेकी वहुत ज़रूरत है; परन्तु अपने शिष्यपरिवारको वढ़ानेकी धुनमें लगे हुए साधु इस प्रकारके संशोधनका घोर विरोध करते हैं और वहुतसे अन्धश्रद्धालु श्रावक भी उनकी हाँमें हाँ मिला रहे हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदायके कुछ साधुओके विषयमें मेरे अभिप्राय बहुत ऊँचे थे-मै उन्हें बहुत ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था; परन्तु दो तीन वर्षसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो एक तुमुल सग्राम मच रहा है और जिसका नेतृत्व इन साधु महाराजाओके ही हाथमें है--उसका भीतरी हाल सुनकर मेरे हृदयपर बडी गहरी चोट लगी है और इसी लिए मेरा यह विचार बना है कि तेरापथी लोग इस विषयमें बडे ही भाग्यशाली हैं। प० लालन और शिवजी भाईके सम्बन्धको लेकर इन महात्माओंके जो लेख निकले थे और अभी हालमें अहमदाबादके एडवोकेट और भावनगरके जैन शासनमे जो कषायविषसे बुझे हुए वाग्बाणोंकी वर्षा हो रही है उन्हे पढकर हृदयमें बडी ही ग्लानि उत्पन्न होती है। क्या ये ही हमारे मैत्री–प्रमोद–कारुण्य–माध्यस्थ–भावनाओंका चिन्तवन करनेवाले, समिति और गुप्तियोंके पालन करनेवाले, सासारिक भोगों और मान बड़ाईकी इच्छा न रखनेवाले मुनिराज हैं, जिनके घृणित चरित्र सुनकर कानोंमें उँगली देनी पड़ती हैं, कटु और निन्द्यवचन सुनकर लज्जासे नीचा सिर कर लेना पडता है और एक दूसरेको नीचा दिखानेकी कोशिशमें लगे देखकर दयासे द्रवित होना पडता है। एक महाशय लोभी पण्डितोंसे ऊँची पदवी प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहे हैं। दूसरे यद्यपि स्वय इसी युक्तिसे पदवी लेकर जगद्गुरु वन बैठे है परन्तु पहलेकी कोशिशका भडा फोड कर रहे हैं। तीसरे अपनी कीर्त्तिका शङ्खरव करनेके लिए शिष्योंद्वारा तरह तरहके प्रयत्न कर रहे हैं। चोथे गौराङ्गों द्वारा अपना गुणगान कराके आसमानपर चढ जा रहे हैं। पॉचवें एक स्वाधीन विचारके सम्पादकको जेलकी हवा खिलानेके शुक्ल ध्यानमे मस्त हैं। छठे अपने विरुद्धमें कुछ कहनेवालोंपर कलम--कुठार चला रहे हैं और साथ ही नरकमें जानेकी

धमकी दे रहे है। सातवें रुपयोंके दो चार गुलामोंको फुसलाकर उनसे जैनधर्मकी प्रशंसा कराके आपको कृतकृत्य मान रहे हैं और आठवें दिगम्बर स्थानकवासी आदि सम्प्रदायोको बुरा भला कह कर कलहका बीज वो रहे हैं। इस तरह कितने गिनाये जावे, एकसे एक बढकर काम कर रहे हैं और अपने मुनि साधु आदि नामोंको अन्वर्थ सिद्ध कर रहे है। अब पाठक सोच सकते हैं कि जैनधर्मके ऊंचे आदर्शसे हमारे साधु कितने नीचे आ पड़े हैं।

तेरापंथी दिगम्बरी भाइयोंके कन्धोंपर साधुओंका यह कष्टप्रद जूआँ नहीं है, इसलिए मेरे समान उन्हें भी प्रसन्न होना चाहिए था; परन्तु देखता हूँ कि उनका ऐसा ख़याल नहीं है और इसलिए वे एक दूसरी तरहके जूऐंको कन्धोंपर धरनेका प्रारंभ कर चुके है। कई प्रतिष्ठा करानेवाले और कई अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले पंडितोंने तो उनकी नकेल बहुत दिनोंसे अपने हाथमे ले ही रक्खी है और अब कई क्षुल्लक ऐलक ब्रह्मचारी आदि नामधारी महात्मा उनपर शासन करनेके लिए तैयार हो रहे है। तेरापथी भाइयो, क्षुल्लक, ऐलक, ब्रह्मचारी बुरे नहीं--इनकी इस समय बहुत आवश्यकता है; परन्तु सावधान! केवल नामसे ही मोहित होकर इन्हें अपने सिर न चढ़ा लेना; नहीं तो पीछे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जायगा।

यहाँ पर यह कह देना मै बहुत आवश्यक समझता हूँ कि वर्तमान साधुओंसे मेरी जो अरुचि है वह इसलिए नहीं है कि मै साधुसम्प्रदायको ही बुरा समझता हूँ। नहीं, मैं धर्म, समाज और देशके कल्याणके लिए साधुसंघका होना बहुत ही आवश्यक समझता हूँ। मेरी समझमें जिस समाजमे ऐसे लोगोंका अस्तित्व नहीं है कि जिनका जीवन स्वयं उनके लिए नहीं है—दूसरोंके पारमार्थिक और ऐहिक

कल्याणके लिए है, वह समाज कभी उन्नत और सुखी नहीं हो सकता और जो जो समाज अब तक ऊँचे चढे हैं वे सब ऐसे ही स्वार्थ-त्यागी महात्माओंकी कृपासे चढ़े हैं। इस लिए इसप्रकारके लोगोंकी परम्परा बढानेकी बहुत आवश्यकता है। परन्तु यदि ऐसे लोग न हों, तो उनके स्थानमें अपूज्योंको पूज्योंके पद पर विठा देना और उनके चरणों पर अपनी स्वाधीनताको भी चढा देना, इसे मैं बुद्धिमानीका कार्य नहीं समझता। इससे तो यही अच्छा है कि हम विना साधुओंके ही रहें और इसी लिए मैंने तेरापथियोंको भाग्यशाली बतलाया है। नीतिकारने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि 'वर शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभः।' अर्थात् शाला सूनी पडी रहे सो अच्छा, परन्तु उसमें दुष्ट वैलका रहना अच्छा नही।

बहुतसे लोगोंका ख़याल है कि यह समय ही कुछ ऐसा निकृष्ट है कि इसमें उत्तम साधुओ और त्यागियोंके उत्पन्न होनेकी आशा नहीं; उत्कृष्ट साधुओंका आचार भी इस समय नहीं पल सकता। इस लिए उनके अभावमे निम्नश्रेणीके साधुओंकी भी पूजा करना बुरा नहीं। परन्तु मेरी समझमें यह विचार ठीक नहीं। आदर्श सदा ऊँचा ही रखना चाहिए--नीचे आदर्शको सामने रखकर कोई ऊँचा नहीं हो सकता, यह हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। और इस समय उत्कृष्ट साधुओंका आचार नहीं पल सकता है, इसका मतलब यह नहीं है कि आजकल क्षमा, दया आदि गुणोंके धारण करनेवाले, निस्पृह, मन्दकषाय, सहनशील, दृढ ब्रह्मचारी, परोपकारी, विद्वान्, धर्मप्रचारक साधु भी नहीं हो सकते है। अनगारोंमें तो क्या सागार गृहस्थोंमें भी इस प्रकारके महात्मा हो सकते हैं और दूसरे समाजोंमें अब भी है। यदि इस समय प्रातिकूलता है तो वह यह कि साधुओंकी जो भोजनपानकी

उत्कृष्ट विधि है, नाग्न्यादि कठिन परीषह हैं, कठिन तप आदि हैं, वे वर्तमानमे शास्त्रोक्त मार्गसे पालनेमें बहुत कठिनाई होती है और परिणामोंकी उच्चता पहले जैसी नहीं हो सकती है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि आजकल साधु हो ही नहीं सकते। यदि नग्नमुद्रा धारण कर सकनेवाले नहीं हो सकते, तो खण्डवस्त्र धारण करनेवाले ग्यारह प्रतिमाधारी, उनसे भी कम नीचेकी प्रतिमाओंका धारण करनेवाले, गृहत्यागी, ब्रह्मचारी आदि ही सही। ये भी तो एक तरहके साधु हैं—इनसे भी तो हमारा बहुत कल्याण हो सकता है--इनमें भी तो उपर्युक्त पूज्य गुण हो सकते हैं। भले ही आप इन्हें निर्ग्रन्थ गुरु मत मानो, पर उत्कृष्ट श्रावक भी तो हमारे यहाँ पूज्य हैं। ये यदि हमें उपदेश दें—हमें मार्ग बतलावें, तो इन्हें भी तो गुरु कहनेमें कुछ हानि नहीं है। फिर केवल स्वांगधारियोंको सिरपर चढ़ानेकी क्या जरूरत है?

लेख बहुत बड़ा हो गया है, इसलिए अब मै केवल इतना ही और कहकर इसे समाप्त करूँगा कि हमारे साधुमार्गकी जो दुर्दशा हुई है, उसके प्रधान कारण हम गृहस्थ लोग ही है। इस बातको हमें न भूलना चाहिए कि जिस तरह गृहस्थोंका सुधारना बिगाडना साधुओंके हाथ है उसी तरह साधुओंका सुधारना बिगाड़ना भी गृहस्थोंके हाथ है। दोनोंके जुदा जुदा अधिकार है। अपने अपने अधिकारोंको दोनोंको ही काममें लाना चाहिए। गृहस्थका यह अधिकार है कि वह पात्रदान करे, पात्रसेवा करे और पात्रभक्ति करे। यदि इसे हम काममें लाते रहते, तो आज हमारे साधु हमे इतने भारी न होते। अन्धश्रद्धाके वश होकर हमने अपनी बुद्धिको ताकमें रख दी और इनके केवल बाहरी वेपमें भूल कर इनके दोषोंकी उपेक्षा करके हमने जो अपात्रपूजाका

पाप किया, उसीका फल आज हमारे सामने है। यदि अब भी हम न चेते, तो इस अपात्रपूजाके और भी बुरे बुरे फल देखनेके लिए हमें तयार रहना चाहिए।

—तेरापन्थी।

जैनी क्या सबसे जुदा रहेंगे?

"हे वृद्ध! हे चिन्तातुर! हे उदासीन! तुम उठो, राजनीतिक आन्दोलनमें शामिल होओ या दिव्य सेजपर पडे पडे अपनी जवानीकी बडाई बखान बखान कर पुरानी हड्डियोको पटको, देखो तो उससे तुह्मारी लज्जा दूर होती है या नहीं।"

—रवीन्द्रनाथ।

यह बडे ही सन्तोपकी बात है कि जैन समाज उन्नतिके मार्गपर कदम बढ़ाने लगा है; शिक्षाप्रचार, समाजसुधार, धर्मविस्तार आदि उन्नतिके कार्योंमें वह लग चुका है। परन्तु जब हम देखते है कि उसकी चाल सबसे निराली है; वह आपहीको अपने पथका पथिक समझ रहा है दूसरोंका अस्तित्व ही मानो उसकी दृष्टिमे नहीं है, तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हिन्दु, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई आदि सारे भारतवासियोंसे जैनी क्या जुदा ही रहेंगे?

उनके सभा सुसाइटियोंके जल्सोंमें, समाचारपत्रोंके लेखोंमें, नेताओं और उपदेशकोंके व्याख्यानोंमें, पाठशालाओं विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें, धनवानोंके दानकार्योंमें, समाजसेवकोंके कामोंमें इस तरह जहाँ देखिए वहीं ऐसा माल्रम होता है कि जैन समाजने अपनी एक सकीर्ण परिधि बना रक्खी है; उससे वाहर मानो उसके लिए कुछ कर्तव्य ही नहीं है। देशकी प्रगतिसे वह सर्वथा अज्ञान है और देश राष्ट्र

या राष्ट्रीयतासे मानो उनका कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। यही सब देखकर पूछनेकी इच्छा होती है कि जैनी क्या सबसे जुदा रहेंगे?

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। यहाँ सैकड़ों धर्मों पन्थों और मतोंके माननेवाले रहते हैं। एक समय था जब इन धर्मानुयायियोंके परस्पर लड़ते झगडते रहनेपर भी समूचे देशको कुछ हानि लाभ न उठाना पड़ता था। क्योंकि उस समयके भारतका गठन ही कुछ और ही प्रकारका था। देशकी रक्षा या हानिलाभसे उस समयकी साधारण प्रजाका कोई सम्बन्ध नहीं था; शासक या राजा लोगों पर ही इसका दायित्व था। इसी कारण उस समय यह एक सर्व साधारण कहावत थी कि "कोउ नृप होहु हमें का हानी, चेरी छोड़ न होउब रानी।" और लोग अपनी या अपने समूहकी ही बढ़तीकी ओर दृष्टि रखते थे। परन्तु वह समय अब नहीं रहा। इस समय भारत पराधीन है। एक विदेशी जाति इसका शासन कर रही है और वह उन जातियोंमें से एक है जो किसी एक राजाके एकहत्थी शासनको बहुत बुरा समझती है और उसमें सर्व साधारणकी सम्मतिकी आवश्यकता स्वीकार करती है। वह स्वय इस बातको 'डंकेकी चोट' प्रचार करती है कि हम भारतका शासन भारतवासियोंकी सम्मतिसे करेंगे। गरज यह कि इस समयकी परिस्थितिने यह बात बहुत ही आवश्यक कर दी है कि यहाँकी सर्व साधारण प्रजा भी देशकी भलाई बुराईका विचार करे और आपको उसकी उत्तरदात्री समझे। और यह है भी ठीक। क्योंकि जब तक शासकोंको हमारे सुखदुखोंका ज्ञान न होगा, हमारी आवश्यकताओंको और हिताहितको वे न समझेंगे तब तक उनका शासन हमारे लिए कभी अच्छा नहीं हो सकता। हमारे शासक विदेशी हैं, वे हमारे सामाजिक धार्मिक

रहस्योंसे अपरिचित हैं। इस लिए उनके शासनचक्रको सुव्यस्थित पद्धतिसे चलानेके लिए यहाँकी सर्वसाधारण प्रजाके हाथोंकी भी आवश्यकता है।

ऐसी अवस्थामें यहाँकी साधारण जनताके लिए यह आवश्यक है कि वह आपसमें मेलजोल रक्खे, एक दुसरेके सुखदुखोंको अपना सुख दुख समझे, परस्पर सहायता करना सीखे और समूहके हितके लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंको भूल जावे। परन्तु ये सब बातें तब हो सकती हैं जब कि हम अपने अपने पारमार्थिक धर्मोंके समान देशभक्ति या राष्ट्रप्रेम नामक एक और नवीन धर्मकी उपासनामें दत्तचित्त हों और जिस तरह एक शरीरमें अनेक अंग होते है और अनेक अंगोंके समूहको शरीर कहते हैं उसी तरह हम समझें कि हमारे जुदा जुदा धर्म राष्ट्रप्रेम या देशभक्तिरूप धर्मके जुदा जुदा अग हैं। यह नवीन धर्म ऐसा नहीं है कि इसके लिए प्रजाको अपने जुदा जुदा धर्म छोड देने पडें या अपने धर्मविश्वासमें कछ शिथिल हो जाना पड़े। नहीं, यह धर्म इतना उदार है कि सब ही धर्मोंके अनुयायी इसकी उपासना कर सकते हैं।

आजकल कुछ लोगोंने इस धर्मको बदनाम कर रक्खा है। और इस कारण जहाँ सुना कि अमुक पुरुष देशभक्त है कि लोग विश्वास कर लेते हैं कि वह राजद्रोही है। परन्तु यह कहना बडी भारी भूल है। वास्तविक विचार किया जाय तो राजभक्त वही हो सकता हैं जो देशभक्त हो। अथवा यों कहिए कि देशभक्तिका ही दूसरा नाम राजभक्ति है। क्योंकि जब तक हम देशसे प्रेम नहीं करते हैं और उस देशप्रेमके कारण अपने शासकोंको सुशासक नहीं बना सकते हैं तब तक राजभक्त कभी नहीं सकते। इस लिए इस बातकी बड़ी भारी जरूरत है कि प्रत्येक भारतवासी देशभक्त बननेका प्रयत्न करे।

यों तो देशभक्तिकी भारतवर्षकी सब ही जातियों और समाजोंमें कमी है; परन्तु जैनसमाज इससे बिलकुल ही खाली है -वह जानता ही नहीं कि देशभक्ति किसे कहते है। बल्कि अपनी झूठी राजभक्ति प्रकट करनेकी धुनमें देशभक्तिको वह एक तरहका पागलपन समझता है। जैन समाजमें एक तो कोई नेता ही नहीं हैं और जो नेता कहलानेका दम भरते हैं--शिक्षा प्रचारादि कामोंमे जिनका थोड़ा बहुत हाथ है, वे इतने संकीर्ण हृदयके हैं--उनके विचारोका क्षेत्र इतना संकुचित है कि उसके भीतर इस देशभक्तिरूप उदार धर्मको स्थान ही नहीं मिल सकता है। यही कारण है कि एक सम्पन्न साक्षर और प्रतिष्ठित समाज होनेपर भी राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे जैनसमाज किसी गिनतीमें नहीं।

देशकी भिन्न भिन्न जातियोंमें तथा सम्प्रदायोंमें इस समय देशभक्ति और राष्ट्रीयताके भाव बढ़ रहे है--लोग समझने लगे हैं कि अपने अपने धर्मों और विचारोंकी रक्षा करते हुए इस सार्वजनिक धर्मकी-या राष्ट्रीयताकी उपासना करना भी हमारा कर्तव्य है और यह समझकर हजारों लोग कमर कसकर कार्यक्षेत्रमें भी उतर पड़े है। अभी अभी देखते देखते भारतमाताके हजारों सूपूत अपनी अपनी संकीर्ण परिधियोंका उल्लंघन करके स्वार्थसे मुख मोड़कर देशकी या भारतवासी मात्रकी सेवा करनेमें तत्पर हो गये हैं। प्रत्येक धर्म या सम्प्रदायके माननेवालेको, प्रत्येक ऊँच या नीच कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यको और प्रत्येक अमीर या गरीबको वे अपना भाई समझते है, उसके दुःख दूर करनेका प्रयत्न करते हैं उसको ऊँचा उठानेके लिए शिक्षा आदिका प्रबन्ध करते हैं और भारतवासी मात्रके अधिकारोकी रक्षा करनेके लिए कष्टोंकी परवा न करके निरन्तर आन्दोलन करनेमे दत्तचित्त रहते

है। यह सब करके भी वे अपने अपने धर्मोंको नहीं भूले है—राष्ट्रीय भावोकी रक्षा करते हुए अपने धर्म या सम्प्रदायोंकी उन्नतिमें भी वे सब तरहसे दत्तचित्त रहते है। देशके राष्ट्रीय अगुओंमेंसे इस तरहके बीसों सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं।

परन्तु जैनी इस विषयमें सबसे जुदा है। देशहितके सैकड़ों कार्य-क्षेत्र हमारे सामने पड़े है परन्तु उनमेंसे एकमें भी हम अपने भाइयोको नहीं देखते। इंडियन नेशनल काग्रेसमें, प्रादेशिक समितियोमें, औद्योगिक कॉन्फरेंसमें, सोशल कॉन्फरेंसमें, साहित्यपरिषदोंमें, गोखलेकी भारतसेवकसमितिमें, सरकारी कौसिलोंमें और सार्वजनिक हितका आन्दोलन करनेवाली अन्यान्य सस्थाओंमें हम किसी जैनीका नाम नहीं सुनते। सार्वजनिक कल्याणकी घोषणा करनेवाले दोचार समाचारपत्र भी जैनी नहीं निकालते। ऐसे पत्रोंमें लेख भी वे नहीं लिखते। इस विषयकी कोई पुस्तक भी किसी जैनीकी कलमसे नहीं निकली। कहीं किसी जैनीको देशहितका व्याख्यान देते हुए या आन्दोलन करते हुए भी नहीं सुना। सार्वजनिक साहित्यक्षेत्रमें भी उनका दर्शन दुर्लभ है। इस समय एक भी जैनी किसी भापाके वर्तमान साहित्यका ख्यातनामा लेखक या कवि नहीं है। शिक्षाप्रचारका काम जैनी करते हैं। वे चाहे तो अपने बच्चोंके साथ साथ दूसरोंके बच्चोंको भी ज्ञानदान कर सकते हैं, परन्तु इतनी उदारता भी उनमें नहीं। उनकी शिक्षासस्थाओंके द्वार दूसरोंके लिए एक तरहसे बन्द ही है। सार्वजनिक शिक्षासंस्थाओंमें भी जैनी आर्थिक सहायता नहीं देते। अवश्य ही स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द्र रायचन्द्रने कलकत्ता यूनीवर्सिटीको और सेठ वसनजी त्रिकमजी जे. पी. ने बम्बईके साइन्स इन्स्टिट्यूटको दो बडी बडी रकमे देकर जैनियोंकी लज्जा रख ली है। इस तरह और कहाँ तक गिनाये जावें किसी

भी सार्वजनिक लाभके काममें जैनियोका हाथ नहीं दिखता। और तो क्या हमारे नैतिक, धार्मिक और समाजसुधारसम्बन्धी उपदेश आदि भी केवल जैनियोंके लिए ही होते है। पारस्परिक सहानुभूति और सहायताबुद्धिकी तो हममें इतनी कमी है कि हम अपने घरहीमें बारहों महीने लड़ा करते है; हमारे श्वेताम्बरियों और दिगम्बरियोंके तीर्थ-क्षेत्रसम्बन्धी मुकद्दमे इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। गतवर्ष पालीताणाके जलप्रलयके समय जैनियोंकी सहायता करनेके लिए कई आर्यसमाजी भाई पालीताणा दौड़े गये थे; परन्तु अभी दाक्षिण आफ्रिकाके भाइयोंपर जब विपत्ति आई और सारे देशके लोगोने उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की तथा विपुल धनसे सहायता की, तब बतलाइए हमारे जैनी भाइयोंने क्या किया ? कितना धन दिया ? हमारे दयाधर्मने क्या काम किया ? जिस समय सम्मेदशिखरतीर्थपर घोर उपसर्ग उपस्थित हुआ था--उसपर सरकारी बंगले बननेवाले थे उस समय हमारे कुछ भाई एक देशभक्त लीडरसे इस लिए जाकर मिले थे कि वे इस विपत्तिके समय हमें कुछ सहायता दें और आन्दोलन करके हमारे पर्वतकी रक्षा करें। उस समय उक्त देशभक्त महाशयने उत्तर दिया था कि "जैनी हमारी और हमारे देशकी क्या सहायता करते हैं जो हम उनकी सहायता करें।" यद्यपि एक देशभक्तके मुँहसे ऐसे शब्द न निकलना चाहिए थे, परन्तु इसमें उन्होंने झूठ ही क्या कहा था ? यदि जैनी बुद्धिमान् है तो वे इस उत्तरसे बहुत कुछ सीख सकते है और अपने भविष्यका मार्ग निश्चित कर सकते है।

यह कहा जा सकता है कि जैनसमाज अभी अभी जागृत हुआ है। अभी उसमें स्वयं अपनी ही आवश्यकताओंके पूर्ण करनेकी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई है, इसलिए दूसरोंकी ओर ध्यान देनेका उसे अव-

काश नहीं। इसका कारण यदि अवकाशाभाव ही होता तो कुछ आक्षेपकी बात नहीं थी। पर यह एक बहाना भर है। वास्तवमें हममें अभी तक इस प्रकारके भाव ही उत्पन्न नहीं हुए हैं। बीचमें हमारी जो सर्वतोगामिनी सहानुभूति, दया, परार्थपरता नष्ट हो गई है—वह अभी तक जीवित ही नहीं हुई है। यदि हममें राष्ट्रीयभाव, प्रेम या देशभक्ति होती, तो भले ही हम प्रत्यक्षरूपसे सार्वजनिक सेवाके कार्य न कर सकते—अपने कामोंके मारे उनमें योग न दे सकते; परन्तु हमारे निजके ही कामोंमें वह जहाँ तहाँ प्रस्फुटित हुए बिना न रहती। और यह बात भी तो सर्वांशोंमें सत्य नहीं माल्रुम होती कि हमें अपने कामोंसे अवकाश नहीं है। ऐसे बहुतसे कार्य है जिन्हें हम अपने कार्य करते हुए भी सहज ही कर सकते हैं। और हमारे समाजके सभी लोग तो काम नहीं करते हैं—यदि कुछ लोग अपनी योग्यताके अनुसार सार्वजनिक काम भी करने लगें तो अच्छी तरहसे कर सकते हैं; होना चाहिए इन कामोंसे प्रेम और सहानुभूति।

अन्तमें हम अपने भाइयोंको सचेत कर देना चाहते हैं कि तुम्हारी सख्या औरोंकी अपेक्षा बहुत ही कम है, दार्शनिक सिद्धान्तोंके खयालसे तुम्हारा धर्म देशके सारे धर्मोंसे अतिशय भिन्नता रखता हैं—यहाँ तक कि जब सारा देश ईश्वरवादी है तब तुम किसी एक ईश्वरके अस्तित्वको ही स्वीकार नहीं करते। ऐसी अवस्थामें अपने अस्तित्वकी रक्षाका प्रश्न तुम्हारे सम्मुख सबसे अधिक कठिन है। इसका तुम्हें बहुत ही सावधानीसे विचार करना चाहिए। हमारी समझमें जबतक हम देशके प्रत्येक कार्यमें शामिल न होंगे, दूसरोंके समान अपनी भी शक्तियोंको बढाकर देशके कार्यभारमें बराबरीसे अपने कन्धे न लगावेंगे, प्रत्येक देशवासीके सुखमे सुखी, दुखमें दुखी

न होंगे, सबकी सहानुभूति और प्रीति सम्पादन न करेंगे—संक्षेपमें जब तक हम अपना अपने परमार्थिक धर्मके समान ' राष्ट्रप्रेम' नामक एक और दूसरा धर्म न बनावेंगे तब तक अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे। यदि हम अब भी न चेते—अब भी हमने भारतको अपना देश न समझा, तो याद रखिए कि इस चढ़ावढ़ीके कठिन समयमे—' निर्बलोंको जीते रहनेका अधिकार नहीं है ' इस सिद्धान्तको माननेवाले समयमें—हमारी वही दशा होगी जो भारतकी अन्त्यज जातियोंकी हो रही है। यदि जागना हो तो अभी जागो, नहीं तो सदाके लिए सोते रहो।

समाज-सम्बोधन।

(१)

दुर्भाग्य जैनसमाज, तेरी क्या दशा यह होगई!
कुछ भी नहीं अवशेष, गुण-गरिमा[1] सभी तो खो गई।
शिक्षा उठी, दीक्षा उठी, विद्याभिरुचि जाती रही।
अज्ञान दुर्व्यसनादिसे मरणोन्मुखी[2] काया हुई!

(२)

वह सत्यता, समुदारता तुझमे नजर पड़ती नहीं!
दृढ़ता नहीं, क्षमता नही, कृतविज्ञता[3] कुछ भी नहीं!
सब धर्मनिष्ठा उठ गई, कुछ स्वाभिमान रहा नहीं!
भुजबल नहीं, तपबल नहीं, पौरुष नहीं, साहस नहीं!

(३)

क्या पूर्वजोका रक्त अब तेरी नसोंमें है कहीं?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नहीं।

---

१ गुणोंकी गुरुता-उत्कृष्टता। २ मरणके सन्मुख। ३ कृतज्ञता।

ठंडा हुआ उत्साह सारा, आत्म-बल जाता रहा।
उत्थानकी चर्चा नहीं, अब पतन ही भाता हहा!!

(४)

पूर्वज हमारे कौन थे? वे कृत्य क्या क्या कर गये?
किन किन उपायोंसे कठिन भवसिन्धुको भी तर गये?
रखते थे कितना प्रेम वे निजधर्म-देश-समाजसे?
परहितमें क्यों संलग्न थे, मतलब न था कुछ स्वार्थसे?

(५)

क्या तत्त्व खोजा था उन्होंने आत्म-जीवनके लिए?
किस मार्गपर चलते थे वे अपनी समुन्नतिके लिए?
इत्यादि बातोंका नहीं तव[1] व्यक्तियोंको ध्यान है।
वे मोहनिद्रामें पड़े, उनको न अपना ज्ञान है॥

(६)

सर्वस्व यों खोकर हुआ तू दीन, हीन, अनाथ है।
कैसा पतन तेरा हुआ, तू रूढियोंका दास है!!
ये[2] प्राणहारि पिशाचिनी, क्यों जालमे इनके फँसा।
ले पिण्ड तू इनसे छुडा, यदि चाहता अब भी जियाँ[3]।

(७)

जिस आत्म-बलको तू भुला बैठा उसे रख ज्ञानमें।
क्या शक्तिशाली ऐक्य[4] है, यह भी सदा रख ध्यानमें।
निज पूर्वजोंका स्मरण कर कर्तव्यपर आरूढ हो।
बन स्वावलम्बी, गुण-ग्राहक, कष्टमें न अधीर हो॥

---

१ तेरे व्यक्तियोंको अर्थात् जैनियोंको।
२ ये रूढियाँ प्राणोंको हरनेवाली पिशाचिनी हैं। ३ जीवित रहना। ४ एकता, इत्तफाक्।

(८)

सद्दृष्टि-ज्ञान-चरित्रका सुप्रचार हो जगमें सदा ।
यह धर्म है, उद्देश है; इससे न विचलित हो कदा ॥
'युग-वीर' बन यदि स्वपरहितमें लीन तू हो जायगा ।
तो याद रख, सब दुःख संकट शीघ्र ही मिट जायगा ॥

समाजसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार ।

डाक्टर सतीशचन्द्रकी स्पीच ।

श्रीयुत मान्यवर महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचद्र विद्याभूषण, एम. ए., पी. एच. डी., एफ़. आई, आर. एस., सिद्धान्तमहोदधिने, २७ दिसम्बर सन् १९१३ को स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके महोत्सवपर जो स्पीच अँगरेजीमे दी है उसका हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है:—

सज्जनो, मुझे इस शुभ अवसरपर सभापतिका आसन देकर आप लोगोंने जो मेरा सन्मान किया है उसका हार्दिक धन्यवाद दिये बिना मै आजकी मीटिंगकी कार्रवाईको शुरू नहीं कर सकता। औरोकी अपेक्षा मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप अनुभवी विद्वानो और जीवन-पर्यंत जैनधर्मका अभ्यास करनेवालोंके इस दीप्तिमान समूहमेंसे मुझसे कोई अच्छा और योग्य सभापति चुन सकते थे। परन्तु चूँकि आपने प्रसन्न होकर मुझे यह असाधारण मान दिया है इसलिए मुझे आपकी आज्ञाका पालन करना चाहिए और मै एक ओर आपके अनुग्रह और

---

१ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका ।

दूसरी ओर आपकी सहकारितापर भरोसा रखते हुए आसन ग्रहण करता हूँ।

जैनधर्मपर कोई लम्बा चौड़ा विवेचन करनेका न यह समय है और न यह स्थान। साथ ही मैं आपको यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इस प्रसिद्ध जैनसमाजको उसके ही मत और सिद्धान्तकी कोई बात सिखलानेका साहस नहीं करता हूँ। ऐसा करना, सज्जनो, उलटे बाँस बरेली ले जानेके समान होगा। परन्तु एक ऐसे व्यक्तिके मुखसे जो, यद्यपि सम्प्रदायसे जैनी नहीं है तथापि, जैनधर्मका अभ्यासी रह चुका है, एक दो शब्दोंका निकलना कुछ अनुचित भी न होगा।

मालूम होता है कि ईसामसीहसे लगभग छह सौ वर्ष पहले इस सारे भूमडलपर मानसिक जागृति और कर्त्तव्यपरायणता उत्पन्न हुई थी। उस समय एक नई परिपाटीका जन्म होना पाया जाता है, पूर्वीय और पश्चिमीय दोनो ही देशोंमें एक नया युग प्रवर्त्तित हुआ था।

योरुपमे, पैथेगोरस नामके प्रसिद्ध यूनानी फिलासोफरने ससारको एकताका सिद्धान्त सिखलाया। एशियामें, चीनके कनफ्यूशस और ईरानके जोरोस्टरने इस जागृतिमें हिस्सा लिया। प्रथमने अपनी उन शिक्षाओंके द्वारा जिन्हें 'गोल्डनरूल' (Golden rule) कहते हैं और दूसरेने अपने उस सिद्धान्तके द्वारा जो आरमुज्ड (Armugd) और अहिरिमन (Ahiriman) अर्थात् प्रकाश और अधकारकी शक्तियोंके विसम्वादके सम्वन्धमें है, यह कार्य किया। हिंदुस्तानमें महावीरने, जिन्हें वर्धमान भी कहते है और जो इस वर्तमान कालमें जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर हुए है, अपने आत्म-सयमके सिद्धान्तको प्रकाशित किया और बौद्धधर्मके प्रवर्त्तक बुद्धदेवने अधकार और दुःखमें पड़े हुए जगतको ज्ञानोदीपनके सदेशसे उद्घोषित किया।

कुछ कालतक महावीर और बुद्धके सिद्धान्त और धर्म एक दूसरेके बराबर बराबर (समानान्तर रेखाओंमें) चलते रहे। यह भले प्रकार निर्द्धारित किया जा सकता है कि महावीरका साक्षात् शिष्य और उनकी शिक्षाओंको संग्रह करनेवाला इन्द्रभूति गौतम, बुद्धधर्मके प्रसिद्ध संस्थापक बुद्धगौतम तथा न्यायसूत्रके कर्त्ता ब्राह्मण अक्षपाद गौतमका समकालीन था। हम देखते हैं कि बौद्धोंके 'त्रिपटिक' जैसे धर्मग्रंथोंमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका उल्लेख मिलता है और जैनियोंके धर्मग्रंथोंमें, जिन्हें 'सिद्धान्त' कहते है बौद्धोंके सिद्धान्तोंका विवेचन (गुणदोष-विचार) पाया जाता है।

सर्वसाधारणतक पहुँचने तथा अपने उच्च सिद्धान्तोंका मनुष्यसमूहमे प्रसार करनेके लिए इन दोनों महान् शिक्षकोंने, अपनी शिक्षाके द्वारस्वरूप, उस समयकी दो अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचलित भाषाओंको पसद किया था—बुद्धने पालीभाषाको और महावीरने प्राकृत भाषाको। इस प्रतिवादके विपयमें कि पाली और प्राकृत भाषायें इतनी प्राचीन नहीं हो सकती है कि उनका अस्तित्व सन् ईसवीसे ६०० वर्ष पहले माना जाय, इतना कहा जा सकता है कि ये भाषायें या स्पष्टतया इनकी वे खास शकलें (आकृतियॉ), जिनमें महावीर और बुद्धने शिक्षा दी, उस पाली और प्राकृत ग्रंथोंकी भाषासे जो हम तक पहुँची है जरूर ही बहुत भिन्न थीं। और यह बात इस मामलेसे आसानीके साथ स्पष्ट की जा सकती है कि उनकी शिक्षाकी भाषायें, जो हम तक लिखित रूपसे नहीं किन्तु मौखिक रूपसे पहुँची हैं दोनों भाषाओंके साधारण परिवर्तनोंके साथ साथ परिवर्तित होती रही हैं।

सन् ईसवीकी पहली शताब्दीमें बौद्धधर्म दो शाखाओंमें विभक्त गया, जिनको 'महायान' और 'हीनयान,' अर्थात् बड़ा वाहन और

छोटा वाहन कहते हैं। जैनधर्मके भी दो बड़े टुकडे होगये यथा 'श्वेताम्बर' सफेद वस्त्र धारण करनेवाले और 'दिगम्बर' जिनका वस्त्र आकाश है।

जैनसाधु, जो सर्व प्रकारके 'बन्धनों' से मुक्त होनेके अभिप्रायसे दीक्षित होता है, अपने लिये सर्व प्रकारके विषयसुखोंको अस्वीकार करता हुआ, सिर्फ इतना भोजन जो जीवन धारण करनेके लिये काफ़ी हो, जिसे किसी व्यक्तिने खास उसके लिए न बनाया हो और जो धार्मिक भक्तिके साथ श्रावकों या गृहस्थोद्वारा दिया जाय, ग्रहण करता हुआ और लौकिक जन तथा स्त्री संसर्गसे अलग रहकर एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करनेके द्वारा पूर्ण रीतिसे व्रत, नियम और इन्द्रियसंयमका पालन करता हुआ, जगतके सन्मुख आत्मसयमका एक बडा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

यद्यपि इन दोनों धर्मोंने ब्राह्मणोंके जातिभेद या अन्य विधि विधानोंके साथ कोई बड़ी भारी लड़ाई नहीं लड़ी, तथापि इनका उद्देश ऐसे आदर्श पुरुष उत्पन्न करना था जो, बौद्धशास्त्रोंमें ' भिक्षु ' और जैन शास्त्रोंमें 'यति' या 'साधु' कहलाते हैं। यह आदर्श पुरुष समस्त ही श्रेष्ठ और उत्तम गुणोंकी मूर्तिरूपसे देखा जासकता है। क्योंकि उसका शरीर उसके वशमें है, वचनपर उसने अधिकार जमा लिया है और मनको भले प्रकार अपने आधीन कर लिया है। वह जगतको जीतनेवाला है क्योंकि उसने अपने आपको जीत लिया है। वह अपना सारा दिन अध्ययन और शिक्षणमें, सासारिक विषयवासनाओंके समुद्रमें गोते खाते और बहते हुए मनुष्योंको सुखशांतिकी दृढ भूमिपर लानेके द्वारा उनका उद्धार करनेमें और भटकते हुए ससारी मुसाफ़िरोंको मोक्षका मार्ग दिखलानेमें व्यतीत करता है। यो तो ऐसे

मनुष्य प्रतिदिन ही शास्त्रस्वाध्याय और ध्यानसे अपने हृदयको पवित्र करते हैं; परन्तु महीनेके खास दिनोंमें वे परस्पर अपने पापोंकी आलोचना करनेके लिए एकत्र होते हैं जो उनके धर्मका एक मुख्य चिह्न है।

यह आदर्श पुरुषकी वात है। परन्तु एक गृहस्थका जीवन भी जो जैनत्वको लिये हुए है इतना अधिक निर्दोष है कि हिन्दुस्तानको उसका अभिमान होना चाहिए। गृहस्थके लिए 'अहिंसा' को अपने जीवनका आदर्श (Motto) बनाना होता है। सिर्फ़ जीवधारियोंको उनके मांसके लिए वध करनेका ही उसके त्याग नहीं होता, बल्कि उसका यह कर्त्तव्य है कि वह किसी छोटे जन्तुको भी किसी प्रकारका कोई नुकसान न पहुँचावे, और उसे अपना भोजन बिलकुल निरामिष सर्वप्रकारके मांसाहारसे रहित–रखना होता है। सज्जनो, मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं उनके भोजन और जीवनरीतियोंके सम्बन्धमें बहुतसे उत्तमोत्तम नियमोंका विस्तारके साथ वर्णन करूँ; मैं इतना ही कहना काफ़ी समझता हूँ कि वे खानेपीनेके सम्बन्धमें सातिशय संयमशील हैं और उनका भोजन बड़ी ही सूक्ष्मदृष्टिसे शुद्ध तथा असाधारण रीतिसे सादा होता है। ये भोले भाले और किसीको हानि न पहुँचानेवाले जैनी, यद्यपि पन्द्रह लाखसे अधिक नहीं हैं, तथापि बहुतसी बातोंमें प्रत्येक मानवजातिके एक भूषण हैं, चाहे वह कैसी ही सभ्य क्यों न हो।

जैनियोंके साहित्यमें एक विशेषता है। यूनानियोंको छोड़कर जिन्होंने अपने धार्मिक और लौकिक साहित्यको प्रारंभसे ही एक दूसरेसे अलग रक्खा है अन्य समस्त देशोंका वही आदिम साहित्य है जो कि उनका धार्मिक साहित्य है। ब्राह्मणोंके वेद, यहूदियोंकी बाइबिल

Old Testament और बौद्धोंके 'त्रिपटिक' की यही हालत है।
जैनसाहित्य प्रारभमें केवल धार्मिक प्रकृतिको लिए हुए था; परन्तु समयके हेरफेरसे उसने न सिर्फ धार्मिक विभागमें किन्तु दूसरे विभागोंमें भी आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त की। न्याय और अध्यात्मविद्या-के विभागोंमें इस साहित्यने बडे ही ऊँचे विकास और क्रमको धारण किया। सन् ईसवीकी पहली शताब्दीमें प्रसिद्ध होनेवाले **उमास्वामि**-के जोडके अध्यात्मविद्याविशारद, या छठी शताब्दीके **सिद्धसेन दिवाकर** और आठवीं शताब्दीके **अकलंकदेवकी** बराबरके नैय्या-यिक इस भारत भूमिपर अधिक नहीं हुए है। सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतार नामक ग्रथमें कुल न्यायविद्या केवल ३२ श्लोकोंके भीतर भरी हुई है। न्यायदर्शन जिसे ब्राह्मण ऋपि गौतमने चलाया है, न्याय अध्यात्मविद्याके रूपमें असभव होजाता यदि जैनी और बौद्ध अनुमान चौथी शताब्दीसे न्यायका यथार्थ और सत्याकृतिमे अध्ययन न करते। जिस समय मैं जैनियोंके 'न्यायावतार', 'परीक्षामुख', न्यायदीपिका', आदि कुछ न्यायग्रथोंका सम्पादन और अनुवाद कर रहा था उस समय जैनियोंकी विचारपद्धतिकी यथार्थता, सूक्ष्मता, सुनिश्चितता और सक्षि-प्तताको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था और मैंने धन्यवादके साथ इस वातको नोट किया है कि किस प्रकारसे प्राचीन न्यायपद्धतिने जैन नैय्यायिको द्वारा क्रमशः उन्नतिलाभ कर वर्तमानरूप धारण किया है। इन जैन नैय्यायिकोंमेंसे वहुतोंने न्यायपर टीका ग्रथोंकी भी रचना की है, और मध्यमयुगमें न्यायपद्धतिपर यह एक बडा ही बहुमूल्य काम हुआ है। जो 'मध्यमकालीन न्यायदर्शन' के नामसे प्रसिद्ध है वह सव केवल जैन और बौद्ध नैय्यायिकोका कर्तव्य है। और ब्राह्मणोंके न्यायकी आधुनिक पद्धति जिसे "नव्य न्याय" कहते हैं और जिसे गणेश उपाध्यायने ईस

की। १४ वी शताब्दीमे जारी किया है, वह जैन और बौद्धोंके इस मध्यम कालीन न्यायकी तलछटसे उत्पन्न हुई है। व्याकरण और कोशरचना-विभागमें शाकटायन पद्मनंदि और हेमचद्रादिके ग्रथ अपनी उपयोगिता और विद्वत्तापूर्ण सक्षिप्ततामे अद्वितीय है। छंदशास्त्रकी उन्नतिमें भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। प्राकृत भाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौन्दर्यको लिये हुए जैनियोंकी रचनामे ही प्रगट की गई है; और यह बिलकुल सत्य है कि ब्राह्मण नाटकोंमें जो प्राकृत भाषाका व्यवहार किया गया है उसके मूलकारण जैनी ही है जिन्होंने सबसे पहले अपने शास्त्रोंमें इस भाषाका प्रयोग किया है। और ऐतिहासिक संसारमें तो जैनसाहित्य शायद जगतके लिए सबसे अधिक कामकी वस्तु है। यह इतिहास लेखकों और पुरावृत्त विशारदोके लिए अनुसन्धानकी विपुल सामग्री प्रदान करनेवाला है जैसा कि इसने पहले प्रदान की है और अब भी प्रदान कर रहा है। जैनियोंके बहुतसे प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रथ भी है जैसा कि 'कुमारपालचरित'। ये ग्रथ और वे उपाख्यान, जिन्हें भिन्न भिन्न सम्प्रदाय या 'गच्छो'के जैनियोने उन समयोके बाबत जिनमें कि अनेक तीर्थकर और शिक्षक 'धर्मके आसन' या 'पट्ट' पर विराजमान थे और उनकी समकालीन घटनाओंके बाबत सुरक्षित रक्खा है, भारतीय इतिहासकी पुरानी बातोंको निश्चित करनेके लिए उसी प्रकारसे बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है, जिस प्रकार कि यूनानका पुराना इतिहास तय्यार करनेमें वहाँके मीनार कार्यकारी हुए थे। और भी अधिक, इन समयोंकी जॉच शिला आदिपर उत्कीर्ण लेखोंकी साक्षीसे हो चुकी है और ये उनके अनुरूप पाये गये हैं जैसा कि मथुरासे मिला हुआ ईसाकी पहली शताब्दीका जैनशिलालेख और रुद्रदमनका जूनागढवाला शिलालेख जो दूसरी शताब्दीका है, इत्यादि।

यदि भारत देश ससारभरमे अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक उन्नतिके लिए अद्वितीय है तो इससे किसीको भी इनकार न होगा कि इसमे जैनियोंको ब्राह्मणों और बौद्धोंकी अपेक्षा कुछ कम गौरवकी प्राप्ति नहीं है।

अनुवादक—

जुगलकिशोर मुख्तार।

नोट—यह विद्याभूषण महाशयके व्याख्यानका पूर्व भाग है। इसके आगे उन्होंने जैनसस्थाओं और वर्तमान जैनकार्यकर्त्ताओंकी प्रशसा की है। वह बहुधा अतिशयोक्ति पूर्ण है, इस लिए उसका प्रकाशित करना हम उचित नहीं समझते।—सम्पादक।

ऐतिहासिक लेखोंका परिचय।

(गताङ्कसे आगे।)

३. विषय।

इन लेखोंमें अन्य भेदोंके साथ विषयकी भी भिन्नता है। अधिकाश लेख दानके विषयमें है। दान भी धर्मसम्बन्धी और राज्य सम्बन्धी दो प्रकारके है।

कई लेखोंमें श्रीजिनेन्द्रभगवानके मदिरोंके निमित्त ग्रामोंके दानका उल्लेख है। चालुक्यवंशीय राजा अम्म द्वितीयका एक लेख यह सूचित करता है कि जिनमंदिरकी एक खैराती भोजनशालाके लिए उन्होंने एक ग्राम दान दिया था। गयामें बराबर पर्वतपर महाराज

अशोकके कई लेखोंमे आजीवक साधुओंको गुफाओंके दान देनेका उल्लेख है।

कई लेखोंमें बौद्ध साधुओंको गुफाओंके दानदेनेका उल्लेख है। महाराज स्कन्दगुप्तके एक स्तंभ लेखमें विष्णु भगवानके निमित्त एक ग्राम दान देनेका उल्लेख है। राष्ट्रकूटवंशीय जैनधर्मानुयायी महाराज अमोघवर्षके एक लेखमें यह लिखा है कि उन्होने घीके महसूलको राज्यकोशमें जमा न करके राज्यप्रबंधके सुभीतेके लिए ग्रामोंके मुखियों और महाजनोंके नाम कर दिया कि वे ही राज्यकी ओरसे उस रुपयेसे उचित कार्य किया करें। पाल्ववंशीय राजा शिवस्कंन्दके एक लेखमें ब्राह्मणोंको ग्राम दान देनेका उल्लेख है। ईसवी सन् ७५४ के एक स्तंभ लेखमें एक ब्राह्मणको एक ग्रामके अर्धभाग दिये जानेका उल्लेख है और इसमें विशेषता यह है कि यह बात नागरी, और कनड़ी दोनो लिपियोंमें अलग अलग लिखी हुई है। कदम्बवंशीय राजा काकुत्स्थवर्मनका एक लेख हल्सीमें है जिससे मालूम होता है कि उन्होंने अपने श्रुतिकीर्ति नामक सेनापतिको, जिसने एक अवसर पर उनके प्राण बचाये थे, कुछ भूमि दान दी। राजा प्रवरसेन द्वितीयका एक लेख यह सूचित करता है कि उन्होंने चम्मक नामक ग्रामको एक सहस्र ब्राह्मणोंको दान दिया। उनमेंसे ४९ ब्राम्हणोके नाम इस लेखमें दिये हैं। इनके अतिरिक्त इन लेखोंमें और विषय भी

---

१ विन्सेंट स्मिथने लिखा है कि ये साधु बौद्धोंकी अपेक्षा जैनियोंसे अधिक सम्बन्ध रखते हैं। डाक्टर फ्लीटने भी इनकी जैनियोंसे समानता बतलाई हैं, इनको नग्न कहा है और मक्खलि गोशालको इनका संस्थापक लिखा है। २ इस वंशके कुछ राजा कदाचित् जैन थे। उन्होंने ईसाकी छठी शताब्दिमें पल्वों और मैसूरके गंगराजा पर विजय पाई और दक्षिणी महाराष्ट्र पर अपना अधिकार

है। यह किसीको अविदित नहीं है कि महाराजा अशोक कैसे प्रभा-वशाली सम्राट् हो गये हैं। पहले वर्णन हो चुका है कि शिलाओं और स्तभोंपर उनके अनेक लेख मिलते हैं जिनसे बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। जैसे, उनकी राजधानी पाटलीपुत्र थी, उन्होंने बौद्ध धर्मका खूब प्रचार किया, उन्होंने कलिंग देशपर विजय पाई और उसे अपने आधीन कर लिया, इत्यादि। इन लेखोंसे महाराजा अशोकके शासनका और कई विदेशी राजाओंका भी परिचय मिलता है। मैसूरमें महाराजा अशोकका एक शिलालेख है जिसमें उनकी धार्मिक शिक्षाओंका सार इस प्रकार लिखा है:—महाराजाधिराजकी यह आज्ञा है:—"पिता और माताकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिए; एव सर्व जीवोंका आदर करना चाहिए; सत्य अवश्य बोलना चाहिए। धर्मके ये ही सुलक्षण हैं और ये अवश्य कार्यरूपमें परिणत होने चाहिए। इसी प्रकार शिष्यको गुरुका आदर अवश्य करना चाहिए और नातेदारोंका उचित सत्कार होना चाहिए यह धर्मका प्राचीन आदर्श है—इससे आयु की वृद्धि होती है और इसके अनुसार मनुष्योंको अवश्य चलना चाहिए।" श्रवणवेलगोलाका एक लेख यह सूचित करता है कि विजयानगराधिपति हिन्दू राजा बुक्कराय ने श्रवणवेलगोलानिवासी जैनियों और वैष्णवोंके पारस्परिक विरोधको शान्त किया और जैनियोंको वैष्णवोंके समान स्वतत्रता और रक्षा प्रदान की। वरौत स्तूपके एक लेखमें लिखा है कि उसके द्वारको एक शुङ्गवशीय राजाने बनवाया। विरंचीपुरमके एक लेखसे यह मालूम होता है कि वहाँके राजाने ब्राह्मणोंके लिए विवाहका यह नियम बनाया कि वे अपने यहाँके विवाहोंमें केवल कन्यादान ही किया करें और यदि कोई ब्राह्मण अपनी पुत्रीके बदलेमें रुपया स्वीकार

करेगा तो उसको राज्यदंड मिलेगा और वह विरादरीसे च्युत कर दिया जायगा। कई चीनीप्रवासी भारतवर्षमे यात्रा करने आये थे। क्यों कि चीनीलोग बौद्धधर्मानुयायी हैं और भारतवर्ष उनके पूज्यदेव शाक्यमुनि गौतमबुद्धका जन्मस्थान है। उन्होंने बौद्ध स्तूपोंपर अपने भ्रमण और कालसम्बन्धी अनेक लेख लिखवाये थे जो बड़े महत्त्वके हैं। गौतम बुद्धके जन्मस्थान पर महाराजा अशोकका एक लेख है जो यह सूचित करता है कि बुद्धदेवकी जन्मभूमि वही है।

कुछ लेख सर्वथा ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखे हुए मालूम होते है। जैनधर्मानुयायी महाराजा खारवेलका हाथीगुम्फा नामक गुफापर एक लेख है जिसमें उक्त महाराजके राजत्व कालके प्रथम १३ वर्षकी घटनाओका संक्षिप्त वर्णन है। यह लेख इतिहासके लिए बड़े महत्त्वका है। इलाहाबादके अशोक-स्तंभ पर महाराज समुद्रगुप्तका भी एक लेख है जिससे उनके राज्यका अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया है। जूनागढ़के दो लेखोंमें सुदर्शन नामक झीलके दो बार मरम्मत होनेका उल्लेख है। मन्दार पर्वतके एक लेखमें एक तालके बननेका उल्लेख है। मैसूरमें बेलतूरके एक लेखमें एक स्त्रीके सती होनेका उल्लेख है। यहीं पर एक और लेख है जिसमें गंगदेश पर चोलवंशीय राजेन्द्र प्रथमकी विजयका वर्णन है। काचीके लेखोंसे ज्ञान होता है कि चोलाराज्य अंतमे विजयनगरके राज्यमें मिल गया। अमरावती स्तूपके लेखोंसे आंध्रवंशका पता चलता है। तक्षशिलामे डॉ० मारशलको ५०० से आधिक सिक्के मिले है जिनसे कई राजाओंके कालनिर्णय होनेकी संभावना है।

४. उपयोगिता।

उपर्युक्त लेख केवल उदाहरणार्थ दिये गये हैं; इनकी संख्या तो हज़ारो पर है। यह जान कर कि उनमें क्या लिखा है यह आसानीसे

समझमे आसकता है कि उनमें कितनी ऐतिहासिक सामग्री मौजूद है। भारतवर्षमें प्राचीन इतिहासकी पुस्तकोंका अभाव होनेसे इन लेखोंसे बड़ी सहायता मिली है। इतना ही नहीं किन्तु बहुत सी बातें तो हमे केवल इन्हींके द्वारा मालूम हुई है। प्राचीन इतिहासका कालक्रम अधिकतर इन्हींके द्वारा निर्णय हुआ है क्योंकि इनमें राजाओंके नाम और संवत् लिखे है। पुराणोंमें बहुतसी अशुद्धियाँ और मतभेद होनेके अतिरिक्त कालक्रम भी नही है और कहीं कहीं है भी, तो उसमें बड़ी भारी अशुद्धियॉ रह गई है। डाक्टर फ्लीटने ऐसी अशुद्धिका एक बड़ा अच्छा उदाहरण दिया है। वे लिखते है कि पुराणोंके कर्ताओंने समकालीन वशो और राजाओंको एक दूसरेके बाद मान कर उनके कालमे बड़ी गड़बडी कर दी है। पुराणोंमें मौर्यवशके आरभसे यवनोके अंत तकका मध्यवर्ती काल २५०० वर्षसे अधिक दिया है। यह मालूम है कि मौर्यवशका आरभ ईसवी सन्से ३२० वर्ष पूर्व हुआ। इसमे यदि पुराणोंके २५०० वर्ष जोड़ दिये जावें तो यवनोंके राज्यका अंत लगभग २२०० ईसवी सन्में अर्थात् आजसे लगभग तीन शताब्दिके पश्चात् निकलता है। पुनः पुराणोंमे यह भी लिखा है कि यवनोके बाद गुप्तवंशीय राजा और कई अन्य राजा हुए; यदि उपर्युक्त सन्में इन सबका भी राजत्वकाल जोड़ दिया जाय तो वर्तमानकालसे कई शताब्दि आगे निकल जायगा!! जब तक इतिहासमे कालक्रम न हो तब तक उसे इतिहास नहीं कह सकते। इन लेखोंके द्वारा हजारों ही ऐतिहासिक बाते मालूम हुई है। यहॉ पर उनका वर्णन नही हो सकता। नीचे केवल दो उदाहरण दिये जाते है; एकसे एक पौराणिक त्रुटि दूर हुई है और दूसरेसे एक सर्वसाधारणमे प्रसिद्ध बात भ्रांतिजनक सिद्ध हुई है।

बौद्धपुराण महावंशमे गौतमबुद्धका निर्वाणकाल ईसासे ५४३ वर्ष पूर्व दिया है। दीपवंश पुराणमें बुद्धदेवके निर्वाण कालसे अशोकके सिंहासनारूढ़ होनेतकका समय २१८ वर्ष दिया है; इसकी पुष्टि अशोकके मैसूर और अन्य स्थानोंके लेखोसे भी होती है। अशोकके एक लेखसे यह भी मालूम हो गया है कि वे ईसासे लगभग २७० वर्ष पहले सिंहासनारुढ़ हुए थे। अब २७० मे २१८ जोड़नेसे बुद्धदेवका निर्वाण काल ईसासे ४८८ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। इसका समर्थन और भी कई प्रबल प्रमाणों द्वारा हुआ है। अतएव महावंशमे दिया हुआ समय अशुद्ध है।

लार्ड एलिनबरा जब अफ़गान-युद्ध पर गये थे, तब सुलतान महमूदके मक़बरेमेंसे सन् १८८२ ई० में किवाड़ोंकी एक जोड़ी यहाँ लाये। उन्हें किसी तरह यह मालूम हुआ कि ये किवाड़ सोमनाथ (गुजरात) के सुप्रसिद्ध मंदिरोंके हैं। लोगोंने कहा कि जब सुलतान महमूदने सोमनाथ पर आक्रमण किया था तब वह इन किवाड़ोंको अपने साथ गज़नी नगरमे ले गया था। उक्त लार्ड इन किवाड़ोंको प्राचीन और ऐसे महत्त्वकी चीज समझकर भारतवर्षमे ले आये। ये किवाड़ सर्वसाधारणको दिखानेके लिए बाज़ारमें घुमाकर आगरेके किलेमें रख दिये गये। किवाड़ देवदारके है और अब भी सर्व साधारणके अवलोकनार्थ आगरेके किलेमे रक्खे हुए हैं। बहुत कालतक इनके विषयमें यही बात मशहूर रही कि ये सोमनाथके किवाड है। परन्तु कुछ समय हुआ इन पर सुलतान महमूदका एक लेख देखा गया और उससे यह मालूम हुआ कि ये सोमनाथके किवाड़ नहीं है।

ऐसी ही बहुतसी बाते लिखी जा सकती हैं। इन लेखोंसे केवल ऐतिहासिक बाते ही नहीं किन्तु भूगोलसम्बन्धी बाते भी

मालूम हुई है। इसी उपयोगिताके कारण इन लेखोका इतिहासमें बडा मान है। भारतवर्षका प्राचीन इतिहास आज कल अधिक तर इन्हींके आधारपर बनाया जा रहा है।

यद्यपि प्राप्त लेखोकी एक बडी सख्या हो गई है तथापि अभी बहुतसे लेख गुप्त हैं। अभी भारतभूमिके गर्भमें बहुतसी सामग्री छिपी हुई है। जैसा पहले कहा जा चुका है ताम्रपत्रके लेख लोगोके घरोमे मिलते है। इनमेंसे बहुतसे सरकारने अपने कर्मचारियों द्वारा लोगोके पाससे मँगवाकर विद्वानोंसे पढवाये है और बहुतसे अभी लोगोके पास बाकी हैं। बहुतसे प्राप्त पाषाणलेख अभीतक पढे ही नहीं गये। अत एव अभी इस सम्बन्धमें बहुत काम शेष है। आगामी अन्वेषणोमें जैनइतिहाससम्बन्धी भी बहुतसी बातोका पता अवश्य लगेगा।

मोतीलाल जैन, आगरा।

सत्यपरीक्षक यन्त्र।

अब दुनियामें झूठ बोलनेवालोंकी गुज़र नहीं। सत्यको छुपा रखनेवाले अब छुप नहीं सकते। अदालतोंमें, मामले—मुक़द्दमोंमें मजिस्ट्रेटो और न्यायाधीशोंको अब गवाहोंके साथ जिरह करनेकी ज़रूरत नहीं रही। फिजूल ऊल—जलूल बातोंमे अब अदालतोंको अपना कीमती वक्त बरबाद न करना पड़ेगा। इस आश्चर्यजनक यन्त्रके आविष्कारसे अब कोई बात छुपा रखनेका उपाय नहीं रहा,— और मिथ्या वादी बातकी बातमें पकड लिया जायगा।

मत समझिए कि यह कोई कोरी कल्पना है या चंडू खानेका गप्प है। सचमुच ही सचझूठके पकड़नेका यन्त्र तैयार होगया है। मि०

साइरिल वार्ट नामक एक मनस्तत्त्वज्ञ विद्वानने इस यन्त्रका आविष्कार किया है।

किसी गवाहकी ज़वानवन्दी लेते समय मजिस्ट्रेटको या वकीलको पूछना पड़ता है कि तुमने अमुक घटना देखी है या नहीं? परन्तु अब यह पूछनेकी ज़रूरत नहीं रही। कल्पना कीजिए कि किसी आदमीका खून होगया और उसकी लाश रास्तेमे पड़ी हुई मिली। इस मुकद्दमेंमें गवाह देनेके लिए एक आदमी लाया गया। जिस समय रास्तेमे लाश डाली गई थी उस समय वह आदमी वहाँ उपस्थित था। अब उससे यह दरयाफ्त करना है कि उसने यह घटना अपनी आँखों देखी है। इस समयके नियमानुसार वकील साहव पूछते है कि—"जिस समय रास्तेपर लाश डाली गई, उस समय तुम वहाँ उपस्थित थे?" परन्तु अब इसके बदले गवाहके सामने यंत्र रख दिया जायगा और सिर्फ 'रास्ता' इतना शब्द कहकर यंत्रमे चाबी भर दी जायगी। गवाहने यदि सचमुच ही घटना देखी होगी तो उसी समय उसके मनमें लाशकी बात आ जायगी और यदि वह सत्यवादी होगा तो तत्काल ही कह देगा 'लाश'। पर यदि वह इस बातको छुपाना चाहेगा तो 'लाश' नहीं कहेगा। इसका फल यह होगा कि वह विचार करेगा, अर्थात् उसके मनमे एक भावनाका उदय होगा। यह भावना उसके मस्तकका कार्य है; वह जब इस चिन्तामे पड़ेगा तब उसके मुख नेत्र आदिमे कुछ भावान्तर होगा। वह बातको छुपानेकी जितनी ही कोशिश करेगा, उतना ही उसके मुखके भावका परिवर्तन होगा और तब उसके सामने रक्खा हुआ यन्त्र उसके प्रत्येक परिवर्तनको अङ्कित कर लेगा। उसके हृदयमें जो आन्दोलन होगा—उस यंत्रसे ज़रा भी छुपा न रह सकेगा। अन्तमे या तो वह सच

कह देगा या झूठ कह देगा, अथवा बिलकुल ही चुप रह जायगा। बस, मनस्तत्त्वज्ञ विचारक, यन्त्र देखते ही जान लेगें कि वह सच कहता है या झूठ।

मि० वार्टने इस यन्त्रके सिवा छुपी बातको जान लेनेके लिए एक और भी विलक्षण उपाय निकाला है। वे कहते है कि,—किसी व्यक्तिसे कोई बात पूछी जाय और वह यदि उसका ठीक उत्तर न देकर और बात कहे तो उसे कुछ न कुछ अवश्य सोचना पडेगा। सत्य बात तो प्रश्न करनेके साथ ही बाहर निकल पडती है परन्तु झूठ बातके कहनेमें, वह चाहे कैसा ही जबर्दस्त झूठ बोलनेवाला क्यो न हो उसे जो कुछ आयास या श्रम करना पडेगा उसका प्रमाण किसी तरह भी छुपा नहीं रह सकता। उसके शरीरके एक प्रत्यङ्गपर उसका प्रभाव पड़ेगा और उससे उसकी झूठ बात बातकी बातमे पकड़ ली जायगी। यह प्रत्यङ्ग मनुष्यके हाथकी हथेली है। किसी बातको छुपानेके लिए जो श्रम करना पड़ता है, उससे मनुष्यकी हथेली पसीज उठती है। यह अवश्य है कि किसीकी हथेली कम पसीजती है और किसीकी अधिक। यह जाननेके लिए गवाहकी दोनो हथेलियॉ एक पानीसे भरे हुए बर्तनमे डुबा देनी पडती हैं और उस जलमें टेम्परेचर या तापमान यन्त्र रख दिया जाता है। इसके बाद बात पूछने पर यदि गवाह सच कहेगा तो जलकी शीतलता या उत्तापमे कुछ भी परिवर्तन न होगा, केवल शरीरकी गर्मीसे जितना होना चाहिए उतना ही होगा, किन्तु यदि वह झूठ बोलनेकी चेष्टा करेगा तो उसकी हथेलियाँ थोड़ी बहुत अवश्य पसीज आयगीं तथा उनके प्रभावसे जलमे परिवर्तन हो जायगा और उस परिवर्तनकी साक्षी तापमान तत्काल ही दे देगा। तब न्यायधीशों और जूरियोंको सिरपच्ची न करना पडेगी, वे जान लेंगे कि गवाह सच कहता है या नहीं।

अभीतक इस यन्त्रका व्यवहार शुरू नहीं हुआ है। जब तक यहाँवालेको इसके दर्शन न हो, तब तक आर्यसमाजी विद्वानोको चाहिए कि वे किसी वेदमन्त्रको खोजकर सिद्ध करे कि हमारे वैदिक ऋषि हजारो वर्ष पहले इस यन्त्रका व्यवहार करते थे और जैन पण्डितोंको अपनी शास्त्रसभाओमे यह कहकर ही श्रोताओकी जिज्ञासा चरितार्थ कर देना चाहिए कि भाई, जो यह जानता है कि पुद्गलोमे अनन्त शक्तियाँ हैं, उसे ऐसे आविष्कारोसे जराभी आश्चर्य नहीं हो सकता।

विविध-प्रसङ्ग।

१ मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें जैनजातिकी संख्याका ह्रास।

पिछली १९११ की सेंससरिपोर्टके पृष्ट १२६ मे जैनोके विषयमे जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है:—"भारतके धर्मोंमेसे जैनधर्मके माननेवाले लोगोंकी संख्या १२॥ लाख है। संख्याके लिहाजसे जैनसमाज बहुत ही कम महत्त्वका है। भारतको छोड़कर इतर देशोमे जैनधर्मके माननेवाले बहुत नहीं दिखते। राजपूताना, अजमेर और मारवाड़ प्रान्तमे इनकी संख्या २ लाख ९३ हजार और दूसरी रियासतों तथा अन्यान्य प्रान्तोमे ८ लाख १९ हजार है। अजमेर, मारवाड़ और बम्बई अहातेकी रियासतोंमे उनका प्रमाण शेष जनसंख्याके साथ सैकड़ा पीछे ८, राजपूतानेमें ३, बड़ोदामे २ और बम्बईमें १ पड़ता है। दूसरे स्थानोमें उनकी वस्ती बहुत विरल है। ये लोग अधिकतर व्यापारी है। पूर्वभारतमे प्रायः सभी जैन व्यापारके ही उद्देश्यसे जाकर वसे है। दक्षिणमे जैनोकी संख्या थोड़ी है और उनमे प्रायः खेतीसे जीविका निर्वाह करनेवाले हैं। सन् १८९१ से जैनोकी सख्या धीरे

धीरे कम हो रही है। १९०१ में वह प्रति सैकड़े ५.८ कम हुई थी और अवकी मनुष्यगणनामें भी प्रति सैकड़ा ६.४ कम हो गई है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है जैन लोग हिन्दूसमाजव्यवस्थाके अनुयायी है। इसलिए उनका झुकाव अकसर अपनेको हिन्दू कहलानेकी और रहता है। अभी अभी उनमेंसे कुछ लोग आर्यसमाजमे जाकर मिल गये हैं। पंजाव, वायव्य प्रान्त और वम्बईके जैनोका झुकाव हिन्दुओंके त्योहार तथा पर्व पालनेकी और विशेष है, इसलिए धीरे धीरे उनका हिन्दूधर्ममे मिल जाना सभव है। इन दश वर्षोंमें उनकी संख्या वायव्यप्रान्तमें प्रतिशत १०.५, पजावमें ६.४ और वम्बईमें ८.६ कम हुई है। वडोदाराज्यके अधिकारियोका मत है कि वड़ोदाराज्यमें जो प्रतिशत १० की कमी हुई है वह लोगोंके दूसरे देशोंको चले जानेके कारण हुई होगी। इसीप्रकार अभी हाल ही जो मनुष्यगणना की गई है उससे माल्म होता है कि कुछ लोगोने अपनेको हिन्दू वतला दिया होगा। परन्तु यह ठीक नही माल्म होता। मध्यप्रान्त और वरारमें भी फिरसे मनुष्यगणना की गई है, परन्तु उससे यही कहना पड़ता है कि कुछ लोग परधर्मानुयायी वन गये हैं। जैसे कि आकोला जिलेके कासार और कलार जातिके जैन हिन्दुओंमें मिल गये है। मध्यभारतमें जो प्रतिशत २२ की कमी हुई है उसके विषयमें भी यह कहना ठीक नहीं कि वह भी वड़ोदाके समान लोगोंके विदेश जानेके कारण हुई होगी। हमारी समझमे उनकी यह कमी प्लेगके कारण हुई है। इसमें ज़रा भी सन्देह नही। क्योंकि जैन लोग शहरोंमें ही कसरतसे रहते हैं और उनकी सघन वस्तियाँ वारवार प्लेगके मुखमें पड़ जाया करती है।" रिपोर्टके इन मन्तव्योंपर जैनोका विचार करना चाहिए।

---

२. पूजाप्रिय पण्डितोंकी पदवियाँ।

पदवियोके विषयमें हम पिछले द्वितीय अंकमे एक नोट लिख चुके हैं। उससे पाठकोंने ख़याल किया होगा कि यह पदवियोंका रोग श्रावक या गृहस्थोंमे ही प्रविष्ट हुआ है; परन्तु सहयोगी जैनहितेच्छुसे माळूम हुआ कि अब जैनसाधुओ पर भी इसने आक्रमण किया है। अभी कुछ ही दिन पहले पैथापुर नामक एक ग्राममें श्रीबुद्धिसागर नामक श्वेताम्बर साधु 'शास्त्रविशारद जैनाचार्य' की पदवीसे विभूषित किये गये है। लगभग दो वर्ष पहले उक्त साधुमहाराज जब बम्बईमें थे, तब ही उन्हें यह पदवी दी जानेका प्रयत्न किया गया था; परन्तु सुनते हैं कि उस समय मुनिमहाराजने पदवी लेनेसे इंकार कर दिया था और इसका कारण यह था कि आपके संस्कृतशिक्षक पं० श्यामसुन्दराचार्यने काशीके पण्डितोसे पदवी दिलानेके लिए जो यत्न किया था, किसीने उसकी पोल खोल दी थी। परन्तु अब उसे लोग भूल गये होंगे और कमसे कम एक ग्रामके लोग तो उससे अपरिचित ही होंगे, शायद इसी विश्वाससे महाराजने इस समय उक्त पदवी ग्रहण कर ली। इसमे सन्देह नहीं कि काशीके ब्राह्मण पण्डित पदवियोके देनेमें बहुत ही उदार है और भक्ति तथा पूजासे इन देवताओंको प्रसन्न करना बहुत ही साधारण बात है; परन्तु जैनधर्मके अनुयायियोके लिए यह विषय बहुत ही विचारणीय है कि वे इन पूजाप्रिय पण्डितोंकी दी हुई पदवियोंके भारसे नीचे गिरेंगे या ऊपर उठेंगे।

इस नोटके लिख चुकनेपर हमने सुना कि काशी स्याद्वादविद्यालयके अधिष्ठाता बाबू नन्दकिशोरजीको अभी थोड़े दिन पहले जो 'विद्यावारिधि' की पदवी प्राप्त हुई है वह भी काशीके पण्डितोंकी

दी हुई है। हम नहीं सोच सकते कि एक काम करनेवाले पुरुषने इस पदवीके पानेका प्रयत्न क्या समझकर किया होगा।

---

३ संस्थाओंके पाप और समाचारपत्र।

समाचारपत्रोंसे जितना अधिक लाभ होता है, उतनी ही अधिक उनसे हानि भी होती है यदि उनका सम्पादन निरपेक्ष दृष्टिसे सत्यका उपासक बनकर न किया जाता हो। इस समय समाचारपत्र हमारे नेत्रों और कानोंका अधिकार धीरे धीरे छीनते जा रहे हैं—नेत्रों और कानोंके होते हुए भी हम समाचारपत्रोंके नेत्रों और कानोंपर विश्वास करनेके लिए वाध्य होते जा रहे हैं। इस लिए आवश्यक है कि हम इन नये नेत्रों और कानोंको ऐसे बनावें जिससे हमें कभी धोखा न खाना पडे—और जबतक ऐसा न हो तबतक केवल इन्हींके अवलम्बन पर न रहें। जैनसमाजकी तीन चार सस्थाओंके विषयमें हमें अभी अभी जो समाचार मिले हैं, उनसे हम यह बात कहनेके लिए लाचार हुए हैं कि हमारे समाचारपत्र सर्व साधारणको बड़ा भारी धोखा दे रहे हैं और उक्त सस्थाओंके भीतरी मालिन्य तथा पाशविक अत्याचारोंको छुपाकर उन्हें आदर्श सस्था वतला रहे हैं। जिस समय हमने एक सस्थाके कुछ बालकोंकी चिट्ठियाँ पढ़ीं, उस समय उनके ऊपर होते हुए घृणित अत्याचारोंकी पीड़ासे हमें रो आया! हमें पहले विश्वास न था कि जैनसमाजमें ऐसे ऐसे नरपशु भी हैं जो सस्थाओंके सचालक बनकर छोटे छोटे अनाथ बच्चोंके साथ ऐसी नारकी लीला कर सकते हैं और इस पर भी कोई उनके पजेसे सस्थाको छुड़ानेका साहस नहीं कर सकता है। थोड़े ही दिन पीछे जब हमने एक प्रतिष्ठित गिने जानेवाले पत्रमें इसी संस्था-

की और इसके संचालककी प्रशंसाके गीत पढ़े, तब हमे मालूम हुआ कि समाचारपत्रोंसे हमारी हानि भी कितनी हो रही है। एक दूसरी सस्थाके आनरेरी व्यवस्थापक महाशय भी कई विद्यार्थियोके साथ अपनी राक्षसी वासनाये तृप्त किया करते थे और अपने पृष्ठपोषकोंकी सहायतासे लोगोकी दृष्टिमे पुरुपोत्तम बन रहे थे। अभी कुछ ही दिन पहले एकाएक आपकी पैशाचिक लीला प्रगट हो गई और गहरी मार खाकर आप संस्थासे अलग हो गये। यह सब होनेपर भी आश्चर्य यह है कि समाचारपत्रोंने आप पर कलङ्कका एक भी छींटा न पड़ने दिया। एक दो संस्थाये और भी ऐसी हैं जिनके भीतर खूब ही घृणित कर्म होते है परन्तु बाहरसे वे बहुत ही उज्ज्वल और पवित्र बन रही है। कुछ महात्माओकी उनपर इतनी गहरी कृपा है कि अभी उनका स्वरूप लोगोंपर प्रगट होनेकी आशा नहीं की जा सकती; परन्तु यह निश्चय है कि सोनेके चमकदार घड़ेमे भरा हुआ भी मैला एक न एक दिन अपनी भीतरी दुर्गन्धिसे प्रगट हुए बिना न रहेगा। अपनी संस्थाओको इन पापोसे बचानेके लिए हमें समाचारपत्रोंकी दशा सुधारना चाहिए, अपनी बुद्धि, नेत्र और कानोंको काममे लाना चाहिए और साथ साथ जहाँ सस्थायें हों वहाँके स्थानीय लोगोंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे उनपर तीक्ष्ण दृष्टि रक्खे और उनकी भीतरी दशाओसे सर्व साधारणको परिचित करते रहें। समाचारपत्रोंमें विश्वस्त समाचार प्रगट न होनेका एक कारण स्थानीय लोगोकी उपेक्षा भी है।

---

४. संस्थाओंको योग्य संचालक नहीं मिलते।

हमारे यहाँ नई नई संस्थाये खुल रही है और खोलनेका उत्साह भी यथेष्ट दिखलाई देता है; परन्तु यह बड़ी ही चिन्ताकी बात है कि

उनके चलानेके लिए योग्य पुरुष नहीं मिलते। जिस संस्थाको देखिए उसीमे योग्य पुरुषोंकी कमी दिखलाई देती है। क्योंकि अभी तक उच्चशिक्षाप्राप्त अनुभवी सदाचारी और स्वार्थत्यागी पुरुषोंका ध्यान ही इस ओर नहीं गया है। हमको भय है कि यदि यही दशा और कुछ समय तक रही और उपर्युक्त अर्द्धदग्ध विषकुम्भपयोमुख चरित्रहीन महात्माओंके ही हाथमें सस्थाओंकी वागडोर वनी रही तो लोगोंके वढते हुए उत्साह और औदार्यपर वड़ा भारी धक्का लगेगा और उन्नतिके मार्गमें हम फिरसे पिछल जावेंगे। क्या इस समय भी शिक्षित जनोंको हमारी इन सस्थाओंपर दया न आयगी ?

५. जैनसिद्धांतभास्कर।

जैनसिद्धान्तभास्करके पहले अकोंको और उसके कार्यकर्त्ताओंके उत्साहको देखकर हमने समझा था कि जैनसमाजमे अपने ढॅगका यह एक निराला ही पत्र होगा; और ऐतिहासिक लेख प्रकाशित करके लुप्त जैन इतिहासका उद्धार करेगा; परन्तु देखते है कि हमारी यह आशा निराशामें परिणत हो रही है। त्रैमासिक होकर भी उसके वर्षों तक दर्शन नहीं होते हैं। लगभग ढाई वर्षमें उसकी केवल दो प्रतियाँ या तीन अंक प्रकाशित हुए हैं। चौथा अक कव तक प्रकाशित होगा, इसका अभी तक कुछ ठिकाना नहीं है। हम आशा करते है कि जैन सिद्धान्तभवन, आराके सचालकगण इस ओर दृष्टि डालेगे और जैन-समाजके इस अभिनवपत्रको समयपर निकालनेकी चेष्टा करेंगे। इस नोटके छप चुकनेपर जैनमित्रसे मालूम हुआ कि भास्करका चौथा अक प्रेसमें जा चुका हैं। खुशीकी वात है।

६. जैनतत्त्व-प्रकाशक।

इटावाके जैनतत्त्वप्रकाशकके भी सात आठ महिनेसे दर्शन नहीं हुए है। वीचमें सुना था कि कई महिनोंका एक सयुक्त अंक निकलनेवाला

है; परन्तु उसका भी अब तक पता नहीं है। यो तो जैनसमाजमें बहुत ही कम पत्र ऐसे हैं जो समयपर निकलते हों। सब ही कुछ न कुछ विलम्बसे निकलते हैं; परन्तु इन नवजात पत्रोंका विलम्ब बहुत ही खटकता है। शुरूमें ये बड़ा जोश-खरोश दिखलाते हुए दर्शन देते हैं और पीछे गहरी डुबकी ले जाते हैं। हमारी समझमें इसका कारण अनुभवकी कमी और उत्साहकी अधिकता है। काम जब सिरपर पड़ता है, तब मालूम होता है कि वह कठिन है। पर नये जोशवाले इस बातपर विचार नहीं करते और अन्तमें नाना असुविधाओंमें पड़कर डुबकी लेनेके लिए लाचार होते है। अच्छा हो, यदि कर्मक्षेत्रमें पैर रखनेके पहले ही आनेवाली असुविधाओंपर थोड़ासा विचार कर लिया जाय। इस नोटके लिखे जानेके बाद मालूम हुआ कि तत्त्वप्रकाशक बन्द कर दिया गया।

---

७. द्रव्यदाता और जीवनदाता।

किसी भी आन्दोलन या प्रयत्नका फल जल्दी दृष्टिगोचर नहीं होता; बहुत समय तक उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। विशेष कर ऐसे समाज या समूहके लिए किये हुए आन्दोलनका फल तो देरसे दृष्टिगोचर होना ही चाहिए जो मृतप्राय हो रहा हो, जिसकी हिलनेचलनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो, जो किसी भी नई बातको शंकाकी दृष्टिसे देखता हो और अपनी पुरानी लकीरका फकीर बना हुआ हो। लगभग २० वर्षके लगातार आन्दोलनके बाद अभी अभी जैनसमाजके करवट बदलनेके लक्षण दिखलाई दिये हैं और अब आशा होने लगी है कि वह कुछ समयमें एक सजीव समाजके रूपमें खड़ा हो सकेगा। इसके पहले बहुतसे आन्दोलन करनेवालोंको कभी कभी बड़ी ही निराशा होती थी और वे समझते थे कि यह समाज सर्वथा ही निर्जीव हो गया है—इसमें चेतनता लानेका प्रयत्न करना निष्फल ही होगा। परन्तु सौभाग्यका विषय है कि अब हम उस निराशाकी सीमाको पार गये हैं और आशाके हरे भरे क्षेत्रको अपने सामने देख रहे हैं। अभी अभी जो हमारे यहाँ दो लाख और चार लाखके दो बड़े बड़े दान हुए हैं, उनके कारण निराशा हमारे हृदयसे निकल ही रही थी कि बाबू सूरजभानजी वकील और बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारके स्वार्थत्याग व्रत ग्रहण

करनेका समाचार मिला और आशा अपने दोनों हाथोंसे आश्वासन देती हुई दिखलाई दी। किसी भी समाजकी उन्नतिके लिए दो बातोंकी सबसे अधिक आवश्यकता है —एक तो द्रव्यकी और दूसरे कार्य करनेवाले स्वार्थत्यागी मनुष्योंकी। यद्यपि हमें अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिए सेठ हुकमचन्दजी जैसे सैकडों धनिकोंकी और बाबू सूरजभानजी तथा जुगलकिशोरजी जैसे सैकडों हजारों स्वार्थत्यागियोंकी जरूरत होगी-दो चार धनिकों और त्यागियोंसे हमारा काम नहीं चल सकेगा, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हम सफलताके मार्गपर जा रहे है; द्रव्यदाता और जीवनदाता दोनोंने ही हमें एक साथ दर्शन दिये है और हमारे हृदयमें एक नवीन ही उत्साह और बलका सचार कर दिया है। हमारा दृढ विश्वास होगया है कि अब जैनसमाज उठेगा, बलवान् होगा, उद्योगशील होगा और एक दिन सारे उन्नत समाजोंके मार्गका सहचर होगा। इन उदाहरणोंसे हमें जानना चाहिए कि हमारे प्रगति और उन्नतिसम्बन्धी कोई भी आन्दोलन व्यर्थ न जावेंगे—उनका अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। भले ही सफलता जल्दी न हो, पर होगी अवश्य। हमें निराश न होना चाहिए और कष्टसाध्यसे कष्टसाध्य विषयका भी आन्दोलन करनेसे न चूकना चाहिए। यह आन्दोलनका ही प्रसाद है जो आज केवल प्रतिष्ठाओंमें ही अपने धनको अधाधुध खर्च करनेवाली जातिमें विद्यासस्थाओंके लिए भी लाखों रुपया देनेवाले उदार पुरुप दिखलाई देने लगे हैं और जीवनभर रुपया ढालनेकी मशीन बने रहनेवाले लोगोंमें भी जाति और धर्मसेवाके लिए जीवन उत्सर्ग करनेवालोंके दर्शन होने लगे हैं।

---

८. महाराष्ट्र जैनसभाके वार्षिकोत्सवमें धींगाधींगी।

महासभाके जल्सोंमें और इस ओरकी प्रान्तिकसभाओंके जल्सोंमें कई बार धींगाधींगीकी नौबत आ चुकी है; परन्तु दक्षिण प्रान्तकी सभाये इससे साफ बची हुई थी। इससे हम सोचते थे कि दक्षिणके जैनी भाई बहुत ही शान्त और विचारशील है; चुपचाप अपना काम किये जा रहे है। किन्तु अभी ता० १०-११-१२ अप्रैलको दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाका जो अधिवेशन हुआ उसकी रिपोर्टसे मालूम हुआ कि दक्षिणी भाई हम सबका भी नम्बर ले गये। कुछ महात्माओंने

इस मौक़ेपर यहाँ तक सिर उठाया कि एक दिन सभाका काम बन्द रखना पड़ा, सभामंडप उखाड़के फेंक देना पडा और अन्तमें पुलिस तककी सहायता लेनी पड़ी, तब कहीं जाकर शान्ति हुई और सभाके अधिवेशन किये जा सके! पाठकोंको मालूम होगा कि श्रीयुक्त अण्णापा बाबाजी लट्ठे एम. ए. महाराष्ट्रसभाके प्रधान स्तम्भ हैं। उक्त सभाने अब तक जो कुछ सफलता प्राप्त की है उसमें आपका हाथ सबसे अधिक रहा है। कोल्हापुर बोर्डिंगके इस समय आप सेक्रेटरी है। आप एक स्वाधीन प्रकृतिके मनुष्य है, इसलिए कुछ लोगोंकी आँखोंमें आप शुरूसे ही खटक रहे हैं। ये लोग नहीं चाहते कि लट्ठे महाशय बोर्डिंगके सेक्रेटरी रहें। इसके लिए वे लगातार कई वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु सफलता नहीं होती। कई बार सभामें पेश करके भी उन्हें इस विषयमें निराश होना पड़ा है; क्योंकि सभाका बहुमत लट्ठे महाशयके ही पक्षमें होता था। इससे वे बहुत ही चिढ़ गये थे और जैसे बने तैसे अपना मनोरथ सिद्ध करनेका मौक़ा देख रहे थे। इसी समय सभाका वार्षिक अधिवेशन हुआ और उक्त मडलीने जिसमें कि पंडित कल्लापा भरमापा निटवे और श्रीयुत बापू अण्णा पाटील मुख्य हैं—लगभग २०० गुंडोंको एकत्र करके बोर्डिंगको अपने हस्तगत करनेका और लट्ठे सा० को बोर्डिंगसे बलपूर्वक अलग करनेका प्रयत्न किया। जब ये लोग प्रत्यक्ष रूपसे बखेड़ा करनेके लिए तैयार हो गये, तब अधिवेशनके सभापति श्रीयुक्त जयकुमारजी चवरे, बी. ए., एल एल. बी. और दूसरे मुखियोंने इस झगड़ेको आपसमें ही मिटा डालनेका शक्तिभर प्रयत्न किया। कहा कि आप लोग सभामें यह प्रस्ताव पेश करे कि लट्ठे सा० बोर्डिंगके सेक्रेटरी न रक्खे जावे और सभा इसका जो फैसला करे उसे सबको मानना

चाहिए। परन्तु इसमें जरा भी सफलता न हुई। क्योंकि उक्त मण्डली जो कुछ करना चाहती थी वह सब अन्यायपूर्वक। उसने साफ़ कह दिया था कि सभाके बहुमतको हम कुछ नहीं समझते। यदि तुम लट्ठेको बोर्डिंगसे अलग न करोगे तो हम सभामें दंगा करेंगे और लट्ठेको घरसे निकालकर बाहर कर देंगे। इसी मौकेपर मंडलीकी ओरसे एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। उसमे लिखा था कि "लट्ठेने अपनी भतीजीका व्याह शास्त्रविरुद्ध, रूढ़िविरुद्ध और सभाके प्रस्तावके विरुद्ध किया, इस लिए उन्हें सभाके कामसे अलग कर देना चाहिए।" इसपर लट्ठे सा० ने कहा कि "चतुर्थ और पंचम जातिमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होना चाहिए। इसे मैं अच्छा समझता हूँ। इसी लिए मैंने अपनी भतीजीका विवाह चतुर्थ जातिके लड़केके साथ किया है और आगे भी मैं ऐसे विवाह करूँगा। सभा चाहे तो इस विषयमें अपनी प्रसन्नता या नाराजी प्रकट कर सकती है। इस कारणसे अथवा और किसी कारणसे यदि सभाको मेरी आवश्यकता न हो, तो मैं बोर्डिंगका ही क्यों सभाकी सभासदीका भी सम्बन्ध तोड़ देनेके लिये तैयार हूँ।" लट्ठेने अपना यह विचार सभाके समक्ष भी प्रकट कर दिया। परन्तु सभाको यह मालूम हो चुका था कि इस बखेड़ेका कारण चतुर्थ-पंचम विवाह नहीं किन्तु दश बारहवर्षका पुराना वैर है और इस लिए विपक्षीगण लट्ठे सा० को अलग करके उनकी जगह अपने एक मुखियाको—न कि सभाके चुनावके अनुसार किसी दूसरे योग्य पुरुषको—बिठाना चाहते हैं, इसलिए उसे लाचार होकर इस ओर दुर्लक्ष्य करना पड़ा और अन्तमें पुलिसके द्वारा शान्ति करानी पड़ी। इसके बाद सभाका कार्य कुशलतापूर्वक समाप्त हुआ। सभाने अबकी बार एक नया पाठ सीखा और ऐसे बखेड़ोंसे बचनेके लिए उसने अपनी नियमावलीका

वहुत कुछ संशोधन और परिवर्तन किया । इस वृत्तान्तसे इस वाक्यकी वास्तविक सार्थकता माढ्म होती है कि "उन्नतिका मार्ग विरोधके दाँ- तोंमेंसे होकर है ।" जब हम आगे बढ़े है, तब इस प्रकारके विघ्न और कष्ट आवेंगे ही । विघ्नोसे घबड़ाना नहीं चाहिए । इस प्रकारके विरो- धोंको हमे बुरा भी न समझना चाहिए । क्योकि इनसे हमारी जीवनी शक्तिका पता लगता है और काम करनेकी शक्तिको उत्तेजन मिलता है ।

---

९. अनन्त जीवन या दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।

मथुराके पंचम वैद्य-सम्मेलनमें श्रीयुक्त वैद्य भोगीलाल त्रीकमलालका इस विषयपर एक पाण्डित्यपूर्ण लेख पढ़ा गया था । इस लेखमे वैद्य- जीने कई विलक्षण और विचारणीय बातें कही है । आप कहते है कि मनुष्योके लिए मृत्यु स्वाभाविक नहीं है । वैज्ञानिक विद्वानोका मत हैं कि यह अभी तक किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सका है कि मृत्यु स्वाभाविक है । ऐसा एक भी कारण शरीरविज्ञान शास्त्र नही बतला सकता, जिससे प्रकृतिके और स्वास्थ्यके नियमोंका अच्छी तरह पालन करनेपर भी मनुष्यको मृत्युके अधीन होना ही पड़े । विविध शारीरिक क्रि- याओके ऊपर योग्य उपायोंके द्वारा कमसे कम इतना अधिकार तो मनुष्य अवश्य प्राप्त कर सकता है कि जिससे अपने शरीरको दीर्घ काल तक जीवित रख सके । मनुष्यका शरीर ऐसे यंत्रके समान नहीं है जिसका निरन्तर घर्षण होते रहनेसे क्षय हो जाता है । क्योंकि वह निरन्तर ही अपने आपको नवीन बनाता रहता है । हमे प्रतिदिन नया शरीर मिलता रहता है । प्रतिदिन ही हमारी जन्मतिथि है । क्योंकि हमारे शरीरकी क्षय और नवीकरणकी क्रिया कभी नहीं रुकती । अर्थात् मलविस- र्जन और नवीकरणकी क्रियाओमे सामञ्जस्य रखनेसे शरीरका सर्वथा

क्षय होना रोका जा सकता है। आयुके क्षय करनेवाले कारणोंको हम नहीं जानते अथवा जाननेपर भी उन्मत्तइन्द्रियोंके अधीन होकर उनकी परवा नहीं करते, इसी लिए हम अमरत्वकी प्राप्ति नहीं कर सकते। इस देशमें पहले ऐसे अनेक महात्मा हो गये हैं जिन्होंने मृत्युपर विजय प्राप्त की थी। दीर्घायु प्राप्त करनेवालोंके तो सैकड़ों दृष्टान्त अब भी मिलते हैं। इसके बाद वैद्यजीने १०० वर्षसे लेकर २०७ वर्ष तककी आयुवाले देशी और विदेशी १५ स्त्री पुरुषोंके विश्वसनीय उदाहरण देकर दीर्घायुष्यकी आवश्यकता बतलाते हुए उसकी प्राप्तिके उपाय वर्णन किये हैं। वे उपाय सक्षेपमें ये हैं:–

१ **ब्रह्मचर्य**–दीर्घायुष्यसे इसका बहुत बडा सम्बन्ध है। अष्टाग ब्रह्मचर्य (दर्शन, स्पर्शन, भाषण, विषयकथा, चिन्तन और क्रीडा आदि) जितना ही अधिक कालतक पाला जायगा, जीवन उतना ही अधिक चिरस्थायी होगा। यदि जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य पालन न किया जासके, तो कमसे कम विवाहित जीवन धारण करके इन्द्रियनिग्रहका अभ्यास अवश्य करते रहना चाहिए। सुश्रुतके मतसे ४० वर्षकी अवस्थातक समस्त धातुओंकी पुष्टि होती रहती है तथा ४८ वर्षमें सांगोपाग शरीरकी समस्त धातुयें सम्पूर्णताको प्राप्त हो जातीं हैं। प्राणीविज्ञानशास्त्रने सिद्ध किया है कि दूध पीनेवाले (mammalia) प्राणियोंकी शरीररचनाका क्रम पूर्ण होनेमें जितना समय व्यतीत होता है उससे पाँचगुणी उनकी आयु होती है। इस नियमके अनुसार जो ४८ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करेगा और आरोग्यशास्त्रके नियमोंके अनुकूल चलेगा, वह अवश्य ही २४० वर्षकी आयु प्राप्त कर सकेगा। इसी तरह ४० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला २०० वर्ष तक और २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालनेवाला १२५ वर्षकी

अवस्था तक जीवित रह सकता है। छान्दोग्य उपनिषत्में कहा है कि ४८ वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला पवित्रात्मा ४०० वर्ष तक जी सकता है। **२ मानासिक विश्वास**—सदा यह विश्वास रक्खो कि हम बहुत काल तक जीते रहेंगे। एक ऐसे काल्पनिक चित्रको अपने हृदयमें सदा ही अंकित किये रहो कि जो शतवर्षायुष्क, स्वस्थ और सुन्दर हो। इससे न्यून जीवनकी इच्छा कभी मत करो। अपनी शक्तिपर विश्वास रक्खो। **३ उत्तमस्वभाव**-अपनी आदतोंको ऐसी बनाओ जिससे तुम्हारी मानासिक स्थिति सदैव आनन्दमय, उत्साहयुक्त, दृढ, साहसपूर्ण, उच्चभावनामय रहे और जीवनमें नये अणु पैदा होनेसे जीवनी शक्ति वढा करे। जीवनक्रियाकी अन्तरायस्वरूप बुरी आदतोको छोड़ दो। **४ एकाग्रता**—प्रत्येक अच्छे विषयमें मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करो। किसी भी कार्यको लापरवाहीसे या आफ़त टालनेके ढँगसे मत करो। **५ व्यायाम**—शक्तिके अनुसार नियमित रूपसे व्यायाम या कसरत किया करो जिससे शरीर यौवनपूर्ण और सुदृढ वना रहे। **६ निश्चित उद्देश्य**—अपने जीवनका एक निश्चित उद्देश्य रक्खो। लक्ष्यहीन मन विना पतवारके जहाज़ समान है। **७ श्वासोच्छ्वास क्रिया**—श्वास लेनेकी शक्तिको अच्छी तरहसे वढ़ाओ। खूब स्वच्छ और ताजी हवाका सेवन करो। जिस कमरेमें हवाका यथेच्छ विहार न होता हो, उसमें कभी मत सोओ। **८ घूमना फिरना**—निरन्तर दूर दूर तक घूमनेको जाओ। उस समय अच्छी तरहसे श्वास प्रश्वास लो, शरीरको ढीला रक्खो और प्राकृतिक सौन्दर्यका अवलोकन करो जिससे नवीन उत्साह और उमग पैदा होती रहे। **९ स्नान**—शारीरिक और श्वासोच्छ्वासक व्यायामके बाद प्रतिदिन ठंडे जलसे स्नान करो। सप्ताहमे दो

बार सोनेके पहले उष्ण जलसे स्नान करो और कभी कभी सारे शरी-रको सूर्य किरणोंका स्नान भी कराया करो। १० भोजन—जल्दी पचनेवाला और शरीरको पुष्ट करनेवाला भोजन दो बार ग्रहण करो। भोजनको अच्छी तरह चवा कर गलेके नीचे उतारो। मास, काफी, चाह आदिको हाथसे भी मत छुओ। भोजनके साथ पानी या प्रवाही पदार्थ मत पियो। भोजनके बीचमें बहुत धीरे धीरे थोडा पानी पीना चाहिए। इससे वृद्धावस्था लानेवाले कारण दूर होते है और युवावस्था तथा सौन्दर्य प्राप्त होता है। मिताहारी बनो। सच्ची भूख लगने पर भोजन करो। यदि मिल सके तो प्रतिदिन एक सेव अवश्य खाओ। इस फलमें जीवनके नवीन तत्त्व उत्पन्न करनेका विशेष गुण है। ११ निद्रा—७–८ घंटेकी निद्रा लो और शरीरको शिथिल करके आराम करो। चुस्त कपडे कभी मत पहनो। सादे और स्वच्छ कपडे पहनो। १२ फुटकर बातें—अत्यावश्यक और अल्पावश्यक कामोंका बोझा अपने सिर पर मत लो। काम करनेकी पद्धति सीखो। जोखिमोंका खयाल रखके चलो। शरीरमें जो नाश और नवीकरणकी क्रिया चला करती है उसे अच्छी तरह समझनेका प्रयत्न करते रहो। इस सिद्धान्त पर विश्वास रक्खो कि अपने जीवन और शरीरमें परिवर्तन करनेके लिए हम स्वय शक्तिवान् है। बूढ़े होनेके विचारोंको कभी पास मत आने दो। जवानीके सशक्त विचार स्थिर रक्खो। दीर्घजीवनकी भावनाको दृढ बनाते रहो। सदैव प्रसन्न और आनन्दित रहो। धीरे बोलनेका अभ्यास करो। क्रोध, अभिमान, भय, लोभ, स्वार्थपरता, ठगाई, विश्वासघात, दुर्व्यसन, दुराचार, निन्दा, चुगली आदि दुर्गु-णोंको छोड़ दो। सहनशीलता, उदारता, परोपकार, दया, प्रेम आदि गुणोंको अपनाओ। दीर्घजीवन, आरोग्य और सौन्दर्यके विषयमे

अपने मनोबलको दृढ करो जिससे अनन्त जीवन, महान् पराक्रम और प्रभाव आदिसे तुम्हारी मित्रता हो।

---

७ जैन पत्रोंकी आर्थिक अवस्था।

जैनसमाजको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि उसके साप्ताहिक पाक्षिक या मासिक किसी भी पत्रकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। ऐसा एक भी पत्र नहीं है जो मुनाफ़ेके लिए निकाला जाता हो अथवा जिसने कुछ मुनाफ़ा उठाया हो। आप चाहे जिस पत्रका वार्षिक हिसाब मँगाकर देख लीजिए वह बराबर घाटेमें ही उतरता हुआ मिलेगा। इसी घाटेके कारण अनेक पत्र बन्द हो जाते है और आगे उनसे जो लाभ होता उससे समाजको वंचित रहना पड़ता है। जो पत्र उनके संचालकोंके साहस अध्यवसाय और प्रयत्नसे घाटा सहकर भी किसी तरह चल रहे है उनकी अवस्थामे भी जितनी उन्नति होना चाहिए उतनी नहीं होती। हो भी नहीं सकती। क्योंकि अच्छे उपयोगी लेखोंके लिखने और संग्रह करनेके लिए, पत्रका आकार सौन्दर्य बढ़ानेके लिए, चित्रादि प्रकाशित करनेके लिए, समयपर प्रकाशित करनेके लिए और उत्तम व्यवस्था रखनेके लिए रुपयोंकी ज़रूरत होती है और यथेष्ट रुपया तब हो जब ग्राहकोंकी संख्या अधिक हो। परन्तु ग्राहक मिलते नहीं और ऐसी दशामें ये पत्र किसी तरह रोते झींकते हुए चलाये जाते है। न उनमे ताजे और विश्वस्त समाचार रहते हैं, न उच्चश्रेणीके प्रगतिकारक लेख रहते है, न मनोरंजनके साथ साथ शिक्षाकी सामग्री रहती है, न धर्म और समाजकी अवस्थाकी गभीर आलोचना रहती है और न साहित्यकी चर्चा होती है। फल इसका यह हुआ है कि समाजमें ज्ञानकी वृद्धि और नये विचारोंकी बाढ बन्द हो रही है। उत्तेजन और कार्यक्षेत्रके अभावसे न तो लेखक

ही तैयार होते हैं और न अच्छे विचारोका विस्तार तथा ज्ञानकी अभिरुचि बढती है। वर्तमान समयमें समाचारपत्र और मासिकपत्र उन्नतिके सबसे बड़े साधन हैं। इस बातको सब ही स्वीकार करते हैं। इस लिए इनकी दशा सुधारना मानो अपनी ही दशा सुधारना है। हमारी कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि यदि हम इस बातको समयपर छोड़ दें—यह सोच लें कि धीरे धीरे ग्राहकसंख्या बढेगी और उससे पत्रोंकी दशा अच्छी हो जायगी, तो ठीक न होगा। ग्राहकसंख्या थोड़ी बहुत अवश्य बढ़ती रहेगी, परन्तु वह इतनी नहीं बढ़ सकती जितनी कि दूसरोंके पत्रोंकी बढ़ सकती है। क्योंकि एक तो हमारी संख्या बहुत ही थोड़ी है और फिर उसमें भी कई सम्प्रदाय कई पथ और कई भाषायें हैं। ऐसी अवस्थामें जबतक कोई खास प्रयत्न न किया जाय, तबतक हमारे पत्रोंकी दशा अच्छी नहीं हो सकती। या तो धनिक इन पत्रोंको इतनी सहायता दे देवे जिससे केवल ग्राहकोंके भरोसेपर इन्हें न रहना पड़े या धनिकोंकी संस्थाओंके ओरसे ही दो चार अच्छे पत्र निकाले जावे जिन्हे धनकी विशेष चिन्ता न रहे। यदि धनिकोंका लक्ष्य इस ओर न हो अथवा उनकी अधीनतामें विचारस्वाधीनताके नष्ट होनेकी संभावना हो, तो शिक्षित और मध्यम श्रेणीके लोगोंको ही इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे लोग यदि प्रतिवर्ष दो दो चार चार रुपया ही पत्रोंकी सहायताके लिए दे दिया करें अथवा दश दश पाँच पाँच ग्राहक ही बना दिया करे तो पत्रोंकी स्थिति बहुत कुछ सुधर सकती है। इसके सिवा यदि सम्पादक लोक साम्प्रदायिक झगड़ोंमें विशेषतासे न पडें और लोगोंमें विचारसहिष्णुता बढाई जावे, तो भी ग्राहकसंख्या बढ सकती है। क्योंकि ऐसा होनेसे प्रत्येक जैनपत्रको तीनों सम्प्रदायके लोग पढ सकेंगे।

" कर भला होगा भला।"

(१)

आज हम अपने पाठकोंको उस समयकी एक आख्यायिका सुनावेगे जब भारतवर्ष उन्नतिके शिखरपर चढ़ा हुआ स्वर्गीय सुखोंका अनुभव करता था; वह सब प्रकारसे स्वाधीन, सुखी, सदाचारी और शान्त था; धनी मानी उद्योगी और ज्ञानी था और इसके साथ ही दूसरे देशोंको क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्गुणोंकी शिक्षा देता था। उस समय यहाँके व्यापारी दूरदूरके देशों और द्वीपोमें जाया करते थे और हजारों विदेशी व्यापारी भारतके मुख्य मुख्य शहरोंमें दिखलाई देते थे। आजकालके कलकत्ता और बम्बई जैसे समृद्धशाली नगर भी उस समय अनेक थे और विपुल व्यापार होनेके कारण उनमें खूब चहलपहल रहती थी। छोटे नगरों, कसबों और गाँवोकी अवस्था बहुत ही अच्छी थी। प्रजाका जीवन बहुत ही सुखशान्तिसे व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका वह मध्याह्नकाल था। जहाँ तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुन पड़ता था। बड़े बड़े राजा महाराजा और धनी बौद्धधर्मके प्रचारमें दत्तचित्त थे। हजारों बौद्ध श्रमण जहाँ तहाँ विहार करते हुए दिखलाई देते थे।

बनारसकी ओर जानेवाले सडक पर एक घोडा गाड़ी जा रही है। घोड़ा बहुत तेजीसे जा रहा है। गाड़ीपर सिर्फ दो आदमी है। एक गाडीका स्वामी और दूसरा नौकर। स्वामीके वेशभूषासे मालूम होता है कि वह कोई धनिक व्यापारी है। उसकी मुखचेष्टा बतली रही है। उसे नियत स्थान पर जल्दी पहुँचना है।

अभी अभी एक अच्छी वर्षा हो गई है, इससे ठडी हवा चलने लगी है। वादलोंके हट जानेसे धूप निकल आई है और उससे दिन वहुत ही सुन्दर माळ्म होता है। वृक्षोंके पत्ते पानीसे धुल गये है और हवाके झोके लगनेसे आनन्दमें थिरक रहे है। प्रकृतिदेवीने एक अपूर्व ही शोभा धारण की है।

आगे ऊँची चढ़ाई आजानेसे जब घोड़ोंने अपनी चाल धीमी कर दी, तब धनिकने देखा कि सडककी पटली परसे एक बौद्ध श्रमण नीचेकी ओर दृष्टि किये हुए जा रहा है। उसकी मुखमुद्रापर शान्तिता, पवित्रता और गभीरता झलक रही है। उसे देखते ही सेठके हृदयमे पूज्यभाव उत्पन्न हुआ। वह विचार करने लगा—अहा! चेष्टासे ही माळ्म होता है कि यह कोई महात्मा है—पवित्रताकी मूर्ति है और धर्मका अवतार है। सज्जनोंके समागमको विद्वानोने पारस-मणिकी उपमा दी है। जिस तरह पारसके सयोगसे लोहा सुवर्ण हो जाता है, उसी तरह सज्जनोके समागमसे भाग्यहीन भी सौभाग्यशाली हो जाता है। यदि यह साधु भी वनारसको जाता हो और मेरे साथ गाडीमें वैठना स्वीकार कर ले, तो वहुत अच्छा हो। अवश्य ही इसके समागमसे मुझे लाभ होगा। यह सोचकर सेठने श्रमण महात्माको प्रणाम किया और गाडीपर बैठ जानेके लिए अनुरोध किया। श्रमणको काशी ही जाना था, इसलिए वे गाड़ीमें बैठ गये और बोले,—आपने मेरे साथ वडा भारी उपकार किया। इसके लिए मै आपका कृतज्ञ हूँ। मै वहुत समयसे पैदल चल रहा हूँ, इसलिए बहुत ही थक गया हूँ। यह तो आप जानते ही है कि श्रमण लोगोके पास कोई ऐसी वस्तु नही रहती जिसे देकर मै आपके इस ऋणसे उऋणसे हो सकूँ। तो भी मै परमगुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेशरूप अक्षय कोशसे जो कुछ सग्रह

कर सका हूँ उसमे से आप जो चाहेंगे वही देकर आपके बोझसे हल्का हो सकूँगा।

सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। उसका समय बड़े आनन्दसे कटने लगा। श्रमणके सुबोधरूप रत्नोंको वह बड़ी ही रुचिसे हृदयमें धारण करने लगा। गाड़ी बराबर चली जा रही थी। लगभग एक घंटेके बाद वह एक ऐसे ढालूस्थानमे पहुँचकर खडी हो गई कि जहाँ एक गाड़ी पडी थी और जिसके कारण मार्ग बंद हो रहा था।

यह गाड़ी 'देवल' नामक किसान की थी। वह उसमें चावल लादकर बनारस जा रहा था और दिन निकलनेके पहले ही वहाँ पहुँचना चाहता था। धुरीकी कील निकल जानेसे गाड़ीका एक पहिया निकलकर गिर पड़ा था। देवल अकेला था। इसलिए प्रयत्न करनेपर भी वह अपनी गाडीको सुधारकर ठीक न कर सकता था।

जब सेठने देखा कि किसानकी गाड़ीको रास्ता परसे हटाये बिना मेरा आगे बढ़ना कठिन है, तब उसे बड़ा क्रोध आया। उसने अपने नौकरसे कहा कि गाड़ीपरसे चावलोंके थैले उठाकर नीचे फेंक दे और उसे एक ओर करके अपनी गाड़ी आगे बढ़ा।

किसानने दीनताके साथ कहा—"सेठजी, मैं एक गरीब किसान हूँ। पानी पड जानेसे सड़क पर कीचड़ हो रहा है। थैले यदि नीचे पड़ेंगे, तो चावल खराब हो जावेंगे। आप ज़रा ठहर जावें, मैं अपनी गाड़ी अभी ठीक किये लेता हूँ और उसे इस ढालू जगहसे कुछ दूर आगे ले जाकर आपको रास्ता दिये देता हूँ।" परन्तु उसकी प्रार्थना पर सेठने कुछ भी ध्यान न दिया। वह अपने नौकरसे कड़क कर बोला—क्या देख रहा है? मेरी आज्ञाका शीघ्र पालन कर और गाड़ीको आगे बढ़ा! नौकरने तत्काल ही आज्ञाका पालन किया।

उसने चावलके थैले फेंककर किसानकी गाडीको एक तरफ धकेल दिया और अपनी गाड़ी आगे बढ़ा दी।

हाय! इस संसारमें ग़रीबका सहायक कोई नहीं। अपने थोडेसे लाभके पीछे दूसरोंका सर्वस्व नष्ट कर देनेवाले धनोन्मत्तोंकी उस समय भी कमी न थी। गरीबोंके रक्षकके बदले भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह ससार कभी खाली नहीं रहा और शायद आगे भी न रहेगा। इतना अवश्य है कि उस समय बौद्ध धर्मके श्रमणोंका दयामय हस्त गरीबोंकी सहायताके लिए सदा सन्नद्ध रहता था। वे धार्मिक विवादोंसे जुदा रहकर निरन्तर मनुष्यमात्रके सामान्य हितकी चिन्तामें रहते थे। वे अपने मन वचन और शरीरका उपयोग मुख्यतः परोपकारके ही कामोंमें करते थे।

ज्यों ही सेठकी गाड़ी आगे चलनेको हुई त्यों ही श्रमण नारद उस परसे कूद पडे और बोले·—"सेठजी, माफ कीजिए, अब मैं आपके साथ नहीं चल सकता। आपने विवेकबुद्धिसे मुझे एक घंटे तक गाडीमें बिठाया, इससे मेरी थकावट दूर हो गई। मै आपके साथ और भी चलता; परन्तु वह किसान जिसकी कि गाडीको उलटा करके आप आगे बढ़ते हैं आपका बहुत ही निकटका सम्बन्धी है। मै इसे आपके ही पूर्वजोंका अवतार समझता हूँ। इस लिए आपने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका ऋण मै आपके इस निकट बन्धुकी सहायता करके चुकाऊँगा। इसको जो लाभ होगा, वह एक तरहसे आपका ही लाभ है। इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है। आपने इसे कष्ट पहुँचाया है, मैं समझता हूँ कि इससे आपकी बहुत बडी हानि हुई है और इसलिए मेरा कर्तव्य है कि आपको इस हानिसे बचानेके लिए—आपका भला करनेके लिए मै अपनी शक्तिभर इसकी सहायता करूँ।"

सेठने श्रमणकी इस मार्मिक उक्तिपर कुछ ध्यान न दिया। उसने सोचा कि श्रमण सीमासे अधिक भला है, इसी लिए इसकी भलाई करनेके लिए तत्पर होता है। इसके वाद उसकी गाड़ी आगे चल दी।

(२)

श्रमण नारद किसानको नमस्कार करके उसकी गाड़ीके ठीक करानेमें और भीगे हुए चावलोको जुदा करके शेष चावलोंके एकट्ठे करनेमें सहायता देने लगे। दोनोंके परिश्रमसे काम बहुत शीघ्रतासे होने लगा। किसान सोचने लगा कि सचमुच ही यह श्रमण कोई वड़ा परोपकारी महात्मा है। क्या आश्चर्य है, जो मेरे भाग्यसे कोई अदृश्य देव ही श्रमणके वेषमें मेरी सहायताके लिए आया हो। मेरा काम इतनी जल्दी हो रहा है कि मुझे स्वय ही आश्चर्य माळूम होता है। उसने डरते डरते पूछा–श्रमण महाराज, जहाँतक मुझे याद है मै जानता हूँ कि इस सेठकी मैंने कभी कोई बुराई नहीं की, कोई इसे हानि भी नहीं पहुँचाई, तब आज इसने मुझपर यह अन्याय क्यों किया? इसका कारण क्या होगा?

श्रमण–भाई, इस समय जो कुछ तू भोग रहा है, सो सब तेरे किये हुए पूर्व कर्मोंका फल है। पहले जो बोया था उसे ही अब लुन रहा है।

किसान—कर्म क्या?

श्रमण—मोटी नजरसे देखा जाय तो मनुष्यके काम ही उसके कर्म है। वे (मनुष्यके कर्म) उसके इस जन्मके और पहले जन्मोंके किये हुए कामोकी एक माला है। इस मालाके 'मनका' रूप जो विविध प्रकारके कर्म है, उनमें वर्तमानके कामोसे और विचारोंसे फेरफार भी वहुत कुछ हो जाता है। हम सबने पहले जो भले बुरे

कर्म किये हैं उनका फल हम इस समय चख रहे है और अब जो कर रहे है उनके फल आगे भोगना पड़ेंगे।

किसान—आपने जैसा कहा वैसा ही होगा। परन्तु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्य हम सरीखे गरीबोंको जो इस तरह बिना कुछ लिये दिये ही तग किया करते है, इसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

श्रमण—भाई, मेरी समझमें तो तेरे विचार भी लगभग उसी सेठ ही सरीखे है। जिस कर्मसे आज वह जौहरी और तू किसान हुआ है. यद्यपि ऊपरसे उस कर्ममे बहुत भिन्नता माळूम पड़ती है परन्तु भीतरी दृष्टिसे देखा जाय तो वह उतनी नहीं है। जहाँ तक मुझे मनुष्यके मानसिक विचारोंकी जाँच है उसके अनुसार मै कह सकता हूँ कि आज यदि तू भी उस जौहरीकी जगह होता तथा तेरे पास भी उसके नौकरके जैसा बलवान् नौकर होता और जिस तरह तेरी गाड़ीसे उसका रास्ता रुक रहा था उसी तरह यदि उसकी गाड़ी तेरा रास्ता रोकती, तो तू भी उसका नम्बर लिये बिना न रहता। उसके चावलों का सत्यानाश हो जायगा, इसकी तुझे भी कुछ परवा न होती और इस बातको भी तू भूल जाता कि मै किसीका बुरा करूँगा तो मेरा भी बुरा होगा।

किसान—महाराज, आप सच कहते है। मेरी चेल, तो मैं उससे कुछ कम न रहूँ। परन्तु आप तो अकारण बन्धु हैं; बिना स्वार्थके आपने मेरी सहायता की, मेरे मालको बिगडनेसे बचाया और मेरा काम शीघ्रतासे पूरा करके मुझे रास्ते लगा दिया। यह देखकर मेरा जी चाहता है कि मै भी अपने जातिभाइयोंके साथ अच्छा वर्ताव करूँ और अपनी शक्तिके अनुसार उनकी भलाई करनेमे तत्पर रहूँ।

किसानकी गाडी दुरुस्त होकर आगे चलने लगी। वह थोड़ी ही दूर आगे बढी थी कि एकाएक उसके बैल चमक उठे। किसान

चिल्लाकर बोला—अरे बाप! सामने वह साँप सरीखा क्या पड़ा है? श्रमणने ध्यानसे देखा तो उन्हें एक बसनी जैसी चीज़ नज़र आई। वे पहले गाड़ीपरसे कूद पड़े और देखते हैं तो एक मुहरोंसे भरी हुई बसनी (लम्बी थैली) पडी है! उन्हे विश्वास हो गया कि यह बसनी और किसीकी नहीं, उसी सेठकी है। उन्होंने थैली उठा ली और उसे किसानके हाथमें देकर कहा कि जब तुम बनारसमें पहुँच जाओ तब उस सेठका पता लगाकर उसे यह बसनी दे देना। उसका नाम पाण्डु जौहरी और उसके नौकरका नाम महादत्त है। ऐसा करनेसे उसको अपने इस अन्याय कर्मका पश्चात्ताप होगा जो उसने तुम्हारे साथ अभी किया था। इसके साथ ही तुम यह भी कहना कि तुमने मेरे साथ जो कुछ किया है वह सब मैं क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि तुम्हारे व्यापारमे खूब सफलता प्राप्त हो। मै यह सब तुमसे इस लिए कहता हूँ कि तुम्हारा भाग्य उसके भाग्यकी बढ़तीपर निर्भर है—उसे ज्यों ज्यों व्यापारमें सफलता प्राप्त होगी त्यों त्यों तुम्हारा भी भाग्य खुलेगा।

इसके बाद परोपकारकी मूर्ति और दीर्घदृष्टि श्रमण महाशय यह सोचते हुए वहाँसे चल दिये कि यदि जौहरी मेरे पास आयगा तो मै उसकी भलाई करनेके लिए शक्ति भर प्रयत्न करूँगा— उपदेश देकर उसे वास्तविक मनुष्य बना दूँगा।

(२)

बनारसमें मल्लिक नामका एक व्यापारी था। वह पाण्डु जौहरीका आढ़तिया था। जिस समय पाण्डु उससे जाकर मिला, उस समय वह रो पडा और बोला—मित्र मैं एक बड़े भारी सकटमे आ पड़ा हूँ। अब आशा नहीं कि मै तुम्हारे साथ व्यापार कर सकूँ। मैने राजाके खानेके लिए बढिया चावल देनेका वायदा किया था। उसके पूरा

करनेका दिन कल है। मुझे कल सवेरे चावल देना ही चाहिए। परन्तु क्या करूँ चावलका मेरे पास एक दाना भी नही—किसी और जगहसे भी मिलनेकी आशा नहीं। क्योंकि यहाँ मेरा प्रतिपक्षी एक ज़बर्दस्त व्यापारी है। उसको किसी तरहसे यह मालूम हो गया है कि मैने राजाके कोठारीके साथ इस तरहका बायदेका व्यापार किया है। इससे उसने यहाँ सारी बस्तीमें जितना चावल था वह सबका सब मुँहमागा दाम देकर ख़रीद लिया है। कोठारीको उसने कुछ न कुछ घूँस(रिश्वत) भी जरूर दी होगी, इस लिए कल मेरी कुशल नहीं—मेरी इज्जत नहीं बच सकती। यदि विधाता ही मेरी सहायता करे और कहींसे एक गाड़ी अच्छे चावल मेरे पास पहुँचा दे, तो शायद मै बच जाऊँ, नहीं तो मेरा मरना हो जायगा। मल्लिक यह कह ही रहा था कि इतनेमें पाण्डुको अपनी मुहरोंकी बसनीकी याद आई। वह घबड़ाकर उठा और उसकी खोज करने लगा। सन्दूकमे, गाड़ीमें, कपड़े लत्तोमें उसने बहुत ढूँढ़ खोज की परन्तु बसनीका पता न लगा। उसे सन्देह हुआ कि मेरे नौकर महादत्तने ही बसनी उड़ा ली है। बस फिर क्या था, उसने महादत्तको पुलिसके हवाले कर दिया। यमदूतके समान पुलिसने चोरी स्वीकार करानेके लिए महादत्तको मार मारना शुरू की। असह्य मारके पडनेसे वह बिलबिला उठा और रोता हुआ कहने लगा—मै निरपराधी हूँ, मैने बसनी नहीं चुराई। मुझे माफ़ करो, मुझसे यह मार नहीं सही जाती। हाय! हाय! मैं मरा, गरीब पर दया करो। मैंने बसनी नहीं ली है; परन्तु मेरे किसी पूर्व पापका उदय हुआ है जिससे मुझपर यह विपत्ति आई है। मैंने अपने सेठके कहनेसे उस बेचारे किसानको रास्तेमें हैरान किया था, अवश्य ही मुझे यह उसी पापका फल मिल रहा है। भाई किसान, मैंने तुझे बिनाकारण

सताया था—मुझे माफ़ कर। सचमुच ही मैं उसी अन्यायके फलसे सताया जा रहा हूँ।

महादत्तके इस पश्चात्तापपर पुलिसने जरा भी ध्यान न दिया; वह बरावर मार मारती रही। इतने ही में 'देवल' वहाँ आ पहुँचा और उसने सबको आश्चर्यमें डालते हुए वह मुहरोंकी वसनी पाण्डु जौहरीके आगे रख दी। इसके बाद उसने उसे क्षमा किया और उसकी मंगल कामना की।

महादत्त छोड दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा ही क्रोध आया। वह उसके पास एक क्षण भी न ठहरा और न जाने कहाँ-को चल दिया।

उधर मल्लिकको खबर लगी कि देवलके पास एक गाड़ी अच्छे चावल हैं। इस लिए उसने उसी समय उसके पास पहुँचकर मुँहमाँगा दाम देकर वे चावल खरीद लिये और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार राजा-के यहाँ भेज दिये। जितना मूल्य मिलनेकी देवलको स्वप्नमें भी आशा न थी, उतने मूल्यमें चावल बेचकर वह अपने गाँवको रवाना हो गया।

पाण्डु भी अपने आढ़तियेकी विपत्ति टली देखकर और अपनी खोई हुई वसनी पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा कि वह किसान यहाँ न आता, तो न मल्लिकका ही उद्धार होता और न मैं ही अपनी खोई हुई रकम पा सकता। वह किसान बड़ा ही ईमानदार और भला आदमी निकला। जिसको मैंने सताया उसीने मेरे साथ ऐसी सज्जनताका व्यवहार किया। पर एक साधारण अपढ़ किसानमें इतनी सज्जनता और उदारता कहाँसे आई? उस श्रमण महा-त्माका ही यह प्रसाद समझना चाहिए। लोहेको सोना बनानेका प्रभाव पारसको छोड़कर और किस वस्तुमें हो सकता है? यह सब सोचकर

पाण्डुको श्रमण नारदसे मिलनेकी प्रवल उत्कठा हुई। वह तत्काल ही उठा और बौद्धविहार या वौद्ध साधुओंके मठका पता लगाता हुआ उक्त श्रमण महात्मासे जा मिला।

कुशलप्रश्न हो चुकनेके बाद श्रमण नारदने कहा—"सेठजी, आपकी अभी इतनी शक्ति नहीं है कि कर्मरचनाको अच्छी तरहसे समझ सकें। यह वड़ा ही गहन और गभीर विषय है। साधारण लोग इसका मर्म नहीं जान सकते। आगे जव आपकी इस ओर रुचि होगी और उससे जव उत्कण्ठा वढेगी तव इसे आप सहज ही समझ लेंगे। तो भी इस समय आप मेरी यह छोटीसी वात ध्यानमें रख ले कि जिस समय आप दूसरोंको दुःख देनेके लिए तैयार हो उस समय अपने ह्वदयसे यह अवश्य पूँछ ले कि ऐसा ही दुःख यदि कोई मुझे भी दे, तो मुझे वह अच्छा लगेगा या नहीं? यदि इस प्रश्नका उत्तर यह मिले कि, नहीं मैं ऐसा दुःख कदापि सहन न कर सकूँगा, तो दुःख देनेकी इच्छा होनेपर भी आप उसे दवा दें। और जिस तरह कोई आपकी सेवा करता है तो वह आपको अच्छी लगती है उसी तरह आपकी सेवा भी दूसरोंके लिए रुचिकर होगी, यह विश्वास करके आप दूसरोंकी सेवा करनेके अवसरको कभी हाथसे न जानें दें। इस वातपर विश्वास रखिए कि हम आज जो सुकृतके वीज वोवेगे, कालान्तरमें उनसे अच्छे फल अवश्य ही मिलेगे।

पाण्डु—महाराज, मुझे कुछ और भी विस्तारसे समझानेकी कृपा कीजिए जिससे मै आपके उपदेशके अनुसार वर्ताव करनेके लिए समर्थ हो सकूँ।

श्रमण—अच्छा तो सुनो मैं आपको कर्मभेदकी चावी देता हूँ। मेरे और तुम्हारे वीचमें एक परदा पड़ा हुआ है। उसे माया कहते हैं।

इसी कारण तुम मुझे अपनेसे जुदा और मैं तुम्हें अपनेसे जुदा समझता हूँ। इस परदेके कारण मनुष्य अच्छी तरह नहीं देख सकता और पापके गढ़ेमें जा पडता है। तुम्हारी ऑखोंके आगे इसी मायाका परदा पड़ा है, इससे तुम नहीं देख सकते कि इन जातिभाइयों (मनुष्य जाति) के साथ तुम्हारा कितना निकटका सम्बन्ध है। वास्तवमें यह सम्बन्ध तुम्हारे शरीरके एक दूसरे अवयवके सम्बन्धकी अपेक्षा वहुत ही निकटका है। तुम्हारे जीवनका सम्बन्ध जैसा दूसरोंके जीवनके साथ है वैसा ही दूसरोंके जीवनका सम्बन्ध तुम्हारे जीवनके साथ है। यह सम्बन्ध वहुत ही गाढा है। संसारमें वहुत थोड़े पुरुष हैं जो सत्यको जानते है। इस सत्यकी प्राप्ति करना ही मनुष्य जीवनका कर्तव्य है। इसको प्राप्त करनेके लिए मैं तुम्हें थोड़ेसे मत्र वतलाता हूँ। इन्हें तुम अपने हृदयमें लिख रक्खो:—

१ जो दूसरोको दुःख देता है वह मानो अपनेमें आपको दुःखदेनेवाले वीजोको वोता है।

२ जो दूसरोंको सुख देता है वह अपने हृदयमें आपको सुखी करनेके वीजोंको वोता है।

३ यह वड़ा ही भ्रामक विचार है कि मैं अपने जातिभाइयोंसे जुदा हूँ।

इन तीन मत्रोंकी आराधना करते रहनेसे तुम सत्यके मार्ग पर आ पहुँचोगे।

पाण्डु—महानुभाव श्रमणमहाराज, आपके वचनोंका मर्म वहुत ही गहरा है। मै इन वचनोंको अपने हृदयमें लिख चुका। मैंने वनारस आते समय आप पर जो थोड़ीसी दया की थी और वह भी ऐसी कि जिसमें एक पैसाकी भी खर्च न था, उसका फल मुझे इतना वड़ा

मिला है कि मै उसे देखकर आश्चर्यमें डूब रहा हूँ। महात्मन्, मै आपके उपकारके बोझसे दब गया हूँ। यदि मुझे वह मुहरोंकी बसनी न मिलती, तो न तो मै यहाँ कुछ व्यापार ही कर सकता और न उस व्यापारसे जो मुझे बडा भारी लाभ हुआ है वह होता। आप दूरदर्शी भी कितने बड़े हैं! यदि आप उस किसानकी सहायता न करते और उसे इतनी जल्दी यहाँ पहुँचनेमें समर्थ न कर देते तो मेरे मित्र मल्लिककी भी इज्जत न बचती। आपने उसे भी दुःखकूपसे गिरते हुए बचाया और मेरे नौकरकी भी रक्षा की। महाराज, जिस तरह आप 'सत्य' को देखते है, उसी तरह यदि सारे मनुष्य देखने लगें तो जगत् कितना सुखी हो जाय! अगणित पापके मार्ग बन्द हो जायँ और पुण्यके मार्ग खुल जायँ। मैंने निश्चय किया है कि मै बुद्ध भगवानके इस दयामय धर्मका प्रचार करनेके लिए अपनी कोशाम्बी नगरीमें एक विहार बनवाऊँ और उसमें आप तथा और दूसरे श्रमण महात्मा आकर लोगोंको सन्मार्ग सुझावे।

(४)

कोशाम्बीमें पाण्डु जौहरीका 'विहार' बन चुका है। उसमें सैकडों विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण रहते है। थोड़े ही समयमें वह एक सुप्रसिद्ध विहार गिना जाने लगा है। दूर दूरके धर्म–पिपासु लोग वहाँ उपदेश सुननेके लिए आया करते है।

पाण्डु जौहरी भी अब एक सुप्रसिद्ध जौहरी हो गया है। उसकी यशोगाथायें दूर दूर तक सुन पड़ती है।

कोशाम्बीके समीप ही एक राजाकी राजधानी थी। राजाने अपने खजाचीको आज्ञा दी कि पाण्डु जौहरीकी मार्फत एक अच्छा सोनेका मुकुट बनवाया जावे और उसमें बहुमूल्यसे बहुमूल्य रत्न जड़वाये जावें।

खजाँचीने तत्काल ही आज्ञाका पालन किया और पाण्डुके पास मुकुट तैयार करवानेका संदेशा भेज दिया।

मुकुट तैयार हो गया। पाण्डु उसे लेकर और उसके साथ बहुतसे जवाहरात तथा सोने चाँदी आदिके आभूपण लेकर उक्त राजधानीकी ओर चला। उसने अपनी रक्षाके लिए २०-२५ सिपाही भी साथ ले लिये। सिपाही खूब मजबूत और बहादुर थे। इसलिए उसे आशा थी कि मै निर्विघ्नतासे अभीष्ट स्थानपर पहुँच जाऊँगा।

जिस समय पाण्डु अपने रसालेके सहित एक जंगलको पार कर रहा था, उसी समय पासके दो पर्वतोंके बीचमेंसे ५०-६० आदमियोंकी एक अस्त्रशस्त्रोंसे सजी हुई टोली आई और उसने इसपर एक साथ आक्रमण किया। सिपाही बहुत बहादुरीके साथ लड़े परन्तु अन्तमें उन्हें हारना पड़ा और डकैत सारा माल लेकर चम्पत हो गये।

इस लूटसे पाण्डुका कारोबार मिट्टीमें मिल गया। उसे आशा थी कि मुकुटके साथ मेरा और भी बहुत सामान उक्त राजधानीमें कट जायगा, इसलिए उसने अपना सर्वस्व लगाकर दूसरी तरह-तरहकी चीजें तैयार कराई थीं। परन्तु वे सब हाथसे चली गई और वह बिलकुल कंगाल हो गया।

पाण्डुके हृदयपर इसकी बड़ी चोट लगी; परन्तु वह चुपचाप यह सोचकर सब दुःख सहने लगा कि यह सब मेरे पूर्वकृत पापोंका फल है। मैंने अपनी जवानीके दिनोंमें क्या लोगोंको कुछ कम सताया था! अब यह समझना मेरे लिए कुछ कठिन नहीं कि जो बीज बोये थे उन्हींके ये फल है। अब पाण्डुके हृदयमें दयाका सोता बहने लगा। वह समझने लगा कि दुःख कैसे होते हैं और इससे उसकी

जीवमात्रपर दया करनेकी भावना दृढ होने लगी। उसका हृदय पूर्व कर्मोंके पश्चात्तापसे दिनपर दिन पवित्र और उज्ज्वल होने लगा।

पाण्डुको अपनी निर्धनताका जरा भी दुःख नहीं होता। यदि उसे कोई बडा भारी दुःख है तो वह यही कि अब वह लोगोंकी भलाई करनेमे और श्रमणोंको बुलाकर उनके द्वारा धर्मप्रचार करनेमे असमर्थ हो गया है।

(५)

कोशाम्बी नगरीके पासके उसी जङ्गलमें जहाँ पाण्डु लूटा गया था एक बौद्ध साधु जा रहा है। वह अपने विचारोंमें मस्त है। उसके पास एक कमण्डलु और एक गठरीके सिवा और कुछ नहीं है। गठरीमे बहुतसी हस्तलिखित पुस्तकें है। जिस कपडेमें वे पुस्तके बँधी हैं वह कीमती है। जान पडता है किसी श्रद्धालु उपासकने पुस्तक-विन-यसे प्रेरित होकर उक्त कपड़ा दिया होगा। यह कीमती कपड़ा साधुके लिए विपत्तिका कारण बन गया। लुटेरोंने उसे दूरहीसे देखकर साधुपर आक्रमण किया। उन्होने समझा था कि गठरीके भीतर कीमती चीजे होंगीं परन्तु जब देखा कि वे उनके लिए सर्वथा निरुपयोगी पुस्तके हैं, तब वे निराश होकर चल दिये। जाते समय अपने स्वभावके अनुसार साधुको नीचे डालकर एक एक दो दो लातें मारे बिना उनसे न रहा गया।

साधु मारकी वेदनाके मारे रातभर वहीं पडा रहा। दूसरे दिन सवेरे उठकर जब वह अपनी राह चलने लगा, तब उसे पासहीकी झाडीमेंसे हथियारोंकी झनझनाहट और मनुष्योंकी चीख चिल्लाहट सुनाई दी। उसने साहस करके झाडीके समीप जाकर देखा तो मालूम हुआ कि वे ही लुटेरे जिन्होने उसकी दुर्दशा की थी अपने ही दलके एक लुटेरेपर आक्रमण कर रहे हैं। यह लुटेरा डीलडौलमें इन सबसे बलवान् और

बहादुर मालूम होता था। जिस तरह शिकारी कुत्तोंसे घिरा हुआ सिंह कुपित होकर उनपर टूटता है और उनका कचूमर बनाने लगता है, उसी तरह वह उनपर भर जोर प्रहार कर रहा है। किसीको गिराकर लातोंसे कुचलता है, किसीको तलवारसे यमलोकका रास्ता दिखलाता है और किसीका पीछा करके फिर लौट आता है। यद्यपि उसकी शक्ति असाधारण थी परंतु प्रतिपक्षियोंकी संख्या इतनी अधिक थी कि उनके सामने वह टिक न सका; उसकी देह बीसों घावोंसे जर्जर होगई और अन्तमें वह मरणोन्मुख होकर धराशायी हो गया। उसके गिरते ही दूसर लुटेरे वहाँसे चल दिये और थोड़ीही दरमें एक सघन झाड़ीके भीतर अदृश्य हो गये।

इस लड़ाईमे दश बारह लुटेरे काम आचुके थे। श्रमणने पास जाकर एक एकको अच्छी तरह देखा तो मालूम हुआ कि उस बहादुर लुटेरेके सिवा और सबके प्राण पखेरू उड़ गये है। साधुका हृदय भर आया। इस निरर्थक नरहत्यासे उसे बड़ा दुःख हुआ। अब वह इस बातकी चेष्टा करने लगा कि यह मुमूर्ष किसी तरह बच जाय। पास ही एक पानीका झरना बह रहा था। उसमेसे कमंडलु भर ताजा पानी लाकर उसने एक चुल्लू पानी उसकी आँखोंपर छिड़का। लुटेरेने आँखें खोल दीं और इस तरह बड़बड़ाना शुरू किया, —वे कृतघ्नी कुत्ते कहाँ चले गये जिन्हें मैंने सैकड़ों बार अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर बचाया था। यदि मैं न होता तो न जाने कब किस शिकारीके हाथसे उन कमजोर कुत्तोकी जानें चली गई होतीं। आज उन कुत्तोंको क्या वे सब बातें भूल गईं।

श्रमण—भाई, अब तू अपने उस पापमय जीवनके साथियोंको याद मत कर। इस समय तो अपनी आत्माका चिन्तवन कर और

इस अन्तकी घडीमें अपना सुधार कर ले। इस कमण्डलुमेंसे थोड़ासा पानी पी ले और मुझे इन घावोंका इलाज करने दे। शायद मैं तेरे इस जीवनदीपकको बुझनेसे बचा सकूँ।

लुटेरेकी शक्ति क्षीण हो गई थी। उसने शक्ति भर प्रयत्न करके कहा—मैंने कल एक साधुको अपने साथियों सहित बहुत बुरी तरह मारा था। क्या तुम वही हो? और क्या तुम मेरे उस अन्यायका बदला इस समय मेरी सहायता करनेके रूपमें दोगे? यह जल तुम क्यो लाये हो? पर अब तुम्हारा यह सब प्रयत्न व्यर्थ है। मेरे भाई, इस जलसे मेरी प्यास तो शायद मिट जायगी परन्तु मेरे जीवनकी अब आशा नहीं। उन कुत्तोंने मुझे इतना घायल कर दिया है कि मैं निश्चयसे मर जाऊँगा। अरे कृतघ्नियो, मेरे सिखलाये हुए दाव पेच आज तुमने मेरे पर ही आजमाये!

श्रमण—"जैसा बोता है वैसा ही लुनता है।" यह अक्षर अक्षर सत्य है। तूने अपने साथियोंको लूट मार सिखलाई थी, इसलिए आज उसी लूट मारकी विद्याको उन्होंने तुझपर आजमायी। यदि तूने उन्हे दया सिखलाई होती तो आज वे भी तुझपर दया करते। ऊपरको फेंकी हुई गेंद जिस तरह लौटकर फैकनेवाले पर ही आती है उसी तरह दूसरोंके लिए किये हुए बुरे भले कर्म, करनेवालेके ही ऊपर आ पड़ते हैं।

लुटेरा—इसमे जरा भी असत्य नहीं। मुझे आपकी प्रत्येक बात ठीक मालूम होती है। मेरी जो दुर्गति हुई वह उचित ही हुई। परन्तु महाराज मेरे दुःखोंका अन्त अभी कहाँ आ सकता है? मैंने अगणित अन्याय और अत्याचार किये है। उन सबका फल मुझे आगे पीछे कभी न कभी अवश्य भोगना पड़ेगा। आप कृपा करके मुझे कोई ऐसा

उपाय वतलाइए जिससे इन पापोंका वोझा हलका हो जाय। इस वोझेसे मै इतना दव गया हूँ कि अव मुझसे श्वास लेते भी नहीं वनता है।

श्रमण—भाई, उपाय तो वहुत ही सुगम है। अपनी पाप प्रवृत्तियोंको जड़मूलसे उखाड़कर फेंक दे, वुरी वासनाओंको छोड दे, प्राणी मात्रपर दया करनेका अभ्यास कर और अपने जाति भाइयोंके लिए अपने हृदयको दयाका सरोवर वना दे।

इसके वाद श्रमण लुटेरेके घावोंको जलसे धोने लगा और उनपर एक प्रकारकी हरी पत्तियोंके रसको लगाने लगा। लुटेरा कुछ समयके लिए शान्त हो गया और फिर वोला—हे दयामय, मैने अवतक सव वुरे ही काम किये है, किसीका भला तो कभी किया ही नहीं, अपनी वुरी वासनाओके जालमें मै आप ही आप फँसा और ऐसा फँसा कि अव उसमेंसे निकलना कठिन हो गया है। मेरे कर्म मुझे नरकमे ले जा रहे हैं। मुझे आशा नहीं कि इनके मारे मैं मोक्षमार्ग पर चल सकूँ।

श्रमण—इसमें सन्देह नहीं कि जो वोया है उसे तुम्हे ही लुनना पड़ेगा। किये हुए कर्मोंका परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है; उससे वचनेका कोई उपाय नहीं। तो भी साहस न छोड़ वैठना चाहिए। तुम्हारे हृदयमेंसे दुष्टताकी मात्रा ज्यों ज्यो कम होती जायगी त्यों त्यों शरीरसम्वन्धी आत्मवुद्धि भी कम होती जायगी और इसका फल यह होगा कि तुम्हारी विपयोकी लालसा नष्ट होने लगेगी।

अच्छा सुनो, मै तुम्हे एक वोधप्रद कथा सुनाता हूँ। इससे तुम्हें माळूम होगा कि अपनी भलाईमें दूसरोकी और दूसरोकी भलाईमे अपनी भलाई समाई हुई है। दूसरे शव्दोमें, मनुष्यके कर्म उसके और दूसरोंके सुखरूप वृक्षके मूल है:—

कदन्त नामका एक ज़बर्दस्त डकैत था। वह अपने दुष्टकर्मोंका पश्चात्ताप किये बिना ही मर गया, इससे नरकमें जाकर नारकी हुआ। अपने बुरे कर्मोंके असह्य कष्ट उसने अनेक कल्पपर्यन्त भोगे, परन्तु उनका अन्त नही आया। इतनेमें पृथ्वीपर बुद्धदेवका अवतार हुआ। इस पुण्य समयमें उनके प्रभावकी एक किरण नरकमें भी पहुँची। नारकियोको आशा होगई कि अब हमारे दुःखोंका अन्त आया। इस प्रकाशको देखकर कदन्त उच्चस्वरसे कहने लगा—हे भगवन्, मुझपर दया करो, मुझपर कृपा करो, मै यहाँ इतने दु खोंसे घिर रहा हूँ कि उनकी गणना नही हो सकती। यदि मैं इनसे छूट जाऊँ तो अब सत्यमार्गपर अवश्य चलूँगा। हे भगवन् मुझे संकटसे छुडानेमें मदद करो।

प्रकृतिका नियम है कि बुरे काम नाशकी ओर जाते है। बुरे काम या पाप सृष्टिनियमसे विरुद्ध है, अस्वाभाविक हैं, इसलिए वे बहुत समय तक नहीं टिक सकते—उनका क्षय होता ही है। परन्तु भले काम, दीर्घजीवन और शुभ आशाकी ओर जाते है। क्योंकि वे स्वाभाविक है। अर्थात् पापकर्मोंका तो अन्त है, परतु पुण्यकर्मोंका अन्त नहीं।

जिस तरह बाजरेके एक दानेसे उसके भुट्टेमें हजारों दाने लगते है और आगे परंपरासे वे और भी अगणित दानोंकी सृष्टि करते हैं, उसी तरह थोड़ासा भी भला काम हजारों भले कामोंकी बढवारी करता है और परम्परासे वे भले काम और भी अगणित भले कामोंके सृष्टा होते हैं। इस तरह भले कामोंसे जीवको जन्म जन्ममें इतनी दृढता प्राप्त होती है कि वह अनन्तवीर्य बुद्ध होकर निर्वाण पदका भागी होता है।

कदन्तका आक्रन्दन सुनकर दयासागर बुद्धदेव बोले—क्या तूने कभी किसी जीवपर थोड़ीसी भी दया की है? दया अब शीघ्र ही

तेरे पास आयगी और तुझे इन दुःखोंसे छुड़ाने शीघ्रका प्रयत्न करेगी। परन्तु जब तक तेरे मनमेंसे देहममत्व, क्रोध, मान, कपट, ईर्षा और लोभ नष्ट नहीं हो जावेंगे, तब तक तू समस्त दुःखोंसे छुटकारा नहीं पा सकेगा !

कदन्त बहुत ही क्रूरस्वभावी था, इसलिए वह यह उपदेश सुनकर चुप हो रहा। बुद्धदेव सर्वज्ञ थे। उन्हें कदन्तके पूर्व जन्मके सारे कर्म हथेली पर रक्खे हुए आँवलेके समान दिखने लगे। उन्होंने देखा कि कदन्तने एक बार थोड़ीसी दया की थी। वह एक दिन जब एक जंगलमेंसे जा रहा था, तब अपने आगेसे जाती हुई एक मकरीको देखकर उसने विचार किया था कि इस मकरी पर पैर देकर नहीं चलना चाहिए, क्योंकि यह बेचारी निरपराधिनी है। इसके बाद बुद्धदेवने कदन्तकी दशा पर तरस खाकर एक मकरीको ही जालके एक तन्तुसहित नरकमें भेजा। उसने कदन्तके पास जाकर कहा,—ले इस तन्तुको पकड़ और इसके सहारे ऊपरको चढ़ चल। यह कहकर मकरी अदृश्य हो गई और कदन्त बड़ी कठिनाईसे अतिशय प्रयत्न करके उस तन्तुके सहारे ऊपर चढने लगा। पहले तो वह तन्तु मजबूत जान पड़ता था परन्तु अब वह जल्दी टूट जानेकी तैयारी करने लगा। कारण, नरकके दूसरे दुखी जीव भी कदन्तके पीछे उसी तन्तुके सहारे चढ़ने लगे थे। कदन्त बहुत घबड़ाया। उसे जान पड़ा कि यह तन्तु लम्बा होता जाता है और वजनके मारे पतला पड़ता जाता है। हाँ, यह अवश्य है कि मेरा बोझा तो किसी तरह यह सँभाल ही ले जायगा। अभी तक कदन्त ऊपरहीको देख रहा था, परन्तु अब उसने नीचेकी ओर भी एक दृष्टि डाली। जब उसने देखा कि दलके दल नारकी मेरे ही तन्तुके सहारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं, तब उसे चिन्ता हुई कि

इन सबका बोझा यह कैसे सँभालेगा ! वह घबड़ा गया और एकाएक बोल उठा–" यह तन्तु मेरा है, इसे तुम सब लोग छोड दो।" बस, इन शब्दोंके निकलते ही तन्तु टूट गया और कदन्त फिर नरकभूमिमे जा पडा ! !

कदन्तका देहममत्व नहीं छूटा था–वह आपको ही अपना समझता था और सत्यके वास्तविक मार्गका उसको ज्ञान न था। अन्तःकरणके कारण जो सिद्धि प्राप्त होती है उसकी शक्तिसे वह अज्ञात था। वह देखनेमें तो जालके तन्तुओ जैसी पतली होती है परन्तु इतनी दृढ होती है कि हज़ारो मनुष्योंका भार सँभाल सकती है। इतना ही नहीं, उसमें एक विलक्षणता यह भी है कि वह ज्यों ज्यों मार्गपर अधिक चढती है त्यों त्यों अपने आश्रित प्रत्येक प्राणीको अल्प परिश्रमकी कारण होती है; परन्तु ज्यों ही मनुष्यके मनमें यह विचार आता है कि वह केवल मेरी है–सत्यमार्गपर चलनेका फल केवल मुझे ही मिलना चाहिए–उसमें दूसरेका हिस्सा न होना चाहिए, त्यों ही वह अक्षय्य सुखका तन्तु टूट जाता है और मनुष्य तत्काल ही स्वार्थताके गढ़ेमें जा पड़ता है। स्वार्थता ही नरकवास है और नि.स्वार्थता ही स्वर्गवास है। अपने देहमें जो 'अहवुद्धि' या ममत्वभाव है, वही नरक है।

श्रमणकी कथा समाप्त होते ही मरणोन्मुख लुटेरा बोला–महाराज, मै मकरीके जालके तन्तुको पकडूँगा और अगाध नरकके गढेमेसे अपनी ही शक्तिका प्रयोग करके बाहर निकलूँगा।

(६)

लुटेरा कुछ समयके लिए शान्त हो रहा और फिर अपने विचारोंको स्थिर करके बोलने लगा–" पूज्य महाराज, सुनो मैं आपके पास अपने पापोंका प्रायश्चित्त करता हूँ। मै पहले कोशाम्बीके प्रसिद्ध

जौहरी पाण्डुके यहाँ नौकर था; मेरा नाम महादत्त था। एक वार उसने मेरे साथ अतिशय क्रूरताका वर्ताव किया, इसलिए मै उसकी नौकरी छोड़कर चल दिया और लुटेरोंके दलमें मिलकर उनका सरदार बन गया। कुछ समय पीछे मैंने अपने गुप्तचरोंके द्वारा सुना कि पाण्डु इन जंगलोंमेंसे एक राजाके यहाँ बहुतसा धन लेकर जानेवाला है। बस, मैंने उसपर आक्रमण किया और उसका सारा माल लूट लिया। अब आप कृपा करके उसके पास जाइए और मेरी ओरसे कहिए कि तुमने जो मुझपर अत्याचार किया था उसका वैर मैंने अन्तःकरणसे सर्वथा दूर कर दिया है और मैं अपने उस अपराधकी क्षमा माँगता हूँ जो मैंने तुमपर डाँका डालके किया था। जिस समय मै उसके यहाँ नौकरी करता था, उस समय उसका हृदय पत्थरके समान कठोर था और इस लिए मै भी उसकी नकल करके उसीके जैसा हो गया था। वह समझता था कि जगतमें स्वार्थको ही विजय मिलता है, परन्तु मैंने सुना है कि अब वह इतना परोपकारी और परार्थतत्पर होगया है कि उसे लोग भलाई और न्यायका अवतार मानते हैं! उसने अब ऐसा अपूर्व धन सग्रह किया है कि न तो उसको कोई चुरा सकता है और न किसी तरह नष्ट कर सकता है। अभी तक मेरा हृदय बुरेसे बुरे कामोंमें एकरंग एकजीव हो रहा था; परन्तु अब मै इस अन्धकारमे नहीं रहना चाहता। मेरे विचार विलकुल बदल गये है। बुरी वासनाओको अब मै अपने हृदयसे धोकर साफ़ कर रहा हूँ। मेरे मरनेमे अभी जो थोड़ीसी घड़ियाँ बाकी हैं, उनमें मै अपनी शुभेच्छाओको बढाऊँगा जिससे मर जानेके बाद भी मेरे मनमें वे इच्छायें जारी रहें। तब तक आप पाण्डुसे जाकर कह दीजिए कि तुम्हारा वह कीमती मुकुट जो तुमने

राजाके लिए तैयार कराया था और तुम्हारा और भी सारा धन इस पासकी गुफामें गढ़ा हुआ है सो उसे जाकर ले जाओ। इसका पता मेरे केवल दो विश्वासी साथियोंको ही था; अब वे मर चुके हैं।

यदि एक भी न्यायमूलक काम मुझसे बन जायगा तो उससे मेरे पापोका कुछ भाग अवश्य कम होगा, मेरी मानसिक अपवित्रताका भी कुछ अश धुल जायगा और मोक्षमार्गपर चढ़नेका कोई वास्तविक अवलम्बन मुझे मिल जायगा। इस लिए इस समय मुझे इस न्याय-मूंल्क कार्यके द्वारा ही अपनी भलाईका प्रारंभ कर देना उचित जान पड़ता है।

इसके बाद महादत्तने उस गुफाका पता ठिकाना ठीक ठीक बतला दिया जिसमें कि पाण्डुका धन गड़ा था और कुछ समयमे उसने श्रमण महात्माकी ही गोदमें सिर रक्खे हुए अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कोशाम्बीमें जाकर पाण्डुसे सारा वृत्तान्त कहा और पाण्डुने तत्काल ही बहुतसे सिपाहियोंके साथ गुफामें आकर अपना सारा धन निकलवा लिया। इसके बाद उसने महादत्त और दूसरे लुटेरोंके मृतक शरीरोंका सन्मानपुरःसर भूमिदाह किया। उस समय महादत्तके चबूतरेके पास खडे होकर श्रीपान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दियाः—

" हम आप ही बुरा काम करते हैं और आप ही उसका फल भोगते है। इसी तरह हम आप ही उस बुरेको दूर कर सकते है और आप ही उससे शुद्ध हो सकते हैं। अर्थात् पवित्रता और अप-वित्रता दोनों ही हमारे हाथमे हैं। दूसरा कोई भी हमे पवित्र नही कर

सकता है, हमें स्वयं ही पवित्र होनेका प्रयत्न करना चाहिए। बुद्ध भगवानका भी यही उपदेश है।

"हमारे कर्म ब्रह्मा विष्णु ईश्वर, अथवा और किसी देवके बनाये हुए नहीं हैं। वे सब हमारे ही किये हुए कामोंके परिपाक हैं। माताके गर्भके समान हम अपने ही कर्मरूपी गर्भस्थानमें अवतार लेते हैं और वे कर्म ही हमें सब ओरोंसे लपेट लेते हैं। हमारे इन कर्मोंमेंसे बुरे कर्म तो हमारे लिए शाप तुल्य होते हैं और भले कर्म आशीर्वाद तुल्य होते हैं। इस तरह हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्षप्राप्तिका बीज छुपा हुआ है।"

पाण्डु अपना सब धन कोशाम्बी ले गया और उसका बड़ी सावधानीसे सदुपयोग करने लगा। अपना कारोबार भी अब उसने खूब बढ़ाया और उससे जो आमदनी बढी उसे वह परोपकारके कामोंमें जी खोल करके ख़र्च करने लगा।

एक दिन जब वह मरणशय्यापर पड़ा था, तब उसने अपने घरके सब पुत्रपुत्रियों और पोते पोतियोंको अपने पास बुलाकर कहा:—

मेरे प्यारे बालको, कभी किसी कामको निराश होकर नहीं छोड़ देना। यदि किसी काममें सफलता प्राप्त न हो तो उसका दोष किसी औरके सिर न डालना। अपनी असफलता और दुःखोंके कारणोंका पता अपने ही कर्मोंमें लगाना चाहिए और उनके दूर करनेका यत्न करना चाहिए। यदि तुम अभिमान या अहंकारका परदा हटा दोगे तो उन कारणोंका पता बहुत जल्दी लगा सकोगे और उनका पता लग जायगा तब उनमेंसे निकलनेका मार्ग भी तुम्हे बहुत जल्दी सूझ जायगा। दुःखके उपाय भी अपने ही हाथमें है। तुम्हारी आँखके आगे मायाका परदा न आजाय, इसका हमेशा ख़याल रखना और मेरे

जीवनमें जो वाक्य अक्षरश. सत्य सिद्ध हुए है उनका स्मरण निरन्तर करते रहना। वे वाक्य ये है:—

जो दूसरोंको दु:ख देता है वह मानो स्वय आपको ही दु:ख देता हैं और जो दूसरोंकी भलाई करता है, वह अपनी ही भलाई करता है।

देहममत्वका परदा हटते ही स्वाभविक सत्यका मार्ग प्राप्त हो जाता है।

यदि तुम मेरे इन वचनोंको स्मरण रक्खोगे और उनके अनुसार चलनेका प्रयत्न करते रहागे तो अपनी मृत्युके समय भी तुम अच्छे कर्मोंकी छायामे रहोगे और इससे तुम्हारा जीवात्मा तुम्हारे शुभ कामोंसे अमर हो जायगा। *

दानवीर सेठ हुकमचन्दजीकी संस्थायें।

इन्दोरके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् हुकमचन्दजीने अपनी चार लाखकी रकमका निम्न लिखित कार्योंमे बँटबारा करनेका निश्चय किया है:—

१००००) तुक्कोगज—इन्दोरके उदासीनाश्रमके लिए।

६५०००) स्वरूपचन्द हुकमचन्द दि० जैन महाविद्यालयकी इमारतके लिए।

२०००००) उक्त विद्यालयके व्ययनिर्वाहके लिए।

१५०००) कंचनबाई दि० जैन श्राविकाश्रमकी इमारतके लिए।

८५०००) उक्त आश्रमके व्ययनिवाहके लिए। इसके साथ एक औषधालय भी रहेगा।

---

* श्रीयुक्त प० फतेहचन्द कपूरचन्द लालनकृत ‘श्रमण नारद’ नामक गुजराती पुस्तकके आधारसे परिवर्तित करके गल्परूपमें लिखित।

२५०००) नसियाकी धर्मशालामे लगा दिये गये।

४०००००) सब रकमोंका जोड़।

गत २२ अप्रेलको इस कार्यके लिए इन्दोरमें एक सभाकी गई थी और उसका सभापतित्व रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजीको दिया गया था। सभामें बाहरी लोगोकी आई हुई सम्मतियाँ तथा पत्र-सम्पादकोंकी राये सुनाई गई थीं और पीछे सर्व सम्मतिसे सेठजीने अपना निश्चय प्रकट किया था। सब लोगोंकी रायसे यह भी तय हुआ है कि उक्त सब संस्थायें एक ट्रस्ट—कमेटी और एक प्रबन्ध-कारिणी कमेटीके अधीन रहेंगी। मंत्रीका कार्य लाला हजारीलालजी अग्रवालको सोपा गया है।

सेठ स्वरूपचन्द हुकमचन्द विद्यालयमें संस्कृत और अँगरेज़ीके दो विभाग रहेगे। विद्यालयके साथ एक बोर्डिंग भी रहेगा जिसमें लगभग १०० विद्यार्थी रह सकेंगे। संस्कृत विद्यार्थियोंको व्यवहारिक शिक्षा और अँगरेज़ीके विद्यार्थियोंको प्रतिदिन २ घण्टेकी धर्मशिक्षा आवश्यक होगी। अभी सेठजीकी ओरसे जो ‘ हुकमचन्द बोर्डिग स्कूल ’ चल रहा था, वह इसमें शामिल कर दिया जायगा।

लाला हज़ारीलालजीकी ओरसे अभी हाल ही जो विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, उसके आधारसे हमने उक्त विवरण दिया है। जब सर्व सम्मतिसें उक्त दानविभाग हो चुका है, तब इस विषयमें तर्क वितर्क करनेकी अथवा कुछ रद्दोबदलकी सम्मति देनेकी आवश्यकता नहीं है; किसीको अधिकार भी नहीं है। अपनी अपनी सम्मति जिन्हे देना थी वे सब पहले दे ही चुके है। अब हम सब का यही कर्तव्य है कि जो संस्थाये खोली जा रही हैं वे अच्छी तरहसे चलें, उनसे पूरा पूरा लाभ उठाया जाय और उनके लिए योग्य संचा-

लक मिल जावें, इन सब बातोंके लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न करें, सदाचारी सुयोग्य कार्यकर्त्ता ढूँढ दे, सस्था-सचालन-सम्बन्धी अच्छी सूचनायें दें और यदि बन सके तो सस्थाओके लिए स्वयं अपना जीवन अर्पण कर दें। सेठजीको भी चाहिए कि वे इस ओर पूरा पूरा ध्यान दे। क्योंकि उनका यह महान् दान तब ही फलीभूत होगा जब उक्त सस्थायें वास्तविक सस्थाओंका रूप धारण करेंगी। हमारी छोटीसी समझमें संस्थाओंके खोलनेकी अपेक्षा उनका अच्छी तरहसे चला देना बहुत ही कठिन है और जैनसमाजमे तो यह कार्य और भी अधिक कठिन है। क्योंकि उसमे सुयोग्य सचालकोंकी बहुत बडी कमी है। अपनी इन सस्थाओंकी देखरेखके लिए सेठजीको स्वय भी प्रतिदिन कमसे कम दो घण्टेका समय देनेका निश्चय कर रखना चाहिए।

संस्थाओंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूचनाओंपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है:—

१ जैनियोंके इस समय कई संस्कृत विद्यालय हैं, इसलिए इस सस्कृत विद्यालयमें उनसे कुछ विशेषता होनी चाहिए। एक तो यह कि इसमें उच्च श्रेणीका सस्कृत साहित्य पढ़ाया जाय और वह पुरानी नहीं किन्तु नवीन शिक्षापद्धतिसे पढाया जाय। अभी जिन पाठशालोंमें सस्कृतकी शिक्षा दी जाती है वहाँ पहले संस्कृतका व्याकरण और फिर संस्कृत भाषा पढाई जाती है। परन्तु इस विद्यालयमें पहले संस्कृत भाषा पढ़ाई जाय और पीछे उसका व्याकरण। स्वाभाविक नियम भी यही है। मनुष्य पहले भाषा सीखता है और पीछे उसके नियम। भाषाके बन चुकने पर व्याकरण बनता है। सारी दुनियामें इसी क्रमसे शिक्षा दी जाती है, सब जगह भाषा आजाने पर ही व्याकरण सिखलाया जाता है। फिर संस्कृतके लिए ही यह अनोखा ढँग क्यो? अँगरेज़ी भी

तो हमारे लड़के पढते हैं। उसके स्कूलोमे भी पहले भाषा और पीछे व्याकरण पढानेकी पद्धति है। तब संस्कृत भी इसी पद्धतिसे क्यों न पढ़ाई जाय? जिस समय बालकोंको संस्कृतका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है उस समय उन्हें शुष्क और क्लिष्ट व्याकरण सूत्रोंको रटना पड़ता है। इससे उनका एक तो समय बहुत जाता है, दूसरे उनका संस्कृतका ज्ञान परिपक्व नहीं होता और तीसरे इस अवस्थामे केवल स्मरण शक्तिका उपयोग होते रहनेसे उनकी कल्पनाशक्ति और विचारशक्ति क्षीण निकम्मी हो जाती है। आगे उनकी बुद्धिका विकास नहीं होने पाता है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि व्याकरणका पढ़ाना ही बुरा है अथवा उसका स्वल्प ज्ञान ही यथेष्ट है। हम चाहते हैं कि सस्कृत भाषाके समझनेकी शक्ति हो जाने पर उसका व्याकरण पढ़ाया जाय और वह सम्पूर्ण पढ़ाया जाय। इस पद्धतिसे बहुत कम परिश्रमसे व्याकरणका अच्छा ज्ञान हो सकता है। इसके सिवा प्रारंभमे जो व्याकरण ग्रन्थ पढ़ाया जाय वह नये ढङ्गका हो--पुराने सूत्रबद्ध व्याकरण शुरूमें न पढ़ाये जावें। इस ढगके व्याकरणसे एक तो परिश्रम बहुत कम पडता है, दूसरे वे विद्यार्थी जो कि वर्ष दो वर्ष ही पढ़कर विद्यालय छोड़ देते है उनको बहुत लाभ होता है। अभी ऐसे विद्यार्थियोकी बड़ी दुर्दशा होती है। क्योंकि पुराने व्याकरण इतने कठिन है कि वर्ष दो वर्षमे उनमें उनका प्रवेश ही नहीं होता है और इसलिए विद्यालय छोड़ देनेपर वे इतना ज्ञान भी साथमें नहीं ले जाते कि उससे सरल संस्कृत ग्रन्थोंका भी स्वाध्याय कर सकें--बेचारे रात दिन घोंट घोट कर मगज खाली करते हैं पर अन्तमें कोरे रह जाते हैं। प्रो० विनयकुमार सरकार एम. ए. ने थोड़े दिन पहले संस्कृतशिक्षाविज्ञान नामका एक बहुत ही उत्तम

ग्रंथ बनाया है। इसके पढनेसे बहुत जल्दी और बहुत थोड़े परिश्रमसे संस्कृतका ज्ञान हो जाता है। यही अथवा इसी ढगकी दूसरी पुस्तकों-के पढ़ानेका विद्यालयमें प्रबन्ध होना चाहिए।

जहाँ तक हम जानते है इस विद्यालयमें सस्कृतके विद्यार्थियोंको व्यवहारोपयोगी अँगरेजी शिक्षा देनेका तो प्रबन्ध किया ही जायगा और उसकी ज़रूरत भी है; पर साथ ही हमारी प्रार्थना गरीब हिन्दीके लिए भी है। इसकी ओर भी दयादृष्टि होनी चाहिए। हमारी समझमें इसके बिना न तो सस्कृतके विद्वान् देश, धर्म या समाजका कल्याण कर सकते हैं और न अँगरेज़ीके विद्वानोंसे ही हमें कुछ लाभ होता है। पर न इसकी गुजर अँगरेजी स्कूलों और कॉलेजोंमें है और न सस्कृतके विद्यालयोमे। अँगरेजीके विद्यालयोंमे तो वह इस कारण नहीं फटकने पाती कि उनका अधिकार विदेशी या विदेशी भावापन्न अफसरोंके हाथमें है, परन्तु सस्कृतके विद्यालय हमारे हाथमें है तो भी आश्चर्य है कि उनके दरवाजे इसके लिए बन्द है? यह बडे ही दुःखका विषय है। जैनियोकी सस्कृत पाठशालाओंने इस समय तक जितने सस्कृतज्ञ तैयार किये हैं उनमेंसे एक दोको छोडकर कोई भी इस योग्य नहीं कि अपने विचारोंको लेखों ग्रथों या व्याख्यानोंके द्वारा अच्छी हिन्दीमें प्रकाशित कर सके। जो कुछ वे पढ़े हैं वह एक तरहसे उनके लिए 'गूँगेका गुड़' है। संस्कृत साहित्यमें क्या महत्त्व है वे उसे दूसरोके सम्मुख प्रकाशित नहीं करसकते और यदि करने-का प्रयत्न भी करते है तो उनकी सस्कृतबहुल विलक्षण 'पण्डिताऊ' भाषाको सर्व साधारण समझ नहीं सकते। तब बतलाइए, ऐसे पण्डितोंको तैयार करके जैनसमाज क्या लाभ उठायगा? इस बड़ी भारी त्रुटिको पूर्ण करनेका इस विद्यालयमें खास प्रयत्न होना चाहिए। प्रत्येक

कक्षामे हिन्दीकी पढ़ाई आवश्यक कर दी जाय और अन्तिम कक्षा तक उसका इतना ज्ञान करा दिया जाय, कि विद्यार्थी हिन्दीके अच्छे जानकार और लेखक बन जावें। यदि उचित समझा जाय तो प्रारंभ-की कक्षाओंमें धर्मशास्त्र आदि एक दो विषय हिन्दीमें ही पढ़ाये जानेका प्रवन्ध किया जाय।

३. आजकलके जमानेमें केवल न्याय, व्याकरण, काव्य, और धर्मशास्त्रके ज्ञानसे काम नहीं चलसकता—केवल इन्हींके ज्ञाताओंकी विद्वानोंमें भी गणना नहीं हो सकती है। केवल इन्हीं विषयोंके जाननेवाले इस समय कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण नहीं हो सकते। शायद पूर्वकालमें भी इनके सिवा अन्यान्य विषयोंके जाननेकी जरूरत थी। श्रीसोमदेवसूरिने अपने नीतिवाक्यामृतमें कहा है कि " सा खलु विद्या विदुषां कामधेनुः, यतो भवति समस्तजगतः स्थितिपरिज्ञानम्। लोकव्यवहारज्ञो हि मूर्खोऽपि सर्वज्ञः अन्यस्तु प्राज्ञोऽप्यवज्ञायत एव। ते खलु प्रज्ञापारमिताःपुरुषाः ये कुर्वन्ति परेषां प्रतिबोधनम्। अनुपयोगिना महतापि किं जलधिजलेन।" अर्थात् " जिससे सारे जगतकी स्थितियोंका ज्ञान होता है—दुनियाकी सारी बातोंकी जानकारी होती हैं, वह विद्या विद्वानोंके लिए कामधेनु या इच्छित फलोंकी देनेवाली है। वह मूर्ख या बिना पढा लिखा भी सर्वज्ञ है जो लोकव्यवहारज्ञ है—दुनियाकी सारी व्यवहारोपयोगी बातोंको जानता है; परन्तु जो कोरा पण्डित है—उसे कोई नहीं पूँछता; उसकी सब जगह अवज्ञा होती है। जो दूसरोंको समझा सकता है—दूसरोंके अज्ञानको दूर करसकता है वही सच्चा बुद्धिमान् है किन्तु जिसकी विद्या निरुपयोगी है—किसीके काम नहीं आसकती है, वह किसी कामका नहीं। समुद्रके जलका कुछ पार नहीं, परन्तु जब वह किसीके पीनेके कामका नहीं तब उसका होना न होना बराबर है। " श्रीसो-

मदेवसूरिके उक्त वाक्योंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि हमें कैसे उपयोगी कार्यक्षम और सच्चे विद्वानोंकी जरूरत है। वे केवल न्याय व्याकरणादि रटे हुए पण्डितोंको किसी कामका नहीं बतलाते हैं। लोकव्यवहारज्ञता और दुनियाकी स्थितियोंके ज्ञानपर उन्होंने बहुत ही अधिक जोर दिया है। अत एव न्याय–व्याकरण–काव्य–धर्मशास्त्रके साथ साथ आवश्यक है कि विद्यार्थियोंको गणित, भूगोल, इतिहास, पदार्थविज्ञान आदि व्यवहारोपयोगी विषय भी हिन्दीमें सिखलाये जावें और वर्तमान सामाजिक धार्मिक राजनीतिक और वैज्ञानिक स्थितियोंका भी ज्ञान कराया जाय। इसके विना पण्डित भले ही तैयार हो जावें, पर सच्चे विद्वान् न हो सकेंगें।

४. जीविकोपयोगी शिक्षा देनेके विषयमें तो कुछ अधिक कहनेकी जरूरत ही नहीं है। इसके लिए पहले कई वार लिखा जा चुका है। सब ही जानते है कि 'सर्वारम्भास्तण्डुलाप्रस्थमूला'।

५. संभव है कि बहुतसे लोग यह कह उठें कि इतने अधिक विषय एक साथ कैसे पढाये जा सकते है? जैनसमाजके एक प्रसिद्ध पण्डितजीका तो यह सिद्धान्त है कि अधिक विषयोंकी शिक्षा देनेसे विद्यार्थी विद्वान् बन ही नहीं सकते और इसलिए वे अपनी पाठशालाके विद्यार्थियोंको सूखा न्याय और व्याकरण रटातें है–कहनेके लिए थोडा बहुत धर्मशास्त्र भी साथ लगा रक्खा है। परन्तु इस प्रकारके विचार उन्हीं लोगोंके हैं जो वर्तमान शिक्षाप्रणालीसे सर्वथा अपरिचित हैं–शिक्षाकी परिभाषा भी जो नहीं जानते और किसी तरहसे ग्रन्थ कण्ठ कर लेनेको ही विद्वत्ता समझते है। वास्तवमें विचार किया जाय तो किसी एक विषयको पढ़कर कोई किसी विषयका भी अच्छा मर्मज्ञ नहीं हो सकता है। एक विषयका मर्म समझनेके लिए उसके सहकारी

दूसरे विषयोंको भी जाननेकी ज़रूरत रहती है। व्याकरणका मर्मज्ञ कोई तब तक नहीं हो सकता जब तक साहित्यका ज्ञान प्राप्त न कर ले। धर्मशास्त्रोंका मर्म तबतक नहीं समझा जा सकता जबतक मनुष्यमे इतिहास, विज्ञान, भूगोल, समाजशास्त्र, देशकाल आदिका ज्ञान न हो। काव्यका मर्मज्ञ वह हो सकता है, जो मानसशास्त्रका ज्ञाता हो, मनुष्यसमाजके भीतरी भावोसे परिचित हो और प्रकृतिके मुक्तक्षेत्रमे जो वर्षोंतक स्वच्छन्द विचरता रहा हो। इसलिए प्रत्येक विषयमे निष्णात करनेके लिए उस विषयके सहकारी विषयोके साधारणज्ञान-की वहुत वडी आवश्यकता है। इसलिए जो ऊँचे दर्जेकी शिक्षासं-स्थायें हैं उनमे मुख्य विषयोके साथसाथ दूसरे अप्रधान विषयोंका भी साधारण ज्ञान करा देनेका प्रवन्ध रहता है। बालकोंकी प्रकृति भी ऐसी ही होती है कि वे लगातार एक दो विषयोको जी लगाकर नहीं पढ सकते हैं; घण्टे दो घण्टे पढ़नेके बाद एक विषयसे उनका जी ऊब उठता है। तब आवश्यक होता है कि उन्हें कोई दूसरा विषय पढाया जाय और उसके बाद और कोई तीसरा। इस तरह विद्यार्थि-योकी योग्यताके अनुसार एक साथ कई विषय वहुत अच्छी तरहसे पढ़ाये भी सकते है। शिक्षाविज्ञानके ज्ञाता इस बातपर ध्यान रखकर कि विद्यार्थियोंके मस्तकपर अधिक बोझा न पड़ जाय—उन्हे अधिक परिश्रम न करना पड़े—प्रत्येक कक्षामें कई विषयोंके पढानेका प्रवन्ध कर सकते है।

६. संस्कृत पाठशालाओके पठनक्रममे सबसे बड़ा विवाद इस बात पर उपस्थित होता है कि जैनग्रन्थ पढ़ाये जावें या जैनेतर विद्वानोके बनाये हुए ग्रन्थ पढ़ाये जावें। इस विषयमें भी हम अपनी क्षुद्र सम्मति दे देना चाहते है। यह विवाद धर्मशास्त्रोंको लेकर नहीं होता;

इसमें सब ही सहमत हैं कि जैनसस्थाओंमे जैनधर्मके ही ग्रन्थ पढाये जाना चाहिए। विवाद है व्याकरण, न्याय, साहित्यके ग्रन्थोंको लेकर। कुछ सज्जन यह कहते हैं कि इन तीनोकी शिक्षा केवळ जैन विद्वानोंके वनाये हुए ग्रन्थोंसे दी जाय और कुछ लोगोंका ख़याल है कि जैनेतर विद्वानोंके ग्रन्थ पढ़ाये जावें। इस पिछले ख़यालके जो लोग हैं वे प्रतिवर्ष सरकारी यूनीवर्सिटियोंकी संस्कृत परीक्षायें दिया करते हैं। पर हमारी समझमें इन दोनोंके वीचका मार्ग अच्छा है। सवसे पहले हमें इस वातपर ध्यान देना चाहिए कि हमारे विद्यार्थी इन विषयोंमें अच्छे व्युत्पन्न हो जावें—अजैन विद्यालयोंके पढनेवालोंकी अपेक्षा उनका ज्ञान कम न रह जाय और इसके वाद यह विचार करना चाहिए कि हमारे जैन विद्वानोंके ग्रन्थोंकी अवज्ञा न हो-उनकी प्रसिद्धिके मार्गमें रुकावट न हो। केवल इसी ख़यालसे कि यह जैन विद्वान्‌का वनाया हुआ है कोई ग्रन्थ पठनक्रममें भरती कर लिया जाय और उससे विद्यार्थियोंको वास्तविक वोध न हो तो यह ठीक नहीं। इसी तरह अमुक ग्रन्थ अमुक यूनीवर्सिटीमें पढाया जाता है, इस लिए हम भी पढावे इस ख़यालसे कोई जैनेतर ग्रन्थ भरती कर लिया जाय और उससे अच्छा वोध न हो तथा उसी विपयका उससे अच्छा जैनग्रन्थ पडा रहे, तो यह भी ठीक नहीं है। ग्रन्थोंकी योग्यता, उपयोगिता आदिपर सवसे अधिक दृष्टि रखनी चाहिए, उनके रचयिताओंके विपयमें कम। व्याकरण और साहित्यका धर्मसे कोई विशेप सम्वन्ध नहीं है। प्रत्येक व्याकरण 'पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः' ही सिद्ध करेगा, चाहे वह जैनाचार्यका वनाया हुआ हो और चाहे वैदिक वौद्ध या ईसाई विद्वान्‌का। देखना यह चाहिए कि सुगम और अल्पपरिश्रमसाध्य कौन है? यदि शाकटायन या जैनेन्द्र सम्पूर्ण और सुगम

है, तो कोई जरूरत नही कि दुरूह पाणिनीयके पढ़नेके लिए विद्यार्थी लाचार किये जावे और यदि डा० भाण्डारकरकी मार्गोपदेशिका अच्छी है तो क्या आवश्यकता है कि संस्कृतमे साधारण प्रवेश चाहनेवाले विद्यार्थी कातन्त्र या लघुकौमुदीके सूत्र घोंटा करे ?

जैन विद्वानोने न्यायके ग्रन्थोंमे अगाध पाण्डित्य प्रदर्शित किया है। इस विषयके हमारे यहाँ सैकड़ों ग्रन्थ मौजूद हैं। अतः इस विषयमें अन्यान्य नैयायिकोके ग्रन्थोकी अपेक्षा करनेकी हमे जरूरत नहीं। तो भी इस विषयमें हमें इतने कट्टर न बन जाना चाहिए कि दूसरोंके ग्रन्थोको पास भी न आने दें। यदि प्रारंभिक ज्ञान करनेवाले तर्कसग्रह जैसे क्रमिक ग्रन्थ हमारे यहाँ न हों और ऐसा न्यायशास्त्रियोके मुँहसे सुना भी है, तो उन्हें भरती कर लेनेमे संकोच न करना चाहिए। इसके सिवा ऊँची कक्षाओंके विद्यार्थी यदि अन्यमतके न्यायग्रन्थ भी पढ़ना चाहें तो उनके पढ़ानेका प्रबन्ध कर देना बुरा नहीं है। विद्वानोंको सबहीके ग्रन्थ पढ़नेकी आवश्यकता है।

काव्य नाटक अलङ्कारादिके ग्रन्थ भी हमारे यहाँ बहुत है; परन्तु हमारा यह विभाग न्यायादि विभागोंके समान पूर्ण नही है। यद्यपि हमारे कई काव्यग्रन्थ साहित्याकाशके चमकते हुए तारे है तो भी यदि हम चाहें कि अपने विद्यार्थियोंको कालिदास भवभूति आदिके ग्रन्थ बिलकुल ही न पढ़ावें तो हमारी समझमें उनका साहित्य—ज्ञान बहुत अधूरा रह जायगा और यह उनपर एक प्रकारका अन्याय होगा। जब यह कोई धर्मका विषय नहीं है तब इसमें इतना अधिक कट्टर होनेकी जरूरत नहीं है। हमारे जो अच्छे अच्छे काव्य है उनको प्रसिद्धिमे लाना, उनको पाठ्यग्रन्थ बनाना, यह हमारा कर्तव्य है। क्योंकि फिलहाल उनका आश्रय देनेवाले हम ही है। परन्तु साथ ही हमें इस विषयका

विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिए औरोंके काव्योंको भी पढ़ना चाहिए। हमारा तो यहाँ तक ख़याल है कि हम अपने काव्योंकी खूबियाँ सर्व साधारणमें तब ही प्रकट कर सकेंगे जब औरोंके काव्योंको अच्छी तरह पढ़ेंगे। नाटक और अलकारके ग्रन्थ तो हमें औरोके पढना ही पडेंगे। क्योंकि इन विषयोंके हमारे कोई अच्छे ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित ही नहीं हुए है।

७. उक्त सब बातोंकी व्यवस्था विद्यालयमें तब हो सकेगी जब उसमें एक अच्छे विद्वानकी नियुक्ति हो। यह विद्वान् प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षाप्रणालीका ज्ञाता हो, शिक्षाविभागमें काम किया हुआ हो, संस्कृतका शास्त्री और अँगरेजीका ग्रेज्युएट हो। जहाँतक हम जानते हैं जैनियोंमें ऐसे विद्वानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए किसी अजैनको ही बुला लेना चाहिए। शायद यह बात कुछ लोग पसन्द न करें परन्तु इसे पसन्द किये विना विद्यालय कदापि उन्नति न कर सकेगा। इस विषयमें सठेजीको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। धर्मशिक्षामे इससे बाधा नहीं आसकती। धर्मशिक्षाका कोर्स कमेटी बना देगी और उसके लिए जैनी पण्डितोंको नियत कर देगी—उसमें उक्त अजैन विद्वान् देखरेख रक्खेगा और पढ़ानेके ढंग आदिके विषयमे सूचना करता रहेगा—इसके आगे और कुछ हस्तक्षेप नहीं करेगा। बस, इससे सब डर दूर हो जायगा।

८. विद्यालयमें वृत्तिप्राप्त छात्र चाहे कम रक्खे जावें, पर एक प्रिंसिपाल (अजैन), एक सुपरिंटेंडेंट, एक धर्मशास्त्री, एक हिन्दी अध्यापक, एक वैयाकरण और साहित्यज्ञ और एक नैयायिक, इतने कर्मचारी बहुत अच्छी योग्यताके अच्छा वेतन देकर रक्खे जावे। इनके सिवा एक दो अध्यापक और भी रहें। यह स्मरण रखना चाहिए कि अध्यापक-

गण जितने ही योग्य होंगे, विद्यालय उतना ही अच्छा और आदर्श बनेगा।

९ ' सेठ हुकमचन्द बोर्डिंग स्कूल ' अभीतक जुदा चलता था। उसमें लगभग १२५) मासिक खर्च होता था। अब वह विद्यालयमें शामिल कर दिया जायगा; परन्तु यह माॡम न हुआ कि उक्त १२९) मासिक विद्यालय फण्डमें दिया जायगा या नहीं। हमारी समझमें सेठ-जीके नये दानसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए पहले दानकी रकम इस दो लाखके साथ अवश्य जोड़ देनी चाहिए।

आज इतना ही लिखकर हम विश्राम लेते हैं। उदासीनाश्रम और श्राविकाश्रमके विषयमें आगे लिखा जायगा।

करो सब देशकी सेवा।

बनो मत बन्धुओ न्यारे, प्रभूके हो सभी प्यारे,
इकट्ठे हो, करो सारे, सनातन देशकी सेवा ॥ १ ॥
हृदयकी ग्रन्थियाँ छोड़ो, स्वपरके भेदको तोड़ो,
परस्पर प्रेमको जोड़ो, करो सब देशकी सेवा ॥२॥
प्रगतिके संख बोज है, विवेकी वीर जागे है;
पड़े क्यो नींदमें प्यारो, करो सब देशकी सेवा ॥ ३ ॥
न हो यदि धन तो तनहीसे, न हो यदि श्रम तो धनहीसे,
नहीं दोनो तो मनहींसे, करो सब देशकी सेवा ॥४
करोड़ों अन्न बिन रोते, सिसकते प्राण हैं खोते,
बहाकर प्रेमके सोते, करो सब देशकी सेवा ॥५
पडे लाखों अँधेरेमें, फिरें अज्ञान-फेरेमें,
उजारो ज्ञानके दीपक, करो सब देशकी सेवा ॥६

हज़ारों रोग दुख सहते, विना उपचारके मरते,
दयामृत इन पै बरसाके, करो सब देशकी सेवा ॥७
सुदुस्तर रूढ़ि-दलदलसे, उबारो, सत्यके बलसे,
दिखाओ धर्मके पथको, करो सब देशकी सेवा ॥८
वनो उत्साहसे ताजे, बजाओ ऐक्यके बाजे,
गिरोंको भी उठा करके, करो सब देशकी सेवा ॥९
बनो पहले स्वयं सच्चे, बनाओ और फिर अच्छे,
यही दृढ नीव धर करके, करो सब देशकी सेवा ॥१०
सदा जीता नहीं कोई, मरा परहित जिया सोई,
समझ अमरत्व इसको ही, करो सब देशकी सेवा ॥११
उठो, जागो, कमर कस लो, क्षणिक सुखमोहको तज दो,
कसम भगवानकी तुमको, करो सब देशकी सेवा ॥१२
परम कर्तव्य 'जन-सेवा,' परम सद्धर्म 'जनसेवा'
समझकर भाइयो मेरे, करो सब देशकी सेवा ॥१३॥

—जैनहितेच्छु ।

मीठी मीठी चुटकियाँ।

१. कैलाशयात्रा।

खबर है कि जैनमित्रके सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कैलाशकी यात्राके लिए जानेवाले हैं। उनके पास ब्रह्मचारी लामचीदासकी मृत आत्माका आग्रहपूर्ण पत्र आया है । वे लिखते है कि सगरराजाके पुत्रोंकी खोदी हुई खाईको हमने आपके लिए पाट कर तैयार कर रक्खा है!

२. सर्वोच्च डिटेक्टिव।

जैन समाजकी एक प्रसिद्ध धनिकसभाने पं० जवाहरलालजी साहित्य शास्त्रीको अपने डिटेक्टिव विभागके सर्वोच्च पदपर प्रतिष्ठित किया है। सुना है कि आपकी कार्यनिपुणतासे प्रसन्न होकर सभा आपको एक मेडल देने वाली है।

३. अनुसन्धान होना चाहिए।

आजकाल जैनगजटमें पं० सेठ मेवारामजीकी तूती नहीं बोलती। उनकी यशोगाथायें भी आजकल उनके भक्तोंको सुननेके लिए नहीं मिलती। इससे लोक बहुत उद्विग्न हो रहे हैं। क्या कारण है, इसका शीघ्र ही अनुसन्धान होना चाहिए।

४. डेप्युटेशन भेजा जाय।

इन्दौरके एक सेठ लगभग २॥ लाखका दानकर चुके, दूसरे ४ लाखकी संस्थायें खोल रहे है और एक तीसरे सेठ भी बहुत जल्दी लगभग २ लाख रुपया खर्च करनेवाले है। इन खबरोसे कुछ लोगोमें बड़ी हलचल मची है। अभी उस दिन प्रतिष्ठा करानेवाले पण्डितोंने एक सभा करके इन दानोंके विरुद्धमें एक प्रस्ताव पास किया। उसमें कहा कि ये दान शास्त्रविहित नहीं हैं। कलियुगी या पंचमकालीय दानोंके सिवा इन्हे और कोई नाम नहीं दिया जा सकता। आर्ष ग्रन्थोंमें इस प्रकारके दानोका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इनका परिणाम भी उल्टा होगा। इनकी संस्थाओमें सब 'एकाकार' के उपासक तैयार होंगे। प्रभावनाका तरीका लोक भूलते जा रहे हैं। अच्छा हो यदि एक डेप्युटेशन उक्त सेठोंके यहाँ भेजा जाय और उनका ध्यान [illegible]र निर्मा[illegible]दि कार्योंकी ओर दिलाया जाय। डेप्युटेशनके मंत्री श्रीयुत प्रतिष्ठा-प्रभाकर महाराज नियत किये गये।

५. कैफ़ियत तलब की गई।

समस्त शुद्धाम्नायी भाइयोंकी ओरसे मालवा प्रान्तिक सभाके पास एक पत्र भेजा गया है और उसमें इस बातकी कैफ़ियत तलब की गई है कि मालवा प्रान्त शुद्धाम्नायका केन्द्र है, तब उसकी सभाके सभापतिके पदपर सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजी क्यों बैठाये गये? क्या सभाको यह मालूम नहीं है कि उक्त सेठजी बीसपंथी हैं और जैनसमाजमें छापेका प्रचार करनेवाले प्रधान आचार्य है। यदि उन्हें सभापति बनाया भी था तो कमसे कम इन्दौरके उस पुराने काग़जपर तो उनसे दस्तखत करा लेना चाहिए था जिसमे छापेके ग्रन्थोंके घरमें न रखनेकी प्रतिज्ञायें लिखी हैं। देखें, सभा इस पत्रका क्या उत्तर देती है।

६. एक और भट्टारक।

सोजित्राकी भट्टारककी गद्दीपर पं० सुन्दरलालजी बहुत जल्दी बैठनेवाले हैं। बिना किसीकी सम्मतिसे एक जैन स्त्री उन्हें शीघ्र ही भट्टारक बना देना चाहती है। 'दिगम्बरजैन' ने इसके विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है और चाहा है कि लोग इस अन्यायको रोकें। बिना सबकी सम्मति लिए सुन्दरलाल जैसे महात्माओंको गद्दीपर बिठा देना ठीक नहीं। परन्तु मेरी समझमें उसका यह खयाल गलत है। लोग उसकी सुनते भी कहाँ है? पिछले वर्ष मोतीलालजीके विषयमें क्या थोडी उछल कूद मचाई थी? पर हुआ क्या? वे भट्टारक बन बैठे और लोग उनकी पूजा भी करने लगे जब तक गुजराती भाइयोंमें प्रबल गुरुभक्तिका अस्तित्व है, तब तक वे उसकी बातें क्यों मानने लगे? और यह भी तो सोचना चाहिए कि आजकल स्त्रियोंका बल कितना बढ़ा हुआ है। जब एक स्त्रीने इसके

लिए कमर कसी है, तब गुजराती पुरुषोंमें इतनी शक्ति कहाँ है जो उसमें विघ्न डाल सकें। सुना है भट्टारक मोतीलालजी मंत्रविद्याके जानकार है। इस लिए हम प० सुन्दरलालजीको सलाह देते हैं कि वे उनसे वह मंत्र जल्द सीख लेवें जिसके बलसे सैकड़ों लोगोंके विरुद्ध रहते भी वे ईडरके भट्टारक बन गये। उक्त मंत्रसे आपकी सारी मनोकामनायें सिद्ध हो जावेगी।

७. श्रुतपञ्चमी आई।

हरसाल श्रुतपंचमी आती है और चली जाती है। जो सदा आती है उसकी [illegible]रबार याद दिलानेकी मालूम नहीं क्या जरूरत है। जैन-पत्र सम्पादकोंको यह एक तरहका रोग ही हो गया है कि वे वैशाख जेठ आया और लगे अपना वही पुराना राग आलपने। इस रागको सुनकर लोग और तो कुछ करते नहीं, ग्रन्थोंको झाड़झूड़कर ठीकठाक करके रख देते हैं और इस आरंभमें कुछ सूक्ष्म जीवोंको शरीरयातनासे मुक्त कर देते हैं। इससे मैं इस रागको पसन्द नहीं करता। अपने राम तो ठीक इससे उलटा कहते हैं कि भाई, इस श्रुतपंचमीके झग-ड़ेको छोडो; ये पढ़े लिखे लोग तुम्हारे गले ज़बर्दस्ती एक नया ज़रवा मढ़ रहे है। इन पुराने गले सड़े शास्त्रोंमें रक्खा ही क्या है जो इतनी मिहनत करते हो। यदि इनमें कुछ हो भी, तो उसे समझे कौन? अपने लड़के तो बारहखड़ी, पहाड़े, हिसाब, किताब आदि सीखकर ही अपने कारोबारको मजेसे सँभाल लेते हैं और रहा धर्म, सो मंगल पढ़ लेते हैं, पूजा जानते है, व्रत उपवास कर लेते है, हरियोंका त्याग तो [illegible]ना ही नहीं पड़ता है—स्वयं कर लेते हैं, फिर और क्या चाहिए? मेरी [illegible] तो ये 'संसकीरत पराकरत' के शास्त्र पंडितोंको सोप देना है, वे चाहे इनकी सुतपंचमी करें चाहे और कुछ करें। अपने

लिए तो भाखाके पदमपुरानजी ही वहुत है और वे अब छप गये है इसलिए उनके सॅभालनेकी जरूरत नहीं। जिस दिन वी. पी. आया अपनी तो उसी दिन सुतपचमी है।

विविध समाचार।

जैनजातिका ह्रास—दक्षिणम० जैन सभाके सभापति श्रीयुक्त जयकुमार देवीदासजी चवरे वकीलने अपने व्याख्यानमें कहा है कि भारतके दूसरे समाजोंकी जनसख्या जब बराबर वढती जाती है तब जैनसमाजकी जनसख्या वड़ी तेजीसे घट रही है। पिछले १० वर्षोमें हमारी संख्यामें प्रतिशत ६-४ की कमी हुई है। और जिनजातियोंकी जनसख्या थोड़ी है उनमें तो यह कमी प्रतिशत १५ से कम नहीं हुई है। हमारे वरार प्रान्तमें तो वहुतसी जातियॉ विलकुल नाश होनेके सम्मुख हो रही हैं। वरार प्रान्तके प्रायः सब ही लोग जानते है कि वहॉकी 'कुकेकरी' नामकी एक जैनजातिका थोडे वर्ष पहले सर्वथा ही लोप हो गया है। इस पर जैमसमाजके नेताओको ध्यान देना चाहिए।

जैन गुरुकुलकी स्थापना—पालीताणाकी 'यशोविजय जैनपाठशाला' 'श्रीमहावीरयशोवृद्धि जैन गुरुकुल' के रूपमें परिवर्तित कर दी गई। गत अक्षय्यतृतीया (वैशाख शुक्ला तृतीया) को गुरुकुलकी इमारतका मुहूर्त पालीताणाके एड मिनिस्टर मेजर एच. एस. स्ट्रोग साहबके हाथसे खूब ठाटवाटके साथ किया गया। गुरुकुलमें इस समय ५१ विद्यार्थी है।

नई धर्मशाला—सम्मेदशिखर जानेवाले यात्रियोके आरामके लिए ईसरी स्टेशनपर गुजेटीवाले सेठ धनजी रेवचन्दकी ओरसे एक धर्मशाला बन गई है। धर्मशाला स्टेशनसे विलकुल करीब है।

एक और उदासीनाश्रम—इन्दौरके उदासीनाश्रमके अतिरिक्त कुण्डलपुर, जिला दमोहमें एक और आश्रम खुलनेवाला है। उसका नाम होगा 'श्री महावीर उदासीनाश्रम'। लगभग आठ हजारका चन्दा हो गया है।

हिन्दीमें विश्वकोष—प्राच्यविद्यामहार्णव बाबू नगेद्रनाथने २७ वर्ष लगातार परिश्रम करके बंगला भाषामे 'विश्वकोश' तैयार किया है। उसमें लगभग ७ लाख रुपये खर्च हुए हैं। यह 'इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका' के ढँगका है। अब बाबू साहबने हिन्दीमें भी इसी ढँगका 'विश्वकोष' लिखना प्रारंभ कर दिया है। मासिकरूपसे निकलेगा। वार्षिक मूल्य चार रुपया है। इसमें भी उतना ही खर्च होगा। पर यह बगलाका अनुवाद न होगा--उसकी केवल सहायता लेकर स्वतन्त्र लिखा जायगा। इसे पर्यायवाची शब्दोंका ही कोष न समझना चाहिए यह ज्ञानका भण्डार है। केवल अकबर शब्दही पर इसमें कई पृष्ठोंका महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। हिन्दीका अहोभाग्य है।

स्याद्वादपर व्याख्यान—पूनेमें एक संस्था है। उसकी ओरसे प्रतिवर्ष वसन्त ऋतुमें बड़े बड़े विद्वानोके व्याख्यान होते है। इस वर्ष ता० ८ मईको शोलापुर जैनपाठशालाके अध्यापक प० वशीधर शास्त्रीका श्रीयुक्त वासुदेव गोविन्द आपटे बी.ए. के सभापतित्वमें 'स्याद्वाद' के विषयमे व्याख्यान हुआ। सार्वजनिक सस्थाओंमें इस तरहके व्याख्यानोंसे बहुत लाभ होनेकी सभावना है।

द्वीपान्तरोंमें भारतीय सभ्यता—पूर्वकालमे भारतवासियोंने भी दीपान्तरोंमें जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। अभी अभी ऐसे कई द्वीपोका पता लगा है। जावा (यवद्वीप) में प्राचीन भारतवासियेंके वशज अब तक मौजूद हैं। वे यहाँ सरीखी धोती पहनते

हैं, खेती आदिके काम मुहूर्त देखकर करते है, रामायण और महाभारतकी आख्यायिकाओंपर रचे हुए नाटक खेलते है, और बड़के झाडोंके नीचे उनके ग्राम्य देवोंके मन्दिर होते हैं। वहाँके मुसलमान तक हिन्दू देवोंकी पूजा करते हैं! वहाँ दो ज्वालामुखी पर्वत हैं उनका नाम उन्होंने अर्जुन और ब्रह्मा रख छोडा है। इस द्वीपके पूर्वकी ओर 'वाली' नामका द्वीप है। वहाँके तो प्रायः सबही लोग हिन्दू हैं। वर्ण-व्यवस्था तक उनमें मौजूद है।

विदेशमें हिन्दू-मंदिर—विदेशयात्राके लिए चाहे कितना ही प्रतिबन्ध किया जाय परन्तु वह रुकती नहीं। लोग तो जाते ही हैं अब उनके साथ उनके इष्टदेव भी जाने लगे है। नेटालके 'वेरुलम' नामक नगरमें अभी हाल ही गोपाललालका एक विशाल मन्दिर बनकर तैयार हुआ है।

बंगलामें जैनसाहित्य—बगलाके मासिकपत्रोंमें अब जैनसाहित्यकी थोडी बहुत चर्चा होने लगी है। अभी अभी ऐसे कई लेख प्रकाशित हुए हैं। फाल्गुन चैत्रके 'साहित्य'मे उपेन्द्रनाथ दत्त नामक किसी सज्जनने 'जैनशास्त्र' शीर्षक एक लेख लिखा है। इसमें चार अनुयोगोंका संक्षिप्त स्वरूप दिया है। लेखमे भूलें बहुत है; एक जगह लिखा है कि "श्वेताम्बरी लोग कहते हैं कि जैनशास्त्र जैनसाधु और तीर्थकरोके रचे हुए हैं; परन्तु दिगम्बरी कहतें है कि केवल महावीर तीर्थकर ही इनके प्रणेता हैं।" पर यह भ्रम है। भूलें आगे सुधर जावेंगी—अभी चर्चा होने लगी-इतना ही बहुत है।

जैनियोंपर नरहत्याका अभियोग—जयपुरकी जैनशिक्षा-प्रचारक समितिके संस्थापक प० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. इस समय बड़ी विपत्तिमे है। उनके माणिकचन्द, मोतीचन्द और जयचन्द

नामक तीन शिष्योंपर और जोरावरसिंह नामक एक और युवकपर नीमेज जिला शाहबादके महन्त और उसके एक सेवककी हत्या करनेका अपराध लगाया गया है। मुकद्दमा आरामें चल रहा है। माणिकचन्द सरकारी गवाह बन गया है। उसने स्वयं अपने साथियों सहित हत्या करना स्वीकार किया है। और भी कई साक्षियोसे हत्या करना सिद्ध हुआ है। हत्या महन्तकी सम्पत्ति लेनेके लिए की गई थी। जो सम्पत्ति मिलती वह देशसेवाके काममें खर्च की जाती। परन्तु अपराधी तिजोरी न तोड़ सके और भयके मारे भाग गये। सेठीजी इस हत्यामें शामिल नहीं बतलाये जाते है, परन्तु पुलिसको विश्वास है कि उनकी भी इसमें साजिश है। कुछ ऐसे सुबूत भी मिले हैं जिससे अनुमान होता है कि सेठीजीने एक राजद्रोह प्रचारक समिति बना रक्खी थी और उसका सम्बन्ध दिल्लीके षड़यन्त्र करनेवालोंसे था। अपराधियोमेंसे जयचन्द और जोरावरसिंह लापता है। शिवनारायण द्विवेदी जो बम्बईमें गिरिफ्तार किया गया था, उसके द्वारा पुलिसको इस सारे षडयन्त्रका पता लगा है। इस समाचारको पढ़कर हम लोगोंके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा है। क्या जैनियोंके द्वारा भी ऐसे घोर पातक हो सकते है?

ग्रन्थ लिखाइए—आराके जैन सिद्धान्तभवनमें इस समय कई सुलेखक मौजूद हैं। भवनके संचित ग्रन्थोंमेंसे यदि कोई भाई ग्रन्थ लिखवाना चाहे तो मंत्रीसे शीघ्र ही पत्रव्यवहार करे।

मुंशीजीका देहान्त—गत ता० ८ मईको महासभाके महामत्री मुंशी चम्पतरायजीका देहान्त हो गया। यह बड़े ही शोकका विषय है। आप कई महीनेसे बीमार थे।

———



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] चैत्र-वै०,श्री०वी०नि०सं० २४४०।[६,७ वाँ अं०

विनोद-विवेक-लहरी।

(९)

बुढ़ापेकी बातें।

सम्पादक महाशय! भग नहीं पहुंची, इधर कई दिन बडे कष्टसे वीते। आजका यह लेख आँखे फाड फाड कर लिखा है। अपनी बुद्धिसे लिखा है; भगभवानीकी कृपासे नहीं। आज एक अपने मनक दुःखकी बात लिखता हूं।

मै बुढापेकी बातें लिखूँगा। लिखूँ—लिखूँ कर रहा हूँ, लेकिन लिख नहीं पाता। हो सकता है कि ये दारुण या करुण बाते मुझे बहुत ही प्यारी लगती हों, क्योंकि अपने सुखदुखकी बाते सबको अच्छी माळूम पडती हैं, किन्तु यदि मै इन बातोको लिखूँगा तो दूसरा कोई क्यों पढेगा? जवान लोग ही प्रायः लिखते पढते है, बूढे लोग नहीं। जान पडता है, मेरी इन बुढापेकी बातोंको पढनेवाला एक भी न निकलेगा।

इसीसे मै ठीक बुढापेकी बाते नही लिखूँगा। वैतरणी (यमलोककी एक भयानक नदी) के किनारे लगे हुए अन्तिम जीवनसोपान

पर अभी मैंने पैर नहीं रक्खा। कमसे कम मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि वह दिन अभी दूर है। किन्तु जवानी पर भी अब मेरा कुछ दावा नहीं है, मियादी पट्टेकी मियाद पूरी हो गई। यद्यपि मियाद पूरी हो गई है, लेकिन बकाया वसूल करना बाकी है। उसके लिये अभी कुछ झगड़ा बना हुआ है। अभी मैं जवानीसे पूरी तौर पर फ़ारख़ती नहीं ले सका। इसके सिवा महाजनका भी कुछ बाकी है; अकालके दिनोंमें बहुत कर्जा लेकर खाया है। अब उस ऋणको चुका सकनेकी न आशा है और न शक्ति ही है। उस पर, पार पहुँचानेवालेको उतराई देनेके लिये कुछ जमा करनेकी ज़रूरत है। मैं अगर अपने इस दुःख-चिन्तापूर्ण समयकी दो चार बातें कहूँ, तो क्या तुम जवानीका सुख छोड़कर एक बार सुनोगे ?

पहले असल बातका निर्णय हो जाना चाहिये। अच्छा, क्या मैं बूढ़ा हूँ ? मैंने यह प्रश्न केवल अपने ही लिये नहीं उठाया। मैं, बूढ़ा हूँ या जवान हूँ, दोनोंमेंसे एक बात स्वीकार करनेके लिये तैयार हूँ। किन्तु जिसकी अवस्था ऐसी ही खींचतान की है, जिसकी जवानीका सूर्य ढल चुका है, ऐसे हर एक आदमीसे मैं यही कहता हूँ कि विचार कर देखिये, क्या आप बूढ़े हैं ?

आप, या तो, बाल भौंरेके ऐसे काले घुँघराले—दाँत मोतीकी लड़ीको भी लजानेवाले, और नींद तिबारा ब्याहकर लाई हुई जोरूके जगाने पर (भी) न खुलनेवाली होनेपर भी, बूढ़े हैं। या, बाल गंगाजमुनी, दांतोंकी लड़ी बीच बीचके एक दो दांतोंसे शून्य, और नींद आँखोंके लिये विडम्बना मात्र होने पर भी, जवान हैं। आप कहेंगे, इसके क्या माने ? मैं कहता हूँ, इसके माने यही हैं कि बहुत लोग ऐसे हैं जो ३०—३५ वर्ष की अवस्थामें ही अपनेको बूढ़ा मान लेते

है और बहुत ऐसे है जो ४०–४५ वर्षके होने पर भी अपनेको जवान समझते हैं। जो तीस पैंतीस वर्षकी अवस्थामें बूढा बनना चाहता है वह या तो बूढा बनकर अपनी विज्ञता प्रकट करना चाहता है और या चिररोगी अथवा किसी बड़े दुःखसे दबा हुआ है। ऐसे ही जो ४०–४५ वर्षकी अवस्थामें अपनेको जवान बतलाना चाहता है उसको या तो यमराजका भारी भय है और या उसने तिवारा किसी षोडशीसे व्याह किया है।

किन्तु, जीवनकी इस आधी मजिलपर पहुँचकर चश्मा हाथमे ले, रूमालसे मत्थेका पसीना पोछते पोंछते ठीक ठीक बतलाना कठिन है कि "मैं बूढा हुआ या नहीं।" शायद हो गया। अथवा अभी नहीं हुआ। मन कहता है कि ऑखोंसे भले ही साफ न देख पडता हो, बाल भले ही एक आध पक गये हो, लेकिन अभी बूढा नहीं हुआ। क्यों? कुछ भी तो पुराना नहीं हुआ। यह पुराना—बहुत पुराना जगत् तो आज भी नवीन ही है! प्यारी कोयलका कुहूकुहू शब्द पुराना नही हुआ, गगाकी ये सुन्दर चचल चमकीली लहरें पुरानी नही हुई, प्रभात कालकी शीतल मन्द सुगन्ध हवा—बकुल कामिनी चम्पा चमेली जूहीकी सुगध—वृक्षोकी श्यामल शोभा—चन्द्रमाकी विमल चॉदनी—कुछ भी पुराना नहीं हुआ। सब वैसा ही उज्ज्वल, कोमल, सुन्दर है। केवल मैं ही पुराना होगया? मै इस बातको नही मानता। पृथ्वी पर तो इस समय भी वैसे ही हॅसीका फुहारा छूट रहा है। केवल मेरे ही हॅसनेके दिन चले गए? पृथ्वीपर उत्साह, क्रीडाकेलि, रगतमाशा आज भी वैसे ही भरा पडा है। केवल मेरे ही लिये नहीं है? जगत् प्रकाशपूर्ण है। केवल मेरे ही लिये अन्धकारमयी अमाकी निशा आगई? सालोमन कम्पनीकी दुकानपर वज्रपात हो, मै यह चश्मा तोड डालूँगा। मै बूढा नही हुआ।

मगर कठिनता तो यह हैः कि मै मानूँ या न मानूँ, लेकिन बुढापा नहीं मानता। वह चला ही आता है। मैं लाख दूर भागूँ—पर वह पीछा नही छोड़नेका। धीरे धीरे पल पल आयु क्षीण होती जाती है। जवानीवाला किनारा दूर होता जा रहा है। मै लाख कहूँ कि बूढा नहीं हुआ, लेकिन 'मै बूढ़ा हो चला'—इसका अनुभव मुझे हर घड़ी होता जाता है। लोग हँसते है, मै केवल उनका मन रखनेके लिये हँसीकी नकल कर देता हूँ। लोग गाते बजाते हैं, मैं केवल यह दिखानेके लिये कि मैं अभीतक बूढा नही हुआ—मुझमे जवानीका उल्लास वैसा ही है, उनकी मण्डलीमे शामिल होता हूँ। लेकिन सच पूछो तो हँसने बोलने या गाने बजानेके लिये हृदय नही हुलसता। मेरे लेखे उत्साह है ही नहीं। आशा, मेरी समझमे अपने आत्माको धोखा देना है। कहाँ, मुझमे तो उत्साह या आशा—भरोसा कुछ भी नही है। जो है नहीं, उसे खोजनेकी भी कोई ज़रूरत नहीं।

खोजनेसे क्या मिलेगा? जो फूलोंकी माला इस जीवनवाटिकाको सुगधित और सुशोभित करती थी, उसके सब फूल एक एक करके झड गए। जो सदा प्रफुल्लित मुखकमल मुझे बहुत प्यारे लगते थे, उनमें बहुतसे अदृश्य हो चुके, और बहुतसे अब भी घाममे मुरझाए हुए तीसरे पहरके फूलकी तरह देख पडते हैं; उनमे वह रस नहीं है। इस टूटे-फूटे भवनमें, इस निरानन्द बद नाट्यशालामें, इस उजडी हुई महफिलमे वह उज्ज्वल दीपमाला कहाँ है? एक एक करके सब प्रकाश बुझ गए। केवल मुख ही नहीं, वह सरल स्नेहपूर्ण—विश्वासमें दृढ़—सौहार्दमे स्थिर—अपराध करनेपर भी प्रसन्न बन्धु-हृदय कहाँ है? नही है। किसके दोषसे नही है? इसमें मेरा दोष नहीं, बन्धुओंका भी दोष नहीं, दोष है अवस्थाका अथवा यमराजका।

तो इसमे हानि क्या है ? अकेला आया था, अकेला ही जाऊँगा। इसकी चिन्ता क्या है ? इस असख्यजीवपरिपूर्ण ससारसे मेरी नहीं बनी, अच्छा, विदा। पृथ्वी, तू अपने नियमित मार्ग (कक्षा) में घूमती रह, मैं भी अपने मनकी जगह जाता हूँ। तेरा मेरा नाता छूटा, तो इससे तेरी हानि क्या है ? और मेरी ही क्या हानि है ? तू अनन्त काल तक यों हीं शून्य-पथमें घूमा करेगी। और मैं, मैं भी कुछ ही दिनोका मेहमान हूँ—फिर, जिसके पास परम शान्ति मिलती है, सब ज्वालाएँ मिट जाती हैं, उसीके पास, तुझे चक्करमें छोड कर चल दूँगा।

अच्छा, तो इससे यह निश्चय हुआ कि एक तरहसे मैं बूढा हो चला। अब मुझे क्या करना चाहिए ? किसी नासमझने लिख दिया है कि पचासके बाद वनमें चले जाना चाहिये—'पञ्चाशोर्ध्वं वन व्रजेत्'। वन और कहाँ है ? मेरे लिये तो बस्ती ही वन है। आप सच मानियेगा— इस अवस्थामें सब भोगविलासकी सामग्रियोसे परिपूर्ण बडे बडे महलोंकी शोभा और आदमियोंकी चहलपहलसे नाजवानोंको खुश करनेवाली नगरी ही जगल है। हे नवयुवक पाठकगण, तुम्हारे हृदय और मेरे हृदयसे बिल्कुल मेल नहीं है। खास कर तुम्हारा ही हृदय मेरे हृदयसे नहीं मिलता। ईश्वर न करे कोई आपत्ति आपडे तो उस समय शायद तुममेंसे कोई पूछने भी आवे कि "ए बुड्ढे, तूने बहुत देखा सुना है। बता, इस विपत्तिमें मै क्या करूँ ?" लेकिन अमन चैनके समय कोई नही कहेगा कि "ए बूढे, आज हमारे खुशीका दिन है, आ, तू भी आनन्द मना।" बल्कि ऐसे जल्से तमाशोमें इस बातकी कोशिश की जायगी कि बूढे खूसटको ख़बर न होने पावे। तो बताओ, जगलमें बाकी क्या है ?

हे प्रौढ-पाठकगण! जहाँ तुम पहले स्नेहकी प्रत्याशा करते थे वहीं तुम इस समय भय या भक्तिके पात्र हो। जो पुत्र, तुम्हारी जवा-

नीके समय, अपने लड़कपनमे, तुम्हारे पास पलँगपर पड़ा हुआ, सोते सोते छोटे छोटे हाथ फैलाकर तुमको खोजने लग जाता था, वह इस समय तुमसे मिलता भी नहीं, और लोगोंके द्वारा खबर लेता है कि पिताजी कैसे हैं? जिस पराए लडकेकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर तुमने उसको गोदमें लेकर आदर किया था, मुख चूमा था, वही आज जवान है। वह इस समय या तो महापापी है—अपने कुकर्मोंसे पृथ्वीका भार बढा रहा है—पापके सागरमे आकण्ठ निमग्न है, अथवा तुम्हारा ही शत्रु बन बैठा है। तुम क्या करते हो? केवल रोकर कह सकते हो कि इसे मैंने अपनी गोदमे खिलाया है। तुमने जिसे गोदमे बिठाकर 'क-ख' सिखलाया है वही इस समय लब्धप्रतिष्ठ लेखक और पण्डित है, और तुम्हींको मूर्ख कहकर मन-ही-मन हँसता है। जिसको किसी समय तुम कुछ न समझते थे वही इस समय तुमको कुछ नही समझता। तो बताओ, अब जगलमे बाकी क्या है?

भीतरी बातें छोड़कर बाहर देखिये, वहाँ भी ऐसा ही देख पड़ेगा। जहाँ तुमने अपने हाथसे फूलबाग लगाया था, चुन-चुन कर गुलाब बेला, चमेली, जूही आदिके पेड लगाए थे, घड़ा लेकर अपने हाथो पानी सींचा था वहीं देखोगे कि चने मटरकी खेती हो रही है। कल्लू किसान बैलोंको हाँकता हुआ मजेमे गागाकर हल चला रहा है—उस हलकी नोक मानो तुम्हारे हृदयमें घुसी जाती है। जो मकान तुमने जवानीमे तरह तरह की अभिलाषाएँ करके बड़े यत्नसे बैठकर बनवाया था, जिसमें पलँग बिछा कर, उस पर अपनी धर्मपत्नीके साथ नयनसे नयन और अधरसे अधर मिलाकर, इस जीवनमे कभी न मिटनेवाले प्रेमकी बातें पहलेपहल की थी, देखोगे, उसी घरकी ईंटें किसी रईसके अस्तबलकी सुर्खी तोड़नेके लिये गधोंपर लदी चली

जा रही हैं। उस तुम्हारे यौवन-लीला-निकेतन पलँगकी 'पट्टी' और 'पाए' चूल्हेमें जलाए जा रहे हैं। तो बताओ, अब जगलमे क्या बाक़ी रहा ?

सबसे बढकर जलनकी बात यह है कि तुमने या मैंने उस जवानीके समय जिसे सुन्दर परमसुन्दर देखा था वही अब बुरा (कुरूप) है। मेरे प्यारे मित्र बाबू आनन्दकन्द बडे ठाटके साथ जब जवानीमें मस्त हो रूपके घमडमे ऐंठे फिरते थे तब (उन्हींके कथनानुसार) न-जाने कितनी रसिक रमणियाँ गगातट पर उन्हे देखकर शिव पर जल चढ़ाते समय " नम· शिवाय " की जगह " आनन्दकन्दाय नमः " कह बैठती थी। इस समय उन्हीं आनन्दकन्दका हाल क्या है ?—जानते हो ? वह रूपका बाजार लुट गया है, वे बडी बड़ी आँखें बैठ गई है, बाल पक गए हैं, मुँहमें दाँत एक भी नहीं रहा, खाल लटक आई है, लठिया टेककर सिर हिलाते—मानो अपने किये पिछले कर्मों पर पछताते—चले आते हैं। आनन्दकन्दजी जवानीमे एक बोतल बराडी और तीन मुर्गियोंका 'जलपान' करते थे, लेकिन अब वे ही लबा तिलक लगाए, रामनामी चादर ओढ़े, उपदेश देते घूमते है। उनके खानेके समय अगर कोई मद्यमासका नाम भी ले लेता है तो वे परोसी हुई थाली छोडकर उठ खडे होते है और गालियोंकी 'फुलझड़ी' बन जाते है। तो बताओ, अब जगलमें क्या बाकी है ?

बतसियाकी मा हीराको देखो। जब वह मेरे फूलबाग़मे छिपकर फूल चुराने आती थी तब जान पडता था कि मानो नन्दनवनसे चलतीफिरती फूलीफली कल्पलता लाकर छोड दी गई है। उसकी अलकोंके साथ हवा खेला करती थी, उसके आँचलको पकडकर गुलाबका पेड छेड़छाड़ किया करता था। उसी हीराको आज देखो—बकझक

करती हुई चावल फटक रही है। कपडे मैले हैं, बीच बीचमें टूटे हुए दाँतोंने चेहरेको विकट बना रक्खा है, शरीर दुबला और काला पड गया है, हड्डियाँ निकल आई है और झुर्रियाँ पड़ गई है। यही वह रसरंग-तरंगवती युवती हीरा है! तुम्ही बताओ, अब जंगलमें क्या बाकी है?

तो यह बात निश्चित है कि मैं वनको न जाऊँगा! क्योकि मेरे लिये घर ही वन हो रहा है। अच्छा तो फिर क्या करूँगा? महाकवि कालिदासने सर्वगुणसम्पन्न रघुवंशियोंके लिये बुढ़ापेमें मुनिवृत्तिकी व्यवस्था की है। वे लिखते हैं—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

रघुवंशी लोग बचपनमे विद्याभ्यास, जवानीमें विषयभोग, बुढ़ापेमें मुनिवृत्ति और चौथेपनमें योगसाधना द्वारा शरीर त्याग करते थे। मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि कालिदासने ४० वर्षकी अवस्था होनेके पहले ही रघुवंश लिखा है। यह प्रमाणित करनेके लिये मैं इन दोनो ग्रन्थोंसे दो श्लोक उद्धृत करूँगा। पहले रघुवंशमें अजके विलापमे आप लिखते है—

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्त कथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपंकजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्॥

अर्थात् हे इन्दुमती, यह तुम्हारा मुख, जिसकी अलके हवासे हिल रही है—किन्तु जिसमेसे कोई बात नही निकलती, मुझे बहुत ही व्यथित कर रहा है। यह वैसा ही जान पडता है जैसे एक कमलका फूल रातको मुकुलित होगया हो और उसके भीतर भौंरे गुंजन कर रहे हों। यह जवानीका रोना है।

इसके बाद कुमारसम्भवमें, रतिविलापमें, वे ही कालिदास लिखते हैं:-

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥

रति कहती है—वसन्त, देखो तुम्हारा सखा (कामदेव) हवाके मारे दीपककी तरह चला ही गया, अब नहीं लौटनेका । मैं, दीपककी बुझनेके पीछेकी दशा ऐसी असह्य कष्टरूप धुऍंसे मलिन हो रही (या सुलग रही) हूँ । यह बुढापेका विलाप है ।

अस्तु, मेरे कहनेका मतलब यह है कि कालिदास अगर (रघुवंश लिखते समय) बुढापेके गौरवपूर्ण कर्तव्यको समझते तो कभी बूढोंके लिये मुनिवृत्तिकी व्यवस्था न करते । बिस्मार्क मोल्ट्के और फ्रेडरिक विलियम बूढ़े थे, अगर वे मुनिवृत्ति ग्रहण कर लेते तो इस जर्मन–नेशनलिटी (Nationality) की कल्पना कौन करता ? टियर—बूढ़े टियर अगर मुनिवृत्ति ग्रहण कर लेते तो फ्रान्सकी स्वाधीनता और साधारण तन्त्रकी स्थापना कहॉसे होती ? ग्लाडस्टन और डिस्रेली बूढ़े थे, अगर वे मुनिवृत्ति ग्रहण करते तो पार्लियामेंटका रिफ़ार्म (सुधार) और आयरिश चर्चका डिसेस्टब्लिशमेंट (disestablishment) कैसे होता ?

मेरी समझमें बुढापा ही वास्तवमें काम करनेका समय है । मैं ऑंत और दॉंतसे ही चौथेपनमें पहुँचे हुए बूढेकी बात नहीं कहता—उसका तो दुबारा लडकपन आगया समझना चाहिये । जो लोग जवान भी नहीं रहे, मगर बूढे भी नहीं हुए, उन्हीं प्रौढ पुरुषोंकी बात कह रहा हूँ । जवानी काम करनेकी अवस्था है सही, किन्तु उस समय पूर्ण और पक्का अनुभव न होनेसे बडे और महत्त्वके काम अच्छी तरह नहीं किये जासकते । उस समय एक तो बुद्धि कच्ची रहती है, दूसरे राग द्वेष और भोगवासनाकी मात्रा अधिक होती है । एक दो अलौकिक शक्तिशाली महापुरुषोंको छोड़कर, हर एक आदमी जवानीमें

विशेष महत्त्वके काम नही कर सकता। जवानी ढलते समय मनुष्य अनुभवी, बहुदर्शी, परिपक्वबुद्धि, लब्धप्रतिष्ठ और भोगवासनाहीन हो जाता है, इस कारण वही उसके काम करनेका समय होता है। इसी लिये मेरी सलाह है कि अपनेको बूढ़ा समझ सब कामकाज छोड़ मुनिवृत्ति ग्रहण करना कदापि बुद्धिमानी नहीं।

आप लोग शायद कहेगे कि तुम्हारे कहनेकी कोई ज़रूरत नहीं, शारीरिक शक्तिके रहते कोई भी कामकाज नही छोड़नेका। माताका दूध पीनेसे लेकर अन्तिम विल (वसीयतनामा) लिखने तक सब लोग कामकाजकी चिन्तामे लगे रहते है। आपका यह कहना सच है, लेकिन मै ऐसे कामकाजमे बूढ़ोंको लगाना नहीं चाहता। जवानीमें जो कुछ किया जाता है सो अपने लिये। जवानी ढलने पर जो कुछ करना चाहिये वह पराये लिये। यही मेरी राय है। यह कभी न सोचना कि अभीतक मैं अपना काम ही पूरा नहीं कर सका, पराया काम क्या करूँ? भाई, अपना काम तो अगर लाख वर्षकी आयु होती, तो भी पूरा न होता। मनुष्यकी स्वार्थपरता असीम है, उसका अन्त नहीं। इसीसे कहता हूँ कि बुढापेमें, अर्थात् प्रौढ़ावस्थामे अपना काम समाप्त समझकर पराये काम(जाति, समाज, देश और धर्मकी भलाई और उन्नति) मे मन लगाओ। यही यथार्थ मुनिवृत्ति है। इस समय जगलमें जाकर पंचाग्नि तापने, जाडा गर्मी वर्षाका वेग शरीर पर सहने या निराहार रह कर शरीर नष्ट करनेकी ज़रूरत नही है।

आप अगर कहें कि बुढ़ापेमे भी जो अपने लिये या पराये लिये काम करेंगे तो ईश्वरका भजन कब करेंगे? परकाल कब बनावेगे? तो मैं कहता हूँ कि केवल बुढ़ापेमे क्यो; लड़कपनसे ही ईश्वरको हृदयमे स्थापित कर भजो—अपना परलोक बनाओ। इसके लिये

किसी खास अवस्थाकी आवश्यकता नहीं है। जो काम सब कामोके ऊपर है उसे बुढापेके लिये उठा रखनेकी क्या जरूरत है? लडकपनमे, असली जवानीमें, भरी जवानीमें, बुढ़ापेमें, सब समय ईश्वरका ध्यान धरो, भक्तिभावके साथ उसका आश्रय ग्रहण करो। इसके लिये और कामोंके रोकनेकी ज़रूरत नहीं है। परोपकार देश—समाज—जाति और धर्मकी भलाई उसी ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये करो। याद रहे, ईश्वरभक्तिके साथ, ईश्वरविश्वासके साथ जिस कामको करोगे वही सुसम्पन्न होगा, मंगलदायक होगा। उससे तुम्हारा यश बढेगा, नाम होगा और पुण्य होगा।

मुझे जान पडता है कि बहुतसे पाठकोंको मेरी ये बातें अच्छी नही लगतीं। वे मन-ही-मन कहते होगे कि अभी तो हीराकी बातचीत हो रहीं थी, बीचमे यह ईश्वर और परोपकारका पचडा क्यो लगा दिया? अभी तो बुढ़ापेकी ढेकींमें मैं 'बगदर्शन' के लिये धान कूट रहा था, बीचमें यह ईश्वरका गीत क्यो गाने लगा? मैं उन पाठकोसे इसके लिये क्षमा मॉगता हूॅ। किन्तु, मेरी समझमे, हरएक काममे कुछ कुछ ईश्वरके गीत गाना अच्छा है।

अच्छा हो या बुरा, बूढ़ेके लिये और कोई उपाय नही है। तुम्हारी हीरा चंपा जूही बेलाका झुड अब मेरी तरफ देखता भी नही, मेरी छॉह छूना भी उसे नापसन्द है। तुम्हारे मिल, कोम्ट, स्पेन्सर, फुअर, बर्क मेरा मनोरजन नही कर सकते। तुम्हारे दर्शनशास्त्र—तुम्हारा विज्ञान सब असार है—अधेका शिकार है। इस वर्षाके दुर्दिनमें, आज कालरात्रिके इस अन्तिम कुलग्नमें, इस नक्षत्रहीन घोरघटामाण्डित अमावास्याकी आधी रातमे, उस ईश्वर, उस अगतिके गति, दयासिन्धु, अकारण बन्धु ईश्वरके सिवा और कौन मेरी रक्षा करेगा? इस ससार-

नदीकी तपी हुई बालूमें, इस वेगसे बहनेवाली वैतरणीके आवर्तभीषण किनारेमें, इस दुस्तर पारावारके प्रथम तरंगाघातमें और कौन मेरी रक्षा कर सकता है ? बड़े वेगसे जीवननदीमें तूफान आ रहा है, चारों ओर घोर निराशाका अंधकार है! हे नाथ! हे आर्तत्राणपरायण! चारो ओर घोर अंधकार है! मेरी यह जीर्ण जर्जर नौका पापके बोझसे दबी जा रही है, भगवन्, तुम्हीं इसे भवसागरके पार लगानेवाले कर्णधार हो! मुझे आपहीका भरोसा है। आपके सिवा और कोई रक्षा नहीं कर सकता। जगदीश, त्राहि! त्राहि!

(चौबेके चिट्ठेसे उद्धृत।)

जैन लाजिक।

—०—

(अंक १२, भाग ९ से आगे।)

९२. प्रमाण-नय-तत्त्वालोकालंकारमें निम्नलिखित आठ परिच्छेद हैं:—(१) प्रमाण-स्वरूप-निर्णय; (२) प्रत्यक्ष-स्वरूप-निर्णय; (३) स्मरण-प्रत्यभिज्ञान-तुर्कानुमान-स्वरूपनिर्णय; (४) आगम-प्रमाण-स्वरूप-निर्णय; (५) विषय-स्वरूप-निर्णय; (६) फल-प्रमाण-स्वरूपाचाभास-निर्णय; (७) नयात्म-स्वरूप-निर्णय; (८) वादि-प्रतिवाद-निर्णय। यह ग्रंथ माणिक्यनंदिकृत परीक्षामुखसूत्र, अकलंककृत न्यायविनिश्चय, और सिद्धसेनदिवाकरकृत न्यायावतारके ढंग पर लिखा गया है। अतएव मैं समान बातोंको न लिखकर केवल विशेष लक्षणोंका ही वर्णन करूँगा।

९३. इसमें प्रमाणकी परिभाषा यह लिखी है कि प्रमाण वह ज्ञान है जो स्वस्वरूप और अन्य पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय करे। इन्द्रियों और इन्द्रियग्राह्य पदार्थोंका पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाण नहीं

है, क्योंकि यह अन्य पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय तो कर सकता है किन्तु स्वस्वरूपका निर्णय नहीं कर सकता। कारण कि इसमे चेतना नहीं है। प्रमाण अवश्यमेव ज्ञान ही होना चाहिए। क्योंकि उसमें इच्छितके ग्रहण और अनिच्छितके त्याग करनेकी शक्ति है। उसका स्वरूप भी निश्चित होना चाहिए। क्योंकि वह समारोपके विरुद्ध होता है। समारोप तीन प्रकारका होता है–(१) विपर्यय जैस सीपको चॉदी समझना, (२) सशय, जैसे यह मनुष्य है या स्थाणु; और (३) अनध्यवसाय, जिसमें मनमें केवल इतना ही ज्ञान होता है 'कि कुछ है'।

९४. प्रमाण दो प्रकारका होता है:–(१) प्रत्यक्ष,(२) परोक्ष। प्रत्यक्ष प्रमाणके दो भेद हैं–१ साव्यावहारिक, २ पारमार्थिक। साव्यावहारिक प्रत्यक्ष प्रमाणके पुनः भेद किये गये हैं–एक तो इन्द्रियनिबधन अर्थात् जो इंद्रियो द्वारा प्राप्त होता है और दूसरा अनिन्द्रियनिबंधन अर्थात् जो इन्द्रियोंसे नहीं किंतु मनद्वारा उत्पन्न होता है। इनमेंसे प्रत्येकमें चार श्रेणियॉ होती है, अर्थात् (१) अवग्रह जिससे भेदका बोध हो, जैसे घोड़ा अथवा मनुष्य, परंतु इससे लक्षणोंका ज्ञान नहीं होता; (२) ईहा अर्थात् पृच्छा जैसे मनुष्य कहॉसे आया अथवा घोडा किस देशसे आया; (३) अवाय, अर्थात् उपर्युक्त ज्ञानका ठीक निश्चय होना, (४) धारण अर्थात् उस विशेष वस्तुको याद करके मनमें धारणा करना। *

अवग्रह इत्यादिका अर्थ जो यहा दिया गया है वह करनल जारैट द्वारा अनुवादित और वगाल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित, 'आईने अकवरी' जिल्द ३, पृष्ठ १९० से उद्धृत किया जाता है। क्यों कि आईने अकवरीमें जैनधर्मसंवधी परिच्छेदमें दिया हुआ प्रमाणविषयक भाग प्रमाण-नय-तत्त्वालोकालकारके उसी विषयसे वहुत मिलता जुलता है। परतु, इन शब्दोंका अर्थ जो डा० आर० जी० भडारकरने सस्कृत हस्तलिखित ग्रथोंकी सन् १८८३-८४ की रिपोर्टमें पृष्ठ ९३ पर टिप्पणीमें दिया है वह इससे भिन्न है।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष प्रमाण आत्माके प्रकाशसे ही उत्पन्न होता है और मुक्तिके लिए लाभदायक है। इसके दो भेद हैं:-(१) विकल (दूषित) अर्थात् निकटवर्ती अथवा दूरकी वस्तुओका भेदरहित ज्ञान और मनःपर्ययज्ञान अर्थात् दूसरेके विचारोंका निश्चित ज्ञान और हृदयकी गुप्त बातोंका बोध जिसमे सम्मिलित है; २ सकल (सम्पूर्ण) जो किसी पदार्थकी समस्त पर्यायोंका अबाधित ज्ञान है। जिसे सकल पारमार्थिक ज्ञान होता है उसे अर्हत् (अर्थात् जो पूर्णतया निर्दोष तथा अबाधित हो) कहते है।

९५. परोक्ष प्रमाण पाच प्रकारका है, अर्थात् १. स्मरण; २. प्रत्यभिज्ञान; ३. तर्क; ४. अनुमान; ५. आगम।

९६ अनुमान दो प्रकारका होता है:-१ स्वार्थ, जो अपने लिए हो २ परार्थ, जो दूसरोंके लिए हो। हेतु वह है जो साध्यके संबंधके विना न रह सके। हेतु वह है जिसमें तीन लक्षण हो। यह परिभाषा त्याज्य है, क्योंकि इसमें आभास[1] है। कोई कोई हेतुके तीन लक्षणों अथवा भेदोको मानते हैं, परन्तु वे अनुमानमें पक्षका प्रयोग आवश्यकीय नहीं समझते[2]। और कुछका यह मत है कि बहिर्व्याप्तिका दृष्टांत व्यर्थ है।

---

१. निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतु' न तु त्रिलक्षणकादि'। तस्य हेत्वाभासस्यापि सम्भवात् ॥११॥

(प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, तृतीय परिच्छेद.)

यह धर्मकीर्ति और अन्य बौद्ध नैयायिकोंपर आक्षेप है जो हेतुके तीन लक्षणोंकी परिभाषा निम्न रीतिसे करते है:—

त्रैरूप्य पुनर्लिंगस्य अनुमेये सत्त्वमेव

सपक्ष एव सत्त्वम्। असपक्षे चासत्त्वमेव निश्चितम्।

(न्यायबिन्दु, द्वितीय परिच्छेद)

२. त्रिविध साधनमभिधायैव तत्समर्थन विदधान. क. खलु न पक्षप्रयोगम् अगीकुरुते ॥२३॥

(प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, तृतीय परिच्छेद)

क्योंकि हेतु और साधनका संबध अथवा सबधका अभाव अन्तर्व्याप्तिसे प्रकट किया जा सकता है[1]। जैसे—

वह पर्वत (पक्ष) अग्निसहित (साध्य) है,

क्योंकि वह धूमवान् (हेतु) है जैसे रसोईघर (दृष्टान्त)।

यहाँपर पर्वत अनुमानका मुख्य अंग है और उसमें अग्नि और धूमका अविनाभावी संबध मिल सकता है। अतएव हम अपने अनुमानको वाहरके दृष्टान्तसे गुरु क्यो करें? रसोईघर निश्चय करके उसी सबंधको प्रगट करता है। क्योंकि उसमे अग्नि और धूम दोनों साथ साथ मिलते है, परन्तु रसोईघर अनुमानका आवश्यक अग नहीं है, अतएव प्राकार्णिक विषयके लिए वह सबध जिसकी यह सिद्धि करता है वहिर्व्याप्ति कहा जा सकता है। हमको न्यायसवधी स्वच्छता और मानसिक परिश्रमकी मितव्ययिता पर ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि जब मनकी चालमें अनावश्यक बाते आ जाती हैं, तब वह व्यग्र हो जाता है।

९७. उपनय और निगमनको भी अनुमानके अंग बनाना व्यर्थ है; परन्तु इनका प्रयोग दृष्टान्तसहित अल्पबुद्धिवालोंको ज्ञान करानेके लिए किया जाता है[2]।

अनुमानके अवयव ये लिखे है:—

१. पक्षप्रयोग—पर्वत अग्निसहित है।

२. हेतुप्रयोग—क्योंकि वह धूमवान् है।

---

१. अन्तर्व्याप्त्या हेतो साध्यप्रत्यायने शक्तावशक्तौ च वहिर्व्याप्तेरुद्भावन व्यर्थम् ॥ ३५ ॥

(प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, तृतीय परिच्छेद)

२ मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितु दृष्टान्तोपनयनिगमनान्यपि प्रयोज्यानि ॥ ३९ ॥

(प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, तृतीय परिच्छेद)

३. दृष्टान्त—जो अग्निसहित होता है, वह धूमवान् होता है। जैसे रसोईघर।

४. उपनय–यह पर्वत धूमवान् है।

५. निगमन–अतएव यह पर्वत अग्निसहित है।

९८. अभाव अथवा अनुपलब्धके ये भेद किये गये है—(१) प्रागभाव; (२) प्रध्वंसाभाव; (३) इतरेतराभाव; और (४) अत्यंताभाव। भिन्न प्रकारके आभासोंका भी वर्णन किया गया है। आगम और नयके अभ्यंतर सप्तभंगीनयका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। प्रमाणके हेतुसहित और हेतुरहित फलोंका स्पष्टरूपसे वर्णन किया गया है।

९९. ज्ञानके परिणाम और उन परिणामोंके व्यावहारिक उपयोग भ्रांतिजनक (सावृति) नहीं, किन्तु पारमार्थिक बतलाये गये हैं।

१००. नयके प्रकरणमें नयाभासोंका इस प्रकार वर्णन है:—

(१) नैगमाभास–जैसे आत्माका अनुमान करनेमें हम उसकी 'सत्ता' (सामान्यगुण) और उसकी चेतना (विशेषगुण) में भेद कर देते हैं।

(२) संग्रहाभास–यह उस समय होता है जब हम किसी वस्तुको उसमें केवल सामान्य गुण होनेसे ही यथार्थ कहने लगते हैं, और उसके विशेष गुणों पर सर्वथा दृष्टिपात नहीं करते। जैसे जब हम कहते है कि बास वृक्ष द्रव्यकी अपेक्षा यथार्थ है, परन्तु उसमे विशेप गुण नहीं है।

(३) व्यवहाराभास--जैसे चार्वाकदर्शन जिसमें द्रव्य, गुण इत्यादिमें अशुद्ध भेद किया गया है।

(४) ऋजुसूत्राभास--जैसे ताथागत दर्शन जो द्रव्यकी सत्ताका सर्वथा निषेध करता है।

(५) शब्दाभास--यह उस समय होता है, जब हम कालके भूत, वर्तमान और भविष्यभेदोंको मानते है, परन्तु तीनों कालोंमें किसी शब्दका एक ही अर्थ करते चले जाते हैं। जैसे यदि, हम अब शब्द 'ऋतु' (यज्ञ) का प्रयोग शक्तिके अर्थमे जो एक सहस्र वर्ष पहले किया जाता था, करें।

(६) समभिरूढ़ाभास--यह तब होता है जब हम पर्यायवाचक शब्द जैसे इन्द्र, शक्र, पुरेन्द्र इत्यादिका अर्थ एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न करें।

(७) एवभूताभास--उस समय होता है जब हम किसी वस्तुको केवल इस लिए अस्वीकार करते है कि उसमे तत्क्षण वे गुण नहीं पाये जाते जो उसके नाममें विद्यमान है। जैसे राम मनुष्य (मनन करने वाला) नहीं है। क्योंकि इस समय मनन नहीं कर रहा है।

१०१. आत्मा, जो कि कर्ता और भोगता है और चेतनस्वरूप है, अपने शरीरके आकारका होता है। प्रत्येक व्यक्तिमें एक पृथक् आत्मा होता है जो कर्मके वंधनसे छुटकारा पानेसे मुक्त हो जाता है।

१०२. अतिम परिच्छेदमे वाद (शास्त्रार्थ) की रीतिका वर्णन है। किसी प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिए उस प्रतिज्ञाके विरुद्ध कथनका खडन करके विधि और निषेध करना वाद है। वादी अर्थात् वह पुरुप जिसका वादमें पूर्व पक्ष होता है या तो विजय पानेका या सत्यकी खोजका इच्छुक होता है। सत्यकी खोज या तो अपने लिए होती है, जैसे शिष्य खोज करता है, या परके लिए जैसे गुरु खोज

करता है। प्रतिवादीके विषयमें भी यही वात है। वादसभाके चार अंग होते हैं, अर्थात् (१) वादी; (२) प्रतिवादी; (३) सभ्य; और (४) सभापति। वादी और प्रतिवादीका कर्तव्य प्रमाणसे अपने पक्षका समर्थन करना और दूसरेके पक्षका खंडन करना है। दोनों पक्षोंको यह बात स्वीकृत होनी चाहिए कि सभ्योंमें उनके सिद्धांतोंके समझनेकी योग्यता है। सभ्योंकी स्मरण शक्ति अच्छी होनी चाहिए, वे अच्छे विद्वान् होने चाहिए और उनमें बड़ी योग्यता संतोष और निष्पक्षता होनी चाहिए। उनका काम यह है कि वे वादके विपयके संवंधमें वादी और प्रतिवादीके कथन और उत्तरोंको कहें, उनके वाद और प्रतिवादके गुणों और दोषोंकी परीक्षा करें और कभी कभी उनके कथनका आशय प्रकट करके परिणत फल स्थापित करें और यथासंभव वादके परिणामको प्रकट करें। सभापति बुद्धि, अधिकार, सहनशीलता और निष्पक्षतासे भूषित होना चाहिए। उसका काम पक्षों और सभ्योंकी वक्तृताकी परीक्षा करना और उनके झगड़ोंको रोकना है। यदि पक्षोंको केवल विजय पानेकी इच्छा हो, तो वे वादको जब तक सभ्य चाहे शक्तिपूर्वक जारी रख सकते हैं; परन्तु यदि वे सत्यका अन्वेपण ही करना चाहे तो जब तक सत्यका निर्णय न हो जाय अथवा जव तक वे अपनी शक्तिको स्थिति रख सकें, वादको चला सकते हैं।

हेमचन्द्र सूरि (ई०सन् १०२२–११९७)

१०३. हेमचन्द्र सूरि (उपनाम कलिकालसर्वज्ञ) अहमदावादमें धंधुकमें पैदा हुए थे और वज्रशाखाके देवचन्द्रके शिष्य थे। वे राजा जयसिंहके समकालीन थे। कहते हैं कि लगभग संवत् ११७७ से १२२७ तक वे गुजरातके महाराज कुमारपालके गुरु रहे। उन्होंने

बहुतसे ग्रथ लिखे; जैसे काव्यानुशासन-वृत्ति, छंदानुशासनवृत्ति, अभिधानचिंतामणि अर्थात् नाममाला, अनेकार्थ–सग्रह, द्व्याश्रयमहा-काव्य, त्रिषष्ठिशलाकापुरुप-चरित, योगशास्त्र, निघटुशेष, इत्यादि।

१०४. उन्होंने न्यायका प्रमाण-मीमासा नामक एक अत्यत महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखा है और उसपर उन्होंने स्वय ही टीका लिखी है।

१०५. उन्होंने सन् १०८८ ई० में जन्म लिया, सन् १०९३ ई० में दीक्षा ग्रहण की, सन् ११०९ ई० में सूरिकी पदवी प्राप्त की और सन् ११७२ में स्वर्गवास किया।

चन्द्रप्रभ सूरि (ई० सन् ११०२)

१०६. चन्द्रप्रभसूरिने गुजरातमें जन्म लिया, और ई० सन् ११०२ में पूर्णिमा गच्छ स्थापित किया। वे जयसिंह सूरिके शिष्य और धर्म-घोषके गुरु थे। वे दर्शनशुद्धि और सभवत· न्यायके दो ग्रंथ प्रमेयरत्नकोश और न्यायावतारविवृत्तिके कर्ता थे।

१०७. न्यायावतार-विवृत्ति सिद्धसेनदिवाकरकृत न्यायावतार पर उत्तम टीका है। उसमें धर्मोत्तर इत्यादि बौद्ध नैयायिकोका जिक्र आया है।

नेमिचंद्र कवि (ई० सन् ११५० के लगभग)

१०८. नेमिचदका जन्म गुजरातमें हुआ। सागरेन्दु मुनिके शिष्य माणिक्यचन्द्रने अपने पार्श्वनाथचरितमें, जो ई० सन् १२१९ मे लिखा गया था, नेमिचन्द्रको वैरस्वामीका शिष्य और सागरेन्दु (सागरचन्द) का गुरु लिखा है। क्योंकि माणिक्यचन्द्र लगभग सन् १२१९ में विद्यमान थे, अतएव उनके गुरु सन् ११५० ई० के लगभग हुए होंगे।

आनन्दसूरि और अमरचंद्रसूरि (ई० स० १०७३–११५०)

१०९. इन दोनोंका जन्म गुजरातमें हुआ था। ये बड़े भारी नैयायिक थे। क्योंकि इन्होंने किशोर अवस्थामें ही अपने गजसमान प्रतिवादियोंपर विजय पाई थी, इस लिए इनके उपनाम व्याघ्रशिशुक और सिंहशिशुक पड़ गये थे। चूंकि सिद्धराज–जिन्होने इनको उपनाम दिये थे, सन् १०९३ ई० में सिंहासनारूढ हुए–अतएव ये अवश्य ही ईसाकी वारहवीं शताब्दिमें हुए होंगे।

हरिभद्र सूरि (११६८ ई० के लगभग)

११०. हरिभद्रसूरि नामके दो श्वेताम्बर जैनलेखकोंका उल्लेख मिलता है। एकने सन् ४७८ ई० मे स्वर्गवास किया और दूसरे जो नागेन्द्र-गच्छके आनंदसूरि और अमरचन्दसूरिके शिष्य थे, सन् ११६८ ई० के लगभग विद्यमान थे। दूसरे हरिभद्रसूरि "कालिकाल गौतम" कहलाते थे। यदि हम उनको षट्दर्शनसमुच्चय, दशवैकालिकनिर्युक्ति, न्यायप्रवेशिका सूत्र और न्यायावतार–वृत्तिके कर्ता माने, तो वे अवश्य प्रसिद्ध नैयायिक थे।

१११. यह वहुधा कहा जाता है कि हरिभद्र सूरिने अर्हत् भगवानकी वाणीकी १४०० ग्रंथ लिख कर माताके समान रक्षा की। उन्होने अपने प्रत्येक ग्रथके अतिम पद्यमें 'विरह' शब्दका प्रयोग किया है। वे जातिके ब्राह्मण थे। कहते है कि उनके दो शिष्य हंस और परमहंस जैनधर्मका प्रचार करनेके लिए गये, परन्तु उनको भोटा देश (तिव्वत) मे क्रोधित वौद्धोंने–जिनको वे जैन वनाना चाहते थे–मार डाला। इन दोनो शिष्योंकी मृत्युका शोक ही 'विरह' शब्दके रूपमे प्रकट किया गया है।

११२. यह वहुधा माना जाता है कि हरिभद्रसूरि जिनके शिष्य तिव्वतमें मारे गये थे, इस नामके प्रथम लेखक है। परन्तु यदि हम

उनको दूसरे हरिभद्रसूरि मानें, तो कोई गलती न होगी। क्यों कि भारतवर्ष और तिब्बतमें धार्मिकसबंध पाँचवीं शताब्दिकी अपेक्षा बारहवीं शताब्दिमें अधिक था।

रत्नप्रभसूरि (सन् ११८१ ई०)

११३. रत्नप्रभसूरि श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारकी छोटीसी टीका स्याद्वादरत्नावतारिका लिखी है।

११४. सन् ११८१ ई० में भडोंचमें अश्वबोधतीर्थ पर भद्रेश्वरसूरिके प्रसन्न करनेके लिए उपदेशमालावृत्ति नामक ग्रंथ लिखा। उसमें उन्होंने बृहद्गच्छमें अपनी धार्मिक पट्टावली इस प्रकार लिखी है:— (१) मुनिचन्द्रसूरि; (२) देवसूरि, (३) भद्रेश्वरसूरि और (४) रत्नप्रभसूरि।

मल्लिषेणसूरि (सन् १२९२ ई०)

११५. इनका संबंध श्वेताम्बर संप्रदायके नगेन्द्र गच्छसे था और ये हेमचंद्रकृत वीतरागस्तुतिकी टीका स्याद्वादमंजरीके कर्ता थे। इस ग्रंथमें कई दर्शनोंके खंडन भी किये गये हैं। इस ग्रंथके अंतमें मल्लिषेणने अपनेको उदयप्रभसूरिका शिष्य लिखा है और ग्रंथके रचनेका समय शाका १२१४ अर्थात् सन् १२९२ लिखा है।

राजशेखर सूरि (सन् १३४८)

११६. राजशेखरसूरि श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे और प्रमाणनयतत्वालोकालंकारकी उपटीका रत्नावतारिका पंजिका और स्याद्वादकलिका और चतुर्विंशतिप्रबंधके कर्त्ता थे। वे हिन्दू दार्शनिक श्रीधरकृत न्यायकुंडलीकी एक पंजिका (टीका) के भी कर्ता हैं।

ज्ञानचन्द्र (ई० सन् १३५०)

११७. ये श्वेताम्बरसंप्रदायके थे ओर इन्होने रत्नावतारिकाकी टिप्पणी रत्नावतारिक–टिप्पण लिखी; इसमें दिग्नाग इत्यादिके मत-का खंडन भी है। इन्होंने अपने ग्रंथको अपनें गुरु राजशेखरसूरि–जो सन् १३४८ ई० में विद्यमान थे–की आज्ञानुसार लिखा।

गणरत्न (ई० सन् १४०९)

११८ गुणरत्न श्वेताम्बरसंप्रदायेक तपगच्छके थे। उन्होने षट्-दर्शनसमुच्चयकी टीका प ्दर्शन–समुच्चय–वृत्ति अर्थात् तर्क–रहस्य–दीपिका और क्रियारत्नसमुच्चय नामक ग्रंथ लिखे।

११९ रत्नशेखरसूरिने लिखा है कि गुणरत्न देवसुंदरके शिष्य थे और उन्होंनें अणहिल्लपट्टणमें सन् १३६२ ई० मे सूरिकी पदवी प्राप्त की। देवसमुद्रसूरि मुनिसुन्दरसूरिके समकालीन थे; मुनि-सुंदरसूरिकृत गुर्वावली सन् १४०७ में लिखी गई थी। गुणरत्न स्वयं कहते हैं कि उनका क्रियारत्नसमुच्चय सन् १४०९ ई० में लिखा गया था।

१२०. गुणरत्नकृत षट्दर्शनसमुच्चयकी टीकामें वहुतसे बौद्ध और हिंदू नैयायिकों और उनके ग्रंथोका उल्लेख है।

धर्मभूषण (सन् १६०० ई० के लगभग)

१२१ ये एक दिगम्बर लेखक है। इन्होंने न्यायदीपिका ३०० वर्ष हुए लिखी। थी यशोविजयगणिने 'तर्काभास' में इनका उल्लेख किया है।

१२२. न्यायदीपिकामें मंगलाचरणके अतिरिक्त तीन प्रकाश है, अर्थात् (१) प्रमाण–सामान्य–लक्षण, (२) प्रत्यक्ष–प्रमाण-लक्षण और (३) परोक्ष–प्रमाण–लक्षण।

१२३. इसमे न्यायके शब्दोंकी परिभाषा लिखी है और विशेष कर बौद्ध नैयायिकोंके मतका खूब खडन किया गया है। इसमें बहुत-से लेखकों और ग्रथोंका उल्लेख है।

यशोविजय गणि (सन् १६८० ई०)

१२४. यशोविजय श्वेताम्बरसंप्रदायके थे। ये न्यायप्रदीप, तर्काभास, न्यायरहस्य, न्यायामृततरंगिणी, न्यायखडखाद्य, अनेकात-जैनमतव्यवस्था, ज्ञानविन्दुप्रकरण, इत्यादि ग्रथोंके प्रसिद्ध कर्ता थे। इन्होंने दिगम्बर ग्रंथ अष्टसहस्री पर अष्टसहस्रीवृत्ति नामक टीका भी लिखी।

१२५. इनकी परम्परा हीरविजयसूरिसे है जो अकबरके समयके प्रसिद्ध सूरि थे। इन्होंने सन् १६८८ ई० में बड़ौदा राज्यातर्गत डभोईमें स्वर्गवास किया। इनके चिरस्मर्णार्थ बनारसमे एक जैन यशोविजय पाठशाला स्थापित की गई है, जिसके सरक्षणमें जैनियोंके पवित्र ग्रथ जैनयशोविजयग्रथमालामें प्रकाशित हो रहे है।*

मोतीलाल जैन, आगरा।

समाप्त।

आवरण।

(गताकसे आगे)

इस प्रकारकी अवस्थाका स्वाभाविक परिणाम निरानंद होता है, अर्थात् जब स्वाधीन मनुष्य पुस्तकका मनुष्य बन जाता है, तब उसके स्वाभाविक आनन्दका द्वार बन्द हो जाता है।

---

* अवकाशाभावके कारण मैं इस बार लेखको स्वय न लिख सका। इसे मेरे मित्र श्रीयुत बाबू मोतीलालजी आगरानिवासीने मेरे लिए लिख देनेकी कृपा की है, जिसके लिए मैं उनका हृदयसे आभार मानता हूँ। दयाचन्द गोयलीय।

इस समय यूरोपके साहित्यमे और समाजमे एक विलक्षण प्रकार-की व्याधिने दर्शन दिये हैं। उस देशवाले इस व्याधिको World weariness कहते हैं। इसकी कृपासे स्नायु विकल हो गये है और जीवनका स्वाद चला गया है। पर स्वाद तो होना ही चाहिए, इस-से लोग नई नई उत्तेजनाओंकी रचना करके आपको भुलाने या फु-सलानेकी चेष्टामें लग रहे हैं। कुछ समझमें ही नहीं आता कि यह असुख और विकलता क्यों है--इसका कारण क्या है? स्त्री और पुरुष दोनोंहीको तो इस अवसाद या थकावटने घेर लिया है।

स्वभावसे क्रमशः बहुत दूर चला जाना—अतिशय अस्वाभाविक या अप्राकृतिक प्रवृत्ति करने लगना ही इसका कारण है। कृत्रिम साधन या सुभीते इस तरह बढाये जा रहे है—उनका जोर इतना बढ़ गया है कि उन्होंने जगतके जीवको मानो जगतके बाहरका जीव बना दिया है। इन जगज्जीवों या मनुष्योंका मन तो पुस्तकोंसे ढँक गया है और शरीर कपड़े लत्तों तथा और और चीज़ोंके भीतर छुप गया है। इस तरह जीवात्माके सारे दर्वाज़े और खिडकियाँ बन्द कर दी गई है—स्वच्छ वायु और स्वाधीन प्रकाशको आनेके लिए उसमें कोई मार्ग ही नहीं है। जो सहज हैं, नित्य हैं और मूल्यहीन होनेके कारण ही सबसे अधिक मूल्यवान् हैं, उन प्रकृत वस्तुओंके साथ न तो मिलना जुलना रहा और न प्रत्यक्ष परिचय रहा, इससे उनके ग्रहण करनेकी शक्ति ही नष्ट हो गई है। उनके स्थानमें जो चीज़ें उत्तेजनाकी नई नई ताड़ना-ओंसे उत्पन्न होकर कुछ दिन फेशनकी भँवरमें पड़कर गँदली हो जाती हैं और इसके बाद ही अनादर और घृणाके किनारे एकत्रित हो-कर समाज--वायुको दूपित करती हैं, वे फिर फिर कर लाख लाख-गुणी मेहनत कराती है और उसमें सारे समाजको ज़ोतकर उसे को-

कुल्हूके बैलके समान घुमाघुमाकर मार रही है। असुख और विकलता-का यही कारण है।

एक पुस्तकसे और एक पुस्तक उत्पन्न हो रही है, एक काव्य-ग्रन्थसे और एक काव्यग्रन्थका जन्म हो रहा है, एकका मत अनेक मुखोंका आश्रय लेकर हजारों लोगोंका मत वन रहा है। तात्पर्य यह कि नकलसे नकलका प्रवाह चल रहा है। इस तरह मनुष्यके चारों ओर यह पुस्तकों और वचनोंका जंगल सघन होता जाता है और प्राकृतिक जगतसे उसका सम्बन्ध धीरे धीरे विच्छिन्न होता जाता है। अर्थात् इस समयके मनुष्योंके मनमें जितने भाव उत्पन्न होते है, उनमेंसे अ-धिकाश भाव केवल पुस्तकोंके सृष्ट किये हुए होते है। इसी कारण वे वास्तविकतारहित होते हैं और मनुष्यके सिर पर भूतके समान चढकर उसके मानसिक स्वास्थ्यको विगाड़ देते हैं, उसे अत्युक्ति या आति-शय्यकी ओर ले जाते हैं और धीरेधीरे सब ही एक ही लकीर पर चलकर सत्यको मिथ्या वना डालते हैं। उदाहरणके लिए 'पेट्रियटिज्म्' (स्वदेशानुराग) को ही ले लीजिए। इसके भीतर जितना सत्य था, उसे लोगोंने स्थिर न रहने दिया, उस पर जिसके जीमें आया उसीने रोज़ रोज उछल कूद मचा कर उसकी रुई धुन डाली और अन्तमें, एक मोटा ताजा झूठ बनाकर खडा कर दिया। अब इस बनाकर तैयार की हुई बातको सत्य बनानेके लिए न जाने कितने बनावटी उपाय किये जाते हैं, न जाने कितनी झूठी उत्तेजनायें दिलाई जाती है, न जाने कितने अनुचित दण्ड, न जाने कितने गढकर तैयार किये हुए विद्वेष, न जाने कितनी कूट युक्तियाँ और न जाने कितने धर्मके ढोंग रचे जाते हैं। इन सब स्वभावभ्रष्ट बातोंके धुआँधारमें मनुष्य-को मार्ग नहीं सूझता—वह सरल और उदार, प्रशान्त और सुन्दर

मार्गसे बराबर दूर हटता जाता है। पर किया क्या जाय, स्वभाव-भ्रष्ट या बनाई हुई बातका मोह छोड़ना क्या कोई सहज काम है? यदि कोई स्थूल चीज़ हो, तो वह हाथोसे पकड़ कर और पृथ्वीपर पटककर नष्ट की जा सकती है; परन्तु 'बात' या वचनके शरीर पर तो छुरी भी नहीं चलती! इसी लिए मानवसमाजमे 'बात' के कारण जितना रक्तपात हुआ है, उतना राज्य और सम्पत्ति आदिके कारण नहीं हुआ!

समाजकी आदिम सरल अवस्थामें देखा जाता है कि मनुष्य जो जानता है उसे मानता भी है। उस पर उसकी अटल निष्ठा होती है और इसी लिए वह उसके लिए सहज ही स्वार्थत्याग करना या कष्ट सहना स्वीकार कर लेता है। इसके कई कारण है। प्रधान कारण यह है कि आदिम अवस्थामें मनुष्यके हृदय और मन खुले हुए रहते है--तरह तरहके मतों या सिद्धान्तोंका परदा उन पर पड़ा हुआ नहीं रहता। अतएव उसके मनमें जितने सत्यको ग्रहण करनेका अधिकार या शक्ति है, उतनेको ही वह ग्रहण करता है और मनने जिसे सत्यरूपमें ग्रहण कर लिया--उस पर पूरा पूरा विश्वास जमा लिया, उसके लिए हृदय अनायास ही अनेक कष्ट सहन कर सकता है; यह उसके लिए बिलकुल मामूली बात है।

पर जब सभ्यताकी जटिल या पेचीदा अवस्थाकी ओर नजर दौड़ाई जाती है, तब माछ्म होता है कि इस अवस्थामें मनुष्यका मन खुला हुआ नहीं है; उसपर तरह तरहके मतोंकी सैकड़ो तहें जम गई है। कोई चर्चका मत है पर चर्चाका मत नहीं है; कोई सभाका मत है पर घरका मत नहीं है; कोई समूह या पंचायतका मत है पर अन्तरंगका मत नहीं है; कोई मत ऑखोंमेंसे ऑसुओंको तो बाहर कर देता है पर जेबमेसे रुपयोंको बाहर नहीं होने देता; कोई मत रुपये भी

वाहर कर देता है और काम भी ज़ारी कर देता है पर (मतवालेके) हृदयमें स्थान नही पाता--उसकी प्रतिष्ठा फेशनकी नीव पर होती है। जब मतोकी ये तरह तरहकी तहें बीचमे आपडती है, तब मनुष्यका मन सत्यमतको अटल सत्यके रूपमे ग्रहण नहीं कर सकता। यही कारण है, जो उसका आचरण सर्वत्र सर्वतोभावसे सत्य नहीं होता। जब वह सरलतासे अपनी शक्ति और प्रकृतिके अनुकूल, किसी मार्गके निश्चित करनेका अवकाश नहीं पाता है, तब चक्करमें पड़ जाता है और वारवार दूसरोंकी ही वातों या मतोंका पाठ किया करता है। किन्तु अन्तमें जब कामका समय आता है--विश्वासको कार्यमें परिणत करनेका अवसर आता है, तब उसका प्रकृतिके साथ विरोध खडा हो जाता है; अर्थात् वह कहता मानता कुछ है और करने लगता कुछ है। यदि उसके मन पर अनेक मतोंकी तहें न जमी होतीं, यदि वह अपने स्वभावको आप ही पाता--पुस्तकों या दूसरोंके वचनों द्वारा नहीं, तो उस स्वभावके भीतरसे जो कुछ पाता, वह छोटी वड़ी चाहे जैसी होती, पर होती शुद्ध वस्तु (खालिस चीज़)। यह चीज उसे सम्पूर्ण वल देती, सम्पूर्ण आश्रय देती और उसे सर्वतोभावसे काममें लगाये विना न रह सकती। परन्तु इस समय उसे वडे भारी गडवडाध्यायमें पड़ जाना पडता है। पुस्तकोंका मत, वचनोंका मत, सभाओंका मत, पचायतियोंका मत; इस तरह न जाने कितने मतोंका वोझा लादकर उसे स्थिर लक्ष्यसे भृष्ट हो जाना पडता है और केवल वड़े वड़े वचनोंका पाठ करते हुए भटकना पडता है। और मजा यह कि इस पाठ करने और भटकते फिरनेको वह हितकारी कार्य समझता है। इसके लिए वह तनख्वाह पाता है, उन वचनोंको वेचकर धन कमाता है। उसके उक्त वचनोंसे किसीने ज़रा भी इधर

उधर कहा कि उसका मिजाज बिगड़ जाता है, वह तत्काल ही अन्य जातिको हेय और अपने सम्प्रदायको श्रद्धेय सिद्ध करने लगता है। समाजकी जटिल अवस्थामें मनुष्यके मन और हृदयकी ऐसी ही हालत हो जाती है।

मनुष्यके मनके चारो ओर पुस्तकोंका एक सघन बन दूर तक फैल गया है। इसकी मस्त गन्धने हमें मतवाला बना दिया है। यह गन्ध हमें एक डालीसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी पर भटका भटका कर मारती तो है; परन्तु वास्तविक आनन्द और गहरी तृप्ति नहीं देती। और नाना प्रकारके उपद्रव बढ़ाती तथा मनोविकार उत्पन्न करती रहती है, सो जुदा ही।

जो वस्तु सहज और स्वाभाविक होती है, उसमें यह खूबी रहती है कि उसका स्वाद कभी पुराना नहीं होता—उसकी सरलता उसे सदा ही नया बनाये रखती है। वास्तविक स्वभावकी बातको मनुष्यने आज तक जितनी बार कहा है, उतनी ही बार वह नई मालूम हुई है। पृथ्वी पर इस तरहकी स्वाभाविक बातें कहनेवाले दो तीन महाकाव्य है, जो हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पुराने या फ़ीके नहीं पड़े। निर्मल जलकी तरह उनसे हमारी प्यास बुझ जाती है और एक अपूर्व तृप्ति भी मिलती है। मदिराकी तरह उत्तेजनाके शिखर पर चढ़ाकर सूखे अवसाद या खेदकी तलीमें पटकनेका गुण उनमे बिलकुल नहीं है। यह सहज स्वाभाविक वस्तुकी बात है। किन्तु सहजसे ज्यों ही कुछ दूर पड़े कि उत्तेजना और अवसादके बीचमे धान कूटनेकी ढेकी बन जाना पड़ता है। उपकरणों और आडम्बरोंसे सजीधजी हुई अति सभ्यताकी यही तो बड़ी भारी व्याधि है।

इस जंगलके भीतर रास्ता खोजकर, इस ढेरकी ढेर पुस्तकों और वचनोंके आवरणको जुदाकर, यदि समाजके भीतर और

मनुष्यके मनके भीतर स्वभावका पवन और प्रकाश पहुँचाना आवश्यक हो, तो यह यों ही न पहुँच जायगा; इसके लिए या तो किसी महापुरुषको जन्म लेना पड़ेगा या किसी बड़े भारी विप्लवकी आवश्यकता होगी। अत्यन्त सहज सत्यको और अत्यन्त सहज बातको भी रक्त समुद्र तैर कर आना होगा। जो आकाशके समान व्यापक और वायुके समान मूल्यहीन है, उसके प्राप्त करनेमे भी बहुमूल्य प्राणोंको देना होगा।

यूरोपके मनोराज्यमें अकसर बीचबीचमें जो भूकम्प और अग्न्युत्पादकी अशान्ति दिखलाई देती है, उसका कारण यही है कि वहाँ स्वभावके साथ जीवनका, या बहि:प्रकृतिके साथ अन्त:प्रकृतिका बड़ा भारी असामञ्जस्य हो गया है। अर्थात् वहाँका ज्ञान एक ओर जा रहा है और चरित्र दूसरी ओर।

यूरोपकी इस विकृतिने हमारे यहाँ भी दर्शन दिये है। किन्तु इसे हमने केवल अनुकरणके द्वारा या छूतके द्वारा प्राप्त किया है— यह हमारे देशकी खास चीज नहीं है। हमने जिस दिन बचपनसे ही विलायती पुस्तकोंका रटना शुरू किया, उसी दिनसे हमारे यहाँ इसका प्रारभ हुआ है। हम जिन सब विदेशी बातोंको सदा ही निस्सन्देह होकर परम श्रद्धाके साथ मानते और वर्तावमें लाते आ रहे है, हमें चाहिए था कि उनमेसे प्रत्येकको अविश्वासके साथ सत्यकी कसौटी पर घिसके जॉच कर लेते। क्योंकि उनका तीन चतुर्थांश भाग तो ऐसा है जो केवल पुस्तकोकी सृष्टि है—एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी पुस्तकने उसे सत्य बनाया है। पहले उसे दश आदमी एक दूसरेका अनुकरण करके सत्य कहते आते थे, धीरे धीरे और भी दश आदमियोने उसे ध्रुव सत्यमें परिणत कर दिया और अन्तमें वह पुस्तकोमे लिख दिया गया। पर इस प्रकारकी जॉच करना हमे पसन्द नहीं। कभी

इच्छा भी नहीं होती । बल्कि अब तो हम उस पुस्तकोंके सत्यको कंठ करके इस तरह व्यवहारमें लाने लगे हैं कि मानो उसके आविष्कारक हम ही है—मानों हम सिद्ध करना चाहते हैं कि वह विदेशी स्कूल-मास्टरोंके मुँहके शब्दोंकी केवल जड़ प्रतिध्वनि ही नहीं है—वह हमारे ही कण्ठका स्वर है ।

जो लोग नये पाठको रटते हैं, उनका उत्साह स्वभावसे ही कुछ अधिक हुआ करता है । सीखा हुआ तोता जितने ऊँचे स्वरसे बोलता है, उसके सिखानेवालेका गला उतना ऊँचा नहीं हुआ करता । सुनते हैं कि जिन जातियोंमें विलायती सभ्यताका प्रवेश पहले पहल होता है, वे इस विलायती मद्यसे इतनी अधिक मतवाली हो जाती है कि उनके लिए जमीन छोड़ना मुश्किल हो जाता है—परन्तु जिन जातियोंकी नकल करके ये जातियाँ मद्यपान करती हैं, वे स्वय इतनी कर्तव्यविमूढ और मतवाली नहीं देखी जाती । इसी तरह देखते हैं कि जिन बातोंके मोहसे स्वय उन बातोंके सृष्टिकर्त्ता मोहित नहीं होते हैं—अपने विश्वासमें बहुत कुछ अचल बने रहते है, उन्हींका मोह हमें एकदम जमीन पर सुला देता है । अभी थोडे ही दिन हुए, विलायतमें एक सभा हुई थी । उसमे एकके बाद एक इस तरह कई भारतवासियोंने उठकर कहा कि भारतवर्षमे स्त्रीशिक्षाका अभाव है । इस अभावकी पूर्तिके लिए क्या करना चाहिए, इसके सम्बन्धमें वे बहुतसी अतिशय पुरानी विलायती बातोंका तोतेके माफ़िक पाठ कर गये । अन्तमें एक अँगरेज़ सज्जनने कहा—“इस विषयमें मुझे बहुत सन्देह है कि भारतवर्षकी स्त्रियोंको अँगरेज़ी कायदेसे सिखलाना ही सच्ची शिक्षा है और यह शिक्षा ही उनके लिए एकमात्र कल्याणकारिणी है ।” यहाँ हम इस विषयमें तो कुछ कहना

नहीं चाहते कि उक्त दो प्रकारके कथनोंमें कौनसा सच है और कौनसा झूठ; किन्तु यह बतला देना चाहते हैं कि हम लोग विलायतके प्रचलित रवाजों और मतोंको जो गन्धमादन पर्वतके समान नीचेसे ऊपरतक उखाडकर ले आनेके लिए तत्पर हो जाते हैं और इस वातका कभी विचार भी नहीं करते हैं कि ऐसा करना योग्य है या नहीं; सो इसका कारण यह है कि इन सब वातोंको हमने वचपनसे ही पुस्तकोंके द्वारा सीखा है और हमें जो कुछ शिक्षा मिली है वह सब पुस्तकोंकी शिक्षा है। वह उधार ली हुई चीज है, स्वयं अपनी कमाईकी नहीं।

हमारे देशके शिक्षित लोग भी पुस्तकों और वचनोंके विवरमें पड़े हुए है, इसलिए उन पर भी निरानन्दकी छाया दिखलाई दे रही है। इन विवरवासियोंमें न तो सहृदयता है, न मिलना जुलना है और न साहजिक हँसी खेलकी बातें है। इसके दो कारण बतलाये जाते है– एक तो यह कि जीवनके निर्वाहका बोझा बहुत बढ़ गया है, इसलिए इनमें इतनी अवसन्नता दिखलाई देती है और दूसरा यह कि सर्व प्रकार सामाजिकसम्बन्धविहीन और ममताशून्य राजशक्तिका कोड़ा शिक्षितोंकी पीठ पर हमेशा ही पड़ा करता है,इस लिए इन पर इतनी उदासी छाई रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षितोंकी निरानन्दताके ये भी कारण हैं; परन्तु इनके साथ ही उनके अत्यन्त कृत्रिम अप्राकृतिक लिखने पढ़नेकी ताड़ना भी कोई छोटा मोटा कारण नहीं है–यह भी एक जबर्दस्त कारण है। बिलकुल ही बचपनसे पढ़ने लिखनेका पीसना शुरू कर दिया जाता है। इस ज्ञानलाभके साथ मनका योग या सम्बन्ध बहुत ही कम रहता है और यह ज्ञान आनन्दके लिए प्राप्त भी नहीं किया जाता–यह मुख्यतः प्राण या पेटके लिए और गौणरूपसे

मानके लिए संग्रह किया जाता है। ऐसी दशामें इन ज्ञानियोंमें सहृदयता और साहजिक हँसी खुशीकी बातें कहाँसे आवें?

जिस ज्ञानको हम मन लगाकर अच्छी तरह उपार्जन करते हैं, वह हमारे रक्तके साथ मिल जाता है और जिसे पुस्तकें रट करके प्राप्त करते हैं, वह बाहर लटक कर हमें एक तरह सबसे जुदा कर देता है। इस लटकते हुए ज्ञानको हम किसी तरह भूल नहीं सकते, इस लिए इससे हमारा अहङ्कार बढ़ जाता है और इस अहङ्कारमें जो थोड़ासा सुख है वही हमारा एक मात्र भरोसा है। हमें पुस्तकोंके ज्ञानसे यदि कुछ आनन्द मिलता है, तो वह यही है। यदि हम ज्ञानके स्वाभाविक आनन्दको प्राप्त करते, तो हमारे लाखों शिक्षितोंमें और कुछ नहीं तो दशबीस मनुष्य अवश्य ही ऐसे दिखलाई देते जिन्होंने ज्ञानचर्चाके लिए अपने सारे स्वार्थोंको संकुचित कर लिया है। हम देखते है कि लोग इधर तो सायन्सकी परीक्षामे प्रतिष्ठाके साथ उत्तीर्ण होते हैं और उधर डिपुटी मजिस्ट्रेट बनकर अपनी सारी विद्याको आईन और अदालतकी गहरी निरर्थकतामें सदाके लिए विसर्जन कर देनेके लिए तैयार हो जाते हैं। बहुतसे युवक बड़ी बड़ी डिगरियाँ केवल कन्याओंके हतभागे पिताओंको ऋणकी गहरी कीचड़मे डुब मारनेके लिए प्राप्त करते हैं। मानो, अपने जीवनमें वे इससे अधिक स्थायी कीर्ति और कुछ भी लाभ नहीं कर सकते! देशमे इस तरहके शिक्षित कहलानेवाले वकील बैरिस्टर, जज क्लर्क आदि तो ढेरके ढेर है; परन्तु ज्ञानतपस्वी कहाँ हैं? उनके तो दर्शन ही नहीं होते।

बातो ही बातोंमे बात बहुत बढ़ गई। शिक्षाके विषयमे हमारा जो कुछ वक्तव्य है उसका सार यह है—बालकोंके मनमें इस प्रकारका

अन्ध संस्कार जमने ही न देना चाहिए कि पुस्तकें पढनेको ही सीखना कहते हैं। यह बात उन्हें पद पद पर जतलाते रहना चाहिए कि पुस्तकोंमें जो कुछ ज्ञान सचित है वह प्रकृतिके अक्षय भाण्डारमेंसे ही हरण किया गया है। अर्थात् मनुष्य, प्रकृतिके प्रत्यक्ष परिचयसे जो कुछ जानता है, उसे ही पुस्तकोंमे लिख जाता है। इस समय पुस्तकोंका उपद्रव बहुत ही अधिक वढ़ गया है, इसलिए इसे बहुत ही वढाकर समझा देनेकी भी जरूरत है। अति प्राचीन कालमें लिपिका प्रचार हो जाने पर भी तपोवनोंमे पुस्तकोंका व्यवहार न हुआ था। उस समय गुरु मौखिक (जबान) शिक्षा देते थे और शिष्य उस शिक्षाको नोट बुक या पाकेट बुकमें नहीं, किन्तु मनमें लिख लिया करते थे। इस तरह एक दीपशिखासे दूसरी और दूसरीसे तीसरी दीपशिखाके जलनेका क्रम जारी रहता था। यद्यपि इस समय ठीक वैसाका वैसा नहीं हो सकता है, तो भी जहाँ तक बने विद्यार्थियोंको पुस्तकोंके आक्रमणसे वचाये रखना चाहिए। वन सके तो छात्रोंको दूसरोंकी रचना पढनेको दी ही न जाय-वे गुरुके पास जो कुछ सीखे, उसीकी उनसे रचना कराई जाय। अर्थात् जिन वातोंके उन्होंने भली भाँति हृदयस्थ कर लिया हो, उन्हींको उनकी भाषामें लिपिवद्ध कराया जाय—बस, यही रचना उन्हें पढनेके लिए दी जाय। ऐसा होनेसे यह वात उनके मनमें भी कभी न आयगी कि ग्रन्थ आकाशसे पड़े हुए वेदवाक्य है। वे समझने लगेंगे कि जिस तरह हमने अपने विचार लिपिवद्ध कर लिये हैं, उसी तरह प्राचीन कालके विद्वान् भी अपने विचारोको लिख गये है—ग्रन्थ ईश्वरके वनाये हुए नहीं है। "भारतवर्षके मूलनिवासी अनार्य लोग हैं। आर्य लोग यहाँ मध्य एशियासे आये है।" "ईसाके जन्मके दो हजार वर्ष पहले वेदोकी रचना हुई थी।" ये सब वातें हमने पुस्तकोंसे सीखी

हैं। पुस्तकोंके अक्षर काटाकूटीसे रहित निर्विकार होते है। वे बचपनमें हम लोगों पर एक प्रकारके सम्मोहन मंत्रका प्रयोग करते हैं और इसी लिए हम लोगोंके समीप उक्त सब बातें देववाणीके समान सर्वथा विश्वास योग्य बन गई है। बच्चोंको पहलेहीसे यह समझा देना चाहिए कि, ये सब आनुमानिक बातें है और थोडीसी युक्तियों पर इन सबका दारोमदार है। यदि बन सके, तो इन सब युक्तियोंके मूल उपकरण छात्रोंके आगे रखकर उनकी खुदकी अनुमानशक्तिको उत्तेजित करना चाहिए। अर्थात् उन्हें इस योग्य बना देना चाहिए कि वे स्वयं भी इस तरहके नये नये अनुमान कर सकें। यदि वे पहलेहीसे अपने मनमें धीरे धीरे थोडा थोड़ा इस बातका अनुभव करते रहेंगे कि पुस्तकें किस तरह और कैसे कैसे अनुमान प्रमाणोंसे तैयार की जाती हैं, तो अवश्य ही वे पुस्तकोंका यथार्थ फल पालेंगे और उनके अन्धशासनसे अपना छुटकारा करा सकेंगे। साथ ही अपने स्वाधीन उद्यमके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेकी जो उनकी स्वाभाविक मानसिक शक्ति हैं, वह गर्दनके ऊपर बाहरसे बोझा लाद देनेवाली विद्याके द्वारा आच्छन्न और मूर्छित न होने पावेगी—पुस्तकोंके ऊपर उनके मनका स्वामित्व पूरा पूरा बना रहेगा। बालक थोड़ा बहुत जो कुछ सीखे, यदि सीखते समय उसका प्रयोग करना भी सीख लें, तो शिक्षा उनके ऊपर न चढ़ पावेगी—वे ही शिक्षाके ऊपर चढ़ बैठेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी इस बातका अनुमोदन करनेमे लोग आनाकानी न करेंगे; परन्तु जब इसके अनुसार काम करनेका मौका आयगा, तब ठंडे हो जावेंगे। वे सोचेंगे कि बालकोंको शिक्षा इस तरहसे दी ही नहीं जासकती। यह बिलकुल असंभव है। ठीक ही है—ये लोग जिसे शिक्षा समझते हैं, वह इस तरह सचमुच ही नहीं दी जासकती। थोड़ीसी पुस्तके तथा थोड़ेसे

विषय नियत कर देना और नियत समयके भीतर नियत प्रणालीसे परीक्षा ले लेना, इसीको ये लोग विद्या सिखलाना कहते हैं और जहाँ इस प्रणालीसे शिक्षा दी जाती है, उसीको विद्यालय कहते हैं। उनकी समझके अनुसार मानो विद्या एक स्वतन्त्र (जुदा) पदार्थ है, उसे यदि देखना हो तो उनकी बुद्धिके अनुसार बालकके मनसे अलग–कुछ अन्तर पर देखना चाहिए। अर्थात् पुस्तकोंके पत्र अथवा अक्षरोंकी सख्या गिनकर बालकोंकी विद्याका हिसाब लगाना चाहिए।= भले ही इस विद्यासे छात्रोंका मन पिचल जाय, भले ही वे पुस्तकोंके गुलाम बन जायँ, भले ही उनकी स्वाभाविक बुद्धि मूर्च्छित हो जाय, भले ही वे अपनी स्वाभाविक शक्तियोके द्वारा ज्ञानको अधिकृत करनेकी शक्तिको अनाभ्यास और कष्टकर शासनके वश सदाके लिए खो बैठें, पर कहेंगे इसे विद्या।=

बालकोंका मन जितनी शिक्षाके ऊपर अपना स्वामित्व जमा सके, उतनी ही शिक्षा–चाहे वह थोडी ही क्यो न हो–सच्ची शिक्षा है। और जो ‘ शिक्षा ’ नाम धारण करके भी उनके मनको ढँक देती है उसे पढाना भले ही कह लीजिए, पर शिक्षा या सिखाना तो उसे नहीं कह सकते। विधाताने जान लिया था कि आगे मनुष्य स्वय अपने ही ऊपर अनेक अत्याचार करेगा। इस लिए उसने मनुष्यको पहलेहीसे बहुत मजबूत बना दिया है। इसी कारण गुरुपाक अखाद्य खाकर अजीर्ण भोगकर भी मनुष्य बचा रहता है और बचपनसे शिक्षाके असह्य कष्ट सहन करके भी बहुत विद्या प्राप्त कर लेता है और उसके कारण गर्व तक करने लगता है। अर्थात् हमारी शिक्षा-प्रणाली इतनी कष्टकर है कि उससे हमारी मानसिक शक्तियोंका जीवित रहना ही कठिन था, परन्तु विधाताने हमारी इस शक्तिको

ऐसी मजबूत बनाई है कि इस दशामें भी हम थोड़ी बहुत विद्या सीख लेते है! इस ताड़ना और पीड़नसे कितनी हानि उठानी पड़ती है, इसे बहुत लोग तो समझते ही नहीं है, बहुत लोग समझकर स्वीकर नहीं करते हैं और बहुत लोग ऐसे हैं जो समझते हैं तथा स्वीकार भी करते है, परन्तु कामके वक्त, जैसा चला आ रहा है वैसा ही चलाये जाना पसन्द करते है। *

संसार और मोक्ष[१]।

जैनधर्मके अनुसार संसार और मोक्ष दोनों अनादि कालसे है। इस धर्मके सिद्धान्तकी अपेक्षा ससार और परमात्मा ये दोनों ही सदैवसे विद्यमान है। कोई समय ऐसा नहीं हुआ कि जिसमें कोई न कोई जीव संसारी और कोई न कोई जीव मुक्त अर्थात् परमात्माकी दशामें न हो। कुछ मतावलम्बियोंका यह सिद्धान्त है कि प्रारम्भमें केवल एक ब्रह्म ही था, पश्चात् उसने यह समस्त संसार अपनी इच्छा व मायासे उत्पन्न किया। परन्तु जैनधर्मावलम्बियोंका यह श्रद्धान नहीं है। जैनधर्मका उपदेश है कि जो कुछ इस संसारमें है, वह सदासे है और सदा रहेगा। इस धर्मका सिद्धान्त यह है कि अस्तिसे नास्ति और नास्तिसे अस्तिका प्रादुर्भाव कदापि नहीं होता। जिस वस्तुका अस्तित्व है, उसका कभी नाश नहीं होता और जो नास्तिरूप है, उसका कभी अस्तित्व नहीं हो सकता। कोई वस्तु कभी उत्पन्न नहीं हुई। जो वस्तु है वह सदासे है और सदा रहेगी। केवल उसकी पर्यायमें परिवर्तन होता

---

* रवीन्द्रबाबूके बंगला निबन्धका अनुवाद।

१ नोट–बाबू ऋषभदासजी बी ए. के उर्दू लेखका 'जैनप्रदीप' से अनुवाद किया गया।

रहता है। इसीका नाम हम ससारियोंने जन्म मरण रख छोड़ा है; परन्तु इस परिवर्तनका कारण परमात्मा नहीं है—इसका कारण वस्तुस्वभाव और एक वस्तुका दूसरी वस्तु पर प्रभाव है।

संसार और जो कुछ संसारमें है, सब द्रव्यका बना हुआ है। द्रव्यका स्वरूप जैनसिद्धान्तानुसार सत् है। "सद्द्रव्यलक्षणं" जैन-धर्मका सूत्र है। सत्, उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप होता है। ये तीनों गुण द्रव्यमें पाये जाते है। द्रव्यकी पर्यायोंका सदैव उत्पाद व्यय होता रहता है; परन्तु द्रव्य सदा ज्योंका त्यों रहता है। इस प्रकार द्रव्यमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों गुण सदैव पाये जाते है। इसका उदाहरण इसप्रकार है,—स्वर्ण एक धातु है। उसके भिन्न भिन्न आभूषण बन सकते है। कडे बना लिये। फिर उनको गला कर हार बना लिया। फिर हारको गलाकर कुंडल बना लिये। गरज यह कि उस सोनेकी पर्यायके परिवर्तनसे उसमें उत्पाद और व्ययका होना कह सकते है, परन्तु स्वर्णधातुका प्रत्येक अवस्थामें अस्तित्व है। अतएव स्वर्णकी अपेक्षा उसमें ध्रुवता है। इस प्रकार स्वर्णमें उत्पाद, व्यय ध्रौव्य तीनों गुण पाये गये। इसी तरह आत्मा द्रव्य है। यह कभी नरक पर्यायमें जाता है, कभी वनस्पतिके रूपमें उत्पन्न होता है, कभी पशुपक्षीकी योनिमें जन्म लेता है, कभी मनुष्य हो जाता है और कभी देव बनकर स्वर्गमें पहुँच जाता है। इस प्रकारसे एक पर्यायमें मरता है, दूसरी पर्यायमें जन्म लेता है; परन्तु वास्तवमें जीव सदैवसे है, न कभी मरता है और न कभी पैदा होता है, यह उत्पाद, व्यय केवल जीवकी पर्यायोंमें होता है। केवल व्यवहार रूपसे जीवका जन्म-मरण कहा जा सकता है। निश्चयसे जीव अजर, अमर, अनादि,

अनंत है: परन्तु चूँकि पर्याय जीवसे पृथक् नहीं है इस कारण जब उत्पाद व्यय पर्यायसे होता है तब उसके कारण उत्पाद व्ययका जीवमें कहना भी अनुचित नहीं है। भावार्थ—निश्चय, व्यवहार नयकी अपेक्षासे जीवद्रव्यमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनों गुण पाये जाते हैं और द्रव्य पर्याय गुणको लिये होता है। जैसे पीतवर्ण स्वर्णका गुण है और कड़े व हार इत्यादि उसकी पर्यायें है। इसी प्रकार ज्ञान जीवका गुण है और पशुपक्षी मनुष्य, देवादि जीवकी पर्यायें हैं। सारांश यह है कि जैनधर्मानुसार समस्त संसार द्रव्यसे बना हुआ है और द्रव्य सत् रूप होता है और गुण व पर्यायको लिये होता है और उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य उसमें पाये जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि द्रव्य एक है या अनेक है। इसका उत्तर जैनधर्म यह देता है कि द्रव्य एक भी है और अनेक भी हैं। द्रव्य होनेकी अपेक्षासे द्रव्य एक है। द्रव्य जहाँ तक उसके सद्धर्मका सम्बन्ध है एक है। अगर द्रव्यको उसके द्रव्यत्वकी अपेक्षासे देखा जाय तो एक है, परन्तु जब अन्य गुणोंकी अपेक्षासे देखा जाता है, तो उसके अन्य भेद हो जाते हैं। जैसे जब ज्ञान व चेतना-शक्तिका अपेक्षा विचार करते हैं, तब द्रव्यके जीव व अजीव ये दो भेद हो जाते हैं। जिस द्रव्यमें ज्ञान व चेतना पाई जाती है, वह जीव है और जिसमें ये गुण नहीं पाये जाते, वह अजीव है। अजीवके अन्य गुणोंकी अपेक्षा पाँच भेद है.—पुद्गल, काल, आकाश, धर्म और अधर्म।

जीव या आत्मा।

जीव या आत्मद्रव्य अकृत्रिम, अविनाशी, अनादिनिधन, अखंड है। यह संसारी और मुक्त दो अवस्थाओंमें पाया जाता

है। संसारी जीवके भी उसकी अवस्थापेक्षया बहिरात्मा और अन्त-रात्मा ये दो भेद है। जो जीव राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मान, मायामें अधिक फँसा है, जिससे बुरे विचार, बुरे शब्द और बुरे कार्य अधिक होते है, वह बहिरात्मा है। इससे विपरीत जो स्व और परके भेदको जानता है, जिसकी इच्छायें व कषायें मन्द है, शुभ विचारों और शुभ कार्योंमें जिसका मन लगा रहता है वह अन्तरात्मा है। मुक्त जीव या परमात्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखका धारक है, अमूर्तीक है, अव्याबाध है। अगुरलघु है, अर्थात् हल्का भारी नहीं है। अतएव उसको किसी टेबिल व कुर्सीकी ज़रूरत नहीं है और अवगाहन शक्तिका धारक है अर्थात् किसी वस्तुसे वह रुक नहीं सकता और कोई वस्तु उसको काट नहीं सकती। वह वीतराग, सर्वज्ञ और परमानन्द है।

संसारी जीव उपयोगमयी, अमूर्तीक, कर्त्ता, देहपरिमाण अर्थात् शरीरके बराबर रहनेवाला, भोक्ता अर्थात् कर्मफलका भोग-नेवाला और जन्ममरण करनेवाला है।

जीवका स्वभाव ज्ञान है। स्वभाव वस्तुके उस गुणको कहते है कि जिससे वस्तुका अस्तित्व है, जो वस्तुसे कभी पृथक् नहीं होता और जो कभी और वस्तुमें नहीं पाया जाता। अतएव ज्ञान जीवका ऐसा गुण है जो जीवके अस्तित्वको प्रगट करता है, जो जीवसे कभी पृथक् नहीं होता और जो और किसी वस्तुमें भी नहीं पाया जाता। ज्ञानके कारणहीसे जीव अन्य द्रव्योंसे पृथक् पहचाना जाता है। ज्ञान प्रत्येक जीवमें—चाहे वह ससारी हो चाहे मुक्त—पाया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि मुक्त जीवमें

पूर्ण ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान पाया जाता है। मुक्तजीव एक ही समयमें समस्त संसारकी भूत, भविष्यत्, वर्तमान समस्त वस्तुओंको जानता है। मुक्त जीव सर्वज्ञ है; परन्तु संसारी जीव सर्वज्ञ नहीं है। वह इंद्रियोंद्वारा पदार्थको जानता और देखता है। उसका ज्ञान परिमित है। मुक्त जीवका ज्ञान अनन्त, अपरिमित है। समस्त ब्रह्माण्डकी वस्तुओंमें फैला हुआ है। संसारी जीवको केवल उतना ही ज्ञान है जितना इन्द्रियोंद्वारा उसको गम्य है। उसकी आँखोंसे बचाकर यदि कोई पदार्थ रक्खा जाय, तो वह यह नहीं बतला सकता कि वह क्या पदार्थ है। वास्तवमें प्रत्येक जीवमें सर्वज्ञ होनेकी शक्ति है। निज स्वभावकी अपेक्षा जीव मात्र सर्वज्ञ है। मुक्त जीवमें यह स्वभाव व्यक्तरूप है। संसारी जीवमें केवल शक्तिरूप है, व्यक्तरूप नहीं। अर्थात् छिपा हुआ है। अब देखना यह है कि संसारी जीवकी यह दशा क्यों हो रही है और जिस कारणसे उसकी यह दशा हो रही है, वह किसी उपायसे दूर भी हो सकता है। इससे पूर्व कि इस विषयपर विशद रूपसे विवेचन किया जाय यह आवश्यक है कि अजीव द्रव्यके गुण स्वभावका ज्ञान हो जाय। जैसा ऊपर कह आये है, अजीव द्रव्यके पाँच भेद हैं—अर्थात् पुद्गल, काल, आकाश, धर्म, अधर्म।

पुद्गल।

पुद्गल वह द्रव्य है कि जिसमें ज्ञान नहीं है। चेतनाशक्तिसे रहित है, मूर्तीक है और मिलने बिछुड़नेकी योग्यता रखता है। अर्थात् कभी तो पुद्गलसे पुद्गल मिलकर कोई एक पदार्थ बन जाता है और कभी पुद्गलसे पुद्गल पृथक् होकर उस पदार्थके खंड खंड हो जाते हैं। पुद्गल द्रव्य भी अपने द्रव्यत्वकी अपेक्षा अविनाशी है। उसके

किसी भी परमाणुका अभाव नहीं हो सकता । स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पुद्गल द्रव्यके अस्तित्वको प्रगट करते हैं । ये गुण ऐसे है कि जो और द्रव्यमें नहीं पाये जाते। ये पुद्गलके स्वभाव है । स्पर्शके आठ भेद हैं:—कड़ा, नर्म, रूखा, चिकना, ठडा, गर्म, हल्का, भारी। प्रत्येक पुद्गलमें कुछ न कुछ स्पर्श अवश्य होगा, कुछ न कुछ रस अवश्य होगा, सुगन्धि व दुर्गन्धि अवश्य होगी और एक न एक वर्ण भी होगा। गरज यह कि पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण इन चार गुणोंसे रहित कभी नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ पदार्थ ऐसे है और वे ऐसे परमाणुओंसे बने हुए है कि जिनमें चारों गुणोंकी अधिकता है और कुछ पदार्थ ऐसे परमाणुओंसे बने हुए हैं कि जिनमें तीन व दो व एक ही गुणकी अधिकता है। जैसे धातु, पाषाण, मिट्टी ऐसे पदार्थोंसे बने हुए है कि जिनमें साधारणतः स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण चारों गुणोंकी अधिकता है। जलमें स्पर्श, रस, वर्णकी अधिकता है। वायुमें केवल स्पर्शकी अधिकता है।

शुद्ध पुद्गल परमाणु है। परमाणु इतना छोटा होता है कि उसके और खंड नहीं हो सकते। परमाणु अखंड है । परमाणुमें ये चारों गुण अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण होते है। किसीमें कोई गुण न्यून कोई अधिक या किसीमें एक गुण जैसे स्पर्शके भेदोंमेंसे कोई भेद कम और कोई अधिक होता है । परमाणुओंके संयोगसे स्कन्ध व समस्त पदार्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि बनते है।

परमाणु इतना सूक्ष्म है कि हमको ऑखसे दिखाई नहीं देता । हम केवल स्कन्धको देखते है । अब प्रश्न यह होता है कि परमाणुओंका किस कारणसे मिलना बिछुरना होता है । इसका कारण स्पर्शके दो गुण है—१ चिकनाहट और २ खुरदरापन । पर-

माणुओंका मिलना, विछुरना इस चिकनाहट और खुरदरेपनके कारणसे ही होता है। जिन दो परमाणुओंमें ये दोनों गुण समान एकही प्रकारके होते हैं, वे परमाणु आपसमें नहीं मिलते। अर्थात् यदि एक परमाणुमें इतना चिकनाहट है जितना दूसरेमें है, तो वे दोनों परमाणु एक साथ नहीं मिलेंगे और यदि एक परमाणुमें इतना खुरदरापन है कि जितना दूसरेमें तो वे परमाणु भी आपसमें नहीं मिलेंगे और यदि एक परमाणुमें इतना चिकनाहट है कि जितना दूसरेमें खुरदरापन है तो भी उनका आपसमें मेल नहीं हो सकेगा; परन्तु यदि एककी चिकनाहट दूसरेके खुरदरेपनसे दो गुण (दर्जे) अधिक है, तो ये दोनों परमाणु एक दूसरेकी ओर आकर्षित होंगे और मिल जायँगे। संसारमे समस्त पदार्थोंका बनना और बिगड़ना इसी सिद्धान्त पर निर्भर है और समस्त पदार्थोंके परमाणुओंका आपसमें मिला रहना व जुदा जुदा होना इसी सिद्धान्तके आधार पर है।

पुद्गलस्कन्ध छह प्रकारके हैं:—१ बादरबादर जैसे पत्थर, लकडी, मिट्टी वगैरह। २ बादर जैसे दूध, पानी वगैरह। ३ बादरसूक्ष्म जैसे धूप, चाँदनी वगैरह। ४ सूक्ष्म बादर जैसै शब्द, गन्ध आदि। ५ सूक्ष्म जैसे आठ प्रकारके ज्ञानावरणीय आदि कर्म अर्थात् वह सूक्ष्म पुद्गल कि जिसका बन्धन आत्माके साथ आत्माके रागद्वेषके कारण होता है। ६ सूक्ष्म सूक्ष्म जैसे परमाणु।

हम संसारमें जो भाँति भाँतिके नीले, पीले रंग देखते है, खट्टे, मीठे, कडुवे आदि रस चखते है, तरह तरहकी गन्ध सूँघते है, कोमल, कठोर, शीत, उष्णादिका जो अनुभव करते हैं और मीठे, सुरीले जो शब्द सुनते हैं, यह सब पुद्गल द्रव्यका खेल है। ये

सब गुण और पर्यायें पुदगलकी ही है । शब्द भी पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है । कुछ मतावलम्बियोंने शब्दको आकाशका गुण माना है, परन्तु जैनधर्ममें इसको आकाशका गुण नहीं कहा है । क्योंकि आकाश अमूर्तीक द्रव्य है और शब्द मूर्तीक नहीं है । कारण कि शब्द भीत आदि पौद्गलिक पदार्थोंसे रुक जाता है । इस हेतुसे ऐसी वस्तु जो स्वंय मूर्तीक हो, अमूर्तीकका गुण नहीं हो सकती । जैनधर्मावलम्बी शब्दको पुद्गलकी एक पर्याय विशेष बतलाते है । जब एक पुद्गल स्कन्ध दूसरे पुद्गलस्कन्धसे टकराता है, तब कुछ परमाणु एक पर्यायविशेषको धारण कर लेते है कि जिसका नाम शब्द है ।

काल ।

दूसरा अजीव द्रव्य काल है । काल भी अनादि और अविनाशी है । इसका स्वभाव अन्य द्रव्योंको प्रवर्तानेका है । वर्तना इसका लक्षण है । नई वस्तुको पुरानी और पुरानीको नई करना, इसका काम है । जैनधर्मके अनुसार कालके दो भेद है । निश्चयकाल और व्यवहार काल, परन्तु व्यवहार काल वास्तवमें कोई पृथक् द्रव्य नहीं है—निश्चयकालकी ही पर्याय है । निश्चयकाल समस्त लोकमें व्याप्त है । निश्चयकाल उन कालके अणुओंका नाम है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भरे हुए है और जिनका काम पदार्थोंको बदलनेका है । आकाशके प्रत्येक प्रदेश (आकाशका वह छोटेसे छोटा भाग जिसका फिर भाग न हो सके)पर एक कालाणु स्थित है । यह कालाणु भी अत्यत सूक्ष्म अमूर्तीक पदार्थ है कि जिसको हम इद्रियों द्वारा नहीं जान सकते । कालाणुके टुकड़े भी नहीं हो सकते । निश्चय काल द्रव्य यह है । इसीकी भिन्न भिन्न

पर्यायोंका नाम व्यवहार काल है कि जिनको हम घंटा, दिन, महिना, साल वगैरह करते है। पुद्गल परमाणु जितनी देरमें अत्यन्त सूक्ष्म गतिसे एक कालाणुसे दूसरे कालाणु पर जाता है, उतनी देरका नाम समय है। समय वक्तका सबसे छोटेसे छोटा भाग है। व्यवहार कालका हिसाब पुद्गलकी क्रिया पर किया गया है। संख्यात समयोंकी एक आवली होती है और तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उस्वासोंका एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्तका एक दिन होता है। १५ दिनका एक पक्ष, दो पक्षका एक महीना और १२ महीनेका एक वर्ष होता है। वर्षोंकी एक गणना विशेषका—जिसकी सख्या जैन शास्त्रोंमें लिखी हुई है—एक पल्य होता है। १० करोड़ पल्यका एक सागर और दस कोड़ाकोड़ी सागरका एक अवसर्पिणी वा उत्सर्पिणी काल होता है। एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी मिलकर अर्थात् वीस कोड़ीकोड़ी सागरका एक कल्पकाल होता है। अनादि कालसे इस तरहके अनन्तानना कल्प बीत गये और आगेको बीतेंगे। भावार्थ, काल अनादि अनन्त है। न इसका आदि है न अन्त। इसकी कुछ सख्या वा सीमा नहीं हो सकती। आत्मा जब पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं अर्थात् परमात्मा हो जाता है, उस समय उसकी पूर्णता उसके ज्ञानमें झलकती हैं। बुद्धि और शब्दके द्वारा तो जितना कथन हो सकता हैं, उतना ही कथन किया जाता हैं। उसका पूरा ज्ञान तो केवलज्ञान प्राप्त होने पर ही होता हैं।

आकाश।

तीसरा अजीव द्रव्य आकाश है। आकाश भी अनादि, अविनाशी, अनन्त और अखंड है। इसका स्वभाव अन्य द्रव्यों और

पदार्थोंको स्थान देनेका है। ससारकी समस्त वस्तुयें इसके अन्दर समाई हुई है। इसकी कोई सीमा नहीं। यह हर तरफको बेहद चला गया है। आकाश सर्वत्र फैला हुआ है और जीव, पुद्गल, काल, धर्म, अधर्म सबको अपनेमें समाये हुए है। यह ज्ञानरहित है अर्थात इसमें जानने, देखनेकी शक्ति नहीं है। जीव ही इसको व अन्य पदार्थोंको जानता है।

धर्म।

यह भी एक सूक्ष्म द्रव्य है जो सर्वत्र फैला हुआ है। इसका स्वभाव यह है कि यह जीव और पुद्गलकी गतिमें उदासीन रूपसे सहायता देता है। जिस तरह दरियामें पानी मछलीको चलनेमें मदद देता है, उसी प्रकार यह धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलको मदद देता है।

अधर्म।

यह द्रव्य भी अत्यंत सूक्ष्म है और समस्त ससारमें फैला हुआ है। इसका स्वभाव यह है कि जीव पुद्गलके ठहरनेमें सहायता देता है। जिस तरह मुसाफिर (पथिक) धूपमें चलते चलते किसी वृक्षकी छायाके नीचे ठहर जाता है और छाया उसको ठहरनेमें सहायता देती है, उसी तरह जब जीव, पुद्गल और आकाशमें क्रियारहित होकर ठहरते है, तब यह अधर्म द्रव्य ठहरनेमें सहायक होता है।

इस प्रकार जैन धर्मानुसार ये छह द्रव्य सारे जगतको बनाये हुए है। ये छहों द्रव्य किसी समयविशेषमें उत्पन्न नहीं हुए, किन्तु अकृत्रिम, अनादि और अविनाशी है। अर्थात् न कभी इनका अभाव था और न कभी इनका अभाव होगा। सदासे है और सदा रहेंगे।

इनमेंसे जीवका स्वभाव अन्य पाँचों द्रव्य और स्वयँ अपनेको जाननेका है। अन्य पॉचों द्रव्य न अपनेको जान सकते है और न किसी दूसरेहीको। जीव ज्ञाता है और शेष पॉच द्रव्य ज्ञेय है। जीवका यह स्वभाव है कि अपने आपको, शेष पाँचों द्रव्योंको और छहों द्रव्योंकी भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालकी समस्त पर्यायों और गुणोंको एक ही समयमें जाने। जीवका स्वभाव सर्वज्ञता है, परन्तु ससारी जीवका यह स्वभाव छिप रहा है, प्रगट नहीं है। ससारी जीवका स्वभाव विभावरूप हो रहा है। संसारी जीवको जो कुछ ज्ञान होता है, वह इन्द्रियोंके द्वारा ही होता है। संसारी जीव इन्द्रियोंके अधीन है। वह आँखके विना किसी चीज़को नहीं देख सकता, कानके बिना कोई शब्द नहीं सुन सकता, जिह्वा पर रक्खे विना किसी चीज़का स्वाद नहीं जान सकता, नाकके विना सुगन्धि दुर्गन्धिकी पहचान नहीं कर सकता और सामने रक्खी हुई, चीज़को जबतक हाथसे नहीं छूता, यह नहीं बतला सकता कि यह कड़ी है या नर्म, ठंडी है या गर्म। किसी आदमीको एक ऐसे मकानमें बन्द कर दिया जाय कि जो हर तरफ़से बन्द हो और जिसमें केवल छोटे छोटे छिद्र हों जिनमें होकर कुछ कुछ हवा और रोशनी जाती हो। अब अनुमान किया जा सकता है कि उसको बाहरकी दुनियाका कितना ज्ञान होगा और वहाँ बन्द रहनेसे उसका स्वास्थ्य कैसा रहेगा। यही हाल इस संसारी जीवका है। यह कर्मोंके बन्धनमें बँधा हुआ है, इसी कारण अपने गुण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनंत सुखको खोये हुए है। अब देखना यह है कि जीवके साथ कर्मोंका बन्धन किस प्रकार हो रहा है।

अनादि कालसे पुद्गलका जीवसे सम्बन्ध है और संसारी जीवमें मोह और राग द्वेष पाया जाता है। संसारी आत्मा एक वस्तुसे राग करता है और दूसरीसे द्वेष करता है। किसी पदार्थको अपना हितकारी समझता है, किसीको हानिकर जानता है। किसीको अपना मित्र समजता है, किसीको शत्रु मानता है। इस प्रकार अपने असली गुणको भूले हुए है। पर पदार्थको अपना मानता है। जितने काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि बुरे विचार होते है, वे सब राग द्वेषके ही कारण होते है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि जितने बुरे काम होते है उन सबकी जड़ भी राग द्वेष है। इस राग द्वेषके कारण ही पुद्गलका जीवके साथ संयोग है। वास्तवमें कर्म दो प्रकारका है—भाव कर्म और द्रव्यकर्म। रागद्वेष-रूप जो जीवके भाव है, वे भावकर्म है। पुद्गल परमाणु जो आत्माके साथ बंधनरूप हो रहे है, वे द्रव्यकर्म है। भावकर्म, और द्रव्यकर्ममें निमित्त नैमित्तिक संबंध है। भावकर्म द्रव्यकर्मके कारण और द्रव्यकर्म भावकर्मके कारण है। जीवका असली स्वभाव ज्ञान है, परन्तु द्रव्यकर्मके प्रभावसे यह ज्ञान रागद्वेषरूप हो रहा है और रागद्वेषके कारण नवीन द्रव्यकर्म आत्माकी तरफ़ खिचकर उसके साथ बँधता है। द्रव्यकर्म सूक्ष्म पुद्गलपरमाणुओंका समुदाय है जिसका स्वभाव यह है कि जीवके असली स्वभावको नष्ट करके उसमें तरह तरहके राग द्वेषके भाव पैदा कर देता है। यह पुद्गल परमाणुओंका समुदाय अनेक प्रकारका है। ससारी जीवोंकी समस्त पर्यायोंका यही कारण है। कर्मोंके मुख्य आठ भेद है। पहला भेद ज्ञानावरणीय कर्म है। यह वह कर्म है कि जिसका स्वभाव आत्माके वास्तविक ज्ञान और सर्वज्ञपनेको रोकने ढँकनेका है। यदि आत्मामें इस कर्मकी अधिकता है, तो आत्माके ज्ञानमें न्यूनता होगी और यदि इस कर्मकी आत्मामें न्यूनता है, तो उसके ज्ञानमें

अधिकता होगी। अर्थात् आत्मामें ज्ञानका न्यून वा अधिक होना आत्मामें ज्ञानावरणीय कर्मके न्यून या अधिक होनेपर निर्भर है। दूसरा कर्म दर्शनावरणीय है। इसका यह स्वभाव है कि यह आत्माकी देखनेकी शक्तिको रोकता है। आत्मामें देखनेकी शक्तिका न्यूनाधिक होना इसी कर्म्मके न्यूनाधिक होने पर निर्भर है। तीसरा कर्म मोहिनीय है। इसका स्वभाव यह है कि यह आत्माको संसारके मोहमें फँसाकर आत्मानुभव और आत्मीक सुखसे वंचित रखता है। चौथा कर्म अन्तराय है। इसका यह स्वभाव है कि यह आत्माको उसकी शक्तियोंको स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहारमें लानेसे रोकता है—उनमें बाधा डालता है। ये चार कर्म घातिया कर्म कहलाते है। क्योंकि ये जीवके असली स्वभाव और उसकी असली शक्तिको नष्ट करते है। पाँचवाँ कर्म आयु है। इसका यह यह स्वभाव है कि यह जीवको किसी शरीरमें नियत समयतक रखता है। आयुकी संख्या इसी कर्मप्रकृतिके परमाणुओंकी सख्या पर निर्भर है। छट्ठा कर्म वेदनीय है। इसका काम आत्माके लिए दुनियामें सुखदुखकी सामग्री इकट्ठा करना है। कोई आदमी तो दुनियामें बड़े धनी और सुखी देखे जाते हैं, कोई कोई दु.खी, रोगी और निर्धन देखनेमें आते हैं। यह सब इस वेदनीय कर्मका खेल है। सातवाँ कर्म नाम है। इसके उदयसे शरीरके अगोपांग, आकृति, रूप, रंग आदि बनते हैं। आठवाँ कर्म गोत्र है जिसके उदयसे उच्च, नीच कुलमें जन्म होता है। इस प्रकार जीवकी समस्त संसारी अवस्थायें इन कर्मोंके कारण होती है। जब जीव राग द्वेषको नष्ट करके कर्मों पर विजय पाता है, उस समय यह निजस्वरूप अर्थात् परमात्मपदको प्राप्त कर लेता है। इसीका नाम मोक्ष है।

दयाचंद्र गोयलीय, बी. ए.।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य।

" हुए, न हैं, न होहिंगे, मुनींद्र कुंदकुंद से।"

—वृन्दावन।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायमें सबसे अधिक पूज्यता और महत्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्यको प्राप्त है। बडे बडे विद्वानों और आचार्योंने जहाँ जहाँ अपना परिचय दिया है, वहाँ वहाँ यह कहनेमे अपना सौभाग्य समझा है कि हम कुन्दकुन्दके अन्वयमें, वंशमें, या उनके अनुयायी है। हमारे सम्प्रदायमें उन्हें वही प्रतिष्ठा प्राप्त है, जो किसी तीर्थप्रवर्तक या धर्मसस्थापकको दी जाती है। जैनधर्मके असली उद्देश्योंकी और उसकी पवित्रताकी रक्षा करनेवालोंमे भगवान् कुन्दकुन्द सर्वप्रधान है। इस समय दिगम्बर सम्प्रदायका सबसे अधिक भाग कुन्दकुन्दकी ही आम्नायका अनुयायी है। यह सब होने पर भी बडे ही खेदका विषय है कि हम—कुन्दकुन्दस्वामी कौन थे, कब हुए है और कहाँ हुए है—यह भी नहीं जानते। उनके विषयमें हमें जो कुछ ज्ञान परम्परासे प्राप्त हुआ है, वह बहुत ही भ्रमपूर्ण है। विद्वानोंको इस ओर साविशेष लक्ष्य देना चाहिए और परिश्रम करके कुन्कुन्दस्वामीका वास्तविक परिचय प्रकट करना चाहिए।

इस विषयमें हमने जो कुछ छानवीन की है, उसका साराश इस लेखके द्वारा प्रकट कर दिया जाता है।

नामविचार।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्दका मुख्य और प्रथम नाम पद्मनन्दि था। परन्तु इनकी सबसे अधिक प्रसिद्धि 'कोण्डकुन्द' या 'कुन्दकुन्द' के नामसे है। ये कोण्डकुण्ड नामक नगरके रहनेवाले थे। इसीलिए जान

पड़ता है कि इनका यह नाम प्रसिद्ध हो गया है। 'कोडकुण्ड शब्द कनड़ी भाषाका है। यह कुछ कर्णकटु मालूम होता है। इसे संस्कृतकवियोंने श्रुतिमधुर कुन्दकुन्दके रूपमें वदल दिया है। श्रीइन्द्र-नन्दिसूरिकृत श्रुतावतारमें लिखा है कि:—

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डकुण्डपुरे—
श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थपरिकर्मकर्त्ता षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य॥ १६१॥

इन श्लोकोंसे श्रीपद्मनन्दिमुनिका निवासस्थान 'कुण्डकुण्डपुर' मालूम होता है। कर्णाटकमें और भी कई आचार्य ऐसे होगये हैं जो अपने निवासस्थानके नामसे प्रसिद्ध हैं। जैसे कि तुम्बुलूराचार्य। इनका वास्तविक नाम संभवत: वर्धदेव था; परन्तु तुम्बुलूर ग्राममें निवास होनेके कारण ये इसी नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं। श्रुतावतारमें इनका उल्लेख करते समय लिखा है:—**"अथ तुम्बुलूरनामाऽचार्योऽभूत्तुम्बुलूरसद्ग्रामे।"**

श्रवणवेलगुलके ९ वें और १० वें शिलालेखमें कुन्दकुन्दाचार्यका जिक्र आया है। उनमें इनका सिर्फ़ इन्हीं दो नामोंसे उल्लेख किया है। और भी कई ग्रन्थोंमें इनके ये ही दो नाम मिलते हैं। परन्तु नन्दिसंघकी पट्टावलीमें इनके पाँच नाम वतलाये गये हैं:—१ कुन्दकुन्द, २ वक्रग्रीव, ३ एलाचार्य, ४ गृध्रपिच्छ, और ५ पद्मनन्दि। यथा:—

....
ततोऽभवत्पञ्चसुनामधामा श्रीपद्मनन्दीमुनिचक्रवर्ती॥
आचार्यो कुन्दकुन्दाख्यो, वक्रग्रीवो महामतिः।
एलाचार्यो गृध्रपिच्छः, पद्मनन्दीति तन्नुतिः॥ ४॥

अर्थात् पट्टावलीमें गृध्रपिच्छ, वक्रग्रीव और एलाचार्य ये तीन नाम अधिक हैं।

पट्टावलियोंमें जगह जगह सन्देह होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन पट्टावलियाँ लुप्त हो गई हैं और उनके स्थानमें अभी सौ दो सौ वर्ष पहलेके भट्टारकोंने कुछ अनुमानसे, कुछ कल्पनासे और कुछ पुराने नोटोंसे ये पट्टावलियाँ गढ़ ली हैं। इस लिए इनमें बीसों बातें यथार्थतासे बिलकुल विरुद्ध पाई जाती है। नन्दिसघकी पट्टावली भी ऐसी ही है। इसमें बतलाया हुआ 'गृध्रपिच्छ' नाम कुन्दकुन्दका नहीं, किन्तु उमास्वामि या उमास्वातिका दूसरा नाम है। इसकी साक्षीमें बीसों प्रमाण दिये जा सकते हैं। यथा—

१—तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्॥

—तत्त्वार्थप्रशस्ति।

२—तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनन्दिप्रथमाभिधानः।
श्रीकुन्दकुन्दादिमुनीश्वराख्य सत्संयमादुद्गतचारणर्द्धिः॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्यशब्दोत्तरगृध्रपिच्छ।
तदन्वये तत्सदृशोस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी॥५॥

—श्रवणबेलगुलका ४० वाँ लेख।

३—तदीय वंशाकरतः प्रसिद्धादभूददेपा यतिरत्नमाला॥
बभौ यदन्तर्मणिवान्मुनीन्द्रस्स कुण्डकुण्डोदितचण्डदण्ड॥१०
अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी॥
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन॥ ११॥
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृध्रपक्षान्
तदा प्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्यशब्दोत्तरगृध्रपिच्छम्॥ १२॥

—मगराजकविकृत शिलालेख।

इनके सिवा और भी कई प्रमाण हैं जो आगे अन्यान्य प्रसंगोंमें दिये जावेंगे। इससे साफ़ मालूम होता है कि कुन्दकुन्दका नाम गृध्रपिच्छ नहीं था।

'वक्रग्रीव' नामका उल्लेख भी पट्टावलीको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। इस नामके एक और अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगुलकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें मिलता है:—

वक्रग्रीवमहामुनेर्दशशतग्रीवोऽप्यहीन्द्रो यथा—
जातं स्तोतुमलं वचो बलमसौ किं भग्नवाग्मिव्रजम् ॥
योऽसौ शासनदेवताबहुमतो ह्रीवक्रवादिग्रह—
ग्रीवोऽस्मिन्नथशब्दवाच्यमवदन्मासान्समासेन षट् ॥

अर्थात् "महामुनि वक्रग्रीवके बडे बडे वक्ताओंको हटा देनेवाले वचन बलकी स्तुति हजार ग्रीवावाला धरणेन्द्र-भी नहीं कर सकता है। शासनदेवीने उन्हे बहुत माना था। उन्होने लगातार छह महीने तक 'अथ' शब्दका अर्थ किया था। उस समय बड़े बड़े वादियोंकी ग्रीवायें (गर्दने) लज्जाके मारे वक्र (टेढ़ी) हो गई थीं।" उक्त मल्लिषेण प्रशस्तिमें पहले "वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कोण्डकुन्द" इत्यादि श्लोकमें कुन्दकुन्दका वर्णन हो चुका है। उनके बाद समन्तभद्र और सिंहनन्दीका उल्लेख करके फिर वक्रग्रीवकी प्रशसा की गई है। इससे मालूम होता है कि वक्रग्रीव कुन्दकुन्दसे पृथक् दूसरे एक महान् विद्वान् हो गये हैं और पट्टावलीके लेखकके कथनानुसार कुन्दकुन्दका ही नाम वक्रग्रीव न था।

इस बातका भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि एलाचार्य कुन्दकुन्दका नाम था। इस नामके भी एक दूसरे अतिशय प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। वे चित्रकूटपुरके रहनेवाले थे और भगवज्जिनसेनके गुरु वीरसेनने उनके निकट जाकर सिद्धान्त शास्त्रोंका अध्ययन किया था। यथा:—

काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्त्वज्ञ ॥ १७७

तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः ।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारानष्ट च लिलेख ॥ १७८

कुन्दकुन्द और उमास्वामि ।

कुन्दकुन्द और उमास्वामिका परस्पर क्या सम्बन्ध था, इस विषयमे तीन मत हैं—१ कुन्दकुन्द उमास्वामिके गुरु थे, २ वे उमास्वामिके शिष्य थे और ३ दोनों एक ही थे। मेरी समझमें इनमेंसे पहला मत ठीक मालूम होता है। क्योंकि एक तो श्रवणबेलगुलके जिन सात[1] आठ शिलालेखोंमें कुन्दकुन्दका उल्लेख है, उनमें यही लिखा है कि उमास्वामि कुन्दकुन्दके शिष्य थे। दूसरे पट्टावलीके लेखक भी इसी मतको पुष्ट करते हैं और कुन्दकुन्दके गुरुका नाम जिनचन्द्र बतलाते हैं। तीसरे कई ग्रन्थोंमें कुन्दकुन्दके गुरुका नाम उमास्वामि न बतलाकर और ही कुछ बतलाया है।

यशोधरचरितकी भूमिकामें किसी ग्रन्थके निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं:—

श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्त्वार्थसूत्रं प्रकटीचकार ।
यन्मुक्तिमार्गे चरणोद्यतानां पाथेयमर्घ्यं भवति प्रजानाम् ॥
तस्यैव शिष्योऽजनि गृध्रपिच्छो द्वितीयसंज्ञास्य बलाकपिच्छः
यत्सूक्तिरत्नानि भवन्ति लोके मुक्त्यंगनामोहनमण्डनानि ॥

अर्थात् "उमास्वाति मुनिराजने तत्त्वार्थसूत्रकी रचना की। उनके शिष्य गृध्रपिच्छ थे और उनका दूसरा नाम बलाकपिच्छ था।"

१— श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघस्तस्मिन्बलात्कारगणोतिरम्यः ।
तत्राभवत्पूर्वपदांशवेदी श्रीमाघनन्दी नरदेववन्द्यः ॥
पदे तदीये मुनिमान्यवृत्तो जिनादिचन्द्रस्समभूदतन्द्रः ।
ततोऽभवत्पञ्चसुनामधामा श्रीपद्मनन्दी मुनिचक्रवर्ती ॥

इन श्लोकोसे यह भ्रम हो जाता है कि ' गृध्रपिच्छ ' यह नाम उमास्वातिका नहीं, किन्तु उनके शिष्यका था और वे संभवतः कुन्दकुन्द ही होंगे। क्योकि पट्टावलीके लेखकने उनका एक नाम यह भी बतलाया है। परन्तु यह केवल भ्रम ही है। उमास्वातिके शिष्यका बलाकपिच्छ नामक प्रधान शिष्य था। इसका वर्णन अनेक स्थानोंमें आया है। चूँकि उमास्वातिका नाम गृध्रपिच्छ था, इसलिए सभव है कि शिष्यत्वके कारण उसे भी लोग गृध्रपिच्छ कहने लगे हों।

तीसरे मतका उल्लेख पं० कल्लापा भरमापा निटवेने संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें किया है। परन्तु यह बिलकुल ही विश्वासके योग्य नहीं है। क्योंकि एक तो इस विषयमें उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया है और दूसरे इन दोनो विद्वानोकी रचनायें जुदा जुदा ढंगकी हैं। एक संस्कृतके और दूसरे प्राकृतके लेखक है; एक गूढ़ दर्शनशास्त्रके प्रणेता हैं और दूसरे शुद्ध अध्यात्मको सरलसे सरल भाषामें समझानेवाले हैं। इस कल्पनाकी उत्पत्ति कि दोनों एक ही थे, संभवतः दोनोंकी विदेहगमनकी कथाओंसे तथा गृध्रपिच्छ नामके भ्रमसे हुई जान पड़ती है।

कुन्दकुन्दके गुरु कौन थे ?

इस विषयमें भी मतभेद है। पट्टावलीके दो श्लोकोंसे—जो पूर्वमें उद्धृत हो चुके है—मालूम होता है कि आचार्य माघनन्दिके शिष्य जिनचन्द्र और जिनचन्द्रके शिष्य या उनके उत्तराधिकारी कुन्दकुन्दाचार्य थे। श्रीब्रह्मदेवने पंचास्तिकायसमयसारकी एक संस्कृतटीका लिखी है। उसकी उत्थानिकामें वे लिखते हैं:—

१– श्रीगृध्रपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छ शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्तिकीर्तिः
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलिमालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥
—श्र० बे० का ४० वाँ लेख।

" अथ श्रीकुमारनन्दिसैद्धान्तिकदेवशिष्यै प्रसिद्ध कथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञसीमन्धरस्वामितीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा च तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवर्णश्रवणादवधारितपदार्थसमूहैः बुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य-देवै पद्मनन्द्यपरनामधेयैरन्तस्तत्त्ववाहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थम् अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधार्थं विरचिते पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते । "

इससे मालूम होता है कि कुन्दकुन्दाचार्य--जिनका कि दूसरा नाम पद्मनन्दि था--कुमारनन्दि सैद्धान्तिकदेवके शिष्य थे, परन्तु ये दोनों मत इतने अर्वाचीन हैं कि इनकी सत्यताके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जासकता । श्रुतावतारमें अर्हद्बलिके बाद माघनन्दि और फिर धरसेनादि गुरुओका वर्णन कर दिया है--माघनन्दिके बाद न जिनचन्द्रका उल्लेख है और न कुमारनन्दिका । श्रवणबेलगुलके लेखोंमे भी कुन्दकुन्दके गुरुका कहीं उल्लेख नहीं है । जगह जगह भद्रबाहु और चन्द्रगुप्तका वर्णन करके फिर कुन्दकुन्दका वर्णन किया गया है और उस वर्णनमें आचार्यपरम्पराका प्रारभ कुन्दकुन्दसे ही किया जाता है । नन्दिसघके वे सबसे पहले आचार्य गिने जाते हैं । यह किसीको भी मालूम नहीं है कि उनके गुरु कौन थे । उनके

१--अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य कुमारनन्दिके शिष्य थे । उनका दूसरा नाम पद्मनन्दि था । उनके विषयमें यह कथा प्रसिद्ध है कि वे एक बार पूर्व विदेहको गये । वहाँ सीमन्धरस्वामीके दर्शन करके और उनकी वाणी सुनकर उन्होंने पदार्थोंका स्वरूप समझा । आत्मतत्त्वका सार ग्रहण करके वे लौट आये और तब उन्होंने अन्तस्तत्त्व वहिस्तत्त्वको गौणमुख्यरूपमें प्रतिपादन करनेके लिए अथवा शिवकुमार महाराजादि सक्षेपरुचि शिष्योंको समझानेके लिए पंचास्तिकाय प्राभृतकी रचना की ।

बनाये हुए अनेक ग्रन्थ प्रचलित है; परन्तु उनमे मंगलचरणादिमें अपने गुरुका उल्लेख उन्होंने कहीं भी नहीं किया है।

शिष्यपरम्परा।

आचार्य कुन्दकुन्द नन्दिसंघ या नन्दिगणके प्रथम अचार्य थे। श्रवणबेलगुलमे ४७ नं० का एक विशाल शिलालेख है। वह ई० स० १११५ के लगभगका लिखा हुआ है। उसमें उनकी शिष्य-परम्पराका विस्तृत उल्लेख है। स्थानाभावसे उसे उद्धृत न करके यहाँ उसके प्रारंभके अंशका सार दे दिया जाता है:—

"श्रीपद्मनन्दिका दूसरा नाम कुन्दकुन्दाचार्य था। उच्च चारित्रके प्रभावसे उन्हे चारण ऋद्धि प्राप्त हो गई थी। उनके शिष्य उमास्वाति थे, जिनका दूसरा नाम गृध्रपिच्छाचार्य था। उनकी (पद्मनंदिकी) अन्वयमें उमास्वातिके समान दूसरा विद्वान् न था। गृध्रपिच्छके शिष्य **बलाकपिच्छ** हुए। बड़े बडे राजा उन्हें नमस्कार करते थे। उनके शिष्य **गुणनन्दि** पण्डित यति हुए, जो तर्क, व्याकरण, साहित्य आदिके धुरन्धर विद्वान् थे। उनके ३०० शिष्य थे जिनमे ७२ प्रधान थे। उनमें भी **देवेन्द्र** मुनि सर्वश्रेष्ठ हुए। वे बड़े भारी व्याख्याता, नय प्रमाणके ज्ञाता और सैद्धान्तिक थे। उनके शिष्य **कलधौतनन्दि** (कनकनन्दि ?) सिद्धान्तचक्रवर्ती और वाक्कामिनीवल्लभ हुए। उनके पुत्र मदनशंकर या **महेन्द्रकीर्ति** हुए। उनके शिष्य **वीरनन्दि** हुए। वे बड़े भारी कवि, गमक, महावादी और वाग्मी थे। इत्यादि।"

यही परम्परा ४२ वें लेखमें तथा और भी कई लेखोंमें मिलती है।

मंगराज (तृतीय)कृत शिलालेखमें पद्मनन्दि, उमास्वाति, और बलाक-पिच्छके वर्णनके बाद समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, आदिकी

स्तुति की गई है। परन्तु उसमें यह नहीं लिखा है कि वलाकपिच्छके शिष्य समन्तभद्र थे। अर्थात् समन्तभद्रादि उनकी वंशपरम्परामें तो थे, पर उनके वाद ही नहीं हुए है। इसी प्रकारसे ४० वें शिला-लेखमें भी वलाकपिच्छका वर्णन करके समन्तभद्र और पूज्यपाद आदिका स्तवन किया है और स्पष्ट शब्दोंमें यह लिख दिया है कि ये वलाकपिच्छकी आचार्यपरम्परामें हुए हैं।

पट्टावलीकी परम्परा इन लेखोंसे विलकुल नहीं मिलती। उसके अनुसार कुन्दकुन्दके वादकी परम्परा इस प्रकार है—उमास्वाति, लोहाचार्य, यशःकीर्ति, यशोनन्दि, देवनन्दी (पूज्यपाद) और गुणनन्दि इत्यादि। आश्चर्य नहीं कि पट्ट या गद्दीके भेदसे यह अन्तर पड़ गया हो। अथवा पट्टावलीके कर्त्ताने अनुमानसे ही यह क्रम लिख दिया हो।

स्थान।

श्रुतावतारके लेखानुसार कुन्दकुन्दाचार्य कुण्डकुन्दपुरके रहनेवाले थे और यह स्थान सभवतः कर्णाटक प्रान्तमे है। भद्रवाहुके समयमें जो द्वादशवर्षव्यापी वड़ा भारी अकाल पड़ा था, उसमें भद्रवाहु स्वामीके साथ मुनियोंका वड़ा भारी सघ कर्णाटक देशमे चला गया था और उसके वाद ही दिगम्वर और श्वेताम्वर दो जुदा जुदा भेद हो गये थे। ऐसा मालूम होता है कि उक्त भेद हो जानेके वाद दिग-म्वराचार्योंने दक्षिण कर्णाटकको और श्वेताम्वराचार्योंने गुजरात तथा उत्तर भारतको अपना केन्द्रस्थल वना लिया था। इस फूटफाटके कुछ ही समय पीछे कुन्दकुन्दाचार्य हुए है। इससे उनका निवास कर्णाटक प्रान्तमें ही संभवित जान पड़ता है। उनकी शिष्यपरपराके आचार्य

गुणनन्दि, देवेन्द्रादि भी कर्णाटकमें ही हुए है, इस लिए भी अनुमान होता है कि वे कर्णाटक प्रान्तके ही होंगे ।

श्रीयुक्त तात्या नेमीनाथ पांगलने किसी 'ज्ञानप्रबोध' नामक भापाग्रन्थके आधारसे कुन्दकुन्दाचार्यकी एक कथा लिखी है । उसमें उन्हें मालवप्रान्तान्तर्गत वारापुर (बारॉ) के रहनेवाले वतलाया है और उज्जयिनी पट्टका अधिकारी वतलाया है । परन्तु उक्त कथाको छोड़कर इस बातका और कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं है ।

समयविचार ।

नन्दिसंघकी पट्टावलीमें लिखा है कि पौष वदी ८ विक्रम संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य पट्ट पर बैठे । उस समय उनकी अवस्था ३३ वर्षकी थी । ५१ वर्प १० महीने संघका शासन करके वे सवत् १०१ के लगभग स्वर्गवासी हुए । परन्तु विचार करनेसे यह समय विलकुल-कल्पित प्रतीत होता है ।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारके मतसे भगवान् महावीरके निर्वाणके ६८३ वर्प तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही–इसके वाद उसका लोप हो गया । ६८३ वर्पोंका हिसाब इस प्रकार है:—

इंद्रभूति गणधर (केवली)	१२ वर्ष
सुधर्माचार्य ,, ...	१२ वर्प
जम्बूस्वामी ,, ...	३८ वर्ष
विष्णु आदि पाँच श्रुतकेवली	१०० वर्ष
विशाखदत्तादि ग्यारह–अंग–दशपूर्व–पाठी	१८३ वर्ष
नक्षत्रादि ग्यारह अगके पाठी	२२० वर्ष
सुभद्रादि आचारांगके पाठी	११८ वर्ष
	६८३ वर्ष

हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमे भी यही वात लिखी है कि निर्वाणके ६८३ वर्ष वाद तक अगज्ञानकी प्रवृत्ति रही है। तथा—

त्रय क्रमात्केवलिनो जिनात्परे द्विषष्टिवर्षान्तरभाविनो भवत्।
तत परे पंच समस्तपूर्विणस्तपोधना वर्षशतान्तरे गता॥
त्र्यशीतिके वर्षशते तु रूपयुक् दशैव गीता दशपूर्विण शते।
द्वये च विंशेंगभृतोऽपि पंच ते शते च साष्टादशके चतुर्मुनि॥

भगवज्जिनसेनकृत आदिपुराणके द्वितीय पर्वमें भी (देखो श्लोक १३९ से १५० तक) इसी मतको पुष्ट किया है। तीनों ही ग्रन्थ प्राचीन और प्रामाणिक हैं, इसलिए इस विपयमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वीरनिर्वाण सवत् ६८३ तक अर्थात् विक्रमे सवत् २१३ तक अगज्ञानका अस्तित्व रहा है।

श्रुतावतारके अनुसार "इसके वाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त अगपूर्वके कुछ अशोंके ज्ञाता हुए। इनके पीछे पुण्ड्रवर्धनमें अगपूर्वाशके एक शाखाके जानकार श्रीअर्हद्वलि हुए। इन्होंने नन्दि, सेनादि सघोंकी स्थापना की। इनके वाद माघनन्दि मुनि भी अंगपूर्वांशदेशज्ञ हुए और समाधिपूर्वक स्वर्गवासी हुए। फिर कर्मप्राभृतके ज्ञाता धरसेनाचार्य हुए। उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्तको पढाया। फिर इन दोनोंने कर्मप्राभृतके षट्खण्डशास्त्रोंकी रचना की।

---

१ इस विपयमें अव कोई सन्देह नहीं रहा है कि विक्रमादित्यसे ४७० वर्ष पहले महावीर भगवानका निर्वाण हुआ था। त्रैलोक्यसारादि कई ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे यह वात सिद्ध हो चुकी है। श्वेताम्वर ग्रन्थोंसे भी यही समय निश्चित होता है।

२ पट्टावलीके लेखकके मतसे लोहाचार्यके वाद अर्हद्वलि, माघनन्दि, धरसेन, भूतवलि और पुष्पदन्त भी अगज्ञानी हैं। परन्तु यह ठीक नहीं।

"एक गणधर नामके आचार्य हुए। उन्होंने, यतिवृषभने और उच्चारणचार्यने क्रमशः कषायप्राभृतकी गाथा, चूर्णि और वृत्तिकी रचना की।

"ये दोनों कर्मप्राभृत और कषायप्राभृत सिद्धान्त गुरुपरिपाटीसे कुण्डकुन्दपुरमें पद्मनन्दि मुनिको प्राप्त हुए।"

अर्थात् इन्द्रनन्दिसूरिके मतसे भूतिबलि पुष्पदन्तके और उच्चारणाचार्यके वाद कुन्दकुन्दाचार्य हुए है। कितने वाद हुए हैं, यह नहीं कहा; परन्तु निम्नलिखित श्लोकसे माल्म होता है कि वे उक्त आचार्योंकी मृत्युके कुछ वर्ष वाद हुए हैं। यदि ऐसा न होता, तो ऐसा नहीं कहा जाता कि उन्हें दोनों सिद्धान्त गुरुपरिपाटीसे प्राप्त हुए। वह श्लोक यह है:—

"एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डकुन्दपुरे ॥१६०
श्रीपद्मनन्दिमुनिना........................"

खेदका विषय है कि श्रुतावतारके कर्त्ताको गुणधर और धरसेन आचार्यका पूर्वापरक्रम[1] माल्म नहीं था—यदि उन्होंने उनकी गुरुपरिपाटी वतला दी होती, तो कुन्दकुन्दका समय सहज ही निश्चित हो जाता। तो भी उनके कथनसे यह तो निस्सन्देह कहा जासकता है कि अगपूर्व और उनके अंशोंका ज्ञान धीरे धीरे बराबर कम होता जाता था और इस क्रममें धरसेन और गुणधराचार्य सबसे पिछले थे, जिन्हें अग्रायणी पूर्वान्तर्गत पंचमवस्तुके चौथे कर्मप्राभृतका तथा ज्ञानप्रवाद पूर्वान्तर्गत दशम वस्तुके तृतीय कषायप्राभृतका ज्ञान था।

---

१ गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभि-
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥ १५१ ॥

—श्रुतावतार।

अर्थात् ये दोनों उस समय हुए हैं, जब अन्तिम अगज्ञानी लोहाचार्य हो चुके थे, उनके बाद चार आरातीय मुनि हो चुके थे और उनके बाद अर्हद्बलि और माघनन्दि हो चुके थे।

लोहाचार्यकी मृत्यु विक्रमसवत् २१३ के लगभग हुई है। अन्तिम अगज्ञानियोंके समान यदि विनयधरादि चार आरातीय मुनि भी केवल १८ वर्षके भीतर हुए मान लिये जावें, उनके बाद अर्हद्बलि और माघनन्दिके १०–१२ वर्ष गिन लिए जावें और उनके बाद धरसेन, भूतबलि, पुष्पदन्त, गुणधर, यतिवृषभ, उच्चारण आदि आचार्योंके होनेमें और उनके ग्रन्थोंके गुरुपरिपाटीद्वारा कुन्दकुन्दतक आनेमें केवल ५० ही वर्ष माने जावे, तो कुन्दकुन्दस्वामीका समय विक्रमकी तीसरी शताब्दिके अन्तिम पादके लगभग निश्चित होता है।

कुन्दकुन्दस्वामी नन्दिसंघके एक सातिशय प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, इस बातको प्रायः सभी मानते हैं और प्राचीन ग्रन्थोंसे भी यह बात सच मालूम होती है। अर्थात् उनके समयमें नन्दिसघ स्थापित हो चुका था और संघोके स्थापक अर्हद्बलि हुए हैं। नन्दिसंघकी गुर्वावलीसे यह भी मालूम होता है कि कुन्दकुन्द नन्दिसघके तीसरे आचार्य थे, अर्थात् उनके पहले माघनन्दि और जिनचन्द्र हो चुके थे। इसलिए और नहीं तो कमसे कम अर्हद्बलि और माघनन्दिके बाद तो कुन्दकुन्दको मानना ही पडेगा और यह समय तीसरी शताब्दि-के उत्तरार्ध तक अवश्य जा पहुँचेगा।

एक कथा प्रसिद्ध है कि गिरनार पर्वत पर कुन्दकुन्दस्वामी और श्वेताम्बराचार्योंके बीच विवाद हुआ था और उस समय स्वामीने पाषा-णकी सरस्वतीको वाचाल कर दिया था। यथा:—

पद्मनन्दिगुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणीः ।
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ॥ २६ ॥

—गुर्वावली ।

कुन्दकुन्दगणी येनोज्जयन्तिगिरिमस्तके ।
सोवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ ॥ १४ ॥

—शुभचन्द्रकृत पाडवपुराण ।

इससे माळूम होता है कि कुन्दकुन्दस्वामीके समयमें जैनधर्ममें दिगम्बर श्वेताम्बर भेद हो चुके थे। कुन्दकुन्दस्वामीके षट्पाहुड़ग्रन्थमें भी इस बातका आभास पाया जाता है कि उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय था। यथाः—

णवि सिज्झई वच्छधरो जिणसासणे जइवि होइ तिच्छयरो
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥
जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता ।
घोरं चरिय चरित्तं इच्छीसु ण पव्विया भणिया ॥

—सूत्रपाहुड ।

अर्थात् जिनशासनमें कहा है कि वस्त्रधारी मुनि—चाहे वह तीर्थकर ही क्यों न हो—सीझ नहीं सकता—मुक्त नहीं हो सकता। नग्न या निर्ग्रन्थ मार्ग ही मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है। सम्यग्दर्शनसे शुद्ध स्त्रीको मोक्षमार्ग संयुक्त कही है। वह घोर चारित्रका आचरण कर सकती है, तो भी उसे मोक्षप्राप्तिके योग्य दीक्षा नहीं दी जासकती।

अब यह देखना चाहिए कि दिगम्बर सप्रदायमें श्वेताम्बरसंघकी उत्पत्ति कब मानी है। देवसेनसूरिने अपने दर्शनसारमें निम्नलिखित गाथा दी है—

एकसये छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
सोरट्ठे बलहीये उप्पण्णो सेवडो सघो ॥

अर्थात् विक्रम राजाकी मृत्युके पश्चात् १३६ वें वर्षमें सौराष्ट्रके वल्लभीपुरमें श्वेताम्बरसंघकी उत्पत्ति हुई। भद्रबाहुचरितमें रत्ननन्दिने भी यही समय बतलाया है।

दर्शनसारमें जिस विक्रमका संवत् दिया है, वह संभवतः शक विक्रम या शालिवाहन है। जैनग्रन्थोंमें शालिवाहन शकको भी विक्रम संवत् लिखनेकी परिपाटी है। इसलिए यदि यह १३६ शक है, तो इसमें १३५ जोडनेसे २७१ विक्रम संवत्के लगभग श्वेताम्बर संघकी उत्पत्ति मानी जासकती है और इसके बाद तीसरी शताब्दिके अन्तमें—जैसा कि श्रुतावतारसे सिद्ध हो चुका है—कुन्दकुन्दाचार्यका समय निश्चित होता है। कमसे कम वि० सं० २१३ के पहले तो उनका होना माना ही नहीं जासकता।

जीवनकथा।

श्रीयुत तात्या नेमिनाथ पागळने मराठीमे कुन्दकुन्दाचार्यका चरित लिखा है। उसमें उन्होंने ज्ञानप्रबोध नामक भाषाग्रन्थके आधारसे एक कथा दी है, जिसका सारांश यह है:—

" मालवाके वारापुर या वारॉ नामक नगरमें कुमुदचन्द्र राजा राज्य करता था। रानीका नाम कुमुदचान्द्रिका था। उसके राज्यमें कुन्द-श्रेष्ठी नामक धनिक व्यापारी अपनी स्त्री कुन्दलताके साथ निवास करता था। कुन्दलताको एक पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया—कुन्दकुन्द। पुत्रकी प्राप्तिसे सेठ और सेठानीके हर्षकी सीमा न रही।

"एक दिन कुन्दकुमार अपने साथी लड़कोंके साथ खेलता खेलता नगरके बाहर उद्यानमें चला गया। वहाँ एक मुनि विराजमान थे और बहुतसे श्रावक उनका पूजन अर्चन वन्दन कर रहे थे। कुछ समयमें मुनिराज धर्मोपदेश देने लगे। बालक ध्यानपूर्वक सुनने लगा। उनके

वचनोंका और ऊँचे चारित्रका उस पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे संसारसे विरक्ति हो गई। उसके हृदयमें मोक्षमार्गके अन्वेषणकी इच्छा प्रबल हो उठी। वह जिनचन्द्रमुनिका शिष्य हो गया और उनके संघके साथ ज्ञानार्जन करता हुआ भ्रमण करने लगा। इस समय उसकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। मातापिताको बहुत दुःख हुआ, परन्तु बेचारे करते क्या?

"कुन्दकुन्दकी गणना जिनचन्द्रके मुख्य शिष्योंमें होने लगी। अन्तमें ३३ वर्षकी अवस्थामे उन्हे आचार्यपद मिल गया। वे धर्मोपदेश देते हुए और आत्मनिरीक्षण करते हुए यतस्तत. विहार करने लगे। एक बार उन्हे जैनधर्मके कुछ सिद्धान्तोंके विषयमें कुछ शंकायें उत्पन्न हुईं, परन्तु उससमय उनका निवारण करनेवाला कोई न था। इस लिए निरुपाय होकर वे तपस्या करने लगे और ध्यानका विशेष अभ्यास करने लगे।

"एक बार ध्यानस्थ होते समय उन्होंने सीमंधरस्वामीको त्रिकरण शुद्धिसे नमस्कार किया। सीमंधर स्वामी विदेहक्षेत्रमें समवसरणसभामें विराजमान थे। उनकी दिव्यध्वनिमें उसी समय 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' यह वाक्य निकला। किसीके प्रश्न करने पर—कि यह आशीर्वाद किसके दिया गया—उतर मिला कि भरतक्षेत्रके अमुक स्थानमें कुन्दकुन्द मुनि है। उन्हे कुछ शंकायें हो रही हैं। उन्होंने इसी समय मुझे नमस्कार किया है, जिसका यह आशीर्वाद दिया गया।

"यह बात दो भाइयोंने सुनी। वे कुन्दकुन्दके पूर्वजन्मके मित्र थे। इस लिए वहाँसे चलकर वे बारॉके उद्यानमें कुन्दकुन्द स्वामीके पास आये और सब समाचार सुनाकर उन्हें अपने विमानमे बिठाकर विदेहक्षेत्रको ले गये।

"मार्गमें मुनिमहाराजकी मयूरपिच्छि गिर गई और तलाश करने पर भी न मिली। लाचार उससमय एक गृध्रपिच्छिसे काम चलाना पड़ा। इसी घटनाके कारण पीछे गृध्रपिच्छाचार्यके नामसे उनकी ख्याति हुई।

"विदेह क्षेत्रके मनुष्योंका शरीर ५०० धनुष्यका था और कुन्दकुन्दाचार्य ३॥ हाथके थे। इसलिए वहाँकी समवसरण सभामें इन्हें लोग बडे कुतूहलकी दृष्टिसे देखने लगे। भगवानके कहने पर लोगोंको मालूम हुआ कि ये भरतक्षेत्रके एक मुख्य आचार्य है।

" कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ आठ दिन तक रहे। इस बीचमें उन्होंने अपनी शकाओंका समाधान कर लिया और बहुतसा नवीन ज्ञान सम्पादन किया। लौट कर आते समय वे एक ग्रन्थ साथ लेते आये, जिसमें राजनीति, मत्र आदि नाना विद्याओंका भण्डार था। परन्तु दुर्भाग्यवश वह लवणसमुद्रमें गिरकर नष्ट हो गया! वे अनेक तीर्थोंकी वन्दना करते हुए अपने मित्रोंकी सहायतासे जहाँके तहाँ आ पहुँचे।

" इसके बाद वे धर्मोपदेश करते हुए धर्मका प्रसार करने लगे। लगभग ७०० पुरुषोंने और बहुतसी स्त्रियोंने उनके निकट जिनदीक्षा धारण की। कुछ समय पीछे गिरनार पर्वत पर श्वेताम्बरियों और दिगम्बरियोंका विवाद हुआ। उसमें कुन्दकुन्दस्वामीने वहाँकी ब्राह्मी देवीके मुँहसे यह कहलवा दिया कि—'सत्य पथ निरग्रथ दिगम्बर' और दिगम्बर मत ही प्राचीन मत है।

" अन्तमें उमास्वामीको अपने पद पर स्थापित करके वे तपस्या करने लगे और एक दिन ध्यानस्थ अवस्थामें ही परलोकवासी हो गये।"

इस कथामें कुन्दकुन्दके मातापिताके तथा स्थानादिके जो नाम दिये है, कह नहीं सकते कि वे कहाँ तक ठीक हैं। क्योंकि एक तो यह कथा किसी आधुनिक लेखककी लिखी हुई है और दूसरे कुमुदचद्र राजा कुमुदचन्द्रिका रानी; कुन्दश्रेष्ठी और कुन्दलता सेठानी, ये नाम बिलकुल कल्पित जैसे माळूम होते हैं। आश्चर्य नहीं, जो सेठ और सेठानीके नाम केवल ' कुन्दकुन्द ' नामको अन्वर्थक सिद्ध करनेके लिए ही गढे गये हों। तत्त्वार्थाधिगम भाष्यकी प्रशस्तिमें उमास्वातिकी माताका नाम उमा और पिताका नाम स्वाति लिखा है और इसीलिए उनका नाम उमास्वाति पड़ गया वतलाया है। कुन्द श्रेष्ठी और कुन्दलताके नाम इसीकी छाया पर गढ़े गये जान पड़ते हैं। वास्तवमें कुण्डकुन्द ग्रामके कारण ही पद्मनन्दिका नाम कुन्दकुन्द प्रसिद्ध हुआ है जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। कुन्दलता और कुन्दश्रेष्ठीके नामोंका उल्लेख किसी प्राचीन ग्रन्थमे या शिलालेखादिमे भी नहीं मिलता।

इस कथाके इस अशकी साक्षी और भी कई स्थानोंमें मिलती है कि कुन्दकुन्दस्वामी विदेह क्षेत्रको गये थे। देवसेनसूरिका दर्शनसार संवत् ९०९ का लिखा हुआ है। उसमें एक जगह लिखा है:—

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा, कहं सुमग्गं पयाणंति॥

अर्थात् यदि पद्मनन्दिनाथ, सीमधर स्वामीके दिव्यज्ञानके द्वारा उपदेश न देते—न समझाते, तो श्रमण या मुनिजन सुमार्गको कैसे जानते? इससे माळूम होता है कि आजके समान नववीं दशवीं शताब्दीमें भी यह विदेहक्षेत्रगमनकी वात प्रसिद्ध थी।

पचास्तिकाय टीकाकी उत्थानिकामे ब्रह्मदेवने भी इस प्रसिद्ध कथाका उल्लेख किया है। (यह उत्थानिका इसी लेखके पृष्ठ (३७४-७५) में उद्धृत की जा चुकी है।)

कनड़ी भाषामें 'राजावली' नामका एक ग्रन्थ है। उसमें इसी ढगकी एक कथा पूज्यपाद या देवनन्दिस्वामीके विषयमें भी लिखी है। अर्थात् उसके मतसे पूज्यपाद भी अपनी शंकाओंका निरसन करनेके लिए सीमधर जिनके समवसरणमें गये थे और इसी कारण लोग उनसे 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहने लगे थे।

उमास्वामीके विषयमें भी यही कथा प्रसिद्ध है। वास्तवमें गृध्रपिच्छाचार्य इन्हींका नाम था और इस कथामें जो गृध्रके पखोंकी पिछी ले लेनेकी बात है, वह इन्हींके नामका कारण बतलानेके लिए कही गई है। कुन्दकुन्दाचार्यका नाम गृध्रपिच्छ न था। मालूम होता है, इस बातको न जानकर इस कथाका उक्त अश उमास्वातिकी कथामेंसे ही ले लिया है।

इस समय यह निर्णय करना कठिन है कि विदेह क्षेत्रमें जानेकी बात किसी एकके विषयमें सही है, अथवा तीनोंके विपयमें सही है।

ब्रह्मदेवने पचास्तिकायकी उत्थानिकामें कहा है कि यह ग्रन्थ शिवकुमार महाराजादि सक्षेपरुचि शिष्योंके लिए बनाया गया है। प्रवचनसार टीकाकी उत्थानिकामें श्रीजयसेनाचार्यने भी शिवकुमार महाराजके लिए ग्रन्थ निर्मित होनेका उल्लेख किया है। मालूम नहीं, राजा शिवकुमार कब और कहाँ हुए हैं। प्रो० पाठकने कुछ प्रमाण ऐसे सग्रह किये हैं जिनसे मालूम होती है कि शिवकुमार राजा गुप्तवशी राजाओंके समयमे हुए हैं। संभवतः उनका समय ईसाकी चौथी शताब्दी होगा।

ग्रन्थरचना।

भगवान् कुन्दकुन्दके जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे सब प्राकृत भाषामें हैं। सस्कृतमें उन्होंने कोई ग्रन्थ लिखा है या नहीं, इसका

पता नहीं चलता। उनका यह प्राकृतप्रेम दिखला रहा है कि उनका लक्ष्य अपना पाण्डित्य प्रकट करनेकी ओर नहीं, किन्तु सर्वसाधारणका उपकार करनेकी ओर था। क्यों कि उस समयकी साधारणजनता संस्कृतकी अपेक्षा प्राकृतको सुगमतासे समझ सकती थी। उनके वनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थ उपलब्ध हैं:—

१ समयसार प्राभृत (पाहुड़), २ पचास्तिकाय-प्राभृत, ३ प्रवचनसार प्राभृत, ४ षट्प्राभृत या षट्पाहुड़ (१ दर्शन पाहुड़, २ २ सुत्त पाहुड़, ३ चारित्त पाहुड़, ४ वोध पाहुड़, ५ भाव पाहुड़, ६ मोक्ख पाहुड़), ५ रयणसार, ६ बारह अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा) और ७ नियमसार। इनमेसे पहले छहों ग्रन्थ छप चुके है। सातवॉ ग्रन्थ नियमसार संस्कृतटीका और श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकृत भाषाटीका सहित छप रहा है।

षट्खण्ड सिद्धान्तके आदिके तीन खण्डोंकी एक वड़ी भारी टीका भी कुन्दकुन्दस्वामीकी वनाई हुई है। इस टीकाका प्रमाण १२ हज़ार श्लोक है। इसका उल्लेख श्रुतावतारमें किया गया है; परन्तु इस समय उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कुन्दकुन्द भगवानने सब मिलाकर ८४ पाहुड़ या प्राभृतोंकी रचना की थी। इनमेंसे कुछका उल्लेख तो ऊपर हो चुका है, शेपमेसे इतने पाहुडोंका नाम और भी मालूम हुआ है:-

१ जोणीसार, २ क्रियासार, ३ आराहणासार, ४ लब्धिसार, ५ छपणासार, ६ बंधसार, ७ तत्त्वसार, ८ अंगसार, ९ द्रव्यसार, १० क्रमपाहुड, ११ पयपाहुड़, १२ विद्यापाहुड, १३ उधातपाहुड़, १४ दृष्टिपाहुड़, १५ सिद्धातपाहुड, १६ तोयपाहुड, १७ चरणपाहुड़ १८ समवायपाहुड़, १९ नयपाहुड, २० प्रकृतिपाहुड़, २१ चूर्णीपाहुड,

१ देखो, इस लेखके प्रारभके ' एवं द्विविधो ' आदि श्लोक।

२२ पचवर्गपाहुड़, २३ कर्मविपाकपाहुड, २४ वस्तुपाहुड, २५ बुद्धिपाहुड २६ पयद्धपाहुड, २७ उत्पादपाहुड, २८ दिव्वपाहुड़, २९ सिक्खापाहुड, ३० जीवपाहुड, ३१ आचारपाहुड, ३२ स्थानपाहुड, ३३ प्रमाणपाहुड, ३४ आलापपाहुड, ३५ चूलीपाहुड, ३६ षट्दर्शनपाहुड, ३७ नोकम्मपाहुड, ३८ सठाणपाहुड, ३९ नितायपाहुड, ४० एयतपाहुड़, ४१ विहयपाहुड, ४२ सालमीपाहुड ।

कुन्दकुन्दश्रावकाचार नामका सस्कृत ग्रन्थ भी कुन्दकुन्दस्वामीके नामसे प्रसिद्ध था, परन्तु जाँच करनेसे माळूम हुआ कि यह उनका बनाया हुआ नहीं है। किसी धूर्तने अपने किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिए ' विवेकविलास ' नामक श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थके दो चार श्लोक काट छॉट कर उसे उक्त नामसे प्रसिद्ध कर रक्खा था ।

कुन्दकुन्दस्वामीके जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे सब बहुत ही सुगम और सरल भापामें लिखे गये है । ऐसा माळूम होता है कि वे निरन्तर ही इस बातका ध्यान रखते थे कि मेरी रचना बहुत ही सहज और बोधगम्य हो ।

आपकी रचनामें पहले तीनग्रन्थ (समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार) सर्वशिरोमणि है। इन्हें प्राभृतत्रय, या नाटकत्रय कहते हैं। जैनधर्मका वेदान्त या अध्यात्म इन्हीं तीन ग्रन्थोंमें है। इन ग्रन्थोंको यदि जैनधर्मका जीव या प्राण कहें, तो भी अत्युक्ति न होगी। इनका स्वाध्याय और मनन किये बिना कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने जैनधर्म जान लिया ।

(सनातनजैनग्रन्थमालाके लिए लिखा गया ।)

ग्रन्थपरीक्षा ।

(३)

जिनसेन–त्रिवर्णाचार ।

इस त्रिवर्णाचारका दूसरा नाम ' उपासकाध्ययनसारोद्धार ' भी है; ऐसा इस ग्रंथकी प्रत्येक संधिसे प्रगट होता है । यह ग्रंथ किस समय बना है और किसने बनाया है, इसका पृथक्रूपसे कोई स्पष्टोल्लेख इस ग्रथमें किसी स्थान पर नहीं किया गया है । कोई ' प्रशस्ति ' भी इस ग्रंथके साथ लगी हुई नहीं है । ग्रंथकी सधियोंमें ग्रंथकर्त्ताका नाम कहीं पर ' श्रीजिनसेनाचार्य ' कहीं ' श्रीभगवज्जिनसेनाचार्य ' कहीं ' श्रीजिनसेनाचार्य नामांकित विद्वज्जन ' और कही ' श्रीभट्टारकवर्य जिनसेन ' दिया है । इन संधियोंमेंसे पहली संधि इस प्रकार है:

"इत्यार्षे श्रीमद्भगवन्मुखारविन्दाद्विनिर्गते श्रीगौतमर्षिपदपद्माराधकेन श्रीजिनसेनाचार्येण विरचिते त्रिवर्णाचारे उपासकाध्ययनसारोद्धारे श्रीश्रेणिकमहामंडलेश्वरप्रश्नकथनश्रीमद्वृषभदेवस्य पंचकल्याणकवर्णनद्विजोत्पत्तिभरतराजदृष्टषोडशस्वप्नफलवर्णनं नाम प्रथम पर्व ।

सधियोंको छोड़कर किसी किसी पर्वके अन्तिम पद्योंमें ग्रथकर्ताका नाम ' मुनि जैनसेन ' या ' भट्टारक जैनसेन ' भी लिखा है । परन्तु इस कोरे नामनिर्देशसे इस बातका निश्चय नहीं हो सकता कि यह ग्रंथ कौनसे ' **जिनसेन** ' का बनाया हुआ है । क्योंकि जैन समाजमें ' जिनसेन ' नामके धारक अनेक आचार्य और ग्रथकर्ता हो गये है । जैसा कि आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदय आदि ग्रथोंके प्रणेता **भगवज्जिनसेन**; हरिवंश पुराणके रचयिता **दूसरे जिनसेन**; हरिवंपुराणकी ' प्रशस्ति ' में जिनका जिकर है वे **तीसरे जिनसेन**;

श्रीमल्लिषेणाचार्यप्रणीत महापुराणकी ' प्रशस्ति ' में जिनका उल्लेख है वे **चौथे जिनसेन** और जैनसिद्धान्तभास्कर द्वारा प्रकाशित **पाँचवें जिनसेन**, इत्यादि । ऐसी अवस्थामें विना किसी विशेष अनुसधानके किसीको एकदम यह कहनेका साहस नहीं हो सकता कि यह त्रिवर्णाचार अमुक जिनसेनका बनाया हुआ है । यह भी सभव है कि जिनसेनके नामसे किसी दूसरे ही व्यक्तिने इस ग्रथका सम्पादन किया हो । इसलिए अनुसंधानकी बहुत बडी जरूरत है । ग्रथमें ग्रथकर्ताके नामके साथ कहीं कहीं ' **भट्टारक** ' शब्दका संयोग पाया जाता है, पर यह संयोग इस अनुसधानमें कुछ भी सहायता नहीं देता । क्योंकि ' भट्टारक ' शब्द यद्यपि कुछ कालसे शिथिलाचारी और परिग्रहधारी साधुओं—श्रमणाभासों—के लिए व्यवहृत होने लगा है; परन्तु वास्तवमें यह एक बडा ही गौरवान्वित पद है । शास्त्रोंमें बड़े बडे प्राचीन आचार्यों और तीर्थकरों तकके लिए इसका प्रयोग पाया जाता है । **आदिपुराणमें** भगवज्जिनसेनने भी ' **श्रीवीरसेनइत्यात्त भट्टारकपृथुप्रथः** ' इस पदके द्वारा अपने गुरु '**वीरसेन**' को ' भट्टारक ' पदवीसे विभूषित वर्णन किया है । बहुतसे लोगोंका ऐसा खयाल है कि यह त्रिवर्णाचार आदिपुराणके प्रणेता श्रीजिनसेनाचार्यका,—जिन्हें इस लेखमें आगे बराबर ' **भगवज्जिनसेन** ' लिखा जायगा,—बनाया हुआ है । परन्तु यह केवल उनका खयाल ही खयाल है । उनके पास इसके समर्थनमें ग्रथकी संधियोंमें दिये हुए ' इत्यार्षे ' और ' भगवज्जिनसेन, ' इन शब्दोंको छोडकर और कोई भी प्रमाण मौजूद नहीं है । ऐसे नाममात्रके प्रमाणोंसे कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता । **भगवज्जिनसेनके** पीछे होनेवाले किसी माननीय आचार्यकी कृतिमें भी इस ग्रंथका कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता । इसलिए ग्रथके साहित्यकी जाँचको

छोड़कर कोई भी उपयुक्त साधन इस बातके निर्णयका नहीं है कि यह ग्रंथ वास्तवमे कब बना है और किसने बनाया है।

जिस समय इस ग्रथको परीक्षा दृष्टिसे अवलोकन किया जाता है, उस समय इसमें कुछ और ही रंग और गुल खिला हुआ मालूम होता है। **स्थान स्थान पर ऐसे पद्यों या गद्योंके ढेरके ढेर नजर पड़ते हैं, जो बिलकुल ज्योंके त्यों दूसरे ग्रंथोंसे उठाकर ही नहीं किन्तु चुराकर रक्खे हुए है। ग्रंथकर्ताने उन्हें अपने ही प्रकट किये हैं।** और तो क्या, मंगलाचरण तक भी इस ग्रथका अपना नहीं है। वह भी **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** ग्रथसे उठाकर रक्खा गया है। यथाः—

> **तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायै।**
> **दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र॥ १॥**
> **परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।**
> **सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥ २॥**

पाठकगण इसीसे समझ सकते है कि यह ग्रथ **भगवज्जिनसेनका** बनाया हुआ हो सकता है या कि नहीं। जैनसमाजमें **भगवज्जिनसेन** एक बड़े भारी विद्वान् आचार्य हो गये हैं। उनकी अनुपम काव्यशक्ति और अगाध पांडित्यकी बड़े बड़े विद्वानो, आचार्यों और कवियोंने मुक्त कंठसे स्तुति की है। जिन विद्वानोंको उनके बनाये हुए संस्कृत **आदिपुराण** और **पार्श्वाभ्युदय** काव्यादिकोंके पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे अच्छी तरह जानते है कि भगवज्जिनसेन कितने बडे प्रतिभाशाली विद्वान् हुए है। कविता करना तो उनके लिए एक प्रकारका खेल था। तब क्या ऐसे कविशिरोमणि मगलाचरण तक भी अपना बनाया हुआ न रखते? यह कभी हो नहीं सकता। पाठकोंको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि जिस ग्रं-

थसे उपर्युक्त मगलाचरणके दोनों पद्य उठाकर रक्खे गये है, उस ग्रथका भगवज्जिनसेनके समयमें अस्तित्व भी न था । भगवज्जिनसेन विक्रमकी ९ वीं शताब्दीमें हुए हैं और 'पुरुपार्थसिद्ध्युपाय' ग्रथ श्री-अमृतचंद्रसूरिद्वारा विक्रमकी १० वीं शताब्दीके लगभग बना है। त्रिवर्णाचारके सम्पादकने इस पुरुपार्थसिद्ध्युपायसे केवल मगलाचरणके दो पद्य ही नहीं लिये, बल्कि इन पद्योंके अनन्तरका तीसरा पद्य भी लिया है, जिसमें ग्रथका नाम देते हुए परमागमके अनुसार कथन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है । यथा:—

"लोकत्रयैकनेत्रं निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन ।
अस्माभिरुपोद्ध्रियते विदुषां पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम् ॥ ३ ॥

इस पद्यसे साफ़ तौर पर चोरी प्रगट हो जाती है और इसमे कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि ये तीनों पद्य पुरुपार्थसिद्ध्युपाय ग्रथसे उठाकर रक्खे गये हैं। क्योंकि इस तीसरे पद्यमें स्पष्टरूपसे ग्रंथका नाम ' पुरुपार्थसिद्ध्युपाय ' दिया है । यद्यपि इस पद्यको उठाकर रखनेसे ग्रथकर्ताकी योग्यताका कुछ परिचय जरूर मिलता है । परन्तु वास्तवमें इस त्रिवर्णाचारका सम्पादन करनेवाले कैसे योग्य व्यक्ति थे, इसका विशेप परिचय, पाठकोंको इस लेखमें, आगे चलकर मिलेगा । यहाँ पर, इस समय, कुछ ऐसे प्रमाण पाठकोंके सन्मुख उपास्थित किये जाते हैं, जिनसे यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रथ (त्रिवर्णाचार) भगवज्जिनसेनका वनाया हुआ नहीं है और न हरिवंश-पुराणके कर्ता दूसरे जिनसेन या तीसरे और चौथे जिनसेनकाही वनाया हुआ हो सकता है:—

(१) इस ग्रंथके दूसरे पर्वमें ध्यानका वर्णन करते हुए यह प्रतिज्ञा की है कि मै ज्ञानार्णव ग्रथके अनुसार ध्यानका कथन करता हूँ । यथा:—

१ आचार्य अमृतचन्द्र कव हुए हैं, इसका कोई सुदृढ प्रमाण नहीं है।

"ध्यानं तावदहं वदामि विदुषां ज्ञानार्णवे यन्मतम् (२-३)"

ज्ञानार्णव ग्रंथ, जिसमें ध्यानादिका विस्तारके साथ कथन है, श्री **शुभचंद्राचार्य**का बनाया हुआ है। शुभचद्राचार्य विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमे धाराधीश महाराज **भोज**के समयमें हुए है। इससे स्वयं ग्रंथमुखसे ही प्रगट है कि यह त्रिवर्णाचार ज्ञानार्णवके पीछे बना है और इसलिए भगवज्जिनसेनका बनाया हुआ नहीं हो सकता। और न हरिवशपुराणके कर्ता दूसरे जिनसेन या तीसरे जिनसेनका ही बनाया हुआ हो सकता है। क्योंकि हरिवंशपुराणके कर्ता **श्रीजिसेनाचार्य** भगवाजिनसेनके प्रायः समकालीन ही थे। उन्होंने **हरिवंशपुराण**को शक सवत् ७०५ (वि० सं० ८४०) में बनाकर समाप्त किया है। जब हरिवंशपुराणसे बहुत पीछे बननेके कारण यह ग्रंथ हरिवंशपुराणके कर्ताका बनाया हुआ नहीं हो सकता, तब यह स्वतः-सिद्ध है कि हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें हरिवंशपुराणके कर्तासे पहले होनेवाले जिन तीसरे जिनसेनका उल्लेख है, उनका भी बनाया हुआ नहीं हो सकता।

(२) ग्रन्थके चौथे पर्वमे एक पद्य इस प्रकार दिया है:—

"प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः।
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्॥
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वम्।
जल्पं जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥ १२७॥"

यह पद्य **श्रीवादिराजसूरि**रचित 'एकीभाव' स्तोत्रका है। वहींसे उठाकर रक्खा गया है। वादिराजसूरि विक्रमकी ११ वीं

---

१ ज्ञानार्णवके प्रारभमें जिनसेन स्वामीको नमस्कार किया गया है।

—सम्पादक।

शताब्दीमें हुए है । उन्होंने शक सवत् ९४८ (वि. सं. १०८३) में 'पार्श्वनाथचरितकी रचना की है। इस लिए यह त्रिवर्णाचार उनसे पीछेका वना हुआ है और कदापि दो शताब्दी पहले होनेवाले भगवज्जिनसेनादिका वनाया हुआ नहीं हो सकता ।

(३) इस ग्रथमें अनेक स्थानों पर गोम्मटसारकी गाथायें भी पाई जाती है। १४ पर्वमें आई हुई गाथाओंमेंसे एक गाथा इस प्रकार हैः—

"पयंत वुद्धदरसी विवरीओ वंभतावसो विणओ।
इंद्रोविय संसयिदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥ १२ ॥

यह गाथा गोम्मटसारमे नम्वर १६ पर दर्ज है । गोम्मटसार ग्रथ श्रीनेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्तीका वनाया हुआ है, जो कि महाराजा चामुंडरायके समयमें विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं । महाराजा चामुंडरायका जन्म शक संवत् ९०० (वि. स. १०३५) में हुआ था । इससे भी यह त्रिवर्णाचार भगवज्जिनसेनादिसे वहुत पीछेका वना हुआ सिद्ध होता है ।

(४) इस ग्रंथके चौथे पर्वमें, एक स्थान पर ग्रन्थोंको और दूसरे स्थानपर ऋषियोंको तर्पण किया है। ग्रथोंके तर्पणमें आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, और गोम्मटसारको भी अलग अलग तर्पण किया है । ऋषियोंके तर्पणमें प्रथम तो लोहाचार्यके पश्चात् 'जिनसेन' को तर्पण किया है (जिनसेनस्तृप्यता ।), फिर वीरसेनके पश्चात् 'जिनसेन'का तर्पण किया है और फिर नेमिचन्द्र तथा गुणभद्राचार्यका भी तर्पण किया है । १० वे पर्वमें जिनसेन मुनिकी स्तुति भी लिखी है और चौथे पर्वके एक श्लोकमें जिनसेनका हवाला दिया है । यथाः—

"सकलवस्तुविकाशदिवाकरं भुविभवार्णवतारणनौसमं।
सुरनरप्रमुखैरुपसेवितं सुजिनसेनमुनिं प्रणमाम्यहम् ॥१०-२॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशु: शत उच्यते।
सहस्रमानस प्रोक्तो जिनसेनादिसूरिभि.॥ ४-१३३॥

इस सब कथनसे भी यही प्रगट होता है कि यह ग्रंथ भगवज्जि-नसेन या हरिवंशपुराणके कर्ता जिनसेनका बनाया हुआ नहीं है। भगवज्जिनसेनके समयमें आदिपुराण अधूरा था, उत्तरपुराणका बनना प्रारभ भी नहीं हुआ था और गोम्मटसार तथा उसके रचायिता श्रीनेमिचंदका अस्तित्व ही न था।

(५) इस ग्रथमें अनेक स्थानों पर एकसंधि भट्टारककृत 'जिन-संहिता'से सैकडों श्लोक उठाकर ज्योंके त्यों रक्खे हुए है। एक स्थान पर (पाँचवे पर्वमें) एकसंधि भट्टारककी बनाई हुई संहिताके अनुसार होमकुडोंका लक्षण वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा भी की है और साथ ही तद्विषयक कुछ श्लोक भी उद्धृत किये है। वह प्रतिज्ञावाक्य और संहिताके दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार है:—

लक्षणं होमकुंडानां वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः।
भट्टारकैकसंधेश्च दृष्ट्वा निर्मलसंहिताम् ॥ १०३॥
त्रिकोणं दक्षिणे कुंडं कुर्याद्वर्तुलमुत्तरे।
तत्रादिमेखलायाश्चाप्यवसेयाश्च पूर्ववत् ॥ (५-११०)
अथ राजन् प्रवक्ष्यामि शृणु भोः जातिनिर्णयम्।
यस्मिन्नेव परिज्ञानं स्यात् त्रैवर्णिकशूद्रयो ॥ (११-२)"

(६) अन्तके दोनों श्लोक ' जिनसंहितामें ' क्रमशः नम्बर २१० और ४३ पर दर्ज है। एकसंधिभट्टारक भगवज्जिनसेनसे बहुत पीछे हुए हैं। उन्होंने खुद अपनी संहितामें बहुतसे श्लोक आदिपुराणसे उठाकर रक्खे है। उनमेसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार है:—

" वांछन्त्यो जीविकां देव त्वां वयं शरणं श्रिता ।
तन्नस्त्रायस्व लोकेश तदुपायप्रदर्शनात् ॥ ४७ ॥
श्रुत्वेति तद्वचो दीनं करुणाप्रेरिताशय ।
मन प्रणिदधावेवं भगवानादिपूरुषः ॥ ४८ ॥

ये दोनों श्लोक आदिपुराणके १६ वें पर्वके हैं। इस पर्वमें इनका नम्बर क्रमशः १३६ और १४२ है। इससे भी प्रगट है कि यह ग्रथ भगवज्जिनसेनका बनाया हुआ नहीं है।

(६) श्रीसोमदेवसूरिविरचित 'यशस्तिलक' श्रीहेमचंद्राचार्यप्रणीत 'योगशास्त्र' और श्री जिनदत्तसूरिकृत 'विवेकविलास'के पद्य भी इस ग्रथमें पाये जाते है, जिनका एक एक नमूना इस प्रकार है·—

क—श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमाशक्ति ।
यत्रैते सप्त गुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥ १४-११९ ॥

यह श्लोक यशस्तिलकके आठवे आश्वासका है।

ख—अह्नो मुखेवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम् १४-८७ ॥

यह योगशास्त्रके तीसरे प्रकाशका ६३ वॉ पद्य है।

ग—शाश्वतानंदरूपाय तमस्तोमैकभास्वते ।
सर्वज्ञाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परमात्मने ॥ ९-१ ॥

यह श्लोक विवेकविलासका आदिम मंगलाचरण है।

श्रीसोमदेवसूरि विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं। उन्होंने विक्रम सवत् १०१६ (शाक सवत् ८८१) में यशस्तिलकको वनाकर समाप्त किया है। श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रजी राजा कुमारपालके समयमे अर्थात् विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमे (स० १२२९ तक) विद्यमान थे और श्वेताम्बराचार्य श्रीजिनदत्तसूरि भी विक्रमकी

१३ वीं शताब्दी में हुए हैं। इन आचार्योंके उपर्युक्त ग्रंथोंसे जब पद्य लिये गये हैं, तब साफ़ प्रगट है कि यह त्रिवर्णाचार उनसे भी पीछे बना है और इस लिए श्रीमल्लिषेणाचार्यकृत ' महापुराण ' की प्रशस्तिमें उल्लिखित मल्लिषेणके पिता चौथे श्रीजिनसेनसूरिका बनाया हुआ भी यह ग्रंथ नहीं हो सकता। क्योंकि मल्लिषेणने शक संवत् ९६९ (वि. स. ११०४) में ' महापुराण'को बनाकर समाप्त किया है।

(७) इस ग्रंथके चौथे पर्वमें एक स्थान पर ' सिद्धभक्तिविधान ' का वर्णन करते हुए दस पद्योंमें सिद्धोंकी स्तुति दी है। इस स्तुतिका पहला और अन्तका पद्य इस प्रकार है:—

" यस्यानुग्रहतो दुराग्रहपरित्यक्तादिरूपात्मन,
सद्द्रव्यं चिदचित्रिकालविषयं स्वैःस्वैरभीक्ष्णं गुणैः ॥
सार्थं व्यंजनपर्ययैः सममवज्ञानाति बोधः स्वयं,
तत्सम्यक्त्वमशेषकर्मभिदुरं सिद्धाः परं नौमि वः ॥ १ ॥
उत्कीर्णामिव वर्तितामिव हृदि न्यस्तामिवालोकय-
न्नेतां सिद्धगुणस्तुतिं पठति यः शाश्वच्छिवाशाधरः
रूपातीतसमाधिसाधितवपुः पात-पतद्दुष्कृत-
व्रातः सोऽभ्युदयोपभुक्तसुकृतः सिद्धे तृतीये भवे ॥ १० ॥

यह स्तुति पंडित आशाधरकृत ' नित्यमहोद्योत ' ग्रंथसे, जिसे बृहच्छांतिकाभिषेक विधान भी कहते हैं, ज्योंकी त्यों उठाकर रक्खी हुई है। इनके दसवें पद्यमें आशाधरजीने युक्तिके साथ अपना नाम भी दिया है। सागारधर्मामृतादि और भी अनेक ग्रंथोंमें उन्होंने इस प्रकारकी युक्तिसे (शिवाशाधरः या बुधाशाधरः लिखकर) अपना नाम दिया है। नित्य महोद्योत ग्रंथसे और भी बहुतसा गद्य पद्य उठाकर रक्खा हुआ है। इसके सिवाय उनके बनाये हुए 'सागरधर्मामृत'

से भी पचासों श्लोक उठाकर रक्खे गये है । उनमेंसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

"नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतस ।
पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः ॥ १४-९ ॥
कुधर्मस्थोऽपि सद्धर्मं लघुकर्मतयाऽद्विषन् ।
भद्रः स देश्यो द्रव्यत्वान्नाभद्रस्तद्विपर्ययात् ॥ १४-११ ॥

ये दोनों श्लोक सागारधर्मामृतके पहले अध्यायमें क्रमशः नम्बर ४ और ५ पर दर्ज है । **आशाधर** विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें हुए हैं । उन्होंने **अनगारधर्मामृत**की टीका वि० स० १३०० के कार्तिक मासमें बनाकर पूर्ण की है । ऐसा उक्त टीकाके अन्तमें उन्हींके वचनोंसे प्रकट है । पंडित आशाधरजीके वचनोंका इस ग्रथमें सग्रह होनेसे साफ़ जाहिर है कि यह त्रिवर्णाचार १३ वीं शताब्दीके पीछे बना है । और इस लिए शताब्दियो पहले होनेवाले भगवज्जिनसेनादिका बनाया हुआ नहीं हो सकता ।

(८) अन्यमतके ज्योतिप ग्रथोंमें **'मुहूर्तचिन्तामणि'** नामका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है । यह ग्रंथ नीलकंठके अनुज **रामदैवज्ञ**ने शक संवत् १५२२ (विक्रम स० १६५७) में निर्माण किया है ।* इस ग्रथ पर सस्कृतकी दो टीकायें हें । पहली टीकाका नाम 'प्रमिताक्षरा' है, जिसको स्वय ग्रथकर्ताने बनाया है और दूसरी टीका 'पीयूषधारा' नामकी है, जिसको नीलकठके पुत्र **गोविन्द** दैवज्ञने शक सवत् १५२५ (वि. सं.

---

* यथा.—"तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकठानुजो ।
गणेशपदपंकज हृदि निधाय रामाभिध ॥
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेपु चद्रैर्मिते (१५२५)।
शाके विनिरमादिम खलु मुहूर्तचिन्तामणिम् ॥ १४-३॥"

१६६०) में बनाकर समाप्त किया है। * इस मुहूर्तचिन्तामणिके संस्कार प्रकरणसे बीसियों श्लोक और उन श्लोकोंकी टीकाओंसे बहुतसा गद्यभाग और पचासों पद्य ज्योंके त्यो उठाकर इस त्रिवर्णाचारके १२ वें और १३ वें पर्वमें रक्खे हुए है। मूल ग्रंथ और उसकी टीकासे उठाकर रक्खे हुए पद्योंका तथा गद्यका कुछ नमूना इस प्रकार है:—

"विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे।
वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे॥
वैश्यानां पुनरष्टमेप्यथ पुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे।
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदितं गौणं तदाहुर्बुधाः॥१३-८॥
कविज्य चंद्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः॥ १३-१९॥
"गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यमिति बहुत्वान्यथानुपपत्यागर्भषष्ठगर्भसप्तमगर्भाष्टमेषु सौरवर्षेष्विति वृत्तिकृद्याख्यानात्त्रयाणामपि नित्यकालता।"

ऊपरके दोनो पद्य मुहूर्तचिन्तामणिके पाँचवे प्रकरणमें क्रमशः नम्बर २९ और ४१ पर दर्ज हैं और गद्यभाग पहले पद्यकी टीकासे लिया गया है। मुहूर्तचिन्तामणि और उसकी टीकाओंसे इस प्रकार गद्यपद्यको उठाकर रखनेमें जो चालाकी की गई है और जिस प्रकारसे, अन्धकारके जमानेमें, लोगोंकी आँखोमें धूल डाली गई है, पाठकोंको उसका दिग्दर्शन आगे चलकर कराया जायगा। यहाँ पर सिर्फ़ इतना बतला देना काफ़ी है कि जब इस त्रिवर्णाचारमें मुहूर्तचिन्तामणि-

---

* जैसा कि टीकाके अन्तमें दिये हुए इसका पद्यसे प्रगट है —
"शाके तत्त्वतिथीमिते (१५२५) युगगुणाब्दो नीलकठात्सभू-
र्दुग्धाब्धि निखिलार्थयुक्तममल मौहूर्तचिन्तामणिम्।
काश्यां वाक्यविचारमदरनगेनामथ्य लेखप्रियाम्।
गोविन्दो विधिविद्वरोऽतिविमलां पीयूषधारा व्यधात्॥६-५॥"

के पद्य और उसकी टीकाओंका गद्य भी पाया जाता है, तब इसमें कोई भी संदेह बाकी नहीं रहता कि **यह ग्रंथ विक्रम संवत् १६६०से भी पीछेका बना हुआ है।**

(२) वास्तवमें, यह ग्रंथ सोमसेनत्रिवर्णाचार (धर्मरसिकशास्त्र) से भी पीछेका बना हुआ है। सोमसेन त्रिवर्णचार भट्टारक **सोमसेन**का बनाया हुआ है।* और विक्रमसवत् १६६७ के कार्तिक मासमें बन कर पूरा हुआ है, जैसा कि उसके निम्नलिखित पद्यसे प्रगट है:—

> "अब्दे तत्त्वरसर्तुचंद्र (१६६७) कलिते श्रीविक्रमादित्यजे।
> मासे कार्तिकनामनीह धवले पक्षे शरत्संभवे॥
> वारे भास्वति सिद्धनामनि तथा योगे सुपूर्णातिथौ।
> नक्षत्रेऽश्वनिनाम्नि धर्मरसिको ग्रन्थश्चपूर्णीकृतः॥१३–२१६॥

जिनसेन-त्रिवर्णाचारमें 'सोमसेनत्रिवर्णाचार' प्रायः ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा हुआ है। कई पर्व इस ग्रंथमें ऐसे हैं जिनमें सोमसेन त्रिवर्णाचारके अध्याय मगलाचरणसहित ज्योंके त्यों नकल किये गये हैं। सोमसेनत्रिवर्णाचारकी श्लोकसख्या, उसी ग्रंथमें अन्तिम पद्यद्वारा, दो हजार सातसौ (२७००) श्लोक प्रमाण वर्णन की है। इस संख्या-मेंसे सिर्फ़ ७२ पद्य छोडे गये है और बीस बाईस पद्योंमें कुछ थोडासा नामादिकका परिवर्तन किया गया है। शेप कुल पद्य जिनसेनत्रिवर्णा-चारमें ज्योके त्यों, जहाँ जब जीमें आया, नकल कर दिये हैं।

सोमसेनत्रिवर्णाचारमें, प्रत्येक अध्यायके अन्तमें, सोमसेन भट्टारकने पद्यमें अपना नाम दिया है। इन पद्योंको जिनसेनत्रिवर्णाचारके कर्ताने कुछ कुछ बदल कर रक्खा है। जैसा कि नीचेके उदाहरणोंसे प्रगट होता है:—

(१) "धन्यः स एव पुरुषः समतायुतो य'।
प्रातः प्रपश्यति जिनेंद्रमुखारविन्दम्॥

---

* इस सोमसेनत्रिवर्णाचारकी परीक्षा भी एक स्वतन्त्र लेख द्वारा की जायगी।
—लेखक।

पूजासुदानतपसि स्पृहणीयचित्तः।
सेव्य सदस्सु नृसुरैर्मुनिसोमसेनैः॥
(सोमसेन त्रि० अ० १ श्लो० ११६)

जिनसेनत्रिवर्णाचारके दूसरे पर्वमें यही पद्य नम्बर ९२ पर दिया है। सिर्फ़ 'मुनिसोमसेनैः' के स्थानमें 'मुनिजैनसेनैः' बदला हुआ है।

(२) शौचाचाराविधि सुचित्वजनक प्रोक्तो विधानागमे
पुंसां सद्व्रतधारिणां गुणवतां योग्यो युगेऽस्मिन्कलौ॥
श्रीभट्टारकसोमसेनमुनिभि स्तोकोऽपि विस्तारतः
प्रायः क्षत्रियवैश्यविप्रमुखकृत् सर्वत्र शूद्रोऽप्रियः॥
(सोम० त्रि० अ० २ श्लो० ११५)

जिनसेनत्रिवर्णाचारमें यही पद्य तीसरे पर्वके अन्तमे दिया है। केवल 'सोमसेन' के स्थानमें उसीके वजनका 'जैनसेन' बनाया गया है। इसी प्रकार नामसूचक सभी पद्योंमें 'सोमसेन' की जगह 'जैनसेन' का परिवर्तन किया गया है। किसी भी पद्यमें 'जिनसेन' ऐसा नाम नहीं दिया है। जिनसेनत्रिवर्णाचारमें कुल १८ पर्व हैं और सोमसेनत्रिवर्णाचारके अध्यायोकी सख्या १३ है। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिनसेनत्रिवर्णाचारके इन १८ पर्वोंमेंसे जिन १३ पर्वोंमें सोमसेनत्रिवर्णाचारके १३ अध्यायोंकी प्रायः नकल की गई है, उन्हीं १३ पर्वोंके अन्तमें ऐसे पद्य आये हैं जिनमें ग्रंथकर्ताका नाम 'सोमसेन' के स्थानमें 'जैनसेन' दिया है; अन्यथा शेष पांच पर्वोंमें—जो सोमसेन त्रिवर्णाचारसे अधिक हैं—कहीं भी ग्रंथकर्ताका नाम नहीं है।

सोमसेन भट्टारकने, अपने त्रिवर्णाचारमें, अनेक स्थानों पर यह प्रगट किया है कि मेरा यह कथन श्रीब्रह्मसूरिके वचनानुसार है—

उन्हींके ग्रंथोंको देखकर यह लिखा गया है। जैसा कि निम्नलिखित पद्योंसे प्रगट होता है:—

" श्रीब्रह्मसूरिद्विजवंशरत्नं श्रीजैनमार्गप्रविबुद्धतत्त्व ।
वाचं तु तस्यैव विलोक्य शास्त्रं कृतं विशेषान्मुनिसोमसेनै ॥
(सोम० त्रि० ३-१४९)

"कर्म प्रतीतिजननं गृहिणां यदुक्तं,श्रीब्रह्मसूरिवरविप्रकवीश्वरेण।
सम्यक् तदेव विधिवत्प्रविलोक्य सूक्तं, श्रीसोमसेनमुनिभिः शुभमंत्रपूर्वम् ॥ " (सो० त्रि० अ० ५ श्लो० अन्तिम)

विवाहयुक्ति कथिता समस्ता संक्षेपतः श्रावकधर्ममार्गात्।
श्रीब्रह्मसूरिप्रथितं पुराणमालोक्य भट्टारकसोमसेनै ॥
(सोम० त्रि० ११-२०४)

वास्तवमें सोमसेनत्रिवर्णाचारमे 'ब्रह्मसूरित्रिवर्णाचार' से बहुत कुछ लिया गया है और जो कुछ उठाकर या परिवर्तित करके रक्खा गया है, वह सब जिनसेनत्रिवर्णाचारमें भी उसी क्रमसे मौजूद हैं। बल्कि इस त्रिवर्णाचारमे कहीं कहीं पर सीधा ब्रह्मसूरित्रिवर्णाचारसे भी कुछ मजमून उठाकर रक्खा गया है जो सोमसेन त्रिवर्णाचारमें नहीं था, जैसा कि छठे पर्वमें 'यत्रलेखनविधि,' इत्यादि। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जिनसेनत्रिवर्णाचारमें उपर्युक्त तीनो पद्योको इस प्रकारसे बदल कर रक्खा है:—

" श्रीगौतमर्षिद्विजवंशरत्न श्रीजैनमार्गे प्रविबुद्धतत्त्व ।
वाचं तु तस्यैव विलोक्य शास्त्रं कृत विशेषान्मुनिजैनसेनै ॥
(पर्व ४ श्लो० अन्तिम)

कर्मप्रतीतिजननं गृहिणां यदुक्तं श्रीगौतमर्षिगणविप्रकवीश्वरेण
सम्यक् तदेवविधिवत्प्रविलोक्य सूक्तं श्रीजैनसेनमुनिभि शुभमंत्रपूर्वम्। (पर्व ७ श्लो० अन्तिम)

---

१ इस ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचारकी परीक्षा भी एक स्वतत्र लेखद्वारा की जायगी।
—लेखक।

विवाहयुक्तिः कथिता समस्ता संक्षेपतः श्रावकधर्ममार्गात् ।
श्रीगौतमर्षिप्रथितं पुराणमालोक्य भट्टारकजैनसेनैः ॥ ”

(पर्व १५ श्लो. अन्तिम)

इन तीनों पद्योंमें सोमसेनके स्थानमें 'जैनसेन' का परिवर्तन तो वही है, जिसका जिकर पहले आचुका है। इसके सिवाय 'श्रीब्रह्मसूरि' के स्थानमें 'श्रीगौतमर्षि' ऐसा विशेष परिवर्तन किया गया है। यह विशेष परिवर्तन क्यों किया गया है और क्यों 'ब्रह्मसूरि' का नाम उड़ाया गया है, इसके विचारका इस समय अवसर नहीं है। ग्रंथकर्ताने इस परिवर्तनसे इतना सूचित किया है कि मैंने श्रीगौतमस्वामीके किसी ग्रंथ या पुराणको देखकर इस त्रिवर्णाचारके ये तीनों पर्व लिखे हैं। श्रीगौतमस्वामीका बनाया हुआ कोई भी ग्रंथ जैनियोंमें प्रसिद्ध नहीं है। श्रीभूतवलि आदि आचार्योंके समयमें भी,–जिस वक्त ग्रंथोंके लिखे जानेका प्रारंभ होना कहा जाता है–गौतम स्वामीका बनाया हुआ कोई ग्रंथ मौजूद न था और न किसी प्राचीन आचार्यके ग्रंथमें उनके बनाये हुए ग्रंथोंकी कोई सूची मिलती है। हाँ, इतना कथन ज़रूर पाया जाता है कि उन्होंने द्वादशांगसूत्रोंकी रचना की थी। परन्तु वे सूत्र भी लगभग दो हज़ार वर्षका समय हुआ तब लुप्त हुए कहे जाते हैं। फिर नहीं मालूम जिनसेन त्रिवर्णाचारके कर्ताका गौतमस्वामिके बनाये हुए कौनसे गुप्त ग्रंथसे साक्षात्कार हुआ था जिसके आधार पर उन्होंने यह त्रिवर्णाचार या इसका ४ था, ७ वाँ और १९ वाँ पर्व लिखा है। इन पर्वोंको तो देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि इनमें आदिपुराण, पद्मपुराण, एकीभावस्तोत्र, तत्त्वार्थसूत्र, पद्मनंदिपंचविंशतिका, नित्यमहाद्योते, जिनसंहिता और ब्रह्मसूरित्रिवर्णाचारादिक तथा अन्यमतके बहुतसे ग्रंथोंके गद्यपद्यकी एक विचित्र खिचड़ी पकाई गई है। परिवर्तनादिककी इन सब बातोंसे साफ़ जाहिर

है कि यह ग्रंथ सोमसेनत्रिवर्णाचारसे अर्थात् विक्रमसंवत् १६६७ से भी पीछेका बना हुआ है। वास्तवमें, ऐसा मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने सोमसेनत्रिवर्णाचारको लेकर और उसमें बहुतसा मजमून इधर उधरसे मिलाकर उसका नाम जिनसेनत्रिवर्णाचार रख दिया है। अन्यथा जिनसेन त्रिवर्णाचारके कर्ता महाशयमें एक भी स्वतंत्र श्लोक बनानेकी योग्यताका अनुमान नहीं होता। यदि उनमें इतनी योग्यता होती, तो क्या वे पाँच पर्वोंमेंसे एक भी पर्वके अन्तमें अपने नामका कोई पद्य न देते और मंगलाचरण भी दूसरे ही ग्रंथसे उठाकर रखते? कदापि नहीं। उन्हें सिर्फ़ दूसरोंके पद्योंमें कुछ नामादिका परिवर्तन करना ही आता था और वह भी यद्वा तद्वा। यही कारण है कि वे १३ पर्वोंके अन्तिम काव्योंमें 'सोमसेन' के स्थानमें 'जैनसेन' ही बदल कर रख सके हैं। जिनसेनका बदल उनसे कहीं भी न हो सका। यहाँ पर जिनसेनत्रिवर्णाचारके कर्त्ताकी योग्यताका कुछ और भी दिग्दर्शन कराया जाता है, जिससे पाठकों पर उनकी सारी कलई खुल जायगी:—

(क) जिनसेन त्रिवर्णाचारके प्रथम पर्वमें ४५१ पद्य है। जिनमेंसे आदिके पाँच पद्योंको छोड़कर शेष कुल पद्य (४४६ श्लोक) भगवज्जिनसेनप्रणीत आदिपुराणसे लेकर रक्खे गये हैं। ये ४४६ श्लोक किसी एक पर्वसे सिलसिलेवार नहीं लिये गये हैं, किन्तु अनेक पर्वोंसे कुछ कुछ श्लोक लिये गये हैं। यदि जिनसेनत्रिवर्णाचारके कर्तामे कुछ योग्यता होती, तो वे इन श्लोकोंको अपने ग्रंथमें इस ढंगसे रखते कि जिससे मजमूनका सिलसिला (क्रम) और सम्बंध ठीक ठीक बैठ जाता। परन्तु उनसे ऐसा नहीं हो सका। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि वे उठाकर रक्खे हुए इन श्लोकोंके अर्थको भी अच्छी

तरह न समझते थे। उदाहरणके तौर पर कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

ततो युगान्ते भगवान्वीर सिद्धार्थनन्दन।
विपुलाद्रिमलं कुर्वन्तेकदास्ताखिलार्थदृक्॥ ६॥
अथोपसृत्य तत्रैन पश्चिमं तीर्थनायकम्।
पप्रच्छामुं पुराणार्थं श्रेणिको विनयानत॥ ७॥
तं प्रत्यनुग्रहं भर्तुरवबुध्य गणाधिप।
पुराणसंग्रहं कृत्स्नमन्वोचत्स गौतमः॥ ८॥
अत्रान्तरे पुराणार्थकोविदं वदतां वरं।
पप्रच्छुर्मुनयो नम्रा गौतमं गणनायकम्॥ ९॥
भगवन्भारते वर्षे भोगभूमिस्थितिच्युतौ।
कर्मभूमिव्यवस्थायां प्रसृतायां यथायथम्॥ १०॥
तदा कुलधरोत्पत्तिस्त्वया प्रागेव वर्णिता।
नाभिराजश्च तत्रान्त्यो विश्वक्षत्रगणाग्रणी॥ ११॥

इन श्लोकोंमेंसे श्लोक नं० ६ मंगलाचरणके बादका सबसे पहला श्लोक है। इसीसे ग्रथके कथनका प्रारभ किया गया है। इस श्लोकमें **'ततो'** शब्द आया है जिसका अर्थ है 'उसके अनन्तर'; परन्तु उसके किसके? ऐसा इस ग्रंथसे कुछ भी मालूम नहीं होता। इस लिए यह श्लोक यहॉ पर असम्बद्ध है। इसका 'ततो' शब्द बहुत ही खटकता है। **आदिपुराणके** प्रथम पर्वमे इस श्लोकका नम्बर १९६ है। वहॉ पर इससे पहले कई श्लोकोंमें महापुराणके अवतारका—कथासम्बधका—सिलसिलेवार कथन किया गया है। उसीके सम्बन्धमे यह श्लोक तथा इसके बादके दो श्लोक नं. ७ और ८ थे।

अन्तके तीनो श्लोक (न. ९–१०–११) आदिपुराणके १२ वें पर्वके है। उनका पहले तीनो श्लोकोंसे कुछ सम्बंध नहीं मिलता।

श्लोक नं. ९ में 'अत्रान्तरे' ऐसा पद इस बातको बतला रहा है कि गौतमस्वामि कुछ कथन कर रहे थे जिसके दरम्यानमें मुनियोंने उनसे कुछ सवाल किया है। वास्तवमें आदिपुराणमें ऐसा ही प्रसग था। वहाँ ११ वें पर्वमे वज्रनाभिका सर्वार्थसिद्धिगमन वर्णन करके १२ वें पर्वके प्रथम श्लोकमें यह प्रस्तावना की गई थी कि अब वज्रनाभिके स्वर्गसे पृथ्वी पर अवतार लेने आदिका वृत्तान्त सुनाया जाता है। उसके बाद दूसरे नम्बर पर फिर यह श्लोक न. ९ दिया था। परन्तु यहाँ पर वज्रनाभिके सर्वार्थसिद्धिगमन आदिका वह कथन कुछ भी न लिखकर एकदम १०-११ पर्व छोडकर १२ वें पर्वके इस श्लोकसे ऐसे कई श्लोक बिना सोचे समझे नकल करडाले है जिनका मेल पहले श्लोकोंके साथ नहीं मिलता। अन्तके ११ वें श्लोकमें 'त्वया प्रागेव वर्णिता' इस पदके द्वारा यह प्रगट किया गया है कि कुलकरोंकी उत्पत्तिका वर्णन इससे पहले दिया जा चुका है। आदिपुराणमें ऐसा है भी। परन्तु इस ग्रथमें ऐसा नहीं किया गया। इस लिए यहाँ रक्खा हुआ यह श्लोक त्रिवर्णाचारके कर्ताकी बे समझी जाहिर कर रहा है।

"देवाद्य यामिनीभागे पश्चिमे सुखनिद्रिता।
अद्राक्षं षोडशस्वप्नानिमानत्यद्भुतोदयान्॥ ७३॥
वदेतेषां फलं देव शुश्रूषा मे विवर्द्धते।
अपूर्वदर्शनात्कस्य न स्यात्कौतुकवन्मनः॥ ७४॥"

इन दोनों श्लोकोंमेंसे पहले श्लोकमें 'इमान्' शब्दद्वारा आगे स्वप्नोंके नामकथनकी सूचना पाई जाती है। और दूसरे पद्यमें 'एतेषां' शब्दसे यह जाहिर होता है कि उन स्वप्नोंका नामादिक कथन कर दिया गया; अब फल पूछा जाता है। परन्तु इन दोनों श्लोकोंके मध्यमें १६ स्वप्नोंका नामोल्लेख करनेवाले कोई भी पद्य नहीं

हैं। इससे ये दोनों पद्य परस्पर असम्बद्ध माऌम होते हैं। आदिपुराणके १२ वें पर्वमें इन दोनों श्लोकोंका नम्बर क्रमशः १४७ और १५३ है। इनके मध्यमें वहाँ पाँच पद्य और दिये हैं; जिनमे १६ स्वप्नोंका विवरण है। ग्रंथकर्ताने उन्हें छोड़ तो दिया, परन्तु यह नहीं समझा कि उनके छोड़नेसे ये दोनों श्लोक भी परस्पर असम्बद्ध हो गये हैं।

" महादानानि दत्तानि प्रीणित प्रणयजिन ।
निर्मापितास्ततो घंटाजिनविम्बैरलंकृता ॥ ३३१ ॥
चक्रवर्ती तमभ्येत्य त्रिप्रीत्य कृतः स्तुतिः
महामहमहां पूजां भक्त्या निर्वर्तयन्स्वयम् ॥ ३३२ ॥
चतुर्दशदिनान्येवं भगवन्तमसेवत ॥ (पूर्वार्ध) ३३३ ॥*

इन पद्योंमेंसे पेहल पद्यका दूसरे पद्यसे कुछ सम्बंध नहीं मिलता। दूसरे पद्यमें 'चक्रवर्ती तमभ्येत्य' ऐसा पद आया है, जिसका अर्थ है 'चक्रवर्ती उसके पास जाकर'। परन्तु यहाँ इस 'उस' (तम्) शब्दसे किसका ग्रहण किया जाय ? इस सम्बन्धको बतलानेवाला कोई भी पद्य इससे पहले नहीं आया है। इसलिए यह पद्य यहाँ पर बहुत भद्दा माऌम होता है। वास्तवमें पहला पद्य आदिपुराणके ४१ वें पर्वका है, जिसमें भरतचक्रवर्तीने दुःस्वप्नोंका फल सुनकर उनका शान्तिविधान किया है। दूसरा पद्य आदिपुराणके ४७ वे पर्वका है और उस वक्तसे सम्बंध रखता है, जब भरतमहाराज आदीश्वरभग-

* पद्य न. ३३१ आदिपुराणके ४१ वें पर्वके श्लोक न. ८६ के उत्तरार्ध और नं. ८७ के पूर्वार्धको मिलकर बना है। श्लोक नं. ३३२ पर्व नं. ४७ के श्लोक न. ३२७ और ३२८ के उत्तरार्ध और पूर्वार्धोंको मिलानेसे बना है। और श्लोक नं. ३३३ का पूर्वार्ध उक्त ४७ वें पर्वके श्लोक नं. ३३८ का उत्तरार्ध है।

वान्की स्थितिका और उनकी ध्वनिके बन्द होने आदिका हाल सुनकर उनके पास गये थे और वहाँ उन्होंने १४ दिन तक भगवान्की सेवा की थी। ग्रंथकर्ताने आदीश्वरभगवान् और भरतचक्रवर्तीका इस अवसर-सम्बन्धी हाल कुछ भी न रखकर एकदम जो ४१ वें पर्वसे ४७ वें पर्वमें छलॉंग मारी है और एक ऐसा पद्य उठाकर रक्खा है जिसका पूर्व पद्योंसे कुछ भी सम्बध नहीं मिलता, उससे साफ ज़ाहिर है कि ग्रथकर्ताको आदिपुराणके इन श्लोकोंको ठीक ठीक समझनेकी बुद्धि न थी।

(ख) इस त्रिवर्णाचारका दूसरा पर्व प्रारभ करते हुए लिखा है कि—

"प्रणम्याथ महावीरं गौतमं गणनायकम्।
प्रोवाच श्रेणिको राजा श्रुत्वा पूर्वकथानकम् ॥ १ ॥
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं देव त्रिवर्णानां समुद्भवम्।
अथेदानीं च वक्तव्यमाह्निकं कर्मप्रस्फुटम् ॥ २ ॥"

अर्थात् राजा श्रेणिकने पूर्वकथानकको सुनकर और महावीरस्वामी तथा गौतम गणधरको नमस्कार करके कहा कि, हे देव! आपके प्रसादसे मैंने त्रिवर्णोंकी उत्पत्तिका हाल तो सुना; अब स्पष्ट रूपसे आह्निक कर्म (दिनचर्या) कथन करने योग्य है। राजा श्रेणिकके इस निवेदनका गौतम स्वामीने क्या उत्तर दिया, यह कुछ भी न बतलाकर, ग्रंथकर्ताने इन दोनों श्लोकोंके अनन्तर ही, 'अथ क्रमेण सामायिकादिकथनम्,' यह एक वाक्य दिया है और इस वाक्यके आगे यह पद्य लिखा है:—

"ध्यानं तावदहं वदामि विदुषां ज्ञानार्णवे यन्मत-
मार्तं रौद्रसधर्म्यशुक्लचरमं दुःखादिसौख्यप्रदम् ॥
पिंडस्थं च पदस्थरूपरहितं रूपस्थनामापरम्।
तेषां भिन्नचतुश्चतुर्विषयजा भेदा परे सन्ति वै ॥ ३ ॥"

ऊपरके दोनों श्लोकोके सम्बंधसे ऐसा मालूम होता कि गौतम स्वामीने इस पद्यसे आह्निक कर्मका कथन करना प्रारंभ किया है और इस पद्यमें आया हुआ ' अहं ' (मै) शब्द उन्हींका वाचक है। परन्तु इस पद्यमें ऐसी प्रतिज्ञा पाई जाती है कि मै ज्ञानार्णव ग्रंथके अनुसार ध्यानका कथन करता हूँ। क्या गौतम स्वामिके समयमे भी ज्ञानार्णव ग्रंथ मौजूद था और आह्निक कर्मके पूछने पर गौतम-स्वामीका ऐसा ही प्रतिज्ञावाक्य हो सकता है ? कदापि नहीं। इस लिए आदिके दोनों श्लोकोका इस तीसरे पद्यसे कुछ भी सम्बंध नहीं मिलता—उपर्युक्त दोनो श्लोक बिलकुल व्यर्थ मालूम होते है—और इन श्लोकोंके रखनेसे ग्रंथकर्ताकी योग्यतामे बट्टा लगता है। यह तीसरा पद्य और इससे आगेके बहुतसे पद्य, वास्तवमे, सोमसेनत्रिवर्णाचारके पहले अध्यायसे उठाकर यहाँ रक्खे गये है।

(ग) इस त्रिवर्णाचारके १३ वे पर्वमें सस्कारोंका वर्णन करते हुए एक स्थानपर ' अथ जातिवर्णनमाह ' ऐसा लिखकर नम्बर २३ से ५९ तक ३७ श्लोक दिये है। इन श्लोकोंमेसे पहला और अन्तके दो श्लोक इस प्रकार है:—

" शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजा —
आचंडालात्तु संकीर्णा अम्बष्ठकरणादय ॥ २३ ॥
प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया।
प्रतिकृतिरर्चा पुंसि प्रतिनिधिरूपमोपमानं स्यात् ॥ ५८ ॥
वाच्यलिंगा समस्तुल्य सदृक्ष सदृश सदृक्।
साधारण समानश्च स्युरुत्तरपदे त्वमी ॥ ५९ ॥ "

इस सब श्लोकोको देकर अन्तमे लिखा है कि, ' इति जातिकथनम् ' इससे विदित होता है कि ये सब ३७ श्लोक ग्रंथकर्ताने जातिप्रकरणके समझ कर ही लिखे हैं। परन्तु वस्तुतः ये श्लोक ऐसे

नहीं है। यदि आदिके कुछ श्लोकोंको जातिप्रकरणसम्बंधी मान भी लिया जाय, तो भी शेष श्लोकोंका तो जातिप्रकरणके साथ कुछ भी सम्बध माळूम नहीं होता; जैसा कि अन्तके दोनों श्लोकोंसे प्रगट है कि एकमें 'प्रतिमा' शब्दके नाम (पर्यायशब्द) दिये है और दूसरेमें 'समान' शब्दके। वास्तवमें ये कुल श्लोक **अमरकोश** द्वितीय काडके 'शूद्र' वर्गसे उठाकर यहाँ रक्खे गये है। इनका विषय शब्दोंका अर्थ है, न कि किसी खास प्रकरणका वर्णन करना। माळूम नहीं, ग्रंथकर्ताने इन अप्रासंगिक श्लोकोको नकल करनेका कष्ट क्यों उठाया।

(घ) इस त्रिवर्णाचारके १२ वें पर्वमें एक स्थान पर, '**अथ प्रसूतिस्नानं**' ऐसा लिखकर नीचे लिखे दो श्लोक दिये है:—

> **" लोकनाथेन संपूज्यं जिनेंद्रपदपंकजम्।**
> **वक्ष्ये कृतोऽयं सूत्रेषु ग्रंथं स्वर्मुक्तिदायकम्॥ १॥**
> **प्रसूतिस्नानं यत्कर्म कथितं यज्जिनागमे।**
> **प्रोच्यते जिनसेनोऽह शृणु त्वं मगधेश्वर॥२॥**

ये दोनों श्लोक बडे ही विचित्र माळूम होते है। ग्रंथकर्ताने इधर उधरसे कुछ पदोंको जोड़कर एक बडा ही असमंजस दृश्य उपस्थित कर दिया है। पहले श्लोकका तो कुछ अर्थ ही ठीक नहीं बैठता,—उसके पूर्वार्धका उत्तरार्धसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं मिलता—रहा दूसरा श्लोक, उसका अर्थ यह होता है कि, 'प्रसूतिस्नान नामका जो कर्म जिनागममें कहा गया है, मैं **जिनसेन कहा जाता है**, हे श्रेणिक राजा तू सुन।' इस श्लोकमें '**प्रोच्यते जिनसेनोऽहं**' यह पद बडा विलक्षण है। व्याकरण शास्त्रके अनुसार 'प्रोच्यते' क्रियाके साथ 'जिनसेनोऽहं' यह प्रथमा विभक्तिका रूप नहीं आसकता और 'जिनसेनोऽहं' के साथ 'प्रोच्यते' ऐसी क्रिया नहीं बन सकती। इसके

सिवाय जिनसेनका राजा श्रेणिकको सम्बोधन करके कुछ कहना भी नितान्त असंगत है। राजा श्रेणिकके समयमें जिनसेनका कोई अस्तित्व ही न था। ग्रंथकर्ताको शब्दशास्त्र और अर्थशास्त्रका कितना ज्ञान था और किस रीतिसे उन्हें शब्दोंका प्रयोग करना आता था, इसकी सारी क़लई ऊपरके दोनों श्लोकोंसे खुल जाती है। इसी प्रकारके और भी बहुतसे अशुद्ध प्रयोग अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं। चौथे पर्वमें, जहाँ नदियोंको अर्घ चढ़ाये गये हैं वहाँ, बीसियो जगह 'नद्यैकोऽर्घः' 'सुवर्णकूलायैकोऽर्घः' तीर्थदेवतायैकोऽर्घः,' इत्यादि अशुद्ध पद दिये गये है; जिनसे ग्रंथकर्ताकी संस्कृत-योग्यताका परिचय मिलता है।

(ङ) इसी १२ वें पर्वमें, 'प्रसूतिस्नान' प्रकरणसे पहले मूल और अश्लेषा नक्षत्रोंकी पूजाका विधान वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है:—

> 'ॐ ठ ठ स्वाहा' ए मंत्र भणी सर्षप तथा सुवर्णसूं अभिषेक कीजे। पाछै दिसि बांधि तत्र भणनं 'ॐ नमो दिसि विदिसि आदिसो। ठऊ दिशउ भ्य. स्वाहा।' ए मंत्र त्रण वार भणीयं ताली ३ दीजइ। आषांड छाली भणीइं पहिलो कह्यो ते एविधि करीनें माता पिता बालकनुं हाथ दिवारी सघली वस्तनइं दान दीजे। पाछै अठावीस नक्षत्र अने नव ग्रहना मंत्र भणीइं माने खोलै बालक बैसारिये। पिता जिमणे हाथ बैसारीइं। पितानै माताना हाथमांहि ज्वारना दाणा देईन मंत्र भणीइं। पहिलो कह्यो ते मंत्र भणीइं। ए विधि करीने माता बालकनुं हाथ दिवारी सघली वस्तुनइ दान दीजे। पूजाना करणहारनै सर्व वस्तु दीजे। पाछै 'ॐ तदुलः' ए मंत्र भणी शांति भणीइं। पाछै जिमण देईनें वालीइ। इति मूल अश्लेषा पूजाविधि समाप्त.।"

संस्कृत ग्रंथमें इसप्रकारकी गुजराती भाषाके आनेसे साफ यह मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताको स्वय सस्कृत बनाना न आता था और जब उनको उपर्युक्त पूजाविधि किसी संस्कृत ग्रंथमें न मिल सकी, तब उन्होंने उसे अपनी भाषामें ही लिख डाला है। और भी दो एक स्थानों पर ऐसी भाषा पाई जाती है, जिससे ग्रंथकर्ताकी निवासभूमिका अनुमान होना भी संभव है।

योग्यताके इस दिग्दर्शनसे, पाठकगण स्वय समझ सकते हैं कि जिनसेन-त्रिवर्णाचारके कर्त्ताको एक भी स्वतत्र श्लोक बनाना आता था कि नहीं।

यहाँ तकके इस समस्त कथनसे यह तो सिद्ध होगया कि, यह-**ग्रंथ (जिनसेनत्रिवर्णाचार) आदिपुराणके कर्ता भगवज्जिनसेन-का बनाया हुआ नहीं है और न हरिवंशपुराणके कर्ता दूसरे जिनसेन या तीसरे और चौथे जिनसेनका ही बनाया हुआ है। बल्कि सोमसेनत्रिवर्णाचारसे बादका अर्थात् विक्रमसंवत् १६६७ से भी पीछेका बना हुआ है।** साथ ही ग्रंथकर्ताकी योग्यताका भी कुछ परिचय मिल गया। परन्तु यह ग्रंथ वि० स० १६६७ से कितने पीछेका बना हुआ है और किसने बना-या है, इतना सवाल अभी और बाकी रह गया है।

जैनसिद्धान्तभास्करद्वारा प्रकाशित हुई और **पुष्करगच्छसे** सम्बन्ध रखनेवाली **सेनगणकी पट्टावली**को देखनेसे मालूम होता है कि भट्टारक **श्रीगुणभद्रसूरि**के पट्ट पर एक सोमसेन नामक भट्टा-रक हुए हैं। सोमसेनत्रिवर्णाचारमें भट्टारक सोमसेन भी अपनेको पुष्करगच्छमें गुणभद्रसूरिके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए बतलाते हैं। इससे पट्टावली और त्रिवर्णाचारके कथनकी समानता पाई जाती है। अर्थात् यह मालूम होता है कि पट्टावलीमें गुणभद्रके पट्ट पर जिन सोमसेन

भट्टारकके प्रतिष्ठित होनेका कथन है उन्हींका सोमसेन त्रिवर्णाचार बनाया हुआ है। इन सोमसेनके पट्ट पर उक्त पट्टावलीमें **जिनसेन भट्टारकके** प्रतिष्ठित होनेका कथन किया गया है। हो सकता है कि जिनसेनत्रिवर्णाचार उन्हीं सोमसेन भट्टारकके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले जिनसेन भट्टारकका सम्पादन किया हुआ हो और इस लिए विक्रमकी १७वीं शताब्दीके अंतमें या १८ वीं शताब्दीके आरंभमें इस ग्रंथका अवतार हुआ हो। परन्तु पट्टावलीमें उक्त जिनसेन भट्टारककी योग्यताका परिचय देते हुए लिखा है कि, वे महामोहान्धकारसे ढके हुए ससारके जनसमूहोसे दुस्तर कैवल्य मार्गको प्रकाश करनेमे दीपकके समान थे और वडे दुर्धर्ष नैय्यायिक कणाद वैय्याकरणरूपी हाथियोंके कुंभोत्पाटन करनेमें लम्पट बुद्धिवाले थे, इत्यादि। यथा:—

"तत्पट्टे महामोहान्धकारतमसोपगूढभुवनभवलग्नजनताभिदुस्तरकैवल्यमार्गप्रकाशकदीपकानां, कर्कशतार्किककणादवैय्याकरणबृहत्कुंभिकुंभपाटनलम्पटधियां, निजस्वस्याचरणकणखंजायिनचरणयुगादेकाणां, श्रीमद्भट्टारकवर्य सूर्यश्रीजिनसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४८ ॥"

यदि जिनसेन भट्टारककी इस योग्यतामें कुछ भी सत्यता है तो कहना होगा कि यह 'जिनसेन त्रिवर्णाचार' उनका बनाया हुआ नहीं है। क्योंकि जिनसेनत्रिवर्णाचारके कर्ताकी योग्यताका जो दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है उससे मालूम होता है कि वे एक बहुत मामूली अदूरदर्शी और साधारण बुद्धिके आदमी थे। और यदि सोमसेन भट्टारकके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले जिनसेन भट्टारककी, वास्तवमें, ऐसी ही योग्यता थी जैसी कि जिनसेनत्रिवर्णाचारसे ज़ाहिर है-पट्टावलीमें दी हुई

---

१ सेनगणकी पट्टावलीका केवल संस्कृत गद्य ही अच्छा है। इतिहासकी दृष्टिसे उसका कुछ अधिक मूल्य नहीं मालूम होता है। उसके कर्त्ता चाहे जिसको चाहे जितना वड़ा वना दे सकते हैं। गुणभद्राचार्यको उन्होंने द्वादशागका ज्ञाता वतला दिया है!! —सम्पादक।

योग्यता नितान्त असत्य है–तो कह सकते हैं कि उन्हीं भट्टारकजीने यह जिनसेनत्रिवर्णाचार बनाया है। परन्तु फिर भी इतना जरूर कहना होगा कि उन्होंने सोमसेन भट्टारकके पट्ट पर होनेवाले जिनसेन भट्टारककी हैसियतसे इस ग्रथको नहीं बनाया है। यदि ऐसा होता तो वे इस ग्रथमें कमसे कम अपने गुरु या पूर्वज सोमसेन भट्टारकका जरूर उल्लेख करते, जैसा कि आम तौर पर सब भट्टारकोंने किया है। और साथ ही उन पद्योंमेंसे **ब्रह्मसूरि**का नाम उडाकर उनके स्थानमें 'गौतमर्षि' न रखते जिनको उनके पूर्वज सोमसेनने बडे गौरवके साथ रक्खा था, वल्कि अपना कर्तव्य समझकर ब्रह्मसूरिके नामके साथ साथ **सोमसेन**का नाम भी और अधिक देते। परन्तु ऐसा नहीं किया गया, इससे ज़ाहिर है कि यह ग्रथ उक्त भट्टारककी हैसियतसे नहीं वना है। वहुत सभव है कि जिनसेनके नामसे किसी दूसरे ही व्यक्तिने इस ग्रथका सम्पादन किया हो, परन्तु कुछ भी हो,–भट्टारक जिनसेन इसके विधाता हों या कोई दूसरा व्यक्ति–इसमें सन्देह नहीं कि जिसने भी इस त्रिवर्णाचारका सम्पादन किया है, उसका अभिप्राय ज़रूर रहा है कि यह ग्रथ सोमसेन और ब्रह्मसूरिके त्रिवर्णाचारोंसे पहला, प्राचीन और अधिक प्रामाणिक समझा जाय। यही कारण है जो उसने सोमसेन त्रिवर्णाचारके अनेक पद्योंमेंसे 'ब्रह्मसूरि' का नाम उडाकर उसके स्थानमें गौतम स्वामीका गीत गाया है और सोमसेन त्रिवर्णाचारका—जिसकी अपने इस ग्रथमें नकल ही नकल कर डाली है—नाम तक भी नहीं लिया है। इसी प्रकार एक स्थानपर पं० आशाधरजीका नाम भी उडाया है, जिसका विवरण इस प्रकार है:—

सोमसेनत्रिवर्णाचारके १० वें अध्यायमें निम्नलिखित चार पद्य पडित आशाधरके हवालेसे '**अथाशाधर**' लिखकर उद्धृत किये गये है। यथा:—

" अथाशाधरः—

स्वयं समुपविष्टोऽद्यात्पाणिपात्रेऽथ भाजने ।
स श्रावकगृहं गत्वा पात्रपाणिस्तदङ्गणे ॥ १४६ ॥
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्वा प्रार्थयेत वा ।
मौनेन दर्शयित्वांगं लाभालाभे समोऽचिरात् ॥ १४७ ॥
निर्गत्यान्यद्गृहं गच्छेद्भिक्षोद्युक्तश्च केनचित् ।
भोजनायार्थितोऽद्यात्तद्भुक्त्वा यद्भिक्षितं मनाक् ॥ १४८ ॥
प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां यावत्स्वोदरपूरणीम् ॥
लभेत प्रासुपात्रान्तस्तत्र संशोध्य तां चरेत् ॥ १४९ ॥"

जिनसेनत्रिवर्णाचारके १४ वें पर्वमें सोमसेनत्रिवर्णाचारके दसवे अध्यायकी मंगलाचरणसहित नकल होनेसे ये चारों पद्य भी उसमें इसी क्रमसे दर्ज हैं। परन्तु इनके आरंभमें ' **अथाशाधरः** ' के स्थानमें ' **अथ समंतभद्रः** ' लिखा हुआ है। वास्तवमें ये चारों पद्य पं० आशाधरविरचित 'सागारधर्मामृत ' के ७ वें अध्यायके है; जिसमे इनका नम्बर क्रमशः ४०,४१,४२,४३ है। **श्रीसमंतभद्रस्वामी** के ये वचन नहीं हैं। स्वामी समतभद्रका अस्तित्व विक्रमकी दूसरी शताव्दीके लगभग माना जाता है। और पं. आशाधरजी विक्रमकी १३ वीं शताव्दीमें हुए हैं। मालूम होता है कि जिनसेन त्रिवर्णाचारके वनानेवालेने इसी भयसे ' **आशाधर** ' की जगह ' **समंतभद्र** ' का नाम वदला है कि, कहीं आशाधरका नाम आजानेसे उसका यह ग्रथ आशाधरसे पीछेका बनाहुआ अर्वाचीन और आधुनिक सिद्ध न हो जाय। यहाँ पर पाठकोके हृदयमें स्वभावतः यह सवाल उत्पन्न हो सकता है कि ग्रंथकर्ताको समंतभद्रस्वामीका झूठा नाम लिखनेकी क्या जरूरत थी, वह वैसे ही आशाधरका नाम छोड़ सकता था। परन्तु ऐसा सवाल करनेकी जरूरत नहीं है। वास्तवमें ग्रंथकर्ताको अपने घरकी इतनी अकल ही नहीं थी। उसने जहाँसे जो वाक्य

उठाकर रक्खे हैं, उनको उसी तरहसे नकल कर दिया है। सिर्फ़ जो नाम उसे अनिष्ट माल्म हुआ, उसको बदल दिया है और जहाँ कहीं उसकी समझमें ही नहीं आया कि यह 'नाम' है, वह ज्योंका त्यों रह गया है। इसके सिवाय ग्रथकर्ताके हृदयमे इस बातका ज़रा भी भय न था कि कोई उसके ग्रंथका मिलान करनेवाला भी होगा या कि नहीं। वह अज्ञानान्धकारसे व्याप्त जैनसमाज पर अपना स्वच्छंद शासन करना चाहता था। इसीलिए उसने आँख बन्द करके अधाधुध, जहाँ जैसा जीमें आया, लिख दिया है। पाठकों पर आगामी अंकमें इसका सब हाल खुल जायगा और यह भी माल्म हो जायगा कि इस त्रिवर्णाचारका कर्ता जैनसमाजका कितना शत्रु था। यहाँ पर इस समय सिर्फ इतना और प्रगट किया जाता है कि इस त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमें एक सकल्प मत्र दिया है, जिसमें संवत् १७३१ लिखा है। वह संकल्प मंत्र इस प्रकार है:—

"ओं अथ त्रैकाल्यतीर्थपुण्यप्रवर्तमाने भूलोके भवनकोशे मध्यमलोके अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मते जम्बूद्वीपके तत्पुरो मेरोर्दक्षिणे भारतवर्षे आर्यखंडे एतदवसर्पिणीकालावसानप्रवर्तमाने कलियुगाभिधानपञ्चमकाले प्रथमपादे श्रीमहति महावीरवर्द्धमानतीर्थकरोपदिष्टसद्धर्मव्यतिकरे श्रीगौतमस्वामीप्रतिपादितसन्मार्गप्रवर्तमाने श्रीश्रेणिकमहामंडलेश्वरसमाचरितसन्मार्गविशेषे सम्वत् १७३१ प्रवर्तमाने अ० संवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे...... ..."

माल्म होता है कि यह संकल्पमत्र किसी ऐसी याददाश्त (स्मरणपत्र) परसे उतारा गया है, जिसमें तत्कालीन व्यवहारके लिए किसीने सवत् १७३१ लिख रक्खा था। नकल करते या कराते समय ग्रन्थकर्ताको इस सवतके बदलनेका कुछ ख़याल न रहा और इस लिए वह

वरावर ग्रंथमें लिखा चला आता है। कुछ भी हो, इस सम्वत्से इतना पता ज़रूर चलता है कि यह ग्रंथ वि० सवत् १६६७ ही नहीं, बल्कि संवत् १७३१ से भी पीछेका बना हुआ है। जहाँ तक मैंने इस विषय पर विचार किया है, मेरी रायमें यह ग्रंथ विक्रमकी अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तका या उससे भी कुछ बादका बना हुआ मालूम होता है और इसका बनानेवाला अवश्य ही कोई धूर्त व्यक्ति था।

जुगलकिशोर मुख़्तार

ता. १२-६-१४. देववंद, जि० सहारनपुर।

विविध प्रसंग।

जैन और वैष्णव अग्रवालोंका सम्बन्ध।

जैनमित्रके ज्येष्ठ शुक्ला २ के अंकमें सम्पादक महाशयका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होने इस बातका उपदेश दिया है कि—"जैन और वैष्णव अग्रवालोंमें जो परस्पर बेटीव्यवहार होता है वह बन्द कर दिया जाय। जैन अग्रवालोकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। प्रान्तीयता और पहनाव उढ़ावके कारण उन्होंने जो अपने ही भीतर कई भेद कर रक्खे है, उन्हे मिटा देना चाहिए और एक छोरसे दूसरे छोर तकके जैन अग्रवालोंमें परस्पर बेटीव्यवहार ज़ारी कर देना चाहिए। वैष्णवोंके साथ सम्वन्ध करनेसे जैन कन्याये वैष्णव हो जाती हैं और वैष्णव कन्यायें जैन घरमें अपना वैष्णव धर्म साथ लिये आती हैं और कुछ समयमें उस घरको वैष्णव बना डालती है। इससे जैनियोकी सख्या घटती जा रही है।" हमारी समझमें ब्रह्मचारीजीने इस विषय पर अच्छी तरह विचार नहीं किया। जैन वैष्णव अग्रवालोंके पुराने सम्बन्धको तोड़नेमें सिवा हानिके कुछ लाभ नहीं है। प्राचीन भारतकी

धार्मिक सहिष्णुताका यह एक बचा बचाया नमूना है। यह बतला रहा है कि पहले हम अपने जुदा जुदा धर्मोंको पालते हुए भी एकता, प्रीति और सहानुभूतिके साथ रहते थे--हमारा पारलौकिक धर्म हमारे ऐहिक सामाजिक कामोंमें बाधक न होता था। राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे यह सम्बन्ध बहुत ही महत्त्वका है। इसे तोड़नेका विचार भी न करना चाहिए, बल्कि कहीं कहींके अग्रवालोंने जो इसे बन्द कर दिया है उनमें फिरसे ज़ारी करा देना चाहिए। जैनधर्मको इससे कोई हानि नहीं पहुँच सकती और जैनियोंकी सख्या घटनेसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि जिस तरह इस सम्बन्धसे बहुतसे जैन कुटुम्ब वैष्णव हो जाते हैं, उसी तरह बहुतसे वैष्णव भी तो जैन हो सकते हैं। यदि जैनीकी लडकी वैष्णवके यहाँ जाकर वैष्णव बन जाती है, तो वैष्णवकी लडकी भी तो जैनीके यहाँ आकर जैनी बन जाती है---ऐसे उदाहरणोंकी भी तो कमी नहीं है। वैष्णव धर्ममें ऐसी कोई खास खूबी नहीं है कि उसके संसर्गसे जैनी बलात् वैष्णव बन जाय और जैनधर्ममें ऐसी कोई कमी नहीं है कि उसके संसर्गसे कोई जैनी न बने। ऐसी भी कोई बात नहीं है कि वैष्णवोंमें धार्मिक चर्चा कुछ अधिकतासे होती हो और जैनियोंमें न होती हो और इसके कारण लोग वैष्णव बन जाते हों, पर जैन न बनते हों। और थोडी देरके लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि वर्तमानमें जैनियोंसे वैष्णव बहुत बन गये हैं, तो इसके लिए और बहुतसे प्रयत्न हो सकते हैं--जातिसम्बन्ध तोड़नेकी क्या जरूरत है? जैनी अग्रवाल भाईयोंको चाहिए कि वे अपनी लडकियोंको जैन-धर्मकी ऊँचे दर्जेकी शिक्षा दें--उनके हृदयमें श्रद्धाका चिरस्थायी बीज डाल दें और ऐसी पक्की बना दें कि वैष्णव घरमे जाकर भी मजबूत बनी रहें; बल्कि अपने अच्छे स्वभाव और अच्छे विचारोंसे उस सारे घरको ही मुग्ध करके जैन बना लें। हमारे हाथमें तो धर्मप्रचा-

रका यह बड़ा भारी ज़रिया है—इससे तो हम अपने धर्मकी आशातीत उन्नति कर सकते है और हममें यदि कुछ करतूत हो, तो सारे अग्र-वालोंको जैन वना सकते हैं। बड़े अफसोसकी वात है कि इस वहुत ही अच्छे द्वारको हम अपने हाथसे वन्द कर देना चाहते हैं। इसी तरह यदि हम अपने कुटुम्बोको शिक्षा, सदाचार आदि गुणोसे आदर्श वना दें, सच्चे जैनधर्मका रूप अपने घरमे खड़ा कर दें, तो कट्टरसे कट्टर वैष्णव कन्या आकर भी हमारे आगे सिर झुका देगी। जैनी अग्रवाल कुछ निर्धन भी नहीं है। यदि डर है कि जैनी वैष्णव वन जावेंगे, तो उन्हे चाहिए कि इसके लिए खास तौरसे दो चार उपदेशक रख लें, जगह जगह धर्मशिक्षा देनेकी व्यवस्था कर दे और धार्मिक साहित्यका विशेष प्रयत्नसे प्रचार करें।

इस विषयमे एक वात हमें अवश्य याद रखना चाहिए कि यदि यह सम्बन्ध चिरस्थायी रखना है तो हमे, इस धार्मिक मामलेमें किसी स्त्री पुरुष पर अनुचित दवाव न डालना चाहिए। हम सिर्फ़ उपदेश दे सकते है, समझा सकते हैं और अपने चरित्रका प्रभाव डाल सकते हैं परन्तु किसी वहू वेटीको ज़वर्दस्ती किसी धर्म पर आरूढ नहीं कर सकते हैं। यह वात जैन और वैष्णव दोनोंहीको सदा स्मरण रखना चाहिए।

इस वातको हम भी आवश्यक और उचित समझते हैं कि जैन अग्रवालोमें प्रान्तीयता या पोशाकके कारण जो सम्बन्ध नहीं होता है, वह जारी कर दिया जाय और इसके लिए जल्द उद्योग किया जाय। परन्तु वैष्णवोंका सम्बन्ध कदापि न तोडा जाय। यह भी याद रखना चाहिए कि इस सम्बन्धके टूटनेसे अग्रवाल भाईयोंका विवाहक्षेत्र वहुत ही संकुचित हो जायगा और फिर उन्हें और और अल्पसख्यक जा-तियोके समान ही वरकन्यानिर्वाचनका कष्ट भोगना पड़ेगा।

ब्रह्मचारीजीने एक जगह लिखा है कि—“पहले भी ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें धर्मका ख़याल बहुधा रहा करता था और प्रायः मिथ्यातीसे सम्बन्ध न किया जाता था।” इसके विरुद्ध सैकड़ों ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं, जिनमें जैनियोंने अजैनोंको अपनी लड़कियाँ दी हैं और अजैनोंसे ली हैं। हमारे कई कथाग्रन्थोंमें ही ऐसी कई घटनाओंका उल्लेख है। दक्षिण और कर्णाटकके पिछले राजाओंके इतिहासमें ऐसे बीसों उदाहरण हैं, जो आवश्यकता होने पर प्रकट किये जा सकते हैं। वास्तवमें समान वर्णकी जातियोंमें पारस्परिक सम्बन्धके समय धर्मकी ओर क्वचित् ही लक्ष्य दिया जाता था।

अन्तमें हम अग्रवाल भाईयोंको आधुनिक समयके इस नियमका स्मरण कराके इस लेखको समाप्त करते हैं कि ‘ससारमें निर्बलोंको जीनेका कोई अधिकार नहीं है।’ यदि तुम बलवान् बन सको—अपनी दुर्बलताके कारणोंको दूर कर सको, तो इस प्राचीन सम्बन्धसे डरनेकी कोई आवश्यकता नही है और यदि निर्बल बने रहना है, तो सम्बन्ध तोड देनेसे भी कुछ न होगा—वैष्णवोंसे बचोगे, तो और कोई तीसरा ही आकर तुम्हे हजम करनेका यत्न करेगा।

२ जैन लाजिककी समाप्ति।

इस लेखका प्रारम्भ २४३८ के ज्येष्ठमें किया गया था और इस अकमें यह पूरा होता है। अर्थात् लगभग दो वर्षमें इसकी समाप्ति हुई। यह डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए, पी. एच. डी. के ‘हिस्ट्री आफ दि मिडिवल स्कूल ऑफ इडियन लाजिक,’ नामक ग्रन्थके एक भाग (जैन भाग) का अनुवाद है। मित्रवर बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीयने जैनहितैषी पर अनुग्रह करके बडे परिश्रमसे इस कठिन कार्यको समाप्त किया है, इसलिए हम आपका हृदयसे आभार मानते हैं। यदि

आप कृपा न करते, तो हमारे पाठक उन महत्त्वकी बातोंसे अज्ञात रहते, जो इस लेखके द्वारा प्रकट हुई हैं। जो सज्जन इतिहास और न्यायमें थोडी बहुत गति रखते हैं, उन्होंने इस लेखको बहुत ही महत्त्वका बतलाया है और वास्तवमें है भी यह ऐसा ही। यदि यह ग्रन्थ इतना अच्छा न होता, तो 'डाक्टर आफ फिलासफी' के कार्समें कभी न रक्खा जाता। इस लेखमें न्यायाचार्योंका जो ऐतिहासिक परिचय दिया गया है, उसके अनेक स्थल हमारे कई पाठकोको अरुचिकर हुए है, बल्कि किसी किसीने तो आक्षेप भी कर डाले है; परन्तु यह पहले ही सूचित कर दिया गया था कि इसमें जो कुछ लिखा जायगा, वह सब मूल लेखकका अभिप्राय होगा; अनुवादक या सम्पादक उसका जिम्मेवार नहीं। अब रहा यह कि ऐसे स्थलों पर अनुवादक या सम्पादक अपना नोट लगा देता, सो हमारी समझमें एक नामी विद्वानकी निश्चय की हुई बातका खण्डन करना सहज काम नहीं—इसके लिए पाण्डित्य और परिश्रम दोनोकी ज़रूरत है। 'ठीक नहीं है' कह देना तो सहज है, पर 'क्यो ठीक नहीं है?' यह लिखना कुछ काम रखता है। अब लेख सम्पूर्ण हो गया है, इसकी जो जो वातें ठीक न हों, विद्वानोंको चाहिए कि परिश्रम करके उनका उत्तर लिखें और पाठकोका भ्रम दूर कर दें। इस लेखको, विशेप करके इसके न्यायविचारको पढते पढते साधारण पाठक ऊब गये थे और दिन भी बहुत हो गये थे, इस लिए हमने इसे शीघ्र समाप्त कर देना उचित समझा और इससे इस अंकमें हम आचार्य हेमचन्द्रके आगेके केवल उतने ही अंशका अनुवाद प्रकाशित करते हैं, जो इतिहाससे सम्बन्ध रखता है—ग्रन्थोके 'न्यायविचार'का अश छोड़ देते है। यदि कभी कोई धर्मात्मा महाशय इसे —दा पुस्तकाकार प्रकाशित करनेकी उदारता दिखलावेंगे, तो उस

समय अनुवादक महाशय इसके छोड़े हुए अशको भी लिख देनेका विश्वास दिलाते हैं।

३ पुराने पुराणोंमें नई मिलावट।

हिन्दुओके अठारह पुराण सुप्रसिद्ध है। साधारण लोग इन सबको श्रीव्यासजीके बनाये हुए समझते है। बहुतसे श्रद्धालु लोग तो यहाँ तक मानते है कि उक्त पुराण जिस रूपमे इस समय मिलते है, ठीक इसी रूपमें व्यासजीके द्वारा रचे गये है—उनकी रचनामें ज़रा भी न्यूनाधिकता नहीं की गई है। परन्तु पुराणोका विचारपूर्वक स्वाध्याय करनेसे इस बातपर विश्वास नहीं होता—उनमें ऐसे सैकड़ों प्रमाण मिलते है जिनसे मालूम होता है कि या तो वे बने ही बहुत पीछे है, या उनमें बहुतसा भाग पीछेसे मिला दिया गया है। धर्मग्रन्थोंमें इस तरह की मिलावटें बहुत की गई है। प्रसिद्ध प्रसिद्ध महात्माओं और ग्रन्थकर्त्ताओंके नामसे लोगोंने अपने सैकड़ों भले बुरे विचार इन ग्रन्थोंमें घुसेड़ दिये है। महाभारतकी श्लोकसख्या इस समय लगभग एक लाख है। परन्तु स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्रने अपने 'कृष्ण चरित'में अनेक युक्तियाँ देकर अच्छी तरह सिद्ध किया है कि मूल महाभारत पच्चीस हजार श्लोकोंसे अधिकका न था। उन्होंने यह बतलानेकी भी चेष्टा की है कि प्रक्षिप्त भागका अमुक अंश अमुक समयमें बना होगा और अमुक अमुक समयमें। अठारह पुराणोंमें 'भविष्यपुराण' भी एक प्रसिद्ध पुराण है। यह भी व्यासजीका बनाया हुआ कहलाता है। इसे यदि हम निरन्तर वृद्धिशील सचेतन पुराण कहें, तो कह सकते हैं। क्योंकि इसका शरीर बराबर वृद्धिको प्राप्त होता जाता है। सुनते हैं कि प्रत्येक सस्करणमें इसका कुछ भाग बढ़ जाता है और संस्करणसमय तकका भविष्यकथन उसमे शामिल हो जाता

है। मराठी विविधज्ञानविस्तारकी मईकी सख्यामें ' भविष्यपुराण व म्लेच्छ' इस नामका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि व्यासजी महाराज इस विचित्र पुराणमे बौद्ध, शक, मुसलमान, छत्रपति शिवाजी, अँगरेज़, और दो चार वायसरायों तकका वर्णन लिख गये हैं! इसाईयोंकी बायविलमें जो आदम और हव्वाके द्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन है, वह इस पुराणमें जैसाका तैसा नकल कर दिया गया है। आदमको अदम, हव्वाको हव्यवती, अदनके बागको प्रदानका रम्य महावन, सेथको श्वेत, इस तरह उक्त ईसाई कथाके नामोको संस्कृतकी पोशाक पहना दी गई है। ईसा मसीहकी उत्पत्ति भी कुछ फेरफार करके लिख दी गई है। 'मुहम्मद'को आपने 'महामद' और उनके 'मदीना'को 'मदहीन' बना डाला है। मुसलमान शब्दका अर्थ आप यह करते हैं कि जिसका संस्कार मुसलसे (मूसलसे) हो, वह मुसलमान है। अँगरेजोंका उल्लेख आपने 'गुरुंड' नामसे किया है। उनके मुँह आप बन्दरों जैसे बतलाते है! महाराणी विक्टौरियाका स्मरण आपने 'विकटावती' नामसे किया है। गुरुंड वंशके सात राजाओंका (वायसरायोंका?) भी उल्लेख है। आपने एक जगह म्लेच्छ भाषाओंका भी वर्णन किया है और उसमें बड़े भारी आश्चर्यकी बात यह है कि ब्रजभाषा और मराठीको भी म्लेच्छ भाषाकी पदवी दे डाली है! (ब्रजभाषाकी कविताके पृष्ठपोषकोंको व्यासजीकी जल्द खबर लेनी चाहिए।)

इसमें सन्देह नहीं कि पुराणानुयायी लोगोंकी अपने पूर्वजोके भविष्यकथन पर इतनी प्रगाढ श्रद्धा है कि वे इस अवस्थामें भी भविष्यपुराणको जाली या बनावटी कहनेके लिए तैयार न होंगे और इसलिए इस विषयमें उनसे कुछ कहना न कहना बराबर होगा; तो

भी जो सज्जन विवेकी और विचारशील हैं, उन्हें सावधान हो जाना चाहिए और पौराणिक साहित्यका अध्ययन केवल श्रद्धा दृष्टिसे नहीं; किन्तु विवेकयुक्त श्रद्धादृष्टिसे करना चाहिए।

४ भारतीय सभ्यताके प्राचीन चिह्न।

तिब्वत, चीन, जापान, श्याम, कम्बोडिया, अनाम, जावा, बाली आदि देश और द्वीप किसी समय भारतकी सभ्यतासे ही सभ्य हुए थे। इस बातके अब तक अनेक प्रमाण मिल चुके हैं। अब यह भी पता लगा है कि किसी समय मध्यएशियाके प्रदेशोंमें भी यहींकी सभ्यताकी तूती बोलती थी। विख्यात पर्यटक और आविष्कारक 'डा० वन् ले कक्' कुछ समयसे चीन–तुर्कस्थानमें जमीनके भीतरसे प्राचीन इतिहासकी सामग्रीकी खोज करनेमें लग रहे थे। उन्होंने अब तक मराळवाशीके निकटके कूवा और टूमशुग नामक स्थानोंमें अपना कार्य किया है। इस प्रयत्नमें उन्हे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। अपनी संग्रहकी हुई सामग्रीको वे बड़े बड़े १९२ बाक्सोंमें बन्द करके देशको भेज चुके हैं! इस सामग्रीमें गान्धार तक्षणशिल्पेक बीसों नमूने मिले हैं। वे पत्थरोंपर नहीं उकीरे गये हैं, किन्तु मिट्टीसे बनाये गये है और उन पर ऊपरसे रेत-चूनेका आस्तर चढ़ाया गया है। बहुतोंके ऊपर अब भी रग और सोनेके पत्र लगे हुए हैं। बहुतसी हस्तलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हुई है जिनमें कुछ संस्कृतभाषामें लिखी हुई हैं और कुछ ईराणकी भाषामें। इस समाचारको लिखते हुए प्रवासीके सम्पादक महाशय लिखते हैं कि "हमारे पूर्व पुरुषोंने पहाड पर्वत समुद्र मरुभूमि पार करके न जाने कितने देशोंमें हिन्दू–सभ्यता फैलाई थी और उनके वशज हम ऐसे है कि अपने देशके ही अज्ञानको दूर नहीं कर सकते है!"

५ सिद्धान्तपाठशालाका स्थायी भाण्डार।

मोरेनाकी सिद्धान्तपाठशालाका नये सिरेसे परिचय करानेकी जरूरत नहीं। सभी जानते है कि यह संस्था जैनसमाजकी एक बड़ी भारी कमीको पूरा कर रही है और अपने ढंगकी अद्वितीय है। जैन धर्मको स्थायी बनाये रखनेके लिए जरूरत है कि उसके वास्तविक तत्त्वों या सिद्धान्तोंका पठनपाठन होता रहे और उनके जाननेवाले, चर्चा करनेवाले और प्रचार करनेवाले विद्वान् बनते रहें। उक्त पाठशाला इसी उद्देश्यसे स्थापित की गई है और अपनी छोटीसी शक्तिके अनुसार वह काम भी कर रही है। अब तक इस पाठशालाका कोई स्थायी भण्डार या ध्रुवफण्ड न था—खास खास लोगोंकी सहायतासे ही चलती थी। पर अब इस तरह काम नहीं चल सकता। इसकी प्रसिद्धि अधिक हो चुकी है, इसलिए दूरदूरके विद्यार्थी पढ़नेके लिए आने लगे हैं। उनकी संख्या बढ़ जानेसे और कई नये अध्यापकोंके रखनेसे खर्च बहुत बढ़ गया है। अब आवश्यक है कि इसके चलानेका स्थायी प्रबन्ध कर दिया जाय। इसके लिए एक स्थायी फण्ड होना चाहिए जिसका कि प्रारंभ इन्दौरके उत्सवमें हो चुका है। एक लाख रुपयेके फण्डसे पाठशालाका काम अच्छी तरह चलने लगेगा। फण्डकी रक्षाके लिए एक ट्रस्ट कमेटी बना दी गई है जिसकी कि शीघ्र ही रजिस्टरी करा दी जायगी। आशा है कि जैनसमाजके धनिकगण इस ओर ध्यान देंगे और बहुत जल्दी इस रकमको पूरी कर देंगे। सर्वसाधाण लोग भी इस फण्डमें सहायता दे सकें, इसके लिए पाठशालाके मंत्री महाशयने 'एक रुपया फण्ड' खोला है। प्रत्येक धर्मात्मा भाईको इस फण्डके सौ सौ पचास पचास टिकट मँगा लेना चाहिए और अपने नगर ग्रामोंमें जितने टिकट बिक सकें उतने, बेचकर पाठशालाकी सहा-

यता करनी चाहिए। एक एक रुपयेसे हजारों रुपये एकट्ठे हो जाते हैं।

६ संस्कृतप्राकृतसाहित्यका प्रकाश-कार्य।

हम इस वातको तो वहुत अभिमानके साथ कहने लगे हैं कि हमारे प्राचीन ऋपिमुनि और विद्वान् हजारों उत्तमोत्तम ग्रन्थ बनाकर रख गये है और उनमें अनेक ऐसे हैं जिनकी जोडके ग्रन्थ दूसरे किसी साहित्यमें नहीं है। परन्तु यह कभी नहीं कहते कि उन ग्रन्थोंका उद्धार करनेके लिए, उनको सर्व साधारणकी दृष्टि तक पहुँचानेके लिए और उनके पठनपाठनका सुभीता कर देनेके लिए हमने क्या किया है। अपने इस प्रमाद पर हमें संकोच भी नहीं होता। हम बडे बड़े विद्यालय और स्कूल स्थापित करनेका उद्योग तो करते हैं, पर यह कभी नहीं सोचते कि विद्यार्थियोंके पढ़नेके लिए आवश्यक ग्रन्थ कहॉसे प्राप्त होंगे? यूनीवर्सिटियोंको दरख्वास्तें तो देते हैं कि औरोंके समान जैनोके साहित्यके भी सस्कृत प्राकृत ग्रन्थ भरती होना चाहिए, पर इसकी चिन्ता कभी नहीं करते कि कालेजोंके विद्यार्थी उक्त पाठ्य ग्रन्थपावेंगे कहॉसे? क्या उनके लिए ईडर और नागौरके भट्टारक अपने भण्डार खाली करना पसन्द करेंगे? हमारा दिगम्बर समाज तो ग्रन्थप्रकाशनके कार्यमें सबसे पीछे पड़ा हुआ है। सच पूछा जाय, तो उसने अपने साहित्यके प्रकाश करनेमें उतना भी प्रयत्न नहीं किया है—जितना कि जैनसाहित्यके रासिक अन्य अजैन सज्जनोंने किया है। अब तक प्रकाशित हुए उच्चश्रेणीके दिगम्बर जैनग्रन्थोंका यदि हिसाब लगाया जाय, तो मालूम होगा कि इस कार्यमें निर्णयसागर प्रेसके स्वामी, श्रीयुक्त टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री, बंगाल एशियाटिक सुसाइटी, आदि जैनेतर महाशयोंके द्वारा जितने ग्रन्थ मुद्रित हुए है,

उनके बराबर भी जैनसमाजके द्वारा नहीं हुए हैं। क्या हमारे लिए यह लज्जाका विषय नहीं है ?

गतवर्ष जब सनातनजैनग्रंथमालाका निकलना शुरू हुआ, तब हमने समझा था कि यह माला स्थायी हो जायगी और इसके द्वारा धीरे धीरे सैकड़ो ग्रंथ प्रकाशित हो जावेगे। जब हमारे श्वेताम्बरी भाईयों द्वारा 'श्रीयशोविजय ग्रन्थमाला' आदि अनेक ग्रन्थमालायें प्रकाशित हो रही है, तब हमारा अपनी इस दिगम्बर समाजकी इकलौती ग्रन्थमालाके स्थायीरूपसे चल निकलनेकी आशा करना स्वाभाविक था। परन्तु ग्रन्थमालाके सम्पादक महाशयसे मालूम हुआ कि इस कामके चलानेके लिए एक उदार महाशयने जो दो हज़ार रुपयेकी रकम दी थी, वह प्रायः खर्च हो चुकी है—उससे केवल एक अंक और निकल सकेगा। अब तक मालाके ८ अंक निकले हैं; किसी तरह ४ अक और निकालकर इसकी 'इति श्री' कर देनी पड़ेगी। जैन समाजका ध्यान इस ओर बहुत कम है और इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अब तक इसके कुल ६० ग्राहक हुए हैं और सौ सौ रुपये देकर पन्द्रह पन्द्रह प्रति लेनेवाले केवल ३ ग्राहक हैं। अब बतलाइए कि लगभग १०० ग्राहकोंके भरोसे यह कष्टसाध्य और द्रव्यसाध्य काम कैसे चल सकता है ?

क्या हम अपने पाठकोंसे इस विषयमें कुछ उद्योग करनेकी आशा कर सकते है ? यदि इस कार्यकी आवश्यकता समझी जाय, तो जैन-समाज इसे बड़ी आसानीसे ज़ारी रख सकता है और थोडे ही दिनोंमें सैकड़ो ग्रन्थ प्रकाशित कर सकता है। नीचे लिखे उपाय ध्यान देने योग्य हैं:—

१. ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, स्याद्वादविद्यालय काशी, सेठ तिलोकचन्द हाईस्कूल इन्दौर, सेठ हुकमचन्द संस्कृत विद्यालय इन्दौर,

सिद्धान्तपाठशाला मोरेना, सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशाला सागर, जैन पाठशाला और बोर्डिंग शोलापुर, आदि कई सस्थायें ऐसी है जहाँके पठनक्रममें संस्कृत ग्रन्थ जारी हैं और जिनमें तीन हजारसे लेकर आठ हजार रुपया तकका वार्षिक खर्च होता है। क्या इन सस्थाओंका यह कर्तव्य नहीं है कि सस्कृत ग्रन्थोंके प्रकाशकार्यमें कुछ सहायता दें? यदि इनके संचालक चाहे, तो उनके लिए अपनी सस्थाकी ओरसे वर्ष भरमें दो सौ चार सौ रुपये लगाकर एक ग्रन्थ प्रकाशित करा देना कोई बडी बात नहीं है। जहॉ लोगोंसे कई हजार रुपया मॉगते हैं, वहॉ दो सौ चार सौ रुपया और भी मॉग लेगे। इसके सिवाय इस कार्यमें घाटा भी नहीं है। आज नहीं, तो पॉच वर्षमें लागतके दाम जरूर उठ आवेंगे। यदि ये सब संस्थायें इस कार्यको आवश्यक समझ लें, तो सनातन ग्रन्थमालाके तमाम ग्रन्थ केवल इन्हीकी सहायतासे प्रकाशित हो सकते है और लोगोंसे सहायता लेनेकी या ग्राहक बढानेका जुदा प्रयत्न करनेकी जरूरत ही नहीं रहती है। हम समझते हैं, इन संस्थाओमें जो लोग धनकी सहायता देते है, वे भी इस कार्यको बुरा न समझेंगे।

२. जो धनी और समर्थ लोग हर्ष शोकके अवसरों पर सैकड़ो हजारो रुपया नामवरीके लिए खर्च करते है, उन्हें इस ओर ध्यान देना चाहिए। ग्रन्थमालाके एक ग्रन्थ, एक अक, अथवा एक ग्रन्थकी दो सौ चार सौ प्रतियोंकी छपाईका खर्च दे देना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। जितनी प्रतियोंका खर्च वे देगें, उतनी प्रतियो पर उनका स्मारक पत्र छपा दिया जायगा। इससे उनका शिक्षित लोगोंमें नाम होगा और साथ ही उन ग्रन्थोंके वितरण करनेका पुण्य भी होगा। गुजरात प्रान्तमें इस पद्धतिसे प्रतिवर्ष सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

३. ग्रन्थमालाके लगभग १०० ग्राहक हो चुके है। ढाई सौ तीन सौ ग्राहक और हो जावे, तो इसका काम मजेमें चल सकता है। यदि दश

दश प्रतियोंके दश, पाँच पाँच प्रतियोंके बीस, दो दो प्रतियोंके पच्चीस ग्राहक बन जावें, तो बातकी बातमें ढाई सौ ग्राहक हो सकते हैं। ऐसे ग्राहकोंके नाम ग्रन्थमालाके आवरण पृष्ठ पर सहायकोंके रूपमें हमेशा छपे रहेंगे। ग्राहकगण चाहे तो अपनी प्रतियोंको जैनसंस्थाओंको भेट दे दिया करे, चाहे विद्वानोंमें वितरण कर दिया करे और चाहे सर्वसाधारणकी लायब्रेरियोंमे भेज दिया करें।

सनातनग्रन्थमालाके विषयमें 'पं० पन्नालालजी जैन, मैदागिनी जैनमन्दिर, बनारस सिटी, के पतेसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

पुस्तक-परिचय।

१६ **गृहिणीभूषण**—लेखक, पं० शिवसहाय चतुर्वेदी। प्रकाशक हिन्दीहितैषी कार्यालय; देवरी जिला सागर। पृष्ठ संख्या १२६। मूल्य आठ आना। कन्यायें जब पत्नी बनती हैं, तबसे लेकर जब वे गृहिणी माता और सन्तानरक्षिका बन जाती है, तबतक काममें आनेवाली सब प्रकारकी अच्छी बातें सिखलानेके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। स्त्रीके पतिके प्रति, मातापिताके प्रति, सन्तानके प्रति, सम्बन्धियोंके प्रति, पड़ौसियोंके प्रति क्या क्या कर्तव्य हैं, उसे अपना स्वभाव, रहन सहन, वर्ताव आदि कैसा रखना चाहिए; सतीत्व, विनय, शिष्टाचार, लज्जाशीलता, गभीरता, संतोष, सद्भाव, चरित आदि गुणोंकी व्याख्या; शरीररक्षा, हिसावकिताव, गर्भरक्षा, सन्तानपालन, गृहकर्म, जाननेकी आवश्यकता; आदि सभी उपयोगी विषयोका इसमें सग्रह है। भाषा भी शुद्ध और सुगम है। जैनसमाजकी स्त्रियोंमें इस प्रकारकी पुस्तकोंके प्रचारकी बहुत आवश्यकता है। हमने इस पुस्तकको आद्यन्त पढ़ा है—प्रायः कोई बात ऐसी नहीं, जो जैन—विचारोंसे प्रतिकूल हो।

१७ मेरे गुरुदेव—लेखक और प्रकाशक वही जो इसके पहलेकी पुस्तकके हैं। जिस समय श्रीयुक्त स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिकामें थे, उस समय उन्होंने न्यूयार्क शहरमें अपने गुरुवर्य श्रीरामकृष्ण परमहसका परिचय देनेके लिए एक व्याख्यान दिया था। इस पुस्तकमें उसी व्याख्यानका हिन्दी अनुवाद है। व्याख्यान बहुत पाण्डित्यपूर्ण और प्रभावशाली है। जैनीभाई भी इसे पढकर लाभ उठा सकते है। ४८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य चार आना कुछ अधिक माळूम होता है।

१८ दासबोध—अनुवादक, पं० माधवराव सप्रे बी. ए. और प० लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, चित्रशाला प्रेस, पूना। पृष्ठ संख्या लगभग ६०० । मूल्य दो रुपया। छत्रपति महाराज शिवाजीके समयमें समर्थ रामदास नामके एक सुप्रसिद्ध साधु हो गये है। शिवाजी महाराज उन्हें अपना गुरु मानते थे और उनके अनन्य भक्त थे। महाराष्ट्र देशका उद्धार करके उसे स्वतंत्र राष्ट्रके रूपमें खड़ा करनेमें समर्थ रामदासके उपदेशोंने बड़ा काम किया था। समर्थ कोरे साधु ही न थे—वे बड़े भारी वेदान्ती होनेके साथ ही बड़े भारी राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने अपने उपदेशों, ग्रन्थों और शिष्योंके द्वारा सारे महाराष्ट्रमें स्वाधीनताके भावोंकी—धर्मराज्य स्थापित करनेके विचारोंकी रूह फूँक दी थी। उन्होंने मराठी भाषामें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनमेंसे दासबोध सबसे प्रसिद्ध है। यह उसी मराठी ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद बड़ी ही सावधानी और विद्वत्तासे किया गया है। ग्रन्थकर्ताका जीवनचरित खूब विस्तारसे और खोजसे लिखा गया है। 'दासबोधकी आलोचना' ३० पृष्ठोंमें लिखी गई है। इसके पढ़नेसे ग्रन्थका महत्त्व, उसकी विशेषतायें, उसमें निरूपण किये हुए

विषय आदि सभी बातोंका ज्ञान हो जाता है। आलोचना पढ़नेसे मालूम होता है कि वह दीर्घकालव्यापी अध्ययन मनन और अन्वेषणका फल है। इस ग्रन्थसे हिन्दी साहित्यमे एक बहुमूल्य रत्नकी वृद्धि हुई है। इसका सम्पादन बडे ही परिश्रमसे किया गया है। इसके धार्मिक विचारोंसे भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसके स्वाध्यायसे हर कोई लाभ उठा सकता है और एक राष्ट्रनिर्माता कविकी प्रतिभासे परिचित हो सकता है। छपाई, सफाई, काग़ज़, जिल्द आदि सभी बाते अच्छी हैं। इतने पर भी मूल्य बहुत कम रक्खा गया है।

१९ विदूषक—प्रकाशक, अध्यक्ष एंग्लो ओरियण्टल प्रेस लखनौ। पृष्ठ सख्या १३२। मूल्य छह आने। लखनौके नागरीप्रचारकमें समय समय पर विदूषककी सहीसे विनोदपूर्ण लेख या चुटकिले छपा करते थे। उनमेंसे चुने चुने लेखोंका संग्रह इस पुस्तकमे कर दिया गया है। सब मिलाकर २१ लेख है। सबही लेखोंमे विनोद और मनोरंजनके साथ कुछ न कुछ शिक्षा है। किसी किसी लेखमें तो बहुत ही विचार योग्य बातें कही गई हैं। सब ही लेख मौलिक है—नकल या अनुवाद नहीं है। इस दृष्टिसे हम इस पुस्तकको विशेष आदरणीय समझते है।

२० भारतगीताञ्जलि—लेखक, पं० माधव शुक्ल। प्रकाशक, पं० रामचन्द्र शुक्ल वैद्य, कूचा श्यामदास, प्रयाग। मूल्य चार आने। देशभक्तिपूर्ण कविताओंके लिखनेमें शुक्लजी बडे सिद्धहस्त है। इस विषयमे आपने बड़ी प्रशसा प्राप्त की है। हिन्दीके अनेक पत्रोमें आपकी कवितायें प्रकाशित हुआ करती है। इस पुस्तकमें आपकी चुनी हुई ७५ रचनाओंका संग्रह है। कोई कोई रचना तो प्रतिदिन पाठ करने योग्य है। हम चाहते है कि इन गीतोकी पवित्र ध्वनिसे

भारतका प्रत्येक घर शब्दायमान हो। नमूनेके तौर पर एक हम गजलको यहाँ उद्धृत किये विना नहीं रह सकते:—

वही धन है जिन्हें धुन देशकी दिलमें समाई है।
है जिनका देशही माता पिता भाई लुगाई है॥
जिन्हें परवा न खानेकी न पीनेकी न सुध तनकी।
जिन्होंने छोड़ घर दर देशहित धूनी रमाई है॥
सतावे लाख चाहे कोई पर उनको सदा सुख है।
जिन्हें आदर निरादर एकसा देता दिखाई है॥
रुलाती है जिन्हें नित देशवन्धोंकी गिरी हालत।
मदद उनकी करो प्यारो। इसीमें ही भलाई है॥

२१ सामान्यनीति काव्य—रचयिता प० हरदीन त्रिपाठी। प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशक समिति काशी। मूल्य तीन आने। इसमें दीन महाशयकी रची हुई १०८ कुण्डलियाँ है। कविता उथली और नीरस है। भाषा भी अच्छी नहीं। अच्छा होता यदि समिति गिरधरकी कुण्डलियोंका सग्रह छपा कर अपने उद्देश्यकी पूर्ति करती।

२२ वनवासिनी—लेखक, प० उदयलालजी काशलीवाल। प्रकाशक, हिन्दी जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय वम्बई। मूल्य चार आना। छोटासा सुन्दर और शिक्षाप्रद उपन्यास है। इसका कथाभाग भी सरस और कुतूहलवर्धक है। हमने इसे गुजरातीमें पढा था। इसका मूल नाम ऋषिदत्ता ही रक्खा जाता, तो अच्छा होता। क्योंकि इसक कथाभाग एक श्वेताम्बर ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। मूल्य कुछ अधिक माळूम होता है।

२३ जैनसाहित्यसीरीज—सत्यवादीके सम्पादक प० उदयलालजी काशलीवालने वावू विहारीलालजीके साथ मिलकर इस ग्रन्थ-

मालाके निकालनेका प्रारंभ किया है। हमें इसके यशोधरचरित और नागकुमारचरित ये दो काव्य समालोचनार्थ प्राप्त हुए हैं। पहला ग्रन्थ श्रीवादिराजसूरिके यशोधर काव्यका और दूसरा मल्लिषेण-सूरिके नागकुमार काव्यका भाषानुवाद है। साथमें मूल ग्रन्थ नहीं है। अनुवाद सरल और मनोरंजक करनेकी कोशिश की गई है। प्रयत्न अच्छा है। हमें आशा है कि जैनसमाज इस सीरीजको अवश्य आश्रय देगा। मूल्य क्रमसे चार और छह आना है। छपाई अच्छी है।

२४ रूपिणी—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुक्त दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे, वर्धा। श्रेणिकचरितकी एक छोटीसी आनुषंगिक कथाके आधारसे इस छोटेसे उपन्यासकी रचना हुई है। " किसी किसानकी एक रूपिणी नामकी स्त्री थी। वह बहुत ही चंचल और चरित्रहीन थी। उसे अपना पति पसन्द न था। बस्तीके एक बदमाशने उसको अपने हाथमे कर लिया और उसके साथ देशान्तरमें भाग जाना चाहा। निश्चय हो गया कि अमुक समय अमुक स्थान पर दोनों मिलें और परदेशको चल दें। रूपिणीको संकेत स्थलकी ओर जाते समय एक युवा मुनिके दर्शन हुए। वह उन पर मोहित हो गई और प्रेमभिक्षा माँगने लगी। मुनिने उसे प्रभावशाली उपदेश दिया। वह उसके मर्म मर्ममें भिद गया। उसने दृढ पातिव्रत ग्रहण कर लिया और अपने घर लौट गई। पीछे बदमाशने उसकी प्राप्तिके लिए अनेक उपाय किये, पर सफलता न हुई। अन्तमें एक महात्माके पाससे एक गुटिका प्राप्त करके उसने अपना रूप बदल लिया और वह रूपिणीका पति बनकर उसके पास गया। परन्तु उसके हाव भावादि देखकर रूपणीको सन्देह हो गया। इतनेमें पति भी आगया। झगड़ा होने लगा। मामला [illegible]कके दरबारमें पहुँचा और बुद्धिमान् अभयकुमारने अपनी विल-

क्षण चतुराईसे दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया । रूपिणी अपने पतिके साथ आनन्दसे रहने लगी।" वस यही इस पुस्तकके आख्यानका सार है। पुस्तक बहुत अच्छे ढंगसे लिखी गई है। इसकी रचना मूल कथासे भी अधिक भावपूर्ण और शिक्षाप्रद हो गई है। एक पुरानी कथाका ऐसा अच्छा रूपान्तर जैनसाहित्यमें शायद यही सबसे पहला है। एक अतिशय पतिता स्त्री भी यदि घृणाकी दृष्टिसे न देखी जाय और दयापूर्ण हृदयसे समझाई जाय, तो एक आदर्श स्त्री बन सकती है—और अपने पूर्वकृत पापोका प्रायश्चित्त करनेका अवसर पा सकती है। यह इस पुस्तककी प्रधान शिक्षा है। मालूम नहीं, आजकलका समाज इसको मानेगा या नहीं। जो भाई मराठी भाषा समझ सकते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। ६४ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य छह आना अधिक है।

२५ ऋग्वेदके बनानेवाले ऋषि—सम्पादक, बाबू सूरजभानु वकील। प्रकाशक, बाबू ज्योतीप्रसाद ए. जे. देवबन्द जिला सहारनपुर। मूल्य छह आने। छापेकी कृपासे अब वेदोंकी प्राप्ति बहुत सुलभ हो गई है। अधिकारका बन्धन भी टूट गया है—जिसके जीमें आवे वही वेदोंको मँगाकर पढ सकता है। इसलिए आजकल पढ़े लिखे लोगोंमे वेदोंकी खूब चर्चा है। जैनसमाजमें भी कुछ समयसे वेदोकी चर्चा होने लगी है। परन्तु यह चर्चा केवल खण्डन मण्डनके अभिप्रायसे होती है और वह खण्डन मण्डन भी बहुत उथला और हलका होता है। यदि ऐसा न होता, तो इस चर्चासे बहुत लाभ होता। लोग यह जानने लगते कि वेद क्या हैं, उनमें क्या लिखा है और उनका इतना महत्त्व क्यों है। हर्ष है कि यह पुस्तक खण्डन मण्डनके ढगसे नहीं लिखी गई है। इसके पढनेसे हमारा वेद-

विषयक ज्ञान बढ़ेगा और हम जान सकेंगे कि वेदोंके बनानेवाले कौन थे। वेद अपौरुपेय नहीं है–ईश्वरप्रणीत नहीं है। वे प्राचीन कालके ऋषियोंके बनाये हुए मंत्रों छन्दों या भजनोंके संग्रह है। कौन मंत्र किस ऋषिका बनाया हुआ है, यह उसी मंत्रसे मालूम हो जाता है। इस पुस्तकमे ऋग्वेदके जितने भागका भाष्य स्वामी दयानन्दजीका किया हुआ है, उतने भागके ऋषियोके नाम और उनके मंत्र बतलाये गये है। इसकी भूमिका यदि कुछ विस्तृत होतीं और इसमें वेदको अपौरुषेय क्यों मानते है, इसके लिए क्या हेतु दिये जाते है, इन हेतुओंमें क्या क्या दोष आते हैं, वर्तमान समयके विद्वानोकी वेदोंके विषयमें क्या राय है, जुदा जुदा भाष्यकार क्या कहते हैं, मंत्रोंमें जो प्रार्थनाये की गई है, उनसे पौरुषेयत्व सिद्ध होता है या नहीं; आदि बातोंका स्पष्टीकरण कर दिया जाता, तो पुस्तक और भी उपयोगी हो जाती। ११२ पेजकी पुस्तकमें १४ पेजका शुद्धिपत्र बहुत बुरा मालूम होता है। सशोधनमे इतना प्रमाद न होना चाहिए था।

२६ शाणी–सुलसा—लेखक, मुनिराज, श्रीविद्याविजयजी। प्रकाशक, शाह हर्षचन्द्र भूराभाई, जैनशासन आफिस भावनगर। महावीर भगवानके समयमे श्रेणिकराजाका 'नाग' नामक धर्मात्मा सारथी था। इसकी सुलसा नामकी पतिव्रता और प्रगाढ़श्रद्धावाली पत्नी थी। सुलसाके कोई पुत्र न था। एक वार उसकी धर्मश्रद्धाकी स्वर्गलोकमें प्रशंसा हुई। उसे सुनकर एक देव उसके दर्शनके लिए मर्त्यलोकमें आया। उसने सुलसासे वर माँगनेको कहा। सुलसाने पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा प्रकट की। देव ३२ गोलियाँ देकर चला गया और कह गया कि एक एक गोलीके खानेसे एक एक प्रताप-शाली पुत्र होगा। सुलसा एक ही धीर वीर गुणी पुत्र चाहती थी,

इसलिए उसने इस इच्छासे वत्तीसो गोलियाँ एक साथ खालीं कि इनसे ३२ लक्षणयुक्त एक ही पुत्र उत्पन्न हो। परन्तु उसके एक ही साथ ३२ पुत्र उत्पन्न हो गये। जव श्रेणिक चिल्लणा या चेलनीके हरण करनेके लिया गया था, तव ये सव पुत्र युद्धमें मारे गये। इससे सुलसा और नाग वडे ही दुखी हुए। धर्मोपदेशमे उन्हे शान्ति मिली। इसके वाद एक मायावीने सुलसाकी धर्मश्रद्धाकी परीक्षा ली। वह उसमें अच्छी तरह उत्तीर्ण हुई। अन्तमें 'पण्डितमरण' करके सुलसाने शरीर त्याग किया। श्वेताम्वर ग्रन्थोंके आधारसे उक्त कथाको लेकर इस उपन्यासकी रचना की गई है। श्वेताम्वर सम्प्रदायकी वहुत ही कम पुस्तकें अच्छी हिन्दीमें लिखी जाती है; परन्तु इसकी हिन्दी प्रायः शुद्ध है। इसमें सदेह नहीं कि इससे धर्मोपदेश अच्छा मिलेगा; परन्तु इसे हम उपन्यास नहीं कह सकते, यह सिर्फ प्राचीन कथाका वर्तमान ढगमें ढाला हुआ रूपान्तर है। सुलसाके साथ जो 'शाणी' विशेपण लगा हुआ है, उसका अर्थ पूरी पुस्तक पढ जाने पर भी हमारी समझमें न आया। पुस्तककी छपाई और काग़ज़ अच्छा है। ७२ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य दो आना वहुत ही कम है।

२७ पं० मुन्नीलालजीकी पुस्तकें। प० जी पहले सिवनी (म० प्र०) की जैनपाठशालामें अध्यापक थे, परन्तु अव अध्यापकी छोडकर वर्धाके जैन वोर्डिंग हाउसके सुपरिंटडेंट हो गये हैं। आपने एक 'जैनधर्मप्रचारक' नामका पुस्तकालय भी खोल रक्खा है। उसकी ओरसे आप जैनधर्मकी पुस्तकें छपाया करते हैं और इधर उधरकी पुस्तकें भी वेचा करते हैं। आपने हमारे पास **१ जिनेद्रदर्शन पाठ, २ समवशरणदर्पण और ३ वैश्य कौमकी हालतका फोटू** ये तीन पुस्तकें समालोचनार्थ भेजनेकी कृपा की है।

पुस्तकें अच्छी हैं और छपाई भी सुन्दर है; परन्तु मूल्य रखनेमे आपने सबका नम्बर ले लिया है। पहली पुस्तक ३२ पेजकी (जैनहितैषीके साइज़की) और दूसरी २९ पेजकी है। इनका अधिकसे अधिक मूल्य दो आना और डेढ़ आना होना चाहिए था; परन्तु आपने पॉच आना और चार आना रख दिया है! तीसरी पुस्तकका भी यही हाल है। एक रुपये पर चार आना कमीशन देनेका क्या यही मतलब है कि मूल्य पहले ही कई गुना रख लिया जावे? अच्छा है। कमीशनकी चाटवाले ग्राहक बिना इस हिकमतके दुरुस्त भी न होगे। 'वैश्य कौमका फोटू'में आपने उर्दूसे हिन्दीमे क्या तर्जुमा किया है सो समझमें न आया। उर्दू लिपिसे नागरी लिपिमे छपा लेनेको ही तो आप तर्जुमा नहीं कहते? पर लाला ज्योतीप्रसादजी ए. जे. से आपने इस तर्जुमेकी आज्ञा भी ले ली है? समवसरणदर्पणको आपने धर्मसग्रहश्रावकाचार परसे उद्धृत कर लिया है; पर यह तो कहिए कि श्लोकोका अर्थ आपहीने किया है, या वहींसे जैसाका तैसा उठाकर रख लिया है? यदि उद्धृत किया था, तो पहले अर्थ लिखनेवाले महाशयके प्रति कुछ कृतज्ञता ही प्रकाश कर दी होती!

२८ श्रीपालचारित्र, जम्बूस्वामीचरित्र, कुन्दकुन्दाचार्य चरित्र—ये सूरतके दिगम्बर जैनके सातवें वर्षकी चौथी, छठी और पहली भेटकी पुस्तकें हैं। पहली दो पुस्तकें हिन्दीमे हैं और उन्हें पं०दीपचन्दजी परवारने लिखा है। पुराने पद्यग्रन्थोको गद्यमें परिवर्तन कर दिया है। अच्छा होता, यदि कुछ ढग बदल दिया जाता और कथाभाग रोचक बनानेका भी प्रयत्न किया जाता। प्रारभमे, अन्तमे तथा और भी कहीं कहीं जो पद्य दिये हैं, वे न दिये जाते तो अच्छा होता—उनकी रचना अच्छी नहीं। तीसरी पुस्तक

श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पागलकी मराठी पुस्तक का गुजराती अनुवाद है। इसका ऐतिहासिक भाग कथाग्रंथोंके आधारसे लिखा गया है जो बहुत कुछ भ्रमपूर्ण है। उसकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। साधारण कथाप्रेमियोंको यह अवश्य रुचिकर होगी। तीनों पुस्तकोंकी छपाई अच्छी है। जुदा खरीदनेवालोंके लिए क्रमसे १=),।) और ≈) मूल्य है। दिगम्बर जैनके द्वारा पुस्तकप्रचार खूब हो रहा है। यदि पुस्तकोंका चुनाव कुछ विचार कर किया जाय, तो और अच्छा हो।

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो चुकी हैं—

१ मासभक्षण पर विचार–प्रकाशक, भारत जैनमहामण्डल, ललितपुर। २ श्वेताम्बर एज्युकेशन बोर्डनो रिपोर्ट और ३ जैन रासमाला-प्रकाशक श्वे० जै० कान्फरेंस बम्बई। ४ श्राविकाश्रम बम्बईकी रिपोर्ट। ५ ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरकी द्वितीय वर्षकी रिपोर्ट। ६ जैनगीतावली–प्र० जैन औद्योगिक कार्यालय, चन्दावाडी बम्बई। ७ स्वर्गके रत्न (चतुर्थ खण्ड) स्वर्गमाला कार्यालय, बनारस सिटी।

मीठी मीठी चुटकियाँ।

१ टाइटिल बेच दिया है।

लाला ज्योतीप्रसादजी जिस समय ‘जैनप्रचारक’ के सम्पादक थे, उस समय वे अपने नामके साथ ‘ए. जे.’ का टाइटिल लगाया करते थे। इस समय वे ‘जैनप्रदीप’ के सम्पादक हैं और जैन-प्रचारकके सम्पादक निरपुडा निवासी मुंशी प्यारेलालजी बना

दिये गये हैं । खबर है कि लाला ज्योतीप्रसादजीने अपना टाइटिल उक्त मुंशीजीके हाथ गाली सुनानेकी एवजीमे बेच दिया है । मुबारिक हो ।

२ अफसोस है ।

जैनप्रचारकके वर्तमान सम्पादकने किसी पिछले अंकमे लिखा था कि "मैं सम्पूर्ण जैन पत्रोंके बदलेमे अपना पत्र भेज रहा हूँ; मगर अफसोस है कि मेरे पास बदलेमे कोई भी पत्र नहीं आता।"

और पत्रोंके विषयमे तो बन्दा कुछ कह नही सकता कि वे क्यों आपसे बदला नहीं करना चाहते । हो सकता है कि आपके पत्रमे ही कोई ऐसी खूबी हो, जो उन्हें बदला न करनेके लिए लाचार करती हो । परन्तु बम्बईके जैनहितैषी, सत्यवादी और जैनमित्रके दफ्तरमे यदि कोई उर्दूका पत्र भूला भटका आ पहुँचता है तो, उसका नाम ही जाननेके लिए बडी बडी कोशिशें करनी पड़ती हैं—फिर भी निराश होना पड़ता है । अच्छा हो, यदि आप अपने पत्रके साथ एकाध उर्दू पढनेवाला भी यहाँ भेज दिया करें ।

३ विलायती तीर्थंकर ।

पंचमकालमें तीर्थंकर नहीं होंगे । इसका मतलब यह नहीं है कि तीर्थंकर होगे ही नहीं । नही, होंगे तो अवश्य, पर भरतखण्डमें न होंगे; विलायतोंमें होगे । भरतखण्डके तीर्थंकरोंके पॉच कल्याणक होते थे; परन्तु विलायतवालोंके लिए यह नियम न होगा—उनके चार, तीन, दो, एक कल्याणक भी हो सकेंगे । यहाँ पिछले तीन कल्याणकोंमें ज्ञानके साथ चारित्रका अनिवार्य नियम है, परन्तु विलायतवासी इससे भी मुक्त रहेंगे । कालदोषसे ये सब नियम लोगोंको विस्मृत हो गये थे, परन्तु भारतजैनमहामण्डलने अपने दफ्तरमेंसे इनका पुनरुद्धार कर

डाला है। डाक्टर हर्मन जैकोबी विलायतके पहले और भारतके २९ वें तीर्थकर हैं। भारतके प्राचीन विद्यापीठ काशीमें उनका 'ज्ञानकल्याणक' हुआ और उसी समय वे 'जैनदर्शनदिवाकर' अर्थात् 'केवली' के पदसे विभूषित किये गये। जैन शास्त्रोंके अनुसार जैनदर्शनदिवाकर और केवली या केवलज्ञानी पर्यायवाची शब्द हैं। इस ज्ञानकल्याणकके उत्सवमे देवोंके अवतारस्वरूप पाश्चात्य पण्डित या ग्रेज्युएट विशेषतासे सम्मिलित हुए थे। कुछ लोगोंने पूछना चाहा था कि जैकोबी साहब शराब और माससे परहेज करते है या नहीं? परन्तु इसके उत्तरमें मण्डलने कह दिया कि करते हैं या नहीं, यह तो हम नहीं जानते, परन्तु नई नियमावलीमें तीर्थकरोंके लिए इस तरहका कोई नियम नहीं है। तीर्थकर भगवानकी राजपूताना और मारवाड़के विहारमे जो दिव्य-ध्वनि खिरी थी, उस पर स्थानकवासी और श्वेताम्बरी श्रावकोंमें प्रतिमा पूजाको लेकर एक बड़ा भारी विवाद खडा हो गया है। गणधर तो अनेक थे, परन्तु सुनते हैं उनमें भी मतभेद हो गया है। माल्म नहीं, विलायती तीर्थकर चिट्ठी पत्रीसे अपने उपासकोंका समाधान करते है या नहीं!

४ छज्जेकी रहनेवाली जीने पर आ गई।

कलकत्तेकी जैनपाठशालाके विद्यार्थियोंको पारितोपिक वितरण करनेके लिए एक सभाकी गई थी और उसके सभापति रायबहादुर सेठ मेवारामजी बनाये गये थे। कहते है कि इस मौके पर सभापति साहबने अपने करकमलोंसे जैनधर्मकी क्षत्रचूडामणि, सप्तव्यसनचरित,, सूक्त-मुक्तावली, गृहस्थधर्म आदि छपी हुई पुस्तकें बॉटी थीं। इस खबरको पढ़कर छापेवालोंकी खुशीका कुछ ठिकाना नहीं रहा है। परन्तु बन्दा तो इसे बहुत ही मामूली बात समझता है—यह तो उस दिन खुश होगा,

जिस दिन सेठ मेवारामजी स्वयं ही एक अच्छा प्रेस खोलकर उसके द्वारा जैनग्रन्थोंको छपानेका काम जारी कर देंगे और यह बिलकुल संभव बात है। पाठक विश्वास रक्खें कि मेरी यह भविष्यद्वाणी अवश्य सच निकलेगी। अभी सेठजी अपनी जगहसे थोड़ेसे खिसके हैं—धीरे धीरे अपने पास तक भी आ पहुँचेगे। किसी शायरने क्या अच्छा कहा है:—

छज्जेकी रहनेवाली जीने पर आ गई।
रफ़्ते रफ़्ते अपने करीने पर आ गई॥

—लाल बुझक्कड़।

विविध समाचार।

पट्टाभिषेक हो गया—आखिर श्रीमती मगनबाईकी कृपासे ज्येष्ठ वदी २ को प० सुन्दरलालजीका सूरतकी भट्टारककी गद्दी पर पट्टाभिषेक हो गया। सूरतके और बाहरके भाइयोंने बहुत कुछ उछलकूद मचाई; परन्तु पण्डितजी तो भट्टारक महाराज बन ही गये! आपका नया नाम हुआ है 'भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिजी महाराज'। जब तक सुन्दरलालजी जैसे सदाचारी और विद्वान् जैनसमाजमे पूज्य समझे जा रहे हैं, तब तक मजाल नहीं कि उन्नति उसकी ओर आँख उठाकर भी देख सके।

साधुओंके लिए कानून—मालूम होता है जोधपुर राज्य साधुओंकी शैतानीसे तंग आ गया है। वहाँ जरा जरासे बच्चे मूड लिए जाते है और साधु बना दिये जाते हैं। आगे युवावस्थामे उनके चरित्र इतने बिगड़ते हैं कि लोगोंको साधु शब्दसे ही घृणा होने लगती है। वास्तवमें यह बात प्रकृतिके नियमसे विरुद्ध है। जोधपुर

राज्य इसके लिए एक कानून बनाया चाहता है। उसके अनुसार १८ वर्षसे नीचेका कोई भी नावालिग साधु न हो सकेगा। जो बनायगा, वह कठिन दण्डका भागी होगा।

जैनियोंके लिए सस्ते मकान—बम्बईशहरमें जैनी भाईयोंकी बहुत बडी वस्ती है। उनमे सैकडे पीछे ९ स्वतन्त्र व्यापार करनेवाले, ३ दलाली करनेवाले, २२ साधारण नौकरी करनेवाले और ७० ऐसी नौकरियाँ करनेवाले हैं जिनमें बड़ी कठिनाईसे खाने पीनेकी गुजर होती है—बेचारे ढावोंमें या वीसियोंमें खाते हैं और जहाँ जगह मिलती है वहाँ सो रहते है। यहाँ मकानोंका किराया इतना सख्त है कि अच्छी स्वास्थ्यप्रद हवादार जगह मिलना उनके लिए दुश्वार है—इससे बेचारे वीमार होते है और इलाजका इन्तजाम न कर सकनेके कारण चल वसते हैं। इन सब कष्टों पर श्वेताम्बर समाजके कुछ सज्जनोंकी दृष्टि गई है। वे प्रयत्न कर रहे हैं कि एक कम्पनी खड़ी करके उसकी ओरसे अच्छी जगहोमे मकानात बनवाये जावें और उनमें जैनी भाईयोंको सस्ते किराये पर अच्छी हवादार कोठरियाँ दी जावें। इस काममें मुनाफा भी होगा और गरीबोंको बड़ा भारी लाभ होगा। मन्दिरोंकी रकमें इस काममे व्याजके ऊपर लगानेकी भी कोई कोई भाई सलाह दे रहे हैं। हमारे दिगम्बरी भाईयोंको भी इस कार्यमें योग देना चाहिए।

जैनियोंमें पुनर्विवाह—जैनियोंमें एक 'जैसवाल' नामकी जाति है। सुसनेर (ग्वालियर) में जैसवाल भाईयोंकी अच्छी बस्ती है।—वहाँके चौधरी चैनसिंहजीकी कन्याका विवाह एक युवकके साथ हो चुका था; परन्तु विवाहके दूसरे ही दिन वह युवक मर गया। चौधरीजीसे अपनी लड़कीका यह दुःख देखा न गया, इसलिए उन्होंने एकही महीना

पीछे एक दूसरा वर तलाश करके उसके साथ उसकी शादी कर दी। इस पर जातिमें बड़ी हलचल मची है। चौधरीजीको सबने जातिसे अलग कर दिया है, परन्तु लगभग २० घरके जैसवाल उनमें शामिल हो गये हैं। इधर बम्बईके नवीन मराठी पत्र 'लोकसेवक'में एक नोटिस प्रकाशित हुआ है, जिसमें एक दशाहूमड़ किसी दिगम्बर जैन जातिकी विधवाके साथ विवाह करना चाहते हैं। आपकी उम्र ३० वर्षकी है। ये बड़ी चिन्ताजनक खबरें है।

शिक्षाके लिए दान—टिपराके जमीदार श्रीयुक्त आनन्दमोहन राय चौधरीने रंगपुरमे एक प्रथम श्रेणीका कालेज स्थापित करनेके लिए एक लाख रुपयेका दान किया है।

विलायतमें बंगाली वैज्ञानिक—बगालके विश्वविख्यात विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसुका आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमे ता० २० मईको वनस्पतियोकी उत्तेजनप्रवणताके विषयमे अतिशय गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुआ। आपने अपने निर्माण किये हुए यन्त्रादि भी वहाँके विद्वानोके सामने पेश किये थे। आपके पाण्डित्यको देखकर विलायतवासी वैज्ञानिक चमत्कृत हो गये हैं।

रवीन्द्रबाबूके ग्रन्थोंका विदेशोंमें आदर—कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका Gardener नामक अँगरेजी काव्य अभी कुछ ही महीने पहले प्रकाशित हुआ है। उसके प्रकाशक मेकमिलन कम्पनीके सभापति जार्ज ब्रेटने अपने व्याख्यानमें कहा है कि अकेले अमेरिका देशमे ही इस पुस्तककी एक लाखके अधिक कापियाँ बिक चुकी हैं। रविबाबूके चित्राङ्गदा काव्यका भी अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। इसकी भी खूब विक्री हो रही है।

आटा और मैदा—साधारण लोगोंका विश्वास है कि आटेसे मैदा अधिक पुष्टिकर है। परन्तु यह केवल भ्रम है। वास्तवमें मैदासे

आटा अधिक पुष्टिकर है, कलके आटेसे चक्कीका आटा अधिक बलकारा है और छाने हुए आटेकी अपेक्षा विना छाना हुआ—चापड भूसी-युक्त आटा अधिक गुणकारी है । आजकलके शौकीनोको मैलापन ज़रा भी पसन्द नहीं। इसलिए वे आटेको जितना वन सकता है, उतना सफेद वनानेकी कोशिश करते है। वे नही जानते कि सादे आटेमे जो मैलापन रहता है, वह उसके तैलाक्त अंश, फासफरस और नाइट्रोजनके मेलके कारण रहता है। सफेदीकी वढतीके साथ साथ ये चीज़ें कम होती जाती है और मनुष्य गेहूँके असली पौष्टिक भागसे वचित होता जाता है। गेहूँका छिलका यदि अलग न किया जाय, तो पाचन शक्तिको वहुत लाभ होता है। यह अश पुष्टिकर भी है। कलके आटेका स्वत्व और स्वाद घर्पणकी तीव्र उष्णतासे नष्ट हो जाता है।

शोकजनक मृत्यु—इन्दौरके सुप्रसिद्ध सेठ रायबहादुर कस्तूरचन्दजीकी धर्मपत्नी श्रीमती अनूपबाईका आपाढवदी १२ को स्वर्गवास हो गया। कई महीनोंसे आप वीमार थीं। सेठजीने बहुत प्रयत्न किया—कोई एक लाख रुपया खर्च कर दिया—परन्तु लाभ न हुआ सेठानीजीका स्वभाव धर्माल्लु था, विद्यासे भी आपको प्रीति थी। मृत्युके समय आप ३१ हजार रुपयोका दान कर गई है। इस दानसे कोई विद्या-शिक्षासम्वन्धी सस्था खुलेगी। हमारी एकान्त इच्छा है कि सेठानीजीके सद्गति प्राप्त हो और सेठजी अपने इस पत्नीवियोगदु:खसे शान्ति लाभ करें।

एक मजिस्ट्रेटका क्रोध—वेलारी जिलाके हरपनहल्ली नामक नगरमें 'यूनियन कमेटी' नामकी सस्था है। उसके सभापतिके पास वहाँके साहव मजिस्ट्रेटने एक फरमान भेजा कि भटकते हुए लावारिस कुत्ते मार डाले जावें। सभापति महाशय जैनी है, तो भी साहवके

हुक्मकी वेअदवी न हो, इस लिए उन्होंने अपने हाथ नीचेके नौ-करोंको यह फरमान दे दिया। पर उन्होंने अपने जैन सभापतिको प्रसन्न रखनेके लिए अथवा और किसी कारणसे उस हुक्मकी तामीली न की। तव सभापतिने एक मुसलमानको यह काम सोंपा, परन्तु उसने भी इंकार कर दिया। इस पर साहववहादुरका मिजाज वेतरह विगड़ा। आपने पब्लिक सड़क पर—जहाँ सैकड़ों आदमी एकट्टे हो रहे थे—सभा-पतिको वुलाया और हुक्म दिया कि तुम खुद अपने हाथसे कुत्तोंको मारो! सभापतिने इसके पालन करनेसे इकार कर दिया। तव मजिस्ट्रेट साहव लाल ताते होते हुए और यह कहते हुए कि इसका परिणाम वहुत वुरा होगा—अपने घर चले गये। दूसरे दिन आपने सभापतिको एक नोटिस दे डाला कि तुमने एक उचित आज्ञाका अनादर किया, इस लिए तुमपर मुकद्दमा क्यों न चलाया जाय? हम आशा करते हैं मद्रास गवर्नमेंट इस मामलेकी अच्छी तरह जॉच करेगी और साहव वहादुरके विकृत मस्तकको ठिकाने ला देगी। इस तरहके मामलोंसे राजा और प्रजाके वीच द्वेषका वीज वोया जाता है।

सेठीजीका समाचार—वावू अर्जुनलालजी सेठी, वी. ए. के कष्टोंका अभी तक अन्त नहीं आया। पूरे तीन महीने इन्दौरकी हवा-लातमें रखकर अव उन्हें ता० २३ जून को जयपुरकी हवालातमें भेज दिया है। उनपर न कोई जुर्म लगाया जाता है—न मुकद्दमा चलाया जाता है और न वे छोड़े ही जाते हैं। माल्म नहीं, सरकार अपराध सिद्ध किये विना उनको यह हवालातकी सजा क्यों दे रही है। सुनते हैं पुलिससे पूछनेसे माल्म हुआ कि उन पर कोई राजनैतिक अपराध नहीं है।

आवश्यक सूचनायें।

१. कर्णाटक जैन-कवि—जैनहितैषीमें इस विषयके जो लेख प्रकाशित हुए थे, वे अब सग्रह करके जुदा छपा लिये गये हैं। इसके छपानेमें एक धर्मात्मा सेठने ४२) की सहायता की है, इस लिए लागतमेंसे उक्त सहायता बाद देकर इसका दाम सिर्फ़ आधा आना रक्खा गया है। साहित्यसेवियोंमें वितरण करनेके लिए इसकी दश दश पॉच पाँच प्रतियॉ सबको मॅगा रखनी चाहिए।

२. श्रमण नारद—जैनहितैषीके पिछले अकमे 'कर भला होगा भला' के नामसे जो छोटासा उपन्यास प्रकाशित हुआ था, वह बहुत ही शिक्षाप्रद और परोपकारभावोंको बढानेवाला है। इसलिए हमने उसकी ३००० प्रतियॉ मुफ्त वितरण करनेके लिए जुदा छपा ली हैं। जो भाई चाहें, आधा आनेका टिकट भेजकर मॅगा लेनेकी कृपा करें। आध आनेमें चार प्रतियॉ भेजी जा सकती है। उन्हें जैन अजैन चाहे जिसे पढ़नेके लिए देना चाहिए।

३ जैनहितैषीका यह अक भी डबल निकाला जाता है। हितैषी अपने समयसे बहुत पिछड़ गया था, इस लिए इसके दो अक सयुक्त निकालना पडे। आगामी अक जुदा जुदा ही निकाले जावेंगे और इस बातकी कोशिश की जायगी कि जिस महीनेका जो अक हो, वह उसी महीनेके भीतर निकल जावे।

४ हिन्दीग्रन्थरत्नाकर सीरीज़—लगभग दो वर्षसे हम इस ग्रन्थमालाको निकालने लगे हैं। इतने ही समयमें सर्वसाधारणमें इसकी बहुत प्रसिद्धि हो गई है। हिन्दीकी यह सर्वोत्तम ग्रन्थमाला समझी जाने लगी है। इसके ग्रन्थोंको सभीने पसन्द किया है, परन्तु खेद है कि हमारे जैनी भाईयोंमें इसके बहुत ही कम (न होनेके बराबर) ग्राहक हुए है। हमे अपने भाईयोंसे इस काममें बहुत कुछ सहायता मिलनेकी आशा है। उन्हें इसके स्थायीग्राहक अवश्य बनना चाहिए। नमूनेके लिए इसका एकाद ग्रन्थ मॅगाकर देख लेना चाहिए।

ग्रन्थोंका नोटिस जुदा दिया है । 'चौबेका चिट्ठा' नामक ग्रन्थमेंसे उद्धृत करके 'बुढ़ापेकी बातें' शीर्षक लेख इस अंकके प्रारंभमें प्रकाशित किया गया हैं । उसे पढ़कर उक्त ग्रन्थके लेखोंका अनुमान किया जा सकता है । एक ग्रन्थ अभी हाल ही छपकर प्रकाशित हुआ है जिसका नाम है **मितव्ययिता या गृहप्रबन्धशास्त्र** । इसे बाबू दयाचन्द्रजी जैनी, बी. ए. ने लिखा है । यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनकुटुम्बमें अवश्य रहना चाहिए और प्रत्येक पुरुष स्त्रीको इसका स्वाध्याय करना चाहिए ।

दिगम्बर जैन डिरैक्टरी ।

छपकर तैयार है । शीघ्र मँगाइए । मूल्य आठ रुपया । लगभग १५ हजार रुपयोंके खर्चसे यह बड़ी भारी पुस्तक तैयार हुई है । सारे हिन्दुस्थानमें कहाँ कहाँ, कितने किस किस जातिके जैनी बसते हैं, क्या धंदा करते है, मन्दिर कितने है, मुखिया कौन कौन है, किस गांवका कौनसा डॉकखाना, स्टेशन आदि है, दिगम्बरियोंकी कुल संख्या कितनी है, कौन कौन जातिके कितने कितने घर है, सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्र आदि कहाँ कहाँ है, उनका और बड़े बड़े शहरो स्थानोंका प्राचीन इतिहास क्या है, इत्यादि सैकड़ों जानने योग्य बातोंका इसमें संग्रह है । व्यापारियों और नोटिस बाँटनेवाले लोगोंके लिए तो बड़े ही कामकी चीज़ है ।

श्रीपालचरित हिन्दी वचनिकामें

छपाया गया है । छपाई बहुत अच्छी है । भाषा सरल है । पक्की ज़िल्द बँधी है । एक रुपया दो आनेमें मँगा लीजिए । **जम्बूस्वामी चरित्र** भी हिन्दी वचनिकामें छपा है । मूल्य ।) । **जैनार्णव** भी जिसमें १०० पुस्तकोंका संग्रह है– हमारे यहाँ मिलता है । मूल्य एक रुपया ।

मैनेजर,—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई ।



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासन जिनशासनम्॥

१०वाँ भाग] ज्येष्ठ, श्री वी०नि०सं० २४४०। [८ वाँ अं०

ग्रन्थपरीक्षा।

(३)

जिनसेन-त्रिवर्णाचार।

(२)

वहुतसे जैनियोंका अभीतक यह खयाल रहा है कि त्रिवर्णाचारोंमें 'जिनसेनत्रिवर्णाचार' एक पुराना और अधिक माननीय त्रिवर्णाचार है। परन्तु पिछले लेखको पढनेसे उन्हें भले प्रकार माळ्म हो गया होगा कि यह जिनसेनत्रिवर्णाचार **'ब्रह्मसूरि-त्रिवर्णाचार'** से ही नहीं किन्तु **'सोमसेन-त्रिवर्णाचार'**से भी--जिसका निर्माण काल सवत् १६६७ है--पीछेका वना हुआ है। इस त्रिवर्णाचारका अवतार विक्रमकी १८ वीं शताव्दीके अन्तमें या उससे भी कुछ पीछे हुआ है। और इसलिए यह आदिपुराणके कर्ता **भगवज्जिनसेन** या हरिवंशपुराणके रचयिता **दूसरे जिनसेनादि** आचार्योंका वनाया हुआ नहीं है। वल्कि इसका कर्ता या तो सोमसेन भट्टारकके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाला जिनसेन भट्टारक है (जिसने यदि इस

ग्रंथको बनाया है तो अपनी उस भट्टारककी हैसियतसे नहीं बनाया है) अथवा जिनसेनके नामसे किसी दूसरे ही व्यक्तिने इसका सम्पादन किया है। अस्तु; इस ग्रथका विधाता चाहे सोमसेनके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाला जिनसेन भट्टारक हो, या कोई दूसरा ही व्यक्ति हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि जिसने इस ग्रन्थका सम्पादन किया है वह अवश्य ही कोई धूर्त व्यक्ति था। ग्रंथमें स्थान स्थान पर उसकी धूर्तताका खासा परिचय मिलता है। आज इस लेखमें ग्रंथकर्ताकी इसी धूर्तताका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। इससे पाठकों पर ग्रंथकर्ताकी सारी असलियत खुल जायगी और साथ ही यह भी मालूम हो जायगा कि यह त्रिवर्णाचार कोई जैनग्रंथ हो सकता है या कि नहीं:—

(१) हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें '**याज्ञवल्क्य स्मृति**' नामका एक ग्रंथ है और इस ग्रथपर **विज्ञानेश्वर**की बनाई हुई '**मिताक्षरा**' नामकी एक प्राचीन टीका सर्वत्र प्रसिद्ध है। 'मिताक्षरा' हिन्दू धर्मशास्त्रका प्रधान अंग है और अदालतोंमें इसका प्रमाण भी माना जाता है। जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वें पर्वमें इस याज्ञवल्क्यस्मृतिके पहले अध्यायका चौथा प्रकरण, जिसका नाम '**वर्ण-जाति-विवेक-प्रकरण**' है, मिताक्षरा टीकासहित ज्योंका त्यों चुराकर रक्खा गया है।* इस प्रकरणमें मूल श्लोक सात हैं; शेष बहुतसा गद्यभाग उनकी पृथक् पृथक् टीकाओंका है। नमूनेके तौरपर इस प्रकरणका पहला और अन्तिम श्लोक तथा पहले श्लोककी टीकाका कुछ अश नीचे प्रगट किया जाता है:—

---

* सिर्फ पहले श्लोककी लम्बी चौडी टीकामें चार पाँच पक्तियाँ ऐसी हैं जो किसी दूसरे ग्रथसे उठाकर जोडी गई हैं और जिनमें धृतराष्ट्र, पाडु और विदुरके क्षेत्रज (दृष्टिज) पुत्र होनेका निषेध कियां गया है।

"सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायंते हि सजातयः ।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्रा संतानवर्धना ॥
जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेय पंचमे सप्तमेऽपि वा ।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥"

"सवर्णेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यः सवर्णासु ब्राह्मण्यादिषु सजातयः मातृपितृ-समान-जातीयाः पुत्रा भवति, 'विभास्वेषविधिः स्मृतः' इति सर्व शेषत्वेनोपसंहारात्। विभासु सवर्णास्विति संबध्यते विभा-शब्दस्य ....।"

जिनसेन त्रिवर्णाचारमे इन श्लोकोंका कोई नम्बर नहीं दिया है और न टीकाको 'टीका' या 'अर्थ' इत्यादि ही लिखा है। बल्कि एक सरड़ा नकल कर डाली है। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें इन दोनों श्लोकोका नम्बर क्रमशः ९० और ९६ है। त्रिवर्णाचारके कर्ताने इस प्रकरणको उठाकर रखनेमें बड़ी ही चलाकीसे काम लिया है। याज्ञवक्ल्यस्मृति और उसकी मिताक्षरा टीकाका उसने कहीं भी नामोल्लेख नहीं किया, प्रत्युत इस बातकी बराबर चेष्टा की है कि ये सब वचन उसके और प्राचीन जैनाचार्योंके ही समझे जायँ। यही कारण है कि दूसरे श्लोकके बाद उसने 'भद्रबाहु' का नाम लिखा है, जिससे आगेके वचन भद्र-बाहुस्वामीके समझ लिये जायँ। परन्तु वास्तवमें वे सब वचन दूसरे श्लोककी मिताक्षरा टीकाके सिवाय और कुछ नहीं हैं। इस दूसरे श्लोककी मिताक्षरा टीकामे एक स्थानपर 'शंखं' ऋषिके हवालेसे ये वाक्य दिये हुए है कि—

"यत्तु ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवंति। क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव भवति। वैश्येन शूद्राया-मुत्पादितः शूद्र एव भवति। इति शंखस्मरणम्।"

त्रिवर्णाचारके बनानेवालेने इन वाक्योंके अन्तमेंसे 'इति शंख स्मरणम्' को निकाल कर इसके स्थानमें 'इति समंतभद्र' बना दिया है, जिससे ये वचन समंतभद्रस्वामीके समझे जायँ। इसी प्रकार छठे श्लोककी टीकामे जो 'यथाह शंखः' लिखा हुआ था, उसको बदलकर 'यथाह गौतमः' बना दिया है। यद्यपि इस प्रकारकी बहुत कुछ चलाकी और बनावट की गई है; परन्तु फिर भी ग्रंथकर्ता द्वारा इस प्रकरणकी असलियत छिपाई हुई छिप नहीं सकी। स्वयं गद्यरूप टीका इस बातको प्रगट कर रही है कि वह वैदिक धर्मसे सम्बन्ध रखती है। उसमे अनेक स्थानों पर स्मृतियोंके वचनोंका उल्लेख है और पाँचवें श्लोककी टीकामें ६ प्रकारके प्रतिलोमजोंकी वृत्तियोंके सम्बन्धमें साफ तौरसे 'औशनस-धर्मशास्त्र'को देखनेकी प्रेरणा की गई है, जो हिन्दूधर्मका एक प्रसिद्ध स्मृतिग्रंथ है। यथाः—

'एते च सूतवैदेहिकचांडालमागधक्षत्रायोगवाः षट् प्रतिलोमजाः एतेषां च वृत्तय औशनसे मानवे द्रष्टव्याः।'

मालूम होता है कि 'औशनसे मानवे' इन शब्दोंसे त्रिवर्णाचारके कर्ताकी समझमें यह नहीं आसका है कि इनमें किसी हिन्दू धर्मके ग्रंथका उल्लेख किया गया है। इसीलिए वह इन शब्दोको बदल नहीं सका। इसके सिवाय त्रिवर्णाचारमें इस प्रकरणका प्रारंभ इन शब्दोंके साथ किया गया हैः—

"अथ परिणयनविधिमाह। तथा च क्षीरकदम्बाचार्येणोक्तं। ब्राह्मणस्य चतस्रो भार्याः क्षत्रियस्य तिस्रो वैश्यस्य द्वे शूद्रस्यैक इत्युक्त्वा तासु च पुत्रा उत्पादयितव्या इत्युक्तं। इदानीं कस्यां कस्मात्कः पुत्रो भवति इति विवेकमाह।"

अर्थात्—अब परिणयन विधिको कहते है। तैसा (तथा) क्षीरकदम्बाचार्यने कहा है। ब्राह्मणके चार वर्णकी, क्षत्रियके तीन वर्णकी,

वैश्यके दो वर्णकी और शूद्रके एक अपने ही वर्णकी स्त्रियाँ होती हैं। यह कहकर उन स्त्रियोंमें पुत्र उत्पन्न करने चाहिए, यह कहा जा चुका (इत्युक्त)। अब किस स्त्रीमें, किसके सयोगसे, कौन पुत्र उत्पन्न होता है, इसका विचार करते हैं।

इन वाक्योंसे पहले इस त्रिवर्णाचारमें 'परिणयनविधि' का कोई ऐसा कथन नहीं आया, जिसका सम्बन्ध 'तथा' शब्दसे मिलाया जाय। इसी प्रकार ऐसा भी कोई कथन नहीं आया जिसका सम्बंध 'इत्युक्त्वा' और 'इत्युक्तं' इन शब्दोंसे मिलाया जाय। ऐसी हालतमें ये सब वाक्य बिलकुल असम्बद्ध माळूम होते हैं और इस बातको प्रगट करते हैं कि इनमेंसे कुछ वाक्य कहींसे उठाकर रक्खे गये हैं और कुछ वैसे ही जोड़ दिये गये हैं। **मिताक्षरा** टीकाको देखनेसे इसका सारा भेद खुल जाता है। असलमें मिताक्षरा टीकाकारने चौथे प्रकरणका प्रारभ करते हुए पूर्वकथनका सम्बध और उत्तर कथनकी सूचानिका रूपसे प्रथम श्लोक (नं. ९०) के आदिमें 'ब्राह्मणस्य चतस्रो भार्याः ' इत्यादि उपर्युक्त वाक्य दिये थे। त्रिवर्णाचारके कर्ताने उन्हें ज्योंका त्यों बिना सोचे समझे नकल कर दिया है और दो वाक्य वैसे ही अपनी तरफसे और उनके पहले जोड़ दिये हैं। पहले वाक्यमें जिस परिणयनविधिके कथनकी प्रतिज्ञा की गई है उसका पालन भी सारे प्रकरणमें कहीं नहीं किया गया। प्रकरणके अन्तमें लिखा है कि '**इति वर्णजातिविवेकप्रकरणं समाप्तम्।**'

इन सब बातोंसे साफ जाहिर है कि यह पूरा प्रकरण याज्ञवल्क्य स्मृतिकी **मिताक्षरा** टीकासे चुराया गया है और इसमें **शंखादि**कके स्थानमें **समन्तभद्रादि** जैनाचार्योंका नाम डालकर लोगोंको धोखा दिया गया है।

(२) हिन्दूधर्मके ग्रंथोंमें, श्रीदत्त उपाध्यायका बनाया हुआ 'आचारादर्श' नामका एक ग्रंथ है। यह ग्रंथ गद्यपद्यमय है और इसमें प्रायः जो कुछ भी वर्णन किया गया है वह सब हिन्दू धर्मके अनेक प्रसिद्ध शास्त्रो और ऋषिवचनोंके आधार पर, उनका उल्लेख करते हुए, किया गया है। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि यह ग्रथ विषय-विभेदसे हिन्दूधर्मके प्राचीन आचार्योंके वचनोंका एक संग्रह है। इस ग्रंथमें 'शयनाविधि' नामका भी एक विषय अर्थात् प्रकरण है। जिनसेनत्रिवर्णाचारके ११ वें पर्वमें 'शयनविधि' का यह सम्पूर्ण प्रकरण प्रायः ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा हुआ है। त्रिवर्णाचारके बनानेवालेने इस प्रकरणको उठाकर रखनेमे बड़ी ही घृणित चालाकीसे काम लिया है। वह 'आचारादर्श' या उसके सम्पादकका नाम तो क्या प्रगट करता, उलटा उसने यहाँतक कूटलेखकता की है कि जहाँ जहाँ इस प्रकरणमें हिन्दूधर्मके किसी ग्रंथ या ग्रंथकारका नाम था, उस सबको बदलकर उसके स्थानमें प्राचीन जैनग्रंथ या किसी प्राचीन जैनाचार्यका नाम रख दिया है। और इस प्रकार हिन्दू ग्रंथोंके प्रमाणोंको जैनग्रंथो या जैनाचार्योंके वाक्य बतलाकर सर्वसाधारणको एक बड़े भारी धोखेमें डाला है। जिनसेनत्रिवर्णाचारमें ऐसा अनर्थ देखकर हृदय विदीर्ण होता है और उन जैनियोंकी हालत पर बड़ी ही करुणा आती है जो ऐसे ग्रंथोको भी जैनग्रंथ मानते हैं। अत. यहाँ पर ग्रंथकर्ताके इस घृणित कृत्यके नमूने यत्किंचित् विस्तारके साथ दिखलाये जाते है:—

आचारादर्शमे 'शयनविधि'का आरभ करते हुए 'तत्र विष्णुपुराणे' ऐसा लिखकर निम्नलिखित तीन श्लोक दिये है:—

कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही।
गच्छेदस्फुटितां शय्यामपि दारुमयी नृप॥

नाविशालां न वा भग्नां नासमां मलिनां न च ।
न च जन्तुमयीं शय्यां त्वधितिष्ठेदनास्तृताम् ॥
प्राच्यां दिशि शिर शस्तं याम्यायामथवा नृप ।
सदैव स्वपत पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥

जिनसेनत्रिवर्णाचारमें ये तीनों श्लोक इसी क्रमसे लिखे हैं। परन्तु 'तत्र विष्णुपुराणे' के स्थानमें 'श्रीभद्रबाहु उक्तं' ऐसा बना दिया है। अर्थात् त्रिवर्णाचारके कर्ताने इन वचनोको विष्णुपुराणके स्थानमें श्री-भद्रबाहुस्वामीका बतलाया है। इन तीनों श्लोकोंके पश्चात् आचारा-दर्शमें 'नन्दिपुराणे' ऐसा नाम देकर यह श्लोक लिखा है:—

"नमो नन्दीश्वरायेति प्रोक्त्वा यः सुप्यते नर ।
तस्य कूष्माण्डराजभ्यो नं भविष्यति वै भयम् ॥"

इस श्लोकके पश्चात् 'अत्र हारीतः' ऐसा नाम देकर एक श्लोक और लिखा है और फिर 'अत्र शंखलिखितौ' यह दो नामसूचक पद देकर कुछ गद्य दिया है। आचारादर्शके इसी क्रमानुसार ये सब श्लोक गद्यसहित जिनसेनात्रिवर्णाचारमें भी मौजूद हैं, परन्तु 'नन्दि-पुराण,' 'हारीत,' और 'शखलिखित' इनमेंसे किसीका भी उल्लेख नहीं किया है। इससे त्रिवर्णाचारको पढते हुए यही माल्रम होता है कि ये सब श्लोक और गद्य भी भद्रबाहुस्वामीके ही वचन हैं जिनका नाम प्रकरणके आदिमे 'श्रीभद्रबाहु उक्तं' इस पदके द्वारा दिया गया है।

इसके बाद आचारादर्शमें 'उशनाः' ऐसा नाम देकर यह वाक्य लिखा है:—

---

१ इस श्लोकमें सोते समय 'नन्दीश्वरको' नमस्कार करना लिखा है। जैनि-योमें नन्दीश्वर नामका कोई देवता नही है। हिन्दुओंमें उसका अस्तित्व जरूर माना जाता है।

"न तैलेनाभ्यक्तशिराःस्वपेत्"

जिनसेन त्रिवर्णाचारमें भी यह वाक्य उसी क्रमसे मौजूद है। परन्तु 'उशनाः' के स्थानमें 'भद्रबाहु' लिखा हुआ है। नहीं मालूम, ग्रंथकर्ताने यह पुनः 'भद्रबाहु' का नाम लिखनेका परिश्रम क्यो उठाया, जब कि इससे पहले मध्यमे किसी दूसरेका वचन नहीं आया था। अस्तु; आचारादर्शमें इस वाक्यके अनन्तर 'पैठीनसिः' ऐसा लिखकर एक वाक्य उद्धृत किया है। जिनसेन त्रिवर्णाचारमें भी ऐसा ही किया गया है। अर्थात् 'पैठीनसिः' शब्दको बदला नहीं है। बल्कि पूर्वोक्त वाक्योंके साथमें उसे मिलाकर ही लिख रक्खा है। इसका कारण यही मालूम होता है कि त्रिवर्णाचारके बनानेवालेकी समझमें यह नहीं आ सका कि 'पैठीनसि' किसी हिन्दू ऋषिका नाम है और इसलिए उसने इसे पिछले या अगले वाक्यसम्बन्धी कोई शब्द समझकर ज्योंका त्यों ही रख दिया है। पैठीनसिके इस वाक्यके पश्चात् आचारादर्शमें, क्रमशः विष्णु, आपस्तम्ब, विष्णुपुराण, और बृहस्पतिके हवालेसे कुछ गद्यपद्य देकर पराशरका यह वचन उद्धृत किया है:—

"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
स गच्छेन्नरकं घोरं ब्रह्महेति तथोच्यते॥"

जिनसेनत्रिवर्णाचारमे यह सारा गद्यपद्य ज्योंका त्यों मौजूद है। परन्तु विष्णु, आपस्तंब, विष्णुपुराण, बृहस्पति और पराशरके नाम बिलकुल उड़ा दिये गये हैं। इससे त्रिवर्णाचारको पढ़ते हुए ये सब वचन या तो पैठीनसिके मालूम होते है, या भद्रबाहुस्वामिके। परन्तु वास्तवमें त्रिवर्णाचारके कर्ताका अभिप्राय उन्हें भद्रबाहुके ही प्रगट करनेका मालूम होता है, पैठीनसिको तो वह समझा ही नहीं।

पराशरके उपर्युक्त वचनके पश्चात् आचारादर्शमें, दो श्लोक 'यम'के हवालेसे, एक श्लोक 'देवल'के नामसे और फिर दो श्लोक 'वौधायन' के नामसे उद्धृत किये हैं। जिनसेनत्रिवर्णाचारमें ये सब श्लोक इसी क्रमसे दिये हैं। परन्तु इन पाँचों श्लोकोंमें आदिके तीन श्लोक 'पुष्पदंतेनोक्तं' ऐसा लिखकर पुष्पदंताचार्यके नामसे उद्धृत किये हैं और शेष वौधायनवाले दोनों श्लोकोंका 'समंतभद्र'के नामसे उल्लेख किया है। वे पाँचों श्लोक इस प्रकार हैं.—

"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः
भार्यामृतुमुखे यस्तु सन्निधौ नोपगच्छति।
पितरस्तस्य तं मांसं तस्मिन् रेतसि शेरते॥

यः स्वदारामृतुस्नातां स्वस्थःसन्नोपगच्छति।
भ्रूणहत्यामवाप्नोति गर्भप्राप्तिं विनाश्य स.॥

त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यो भार्यां नोपगच्छति।
सतुल्यं ब्रह्महत्याया दोषमृच्छत्यसंशयम्॥

ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति।
तुल्यमाहुस्तयोर्दोषमयोनौ यश्च सिंचति॥"

पुष्पदंत और समन्तभद्रके हवालेसे उद्धृत किये हुए इन पाँचों श्लोकोंमें और इनसे पहले श्लोकमें यह लिखा है कि 'जो कोई मनुष्य अपनी ऋतुस्नाता (मासिक धर्म होनेके पश्चात् स्नानकी हुई) स्त्रीके साथ भोग नहीं करता है, वह घोर नरकमें जाता है और उसको ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, इत्यादिका पाप लगता है। इसी प्रकार जो ऋतुकालको छोड़कर दूसरे समयमें अपनी स्त्रीसे भोग करता है, वह भी ऋतुकालमें भोग करनेवालेके समान पापी होता है।' ये सब वचन

जैनधर्म और जैनियोंकी कर्मफिलासोफीके बिलकुल विरुद्ध हैं और इस-लिए जैनाचार्योंके कदापि नहीं हो सकते।

उपर्युक्त श्लोकोंके बाद जिनसेन त्रिवर्णाचारमें, 'तथा च उमास्वातिः' ऐसा लिखकर, यह श्लोक दिया है:—

"षोडशर्तुं निशा स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत्।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्त्रश्च वर्जयेत्॥"

यह 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के पहले अध्यायके तीसरे प्रकरणका श्लोक न. ७९ है। श्रीउमास्वाति या उमास्वामि महाराजका यह वचन नहीं है। आचारादर्शमें भी इसको याज्ञवल्क्यका ही लिखा है। इसके पश्चात् जिनसेनत्रिवर्णाचारमें उपर्युक्त श्लोककी 'मिताक्षरा' टीकाका कुछ अंश देकर याज्ञवल्क्यस्मृतिके अगले श्लोक नं. ८० का पूर्वार्ध दिया है और फिर पूज्यपादके हवालेसे 'पूज्यपादेनोक्तं' ऐसा लिखकर ये वाक्य दिये हैं:—

"बुधे च योषां न समाचरेत्।
पूर्णासु योषित्परिवर्जनीया।
तथा योषिन्मघाकृत्तिकोत्तरासु।
सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान्।"

इन वाक्योंमेंसे पहले तीन वाक्योंको आचारादर्शमें 'वामनपुराण' के हवालेसे लिखा है और चौथे वाक्यको याज्ञवल्क्यका बतलाया है। चौथा वाक्य याज्ञवल्क्यस्मृतिके उपर्युक्त श्लोक नं. ८० का उत्तरार्ध है। इसके बाद इस श्लोक नं. ८० की टीकासे कुछ गद्य देकर जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, अकलंकस्वामिके हवालेसे यह वाक्य लिखा है:—

"लब्धाहारां स्त्रियं कुर्यादेवं संजनयेत्सुतामिति अकलंकस्मरणात्।"

यह वाक्य इससे पहले भी इस 'शयनविधि' प्रकरणमें आ चुका है और आचारादर्शमें इसे 'बृहस्पति' का लिखा है। इस वाक्यके अनन्तर, जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, 'तत्र पुष्पदंतः' ऐसा लिखकर तीन श्लोक दिये हैं जो मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायमें नं. ४७, ४८ और ४९ पर दर्ज हैं। आचारादर्शमें भी उनको 'मनु' के ही लिखा है। इन श्लोकोंके बाद कुछ गद्य देकर लिखा है कि 'इत्येतद्गौतमीयं सूत्र-द्वयं'। परन्तु यह सब गद्य याज्ञवल्क्यस्मृतिके श्लोक न. ८० की टीकासे लिया गया है। इसके पश्चात् जिनसेनत्रिवर्णाचारमे, 'यथा माणिक्यनन्दिः' ऐसा लिखकर यह श्लोक दिया है:—

"यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः॥"

यह 'याज्ञवल्क्यस्मृति'के प्रथम अध्यायका ५१ वाँ श्लोक है। परीक्षामुखके कर्ता श्रीमाणिक्यनन्दि आचार्यका यह वाक्य कदापि नहीं है। इस श्लोकके पूर्वार्धका यह अर्थ होता है कि स्त्रियोको जो वर दिया गया है, उसको स्मरण करता हुआ यथाकामी होवे। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'मिताक्षरा' टीकामे लिखा है कि इस श्लोकमें उस 'वर'का उल्लेख है जो इन्द्रने स्त्रियोंको दिया था और ऐसा लिखकर वह 'वर' भी उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—

"भवतीनां कामविहन्ता पातकी स्यात् इति यथा ता अब्रुवन् वरं वृणीमहे ऋत्वियात्प्रजां विन्दामहे काममाविजनिनोःसंभवाम इति। तस्मात् ऋत्वियात्स्त्रिय प्रजां विंदंति काममाविजनिनोः संभवंति वरं व्रतं तासामिति।"

जिनसेन त्रिवर्णाचारमें भी इस 'वर' को इन्द्रका ही दिया हुआ बतलाया है और मिताक्षरा टीकाके अनुसार 'स्त्रीणां वरमिन्द्रदत्तम-

नुस्मरन्' ऐसा लिखकर वरके वही शब्द ज्योंके त्यों नकल कर दिये है जो ऊपर उद्धृत किये गये हैं। इस वरका अर्थ इस प्रकार है कि:—

" जो तुम्हारी कामनाको न करेगा वह पातकी होगा—वे स्त्री बोलीं कि हम वरको स्वीकार करती हैं और ऋतुसे हमारे प्रजा (संतान) हो और प्रजाके होने तक कामकी चेष्टा रहे। इसी लिए स्त्री ऋतुसे ही संतानको प्राप्त होती है और संतान होने तक काम चेष्टा रहती है। यही स्त्रियोंका वर है।"

जैनसिद्धान्तसे थोड़ा भी परिचय रखनेवाले पाठक स्वयं समझ सकते है कि यह कथन जैनसिद्धान्तके बिलकुल ही विरुद्ध है। परन्तु फिर भी त्रिवर्णाचारका कर्ता, **माणिक्यनन्दि** जैसे प्राचीन आचार्योंको ऐसे उत्सूत्र वचनका अपराधी ठहराता है। इस धृष्टता और धूर्तताका भी कहीं कुछ ठिकाना है!!

इस 'वर' के पश्चात्, जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, '**इन्द्रवरे काठकप्रवचनं यथा**' ऐसा लिखकर उपर्युक्त 'यथाकामी ..' इत्यादि श्लोकके उत्तरार्धकी कुछ टीका दी है और फिर यह लिखा है कि, भोग करते समय कैसे कैसे पुत्रोंकी इच्छा करे, अर्थात् पुत्रोंकी इच्छाओंके सकल्प दिये है। इन सकल्पोंका कथन करते हुए एक स्थान पर यह लिखा है कि '**यथोक्तं जयधवले**' अर्थात् जैसा '**जयधवल**' शास्त्रमें कहा है। परन्तु ग्रंथकारका ऐसा लिखना बिलकुल मिथ्या है। **जयधवल** एक सिद्धान्त ग्रथ है, उसका इस प्रकारका विषय ही नहीं है।

इसके बाद जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, पुत्रोंकी इस इच्छाके सिलसिलेमें, '**यथाह जिनचंद्रचूडामणौ**' ऐसा लिख कर यह श्लोक दिया है:—

"ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्।
अनृतौ तु सदा कार्यं शौचं मूत्रपुरीषवत्॥"

आचारादर्शमें इस श्लोकको 'वृद्धशातातप' का लिखा है और वृद्धशातातपकी स्मृतिमें यह श्लोक न. ३३ पर दर्ज है। इस श्लोकके अनन्तर आचारादर्शमें 'गौतम' का नामोल्लेख करके गद्यमें मैथुनी शौचका कुछ वर्णन दिया है। जिनसेनत्रिवर्णाचारमें भी 'तथा च-गौतमः' लिखकर, यह सब वर्णन उसी प्रकारसे उद्धृत किया है। यहाँ न बदलनेका कारण स्पष्ट है। जैनियोंमे 'गौतम' महावीर-स्वामीके मुख्य गणधरका नाम है और हिन्दूधर्ममें भी 'गौतम' नामके एक ऋषि हुए है। नामसाम्यके कारण ही त्रिवर्णाचारके कर्ताने उसे ज्योंका त्यो रहने दिया है। अन्यथा और बहुतसे स्थानों पर उसने जान बूझकर हिन्दू धर्मके दूसरे ऋषियोंके स्थानमें 'गौतम' का परिवर्तन किया है। त्रिवर्णाचारके कर्ताका अभिप्राय 'गौतम' से गौतमगण-धर है। परन्तु उसे गौतमके नामसे उल्लेख करते हुए कहीं भी इस बातका जरा खयाल नहीं आया कि गौतमगणधरका बनाया हुआ कोई ग्रंथ नहीं है जिसके नामसे कोई वचन उद्धृत किया जाय और जो द्वादशांग सूत्रोंकी रचना उनकी की हुई थी वह मागधी भाषामे थी, संस्कृत भाषामें नहीं थी जिसमे उनके वचन उद्धृत किये जा रहे है। अस्तु; गौतमके हवालेसे दिये हुए इस गद्यके पश्चात् जिनसेन-त्रिवर्णाचारमें, 'तत्राह महाधवले' ऐसा लिखकर यह श्लोक दिया है:—

"द्वावेतावशुची स्यातां दम्पती शयनंगतौ।
शयनादुत्थिता नारी शुचि स्यादशुचि पुमान्॥"

आचारादर्शमें यह श्लोक 'वृद्धशातातप' के हवालेसे उद्धृत किया है और वृद्धशातातपकी स्मृतिमें न. ३४ पर दर्ज है। त्रिवर्णाचारके

कर्ताका इस श्लोकको '**महाधवल**' जैसे सिद्धान्त ग्रंथका बतलाना नितान्त मिथ्या है।

इस श्लोकके बाद आचारादर्शके अनुसार जिनसेनत्रिवर्णाचारमें इसी विषयका कुछ गद्य दिया गया है और फिर '**अथ धवलेप्युक्तं**' (धवल ग्रंथमें भी ऐसा ही कहा है) ऐसा लिखकर सात श्लोक दिये हैं। उनमेंसे पाँच श्लोकोमें यह लिखा है कि कैसी कैसी स्त्रीसे और किस किस स्थानमें भोग नहीं करना चाहिए। शेष दो श्लोकोंमे पर्वोंके नामादिकका कथन किया है। आचारादर्शमें ये सब श्लोक **विष्णुपुराणके** हवालेसे उद्धृत किये हैं। त्रिवर्णाचारके कर्ताने विष्णुपुराणके स्थानमें '**अथ धवलेप्युक्तं**' ऐसा बना दिया है। इन सातों श्लोकोंमेंसे अन्तके दो श्लोक इस प्रकार हैं:—

> **"चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याथ पूर्णिमा।**
> **पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥**
>
> **तैलस्त्रीमांसभोगी च पर्वस्वेतेषु य· पुमान्।**
> **विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं नरः॥"**

इन दोनों श्लोकोमेंसे पहले श्लोकमे जिन '**अमावस्या**' '**पूर्णिमा**' और '**रविसंक्रान्ति**' को पर्व वर्णन किया है, वे जैन पर्व नहीं है और दूसरे श्लोकमें जो यह कथन किया है कि इन पर्वोंमें तैल, स्त्री और मासका भोजन करनेवाला मनुष्य विष्ठा और मूत्रके भोजनवाले नरकमें जाता है, वह सब जैनसिद्धान्तके विरुद्ध है। इन सब श्लोकोंके अनन्तर, जिनसेन–त्रिवर्णाचारमें, **पात्रकेसरी** (विद्यानंद) के हवालेसे '**तथा च पात्रकेसरिणा**' लिखकर कुछ गद्य नकल किया है, जिसमें यह कथन है कि कैसी स्त्रीसे, कैसी हालतमे और कौन कौन

स्थानोंमें मैथुन नहीं करना चाहिए। यह सब गद्य आचारादर्शमें क्रमशः वासिष्ठ और विष्णुके हवालेसे उद्धृत किया है। इस प्रकार आचारादर्श और जिनसेनत्रिवर्णाचारमें '**शयनविधि**' का यह सब कथन समाप्त होता है। ऊपरके इस समस्त कथनसे, पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं कि जिनसेनत्रिवर्णाचारके बनानेवालेने जैनके नामको भी लज्जित करनेवाला यह कैसा घृणित कार्य किया है और किस प्रकारसे श्रीमद्भद्रबाहु, पुष्पदंत, समतभद्र, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलकदेव, माणिक्यनन्दि और पात्रकेसरी जैसे प्राचीन आचार्यों तथा धवल जयधवल और महाधवल जैसे प्राचीन ग्रथोंके पवित्र नामको बदनाम करनेकी चेष्टा की है। क्या इससे भी अधिक जैनधर्म और जैनसमाजका कोई शत्रु होसकता है? कदापि नहीं।

(३) जिनसेनत्रिवर्णाचारके १७ वें पर्वमे सूतकके चार भेदोंका वर्णन करते हुए 'आर्तव' नामके सूतकका कथन करनेकी प्रतिज्ञा इस प्रकार की गई है:—

"सूतकं स्याच्चतुर्भेदमार्तवं सौतिकं तथा।
मार्तं तत्संगजं चेति तत्रार्तवं निगद्यते ॥४॥"

इस प्रतिज्ञा वाक्यके अनन्तर प्रायः गद्यमें एक लम्बा चौड़ा अशौचका वर्णन दिया है और इसी वर्णनमें यह १७ वाँ पर्व समाप्त कर दिया है। परन्तु इस सारे पर्वमें कहीं भी उपर्युक्त 'प्रतिज्ञा' का पालन नहीं किया है। अर्थात् कहीं भी 'आर्तव' नामके सूतक या अशौचका कथन नहीं किया है। इस पर्वमें कथन है जननाशौच और मृताशौचका जिसकी कोई प्रतिज्ञा नहीं की गई। १८ वें पर्वमें भी पुनः अशौचका वर्णन पाया जाता है। परन्तु यह वर्णन गद्यमें न देकर केवल पद्यमें किया है। इस पर्वका प्रारभ करते हुए

लिखा है कि '**अथ वृत्तेन विशेषमाशौचमाह**'। अर्थात् अब पद्य द्वारा आशौचका विशेष[1] कथन किया जाता है। इस प्रतिज्ञाके बाद, १८ वें पर्वमें निम्नलिखित तीन श्लोक दिये हैं:—

> **" नत्वा श्रीश्वरनाथाख्यं कृतिना मुक्तिदायकम् ।**
> **विश्वमांगल्यकर्तारं नानाग्रंथपदप्रदम् ॥ १ ॥**
> **ब्राह्मणक्षत्रवैश्यानां शूद्रादीनां विशेषतः ।**
> **सूतकेन निवर्तेन विना पूजा न जायते ॥ २ ॥**
> **रजः पुष्पं ऋतु श्वेति नामान्यस्यैव लोकतः ।**
> **द्विविधं तत्तु नारीणां प्राकृतं विकृतं भवेत् ॥ ३ ॥**

ये श्लोक परस्पर असम्बद्ध मालूम होते है। इन श्लोकोमेसे श्रीईश्वर-नाथ नामके व्यक्तिको नमस्कार करके ऐसा लिखा है; परन्तु नमस्कार करके क्या करते है ऐसी प्रतिज्ञा कुछ नहीं दी। दूसरे श्लोकमें सूतकाचरणकी आवश्यकता प्रगट की गई है और तीसरे श्लोकमें यह लिखा है कि—रज, पुष्प और ऋतु, ये लोकव्यवहारमें इसीके नाम हैं और वह स्त्रियोंके दो प्रकारका होता है। एक प्राकृत और दूसरा विकृत। परन्तु इस श्लोकमे '**अस्यैव**' (इसीके) और '**तत्**' (वह) शब्दोंसे किसका ग्रहण किया जाय, इस बातको बतलानेवाला कोई भी शब्द इस १८ वें पर्वमें इससे पहले नहीं आया है। इसलिए यह तीसरा श्लोक बिलकुल बेढगा मालूम होता है। इस तीसरे श्लोक-का सम्बंध १७ वे पर्वमें दिये हुए उपर्युक्त श्लोक नं. ४ (सूतकं स्याच्चतः)से भले प्रकार मिलता है। उस श्लोकमें जिस '**आर्तव**' के कथनकी प्रतिज्ञा की गई है, उसी आर्तवके कथनका सिलसिला इस

---

१ विशेष कथन सिर्फ इतना ही है कि इसमें 'आर्तव' नामके अशौचका भी कथन किया गया है शेष जननाशौच और मृताशौचका कथन प्राय. पहले कथन-से मिलता जुलता है।

श्लोकमें और इससे आगेके श्लोकमें पाया जाता है। असलमें १७ वें पर्वका उपर्युक्त श्लोक नं. ४ और उससे पहलेके तीनो श्लोक तथा १८ वें पर्वका यह श्लोक न. ३ और इससे आगेके कुल श्लोक **सोमसेन त्रिवर्णाचारके** १३ वें अध्यायसे ज्योंके त्यों नकल किये गये हैं–जिन-सेनत्रिवर्णाचारके १७ वें अध्यायके पहले चार श्लोकोंको १८ वें पर्वके तीसरे श्लोक और उससे आगेके श्लोकोंके साथ मिला देनेसे सोमसेन त्रिवर्णाचारका पूरा १३ वॉ अध्याय वन जाता है—जिनसेन-त्रिवर्णाचारके कर्ताने सोमसेन त्रिवर्णाचारके १३ वें अध्यायको इस प्रकार दो भागोंमे विभाजित कर और उनके बीचमें व्यर्थ ही गद्यपद्य-मय आशौचका एक लम्बा चौड़ा प्रकरण डालकर दोनों पर्वोमें वड़ी ही असमजसता पैदा कर दी है और असमजसताके साथ ही एक वड़ा भारी अनर्थ यह किया है कि उक्त गद्यपद्यमय आशौच प्रकरणको प्राचीन जैनाचार्योंका वतलाकर लोगोंको धोखा दिया है। वास्तवमें यह प्रकरण किसी हिन्दू ग्रथसे लिया गया है। जिनसेन त्रिवर्णाचारके कर्ताने जिस प्रकार और कई प्रकरण हिन्दूधर्मके ग्रथोंसे उठाकर रक्खे है, उसी प्रकार यह प्रकरण भी किसी हिंदूग्रथसे ज्योंका त्यो नकल किया है। हिन्दुओंके धर्मग्रथोंमें इसप्रकारके, **आशौच-निर्णयके**, अनेक प्रकरण पाये जाते हैं, जिनमें अनेक ऋषियोंके हवालेसे विपयका विवेचन किया गया है। इस प्रकरणमें भी स्थान स्थान पर हिन्दू ऋपियोंके वचनोंका उल्लेख मिलता है। जिनसेन-त्रिवर्णाचारके वनानेवालेने यद्यपि इतना छल किया है कि हिन्दू ऋषियोंके नामके स्थानमें **गौतम, भद्रवाहु,** और **समंतभद्रादि** प्राचीन जैनाचार्योंका नाम डाल दिया है और कही कहीं उनका नाम कतई निकाल भी दिया है, परन्तु फिर भी ग्रथकर्ताकी असावधानी या

उसकी ना-समझीके कारण कई स्थानों पर कुछ हिन्दू ऋषियोंके नाम बदलने या निकालनेसे रह गये हैं। इससे साफ़ जाहिर है कि यह प्रकरण किसी हिन्दू ग्रंथसे चुराया गया है। इस प्रकरणके कुछ नमूने इस प्रकार हैं:—

(क) जिनसेनत्रिवर्णाचारमे आशौचका यह प्रकरण प्रारंभ करते हुए '**गौतम उवाच**' ऐसा लिखकर यह वाक्य दिया है:—

"आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयो ।
अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादिति"

यह वाक्य **मरीचि** ऋषिका है और 'आशौचनिर्णय' नामके बहुतसे प्रकरणोंकी आदिमे पाया जाता है। 'स्यात्' शब्दके बाद इसका चौथा चरण है—'**दशाहं मृतकं भवेत्**'। निर्णयसिंधु और **मिताक्षरादि** ग्रंथोंमें भी इस वाक्यको **मरीचि** ऋषिके नामसे उद्धृत किया है। परन्तु त्रिवर्णाचारके कर्ताने इसे **गौतम** स्वामीका बतलाया है।

(ख) इस प्रकरणमें जो वाक्य विना किसी हवालेके पाये जाते हैं, उनमेंसे कुछ वाक्य इस प्रकार हैं:—

"**पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः।
श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥**"

यह वाक्य '**पैठीनसि**' ऋषिका है। **मिताक्षरादि** ग्रंथोंके आशौचप्रकरणमें भी इसे पैठीनसिका ही लिखा हैं।

आत्मपितृष्वसुः पुत्रा आत्ममातृष्वसुः सुताः।
आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः॥ १॥
पितुःपितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः
पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः॥ २॥

मातु पितृष्वसु' पुत्रा मातुर्मातृष्वसु सुता ।
मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवा ॥ ३ ॥

इन तीनो श्लोकोंका 'स्मृतिरत्नाकर' आदि ग्रथेंमें विज्ञानेश्वरका वचन लिखा है। विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'मिताक्षरा' टीकाका कर्ता है। इस प्रकरणमें दूसरे स्थानोंपर 'इति विज्ञानेश्वरादय·' 'इद च सर्वे विज्ञानेश्वराद्यनुरोधेनोक्त,' 'इति विज्ञानेश्वर:,' इत्यादि पदोंके द्वारा विज्ञानेश्वरके नामका उल्लेख पाया जाता है। वह बदलने या निकालनेसे रह गया है।

(ग) उपर्युक्त श्लोकोंसे थोडी दूर आगे चलकर, इस प्रकरणमें, निम्न लिखित पॉच वाक्य दिये है:—

(१) 'असपिडस्यापि यद्गृहे मरणं तद्गृहस्वामिस्त्रिरात्रमित्यंगिरा: ।'

(२) 'एकरात्रमिति ।'

(३) 'तथा च गौतम:— त्र्यहं मातामहाचार्यश्रोत्रियेष्वशुचिर्भवेत् ।'

(४) 'प्रचेता: मातृस्वसामातुलयोश्च श्वश्रूश्वसुरयोर्गुरौ मृते चर्त्विजिज्यो च त्रिरात्रेण विशुध्यति ।'

(५) 'संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति गौतम: ।'

इन वाक्येंमें पहले नम्बरका वाक्य अंगिरा ऋषिका है। अंगिराका नाम भी इस वाक्यके अन्तमें मिला हुआ है। शायद इस मिलापके कारण ही त्रिवर्णाचारके कर्ताको इसके बदलनेका खयाल नहीं आया। अन्यथा उसने स्वय दूसरे स्थान पर, इसी प्रकरणमें, अगिरा

ऋषिके निम्न लिखित श्लोकको, 'तथा च गौतमः' लिखकर, गौतम स्वामीका बता दिया है:—

"यदि कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः।
तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥"

दूसरे नम्बरका वचन विष्णुका है। इसके अन्तमें 'विष्णु' ऐसा नाम नहीं दिया है। यह वाक्य 'असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एक रात्रमिति' ऐसा है। मिताक्षरामें भी इसको विष्णुका ही लिखा है। तीसरे नम्बरका वाक्य बृहस्पतिका है जिसके स्थानमें 'तथा च गौतमः' बनाया गया है। मिताक्षरामें भी 'बृहस्पतिका' लिखा है। चौथे नम्बरका वाक्य 'प्रचेताः' नामके एक हिन्दू ऋषिका है। इसके प्रारंभमें 'प्रचेता' ऐसा नाम भी दिया है। परन्तु मालूम होता है कि त्रिवर्णाचारके कर्ताकी समझमें यह कोई नाम नहीं आया है और इस लिए उसने इस 'प्रचेताः' को भी वाक्यके अन्तर्गत कोई शब्द समझकर ज्योंका त्यों रहने दिया है। इस वाक्यका अन्तिम भाग, 'मृते चार्त्विजि' मिताक्षरामें प्रचेताके नामसे उल्लिखित है। पाँचवे नम्बरका वाक्य वासिष्ठ ऋषिका वचन है। इसके अन्तमें 'धर्मो व्यवस्थितः' इतना पद और था जिसके स्थानमे 'गौतमः' बनाया है। मिताक्षरामें भी इसको वसिष्ठका ही वचन लिखा है।

(घ) एक स्थानपर 'श्रीसमन्तभद्रः' ऐसा लिखकर निम्न लिखित दो श्लोक दिये हैं:—

"प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुध्यति ॥
त्रिरात्रे तु ततश्चीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥"

---

१ यह श्लोक मिताक्षरामें भी अंगिरा ऋषिका लिखा है। वहाँ 'यदि' शब्दके स्थानमें 'अथ' दिया है।

ये दोनों श्लोक पराशर ऋषिके है और 'पाराशरस्मृति' में नम्बर ४७ और ४८ पर दर्ज हैं। मिताक्षरामे भी इनका पराशरके नामसे उल्लख है। त्रिवर्णाचारके कर्ताका इन्हें श्रीसमंतभद्रस्वामिके बतलाना निरी धूर्तता है।

(ड) इसी प्रकरणमें एक स्थान पर, 'विशेषमाहाकलंकः' ऐसा लिखकर, ये दो श्लोक दिये हैं:—

"वृद्धः शौचक्रियालुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः।
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यशनाम्बुभिः॥
तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः।
तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्॥"

ये दोनों श्लोक 'अत्रि' ऋषिके हैं और 'अत्रिस्मृति' में नम्बर २१४ और २१९ पर दर्ज है। इन श्लोकोंमें लिखा है कि 'यदि कोई वृद्ध पुरुष जिसे शौचाशौचका कुछ ज्ञान न रहा हो और वैद्योंने भी जिसकी चिकित्सा करनी छोड दी हो, गिरने या अग्निमें प्रवेश करने आदिके द्वारा, आत्मघात करके मर जाय तो उसके मरनेका आशौच सिर्फ तीन दिनका होगा। दूसरे ही दिन उसकी हड्डियोका सचय करना चाहिए और तीसरे दिन जलदानक्रिया करके चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिए।' जिनसेन त्रिवर्णाचारका कर्ता हिन्दूधर्मके इन वचनोंको श्रीअकलंक स्वामीके बतलाता है, यह कितना धोखा है!! इसी प्रकार और बहुतसे स्थानों पर हिन्दू ऋषियोंकी जगह गौतम और समंतभद्रादिके नामोंका परिवर्तन करके लोगोंको धोखा दिया गया है।

(४) पहले लेखमें यह प्रगट किया जा चुका है कि हिन्दुओंके ज्योतिषग्रथोंमें 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामका एक ग्रथ है और उस

---

१ अत्रिस्मृतिमें 'क्रियालुप्त' के स्थानमें 'स्मृतेर्लुप्त' दिया है।

ग्रथ पर 'प्रमिताक्षरा' और 'पीयूषधारा' नामकी दो सस्कृत टीकायें है। जिनसेन त्रिवर्णाचारमें इस मुहूर्तचिन्तामाणि ग्रंथ और उसकी टीकाओंसे बहुतसा गद्यपद्य उठाकर ज्योंका त्यों रक्खा गया है। इस गद्यपद्यको उठाकर रखनेमे भी उसी प्रकारकी धूर्तता और चालाकीसे काम लिया गया है जिसका दिग्दर्शन पाठकोंको ऊपर कराया गया है। अर्थात् जिनसेन त्रिवर्णाचारके बनानेवालेने कहीं भी यह प्रगट नही किया कि उसने यह कथन 'मुहूर्तचिन्तामाणि' या उसकी टीकाओंसे लिया है। प्रत्युत इस बातकी बराबर चेष्टा की है कि यह सब कथन जैनाचार्योंका ही समझा जाय। यही कारण है कि उसने अनेक स्थानों पर हिन्दू ऋषियोंके नामको जैनाचार्योंके नामके साथ बदल दिया है और कही कहीं हिन्दू ऋषियोंके नामकी जगह 'अन्यः' 'अन्यमत' या 'अपरमतं' भी बना दिया है जिससे यह भी उसी सिलसिलेमे जैनाचार्योंका ही मतविशेप समझा जाय। इसी प्रकार हिन्दूग्रंथोंके स्थानमें जैनग्रथोंके नामका परिवर्तन भी किया है। इस धूर्तता और चालाकीके भी कुछ थोडेसे नमूने नीचे प्रगट किये जाते है:—

१—मुहूर्तचिन्तामणिके संस्कार प्रकरणमें, टीकाद्वारा यह प्रस्तावना करते हुए कि '**अथ प्राप्तकालत्वादक्षराणामारंभमहूर्तं पंचचामरछंदसाह**' एक पद्य इस प्रकार दिया है:—

"गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पंचमाब्दके।
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक्॥
लघुश्रवो निलांत्यभादितीश तक्षमित्रभे।
चरो न सत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने॥ ३७॥"

जिनसेनत्रिवर्णाचारके १२ वें पर्वमें यह पद्य उपर्युक्त प्रस्तावनाके साथ ही दिया है। परन्तु इस पद्यको जैनमतका बनानेके लिए

इसके पहले चरणमें ' **गणेशविष्णु** ' के स्थानमें ' **जिनेशदेवि** ' ऐसा परिवर्तन किया गया है और **रमा** (लक्ष्मी) का पूजन बदस्तूर रक्खा है।

२—मुहूर्तचिन्तामणिके इसी संस्कारप्रकरणके श्लोक न. ५४ की ' **प्रमिताक्षरा**' टीकामें ' **तथा च वसिष्ठः** ' ऐसा लिखकर एक पद्य इस प्रकार दिया है:—

" या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य।
कृष्णो द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥"

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १२ वें पर्वमें, मुहूर्तचिन्तामणिके श्लोक न. ५४ को देकर और उसकी टीकामेंसे कुछ गद्य पद्यको नकल करते हुए, यह पद्य भी उद्धृत किया है। परन्तु इसके उद्धृत करनेमे यह चालाकी की गई है कि ' **तथा च वसिष्ठ:** " की जगह ' **अन्य:** ' ऐसा शब्द बना दिया है और अन्तिम चरणका,' **प्रोक्ता महावीरगणेशमुख्यैः,** ' इस रूपमें परिवर्तन कर दिया है, जिससे यह पद्य जैनमतका ही नहीं बल्कि **महावीर** स्वामी और **गौतमगणधर**का अथवा **महावीरके** मुख्यगणधर **गौतमस्वामी**का वचन समझा जाय। यहाँ ' **तथा च वसिष्ठः** ' के स्थानमें ' **अन्यः** ' बनानेसे पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं कि त्रिवर्णाचारके कर्ताका अभिप्राय इस ' **अन्य:** ' शब्दसे किसी अजैन ऋषिको सूचित करनेका नहीं था। यदि ऐसा होता तो वह ' **भरद्वाजमुनीन्द्र** ' के स्थानमें ' **महावीरगणेश** ' ऐसा परिवर्तन करनेका कदापि परिश्रम न उठाता। इसी प्रकार उसने और स्थानों पर भी ' अन्य., ' ' अन्यमत ' या अपरमत ' बनाया है।

३—उपर्युक्त श्लोक न ५४ की व्याख्या करते हुए, ' प्रमिताक्षरा' टीकामें, एक स्थानपर ' **नैमित्तिका अनध्यायास्तु स्मृत्यर्थसारे** '

ऐसा लिखकर कुछ गद्य दिया है। जिनसेन त्रिवर्णाचारमें भी वह सब गद्य ज्योंका त्यो नकल किया गया है। परन्तु उससे पहले '**नैमित्तिका अनध्याया भद्रबाहुसंहितासारे**' ऐसा लिखा है। अर्थात् त्रिवर्णाचारके कर्ताने '**स्मृत्यर्थसार**' नामके एक हिन्दू ग्रंथके स्थानमें '**भद्रबाहुसंहितासार**' ऐसा जैन ग्रंथका नाम दिया है। इसी प्रकार मुहूर्तचिन्तामणिके श्लोक न. ३९ की टीकामें '**आपस्तम्बगृह्यसूत्र**' के हवालेसे कुछ गद्य दिया हुआ है। जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वें पर्वमे वह गद्य ज्योका त्यो नकल किया गया है। परंतु '**आपस्तंबगृह्यसूत्र**' के स्थानमें '**उपासकाध्ययनसार**' ऐसा नाम बदलकर रक्खा है।

४ मुहूर्तचिन्तामणि (संस्कार प्रकरण) के श्लोक नं. ४० की टीकामें **नारद**के हवालेसे यह वाक्य दिया है:—

"**नारदेन यत्सप्तमीत्रयोदश्योः प्राशस्त्यमुक्तं तद्वसंताभिप्रायेणेति ज्ञेयम्**" जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वे पर्वमें यह वाक्य ज्योका त्यों नकल किया गया है। परन्तु '**नारदेन**' के स्थानमें '**भद्रबाहुना**' बनाकर इसको भी भद्रबाहुस्वामिका प्रगट किया गया है। इस वाक्यके पश्चात्, जिनसेन त्रिवर्णाचारमें, टीकाके अनुसार एक **उक्तंच** श्लोक देकर (जो नारदका वचन है) और '**भद्रबाहुसंहितायां गलग्रहास्तिथयः**' ऐसा लिखकर निम्न लिखित श्लोक और कुछ गद्य दिया है।

"**कृष्णपक्षे चतुर्थीति सप्तम्यादि दिनत्रयं। चतुर्दशी चतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः**" यह श्लोक और इससे आगेका गद्य दोनो **वसिष्ठ** ऋषिके वचन हैं, ऐसा टीकामें लिखा है। परन्तु त्रिवर्णाचारके कर्ताने इन्हें वसिष्ठके स्थानमे '**भद्रबाहुसंहिता**' का वतलाया है और

गद्यके अन्तमे टीकाके अनुसार जो 'सदिति वसिष्ठोक्तेः' ऐसा नकल करके रक्खा है उसका उसे कुछ भी खयाल नहीं रहा।

५-मुहूर्तचिन्तामणि (सस्कार प्र०) के श्लोक न. ४४ की दोनों टीकाओंमे निम्न लिखित श्लोक क्रमशः **नारद** और **वसिष्ठके** हवालेसे दिये हैं:—

> "शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिप बलं शिशो'।
> शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते॥
> शाखेशगुरुशुक्राणां मौढ्ये वाल्ये च वार्धके।
> नैवोपनयनं कार्यं वर्णेशे दुर्बले सति॥"

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वें पर्वमें इन दोनों श्लोकोंको **नारदादिके** स्थानमे '**गौतमः**' लिखकर गौतमस्वामिका बना दिया है। त्रिवर्णाचारके कर्ताको '**गौतम**' यह नाम कुछ ऐसा प्रिय था कि उसने जगह जगह पर इसका बहुत ही प्रयोग किया है। मुहूर्तचिन्तामणिके श्लोक न. ४२ की टीकामें एक स्थान पर यह वाक्य था कि '**कश्यपस्तूच्चस्थं लग्नस्थं चंद्रं सदैव न्यषेधीत्**'। इस वाक्यमें भी '**कस्यप**' ऋषिके स्थानमें '**गौतम**' बदलकर त्रिवर्णाचारके तार्नके '**गौतमस्तूच्चस्थं चंद्रं सदैव न्यषेधीत्**, ऐसा बना दिया है। इसी प्रकार मुहूर्तचिन्तामणिके श्लोक न० ४६, ५१ और ५२ की टीकामे कुछ श्लोक नारदके हवालेसे थे उन्हें भी नकल करते समय जिनसेन त्रिवर्णाचारमें **गौतमके** बना दिया है।

६—मुहूर्तचिन्तामणिमें श्लोक नं. ४४ की टीकाको प्रारभ करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि:—

> "यथा गुरु ऋग्वेदिनामीशोऽतो गुरुवारे गुरुलग्ने धनमीनाख्ये गुरुबले च सत्युपनयनं शुभम्।"

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वें पर्वमें भी यह वाक्य इसी प्रकारसे उपर्युक्त श्लोककी टीकाको प्रारंभ करते हुए दिया है। परन्तु 'ऋग्वेदिनामीशः' के स्थानमें 'प्रथमानुयोगिनामीशः', ऐसा बदल कर रक्खा गया है। इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी जहाँ टीकामे हिन्दूवेदोके नाम आये हैं जिनसेन त्रिवर्णाचारमे उनके स्थानमें जैनमतके अनुयोगोंके नाम बना दिये हैं।

(७) केशांतसमावर्तन मुहूर्तका वर्णन करते हुए, मुहूर्तचिन्तामाणिके श्लोक न. ६० की 'प्रमिताक्षरा' टीकामे, आश्वलायन ऋषिके हवालेसे एक श्लोक दिया है और उसके आगे फिर कुछ गद्य लिखा है। वह श्लोक और गद्यका कुछ अंश इस प्रकार है:—

"प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम्।
तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानाख्यं तत परम्॥
अत्र जाताधिकाराद्गोदानं जन्माद्यके तु षोडशे इति वृत्तिकारवचनात् त्रयोदशे महानाम्न्यादि भवंति। त्रयोदशे महानाम्नी चतुर्दशे महाव्रतं पंचदशे उपनिषद्व्रतं षोडशे गोदानमिति। एवं क्षत्रिय . ॥"

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १३ वे पर्वमें यह सब गद्य पद्य ज्योंका त्यों नकल किया गया है। परन्तु उपर्युक्त श्लोकसे पहले 'आश्वलायन' के स्थानमें 'श्रीभद्रबाहु' बना दिया है। इस गद्य पद्यमे जिन महानाम्नी और उपनिषद् आदि व्रतोंके अनुष्ठानका वर्णन किया गया है वे सब हिन्दू मतके व्रत है जैनमतके नहीं। इस लिए यह कथन जैनाचार्य श्रीभद्रबाहु स्वामीका नहीं हो सकता।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके बनानेवालेने इस प्रकार बहुतसे प्रकरणोंको हिन्दू धर्मके ग्रंथोसे उठाकर रखने और उन्हें जैनमतका प्रगट करनेमे बड़ी ही धूर्तता और धृष्टतासे काम लिया है। उसका यह

कृत्य बडी ही घृणाकी दृष्टिसे देखे जाने योग्य है। उसने नि:सन्देह जैनसमाजके साथ बडा ही शत्रुताका व्यवहार किया है। पाठकगण, ऊपरके इस समस्त कथनसे, स्वय विचार सकते है कि यह ग्रथ (त्रिवर्णाचार) कितना जाली और बनावटी है और ऐसी हालतमे यह कोई जैनग्रथ हो सकता है या कि नहीं। वास्तवमें यह **ग्रथ विपमिश्रित भोजनके समान त्याज्य है और** कदापि विद्वानोंमें आदरणीय नहीं हो सकता।

ता० ८–७–१४।

जुगलकिशोर मुख्तार।

धार्मिक अशोक।

(१)

दिन सुन्दर था, आकाशमें मेघ नहीं थे। शीतल वायु बह रहा था। अशोकने दरबारियोंसे कहा–“मै आज सदाकी नाई घूमने और आखेटके लिए जाता हूँ।” यह वीर युवा बडा ही पराक्रमी था। किसीको साथ तक न लिया, वेप बदलकर अकेला ही शिकारको चल दिया। कधे पर कमान लटक रही थी। कमरसे तलवार बँधी हुई थी। सारे शरीरसे फुर्तीलापन झलक रहा था। राजा पैदल ही पाटलीपुत्र (पटना) से पॉच सात मील चला गया। उस दिन इसने कितने जीवधारी वध किये, इतिहास इसका पता नहीं देता। परन्तु ऐसा माल्म होता है कि उसकी तबियत शीघ्र उकता गई और वह उल्टे पॉव शहरको लौट आया।

मार्गमें, गेरुआ वस्त्र पहने हुए एक साधु मिला, जिसकी बगलमें एक घायल पक्षी था। वह एक अस्वस्थ हरिणके बच्चेकी ओर भी ध्यानपूर्वक

देख रहा था। अशोकको आश्चर्य हुआ। साधु, और इस तरह जानवरकी ओर लक्ष्य दे! हो न हो, साधुके वेषमें यह कोई वञ्चक मनुष्य है। वह इसकी ओर घूमकर बोला "तुम कौन हो और क्या कर रहे हो?" साधुने कहा, "मैं मामूली भिक्षु हूँ, मैंने गुरुके नाम पर प्रत्येक प्राणीकी सेवा करनेका व्रत लिया है। यहाँसे आधे मील पर एक विहार है, वहीं मैं निवास करता हूँ।"

राजा—"यह सब ठीक है परन्तु यह पक्षी जो तुम्हारे बगलमें है और यह हरिणका बच्चा जिसको तुम ध्यानपूर्वक देख रहे हो, इनसे तुम्हारा मंशा क्या है?"

साधु—"मुझको अभी कुछ और कहना है। बुद्ध देवकी आज्ञा है कि सब प्राणियोंकी रक्षा करो। बुद्ध गुरुके सब शिष्य यह व्रत धारण करते हैं। तुम देखते हो कि यह पक्षी घायल है। किसीने इसे तीर मारा है। इसी प्रकार इस हरिणके बच्चेका हाल है। मैं प्रातःकालके नित्यकर्मसे अवकाश पाकर यहाँ घूम रहा था। घायल पक्षी उड़ता हुआ आकर मेरे पैरोंसे चिपक गया। मैं इसे गोदमें लेकर ढाढस देने लगा। थोड़ी ही देर बाद यह हरिणका बच्चा भी लड़खड़ाता हुआ आकर मेरे पास गिर पड़ा। मैंने इसके घाव पोंछे और अपना वस्त्र फाड़कर उन्हें बाँध दिया। खून निकलना बंद हो गया। अब मैं इस चिन्तामें हूँ कि किसी तरह इसे विहारमें ले चलूँ और वहाँ इनकी चिकित्सा करके फिर वनमें छोड़ दूँ। परन्तु विहार यहाँसे कुछ दूर है। मैं बूढ़ा हूँ। यह सोच रहा हूँ कि किस प्रकार इसे उठाऊँ जिससे इसको भी कष्ट न हो और मैं भी सरलतासे विहार पहुँच सकूँ। और कोई भिक्षु दृष्टि नहीं पड़ता। इसी सोच विचारमें पड़ा हूँ।"

अशोक—"धूर्त साधु, ये सब तेरी धोखेबाजीकी बाते है। तू इनका मॉस खाना चाहता है और इसी विचारसे इनको लिये जाता है। सुन! ये दोनों मेरे तीरसे घायल हुए हैं। मैंने ही इनको मारा है। इन पर मेरा स्वत्व है, तेरा नहीं। तुझको कैसे हिम्मत हुई कि तू दूसरेके मारे हुए शिकारको ले जाना चाहता हैं? उनको यहीं रख दे और अपनी राह ले।"

साधुने ध्यानपूर्वक अशोकको देखा और कहा "क्षत्रिय, आज तक आर्य धर्मके भिक्षुको किसीने ऐसे अपशब्द नहीं कहे। या तो तू धर्मको नहीं जानता, या आज तक तूने भगवान बुद्धका नाम नही सुना जिन्होंने सब ससारके कल्याणके लिए राज काजको छोडा और सब जगतको दुःखोंसे छुटकारा दिया—निर्वाणका मार्ग बतलाया। क्या तूने सचमुच ही शाक्य मुनिका नाम नहीं सुना? अस्तु, अब मैं तुझसे कहता हूँ कि हमारे गुरुकी आज्ञा है कि दुःखियोंकी सहायता करो, रोगियोको औषध दो, अज्ञानियोको विद्या दो, भूखोंको अन्न, प्यासोंको पानी और वस्त्रहीनको कपडा दो।

"हम लोग भिक्षु बनकर अपनी शक्ति भर धर्मका पालन करते है। हमारे विहारमें रोगी मनुष्योंके लिए अलग और रोगी पशु पक्षियोंके लिए अलग औषधालय है। हम उनका इलाज करते हैं। घटों रोगी-के सिरहाने बैठ कर धर्मकी पुस्तके सुनाते रहते हैं। हम उन्हे पढ़ाते लिखाते भी है, जिससे धर्मके ज्ञानसे कोई भी वञ्चित न रहे। तूने बिना समझे हुए मुझको ऐसे दुर्वचन कहे। मै बुरा नहीं मानता। अपनी अपनी समझ। तू मुझको और भी गालियॉ दे ले, परन्तु मुझसे इन दुःखी प्राणियोंको मत छीन, चाहे इनके बदले तू मुझे मार दे। मुझे जीवन प्रिय नहीं है, परन्तु ये प्रिय है। साधु समझ कर ये मेरे

शरणमें आये हैं। प्राण जायँ तो जायँ, परन्तु हम जीते जी, शरणागतमें आये हुओंको अपनेसे जुदा नहीं करते। मुझको धर्मके कार्य करनेका अवसर मिला है, उससे तू मुझे वञ्चित मत कर।"

अशोकको अपने जीवनमे ऐसी बातें सुननेका यह पहला ही मौका था। परन्तु इसे साधु पर जरा भी विश्वास न था। इसने सोचा विहार तक चलकर इसके सच और झूठकी परीक्षा करना चाहिए। इसने उससे कहा "बहुत अच्छा; मैं इस घायल हरिणको अपनी पीठ पर लाद ले चलता हूँ। इसे विहारमें पहुँचा दूँगा।"

साधु बोला, "मैं समझता हूँ कि तेरी मशा क्या है। अधर्म करनेके कारण तुझे मेरा विश्वास नहीं है। तू मेरे साथ चल, परन्तु इन जीवधारियोंको हाथ मत लगा। ये तेरी सूरतसे दुःखी है। तेरे शरीरकी वास और असरसे इन्हे कष्ट पहुँचेगा। हाँ, इतना तू कर सकता है कि हरिणको उठाकर मेरी पीठ पर लाद दे और कपड़ेसे बाँध दे। मैं अकेला और बूढ़ा हूँ।" अशोकने हरिणको हाथ लगाया। कहाँ तो अभी वह विश्वासके साथ बूढ़े भिक्षुके सामने पड़ा था और कहाँ अशोकके हाथ लगाते ही चिल्लाने लगा। पक्षी भी एकाएक चीख उठा। साधुने कहा "भाई! तू देखता है कि इन प्राणियोंको तुझसे घृणा है। वे तुझसे डरते है। देख! किस प्रकार ये मुझसे चिपटे जाते हैं, यद्यपि अभी इनको मेरे पास आये पन्द्रह मिनटसे अधिक नहीं हुए है।"

अशोक बोला "यह केवल कहनेकी बात है। पशु पक्षियोंमें इतनी बुद्धि कहाँ?" साधुने उत्तर दिया, "तूने अभी तक धर्मको नहीं जाना। बुद्धिसे कोई भी खाली नहीं है। जिसका जैसा शरीर है, उसीके अनुसार उसकी बुद्धि है। तूने देखा होगा कि पारधी

जब बाजारसे होकर निकलते है तब कुत्ते और कौवे उन्हे देखकर शोर मचाते है; परन्तु साधुओंके साथ उनका ऐसा वर्ताव नहीं होता। वहुधा भयानक अनजान कुत्ते और जगली जानवर भी पूँछ हिलाते हुए भिक्षुओंके साथ प्रीतिका परिचय देते हैं। इनको इतनी समझ है कि ये (भिक्षुक) निरपराध और अहिंसक हैं। ये हिंसकसे इतना लगाव कभी नहीं रखते। हमारा धर्म अहिंसा है। बुद्ध देवका वचन है,—'अहिसा परमो धर्म ·।'

अशोकको और भी आश्चर्य हुआ। साधुकी निर्भयता और प्रेम-भावने उसके दिल पर बडा असर किया। वह निस्तब्ध हो रहा और प्रतीक्षा करने लगा कि साधु फिर उससे सहायताके लिए प्रार्थना करे। किन्तु उसने कुछ नहीं कहा और किसी तरह वह स्वत हरि-णको पीठ पर लादकर और पक्षीको बगलमें दबा कर राजाके साथ साथ विहारकी ओर चल पडा।

२

जिस समय साधु विहारके निकट पहुँचा, कई युवा भिक्षु इसकी ओर दौडे। उन्होंने इसकी पीठसे बोझको ले लिया। अबकी बार हरि-णने किञ्चित् मात्र भी शोर नहीं किया, उसने चुपचाप और आनदसे विहारमे प्रवेश किया।

विहार क्या था, अशोककी दृष्टिके लिए नया जगत् था। चारों ओर पक्की कोठरियाँ बनी थीं। पशु पक्षी जहाँ तहाँ निडर होकर घूम फिर रहे थे। कहीं घायल और कोढियोंका इलाज हो रहा था। भिक्षु अपने हाथोंसे घावोंको धोकर मरहमपट्टी करते थे। कहीं और तरहके रोगियोको औषध दी जाती थी। एक ओर पक्षियोंके जख्मो पर पट्टी बाँध कर मरहम लगानेके उपरात, वे अहातेमें चलने फिरनेके लिए

छोड़ दिये जाते थे। दूसरी ओर रोगी पशुओंकी चिकित्सा हो रही थी। एक स्थानमें लड़के पढ़ रहे थे। दूसरे स्थान पर मत मतान्तरों पर शास्त्रार्थ हो रहे थे। तीसरी जगह पर शहरके लोग अपने मुकदमे फैसल करानेके लिए भिक्षुओंसे प्रार्थना कर रहे थे। अशोककी आँख खुल गई। यह विहार क्या है, यह तो सचमुच धार्मिक जगत् है। स्थान बहुत सुन्दर और लम्बा चौड़ा था। बीचमें कई एक बीघोंका सरोवर था जिसके किनारे सुन्दरताके साथ सुन्दर पौधे और लतायें लगी हुई थीं। सब भिक्षु काम काज कर रहे थे। किसीको मूर्ति बनानेकी रुचि थी। कोई कोई और प्रकारकी कारीगरीमें लगे हुए थे। सबके मुखमण्डलोंसे शान्तता और आनद बरस रहा था। भिक्षु दोनों प्राणियोंको औषधालयमें लाया। गर्म जल मौजूद था। उसने अपने हाथों एकके बाद एक उनके जख्म धोये। फिर मरहम पट्टी बाँध कर उन्हें विहारमें छोड दिया। वे वृक्षोंकी छाँहके नीचे आरामसे बैठ गये। कई पक्षी चुहचुहाते हुए इस भिक्षुके समीप आये। उसने उनकी पीठ पर हाथ फेरा, औषध दी और फिर उनके खानेका बन्दोबस्त करा दिया। बुद्धि हैरान थी; जानवर मनुष्यसे ऐसे कब हिल मिल सकते हैं। यह बात है, जो केवल बौद्ध साधुओंमें, संसारने किसी समय देखी थी। वे पूरे पूरे अहिंसक थे और अहिंसक होनेके कारण, न कोई उनसे डरता था, और न वे किसीसे डरते थे। यहाँ पर यह बात दृष्टिगोचर होती थी, जैसा कि श्रीभगवद्-गीतामें कहा है कि " ज्ञानीको न किसीका भय होता है और न उससे कोई डरता है "।

विहारका क्षेत्रफल डेढ़ दो मीलसे कम न रहा होगा। इसमें कई हजार साधु निवास करते थे। मठ क्या था, एक खासा छोटासा

कस्बा था। भिक्षु अपने कार्यमें दत्तचित्त होनेके कारण अशोकको भूल गया। यह वहाँ खडा खड़ा धर्मके तमाशे देखता रहा। जब साधुको अवकाश मिला, तब उसकी दृष्टि इस पर पड़ी। मुस्कराकर उसने कहा, "क्यों क्षत्रिय भाई, अब तुझको मेरी बात पर कुछ विश्वास हुआ? हम बुद्ध भगवानके दास और सेवक हैं। जहाँ तक हो सकता है हम कभी कोई कार्य ऐसा नहीं करते जिसकी बुद्ध भगवानने आज्ञा नहीं दी है।"

जिस समय वह भिक्षु अशोकसे वार्तालाप कर रहा था, उस समय कई और भिक्षु उधरसे आ निकले। एकने उस बात करनेवालेके कानमें झुककर कुछ कहा। फिर वह मुस्कराता हुआ उठा और बोला, "महाराजा अशोक, तेरी जय हो; मैंने तुझको अब तक क्षत्रियके नामसे सम्बोधन किया है। हम भिक्षु राजदर्बारमे नहीं जाते, इस लिए, अपने देशके राजाको कम पहचानते हैं। किन्तु तू देखता है कि हम लोग अपने सच्चे दिलसे तेरे राज्यकी सेवा कर रहे हैं। देख! ये लडके हमारे यहाँ राजधानीसे पढ़ने आये हैं; इनको धर्मशिक्षा मिलती है। ये पक्के राजभक्त होंगे। देख! ये लडने झगड़नेवाले लोग, जिस प्रकार साधुओंके फैसला पर राजी होते है वैसे न्यायाधीशके फैसलेसे सतुष्ट नहीं होते। चिकित्सा व इलाज भी राज्यका काम है, किन्तु हम किसीसे बिना कुछ बदलेमें लिये हुए यह सब कार्य करते है, और साथ ही जो कोई हमसे सहायता माँगने आता है, उसको धर्म-शिक्षा भी देते हैं। राजन्! तेरी जय हो। हम सब भिक्षु तुझको आशिर्वाद देते है कि तेरा राज्य धर्मका राज्य हो; और तेरे राज्यमें रह कर प्रजा रामके राज्यको भी भूल जाय।"

२

अशोक बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने हाथ बाँधकर कहा—"श्रमण, मैंने आपको धूर्त और कपटी कहा है। भूलसे ये शब्द मेरी जिह्वासे निकल गये हैं। क्या ये क्षमा किये जा सकते है?" साधु हँसा और बोला—"राजन्! तूने तो भूलसे ऐसी बातें कही हैं, किन्तु जो जान बूझकर भी हमको गाली देते है हम उन्हें गाली नहीं देते, किन्तु सर्वदा क्षमा करते हैं। जो हमसे बदी करता है, हम उससे नेकी करते हैं। जो हमसे शत्रुता करता है, हम उस पर प्रेम करते हैं। जो हमें मारनेके लिए लात उठाता है, हम उसकी लातसे काँटे निकालते हैं। यह हमारा धर्म है। भगवान् बुद्धकी आज्ञा है कि संसारके प्राणीमात्र पर प्रेम करो; उनके अपराध पर मत जाओ। वे अज्ञानी है, अज्ञानीसे केवल अज्ञानी लड़ता है। वे तो हमारे ही समान प्राणी हैं; हम उनसे कैसे शत्रुता करें? 'धम्म-पद' नामक ग्रन्थमें बुद्धदेव कहते है कि जैसे टूटेफूटे छप्परसे पानीकी बूँदे टपकतीं है, वैसे ही अज्ञानियोंके हृदयसे बुराई और क्रोधके विचार निकलते हैं। जैसे अच्छे छप्पर परसे पानी बह जाता है, वैसे ही औरोंका क्रोध ज्ञानियोंके सामनेसे निकल जाता है, कुछ उनकी हानि नहीं करता। दूसरे एक स्थानमें सद्गुरुका वाक्य है; कि धार्मिक वह है जो धर्मको जानता है, जिसमें ईर्षा, अज्ञान, घृणा, और शत्रुता नहीं है, और वही पुरुष बुद्धका शिष्य तथा बौद्ध धर्मका भिक्षु है। जिसमें क्रोध नहीं है उसको शान्तिकी निद्रा आती है। जिसने क्रोधको हृदयसे निकाल दिया है, उसके समीप दुःख नहीं आता। दूसरा आदेश यह है कि क्रोध पर विजय प्राप्त करनेसे बढ़कर दूसरा कोई कार्य नहीं है। क्योंकि क्रोधसे संताप होता है और वह क्रोधीको इस प्रकार झुलस देता है जैसे कि अग्नि झुलस देती है। जो घृणाके

बदले घृणा करता है, उसको शान्ति नहीं मिलती। जो घृणाको सहन करता है, उसीको शान्ति मिलती है और यही धर्म है। विजय करनेसे घृणा उपत्न्न होती है। क्योंकि पराजित पुरुष दुःखी होते हैं। किन्तु जिसने जय और पराजय दोनोका त्याग कर दिया है वह सुखी और शान्त हैं। धम्मपदमें लिखा है कि किसीसे कटु वचन मत कहो, क्योंकि वह भी वैसे ही वचन कहेगा। क्रोधसे सताप उत्पन्न होता है। भगवान् एक स्थान पर कहते है कि ज्ञानी वह हैं जिसने शरीरको, मनको और जिह्वाको वशमें कर लिया है। हे राजन्! अब तू स्वतः समझ ले कि मेरे मनमें तेरी बातोका खयाल भी है कि नहीं। सुन!

खोद खाद धरती सहे, काट कूट वनराय
कुटिल वचन साधू सहे, औरसे सहा न जाय॥

हम सब लोग धर्मके सेवक है। जगतके सेवक है। प्राणीमात्रके सेवक हैं। हमारा अपमान जो चाहे सो कर जाय, किन्तु हम किसीका अपमान न करेंगे। नहीं तो हमको आर्यधर्मका भिक्षु कौन कहेगा और हम बुद्ध धर्मके शिष्य कब कहे जायँगे"

अशोकसे नहीं रहा गया। उसकी डबडबाई हुई आँखोंसे आँसू निकल पड़े। उसने हाथ बाँधकर भिक्षुओंसे विदा माँगी। दिनके बारह बज गये थे। वह अपने महलमें पहुँचा। दिन और रात भर वह इस घटना पर विचार करता रहा। निदान निद्रादेवीने उसे अपनी गोदमें आश्रय दिया।

३

अभी अँधेरा ही था कि अशोकने शय्या परित्याग की। सोचने लगा कि मुझको कल निसदेह सच्चे धर्मका दृश्य देखनेका सौभाग्य

प्राप्त हुआ। इसमे जरा भी संदेह नहीं कि मै भी किसी न किसी धर्मका पालक हूँ। परन्तु यह जीवित धर्म प्रतीत होता है जो इस प्रकार आनन फानन जीवनकी काया पलट देता है। बौद्ध धर्मके भिक्षु सचमुचमें धर्मकी जीती जागती मूर्तियाँ है। इनका जीवन अमली है। इनका धर्म पुस्तकोमे नहीं, किन्तु इनके शरीर, हृदय, मस्तक, वचन और कार्यमे है और धर्मका गुण भी यही है। धर्म पर वादविवाद करनेसे लोगो पर उसका इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि उसके सिद्धान्तोको कार्यरूपमें परिणत कर दिखानेसे पड़ता है। क्योंकि यह कर्मका मार्ग है।

इस तरह सोचता हुआ वह उठा और आवश्यक नित्य कर्मोंसे छुट्टी पाकर, स्नान, करनेके पश्चात् 'विहार' में आया। वह भिक्षु जिससे इसकी मुलाकात हुई थी, अपनी कोठरीमे ध्यान कर रहा था। जब उसे ध्यानसे अवकाश मिला तब अशोक उससे मिला, और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"श्रमण, मैं तुम्हारे धर्ममें सम्मिलित होना चाहता हूँ।" उसने उत्तर दिया-"शुभ हो; जिनमें धर्मकी तृषा है, वे धन्य हैं। क्योंकि उनके द्वारा सैकडो और हज़ारोंका भला होता है। यदि महाराजको इच्छा है तो पहले चाहिए कि इस धर्मका दूसरे धर्मोंके साथ मुकावला करें ताकि सबके भेद माळूम हो जायँ। उसी समय आपके धर्ममे सम्मिलित होनेका मतलब निकलेगा। बुद्ध भगवानकी परमार्थसूत्र नामी पुस्तकमे यह आज्ञा है कि जिसमें घमंड है, जो दूसरोंके विरुद्ध संकीर्ण विचार रखता है, उस ब्राह्मणको कोई तब्दील नहीं कर सकता। फिर महादेव सूत्रमे लिखा है कि मुनि वह है जो प्रत्येक वस्तुको समदृष्टिसे देखता है, मनका दास नहीं है और संसारसे लगाव नहीं रखता है। ब्रह्मजाल सूत्रमे

लिखा है कि जो हमारे साथ नहीं है या हमारी बात या हमारा धर्म नहीं मानते, उनके साथ क्यो क्रोध प्रकाशित करते हो ? हे राजन्! हमारा धर्म निष्पक्ष धर्म है। हम बौद्ध धर्म पालने पर भी औरोंके धर्मकी निन्दा नहीं करते।"

अशोकने उत्तर दिया कि, "मैंने बौद्ध धर्मकी सब खूबियोंको अच्छी तरह समझ लिया है और मैं उसके तत्त्वोंको हृदयसे मानता हूँ।"

इसके बाद और अधिक वार्तालाप नहीं हुआ। उस भिक्षुने तमाम भिक्षुओंको बुलाया और सबके समक्ष महाराजा अशोकको दीक्षा दी। राजाने बौद्ध धर्म और सघकी शरण ली और वह प्रसन्न होकर राजधानीको लौट गया। उस दिनसे उसका जीवन पलट गया। वही अशोक जो पहले 'निर्दयी' नामसे प्रसिद्ध था, अब 'प्रियदर्शी' और 'देवप्रिय' कहलाने लगा।

उसने बडी खूबीके साथ राज्य किया। उसके राज्यमें शेर बकरी एक घाट पानी पीते थे। पुत्र, माता पिताकी आज्ञा मानता और स्त्री, पतिकी आज्ञामें चलती थी। जितने मठ (विहार) थे, वे सब औषधालय पाठशाला और न्यायालयके रूपमें परिणत हो गये। भिक्षु सबको मुफ्तमें शिक्षा देते थे, सबका इलाज करते थे, और सबका झगड़ा निपटाते थे। लड़के लड़कियोंकी शिक्षाका द्वार खोल दिया गया। भिक्षु लड़कोंको और भिक्षुणियाँ लडकियोंको पढाती थीं। ये भिक्षु गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए गॉव गाँव, और घरो घरोंमें दौरा किया करते थे कि कहीं कोई व्यक्ति धर्मके विरुद्ध तो कार्य नहीं करता। सड़कें बनवाई गई। इनके किनारे दुतरफा वृक्ष लगाये गये, पॉच पॉच कोस पर बाग बगीचे, सराय, कुए, तालाब बनवा दिये गये। हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक और पूर्वीय विहारसे लेकर काश्मीर और

समरकंद तक अशोकका झडा फहराने लगा, और वह झंडा धर्मका था।

अशोकका समय सचमुचमे हिन्दू-इतिहासका सुनहरी समय है। प्राचीन वार्तोका तो वर्णन करना ही व्यर्थ है; परन्तु जहाँ तक इतिहास पता देता है संसारमे किसी जगह ऐसी सभ्यता और शिक्षाका प्रचार न कभी हुआ था और न अब है। क्योंकि बौद्धकी सभ्यताकी नींव बिलकुल धर्म पर थी।

४

बौद्धधर्म ग्रहण करनेके कुछ ही दिवस पश्चात् अशोकको भिक्षुओंने इत्तला दी कि तथागतके धर्मभे लोग गडबड़ी मचा रहे है और इनके बीच भी अब बहुत कुछ वादविवाद होना आरंभ हो गये हैं। महाराजने कुल देशमें डौंडी पिटवा दी कि धर्मके तत्त्वके निर्णय करनेके लिए सब देशोंके भिक्षु राजधानीमे इकट्ठा हों। ऐसा ही किया गया और बहुत बड़ी सावधानी और बुद्धिमानीके साथ लोगोंने राजाकी आज्ञा पाकर, धर्मके तत्त्वोंको लिपिबद्ध किया; और बड़ी सरलतासे कुल देशमें उसका प्रचार हुआ। यह संसारका पहला महाधर्ममहोत्सव था, जिसमें सब देशोंके भिक्षु बुलाये गये थे।

इस महत् कार्यके पश्चात् महाराजने अपने तमाम देशोमें स्थान स्थान पर धर्मस्तम्भ खड़े किये, जिनमे उसकी आज्ञायें खोदी हुई थीं और जिनके पालन करनेका उसने सख्तीके साथ आदेश दिया था। (ये आज्ञाये जैनहितैषीके छठे भागके प्रथमाङ्कमें प्रकाशित हो चुकी है।)

५

अशोकने इस खूबीसे देशदेशान्तरोमें धर्मका प्रचार किया कि उस समयके सब संसारमें उसका डंका बजने लगा। पेलिस्ताइन, फारस,

मिसर, यूनान, इत्यादि कोई भी देश ऐसा नहीं था जहाँ बुद्धधर्मके प्रचारक न गये हों और थोडा बहुत धर्मका प्रचार न हुआ हो।

एक समय राजाको समाचार मिला कि लकामें धर्मकी बड़ी हानि है और कोई भिक्षु वहाँ काम नहीं कर सकता। अशोकने कहा कि मैं धर्मके लिए सब कुछ बलिदान कर सकता हूँ। लड़के बच्चे, राज वैभव सब धर्म पर न्योछावर है, और ऐसी दशामें कैसे आशा करूँ कि मुझको लकामें धर्मके प्रचार करनेमें असफलता होगी। उसी समय उसने अपने पुत्र महेन्द्रको राजसभामें बुला भेजा।

अशोक—" महेन्द्र बेटे, मै चाहता हूँ कि तू धर्मराज बने और लकामें जाकर धर्मका प्रचार करे।"

महेन्द्र—"महाराज, जो आज्ञा। यह मेरा सौभाग्य हैं कि मैं धर्म-प्रचारार्थ लका भेजा जा रहा हूँ।" अशोकने उसी समय उसे भिक्षुकी दीक्षा दिलाई, गेरुआ वस्त्र पहना दिया और लका जानेकी आज्ञा दे दी। परन्तु दो चार मिनटके पश्चात् वह कहने लगा कि इस प्रकारसे लकामें धर्मकी उन्नति कठिनाईसे होगी। उसी समय उसकी आज्ञासे उसकी इकलौती लडकी महेन्द्री(?)बुलाई गई, और राजाने उसकी ओर प्रीतपूर्वक देखकर कहा कि, " पुत्री, तेरा भाई भिक्षु बनकर लकामें धर्मका प्रचार करने जा रहा है। प्रियदर्शीकी इच्छा है कि तू भी भिक्षुणी होकर वहाँ औरतोंमें धर्मप्रचार करे। क्यों कि केवल पुरुषोंके धार्मिक होनेसे धर्मकी असली उन्नति नहीं होती।" लडकीने स्वीकारता प्रकट की। उसको भी दीक्षा दी गई और सब आभूषण तथा राज्यालकार उतार कर उसने भी गेरुआ वस्त्र धारण किया। जब ये दोनों चलनेको हुए, अशोकने कहा कि, " मेरी आज्ञा यह भी है कि मैं जबतक न बुलाऊँ

तुम कभी लंकासे इस तरफ़ न आओ "। अशोककी सच्ची संताननें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारता प्रकट की।

इन दोनोंने मिल कर थोड़े ही समयमें लंकाको धर्मसे विजय कर लिया और सब बुद्धगुरुका नाम लेने लगे। महेन्द्र गयाजीसे एक महाबोधि वृक्षकी डाली ले गया था, जो अनुरुद्धपुरमें लगा दी गई थी। अब वह शाखा एक बहुत विस्तीर्ण वृक्षके रूपमें परिणत हो गई है जो महेन्द्रकी धार्मिक विजयकी एक बड़ी ज़बरदस्त यादगार है।

जो इस प्रकार धर्मके लिए आत्मत्याग कर सकता है, कैसे संभव है कि उसको सफलता प्राप्त न हो। सिर्फ़ यही दो बलिदान नहीं थे, बुद्धधर्मके लिए अशोकने ससारमे क्या नहीं किया? जब उसने सुना कि राजकुमार और राजकुमारीने लंकाको धार्मिक बना दिया, तब उसको अपूर्व आनंद हुआ; किन्तु उसने उन्हे कभी आर्यावर्तमे वापिस नहीं बुलाया और न उन्होने खुद वापिस आनेकी प्रार्थना की। जब कभी दरबारियोंने लड़की-लड़केका स्मरण कराया, अशोकने यह कह कर टाल दिया कि उनको मैने धर्मके नाम पर बलिदान कर दिया है अब उनका ख़याल करना व्यर्थ है।

अशोक जन्मभर धर्मका अनेक प्रकारसे प्रचार करता रहा और उसने जीते जी उसकी सफलता भी देख ली।

निदान युधिष्ठिर संवत्के १७९१ वें वर्षमें, ४५ वर्ष राज्य करनेके पश्चात् फाल्गुन कृष्णा १० वीं शनिवारके दिन मूगी शहरमें अशोकने प्राणत्याग किये और उसके पश्चात् उसका दूसरा पुत्र स्वेशा सिंहासन पर बैठा।

अशोक यद्यपि मरनेको मर गया, परन्तु अपने सत्कर्मोंके कारण वह अभी तक जीवित है, और उसका धार्मिक जीवन शिक्षा-

का दीपक बनकर अंधकारके समय मार्ग भूले हुओंको रास्ता बतलाता है।

धन्य है वे लोग, जो सत्यताको देखते हैं, उसका आदर करते हैं और उसकी सहायतासे अपने जीवनको सुधार लेते हैं।"*

भैयालाल जैन,
गाडरवारा।

स्वर्गीय वीरचन्द राघवजी गाँधी और जैनसमाज।

जिस समाजके हृदयमें अपने पूर्वजों, विद्वानों और निःस्वार्थ सेवकोंकी प्रतिष्ठा नहीं है, वह समाज उन्नतिके दुर्गम मार्ग पर कदापि नहीं चल सकता। जिस समाजने अपने सुयोग्य पुरुषोंके अश्रान्त कार्योंसे कुछ भी शिक्षा प्राप्त नहीं की, वह समाज इस विशाल संसारके उन्नतपथगामी समाजोंकी बराबरी नहीं कर सकता—वह उनमें शामिल भी नहीं हो सकता है। उस समाजके प्रत्येक व्यक्तिका जीवन नीरस स्वार्थपूर्ण और दुःखमय बनता जाता है।

भारतवर्ष यद्यपि भिन्न भिन्न समाजोंमें बँटा हुआ है, तथापि यदि अज्ञानताकी मोटी मोटी दीवालों पर दृष्टि न डालकर कोई उसके इस विचित्र सामाजिक गठनको देखेगा, तो उसे ज्ञात हो जावेगा कि इन भिन्न भिन्न समाजोंकी नींव जुदा जुदा, टूटे फूटे, और अस्तव्यस्त सिद्धान्तों पर नहीं रक्खी गई है। इनमेंका प्रत्येक समाज एक विशेष कमीको पूरा करके देशके अंगोंको सुरक्षित और सुदृढ बनाये रखनेकी योग्यता रखता है।

---

* मार्तण्ड जिल्द ५ नंबर ५ के एक उर्दूलेखका भावानुवाद।

मतमतान्तरोंके व्यर्थके झगड़ोंने हमारे देशके प्रत्येक समाजको इस महान् उद्देश्यके पूरा करनेसे वंचित कर रक्खा है। यदि ये झगड़े कम हो जावें, तो उन महापुरुषोंकी आवाजें—जो आज द्वेष, वैर और कलहकी गड़गड़ाहटके आगे सुन ही नहीं पड़ती हैं—अपनी शान्त, मधुर और सरस प्रकृतिमें हमारे कानों तक आनेमें समर्थ हो जावे।

स्वर्गीय वीरचन्द गाँधी उन्नीसवीं शताब्दीके एक नामी विचारशील धर्मपुत्र थे। उनका सारे देशको अभिमान होना चाहिए। भारतवर्षमें १९ वीं शताब्दीमें जो धार्मिक और सामाजिक नेता हुए हैं, वीरचन्द गाँधीका आसन उनकी उस प्रथम पंक्तिमे है जहाँ हिन्दू स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थको बड़े गौरवके साथ बिठाते हैं। गाँधी योरुपके उन विद्वानोके समान नहीं थे, जो भारतके भिन्न भिन्न मतोंमे एकसे दूसरेको बढ़ चढ़कर बतलाकर फूट, द्वेष और कलहका अंकुर जमा देते है और आप सात समुद्र पार बैठे हुए, बड़े चैनसे हमारी निर्बलताका तमाशा देखा करते हैं। यही विचारयोग्य विशेषता है जो स्वर्गीय गाँधीको और और विद्वानो, पण्डितों और नैयायिकोंसे बहुत ऊँचा स्थान देती है।

शिकागो (अमेरिका) की 'पार्लियामेंट आफ रिलिजन्स् (सार्वधार्मिक महती सभा) का असली उद्देश्य यह था कि ईसाई धर्मकी श्रेष्ठता सारे संसारको दिखलाई जावे। इसी उद्देश्यसे उसमें संसारभरके धुरंधर ईसाई विद्वान् बुलाये गये थे। परन्तु फल इससे उलटा हुआ। स्वामी विवेकानन्द, श्रीयुक्त गाँधी, मजूमदार, बीसेंट आदिने भारतवर्षके मूर्तिपूजकोंकी अक्षय कीर्तिका डंका अमेरिकाके प्रत्येक प्रान्तमे बजा दिया—सारा देश भारतकी धार्मिक सम्यतासे गूँज उठा।

अमेरिकानिवासियोंके सासारिक प्रपंचोंसे ग्रसित हृदयोंमें धर्मकी उज्ज्वल, निर्मल और निष्कलक ज्योति जगानेवालोंमें श्रीयुक्त गाँधी अपना विशेप भाग रखते है। उन्होंने सैकडों अमेरिकनोंको भारतके एक प्राचीन और प्रतिष्ठित धर्मके अध्ययनकी ओर आकर्षित किया था।

परन्तु जैनसमाज ऐसे नि·स्वार्थ सेवकके कार्यको कृतघ्नताके साथ भूल गया। जैनसमाजमें वहुत थोडे लोग ऐसे हैं जो इस धर्मात्माके नामको महत्त्व देते है। वहुतेरे तो इन्हें जानते ही नही है। इनके वाद जहॉ तक मैं जानता हूॅ, ऐसा कोई भी उत्साही जैन युवक योरुपादि देशोके वन्द द्वारोंको खोलनेके लिए भारतसे नहीं गया। इस वातकी वडी भारी जरूरत थी कि गॉधीने अमेरिकामें जिस धर्मसन्देशको वडे प्रेमके साथ सुनाया था; उसी सन्देशको उसी धुनमें मस्त हुए दो चार जैन युवक वहॉके प्रत्येक नगर और ग्राममें जाकर दुहराते फिरते और वहॉके निवासियोको प्रतिमास याद दिलाते कि भारतीय धर्मोंकी ध्वनि कोई निर्वल ध्वनि नहीं है; उसमें ससारको अपनी ओर आकर्पित करनेकी और प्रेमामृत पिलानेकी असीम शक्ति है। यदि दो चार जैकोवी इस ओर ध्यान देने लगे और उन्होंने हमारे देशके एक धर्मकी दो चार पुस्तकोंका अनुवाद कर दिया, तो क्या? भारतके उत्साही युवकोंको क्या इतनेहीसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए? अस्तु; गॉधी महाशय जैन युवकोंके सामने एक आदर्श छोड गये है कि अपने धर्मकी प्रभुता देशदेशान्तरोंमें फैलाओ।

श्रीयुक्त गॉधी और अन्य प्रचारकों या उपदेशकोंमें क्या भेद है? वे जैनसमाजको भारतीय शरीरका एक अग समझते थे। आजकलके नेताओके समान वे इसको भारतसे—भारतके धर्मोंसे और भारतकी

सामाजिक श्रृंखलासे जुदा रहनेका उपदेश न देते थे। साधु आत्मा-रामजीके शिष्य होने पर भी उन्होंने अपने उपदेशोंमें उनका भिन्न धर्मोके प्रति विरोध नहीं आने दिया—उनके गुणोको ही अपनाया। जैनधर्मको वे भारतीय धर्मशरीरका एक अंग मानते थे, वे मोक्ष-प्राप्त पुरुषोके विचारोंके उज्ज्वल विकाशको जैनधर्म कहते थे और इसी कारण यूरुप और अमेरिकाने उनके व्याख्यानोंको बड़े चावसे सुना था।

गाँधीमे और दूसरे युवकोंमे बड़ा भारी अन्तर है। उनका पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करना और बैरिस्टरीके लिए छह मास इग्लेण्डमें रहना तथा छह मास अमेरिकामें धर्मप्रचार करना किसी बाहरी आड-म्बरकी प्राप्तिके लिए न था। उन्होंने बैरिस्टरीके गुलाम बननेके लिए शिक्षाका बोझा न उठाया था। बैरिस्टरीको वे सिर्फ़ अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें एक सहायक समझते थे। सन् १८९३ का जो भारतीय दल अमेरिका गया था वह अपने ढगका निराला था। गाँधी भी उसी दलमे थे। उन्होंने अपने शारीरिक स्वास्थ्यकी आहुति एक ऐसे कार्यके लिए दी थी, जिसकी पूर्ति अभी तक नहीं हुई है।

कुछ सज्जनोंके प्रयत्नसे गाँधी महाशयके 'जैन फिलासफी' आदि कई अँगरेजी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। उनके विचारपूर्वक पढ़नेसे पाठकोंको निश्चय हो जायगा कि उनके विचार कितने उदार और ऊँचे थे। अपने जैन भाइयोंके लिए उनका पहला सन्देश यह था कि राष्ट्रीय अपेक्षासे तुम हिन्दूराष्ट्रके एक आवश्यक अंग हो और धर्मकी अपेक्षासे तुम जैन हो। तुम जब तक भारतके भिन्न भिन्न धर्मोके समान अपनेको भी अलग मानोगे, तब तक अपनी उन्नति नहीं कर सकोगे; विदेशी लोग भी तुम्हारे प्रति प्रेम और आदरका

वर्ताव न करेंगे। उनका दूसरा सन्देशा यह है कि धर्मकी आडमें बैठ-कर सांसारिक वैभवोंके पीछे मारे मारे मत फिरो। जो कुछ तुम्हारे पास है, जो कुछ तुमने आत्मिक, मानसिक और शारीरिक बलसे सञ्चित किया है, वह सब धर्म पर निछावर कर दो और भारतीय शरीरके प्रत्येक अंगकी पूर्ति करो। देखें, जैनसमाज श्रीयुत गाँधीके उक्त संदेशोंपर कितना ध्यान देता है और उनके अनुसार चलनेके लिए क्या उद्योग करता है।

—व्रजमोहनलाल वर्मा।'

दानवीरका देहपात।

"अच्छा-बुरा बस नाम ही रहता सदा है लोकमें,
वह धन्य है जिसके लिए हों लीन सज्जन शोकमें॥"

—जयद्रथवध।

यह प्रगट करते हुए हमें बड़ा ही दुःख होता है कि ता० १६ जुलाईकी रातको २ बजे श्रीमान् दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे. पी. का एकाएक स्वर्गवास हो गया। दो घंटे पहले जिसकी कोई कल्पना भी न थी, वह हो गया। भारतके आकाशसे एक चमकता हुआ तारा टूट पड़ा, जैनियोंके हाथसे चिन्तामणि रत्न खो गया, समाजमन्दिरका एक सुदृढ स्तंभ गिर गया। जहाँ जब जिसने यह खबर सुनी, वहीं भौंचकसा होकर रह गया और 'हाय हाय' करने लगा। मृत्युकी यह अचिन्त्य शक्ति देखकर विचारशील काँप उठे।

सेठ माणिकचन्दजीसे हमारा जो कुछ परिचय रहा है, उससे हमारा हृदय कहता है कि उनके स्वर्गवाससे जैनसमाजकी जो बड़ी

भारी हानि हुई है, उसकी पूर्ति होनेका इस समय कोई भी चिह्न नहीं दिखलाई देता है और वह पूर्ति आगे जल्दी हो जायगी इसकी भी बहुत कम संभावना है। यद्यपि आज सारे जैनसमाजमे सेठजी-की कीर्तिपताका फहरा रही है और सभी लोग उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशसा कर रहे है, तो भी हमारा विश्वास है कि वास्तवमे सेठजी किस श्रेणीके पुरुषरत्न थे, इस बातको बहुत ही कम लोग जानते होंगे। उनके हृदयमें जैनसमाजके प्रति जो भावनाये रहती थीं, जिन निष्कपट वृत्तियोंसे वे समाजसेवामें अहर्निश तत्पर रहते थे और जिन शान्तता उदारता तथा धीरतादि गुणोसे उन्हे प्रत्येक काममें सफलता मिलती थी, उन सबके परिचय प्राप्त करनेका जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे उन्हें केवल दानवीर और धनी ही न समझते थे, किन्तु एक महात्मा समझकर अतिशय पूज्यदृष्टिसे देखते थे। सेठजीने गत बारह वर्षोंमें जो जो काम किये है, उन सब पर दृष्टि देनेसे यदि यह कहा जाय कि वे इस समयके युगप्रवर्तक थे—उनके प्रयत्नोंने जैनसमाजमे एक नया युग उपस्थित कर दिया है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। केवल रथप्रतिष्ठाओंमें और मन्दिर बनवानेमें ही लाखों रुपया प्रति वर्ष खर्च करके सन्तुष्ट हो जानेवाले जैन समाजके धनियोंका चित्त विद्यामान्दिर स्थापित करनेकी ओर आकर्षित करनेका प्रधान श्रेय सेठ माणिकचन्द्जीको ही प्राप्त था। उनकी देशव्यापी अनन्यसाधारण कीर्तिने धनियों पर वह प्रभाव डाला है, जो बीसों समाचारपत्र, पचासों उपदेशक और सैकड़ों सभा समितियाँ नहीं डाल सकती है। यह आपहीके सभापति-पदका प्रभाव है, जो सभा सुसाइटियोंको बच्चोंका खेल समझकर उनकी ओर ऑख न उठानेवाले धनाढ्य लोग आज उन्हीं सभाओंके सभापति बननेके लिए लालायित रहते है और अपने प्रसादलब्ध पुरुषोंके द्वारा इसके लिए प्रयत्न तक कराते है।

सेठजी केवल दानवीर ही न थे, वे कर्मवीर भी थे। धनवानोंमें दानवीर तो अनेक हैं और आगे और भी हो जावेंगे, परन्तु सेठजी जैसा कर्मवीर होना कठिन है। उन्होंने जैनसमाजके लिए अपने पिछले जीवनमें कई वर्षों तक अश्रान्त परिश्रम किया है। यदि उनकी पिछली चार पॉच वर्षकी दिनचर्या देखी जाय, तो मालूम होगा कि जैनसमाजकी सस्थाओंको लिए उन्हें प्रतिवर्ष कमसे कम तीन महीने प्रवास–पर्यटनमें रहना पड़ा है और अपने व्यापारादिके तमाम काम छोडकर प्रतिदिन चार पॉच घण्टे प्रान्तिक सभा, तीर्थक्षेत्रकमेटी तथा अन्यान्य सस्थाओंके लिए देना पड़े हैं। समाजके किसी भी कार्यके लिए उनको आलस्य न था। हर समय हर कामके लिए वे कटिबद्ध रहते थे। इस समय दिगम्बर जैनियोंके जो डेढ दर्जनसे अधिक बोर्डिंग स्कूल है, उनमें आपकी दानवीरताकी अपेक्षा कर्मवीरताने अधिक काम किया है। दिगम्बर समाजकी शायद ही कोई ऐसी सस्था होगी जिसने सेठजीकी किसी न किसी रूपमें सहायता न पाई हो।

सेठजी न ॲंगरेज़ीके विद्वान् थे और न सस्कृतके, वे साधारण देशभाषाका पढना लिखना जानते थे। परन्तु उन्होंने अपने जीवनमें जो कुछ किया है, उससे बाबू लोग और पण्डितगण दोनों ही बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते है। वे अपने अनुकरणीय चरित्रसे बतला गये हैं कि विद्याकी अपेक्षा करतूतका मूल्य अधिक है– ज्ञानकी अपेक्षा आचरण अधिक आदरणीय है। उनका अनुभव बहुत बढाचढा था। जैनसमाजके विषयमें जितना ज्ञान उनको था, उतना बहुत थोड़े लोगोंको होगा। कभी कभी उनके विचार सुनकर कहना पडता था कि अनुभवके आगे पुस्तकों और अख़बारोंका ज्ञान बहुत ही कम दामोंका है।

यदि संक्षेपमे पूछा जाय कि सेठजीने अपने जीवनमें क्या किया ? तो इसका उत्तर यही होगा कि जैनसमाजमेंसे जो विद्याकी प्रतिष्ठा उठ गई थी, उसको उन्होंने फिरसे स्थापित कर दिया और जगह जगह उसकी उपासनाका प्रारम्भ करा दिया। सेठजीके हृदयमें विद्याके प्रति असाधारण भक्ति थी। यद्यपि वे स्वयं विद्यावान् न थे, तो भी विद्याके समान मूल्यवान् वस्तु उनकी दृष्टिमे और कोई न थी। उन्होंने अपनी सारी शक्तियोको इसी भगवतीकी सेवामे नियुक्त कर दिया था। उनके हाथसे जो कुछ दान हुआ है, उसका अधिकांश इसी परमोपासनीया देवीके चरणोंमे समर्पित हुआ है। पीछे पीछे तो उनकी यह विद्याभक्ति इतनी वढ़ गई थी कि उसने सेठजीको कंजूस वना दिया था! जिस सस्थाके द्वारा या जिस कामके द्वारा विद्याकी उन्नति न हो, उसमें लोगोके लिहाज या दवावसे यद्यपि वे कुछ न कुछ देनेको लाचार होते थे, परन्तु वे उससे दानके वास्तविक आनन्दका उपभोग नहीं कर सकते थे।

सेठजीके हृदयमें यह वात अच्छी तरह जम गई थी कि अँगरेजी स्कूलों और कालेजोमे जो शिक्षा दी जाती है, वह धर्मज्ञानशून्य होती है। उनमेंसे वहुत कम विद्यार्थी ऐसे निकलते हैं जो धर्मात्मा और अपने धर्मका अभिमान रखनेवाले हो। अपनी जाति और समाजके प्रति भी उनके हृदयमे आदर उत्पन्न नहीं होता है। परंतु वर्तमान समयमें यह शिक्षा अनिवार्य है-अँगरेजी पढ़े विना अव काम नहीं चल सकता है, इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इनके हृदयमे धर्मकी वासना स्थान पा लेवे। इसके लिए आपने 'जैन वोर्डिंग स्कूल' खोलना और उनमें स्कूल कालेजके विद्यार्थियोको रखकर उन्हें प्रतिदिन एक घण्टा धर्म शिक्षा देना लाभकारी समझा। इस ओर आपने इतना अधिक ध्यान दिया और इतना प्रयत्न किया कि इस समय दिगम्वर समाजके लगभग २० बोर्डिंग स्कूल काम कर रहे हैं!

संस्कृत पाठशालाओंकी ओर भी आपका ध्यान था–सस्कृतकी उन्नति आप हृदयसे चाहते थे, परन्तु इस ओर आपके दानका प्रवाह कुछ कम रहा है–पूर्ण वेगसे नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि एक तो कोरी सस्कृत शिक्षाको आप अच्छी न समझते थे–इस समय वह जीविकानिर्वाहके लिए उपयोगी नहीं और सस्कृत पाठशालाओंकी पढ़ाईका पुराना ढचरा तथा उनके प्रवन्धकी कठिनाइयाँ आपको इस ओर प्रवृत्त न होने देती थीं। तो भी आप सस्कृतके लिए वहुत कुछ कर गये हैं। वनारसकी स्याद्वादपाठशालाने आपके ही लगातार उद्योगसे चिरस्थायिनी संस्थाका रूप धारण किया है, आपके वोर्डिंग स्कूलोंमें वे विद्यार्थी प्रथम स्थान पाते है जिनकी दूसरी भाषा संस्कृत रहती है और सस्कृतके कई विद्यार्थियोंको आपकी ओरसे स्कालर्शिपें भी मिलती हैं। अपने पिछले दानमें वे जैनपरीक्षा-लयको स्थायी वना गये हैं। उक्त दानका और भी वहुत अंश सस्कृतकी उन्नतिमें लगेगा।

सेठजी वड़े ही उदार-हृदय थे। आम्नाय और सम्प्रदायोकी शोच-नीय संकीर्णता उनमे न थी। उन्हें अपना दिगम्बर सम्प्रदाय प्यारा था, परन्तु साथ ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके लोगोसे भी उन्हें कम प्रेम न था। वे यद्यपि वीसपथी थे, पर तेरहपथियोंको अपनेसे जुदा न समझते थे। उनके वम्बईके वोर्डिंग स्कूलमें सैकड़ों श्वेताम्वरी और स्थानकवासी विद्यार्थियोंने रह कर लाभ उठाया है। एक स्थानकवासी विद्यार्थीको उन्होंने विलायत जानेके लिए अच्छी सहायता दी थी। उनकी सुप्रसिद्ध धर्मशाला हीरावागमें निरामिप-भोजी हिन्दूमात्रको स्थान दिया जाता है। साम्प्रदायिक और धार्मिक लडाईयोंसे उन्हें वहुत घृणा थी। उनकी प्रकृति वड़ी ही शान्तिप्रिय

थी। पाठक पूछेंगें कि यदि ऐसा था तो वे मुकद्दमेंबाजीमें सिद्धहस्त रहनेवाली तीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री क्यों थे? इसका उत्तर यह है कि वे इस कार्यको लाचार होकर करते थे। समाज उनसे जबर्दस्ती यह काम कराता था, पर वे इससे दुखी थे और अन्त तक दुखी रहे। तीर्थक्षेत्रकमेटीका काम उन्होंने इसीलिए अपने सिर लिया था कि इससे तीर्थोंमे सुप्रबन्ध स्थापित होगा, वहाँके धनकी रक्षा और सदुपयोग होगा, यात्रियोंको आराम मिलेगा और धर्मकी बढ़वारी होगी। इस इच्छाको कार्यमें परिणत करनेके लिए उन्होंने प्रयत्न भी बहुत किये और उनमे सफलता भी बहुत कुछ हुई। परन्तु तीर्थक्षेत्रकमेटीके कामसे उन्हे जो तृप्ति मिलना चाहिए, वह न मिली; कुछ ऐसे कारण मिले और समाजने अपने विचारप्रवाहमें उन्हें ऐसा बहाया कि उन्हें मुकद्दमें लड़ने ही पड़े—पर यह निश्चय है कि इससे उन्हे कभी प्रसन्नता न हुई। अपने ढाई लाखके अन्तिम दानपत्रमे वे तीर्थक्षेत्रोंकी रक्षाके लिए १०० भाग दे गये हैं, परन्तु उसमें साफ़ शब्दोंमे लिख गये है कि इसमेंसे एक पैसा भी मुकद्दमोंमें न लगाया जाय-इससे सिर्फ़ तीर्थोंका प्रबन्ध सुधारा जाय।

जैनग्रन्थोंके छपाने और उनके प्रचार करनेके लिए सेठजीने बहुत उद्योग किया था। यद्यपि स्वयं आपने बहुत कम पुस्तकें छपाई है; परन्तु पुस्तकप्रकाशकोंको आपने खूब जी खोलकर सहायता दी है। उन दिनोंमें जब छपे हुए ग्रन्थोकी बहुत कम बिक्री होती थी, तब सेठजी प्रत्येक छपी हुई पुस्तककी डेढ़ डेढ़ सौ, दो दो सौ प्रतियाँ एक साथ खरीद लिया करते थे जिससे प्रकाशकोको बहुत बड़ी सहायता मिलती थी। इसके लिए आपने अपने चौपाटीके चैत्यालयमे एक पुस्तकालय खोल रक्खा था—उसके द्वारा आप स्वयं पुस्तकोकी बिक्री

करते थे और इस काममें आप अपनी किसी तरहकी बेइज्जती न समझते थे। जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय तो आपका बहुत ही उपकृत है। यदि आपकी सहायता न होती, तो आज वह वर्तमान स्वरूपको शायद ही प्राप्त कर सकता। आप छापेके प्रचारके कट्टर पक्षपाती थे; परन्तु इसके लिए लडाई झगडा खण्डन मण्डन आपको बिलकुल ही पसन्द न था। जिन दिनों अखबारोंमे छापेकी चर्चा चलती थी, उन दिनों आप हमें अकसर समझाते थे कि "भाई तुम व्यर्थ ही क्यों लड़ते हो? अपना काम किये जाओ—जो शक्ति लड़नेमें लगाते हो, वह इसमें लगाओ, तुम्हें सफलता प्राप्त होगी—सारा विरोध शान्त हो जायगा।"

सेठजीके कामोंको देखकर आश्चर्य होता है कि एक साधारण पढ़े लिखे धनिक पर नये जमानेका और उसके अनुसार काम करनेका इतना अधिक प्रभाव कैसे पड़ गया। जिन कामोंमें जैनसमाजका कोई भी धनिक खर्च करनेको तैयार नहीं हो सकता, उस काममें सेठजीने बडे उत्साहसे द्रव्य खर्च किया है। दिगम्बर-जैन-डिरेक्टरी जो हाल ही छपकर तैयार हुई है—एक ऐसा ही काम था। इसमे सेठ-जीने लगभग १५ हजार रुपये लगा दिये हैं। दूसरे धनिक नहीं समझ सकते कि डिरेक्टरी क्या चीज है और उससे जैनसमाजको क्या लाभ होगा। विलायतमें एक 'जैन छात्रावास' बनवानेकी ओर भी सेठजीका ध्यान था; परन्तु वह पूरा न हो सका।

दिगम्बर जैनसमाजमे इस समय कई पक्ष या दल हो रहे हैं। जिसे देखिए वही अपने पक्षका गीत गाता है और दूसरेको नीचा दिखानेका प्रयत्न करता है, परन्तु सेठजीका पक्ष इन सबसे निराला था उनकी दृष्टि सदा समूचे जैनसमाजके कल्याणकी ओर रहती थी। किसी

भी पक्षसे वे द्वेष न रखते थे। जब कभी इन पक्षोंमे लड़ाई झगड़ोंका मौका आता था और वह शान्त न होता था तब आप तटस्थवृत्ति धारण कर लेते थे। ऐसे अनेक मौके आये हैं जब अखबारोंमें आप पर बहुत ही अनुचित आक्रमण हुए है; परन्तु आपने उनमेंसे एकका भी खण्डन या परिहार करनेका प्रयत्न नहीं किया है—सब चुपचाप सह लिया है। आप कहा करते थे कि "जो झूठा है उसे झूठा सिद्ध करनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। मै यदि सच्चे जीसे काम करता हूँ—सच्चा हूँ, तो मुझे अपयश नहीं मिल सकता।"

धनवैभवका मद या अभिमान सेठजीको छू तक न गया था। इस विषयमें आप जैनसमाजमे अद्वितीय थे। गरीबसे गरीब ग्रामीण जैनीसे आप भी बड़ी प्रसन्नतासे मिलते थे—उससे बातचीत करते थे और उसकी तथा उसके ग्रामकी सब हालत जान लेते थे। आप शामके दो घंटे प्रायः इसी कार्यमें व्यतीत करते थे। सैकडों कोसोंकी दूरीसे आये हुए यात्री जिस तरह आपकी कीर्तिकहानियाँ सुना करते थे, उसी तरह प्रत्यक्षमें भी पाकर और आपके मुँहसे चार शब्द सुनकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगते थे। आपका व्यवहार इतना सरल और अभिमानरहित था कि देखकर आश्चर्य होता था।

विलासिता और आराम-तलबी धनिकोंके प्रधान गुण है। परन्तु ये दोनों बातें आपमें न थीं। आप बहुत ही सादगीसे रहते थे और परिश्रमसे प्रेम रखते थे। अनेक नौकरों चौकरोंके होते हुए भी आप अपने काम अपने हाथसे करते थे। इस ६३ वर्षकी उमर तक आप सवेरेसे लेकर रातके ११ बजे तक काममें लगे रहते थे। आलस्य आपके पास खड़ा न होता था। परिश्रमसे घृणा न होनेके कारण ही आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता था। आपकी शरीरसम्पति अन्त तक अच्छी रही—शरीरसे आप सदा सुखी रहे।

सेठजीकी दानवीरता प्रसिद्ध है। उसके विषयमें यहाँ पर कुछ लिखनेकी ज़रूरत नहीं। अपने जीवनमें उन्होंने लगभग पाँच लाख रुपयोंका दान किया है जो उनके जीवनचरितमें प्रकाशित हो चुका है। उसके सिवाय अभी उनके स्वर्गवासके पश्चात् मालूम हुआ कि सेठजी एक २॥ लाख रुपयेका बड़ा भारी दान और भी कर गये हैं जिसकी बाक़ायदा रजिस्ट्री भी हो चुकी है। बम्बईमे इस रकमकी एक आलीशान इमारत है जिसका किराया ११००) महीना वसूल होता है। यह द्रव्य उपदेशकभण्डार, परीक्षालय, तीर्थरक्षा, छात्रवृत्तियाँ आदि उपयोगी कार्योंमें लगाया जायगा। इसका लगभग आधा अर्थात् पाँच सौ रुपया महीना विद्यार्थियोंको मिलेगा।

सेठजीके किन किन गुणोंका स्मरण किया जाय, वे गुणोंके आकर थे। उनके प्रत्येक गुणके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है। उनका जीवन आदर्श जीवन था। यदि वह किसी सजीव कलमके द्वारा चित्रित किया जावे, तो उसके द्वारा सैकड़ों पुरुष अपने जीवनोंको आदर्श बनानेके लिए लालायित हो उठें।

यदि अच्छे कर्मोंका अच्छा फल मिलता है, तो इसमें सन्देह नहीं कि दानवीर सेठजीकी आत्मा स्वर्गीय सुखोंको प्राप्त करेगी और अपने इस जन्मके लगाये हुए पुण्यविटपोंको फलते फूलते हुए देखकर निरन्तर तृप्तिलाभ करनेका अवसर पावेगी। एवमस्तु।



विविध-प्रसंग।

१ गुर्जर साहित्य और जैन रासमाला।

जिस समय जैनधर्म जीता जागता धर्म था और उसके उपासकोंकी गणना जीवित समाजोंमें थी, उस समय उन्होंने इस देशकी प्रायः सभी मुख्य मुख्य भाषाओंके साहित्यको अपनी प्रतिभासे आलोकित किया था और अपने पवित्र धर्मके सिद्धान्तोंसे जनसाधारणको परिचित करनेके इस द्वारसे कभी मुँह न मोड़ा था। संस्कृत, प्राकृत या मागधी, कनड़ी, तामिल आदि भाषाओंके साहित्यकी जैन विद्वानोंने कितनी श्रीवृद्धि की थी और उनकी रचनाये किस श्रेणीकी समझी जाती है, इसका उल्लेख जैनहितैषीमे समय समय पर होता रहा है। इस समय हमें श्रीश्वेताम्बरजैनकॉन्फरन्स आफिसकी ओरसे 'जैनरासमाला' नामकी एक छोटीसी पुस्तक मिली है। इसका सम्पादन श्रीयुक्त मोहनलाल दलीचन्द देसाई, बी. ए., एल एल. बी. ने किया है। इससे मालूम होता है कि गुजराती साहित्यकी भी जैन विद्वानोने महती सेवा की है—गुर्जरसाहित्यको विकसित करनेके लिए जैन विद्वानोंने निःसीम परिश्रम किया है। 'रास' एक तरहके काव्यको कहते है। हिन्दीका 'रासा' या 'रासो' इसी 'रास' का पर्यायवाची शब्द है। यह 'रहस्य'का अपभ्रंश मालूम होता है। इस पुस्तिकाके सम्पादकने—पहले जिनकी सूची प्रकाशित हो चुकी है, उनके सिवा—२७८ जैन रासोके नाम और भी संग्रह किये हैं। अर्थात् अबतक सब मिलकर ६४१ रासोंका और उनके रचयिताओका पता लगाया गया है। ये रासे गुजरातके जुदा जुदा पुस्तकालयो और मन्दिरभाण्डारोंमें मौजूद है। हर्ष है कि इनके प्रकाशित करनेकी ओर भी शिक्षित जैनियोका लक्ष जा रहा है। दो एक सज्जनोंने कुछ रासे

प्रकाशित भी किये हैं और उनकी गुजराती साहित्यमें खूब चर्चा हुई है। ये सब काव्य यदि प्रकाशित किये जावें, तो देसाईजी कहते हैं कि बड़े बडे १०० वाल्यूम बन जावें। क्या हमारे उत्तर भारतके शिक्षितोंका ध्यान भी कभी ऐसी बातोंकी ओर जायगा? प्राचीन हिन्दी भाषाके साहित्यमें भी जैनियोंने कुछ कम काम नहीं किया है। परन्तु इस बातको जनसाधारणके सम्मुख उपस्थित करनेकी हमारे शिक्षित लोग कुछ जरूरत समझें तभी न!

२ खाद्य और परिश्रम।

लगातार परिश्रम करनेकी शक्ति किस प्रकारके आहारसे बढ़ती है, इस विषयमें अमेरिकाके विख्यात विश्वविद्यालय 'येल'के प्रोफेसर 'आवि फिशार'ने बहुतसी परीक्षाये की हैं। ४९ पुरुषोंको लेकर ये परीक्षायें की गई। इनमेंसे आधे तो उक्त विश्वविद्यालयके विद्यार्थी थे और आधे अनेक देशोंके रहनेवाले अनेक प्रकारके व्यवसाय करनेवाले लोग थे। इन सब विद्यार्थियों और दूसरे लोगोंमें कुछ लोग ऐसे थे जो अण्डे और मास अधिकतासे खाते थे, कुछ ऐसे थे जो बहुत कम खाते थे और कुछ ऐसे थे जो बिलकुल ही न खाते थे। तरह तरह-के व्यायामों द्वारा परीक्षाये की गई। उनमें सबसे अधिक उल्लेख-योग्य परीक्षा बैठकोंकी हुई। लगातार बैठने और सीधे होकर खडे होनेको बैठक कहते हैं। जाँच करनेसे मालूम हुआ कि जो मास और अण्डेका आहार अधिकतासे करते थे, उनमेंसे बहुत ही कम लोग ९०० से अधिक बैठकें लगा सके। ५०० की गिनती पूरी होनेके पहले ही उनमेंसे कई लोग अचेत होकर गिर पडे और कई सीधे होकर खडे न रह सके। वे इतने थक गये थे कि व्यायामशालाकी सीढ़ियोंपरसे उन्हें पकडकर उतारना पड़ा थी। किन्तु जो लोग

मांसभोजी न थे, अथवा कम मास खाते थे, उनके शरीरको इस परीक्षासे कुछ भी हानि न पहुँची। उनमेसे अधिकांश लोगोंने ५०० से अधिक वैठके लगा कर दिखलाई। कई लोग हजारसे भी अधिक वैठके लगानेको समर्थ हुए थे। एक विद्यार्थीने दो वर्षसे मास और अण्डेका स्पर्श न किया था। उसने लगातार १८०० वैठकें लगाई और इसके वाद वह व्यायामशालामें खूब दौड़ता फिरा। एक निरामिष-भोजीने २४०० वैठकें लगाई और दूसरे एक पुरुषने—जो मास विलकुल नहीं खाता था तथा अण्डे अल्प परिमाणमें खाता था—५००० वैठके लगाकर लोगोको अवाक् कर दिया! इससे साफ़ समझमे आता है कि श्रम करनेकी शक्ति मांससे नहीं किन्तु वनस्पति-भोजनसे वढ़ती है।

३ डेड़ लाख वर्षका पुराना मनुष्य।

वर्लिन (जर्मनी) जियालोजिकल इन्स्टिटयूटके प्रोफेसर डाक्टर 'मेहनीस राक'ने जर्मन-आफ्रिकाके पूर्वीय भागके ओल्डवे नामक स्थानमें एक मनुष्यकी ठठरीका पता लगाया है जो शरीरशास्त्रके विद्वानोंके लिए वड़ी ही कतूहलवर्द्धक है। इस ठठरीका एक दाँत १० फुट ५ इंच लम्बा है! डाक्टर साहव कहते है कि इस मनुष्य-का जन्म १॥ लाख वर्ष पहले हुआ था! यह उस समयका मनुष्य है, जव आफ्रिका देश समुद्रके नीचे डूवा हुआ था, या यह उत्तरीय योरुपका उस समयका पुरुष है जव वहाँ वर्फ़स्तान था। इसकी खोपड़ी विचित्र प्रकारकी है और अव तक विचित्र कारणोंसे सुरक्षित रह सकी है। यह लम्वी और पतली है। इसके जवड़े जगली लोगोंके जवड़ोंके समान है। गर्दनके पीछेका भाग सम्पूर्ण और गहरा है। इसकी पसलियोंकी तथा छातीकी हड्डियाँ वन्दरकी हड्डियोके समान हैं,

किन्तु खोपडी विना किसी सन्देहके मनुष्यकी जान पडती है। इस बातके प्रमाण मिलते है कि इसके गर्दनका भाग बहुत ही दृढ होगा और यह मनुष्य बिलकुल सीधा चल सकता होगा। इसके बत्तीसो दॉत पूरे और सुराक्षित मिले हैं और उन पर ऐसे चिह्न है जिनसे पता चलता है कि वे घिसे गये होगे। इसकी ऑखोंके कोए और नाककी हड्डीकी वनावट आफ्रिकाके जगलोंमें रहनेवाले मनुष्योंसे मिलती है।

यह मनुष्य (ठठरी) अपनी पीठके बल लेटा हुआ पाया गया है। इसका सिर दाहिनी ओर मुडा हुआ था और इसके हाथ सामनेको मुडे हुए थे। इसकी टॉगे 'पालथी' मारे बैठे हुए मनुष्यके समान हैं। डाक्टर साहबको विश्वास है कि यह स्थिति कब्रमें पड़े हुए लोगोंके समान नहीं है। जिस स्थान पर यह पञ्जर पाया गया है वहॉ किसी समय झील रही होगी और ऐसा माळूम होता है कि यह मनुष्य उसमें डूबकर मरा होगा। धीरे धीरे इसकी लाश पर बालू पडती गई और खडिया मिट्टीने इसको दबा दिया। इस तरह हजारों वर्षोंके पश्चात् वह बालू और खडिया 'वाल्केनिक टोफा'के रूपमें बदल गई, जिसके भीतर यह ठठरी पाई गई। इसके नीचेवाली तहमे हरिणकी खोपड़ी, उसके नीचेकी तहमें कछुएकी हड्डियॉ और उसके भी नीचे उपजाऊ जमीनकी सूखी वनस्पतियोंके चिह्न पाये गये हैं।

—जगन्मोहन वर्मा।

४ मनुष्यशरीरका मूल्य पूरा पचीस रुपया भी नहीं!

माळूम होता है कि हमारे आर्य ऋषि महर्षि मनुष्यदेहका मूल्य ठीक ठीक नहीं बतला सके थे, इसीलिए उन्होंने इसे 'अमूल्य,' 'देवदुर्लभ' या 'दश दृष्टान्तोंसे दुर्लभ' आदि विशेषण देकर ज्यों त्यों

करके अपना पिण्ड छुडा लिया था। परन्तु यह वात वर्तमान युगके कुछ वैज्ञानिकोके गले नहीं उतरी, इसलिए उन्होंने शरीरके तमाम रसों और पदार्थोंका पृथक्करण करके उसका मूल्य निश्चित किया है। अपने पाठकोंके कुतूहलके लिए हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैः—

एक जर्मन डाक्टर कहते हैं कि यदि किसी मनुष्यशरीरका वजन पौने दो मन हो और उसकी कीमत ठहराई जाय, तो वह २३ रुपया ७ आनेसे अधिक न होगी। अर्थात् एक जवान शरीर जिन जिन पदार्थोंसे वना होता है, यदि उन सवका पृथक्करण किया जाय तो उन सबका एकात्रित मूल्य १ पौण्ड, ११ शिलिंग ३ पेंसके लगभग होगा! हाय! जिस नश्वरदेहकी रक्षा करनेके लिए मनुष्य रात दिन उद्योग करता है उसका मूल्य पूरा पच्चीस रुपया भी नहीं! नीतिकार जिसके विपयमे 'आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरापि धनैरपि' कहकर सचेष्ट रहनेका उपदेश देते हैं, यदि वह शरीर इतना अधिक नि.सार और नाचीज सचमुच ही हो, तो फिर उसके लिए अनेक कपट—प्रपच—मारपीट और तरह तरहके महापापयुक्त कार्य क्यों किये जाते है?

उक्त डाक्टरसाहवने यह भी वतलाया है कि मनुष्य-शरीरमे कौन कौन पदार्थ कितने कितने परिमाणमे है। वे कहते हैं कि शरीरमें जो 'चूना' रहता है, वह इतना है कि उससे एक रसोई-घरकी सफेदी की जा सकती है! मेग्नेशियमका अश इतना होता है कि उससे एक चिमनी वनाई जा सकती है! फासफरस इतना होता है कि उससे २२०० दियासलाईयोंके मुँहपर लगाने योग्य मसाला तैयार किया जा सकता है! और शरीरमें जो चर्वी है, उसका मूल्य ७ रुपया १३ आना हो सकता है! आश्चर्य यह है

कि मनुष्य-शरीरमें रहनेवाले आत्माका मूल्य डाक्टरसाहबने एक पैसा भी नहीं गिना । वास्तवमें मानवशरीरका असली मूल्य तो उसके भीतर विराजमान आत्मदेवकी परीक्षासे ही निर्णय किया जा सकता है ।

—आनंद ।

५ स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीका स्मारक ।

दानवीर सेठ माणिकचन्दजीने जैनसमाजके साथ जो जो उपकारके कार्य किये हैं उनकी गणना नहीं हो सकती । हमको यह आशा नहीं है कि जैनसमाज उन उपकारोंको कृतघ्नताके साथ शीघ्र ही भूल जायगा—नहीं, वह उनकी पवित्र स्मृतिको निरन्तर जागृत रखनेके लिए उनके नाम पर कोई अच्छे स्मारककी अवश्य ही स्थापना करेगा। यह स्मारक सेठजीके उपकारोको तो स्मरण करावेगा ही, साथ ही दूसरे पुरुषोंको सेठजी जैसा परोपकारमय जीवन वनानेके लिए उत्सुक करता रहेगा । जातिहितैषी पुरुषोको इसके लिए अवश्य ही उद्योग करना चाहिए । यह एक सन्तोपकी वात है कि उस दिन बम्बईमें जो शोक-सभा हुई थी उसमें इस स्मारकके लिए लगभग ४०००) का चन्दा-एकत्र होगया है । इससे आशा होती है कि अन्य स्थानोंमें भी इस कृतज्ञताके कार्यके लिए द्रव्य एकत्र होगा और शीघ्र ही यह रकम एक प्रभावशाली स्मारक बनानेके योग्य हो जायगी ।

६ सेठजीका मामला ।

श्रीयुक्त वावू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. अभी तक जयपुरकी हवालातमे है । हरदा निवासी बाबू सूरजमलजीने प्रकाशित किया है कि पुलिस उन्हें राजनैतिक अपराधी नहीं समझती, बरन् उन्होने कुछ जातीय रवाज तोडे हैं इस कारण जयपुर स्टेटने उन्हें हवालातमें रख ा है । परन्तु पुलिसकी यह बात विश्वास करने योग्य नहीं जान

पडती । क्योंकि जातीय रवाजोंका तोड़ना जातिकी दृष्टिमे जुर्म हो सकता है राज्यकी दृष्टिमें नहीं। और यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि जयपुर स्टेटने सचमुच ही कोई ऐसा कानून बना रक्खा है जिसके अनुसार रवाजोंका तोड़नेवाला अपराधी समझा जाता है, तो भी तो उन पर अबतक मुकद्दमा चल जाना चाहिए था । क्यो कि जयपुरकी हवालातमे भी उन्हे लगभग डेड महीना हो गया है । जातीय रवाजोंका तोड़ना ऐसा कोई भयंकर अपराध नहीं है जिसके लिए महीनो हवालातमे सड़ना पड़े । ये सब पुलिसकी चालाकियाँ और टालटूलकी बाते है । ऐसा जान पडता है कि देहली और आरे-के मुकद्दमे तय हुए बिना—सेठीजी छोड़े न जावेंगे—चाहे वे अपराधी हो और चाहे निरपराधी। परन्तु है यह एक तरहका अन्याय । अपराध सिद्ध हुए बिना पॉच पॉच महीने तक हवालातमे—एक तरहके जेलमें सड़ाना कदापि न्यायसगत नहीं कहा जा सकता । हम यह कदापि नहीं चाहते कि अपराधियोंको दण्ड न दिया जाय—यदि सेठीजी सच-मुच ही अपराधी है तो उनके अच्छी तरह दण्डित होनेसे ही हम प्रसन्न होंगे, परन्तु साथ ही उस पद्धतिको अन्याय ही कहेगे जिससे निरपराधी सताये जाते है । न्यायशीला गवर्नमेंटको इधर ध्यान देना चाहिए और सेठीजीको सर्वथा नहीं तो कमसे कम जमानत पर ही मुक्त कर देना चाहिए । जैनसमाज चाहे तो आन्दोलन करके सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता है । इस विषयका आन्दोलन सर्वथा निर्दोष है—इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है । क्योंकि हम सिर्फ़ यह चाहते है कि सेठीजीको न्याय मिले— वे बिना अपराधके ही न सताये जावे । परोपकारैकव्रती सेठीजी जैसे पुरुषके लिए भी यदि जैनसमाज कुछ न कर सका तो कहना होगा कि वह एक निर्जीव समाज है ।

विविध समाचार ।

नित्यानन्द मातृमन्दिर—यह सब जानते हैं कि जो विधवायें युवती होती है, वे जब अपने चित्तको नहीं मार सकती हैं, तब इच्छा न रहनेपर भी कभी कभी गर्भवती हो जाती हैं । आगे लोकलज्जाके भयसे या तो वे उस गर्भको गिरा देती हैं, या सन्तान प्रसव करके उसको मार डालती है । यदि कोई सन्तान बची रहती है और यदि वह कन्या होती है, तो पतिता स्त्रियोंके हाथमें पडकर जीवन भर पाप-व्यवसाय करती है । बगाल प्रान्तके नवद्वीपमें इस तरहकी लगभग ६०० विधवायें प्रतिवर्ष आया करती हैं जिनका प्रधान लक्ष्य किसी तरह अपना कलङ्कमोचन करना रहता है । यह दशा देखकर नित्यानन्द-दास नाम एक साधु पुरुषने नवद्वीपमे एक मातृमन्दिर स्थापित किया है । इस मंदिरमें ऐसी विधवाओंको गुप्त आश्रय दिया जाता है और सन्तान प्रसव होनेके कुछ समय पीछे उनको जाने दिया जाता है । सन्तानकी रक्षा मन्दिरके रक्षक करते हैं । यह मान्दिर गत मार्च महीनेमें स्थापित हुआ है । इस समय मन्दिरमे ७ बच्चे, २ आसन्नप्रसवा विधवायें और ९ दाईयाँ है । पढरपुर जिला शोलापुर और अहमदाबादमें भी इसी प्रकारकी दो सस्थाये है । वे बहुत वर्षोंसे चल रही हैं और उनके द्वारा सैकडों बच्चोंकी रक्षा हो रही है ।

भारतमें सार्वधर्म सभा—आगामी जनवरी और मार्च महीनेके बीचमें भारतमें एक महासभा होगी जिसका नाम रक्खा गया है ‘ इन्टरनेशनल काग्रेस आफ लिबरल रिलीजियनस् ’ । इसका उद्देश्य है धर्मका पवित्र और स्वतन्त्र स्वरूप विकासित करना और जुदा जुदा देशो औ. धर्मोंमें पारस्परिक भ्रातृभावकी वृद्धि करना । इसके प्रेसीडेंट डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जनरल चेअरमेन सर नारायण गणेश चन्दा-

चरकर और जनरल सेक्रेटरी मि० एच. सी. सरकार एम. ए.नियत हुए है। धार्मिक शिक्षा, उसकी आवश्यकता, मार्ग, और जुदा जुदा धर्मोंके दृष्टिबिन्दुओंसे उसका लक्ष्य, २ जुदा जुदा धर्मसुधारकोंके विषयमे उन्हींके अनुयायियोंकी ओरसे व्याख्यान, ३ पतित जातियोंके उद्धारका मार्ग, ४ धर्मोंकी पारस्परिक सहानुभूति, ५ शान्तिसम्बन्धी आन्दोलन, ६ वर्तमानमे धार्मिक आन्दोलन किस रूपमें होते है और उनका देशकी सामाजिक और नैतिक अवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है, आदि अनेक विषयोंपर निबन्ध पढ़े जावेंगे तथा व्याख्यान होंगे।

गर्भवती स्त्रियोंके लिए अमृत—गर्भवती स्त्रियोको बहुत कष्ट भोगने पड़ते है। प्रसवके बाद तो बहुतोका स्वास्थ्य बहुत ही ख़राब हो जाता है। वे जीवन भरके लिए तरह तरहकी बीमारियोंमे फँस जाती है। एक बहुत ही अनुभवशीला विदुषी स्त्रीकी राय है कि गर्भावस्थामें स्त्रियोको फल अमृतका काम देते है। फलोंके सेवनसे सारी तकलीफ़ें दूर हो जाती हैं और सुखसे प्रसव होता है। नीबूका रस थोड़ीसी शक्करके साथ प्रतिदिन पीनेसे आश्चर्यजनक फायदा होता है। इससे बालक भी नीरोगी होते हैं।

श्रमसे थकावट नही होती— अनुभवी विद्वानोकी राय है कि श्रमसे थकावट नहीं होती। दिनरातके २४ घंटोमे मनुष्य १६ घंटे लगातार परिश्रम कर सकता है। थकावट होनेके तीन कारण है-एक तो श्रमके कार्यसे अरुचि अप्रेम, दूसरे जो काम एक घंटेमे होता है उसको आधे घण्टेमे करनेकी कोशिश और तीसरे यह परम्परागत विचार कि श्रम करनेसे मनुष्य थक जाता है। ये तीन कारण न हो, तो मनुष्य चाहे जितना शारीरिक और मानसिक श्रम करके भी नीरोगी और बलवान् बना रह सकता है।

ग्रंथप्रकाश और प्रचार—काशी यशोविजय जैनग्रन्थमालाका छह वर्षका हिसाब प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि इस संस्थाकी ओरसे अबतक १६ हजार रुपयेके ग्रन्थ मुफ्त बाँटे गये, ११ हजार रुपयेके ग्रन्थ बेचे गये और लगभग ३४ हजार रुपयेके ग्रन्थ मौजूद हैं। दिगम्बर जैनसमाजको अपने श्वेताम्बर भाइयोंके इस उद्योगकी ओर लक्ष्य देना चाहिए।

एक हिन्दू विधवाका दान—मैसूरके साहूकार नरसिमय्याकी विधवा बाई मृत्युके समय अपनी पौन लाख रुपयेकी सारी सम्पत्ति मैसूरकी सर्व साधारण प्रजामें शिक्षाका प्रचार करनेके लिए दे गई है। इसके पहले उसने इसी काममे ३९ हजार रुपया और भी दान किया था। स्त्रियोंका ध्यान शिक्षाप्रचारकी ओर जाना देशके लिए शुभसूचना है।

तम्बाकूसे बुद्धिहानि—एक विद्वानने अनेक तरहके प्रयोग करके सिद्ध किया है कि तम्बाकू पीनेसे १०० में १०.५ भाग बुद्धिके कार्योंमें कमी हो जाती है। सबसे अधिक हानि कल्पना, ग्रहण और संस्कार शक्तिको पहुँचती है। सब तरहके तम्बाकूमें सिगरेट सबस अधिक हानिकारक है।

लखनऊमें सैल—ता० १२-१३ जुलाईको लखनऊमें सैल हुई। लखनऊ निवासी जैनी भाईयोने खूब खुशी मनाई। ताश खेले, पतग उड़ाइ और रातको नोटकीका नाच कराया! शोक कि जैनियोकी खुशीके यही साधन रह गये!

पशुहत्या बन्द—सुलतानपुरके बाबू पद्मप्रसादजीके प्रयत्नसे अमेठीके राजा साहबने अपने राज्यमे नवरात्रके अवसर पर जो पशु-

हत्या होती थी वह सर्वथा बन्द कर दी। राजा साहवको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है।

शोक सभायें—स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीके शोकमे जगह जगह शोकसूचक सभाये हो रही हैं। सारे जैनसमाजमें शोक छा गया है।

रवीन्द्र बाबूकी गीताञ्जलि—की अँगरेजीमे आठ लाखसे अधिक कापियाँ विक चुकी है। वंगलामे उसकी सिर्फ़ चारहजार प्रतियाँ विकी हैं। भारतके और विलायतके विद्याप्रेमके अन्तरका इससे अनुमान हो सकता है।

शिल्पोन्नतिमें सहायता—श्रीमान् वड़ोदा नरेशने अपने राज्यके शिल्प कारखानोको सहायता देनेके लिए १५ लाख रु० मंजूर कियाहै।

पशुहत्या—सरकारी रिपोर्टसे माल्हम होता है कि सन् १९१२ मे कलकत्ता, वम्बई और मद्रासमे १२१५४३८ भेड़ बकरी, १११८७२ गाये, ११०२४ गोवत्स और २८६० सुअर मनुष्यकी क्षुधाशान्तिके लिए मारे गये थे! हाय! क्या इसी घोर हिंसामय समयको ही हम सभ्यताका समय कहते है।

एक और विलायती पण्डित—संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि कई देशी भाषाओके ज्ञाता और जैन साहित्यका अध्ययन करनेवाले इटालियन पण्डित ‘डा० एल. पी. टेसीटोरी’ भारतवर्षमें पंधारे हैं। स्थानकवासी और श्वेताम्बरी भाइयोको मूर्तिपूजाके विषयमें इनसे भी कोई व्यवस्था ले लेना चाहिए।

यूरोपमें महायुद्ध—एक ओरसे आस्ट्रिया जर्मन और दूसरी ओरसे सर्विया, रूस, इंग्लेण्ड, फ्रान्स, और वेलिजयम जूझ रहे हैं। सारे यूरोपमें युद्धकी आग धगधग उठी है।



जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] आषाढ़, श्री वी०नि०सं० २४४० । [९ वाँ अं०

जैन-स्तूप ।

भारतीय इतिहासके सम्बन्धमे ज्यों ज्यो अन्वेषण होते जाते है त्यों त्यों नई नई बातें हाथ लगती जाती है। भारतके भूगर्भमें बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री छुपी हुई है। हमारी सरकारने अनेक प्राचीन स्थानोंको खुदवाया है और उनमें बहुतसे महत्त्वपूर्ण लेख और इमारतें मिली है। सर्व साधारणका अब तक यही विश्वास था कि स्तूप केवल बौद्धोने ही बनाये थे। परन्तु कई वर्ष हुए मथुराके 'ककाली' टीलेके खोदे जाने पर इस विचारमें परिवर्तन करना पड़ा। इस अन्वेषणसे यह बात प्रकट हो गई कि जैनियोंने भी स्तूप बनाये थे। यद्यपि बौद्धोंके समान जैनियोंका एक भी स्तूप अब भारत-भूमि पर विद्यमान नहीं है, तथापि अब तक जैनियोंके प्राचीन स्तूपोंके कई दृढ प्रमाण मिल चुके हैं। जैनियोंके स्तूप बौद्धोंके स्तूपोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते थे।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि मथुरा कितना प्राचीन महत्त्वका क्षेत्र है। महाराज श्रीकृष्णके समयकी बात तो दूर है केवल १५०० वर्ष

हुए मथुराकी महत्ता कुछ कम न थी। फाहियान नामक चीनी प्रवासीने ई० सन् ४०० के लगभग भारतकी यात्रा की थी। उसे मथुरामें यमुनाके दोनों किनारों पर बौद्धोंके २० मठ मिले थे। प्रत्येक मठमें स्तूप, मंदिर इत्यादि बने हुए थे और इन मठोंमें सब मिलकर ३ हजार बौद्ध श्रमण रहते थे। इसके पश्चात् हुएनसांगको भी जो यहाँ सातवीं शताब्दिके आदिमें आया था इतने ही बौद्ध मठ मिले; परन्तु उसके अनुमानसे उनमें बौद्ध श्रमण सिर्फ २ हजार थे। हुएनसांगने ब्राह्मणोंके भी कई मंदिरोंका उल्लेख किया है। अतः इस बातमें अब कोई सदेह नहीं रहा है कि मथुरामें एक समय वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों मत प्रचलित थे। परन्तु अब वे मठ, स्तूप और मंदिर जिनका चीनी प्रवासियोंने उल्लेख किया है कहाँ है? वे सब कालके गालमें चले गये।

मथुरामें कई स्थान खोदे गये हैं। गोवर्धन दरवाजेसे एक मील पर एक टीला है, जिसको 'कंकाली टीला' बोलते हैं। इस टीले पर 'कंकाली देवी'का मंदिर है।मंदिर क्या है एक छोटीसी झोपडीमें एक स्तंभका टुकड़ा रक्खा है। इस देवीके नाम परसे ही इस टीलेका नाम पड़ गया है। यह टीला कई बार खोदा जा चुका है। पहले यहाँ सन् १८७१ में खुदाईका काम हुआ था। डाक्टर फुहररको सन् १८८८–९१ ई०में इस टीलेमे अनेक महत्त्वपूर्ण पदार्थ मिले। इस टीले पर खुदाईके चिह्न अब बिल्कुल नहीं मालूम होते। जहाँ तहाँ वृक्ष खड़े हैं और ऐसा मालूम होता है कि यह टीला पहले कभी खुदा ही नहीं था। जब मैंने इस स्थानको पहले पहल देखा, तब मुझे भी बड़ी मुशकिलसे विश्वास हुआ कि यह 'कंकाली टीला' है। समय समय पर इस टीलेमेंसे जैनियोंकी अगणित चीजे निकली हैं। इसमें अब कोई

संदेह नहीं रहा कि यह स्थान प्राचीनकालमे जैनियोका ' अतिशय क्षेत्र ' था। डाक्टर फुहररको यहॉ पर एक बौद्ध-विहार और एक वैष्णवमदिरके अश भी मिले। इसी टीलेमें एक जैन स्तूप मिला। स्तूपके एक ओर एक विशाल मदिर दिगम्बर सम्प्रदायका और दूसरी ओर एक विशाल मदिर श्वेताम्बर सम्प्रदायका मिला। खोदनेमें ये सब छिन्न भिन्न हो गये। यदि इस काममें असावधानी न होती तो इससे अधिक सफलता प्राप्त होती। खोदनेके समय कई फोटो लिये गये थे। वे अवश्य ही अब तक मौजूद हैं।

जैन स्तूपोंके सम्बन्धमें जितने अनुसन्धान हुए हैं, उनमेंसे अधिकाश विन्सेंट ए. स्मिथ साहबने एक पुस्तकमें सग्रह किये हैं। उसीकी सहायतासे यहॉ पर कुछ लिखा जाता है। परन्तु इससे पहले अच्छा होगा कि स्तूपोंकी बनावटका सक्षेपमें वर्णन कर दिया जाय। स्तूपका पेंदा गोल होता है अर्थात् वह नीचेसे वृत्ताकार होता है। स्तूपमें तीन भाग होते हैं। नीचे एक ऊंचा गोल चबूतरा उसके ऊपर ढोल या कुएके आकारकी इमारत और उसके भी ऊपर एक अर्धगोलाकार गुम्बज (छतरी) होता है। चबूतरे पर स्तूपके चारों ओर एक प्रदक्षिणापथ छोड कर पत्थरकी लम्बी खडी और आडी पटरियोंका एक घेरा (Railing) बना रहता है। इस घेरेमें अधिकतर चारों दिशाओंमें एक तोरण (Gateway) बना होता है। यह तोरण बडा ही सुन्दर बनाया जाता है। पत्थरके दो स्तभ खडे करके उनके ऊपरके सिरों पर तीन आडी पटरियॉ लगा देते हैं। उन्हींके नीचेसे आनेजानेका रास्ता रहता है। तोरण तक जानेके लिए सीढियॉ रहती है। ये स्तूप पोले और ठोस दोनों तरहके मिले हैं। जिन्होंने बौद्धोंके स्तूप देखे हैं वे इन बातोंको अच्छी तरह समझ सकेंगे। जैनियोंके भी ऐसे ही स्तूप थे।

मथुराका जैन स्तूप।

विस्तार और बनावट—इस स्तूपके तलेका व्यास ४७ फीट था। यह ईंटोंका बना हुआ था; ईंटें आपसमे बराबर न थी किन्तु छोटी बडी थीं। इसका भूमिका ढाँचा (ground plan) इके या गाड़ीके आकारका था। केंद्रसे बाहरकी दीवार तक आठ व्यासार्ध थे जिन पर आठ दीवारें स्तूपके भीतर ही भीतर ऊपर तक बनी हुई थी। इन दीवारोंके बीचमें मिट्टी भरी हुई मिली। कदाचित् यह स्तूप ठोस था और गृह-निर्माणकी मितव्ययिताके कारण भीतरकी ओर केवल ये दीवारें ही बना दी गई थीं। इनके कारण भीतरके कुल हिस्सेमें ईंट चिननेकी जरूरत न रही। स्तूपके बाहरकी ओर तीर्थंकरोकी प्रतिमाये बनी थीं।

कालनिर्णय—भाग्यवश इस स्तूपमे वनी हुए एक प्रतिमाके सिंहासनका एक अंश मिल गया है। उस पर एक लेख है। लेखके बीचमे धर्मचक्र है जिसकी कई स्त्रियाँ पूजा कर रही है। लेख यह है:—

"सं ७९ व्र दि २० एतस्यां पुर्व्वायां कोट्टिये गणे वैराये शाखायां को अर्यावृधहस्ति अर्हतो नंदि (आ) वर्तस प्रतिमं निर्वर्तयति . ...भार्य्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिमा वोद्धे थूपे देवनिर्मिते प्र।"

अनुवाद—संवत् ७९ में, वर्षाके ४ थे महीनेमें, २० वें दिन अयवृिधहास्ति (आर्यवृद्धहस्तिन) ने—जो वैरशाखाके कोट्टिया गण-के उपदेशक है, अर्हत् नदिआवर्त (नोन्द्यावर्त) की प्रतिमाके बनाने-की सलाह दी. . . यह प्रतिमा, जो की भार्या श्राविका दिना (दत्त) का दान है, देवनिर्मित बौद्ध स्तूप पर लगाई गई[३]।

---

१. एक स्थान पर ७० फीट भी लिखा है। २. फुहररने अर्हत् नान्द्यावर्तको अर नाथ माना है और यह लिखा है कि अर.नाथका चिह्न नान्द्यावर्त है। न मालूम यह कहाँतक ठीक है। ३. इस लेखके शिलालेखोंके अनुवाद अगरेज़ी अनुवादसे अनुवादित हैं।

लेखकी लिपि, भाषा और व्याकरणसे माल्म होता है कि यह प्रतिमा कुशन राजाओंके समयकी है। स. ७९ भी कुशन राजाओंका सवंत् है। संवत् दिवस इत्यादिकी प्रत्येक पूर्ण सख्याके लिए इस लेखमें एक एक चिह्न दिया है। सख्या लिखनेकी यह प्रथा बहुत प्राचीन है। यह भी एक प्रमाण इस सवतके प्राचीन होनेका है। इस सवतमें राजा वासुदेव राज्य करते थे। शक स० ७९ में ७९+७८ अर्थात् ई० सन् १५७ था। उस समय भी यह स्तूप इतना प्राचीन था कि इसको 'देवनिर्मित' मानते थे। अतएव यह स्तूप ईसासे कई शताब्दि पहले बना होगा।

तीर्थकल्प[2] नामक ग्रथमें इस 'देव-निर्मित-स्तूप' का वर्णन लिखा है। यह ग्रथ प्राचीन ग्रन्थोंके आधार पर ईसाकी १४ वीं शताब्दिमें प्रभाचन्द्र द्वारा लिखा गया था। इसमें लिखा है कि पहले यह स्तूप सुवर्णका था और इसमें रत्न जडे थे। इसे मुनि धर्मरुचि और धर्मघोषकी इच्छासे कुवेरा देवीने श्रीसुपार्श्वनाथको समर्पण किया था। श्रीपार्श्वनाथके समयमें यह स्तूप ईटोंसे मढा गया और पाषाणका एक मन्दिर इसके बाहर बनाया गया। पुन: वीर भगवानके केवलज्ञान प्राप्त करनेके १३०० वर्ष बाद बप्पभट्टि सूरिने इस स्तूपको पार्श्वनाथके निमित्त अर्पण करके इसकी मरम्मत कराई। श्री महावीरको केवलज्ञानकी प्राप्ति ईसासे लगभग ५५० वर्ष पहले हुई थी। अतएव इस स्तूपकी मरम्मत १३०० वर्ष बाद अर्थात् ७५० ई० में हुई होगी। और श्रीपार्श्वनाथके समयमें इसके ईटोंसे बनाये जानेका काल ईसासे ६०० वर्षसे भी पूर्व निश्चित होता है। यदि हम लेखके 'देव-

---

१. शक, जो ई० सन् ७८ से शुरू हुआ। २ इसका दूसरा नाम राजप्रसाद है। इस ग्रथमें स्तूपोंके पूजन इत्यादिका भी वर्णन है।

निर्मित' शब्दको साधारण दृष्टिसे देखें तो यह कहना पड़ेगा कि शक ७२ मे भी यह स्तूप अतीव प्राचीन समझा जाता था—इसके बनानेवालेका लोगोंको पता ही न था। अतएव इसके बननेका समय ईसासे ६०० वर्ष पूर्व मानना कुछ भी अनुचित नहीं। अतएव भारतवर्षकी अबतक जितनी इमारतें मालूम हुई है उनमें यह स्तूप संभवतः सबसे प्राचीन है। एक और जैन स्तूप पर बहुत छोटासा लेख मिला है। वह ईसाकी तीसरी या चौथी शताब्दिका है।

आयाग-पट।

इन स्तूपोंके अतिरिक्त कई 'आयागपट' भी मिल चुके है जिन पर स्तूपोंके चित्र अंकित है। ये सब इस बातको पुष्ट करते हैं कि किसी समय जैनियोमें भी स्तूप बनानेकी प्रथा खूब प्रचलित थी। मालूम होता हैं कुछ काल तक रहनेके बाद वह प्रथा उठ गई। आयागपट पाषाणके पट होते है। इनमेंसे दो चार पटोंके लेखोंसे मालूम होता है कि ये मंदिरोंमें अर्हतोंकी पूजाके लिए रक्खे जाते थे। इनमेंसे अधिकांशमें अर्हतोंकी प्रतिमायें अंकित है और भी बहुतसे जैनधर्मसंबधी चिह्न, स्वस्तिका, मछली इत्यादि बने हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक चिह्न और बेलबूटे बने रहते हैं। इनकी शोभा और चित्रकारी देखते ही बनती है। यहाँ पर केवल उन आयागपटोंका वर्णन किया जाता है जिनपर स्तूपोके चित्र अंकित हैं।

१– एक आयागपटमे बीचमें एक तीर्थंकरका चित्र है, नीचे भी एक ऐसा ही चित्र है, और ऊपर एक स्तूपका चित्र है। और भी बहुतसे स्त्रीपुरुषोके चित्र बने हैं। इसका लेख मिट गया है।

२–एक संपूर्ण आयागपटमें स्तूपका बड़ा चित्र दिया है, परन्तु इसका उपरी अंश खंडित है। स्तूपके चारों तरफ प्रदक्षिणापथ

छोड़कर घेरा (Railing) बना है। ऐसा ही पथ स्तूपके कुछ ऊपर चलकर गौखकी तरह बना है। सामने एक तोरण है, उसपर बड़ी उत्तम चित्रकारी है। इस तोरणके ऊपरकी आडी पटरियोंसे बीचमे एक माला लटक रही है। तोरण तक चढनेके लिए चार सीढ़ियाँ है। स्तूपके दायें बायें एक एक नग्न स्त्री स्तूपके सहारे सिर और कुहनी टेके आभूपण पहने बडे अंदज़ासे खडी है। सीढियोंके दोनों ओर यह लेख है:—

"नमो अर्हंतानं फगुयशास
नतकस भयाये शिवयशा
.... .इ......आ......आ... ..काये
आयागपतो कारितो
अरहत पुजाये

अनुवाद—अर्हंतोंको नमस्कार। नृतक फगुयशा (फल्गुयशस) की स्त्री .. . . शिवयशा (शिवयशस) ने अर्हंतोंकी पूजाके निमित्त एक आयागपट बनवाया।

३—मथुराके अजायवघरमें एक आयागपट है। यह पट सपूर्ण है; कहींसे भी खडित नहीं। इसमें स्तूपका एक बडा चित्र है। इससे जैनस्तूपोंकी शकलका अच्छा ज्ञान हो सकता है। ऊपरके आयाग-पटसे भी यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। समान बातोंको छोडकर इसकी विशेप बातोंका ही उल्लेख किया जाता है। इस स्तूपके इधर उधर दो बड़े और सुदर स्तभ है। एकके ऊपर चक्र है और दूसरेके ऊपर सिंह है। स्तूपके दोनो ओर तीन तीन चित्र है। ऊपरके दो चित्र उडते हुए है। ये नग्न हैं, कदाचित् मुनि होंगे। इनके नीचेके दो चित्र सुपर्ण अथवा किन्नर है; इनके पक्षियोंके समान नाखून और

पजे है। एकके हाथमें पुष्प और दूसरेके हाथमे माला है। इनके भी नीचे दो नग्न स्त्रियाँ स्तूपके सहारे झुकी खड़ी है। सीढ़ियोंके दोनों ओर एक एक चित्र है। इनमेंसे एक पुरुष बालकसहित है और दूसरी स्त्री है। यह साफ़ नहीं है। गुम्बज पर एक प्राकृतका लेख छह पंक्तिका है:—

"नमो आर्हतो वर्धमानस आराये गणिका-
ये लोणशोभिकाये धितु शमणसाविकाये
नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हातो देविकुल
आयाग-सभा प्रपा शिल (ा) प (टो)पतिस्ठ(ा) पितो निगथा-
नं अर्ह (ता) यतने स (हा) म (ा) तरे भगिनिये धितरे पुत्रेण
सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजाये।"

अनुवाद—अर्हत् वर्धमानको नमस्कार। श्रमणोंकी श्राविका आराय (आर्यायाः ?) गणिका लोणशोभिका (लवणशोभिका) की पुत्री नादाय (नदायाः) गणिका वसुने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्बसहित अर्हत्का एक मंदिर, एक आयाग-सभा, ताल (और) एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतोंके पवित्रस्थान पर बनवाये।

ऐसा मालूम होता है कि इस आयागपटके दोनों तरफ दो नग्न स्त्रियों पटकी ऊँचाईके बराबर और खड़ी थीं। पहले स्मिथ साहबने जो इसकी फोटो ली थी उसमें ये मौजूद हैं। दूसरी बार यह पट होली दरवाजेके पास कुएमें गिरा हुआ मिला। इसी हेर फेरमें ये स्त्रियाँ इससे अलग हो गई होंगी। अब ये अजायबघरमें अलग रक्खी हुई हैं।

इमारतोंके अंश।

आयाग-पटोंके अतिरिक्त जैनस्तूपोंके आस्तित्वके और भी प्रमाण लीजिए। इमारतोंके अंशों पर भी स्तूपोंके चित्र मिले हैं।

१—ककाली टीलेके एक जैनमदिरके पास एक लम्बा पट मिला है। जैनमंदिरके पास मिलनेसे यह जैनपट ही माळूम होता है। इस पर लेख नहीं है। कदाचित् यह उस 'देवनिर्मितस्तूप' के तोरणकी एक पटरी हो। यह निश्चय करके प्राचीन है। इस पटमें विशेष बात यह है कि इसमे स्तूपके पूजनका दृश्य दिखाया गया है। इस पटके एक ओर बीचमें स्तूपका चित्र है। स्तूपके बायें ओर एक सुपर्ण और उसके पीछे तीन किन्नर है ओर दायें ओर एक सुपर्ण और दो किन्नर है। तीसरा किन्नर यहाँ पर और होगा क्योंकि उस स्थान पर कुछ मिट गया है। स्तूपके समीप इधर उधर दो वृक्ष है। इन्हीं पर सुपर्ण बैठे हुए अथवा उड़ते हुए माळूम होते हैं। इन सुपर्णों और किन्नरोंमेंसे कुछके हाथोंमें कटोरे और कुछके हाथोमें पुष्प अथवा चमर हैं। पटके पीछेकी ओर एक जळूसका दृश्य है। इसमें तीन घोड़े, एक हाथी और एक बैलगाड़ी जा रही है। बैलोंकी पूँछ उनकी गर्दनकी रस्सीसे बंधीं हैं, ऐसा ही साचीके बौद्ध स्तूपोंके चित्रोंमें भी है। गाडीमें स्त्री व पुरुष सवार हैं। घोड़ों पर भी मनुष्य सवार हैं। दो घोडोंके साथ साईस भी हैं। कदाचित् यह जळूस पटकी दूसरी ओर बने हुए स्तूपके पूजनके लिए जारहा है।

२—एक और पट मिला है। यह भी किसी स्तूपके तोरणका अश माळूम होता है। यह पट श्वेताम्बर-सप्रदायका माळूम होता है। इसके एक ओर एक मुनि चार मनुष्योंको उपदेश दे रहे है। इनमें एक राजा अथवा राजकुमार माळूम होता है। क्योंकि उसके ऊपर दूसरा मनुष्य छाता लगाये हुए है और उसके सिर पर एक मुकुट लगा है जो महाराज हुविष्कके सिक्कोंमे अंकित चित्रोंके मुकुटसे बहुत मिलता है। पटके पीछेकी ओर ऊपरके अशमें एक स्तूप है और इसके दोनों

ओर दो दो तीर्थंकर हैं; इनमेंसे एक पार्श्वनाथ है। नीचेके अंशमें एक लंगोटधारी मुनि हाथमें कपडा लिये हुए खडे हैं; इनका नाम लेखसे 'कन्ह' मालूम होता है। इनके समीप चार स्त्रियाँ खडी है। कदाचित् उपदेश सुनने आई हैं। इनमेंसे एक नाग-कन्या मालूम होती है। क्योंकि उसके सिर पर नाग-फण है। यह पट महाराज वासुदेवके राजत्वकालका मालूम होता है। इसपर एक लेख इस प्रकार है:—

"सिद्धं सं ९५ (?) ग्रि २ दि १८ कोट्टिय (।) तो गणातो थानियातो कुलातो वैर (।तो) (शा) खातो आर्य अरह्............... शिशिनि धामथाये (?) ग्रहदतस्य धि......धनहथि......"

अनुवाद—सिद्धि। संवत् ९५ (?) मे, ग्रीष्मके दूसरे महीनेमे, १८ वे दिन कोटियागण, थानियकुल, वैरशाखाके आर्य अरह.. .की शिष्या धामथा (?) के अनुरोधसे गृहदत्तकी पुत्री और धनथि (धनहस्तिन) की स्त्री.. .का (दान).......।

एक स्त्रीके दायें तरफ 'अनघ श्रेष्ठि विद्या' और मुनिके सिरके पास 'कन्ह श्रमणो' लिखा है।

३—एक तोरणका एक अंश मिला है जिसमे स्तूपका चित्र है। इसके साथ चार पंक्तियोंमे एक बडा जलूस है। कुछ लोग स्तूपका पूजन कर रहे हैं। इसमें तीन पीठिका भी बनी हैं। यह एक जैनमंदिर और अन्य जैनवस्तुओंके पास मिला है। अत· कदाचित् यह भी जैनियोंकी ही किसी इमारतका अंश है। इस पर लेख नहीं है।

मथुरासे जितने जैन लेख प्राप्त हुए है लगभग सबोमें ही प्रतिमाओं इत्यादिका दान स्त्रियोंने किया है। यह बात प्राचीन स्त्रीसमाजकी धर्मरुचिको प्रकट करती हैं। इन लेखोंसे बहुतसे गणों, शाखाओ कुलों, आचार्यों इत्यादिका भी पता मिलता है। यदि इनकी और भी

जियादह छानवीन की जाय, तो जैन इतिहासकी बहुतसी गुप्त और बहुमूल्य बातें माऌम हो सकती है।

'संशोधक।'

सांख्यदर्शन।

प्रस्तावना।

दर्शनशास्त्र भारतवर्षके सूक्ष्मातिसूक्ष्म आश्चर्यजनक पाण्डित्यके जाज्वल्यमान प्रमाण है। दर्शनशास्त्र कई है। साख्यदर्शन भी उनमेसे एक है। यह दर्शन बहुत प्राचीन और बहुत महत्त्वका है। प्राचीन शैलीके विद्वानोंमें यद्यपि इसकी विशेप चर्चा नहीं है, परन्तु आधुनिक विद्वान् इसे बहुत आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। वे कहते हैं कि जो हिन्दुओंके पुरावृत्त या इतिहासका अध्ययन करना चाहते हैं उन्हे साख्यदर्शनका अध्ययन अवश्य करना चाहिए--इसके बिना उसका सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि हिन्दूसमाजकी पूर्वकालीन गति साख्यप्रदर्शित मार्ग पर बहुत दूरतक होती रही है। जो वर्तमान हिन्दूसमाजका चरित्र जानना चाहते हैं, उन्हें भी साख्यका अध्ययन आवश्यक है। साख्यमें इस चरित्रके मूलका बहुत कुछ पता चलता है।

पृथिवीमें जिस धर्मके माननेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है--ईसाईयोंसे भी बढी चढी है, उस बौद्धधर्मका मूल साख्यदर्शन ही माऌम होता है। वेदोंको नहीं मानना, निर्वाण और निरीश्वरता इन तीन बातोंसे बौद्धधर्मका कलेवर बना है और इन तीनका मूल साख्यदर्शन है। निर्वाण साख्यदर्शनकी मुक्तिका परिणाम मात्र है। यद्यपि साख्यमे वेदोंके प्रति अवज्ञा स्पष्ट शब्दोंमें कहीं भी नहीं दिखलाई

देती, बल्कि उसमें वैदिकताके बहुत आडम्बर है, तथापि साख्य-प्रवचनकारने वेदोंकी दुहाई देकर अन्तमे वेदोका मूलोच्छेदन करनेमें कुछ भी नहीं उठा रक्खा है। बौद्धकी निरीश्वरता सांख्यदर्शनकी निरीश्वरताका ही रूपान्तर है। इस तरह जब सांख्यदर्शन बौद्धधर्मका मूल है और बौद्धोंकी संख्या सबसे अधिक है, तब कहना होगा कि पृथिवीमें जितने दर्शनशास्त्र अवतीर्ण हुए हैं, उनमें सांख्यके समान बहुफलोत्पादक और कोई नहीं हुआ।

इस बातका पता लगाना बहुत कठिन है कि साख्यकी प्रथमोत्पत्ति कब हुई थी। संभवतः यह बौद्धधर्मके पहले प्रचारित किया गया था। कपिल मुनि इसके प्रणेता समझे जाते हैं, परन्तु उनके समयादिके जाननेका कोई उपाय नहीं है। इस समय उनके मूल ग्रन्थका या सांख्यसूत्रोंका भी कहीं पता नहीं हैं। बहुत लोगोंका ख़याल है कि साख्यप्रवचन ही कपिलसूत्र है। परन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि उसके भीतर ही इस बातके प्रमाण मौजूद है कि वह बौद्ध, न्याय, मीमासा आदि दर्शनोके प्रचलित हो जानेपर रचा गया है; इन दर्शनोंका उसमे खण्डन किया गया है।

सांख्यदर्शनका मर्म।

साख्यदर्शनका स्थूल मर्म इस प्रकार है:—

संसार दुःखमय है। जो कुछ थोड़ासा सुख दिखलाई देता है वह दुःखके साथ इस प्रकार मिला हुआ रहता है कि विवेचक उसे दुःखकी श्रेणीमें ही डालते है। अतएव यहाँ दुःखकी ही प्रधानता है; जब ऐसा है, तब मनुष्यजीवनका प्रधान उद्देश्य होना चाहिए दुःखमोचन। ज्यों ही किसी पर कोई दुःख पड़ता है त्यो ही वह उसके दूर करनेका उपाय करता है। भूखसे कष्ट हो रहा है, आहार कर लिया। पुत्र-

शोक हो रहा है, उसे भुलाकर किसी दूसरी ओर अपने चित्तको लगा दिया। परन्तु साख्यकारके मतसे ये दुःखमोचनके वास्तविक उपाय नहीं है। क्योंकि इनके साथ उन्हीं सब दु.खोंकी अनुवृत्ति है—वे दुःख फिर भी होंगे। सच्चा उपाय अपवर्ग या मोक्षकी प्राप्ति है। प्रकृति और पुरुषके सयोगकी उच्छित्तिको मोक्ष कहते हैं। जो सुखदुःखका भोक्ता है, साख्य उसी आत्माको पुरुष कहता है और पुरुषसे भिन्न जगतमें जो कुछ है, वह प्रकृति है।

पुरुप शरीरादिसे व्यत्तिरिक्त है। परन्तु दुःख शरीरसे सम्बन्ध रखते है। ऐसा कोई दु'ख नहीं है जो शरीरादिको दु खका कारण न हो। जिन्हें मानसिक दु.ख कहते हैं बाह्यपदार्थ ही उनके मूल हैं। हमारे वाक्यसे तुम अपमानित हुए। हमारा वाक्य एक प्रकृतिजन्य पदार्थ है। उसे तुमने श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया, इस लिए तुम्हें दु'ख हुआ। अतएव प्रकृतिके अतिरिक्त और कोई दु'ख नहीं है। परन्तु अब प्रश्न यह है कि प्रकृतिघटित दुःखका अनुभव पुरुपको क्यो होता है? पुरुप तो असग है। जितनी अवस्थायें होती हैं सब शरीरकी होती हैं, पुरुपकी नहीं। साख्यकार कहते हैं कि प्रकृतिके साथ संयोग ही पुरुपके दुःखका कारण है। यद्यपि प्रकृति और पुरुष जुदा जुदा है—दोनोंमें बाह्य और आन्तरिक व्यवधान है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें किसी प्रकारका सयोग है ही नहीं। यदि एक स्फटिकके पात्रके पास गुलाबका फूल रक्खा जाय, तो वह फूलके रंगके समान गुलाबी रगका हो जायगा और इसलिए कहा जायगा कि फूल और पात्रमे एक प्रकारका सयोग है। प्रकृति और पुरुपका संयोग भी इसी प्रकारका है। जिस तरह फूल और पात्रमें व्यवधान रहने पर भी पात्रका वर्ण विकृत

है। मराठी विविधज्ञानविस्तारकी मईकी संख्यामें 'भविष्यपुराण व म्लेच्छ' इस नामका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि व्यासजी महाराज इस विचित्र पुराणमें बौद्ध, शक, मुसलमान, छत्रपति शिवाजी, अँगरेज़, और दो चार वायसरायों तकका वर्णन लिख गये हैं! इसाईयोंकी बायबिलमें जो आदम और हव्वाके द्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन है, वह इस पुराणमें जैसाका तैसा नकल कर दिया गया है। आदमको अदम, हव्वाको हव्यवती, अदनके बागको प्रदानका रम्य महावन, सेथको श्वेत, इस तरह उक्त ईसाई कथाके नामोंको संस्कृतकी पोशाक पहना दी गई है। ईसा मसीहकी उत्पत्ति भी कुछ फेरफार करके लिख दी गई है। 'मुहम्मद'को आपने 'महामद' और उनके 'मदीना'को 'मदहीन' बना डाला है। मुसलमान शब्दका अर्थ आप यह करते हैं कि जिसका संस्कार मुसलसे (मूसलसे) हो, वह मुसलमान है। अँगरेजोंका उल्लेख आपने 'गुरुंड' नामसे किया है। उनके मुँह आप बन्दरों जैसे बतलाते हैं! महाराणी विक्टौरियाका स्मरण आपने 'विकटावती' नामसे किया है। गुरुंड वंशके सात राजाओंका (वायसरायोंका ?) भी उल्लेख है। आपने एक जगह म्लेच्छ भाषाओंका भी वर्णन किया है और उसमें बड़े भारी आश्चर्यकी बात यह है कि व्रजभाषा और मराठीको भी म्लेच्छ भाषाकी पदवी दे डाली है! (व्रजभाषाकी कविताके पृष्ठपोषकोंको व्यासजीकी जल्द ख़बर लेनी चाहिए।)

इसमें सन्देह नहीं कि पुराणानुयायी लोगोंकी अपने पूर्वजोंके भविष्यकथन पर इतनी प्रगाढ श्रद्धा है कि वे इस अवस्थामें भी भविष्यपुराणको जाली या बनावटी कहनेके लिए तैयार न होंगे और इसलिए इस विषयमें उनसे कुछ कहना न कहना बराबर होगा; तो

साख्य २५ पदार्थोंको मानता है। १ पुरुष, २ प्रकृति, ३ महत् (मन), ४ अहकार, ५-९ पंचतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), १०-२० एकादश इन्द्रिय (पाच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय), २१-२५ स्थूलभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) । इन्हीं पदार्थोंसे जगत् बना हुआ है। जगतकी मूलकारण प्रकृति है। प्रकृतिसे महत् महतसे अहंकार, अहकारसे पचतन्मात्र तथा एकादश इन्द्रियाँ और पचतन्मात्रसे स्थूल भूत बने हैं।

निरीश्वरता ।

साख्यदर्शन निरीश्वरवादी है और इसी रूपमें उसकी प्रसिद्धि भी है। परन्तु कोई कोई लोग कहते हैं कि वह निरीश्वरवादी नहीं है। डाक्टर हाल ऐसे ही लोगोंमेंसे एक हैं। मेक्समूलर भी ऐसा ही मानते थे, परन्तु अब उनका मत बदल गया है। कुसुमाजलिके कर्त्ता उदयनाचार्य कहते हैं कि साख्यमतावलम्बी 'आदि विद्वान'के उपासक हैं। अतएव उनके मतसे भी साख्य निरीश्वर नहीं है। साख्यप्रवचनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुका कथन है कि ' ईश्वर नहीं है ' यह कहना कापिलसूत्रका उद्देश्य नहीं है। अतएव इस विषयको कुछ विस्तारके साथ बतलानेकी आवश्यकता है कि साख्यदर्शन निरीश्वर क्यों है।

साख्यप्रवचनके प्रथम अध्यायका ९२ वाँ सूत्र उक्त निरीश्वरताका मूल है। वह सूत्र यह है:—" ईश्वरासिद्धेः"। पहले इस सूत्रका अभिप्राय समझ लेना चाहिए।

सूत्रकार इसके पहले ' प्रमाण ' का वर्णन कर रहे थे। उन्होंने कहा है, प्रमाण तीन प्रकारके है,—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। ८९ वें सूत्रमें प्रत्यक्षका लक्षण बतलाया है—" यत्सम्बन्धं सत्तदाकारोल्लेखिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्। " अतएव जो सम्बन्ध नहीं है वह

प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इस लक्षणमे दो दोष लगते है। एक तो यह कि योगिगण योगबलसे असम्बद्धको भी प्रत्यक्ष कर सकते है। आगेके ९०–९१ वें सूत्रोमें सूत्रकारने इस दोषको अपनीत कर दिया। अब रहा दूसरा दोष यह कि ईश्वरका प्रत्यक्ष नित्य है, इस लिए उसके सम्बन्धमें 'सम्बन्ध' का लक्षण घटित नहीं हो सकता है, सो इसका उत्तर उक्त ९२ वें सूत्रसे सूत्रकार देते है कि ईश्वर सिद्ध नहीं है–ईश्वर है, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अतएव उसके प्रत्यक्ष सम्बन्धमें व्यवहृत न होनेसे यह लक्षण दुष्ट नहीं हुआ। यहाँ पर भाष्यकार महाशय कहते है कि देखो, यह कहा गया है कि 'ईश्वर असिद्ध है' किन्तु यह तो नहीं कहा गया है कि 'ईश्वर नहीं है'।

न कहा गया हो, न सही, तथापि इस दर्शनको निरीश्वर कहना होगा। ऐसा शायद ही कोई नास्तिक होगा जो कहता होगा कि ईश्वर नहीं है। जो कहता हो कि इस प्रकारका कोई प्रमाण नही है जिससे यह सिद्ध हो सके कि 'ईश्वर है' उसको भी नास्तिक कहना चाहिए।

'जिसके आस्तित्वका प्रमाण नही है' और 'जिसके अनस्तित्वका प्रमाण है' ये दो जुदा जुदा बातें है। लाल रंगके कौएके आस्तित्वका कोई प्रमाण नही है, परन्तु साथ ही उसके अनस्तित्वका भी कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु ऐसे चतुष्कोणके अनास्तित्वका प्रमाण है कि जो गोलाकार हो। यह तो निश्चित हैं कि आप गोलाकार चतुष्कोण नहीं मानेगें; किन्तु पूछना यह है कि लालरगका कौआ मानेंगे या नहीं ? जिस तरह उसके अनास्तित्वका प्रमाण नहीं है उसी प्रकार उसके अस्तित्वका भी प्रमाण नहीं है। जहाँ अस्तित्वका प्रमाण नहीं है वहाँ नहीं मानेंगे। अनास्तित्वका प्रमाण नहीं है तो न रहने दो, परन्तु

जब तक अस्तित्वका प्रमाण नहीं पावेंगे तब तक कभी न मानेंगे। जब अस्तित्वका प्रमाण पा जावेंगे तब मान लेंगे। प्रत्ययका या विश्वासका यही प्रकृत नियम है। जो विश्वास इससे उलटा होता है, वह भ्रान्ति है। "यद्यपि अमुक पदार्थ है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है; तथापि वह हो तो हो भी सकता है" ऐसा सोचकर जो उस पदार्थके अस्तित्वकी कल्पना कर लेते है, वे भ्रान्त हैं। अतएव नास्तिकगण दो प्रकारके हुए। एक तो वे जो केवल ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणाभाववादी हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर हो, तो हो भी सकता है। परन्तु वह 'है' ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। दूसरे प्रकारके नास्तिक वे हैं जो कहते हैं कि केवल ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणोंका ही अभाव नहीं है इस बातके भी अनेक प्रमाण हैं कि ईश्वर नहीं है। आधुनिक यूरोपके अनेक लोग इसी मतके माननेवाले हैं। एक फरासीसी लेखक कहता है—" तुम कहते हो कि ईश्वर निराकार है, किन्तु साथ ही उसे चेतनादि मानसिकवृत्ति-विशिष्ट भी बतलाते हो। क्या तुमने कहीं चेतनादि मानसिक वृत्तियोंको शरीरसे जुदा देखा है? यदि कहीं नहीं देखा, तो या तो ईश्वर साकार है अथवा उसका अस्तित्व ही नहीं है। ईश्वरको तुम साकार तो कभी मानोंगे नहीं, अतएव यही मानना पडेगा कि ईश्वर नहीं है।" ये दूसरे प्रकारके नास्तिक है।

"ईश्वरासिद्धेः।" यदि केवल इसी सूत्र पर भार डाला जाय, तो साख्यको प्रथम प्रकारका नास्तिक कह सकते हैं। किन्तु उसने और भी अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका यत्न किया है कि ईश्वर नहीं है।

यहाँ पर सांख्यप्रवचनमें ईश्वरके अनस्तित्व सम्बन्धमें जितने सूत्र है उन सबको एकत्र करके उनका मर्म विस्तारके साथ समझाया जाता है।

साख्यकार कहते हैं कि, ईश्वर असिद्ध है (अ० १, सू० ९२)। कोई प्रमाण नहीं है इसीसे असिद्ध है (प्रमाणाभावात् नतत्सिद्धिः। ५, १०) साख्यके मतमें पूर्वकथनानुसार तीन प्रमाण माने गये है;—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इनमेंसे प्रत्यक्षकी तो बात ही नहीं है—ईश्वर प्रत्यक्षका विषय ही नहीं माना जाता। किसी वस्तुके साथ यदि अन्य किसी वस्तुका नित्य सम्बन्ध रहता हो, तो एकके देखनेसे दूसरीका अनुमान किया जाता है। परन्तु किसी वस्तुके साथ ईश्वरका कोई नित्य सम्बन्ध नहीं देखा जाता; अतएव अनुमानके द्वारा भी ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। (सम्बन्धाभावान्नानुमानम्। ५, ११) यदि इस सूत्रको पाठक अच्छी तरह न समझे हों, तो कुछ और भी अधिक स्पष्टतासे समझानेका यत्न करता हूँ। पर्वतमें धुएँको देखकर तुम सिद्ध करते हो कि वहाँ पर अग्नि है। इस प्रकारका सिद्धान्त तुम क्यों करते हो? इसलिए कि तुमने जहाँ जहाँ पर धुआँ देखा है वहाँ अग्नि भी देखी है अर्थात् अग्निके साथ धुएँका नित्यसबध होनेके कारण।

यदि कोई तुमसे आकर पूछे कि तुम्हारे प्रपितामह (परदादा) के कितने हाथ थे, तो तुम कहोगे कि दो। तुमने तो उनको कभी देखा नहीं फिर कैसे कह दिया कि उनके दो हाथ थे? तुम कहोगे, मनुष्यमात्रके दो हाथ होते है इसलिए। अर्थात् मनुष्यत्वके साथ द्विभुजताका नित्यसबंध है इसलिए।

यह नित्यसम्बन्ध या व्याप्ति ही अनुमानका एक मात्र कारण है। जहाँ यह सम्बन्ध नहीं होता वहाँपर पदार्थान्तरका अनुमान नहीं हो सकता। अब इस प्रकरणमे जगतके किस पदार्थके साथ ईश्वरका नित्य सम्बन्ध है कि जिससे ईश्वरका अनुमान किया जा सके? सांख्यकार उत्तर देते है कि किसीके साथ नहीं।

तीसरा प्रमाण शब्द है। आप्तवाक्योंको शब्द प्रमाण माना है और वेद ही आप्तवाक्य हैं। साख्यकार कहते हैं कि वेदमें ईश्वरका कोई प्रसग नहीं है, बल्कि वेदमें यही कहा है कि सृष्टि प्रकृतिकी क्रिया है, ईश्वरकृत नहीं है (श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य। ५, १२) किन्तु जो वेदको पढेंगे वे देखेंगे कि यह बात बिलकुल असगत है— अर्थात् उन्हे उसमें ईश्वरके प्रसग मिलेंगे। इस आशकाका समाधान करनेके लिए साख्यकार कहते है कि वेदमें ईश्वरका जो उल्लेख है वह या तो मुक्तात्माओंकी प्रशसा है, या सामान्यदेवताकी (सिद्धस्य) उपासना। (मुक्तात्मनः प्रशसा उपासना सिद्धस्य वा। १, ९५)

यह दिखला दिया कि ईश्वरके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है। अब साख्यने ईश्वरके अनस्तित्वके सम्बन्धमें जो प्रमाण दिये हैं उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है:—

ईश्वर किसे कहते हैं? जो सृष्टिकर्त्ता और पापपुण्यका फलविधाता हो उसे। जो सृष्टिकर्त्ता है वह मुक्त है या बद्ध? यदि वह मुक्त है तो उसके भी सृष्टि रचना करनेकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? और यदि वह मुक्त नहीं बद्ध है तो फिर उसमें अनन्तज्ञान और अनन्तशक्ति सम्भव नहीं हो सकती। अतएव कोई एक व्यक्ति सृष्टिकर्त्ता है यह बात असभव है। (मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः। १, ९३) (उभयथाप्यसत्करत्वम्। १, ९४)

यह तो हुई सृष्टिकर्तृत्वसम्बन्धी बात। अब पापपुण्यके दण्डविधातृत्व सम्बन्धकी वात लीजिए। इस विषयमें साख्यकार कहते है कि यदि ईश्वर कर्मफलका विधाता है, तो यह अवश्य है कि वह कर्मानुयायी फल देगा। अर्थात् पुण्यकर्मका शुभफल देगा और पापकर्मका अशुभ फल। यदि वह ऐसा न करेगा, अपनी इच्छाके अनुसार फल

देगा, तो देखना चाहिए कि वह किस प्रकारसे फलविधान कर सकता है। यदि अच्छी तरह विचार करके फल न देगा, तो ऐसा वह आत्मोपकारके लिए ही—किसी स्वार्थके लिए ही कर सकता है और यदि ऐसा हुआ तो वह सामान्य लौकिक राजाके ही समान आत्मोपकारी और सुखदुःखके अधीन ठहरा। यदि ऐसा न मानके कहो कि वह कर्मके अनुसार ही फल देता है, तो फिर कर्मकोही फलका दाता विधाता क्यों नहीं कहते? फल देनेके लिए फिर कर्मके ऊपर ईश्वरानुमानकी क्या आवश्यकता है?

अतएव सांख्यकार दूसरे प्रकारके घोरतर नास्तिक है परन्तु पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि वे वेदको मानते है।

ईश्वर न मानकर भी साख्य वेदको क्यों मानता है, इस बातको हम आगे लिखेगे। माळूम होता है कि साख्यकी यह निरीश्वरता बौद्ध धर्मकी पूर्व सूचना थी।

ईश्वरतत्त्वके सम्बन्धमें सांख्यदर्शनकी एक बात बाकी रह गई। पहले कहा जा चुका है कि—बहुतोंके खयालसे कापिल (सांख्य) दर्शन निरीश्वर नहीं है। यह कहनेका एक कारण है। तृतीय अध्यायके ५७ वें सूत्रमें सूत्रकार कहते है:—"ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धः।" अर्थात् इस प्रकारके ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध हुई। किस प्रकारके ईश्वरकी? "स हि सर्ववित् सर्व कर्त्ता" ३, ५६। अर्थात् जो सबका जाननेवाला और सर्वकर्त्ता है। ऐसी अवस्थामे साख्य निरीश्वर कैसे हो सकता है?

वास्तवमे ये सूत्र ईश्वरके सम्बन्धमें नहीं कहे गये है। साख्यकार कहते हैं कि ज्ञानमे ही मुक्ति है, और किसीसे भी मुक्ति नहीं हो सकती। पुण्यमें अथवा सत्त्वविशाल ऊर्द्धलोकमें भी मुक्ति नहीं है

क्योंकि वहाँसे पुनर्जन्म होता है और जरामरणादि दुःख भोगना पडते हैं। अन्तमें वे यह भी कहते हैं कि जगत कारणमें लयप्राप्त हो जाने पर भी मुक्ति नहीं है। क्योंकि उस (लयप्राप्त-अवस्था) से जलमें डूबे हुए के पुनरुत्थान (फिरसे ऊपर आ जाने) के समान पुनरुत्थान होता है। (३, ५४)। पूर्वोक्त सूत्र उन्होंने उसी लयप्राप्त आत्माके सम्बन्धमें कहा है कि वह सबका जाननेवाला और सर्वकर्त्ता है। उसको यदि तुम ईश्वर कहना चाहो तो ईदृशेश्वर सिद्ध है। परन्तु वह जगत्सृष्टा या विधाता नहीं हो सकता। उक्त सूत्रमें जो 'सर्वकर्त्ता' शब्द है, उसका अर्थ सर्वशक्तिमान् है, सर्वसृष्टि-कारक नहीं। * (अपूर्ण).

पुस्तक परिचय।

२९. **सुरस ग्रंथमाला**—श्रीयुक्त शेठ बालचन्द रामचन्द कोठारी, बी. ए. और श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पागलने इस मराठी ग्रन्थमालाके निकालनेका प्रारंभ किया है। इसमें सर्वसाधारणोपयोगी सरस और मनो-रंजक उपन्यास प्रकाशित होते हैं। स्थायी ग्राहकोको सब ग्रन्थ आधे मूल्य-में दिये जाते है। अब तक इसमें पाँच ग्रन्थ निकल चुके हैं। **पतिपत्नीप्रेम** और **सम्म्राट् अशोक** ये दो ग्रन्थ हमें समालोचनाके लिए प्राप्त हुए हैं। पह-ला ग्रन्थ डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'चोखेरवाली' उपन्यासका अनुवाद है। अनुवाद हमारी प्रकाशित की हुई 'आँखकी किरकिरी'परसे किया गया है। अनुवादक हैं श्रीयुत सेठ बालचन्द रामचन्द कोठारी बी. ए.। रवीन्द्रबाबूके इस उपन्यासकी प्रशसा करनेकी आवश्यकता नहीं। मनुष्यके आन्तरिक भावोंका चित्र खींचनेमें लेखकने बड़ा ही विलक्षण कौशल दिखलाया है।

---

* स्वर्गीय बाबू वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके बंगला लेखका संक्षिप्त अनुवाद।

मराठीके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकरने इस पुस्तककी भूमिका लिखी है जो कि पढ़ने योग्य हुई है। हमारी समझमें यह न आया कि इस पुस्तकका नाम पतिपत्नीप्रेम 'क्यों रक्खा गया' पुस्तकके विषयके साथ इस नामका यत्किञ्चित भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरा ग्रन्थ **सम्राट् अशोक** श्रीयुक्त बालचन्द रामचन्द शहा वकीलने लिखा है। वकील साहबकी यह स्वतन्त्र रचना है। प्रसिद्ध मौर्यचक्रवर्ती अशोकने जिस समय कलिंगदेश पर विजय प्राप्त किया था और उसे अगणित मनुष्योंकी व्यर्थ हिंसासे उद्वेग हुआ था उस समयकी कुछ ऐतिहासिक घटनाओंको लेकर इस उपन्यासकी रचना की गई है। कथानक बहुत ही कुतूहलवर्धक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। कथानायकोंके और दूसरे पात्रोंके चित्र जैसे चाहिए वैसे खींचे गये है। वे भावपूर्ण है और उन्होने अपने स्वरूपकी रक्षा अन्ततक की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखक महाशयने अपनी इस पहली ही कृतिमें बड़ी भारी सफलता प्राप्त की है। इसके लिए हम उन्हें बधाई देते है। परन्तु हमे इस विषयमें सर्वथा सन्देह है कि कलिंगविजयके पहले अशोक बौद्धधर्मका प्रचार शस्त्रोंके बल पर करता था, या धर्मके लिए वह मनुष्यवध जैसे घोर पाप करनेमें न हिचकता था। लेखक महाशयको ग्रन्थके प्रारंभमें जिन ऐतिहासिक बातोपर इस उपन्यासकी नीव खड़ी की गई है उनका स्पष्टीकरण कर देना चाहिये था। दोनों ग्रन्थोंका मूल्य डेढ़ डेढ़ रुपया हैं। इस ग्रन्थमालाके प्रकाशक और लेखक सभी जैनी है। यह प्रसन्नताकी बात है कि जैनसमाजके शिक्षित सार्वजनिक साहित्यकी सेवामें भी प्रवृत्त होने लगे है। ग्रन्थमाला की सब पुस्तकें तात्या नेमिनाथ पागल ठि० मोहन बिल्डिंग गिरगाव—बम्बईसे मिलती है।

३० आल्बम या चित्रसंग्रह—सूरतके दिगम्बर जैनके पिछले खास अकमें जो चित्र निकले थे, उन सबका इसमें संग्रह है। सब मिलकर ५९ चित्र है। चित्रोंका विवरण भी साथमें दिया हुआ है। मूल्य बारह आना है। मॅगानेका पता—सम्पादक दिगम्बर जैन, चन्दावाड़ी, सूरत।

३१ पवनदूत—लेखक, प० उदयलालजी काशलीवाल। प्रकाशक, हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, चन्दावाडी पो. गिरगाव-बम्बई पृष्ठसख्या, ५६। मूल्य चार आना। यह जैनसाहित्य सीरीजकी तीसरी पुस्तक है। इसमें श्रीवादिचन्द्रसूरिका सस्कृत पवनदूत काव्य और उसका हिन्दी भावार्थ है। विजयनगर नरेशकी सुतारा नामकी स्त्रीको अशनिबेग नामका विद्याधर हरण कर ले गया। उसके विरहमें राजाकी बुद्धि ठिकाने न रही। उसने पवनको अपना दूत बनाया और उससे कहा कि तू परोपकारी है, मुझ पर दया कर और अमुक अमुक रास्तेसे इस इस तरह जाकर मेरी स्त्रीसे मेरा विरहकष्ट निवेदन कर और उसे धीरज बँधा। इसी कथानकको लेकर इस काव्यकी रचना हुई। कालिदासके मेघदूतकी छाया पर जिस तरह वायुदूत, हंसदूत, कोकिलदूत, पदाङ्कदूत आदि कई काव्य बने है उसी तरहका यह भी है। इसमे १०० श्लोक हैं। रचना प्रसादगुणविशिष्ट है। किसी किसी श्लोकका भाव तो बहुत ही मर्मस्पर्शी है। निर्णयसागरकी काव्यमालामें यह काव्य बहुत वर्षों पहले छप चुका है। परन्तु हिन्दी जाननेवाले उससे लाभ न उठा सकते थे। अब इस भावार्थसे साधारण हिन्दी जाननेवाले भी काव्यका आशय समझ सकेंगे। भावार्थ साधारणत: अच्छा लिखा गया है; परन्तु उसके लिखनेमें जितना परिश्रम करना चाहिए था उतना नहीं किया गया। कई श्लोकोंका आशय अस्पष्ट रह गया

है और कईका आशय च्युत हो गया है। भूमिकामें कोई महत्त्वकी बात नहीं। उसमें और नहीं तो दो बातोंका उल्लेख अवश्य चाहिए था—एक तो वादिचन्द्रसूरि कब और—कहाँ हुए हैं और दूसरे विजय-नरेश तथा सुताराकी कथा किस ग्रन्थसे किस प्रकार संक्षिप्त या परिवर्तित करके ली गई है। इन दो एक त्रुटियोंके सिवाय पुस्तक अच्छी और संग्रहणीय है। भाषा सरल और सबके समझने योग्य है। छपाई सुन्दर है। काव्यप्रेमी सज्जनोंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

३२. **जैनधर्म**—लेखक, श्री उपेन्द्रनाथदत्त। प्रकाशक, कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, मंत्री सार्वधर्म परिषत्, काशी। पृष्ठसंख्या १६० विना मूल्य वितरित। पुस्तक बंगला भाषामें है। इसमें १ जैनशब्दकी परिभाषा, २ जैनधर्मके मुख्य तत्त्व, ३ उपदेशक्रम, ४ स्याद्वाद वा अनेकान्तवाद, ५ दार्शनिक सिद्धान्त, ६ तुलनामूलक दार्शनिकत्व, ७ नास्तिकता और आस्तिकता, ८ जैनधर्म और दूसरे धर्मोंकी समानता, ९ जैन धर्मानुयायियोंका बहिर्जीवन, १० ऐतिहासिकता, ११ चौवीस तीर्थंकर, १२ पन्थ और उसके विभाग, इन बारह निबन्धोंका संग्रह है। निबन्ध पहले बंगलाके 'उद्बोधन' और 'देवालय' नामक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके थे। अब संग्रह करके पुस्तक रूपमें प्रकाशित किये गये हैं। उद्बोधनपत्रके सम्पादककी लिखी हुई *लगभग* ९० पृष्ठकी एक विस्तृत भूमिका भी इस पुस्तकमे जोड़ दी गई है। इसमेंके कुछ निबन्ध सेठ हीराचन्दजी नेमीचन्दजीके 'जैनधर्मका परिचय' नामक व्याख्यानके कुछ घटा बढ़ा कर किये हुए अनुवाद हैं और कुछ दूसरे लेखोंके रूपान्तर हैं। तुलनामूलक दार्शनिकत्व आदि दो तीन निबन्ध लेखक महाशयके स्वतन्त्र रूपसे लिखे हुए हैं। निबन्धोंके लिखनेका ढंग अच्छा है।

अजैनोंको जैनधर्म इसी ढगसे समझाया जा सकता है। परन्तु अनेक स्थलोंमें विशेष करके तत्त्व कर्म गुणस्थानादिके स्वरूपमें भूलें रह गई हैं। कोई कोई भूले वडी ही विलक्षण है। ११७ वें पृष्ठमें लिखा है–" इस समय दिगम्बर जैनी उन्माद " नामसे और श्वेताम्बर 'तप्पा' नामसे सर्व साधारणमें परिचित हैं। वहुत लोग दिगम्बरी छोटे साधुओंको 'पण्डित' कहते है और वड़े साधुओंको 'भट्टारक'।" माल्हम नहीं किस देशमें और किस भाषामें ये 'उन्माद' और 'तप्पा' शब्द प्रचलित हैं। हमने तो इससे पहले ये शब्द कहीं सुने भी न थे। छोटे और वड़े साधुओंकी पहचान भी खूब कराई गई है। कई लेखोंमें विशेषकरके भूमिकामें इस सिद्धान्तके पुष्ट करनेकी चेष्टा की गई है कि जैनधर्म यद्यपि वेदोंको प्रामाण्य नहीं मानता है तथापि पारमार्थिक हिसावसे वह मूलमें वेदानुसरणकारी ही है। जैनधर्मका शरीर जिन उपकरणोंसे बना है वे सब वेदों तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। जैनधर्म प्राचीन अवश्य है। परन्तु पहले वह कोई दार्शनिक मत नहीं था। उसके अनुयायी साधु उस समय मोक्षसाधकही थे दार्शनिक न थे। इसी लिए महावीरके पहलेका जैन साहित्य नहीं है। यदि जैनधर्म दार्शनिक सम्प्रदाय होता तो जैनमोक्षपन्थियोंके सूत्र वा उपनिषत् ग्रन्थ अवश्य होते। उस समयका जैनसाधुसम्प्रदायने तत्त्वविचारसे उदासीन होकर व्रतनियमादिके ऊपर ही अपना साम्प्रदायिक विशेषत्व प्रतिष्ठित रक्खा था, इसका मुख्य प्रमाण उनका उद्भावित किया हुआ 'स्याद्वाद' है। यह स्याद्वाद या सप्तभंगी नय जिस सम्प्रदायके द्वारा उद्भावित हुआ है, यह सम्प्रदाय तत्त्वविचारमें व्यर्थ कालक्षेप न करेगा, यही अधिक संभव माल्हम होता है। कई स्थानोंमें साख्यदर्शनके साथ जैनधर्मका मिलान किया

गया है और बतलाया है कि सांख्यदर्शन और जैनदर्शनमे बहुतही थोड़ा अन्तर है और चूँकि सांख्यवेदानुयायी है, अतएव जैन भी वेद-वृक्षकी एक शाखा है। इस तरहकी और भी बीसों बातें हैं जिन्हे हमारी समझमें बहुत ही कम जैनी माननेको तैयार होंगे बल्कि मंत्री महाशय स्वयं ही उन्हें माननेसे इंकार करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि इसकी भूमिकाके तुलनात्मक दार्शनिकत्व आदि लेखोंमें प्रकट किये हुए विचार बहुत ही महत्वके और पाण्डित्य पूर्ण है और वे माननीय न होने पर भी आदरकी दृष्टिसे देखने योग्य हैं, तो भी एक जैनसंस्थाके द्वारा—जो कि एक भाषाके साहित्यमे जैनधर्मके उन सिद्धान्तोका परिचय करानेके लिये स्थापित हुई है जो जैनधर्मके प्राचीन आचार्योंने प्रकट किये हैं—इस प्रकारके विचारोंका प्रकाशित होना अच्छा नहीं समझा जा सकता। उक्त विचारोंको पढ़-कर जैनधर्मके जिज्ञासु जैनेतर पाठकोंको यह भ्रम हो सकता है कि ये विचार जैनियोंको भी मान्य होंगे। क्यों कि यह पुस्तक जैनियोके द्वारा प्रकाशित हुई है। पुस्तकके अन्तमें जैनधर्मकी दिगम्बर श्वेता-म्बर शाखाओंके विषयमें एक परिशिष्ट लेख है। उसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायको आधुनिक और दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन सिद्ध कर-नेका प्रयत्न किया गया है। हमारी समझमें इसकी जरूरत न थी। हमारे अपने घरके झगड़े दूसरोंके आगे प्रकट करनेसे लाभ नहीं है। जैनधर्मके सम्बन्धमें हम जैनेतर समाजोंमें जो कुछ प्रयत्न करें वह यदि हिल मिल कर—अपने आपसी झगड़े भुलाकर—करे तो विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है। मंत्री महाशयसे हमारा नम्र निवदेन यह है कि संस्थाके द्वारा जो कोई पुस्तक प्रकाशित हो, उसे आप स्वयं अच्छी तरह पढ़लें और उस विषयके जाननेवाले किसी दूसरे विद्वानको

दिखला लेवे। तब प्रकाशित करे। यह पुस्तक सेठ नाथारगजी गाधी आकलूज निवासीके द्रव्यसे प्रकाशीत की गई है।

आजकल इस संस्थाका कार्य ठंडासा पड़ गया है। वर्षोंमें एकाध पुस्तक निकल जाती है। हिसाब तो इसका अब तक प्रकाशित ही नहीं हुआ। हम लोग आरम्भशूरतामें बहुत आगे बढ़ रहे हैं।

३३ परमात्माने पगले (In his footsteas)- लेखक, पण्डित लालन। प्रकाशक, मेसर्स मेघजी हीरजी एण्ड कम्पनी, पायधूनी, बम्बई। मूल्य दो आना। इस छोटेसे गुजराती निबन्धमें महावीर भगवानके जीवनचरितसे शिक्षा लेनेकी—उनका अनुकरण करनेकी प्रेरणा की गई है। माळूम होता है, यह निबन्ध आगे और कई भागोंमें प्रकाशीत होगा। इस भागमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंके अनुसार वीरभगवानके कई अनुकरणीय गुण बतलाये गये है–१ गर्भमें आने-पर भगवान्‌ने यह सोचकर–कि माताको कष्ट होगा–हलन-चलन बन्द कर दिया था। २ हलनचलन बन्द होनेसे माताने समझा कि गर्भ नष्ट होगया, इससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ। तब भगवानने अपनी भूल सुधारी और फिर हलनचलन शुरू किया। ३ दीक्षा लेनेसे परमो-पकारी माता पिताको कष्ट होगा, यह सोचकर भगवानने एक निश्चित समय तक दीक्षा न ली और इस तरह मातापिताके हितके लिए अपने लिए आर्त रौद्र ध्यान करनेसे उन्हें कुगतिका बन्ध न हो, इस खया-लसे उन्होंने अपने मोक्षप्राप्तिरूप स्वार्थका बलिदान किया। इत्यादि। निबन्ध बिलकुल नये ढगसे लिखा गया है और इस समयमें जब मातापिताकी भक्ति बहुत ही कम होती जाती है, ऐसे उपदेशोंकी आवश्यकता भी बहुत है।

३४ आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या (पूर्वार्ध) लेखक और प्रकाशक, श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी. ए., एलएल. बी., वकील, मुरादाबाद । पृष्ठसंख्या ४१४ । मूल्य ३।) । जर्मनीमें ' लुई कुहनी। नामके एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं । आपने इस नवीन विद्याका आविष्कार किया है । यह विद्या है जलचिकित्सा । इसके अनुसार केवल ठंडे और गरमपानीके तथा आपके चार पांच प्रकारके स्नानोंसे शरीरके सब प्रकारके रोग आराम हो जाते हैं । अमीरसे लेकर गरीब तक सब इससे बहुत ही सुगमतासे लाभ उठा सकते हैं । हर स्थानमें बिना किसी तरहके खर्चके यह चिकित्सा की जा सकती है । इसके अनुसार शरीरसम्बन्धी जितने रोग हैं उन सबका निदान एक ही है--जुदा जुदा रोगोंका जुदा जुदा निदान करनेकी कठिनाई इसमें नहीं है और इस लिए किसी डाक्टर या वैद्यका आसरा लेनेकी जरूरत नहीं रहती । शरीरके भीतर हानिकारक खराब पदार्थ एकत्र हो जानेसे रोग उत्पन्न होते हैं और यदि वे पदार्थ किसी तरह सुगमतासे निकाले जा सकें तो रोग शान्त हो जाते हैं । डाक्टर साहबके बतलाये हुए स्नानोंमे उक्त हानिकारक पदार्थोंके अलग करनेकी विलक्षण शक्ति है । यह स्नान प्रक्रिया बहुत ही सहज है; परन्तु इससे कठिनसे कठिन रोग जो किसी भी प्रकारकी चिकित्सासे आराम नहीं हुए है आराम हो जाते हैं । संसारके सारे चिकित्सा शास्त्रोंको डाक्टर साहब अप्राकृतिक और हानिकारक बतलाते हैं । वे कहते हैं कि सब प्रकारकी चिकित्साओंसे रोग कुछ समयके लिए जबर्दस्ती दबा दिये जाते हैं परन्तु नष्ट नहीं किये जा सकते । कुहनी सा० की इस नई विद्याने संसारमें बड़ा आदर पाया है । आपकी इस विषयकी पुस्तकका संसारकी २९ प्रसिद्ध भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है । जर्मन भाषामें इस पुस्तककी १००

और अगरेजीमें १० आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। इस परसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि आपकी यह विद्या कितनी लोकप्रिय हुई है। यह पुस्तक आपकी ही पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इडियन प्रेसमें इस विषयकी एक छोटीसी चार आनेकी पुस्तक बहुत वर्षों पहले छप चुकी है, उससे हिन्दी जाननेवाले इस विद्यासे थोडा बहुत परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अब इस सम्पूर्ण अनुवादसे इस विद्याका सोपपत्तिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वकील साहबने यह अनुवाद करके हिन्दीका वडाभारी उपकार किया है। हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक रोगी और निरोगी व्यक्तिको यह पुस्तक पढना चाहिए। जो रोगी हैं वे इसके द्वारा रोगमुक्त हो सकेंगे और जो निरोगी है वे कभी रोगके पञ्जेमें न फँसेंगे। जैनी भाइयोंको तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। क्योंकि जैनियोंके लिए तो इससे अच्छी शुद्ध और पवित्र चिकित्सा और कोई हो नहीं सकती। इसका 'हम क्या खावें और क्या पीवें' नामका अध्याय तो खाद्याखाद्यका विचार-करनेवालेंके वहुत ही कामका है। कुहनी साहबने मद्यमास आदिके भोजनका वडे जोरसे निषेध किया है। मनुष्यके लिए वे अन्न, दूध, फल आदिका भोजनही परमोपकारी-वतलाते हैं। उनके विचारसे जो भोजन जितनाही सादा, प्राकृतिक, तरह तरहके चटपटे मसालोंसे रहित और सहज प्रक्रियासे पकाया हुआ होगा वह उतना ही लाभकारी होगा। इस वहुमूल्य पुस्तकके कई दोष वहुत ही खटकते हैं। एक तो इसकी भाषा अच्छी नहीं, दूसरे छपाई अच्छी नहीं। इसमें जो चित्र दिये हैं वे इतने भद्दे छपे हैं कि 'उनसे न छपना अच्छा था।

२५. शिशु-शिक्षा—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत नारायण प्रसाद अरोड़ा, बी. ए. पटकापुर, कानपुर। पृष्ठसख्या २२ मूल्य

एक आना। बच्चा पाच वर्षकी अवस्था तक शिशु कहलाता है। पुस्तकोंकी शिक्षाका प्रारंभ इसके बाद होता है इसके पहले उन्हे शारीरिक, मानासिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा कैसे और किस ढंगसे देना चाहिए, इसी बातका इस छोटीसी पुस्तकमे विचार किया गया है। जिनके घरमे बच्चे हैं, उन्हें इसे एक बार अवश्य पढ़ जाना चाहिए। भाषा सरल है।

आदर्श आर्या।

१

मुर्शिदाबादके सुप्रसिद्ध जमींदार बाबू महताबचन्द्रके अंतःपुरमे प्रवेश करके आज हम एक असामान्य रूप गुणशीला आर्यपत्नीके दर्शन करते है उसके मुखमण्डल पर आश्चर्यजनक सुन्दरताके पवित्रताका विलक्षण सयोग हो रहा है। उसके आकर्णविस्तृत लोचनोंसे दया दृढता और उदारता टपक रही है। उसके सुगाठित शरीरमे यौवनका मनोहारी प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है; परन्तु वह आतापकारी नहीं है—शीतल और शान्त है। उसके वस्त्राभूषण यद्यपि बहुमूल्य हैं परन्तु उनका उपयोग इस ढंगसे किया गया है कि उनमेंसे गर्व और उद्धतताके बदले नम्रता और निर्मल शीलके पवित्र परमाणु निकलकर चारों ओर फैलते है। उसका अन्वर्थक नाम असामान्या है। वह अपनी कुछ सखियोंके साथ निर्दोष हास्यविनोदमय वार्तालाप कर रही है। इसी समय वहाँ एक बेजान पहचानकी स्त्री आकर खड़ी हो गई। उसके मुँहपर बुरखा पड़ा हुआ था। बेषभूषासे वह कोई उच्चकुलकी मुसलमान स्त्री माल्रम होती थी। कुछ समय तक वह असामान्याके सामने खड़ी रही और टकटकी लगाकर उसकी

और देखती रही। असामान्या चाहती थी कि इस स्त्रीका परिचय पूछूँ और उससे बैठनेके लिए कहू कि इतनेमें वह बुरखा फेंककर इसकी ओर बाहें पसारकर आलिंगन करनेके लिए झपटी। असामान्याने देखा कि वह स्त्री नहीं किन्तु दाढ़ी मूछोंसे युक्त एक मुसलमान पुरुष है।

(२)

आर्यपत्नी पहले तो दिग्मूढसी हो रही; परन्तु तत्कालही कर्तव्यको सोचकर उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे दूर धकेल दिया और अपने पतिको यह सवाद देनेका निश्चय किया। वह दौड़कर जीनेके पास तक ही पहुँची थी कि इतनेमें उसके हृदयमें दयाका सोता वह निकला। मनहीमन कहने लगी—' अवश्य ही यह नवाब सिराजुद्दौला है। इतने बडे प्रतिष्ठित और उच्चकोटिके पुरुषकी दुर्दशा कराके मैं इसे नीचीसे नीची अवस्थामें पटक दूँ, यह मेरे लिए कदापि उचित नहीं है। सभव है कि मैं इसे समझा बुझाकर मार्ग पर ले आसकूँ और आजतक सैकड़ों आर्यपत्नियों और आर्यकन्याओंपर अत्याचार करनेवाला एक पतितात्मा दयाजनक अन्धकारमेंसे मुक्त होकर प्रकाशमें आजाय तब मैं इसकी दुर्दशा क्यो कराऊँ ?'' यह सोचकर वह लौट आई और अपनी सखियोंसे तीव्र स्वरसे--बोली यह अपना घर है, यहाँ डरनेकी और भागनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम सब हिम्मत बाँधो और आओ मुझे इस पतित पुरुषके पकड़नेमे सहायता दो। पलायोन्मुखा सखियोंने हिम्मत बाँधी और वे भी इसके साथ नवावपर टूट पडी। नवाब साहेब प्रेमके भिक्षुक बनकर आये थे, इसलिए उन्होंने इस समय अपना बल प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता न समझी, बल्कि कोमलाङ्गिनी रमणियोंके आक्रमणको उन्होंने अपना एक सौभाग्य समझा। असा-

मान्या और उसकी सखियोंने उनके हाथ पैरोंको अच्छी तरह एक रस्सीसे कसकर बाँध दिया और फिर उन्हें आसानीसे जमीनपर लुढ़का दिया। नवाब साहबने अपने दरबारके एक हिन्द कविके मुहसे कृष्णचरित्र सुन रक्खा था। आपसे अपनी इस कैदकी अवस्थाका मिलान चौरलीलाके साथ करने लगे। एक बार कृष्णजी किसी ग्वालके घटका दूध दही चोरीसे खा गये। गोपिकाओंने देख लिया। उन्होंने उन्हें पकड़ा और मुश्कें बाँधा कर वे यशोदा माताके यहाँ ले गईं। जिस समय आप अपने कल्पनाराज्यमें मस्त होकर आपको श्रीकृष्ण असामान्याको राधिका और अन्य सखियोंको ब्रजबालायें समझ रहे थे, उसी समय असामान्या बोलीः—"नवाब साहब, अब जरा सावधान होकर आप अपनी अवस्थाका विचार कीजिए। थोड़ी देर पहले जो विस्तृत बगालदेशका राजा था, वही इस समय एक सामान्य वणिककी स्त्रीके अधिकारमें है। मुकटका बहुमूल्य मणि धूलमे लोट रहा है। लाखो मनुष्योंके जीवनमरणको अपनी मुट्ठीमे रखनेवालेका जीवन एक यःकश्चित् स्त्रीकी मुट्ठीमें? आप जानते है कि इस समय मैं आपकी क्या क्या दुर्दशायें करा सकती हूं। अच्छा हो, यदि आप समझ जावें और यह प्रतिज्ञा करके यहाँसे चुपचाप चले जावें कि मैं आगे किसी भी परस्त्रीके साथ ऐसा बुरा व्यवहार न करूँगा। मैं आपको अभी छोड़े देती हूँ। मैं नहीं चाहती हूँ कि बंगालके सर्वशक्तिमान महाराजाका किसी तरह अपमान हो, इसलिए इस प्रकार नम्रताके साथ समझा रही हूँ।"

नवाब—मेरी जान! मेरी प्यारी! तुह्मारे इन्हीं गुणों पर तो मैं फिदा हुआ हूँ। तुम्हारे जैसी हिम्मत, हुकूमत, और समझाने बुझानेकी चतुराई एक नवाबकी बेगममें ही शोभा पाती है। मै तुम्हारी

इन कार्रवाईयोंसे वहुत खुश हूँ। परन्तु वस, अव देर मत करो 'ऑख आगेकी जुदाई अव सही जाती नहीं!'

असामान्या—नवाव साहव मै फिर भी कहती हूँ कि आप होशमें आजाइए और अपनी इस वेवशीकी हालत पर विचार कीजिए। इस तरहकी पागलपनकी वातें करना छोड दीजिए। मुझे आपकी दशा पर वडी ही दया आती है।

नवाव—प्यारी, अगर दया आती है, तो फिर देर क्यों कर रही हो? सचमुच ही मैं (तुम्हारे लिए) पागल हो रहा हूँ, परन्तु इस पागलपनके दूर करनेकी दवाई भी तो तुम्हारे ही पास है।

असामान्या—नवाव, तेरी होनहार अच्छी नहीं है, इसी लिए तू इस वुरी राहसे लौटना नहीं चाहता। तुझे मालूम नहीं है कि अभी थोडी ही देरमें मेरे स्वामी तुझे कितना कठोर दण्ड दे सकते हैं। वे वातकी वातमें तेरा सिर धड़से अलग कर देंगे और जमीनमें गाडकर किसीको पता भी न लगने देगे कि तेरी क्या दशा हुई।

इस तरह असामान्याने वहुत कुछ समझाया और हर तरहकी धमकियॉ दीं; परन्तु कामान्ध नवावको चेत न हुआ। आखिर और कोई उपाय न देखकर उस आर्यपत्नीने जाकर अपने पतिको खवर दे दी।

मेहतावचन्द्रके क्रोधका ठिकाना न रहा। वह आते ही अपने कामदार जूतोंसे नवाव साहवकी पूजा करने लगा। जिन अपवित्र ओठोंने हजारों सुशीला आर्याओंकी पवित्रताको अन्यायसे चूस लिया था, वे ही ओष्ठ आज एक वणिककी जूतियोंका चुम्वन कर रहे हैं! इस समय नवाव साहवकी मुखमुद्रा देखने योग्य थी।

(३)

सती असामान्याके आग्रहसे सिराजुद्दौला जीता हुआ छोड़ दिया गया। सती समझती थी कि वह अपने कृत कर्म पर पश्चाताप करेगा और आगे सुमार्ग चलने लगेगा। परन्तु फल इससे उलटा हुआ। वह चोट खाये हुए साँपकी तरह वदला लेनेके लिए व्याकुल हो उठा उसने एक वदमाशको वुलाकर आज्ञा दी कि यदि तू महतावचन्द्रको चौराहे पर सवके सामने समाप्त कर देगा और उसके मस्तकको चाँदीके थालमें रखकर उसकी स्त्रीको भेंट कर सकेगा तो मैं तुझपर वहुत खुश होऊँगा और तुझे मुँहमाँगा इनाम दूंगा।

ऐसा ही हुआ। उक्त भयंकर आज्ञाकी पालना उसी दिन की गई। वदमाश उस निर्दोष धनीके लोहु-लुहान मस्तकको चाँदीके थालमें रखकर उपस्थित हुआ। अपने सामने यह अकल्पित दृश्य देखकर वह भोंचकसी हो रही। क्रोध, शोक, भय, वैर आदि अनेक विकार उसके मुखमण्डल पर एक साथ क्रीडा करने लगे। उक्त विकारोंकी प्रवलताको सती नसँभाल सकी, वह तत्काल ही अचेत होकर गिर पड़ी !

दासियोंने वड़ी काठिनाईसे वहुत देरमें उसे सचेत किया। वह उठ वैठी और वोलने चालने लगी; परन्तु पतिमरणके असह्य शोकसे उसके मस्तक यन्त्र पर वड़ी कड़ी चोट पहुँची। वह पागल हो गई। वेमतलवका वेसिलसिले वकने लगी, जहाँ तहाँ दौड़ने लगी, निर्जन स्थानमें तरह तरहके दृश्य देखकर उनका वर्णन करने लगी, और रोने चिल्लाने लगी। कपड़े लत्तोंका, खानपानका, शरीरका किसी भी वातका उसे भान न रहा। कभी कभी वह इस तरह वोलती है जैसे अपने पतिको वुला रही हो—मना रही हो—'हा हा' खा रही हो।

कभी कभी कहती है--हाय! नवाबकी क्या दशा होगी? भगवान्! उस पर क्षमा करो--बालजीवों पर क्रोध नहीं करुणा ही शोभा देती है!

अन्यायी नवाबके पापोंका घडा भर चुका। सतीके उत्तप्त उच्छ्वास अपना आश्चर्य जनक प्रभाव दिखलाये बिना न रहे। उस पतितात्मा पर अद्भुत-कर्मा विधिकी नजर जा पड़ी। बंगालके जमींदार और जागीरदार उत्तेजित हो उठे। उन्होने नवाबके दमन करनेके लिए अँगरेजोंसे सहायता माँगी, जिसका परिणाम पलासीका भयकर युद्ध हुआ। विषयलम्पट नवाब घावोंसे जर्जर होकर भागा परन्तु रास्तेमें पकड़ लिया गया और बडी बुरी तरहसे मार डाला गया--और सो भी अपने जाति भाईयोंके ही हाथोंसे।

(४)

इतने दिनोंके बाद आज हम असामान्याको मुर्शिदाबादके कब्रस्तानमें देखते हैं। उसके पास ही नवाबका निर्जीव शरीर लोहुसे लथपथ हुआ पड़ा है। सतीके स्वजन-बन्धु कह रहे है--"यह उसी जुल्मी नवाबकी लाश कैसी बुरी हालतमें पड़ी है। दुर्बलोंकी 'आह' कभी व्यर्थ नही जाती। देखो, विधिने हमारे बैरका बदला किस तरह चुकाया है!" यह सब देख सुनकर सतीकी मोह निद्रा टूट गई। वह एकाएक जाग उठी और उसकी गई हुई बुद्धि फिर लौट आई। अपने पतिकी हत्याका वैर ले लिया गया, इस बातका खयाल करके मुरझाई हुई गुलाबकी कली फिर एक बार खिल उठी--सतीकी मुखमुद्रा पर परिहासका प्रकाश दिख गया।

इसके बाद सती अपने घर गई, परन्तु थोड़ी ही देरमें--कुछ ही घटों पीछे दासियोंने रोरा मचाया कि सतीका पता नही है! कहाँ गई और कैसे गई, किसीको कुछ भी मालूम नहीं है। ढूढ खोज

होने लगी। चारों तरफ नौकर चाकर दौड़ाये, परन्तु कुछ भी फल न हुआ। तब क्या उसने आत्मघात कर लिया? परन्तु अब आत्मघात करनेका तो कोई कारण न रहा था!

(५)

गंगाके किनारे एक अनाथा स्त्री रक्तमे लथपथ हुई पड़ी है। उसके पास ही एक दो तीन दिनका जन्मा हुआ सुकुमार बच्चा पड़ा है। स्त्रीकी उमर १७ वर्षसे अधिक न होगी। रंगरूपसे वह कोई प्रतिष्ठित घरानेकी स्त्री माळूम होती है। परन्तु इस समय बेचारी बडी बुरी हालतमें है। उसके होशहवास ठिकाने नहीं हैं। जहाँ तहाँसे उसे भयसूचक शब्द सुन पड़ते हैं। पूर्वकी ओरसे जब वह अपने आप ही सुनती है कि 'पकड़ो, यह पड़ी है' तब बच्चेको उठाकर पश्चिमकी ओर दौड़ने लगती है और घड़ीकमें वहाँसे भी किसी चीजकी आहट सुनती है तब उत्तरकी ओर दौड़ने लगती है। उसके हृदयका भय कल्पनाके द्वारा बाहर प्रत्यक्ष होता है और इस तरह बाहरसे और भीतरसे भयकी दुहरी चपेटें खाकर उसकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही है। पाठक आप जानते हैं कि यह विपत्तिकी मारी हुई स्त्री कौन है? यह नवाब सिराजुद्दौलाकी अतिशय रूपवती और प्रेयसी बेगम है!

बेगमने देखा कि एक युवती स्त्री दूरसे दौड़ती हुई आ रही है। ज्यों ही वह इतने समीप आई कि उसका मुख अच्छी तरह दिखलाई देने लगा, त्यो ही बेगम चिल्लाकर बोल उठी—"अरे, यह तो असामान्या है। अवश्य ही यह अपने पतिका खून करनेवाले नवाबके वैरका बदला लेनेके लिए मुझ कमनसीबके पास आरही है। मेरे ही लिए यह वर्षोंसे गाँव गाँव और वनपर्वतोंमें भटक रही थी। हाय! हाय!

आखिर इसने मुझे पा लिया। अब यह मेरे प्राण लिये बिना न रहेगी। अब मेरी इस बेटीकी रक्षा कौन करेगा?" बेगम अपनी सारी शक्तिको लगाकर किनारेकी ओर दौड़ी और एक मल्लाहको अपनी एक कीमती मुद्रिका देकर उसकी डोंगीमें बैठगई। मल्लाहने उसकी इच्छानुसार डोंगीको दूसरी ओर लेजानेके लिए तेज धारमें छोड दी। वायुका वेग पहलेहीसे कुछ अधिक था। इस समय और भी बढ गया। गंगा भीषण रूप धारण करने लगी। बातकी बातमें एक छाती फाडनेवाली चीख सुनाई दी। और डोंगीमेंसे दो सुन्दर शरीर उलटकर गगामैयाकी गोदमे जापडे।

असामान्या किनारेपर आ पहुँची थी। इस भयकर चीखको सुनकर उसका हृदय विदीर्ण होने लगा। वह चिल्लाकर बोली—"अरी निर्दोष बहिन, तूने यह क्या किया? जिस पतिके लिए तूने अपने प्राणोंकी परवा न की और प्रसवकालका समय समीप आ चुकनेपर भी समरागणका साथ न छोडा उसी पतिने जब तेरे साथ दगा किया, तब और किसकी सहायता या उपकारकी तू आशा रख सकती थी? पर बहिन, तेरे अभागी पतिकी दुर्दशाको देखकर मेरे हृदयमें जो दु:ख हुआ है मेरी इच्छा थी कि मैं तुझे कह सुनाऊँ। परन्तु तूने मेरी इस इच्छाको तृप्त करनेका अवसर ही न दिया। तेरी सहायता करनेके लिए, तुझे आश्रय देनेके लिए और तुझे आश्वासनके लिए मैंने घर छोडा, द्वार छोडा, गॉव गॉव और जगल जगल घूमना स्वीकार किया, परन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। और आज जब तेरी उदास मुखमुद्रा देखनेका सयोग मिला, तब तू गगाकी गोदमें जा सोई—मैं न तेरे साथ बातचीत कर सकी और न तेरे हृदयमे अपना विश्वास स्थापित कर सकी!" सतीकी ऑखोंमेंसे इस समय ऑसु-

ओंकी अविरल धारा वह रही थी। पाठक जानते हैं कि इन आँसु-ओंका मूल्य कितना है ? नवावकी सारी सल्तनत उसके एक ऑसूके मूल्यके सामने तुच्छ है। वड़े वड़े पुण्यात्माओंके पुण्यका संचय इस सतीके इस समयके एक बुँदके आगे एक कपर्दिकाके तुल्य है। वड़े वड़े फिलासफ़रोंकी फिलासफ़ी शत्रुपत्नीके दुःखसे दुखी होती हुई इस आदर्श आर्याके आसूँके तेजके आगे झख मारती है उधर देखो, हम यहाँ तर्कवितर्कमे ही उलझे है कि वह असामान्या सती अपनेको न सँभाल सकी और उस वेगवती नदीमें प्राणोंकी पर्वा न करके कूद पड़ी।

उस समय सतीका साहस और प्रयत्न देखने योग्य था। थोड़ी ही देरमे वह वेगमको उसकी लड़की सहित वड़ी वड़ी कठिनाई-योंका सामना करके डूवती उतराती हुई किसी तरह किनारे तक खींचलाई। जमीनपर आतेही उसके मुँहसे ये आशासूचक शब्द निकल पड़ेः—"यदि इसके प्राण दो चार मिनिट ही और ठहर गये, तो मेरी आशा सफल होगी—मैं इसे आश्वासन और आश्रय देकर अवश्य ही सुखी कर सकूँगी।"

परन्तु उसकी यह आशा व्यर्थ हुई। उस जीवनकी परवा न करनेवाले भयंकर साहसका परिणाम 'शून्य'से आगे न बढ़ा। उसको होशमें लानेके सारे प्रयत्न विफल हुए वेगमको आत्मा अपनी निराधार लड़कीको छोड़कर शरीरसे वाहर होगया।

(६)

पूर्व वगालके एक छोटेसे गाँवमे एक झोपड़ीमेंसे वड़ी ही सुरीली आवाज आ रही है। भीतर जाकर देखते हैं तो एक आठ वर्षकी सुन्दरी कन्याको एक स्त्री सारंगी वजाना सिखा रही है। स्त्री फटे-

हालों है। उसका शरीर बहुत ही कृप हो रहा है। जब कभी वह कन्याके हाथमेसे सारगी ले लेती है और एक दो गतें बजाकर फिर उसे दे देती है। वीच वीचमें उस नवनीत कोमला वालिकाको वह अपनी गोदीमें लेकर प्यार करने लगती है। ऐसे अलौकिक दृश्यके देखनेका सौभाग्य स्वर्गमें भी प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए दयाके देवदूत उस झोंपडीके आसपास--एकट्ठे हो रहे हैं और उस कन्याकी सारगीके सुरमें अपनी दिव्य सारगियोंका सुर मिलाकर हृदयवेधक ध्वनि उत्पन्न कर रहे है। उन देवोंसे यदि पाठक पूछेंगे तो वे उत्तर देंगे कि “ वह कन्या नवाव सिराजुद्दौलाकी मातृपितृ-हीन निराधार लडकी है और वह स्त्री उस कन्याके पालनपोषणके लिए ही प्राणोंको धारण कर रखनेवाली सती असामान्या है। इस सती देवीकी सेवामें हर समय उपस्थित रहनेमें हम अपना वडा भारी सौभाग्य समझते है। विशाल हृदयवाली शत्रुकी सेवाके लिए जीवन दे देनेवाली, शीलरक्षामें गौरव समझनेवाली, यौवन लक्ष्मी और ऐहिक सुखोंकी अपेक्षा परमार्थको वहू मूल्य जाननेवाली सती असा-मान्या वास्तवमें असामान्या महनीया और पूजनीया है। ”

—समयधर्म।

गुण सीखो, अवगुण नहीं।

इसमे सन्देह नहीं कि पाश्चात्य लोगोंसे हमें सैकड़ों बातोंकी शिक्षा प्राप्त करना है—विज्ञानादि विपयोंमें इस समय वे हमारे गुरुके आसनपर विराजमान हैं, परन्तु सावधान! भारतवासियो, अपनी गुरुभक्ति इतनी न बढा देना कि उससे गुरुओंके ज्ञान, विज्ञान, उद्यम साहसादि गुणोंके साथ साथ उनके अवगुण भी खिंचे हुए चले आवे और सब तरहसे तुम उन्हींके समान वन जाओ। ये तुम्हारे पूर्वकालके तपोव-

नोमें रहनेवाले ऋषि नहीं है जो नखसे शिख तक और वाह्याभ्यन्तरतः सर्वथा अनुकरणीय होते थे। नहीं, ये आजकलके मास्टर साहब हैं जो केवल इसी कामके होते है कि उनसे उनकी विद्या सीख ली जाय और उनकी दूसरी बातोंसे कोई संबन्ध न रक्खा जाय। अपने इन गुरुओकी प्रभुताको, वैभवको, आश्चर्यकारिणी बुद्धि और शक्तिको देखकर चकचौंधा मत जाओ—यह मत समझ बैठो कि ये बाहरसे भीतर तक सब प्रकारसे अनुकरणीय हैं—ज्ञानके समान इनका चरित्र भी निर्मल है। क्योंकि ज्ञान और चारित्र दो चीजें है। यह नियम नहीं है कि ज्ञानके साथ चारित्र होता ही है। यह सच है कि इन गुरुओकी जातिमे भी अनेक पुरुष ऐसे हुए हैं और अब भी है जिनका चरित्र बहुत ही ऊँचा और आदरणीय कहा जा सकता है; परन्तु उनपर मुग्ध होकर तुम सारी जातिभरको अपना आदर्श मत मान बैठो। नही तो उनके गुणोंके प्राप्त करनेमें तो विलम्ब लगेगा पर अवगुणोके बोझेसे पहले ही दब जाओगे। यह भी स्मरण रक्खो कि तुम आपको सर्वथा हीन या लघु मत समझो। यद्यपि लघुता या नम्रता प्रगट करना एक सभ्यजनोचित गुण है; परन्तु यह तभी तक गुण है जब तक अभिमान भावको दूर करनेके रूपमे रहता है। पर जिस लघुता ज्ञानसे आत्मा दुर्बल, साहसहीन और अपनी गुप्तशक्तियोंसे अजान हो जाता है—वह कदापि कल्याणकारी नही हो सकता है। इस भावको हृदयसे दूर कर देना चाहिए और अपनी अनन्त शक्तियोंपर विश्वास स्थापित करना चाहिए।

जिस जर्मनीको ऐहिक उन्नतिके लिए हमने अपना आदर्श मान रक्खा है, जिसके आश्चर्यजनक आविष्कारों और शिल्पचातुर्यके विपुल

व्यापारोको देखकर हम मुग्ध है, जानते हो उसके नैतिक चरित्रकी क्या अवस्था है ? जर्मनीकी राजधानी वर्लिनमें एक Moalibt Prison नामका एक वड़ा भारी जेलखाना है। उसके अध्यक्ष डा० Finkler Burgh ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है—'जर्मनी देशमें कितने लोगोंको सजा हुई है ?' उसमें उन्होंने एक जगह लिखा है—"जर्मन साम्राज्यमें जितने पुरुष है उनका छट्टा हिस्सा और जितनी स्त्रियॉ हैं उनका पचीसवॉ हिस्सा जर्मन-दण्डनीतिके किसी न किसी कानूनका भग करनेसे दण्डित या सजा पाया हुआ है।" और एक जगह लिखा है--"जर्मनीमें इस समय दण्डित (सजायाव) व्यक्तियोंकी सख्या ३८ लाख ६९ हजार है। उनमें ३० लाख ६० हजार पुरुष और ८ लाख ९ हजार स्त्रियॉ हैं। १२ वर्पसे लेकर १८ वर्पकी उमर तकके वालकोंमें ४३ के पीछे एकके हिसावसे और वालिकाओंमें २१३ के पीछे एकके हिसावसे दण्डित हैं।" देखिए, कैसा विभीपिकामय व्यापार है।

यूरोपके और और देशोंका भी लगभग यही हाल है। थोडेसे उच्चश्रेणीके लोगोंके सिवाय वहॉकी शेप जनता दिनपर दिन पापपङ्कमें डूवती जाती है। फ्रान्सके पुरुप विवाह नहीं करना चाहते, स्त्रियॉ विवाह नहीं करतीं--सन्तानका कष्ट उठाना उन्हें पसन्द नहीं। विलासिताकी हद्द हो गई।

इन सव वातोंपर ध्यान देकर इन गुरुओंसे जो कुछ सीखो, वह अच्छी तरह सोचविचार कर सीखो,—इनके दुर्गुणोको मत सीख लेना, नहीं तो फिर तुम्हारी दुर्दशाका ठिकाना न रहेगा—इस समय तो तुम्हारे पास भी दुर्गुणोंकी कुछ कमी नहीं है—इतने ही काफी हैं।

गुणग्राही।

मीठी मीठी चुटकियाँ।

१ सेठोंकी गर्भपीड़ा।

इन्दौरके सेठ एक साथ कई संस्थाओका प्रसव करनेवाले हैं। वेचारे इस समय गर्भकी गहरी तकलीफ सहन कर रहे हैं। प्रसवकाल समीप है। हम चाहते हैं कि उनका यह कष्ट शीघ्र ही सन्तान मुखनिरीक्षणके सुखमें परिणत हो जाय।

२ इतिहासकी मर्यादावृद्धि।

जैन्तासिद्धान्त भास्करके पिछले दो अंकोंके लिए ऐतिहासिक सामग्री एकट्ठी करनेमें, गुप्त वातोका अनुसन्धान करनेमें और अनेक जटिल समस्याओंको सुलझानेमे उसके सम्पादक महाशयको इतना परिश्रम करना पड़ा है कि अव वे उसे त्रैमासिक रूपमे निकालना अच्छा नहीं समझते हैं—इससे इतिहास जैसे कठिन शास्त्रकी अवज्ञा होती है। उन्होने निश्चय किया है कि अव वह वार्षिक रूपसे दर्शन दिया करेगा। परन्तु देखते हैं कि पिछले अंकको निकले हुए एक वर्षसे भी अधिक वीत चुका है। आश्चर्य नहीं जो इतिहासकी मर्यादा वढ़ानेके लिए उसका प्रत्येक अंक दो वर्षमें निकालना निश्चय किया गया हो। और कुमार देवेन्द्रप्रसादजीसे जो जैनमित्रके नोटिसमें वड़ी फुर्ती दिखला रहे थे। केफियत तलव की गई हो कि तुमने भास्करके जल्दी निकलनेकी सूचना क्यो प्रकाशित कराई।

३ जैनगजटकी वेजोड़ कविता।

यो तो सभी वातोंमें जैनगजट अपनी सानी नहीं रखता, परन्तु इन दिनो उसने कवितामें वड़ी तरक्की की है। आज कल उसमें कई नामी नामी कवियोंने लिखना प्रारंभ किया है। उसके एक कवि पिछले ३६–३७ अंकमें लिखते है:—

"वीस वर्ष अब बीते जोय। देखो जैनगजटको सोय ॥
देश देशमें उन्नति करी। विद्या धर्म ध्वजा फरहरी ॥
महासभा जब खोला आप। शकट बड़े सहे सताप ॥
एक ठौर नहि लिया विश्राम। अब कुछ दिनसे अलिगढ़ धाम ॥
श्रीलाल और मिश्रीलाल। सम्पादक हैं देखो हाल ॥

इत्यादि। देखिए, कैसी भाव पूर्ण कविता है! न हुए आज कोई भोज जैसे कवियोंके भक्त! कवि पहले दो चरणोंमें कहता है कि जैन-गजटको निकालते हुए वीस वर्ष वीत गये, परन्तु उसे देखिए वह 'सोय' अर्थात् जैसाका तैसा है–जहाँका तहाँ है (वल्कि और भी पीछे हठ गया है)। आगे कवि महासभाके प्रसव करनेके कष्टोंका और सन्तापोंका वर्णन करता हुआ और जगह जगह भटकनेकी कथाका स्मरण कराता हुआ एक नई खवर सुनाता है कि हालमें 'अलीगढ–धाम'में उसके श्रीलाल और मिश्रीलाल दो सम्पादक हैं! यह वात अभी तक प्रकाशित न हुई थी। कविको हम उसके रचनाचातुर्यके और स्पष्ट वक्तृत्वके विषयमें वधाई देते हैं।

४ पब्लिक सभाओंका शौक।

जैनियोंमें इन दिनों पब्लिक सभाओंका शौक वेतरह वढ़ता जाता है। वे अपने प्रत्येक व्याख्याताको और प्रत्येक उपदेशकको वे-जोड़-लासानी समझते हैं। उनके वचन सुनकर उन्हें जो आनन्दमिश्रित अभिमान होता है उसे वे अपने ही भीतर कैद नहीं रखना चाहते हैं–उसका प्रदर्शन सर्वसाधारणके समक्ष करनेके लिए वे व्याकुल हो उठते हैं। परिणाम यह होता है कि वे किसी अजैन विद्वानको सभा-पति वनाकर पब्लिक सभाओंकी धूम मचा देते है। जव व्याख्यान होते हैं तव वे गद्गद होकर सोचते हैं कि इस अपूर्व रसका स्वाद इन

बेचारोंको कहाँ मिल सकता था? हमारे मन्दिरके शास्त्रसभारूपी प्यालेके बाहर जिसका कभी एक बूँद भी न जाता था उसका आज हम उदार होकर धारा प्रवाह कर रहे हैं। उस समय वे अपनेको कृतकृत्य समझने लगते है और उसी तरहका आनन्दानुभव करने लगते हैं जिस तरह एक बार नारदजीको हुआ था। एक राजकन्याका स्वयंवर था। उसके रूप पर आप मोहित हो गये। आपने श्रीकृष्ण-जीसे वर मांगा कि मेरा शरीर सुवर्णमय हो जाय। ऐसा ही हुआ। स्वयंवर मंडपमें आप अपने सोनेके शरीरको देखकर फूले न समाते थे और निश्चय कर बैठे थे कि राजकन्या मुझे छोड़कर और कहाँ जायगी? पर दूसरे लोग आपकी ओर देख देखकर अपनी हँसी मुश्किलसे रोक सकते थे। इतनेमें किसी हँसोड़ने महाराजके आगे दर्पण लाके रख दिया! नारदजी अपने मुँहको वन्दरकी शकलका देखकर लज्जा दुःख और ग्लानिके मारे पागल हो गये। जैनियोंके अपने पण्डितोंके पब्लिक-स्पीचानन्दमें मस्त देखकर ता० ... .के दैनिक भारतमित्रमें किसी सज्जनने एक लेख रूपी दर्पण उनके आगे रख दिया है। अब वे देखे कि हमारे पब्लिक व्याख्यानोको जिन पर हम 'वलिहार' हो रहे है लोग कैसा समझते है। भारतमित्रके लेखकको यह बात सभीके मानने लायक है कि जैनी लोग अपने व्याख्यानोंके फुहारे अपने मन्दि-रोंके ही भीतर छोड़ा करें तो अच्छा हो। हम लोग व्यर्थ ही क्यों तंग किये जाते हैं—हम लोगोंके पास ऐसे व्याख्यानोके सुननेके लिए समय कहाँ है?

५ विचित्र हिसाब।

एक विद्वानने हिसाब लगाया है कि ग्रामों और कस्बोंकी अपेक्षा शहरोंके जैनी, गरीब और मध्यम श्रेणीके लोगोकी अपेक्षा धनवान्

जैनी और गुरुके–निगुरियोंकी अपेक्षा गुरुवाले जैनी कुछ अधिक मौटी बुद्धिके होते हैं। मालूम नहीं, यह हिसाब कहाँ तक सच है। पर इसे एक विलायती साहबने प्रकाशित किया है इसलिए लाचार होकर मानना ही चाहिए।

६ भविष्य कथन।

न्यायाचार्य प० गणेशप्रशादजी साठीकी जन्मकुण्डली देखकर किसी भविष्यद्वक्ताने कहा है कि "आप साठ वर्षकी उमर तक न्याय-शास्त्रोंका अध्ययन करते रहेंगे और उसके बाद यदि जीवेंगे तो फिर, जैन समाजकी सेवा करेंगे।" यह बात आपके 'उपपद' साठीसे भी ठीक मालूम होती है।

—लालबुजक्कड़।

ग्रन्थ–परीक्षा।

(२)

जिनसेन–त्रिवर्णाचार।

(३)

मेरी इच्छा थी कि मै इस त्रिवर्णाचारके धर्मविरुद्ध कथनोंको विस्तारके साथ प्रगट करूं। परन्तु इस ग्रथपर कई लम्बे चौडे लेख हो गये हैं। इससे पहले लेखमें ग्रथकर्ताकी धूर्तताका दिग्दर्शन कराते हुए धर्म-विरुद्ध कथनोंका भी वहुत कुछ उल्लेख किया जा चुका है। और आगामी सोमसेन त्रिवर्णाचारकी परीक्षाके समय और भी वहुतसे

धर्मविरुद्ध कथनोंका दिग्दर्शन कराया जायगा। * अधिक लिखना शायद पाठकोंको अरुचिकर हो जाय; इसलिए यहाँपर बहुत संक्षेपके साथ धर्मविरुद्ध कथनोंके कुछ थोड़ेसे नमूने और भी प्रगट किये जाते हैं। जिनसे जैनियोंकी थोड़ी बहुत आँखें खुलें और उन्हें ऐसे जाली ग्रंथोंको अपने भंडारोंसे अलग करनेकी सद्बुद्धि प्राप्त हो:—

१–मिट्टीकी स्तुति और उससे प्रार्थना।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमे, मृत्तिका स्नानके सम्बन्धमे, निम्नलिखित श्लोक दिये हैं:—

" शुद्धतीर्थसमुत्पन्ना मृत्तिका परमाद्भुता।
सर्व पापहरा श्रेष्ठा सर्व मागल्यदायिनी॥
सिद्धक्षेत्रेषु सजाता गगाकुले समुद्भवा।
मृत्तिके हर मे पाप यन्मया पूर्वसंचितम्॥
अनादि निधना देवी सर्वकल्याणकारिणी।
पुण्यगस्यादिजननी सुखसौभाग्यवर्द्धिनी॥"

इन श्लोकोंमे गंगा आदि नदियोके किनारेकी मिट्टीकी स्तुति की गई है। और उसे सर्व पापोंकी हरनेवाली, समस्त मंगलोंके देनेवाली सम्पूर्ण कल्याणोकी करनेवाली, पुण्यको उपजानेवाली और सुख-सौभाग्यको बढ़ानेवाली, अनादिनिधना देवी बतलाया है। दूसरे श्लोकमें उससे यह प्रार्थना भी की गई है कि 'हे मिट्टी, तू मेरे पूर्वसंचित पापोंको दूर कर दे।' यह सब कथन जैनधर्मसे असबद्ध है, और हिन्दू धर्मके ग्रंथोंसे लिया

---

* जिनसेन त्रिवर्णाचारमें सोमसेन त्रिवर्णाचार प्राय: ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा हुआ है। और सोमसेन त्रिवर्णाचारकी परीक्षा एक स्वतत्र लेख द्वारा की जायगी, ऐसी सूचना पहले दी जा चुकी है।

हुआ मालूम होता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार मिट्टी पापोंको हरनेवाली नहीं है और न कोई ऐसी चैतन्यशक्ति है जिससे प्रार्थना की जाय। हिन्दूधर्ममें मिट्टीकी ऐसी प्रतिष्ठा अवश्य है। हिन्दुओंके वह्निपुराणमें, स्नानके समय मृत्तिकालेपनका विधान करते हुए मिट्टीसे यही पापोंके हरनेकी प्रार्थना की गई है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोकोंसे प्रगट है —

"उद्धृतासि वराहेण कृष्णामित वाहुना।
मृत्तिके हर मे पाप यन्मया पूर्वसंचितम्॥
मृत्तिके जहि मे पाप यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
त्वया हतेन पापेन ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम्॥" *

वह्निपुराणके इन श्लोकोंमेंसे पहले श्लोकका उत्तरार्ध और जिनसेन त्रिवर्णाचारके, ऊपर उद्धृत किये हुए, दूसरे श्लोकका उत्तरार्ध, ये दोनों एक ही हैं। इससे और भी स्पष्ट है कि यह कथन हिन्दूधर्मसे लिया गया है। जैनियोंके आर्ष ग्रंथोंमें कहीं भी ऐसा कथन नहीं है।

२–गोमूत्रसे स्नान।

जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, ऊपर उद्धृत किये हुए तीसरे श्लोकके अनन्तर, पंचगव्यसे अर्थात् गोमूत्रादिसे स्नान करना लिखा है और फिर सूर्यके सामने खड़ा होकर शरीरशुद्धि स्नानका विधान किया है। इसके पश्चात् सिरपर पानीके छींटे देनेके कुछ मंत्र लिखकर संध्या वन्दन करना और उसके बाद सूर्यकी उपासना करनी चाहिए, ऐसा लिखा है यथा —

---

* देखो शब्दकल्पद्रुम कोशमें 'मृत्तिका' शब्द। १ गौका मूत्र, गोबर, घी दूध और दहीको 'पञ्चगव्य' कहते हैं।

"निमज्योन्मज्याचम्य अमृते अमृतोद्भवे पचगव्यस्नान सूर्याभिमुखं स्थित्वा शरीर शुद्धिस्नानं कुर्यात्।......सध्यावन्दनानन्तरं सूर्योपस्थापनं कर्तव्यम्।"

और भी कई स्थानोंपर पंचगव्यसे स्नान करनेका विधान किया है। एक स्थानपर, इसी पर्वमें, नित्यस्नानके लिए गंगादि नदियोंके किनारे पर पंचगव्यादिके ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। यथा:—

"अथातो नित्य स्नानार्थं गंगादि महानदी नदार्णवतीरे पचगव्यादि कुशतिलाक्षत तीर्थमृत्तिका गृहीत्वा...... .."

यह सब कथन भी हिन्दू धर्मका है। हिन्दूओंके यहाँ ही गोमय और गोमूत्रका बहुत बड़ा माहात्म्य है। वे इन्हे परम पवित्र मानते है और इनसे स्नान करना तो क्या, इनका भक्षण तक करते है। उनके वाराहपुराणमें पंचगव्यके भक्षणसे तत्क्षण जन्मभरके पापोंसे छूटना लिखा है। यथा:—

"गोशकृद्द्विगुण मूत्रं पय· स्यात्तच्चतुर्गुणम्।
घृतं तद्द्विगुणं प्रोक्त पंचगव्ये तथादधि॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पंचगव्य तु य· पिबेत्।
यावज्जीवकृतात्पापात् तत्क्षणादेवमुच्यते॥"

गोमयको, उनके यहाँ, साक्षात् यमुना और गोमूत्रको नर्मदा तीर्थ वर्णन किया है।* विष्णुधर्मोत्तरमें गोमूत्रके स्नानसे सब पापोंका नाश होना लिखा है। यथा:—

गोमूत्रेण च यत्स्नान सर्वाघविनिसूदनम्।"

इसी प्रकार सूर्योपस्थापनादिक ऊपरका सारा कथन हिन्दुओंके अनेक ग्रंथोंमें पाया जाता है। जैनधर्मसे इस कथनका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता, न जैनियोंके आर्ष ग्रंथोंमें ऐसा विधि

---

* देखो शब्दकल्पद्रुमकोषमें 'पंचगव्यशब्द'। * 'गोमयं यमुनासाक्षात् गोमूत्रं नर्मदा शुभा।

विधान पाया जाता है और न जैनियोंकी प्रवृत्ति ही इस रूप देखनेमें आती है ।

३–नदियोंका पूजन और स्तवनादिक ।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमे, एक वार ही नहीं किन्तु दो वार, गगादिक नदियोको तीर्थ देवता और धर्मतीर्थ वर्णन किया है और साथ ही उन्हें अर्घ चढाकर उनके पूजन करनेका विधान लिखा है । अर्घ चढाते समय नदियोंकी स्तुतिमें जो श्लोक दिये हैं उनमेंसे कुछ श्लोक इस प्रकार है ।

"पद्महदसमुद्भूता गगा नाम्नी महानदी ।
स्मरणाज्जायते पुण्यं मुक्तिलोक च गच्छति ॥
केसरीद्रहसभूता रोहितास्या महापगा ।
तस्या स्पर्शन मात्रेण सर्वपाप व्यपोहति ॥
महापुण्डहदोद्भूता हरिकान्ता महापगा ।
सुवर्णार्घप्रदानेन सुखमाप्नोति मानव. ॥
रुक्मी–शिखरिसभूता नारी स्रोतस्विनी शुभा ।
स्वर्णस्तेयादिजान्पापान् ध्यानाच्चैव विनश्यति ॥
रुक्मिणीगिरिसभूता नरकान्ताऽसुसेवनात् ।
पातकानि प्रणश्यति तम सूर्योदये यथा ॥
अनेक हृदसंभूता नद्य. सागरसयुता ।
मुक्तिसौभाग्यदा यश्च सर्वेतीर्थाधिदेवता ॥"

इन श्लोकोंमें लिखा है कि–**गंगा**नदीके स्मरणसे पुण्यकी प्राप्ति होती है और स्मरण करनेवाला मुक्तिलोकको चला जाता है; **रोहितास्या** नदीके स्पर्शनमात्रसे सब पाप दूर हो जाते हैं; **हरिकान्ता** नदीको सुवर्णार्घ देनेसे सुखकी प्राप्ति होती है; **नारी** नदीके ध्यानसे ही चोरी आदिसे उत्पन्न हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं; **नरकान्ता** नदीकी सेवा करनेसे सर्व पाप इस तरह नाश हो

जाते है जिस तरह कि सूर्यके सन्मुख अधकार विलय जाता है, और अन्तिम वाक्य यह है कि अनेक द्रहोंसे उत्पन्न होनेवाली और समुद्रमें जा मिलनेवाली अथवा समुद्रसहित सभी नदियाँ तीर्थ देवता हैं और सभी मुक्ति तथा सौभाग्यकी देनेवाली हैं। इस प्रकार नदियोंके स्मरण, ध्यान, स्पर्शन या सेवनसे सब सुख सौभाग्य और मुक्तिका मिलना तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश होना वर्णन किया है। इन श्लोको तथा अर्घोंके चढ़ानेके बाद स्नानका एक 'संकल्प' दिया है। उसमें भी मन, वचन, कायसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पापों और संपूर्ण अरिष्टोको नाश करनेके लिए तथा सर्व कार्योंकी सिद्धिके निमित्त देव ब्राह्मणके सन्मुख नदी तीर्थमें स्नान करना लिखा है। यथा:—

"......पुंण्यतिथौ सर्वारिष्टविनाशनार्थं शातिक पौष्टिकादि सकल-कर्मसिद्धिसाधनयंत्र-मन्त्र-तंत्र-विद्याप्रभावकसिद्धिसाधकसंसिद्धि-निमित्तं कायिकवाचिकमानसिकचतुर्विध पापक्षयार्थं देवब्राह्मणस-न्निधौ देह शुद्धयर्थ सर्वं पापक्षयार्थं अमुक तीर्थे स्नानविधिना स्नानमहं करिष्ये ॥"

यह सब कथन जैनमतके बिलकुल विरुद्ध है। जैनधर्ममें न नदियोको धर्मतीर्थ माना है और न तीर्थदेवता। जैनसिद्धान्तके अनुसार नदियोंमें स्नान करने या नदियोका ध्यानादिक करने मात्रसे पापोका नाश नहीं हो सकता। पापोका नाश करनेके लिए वहाँ सामायिक प्रतिक्रमण, ध्यान और तपश्चरणादिक कुछ दूसरे ही उपायोंका वर्णन है। वास्तवमे, ये सब बातें हिन्दू धर्मकी है। नदियोंमें ऐसी अद्भुत शक्तिकी कल्पना उन्हींके यहाँ की गई है। और इसीलिए हरसाल लाखों हिन्दू भाई दूर दूरसे, अपना बहुतसा द्रव्य खर्च करके, हरिद्वारादि

१. अमावस्या तथा श्रावणकी पौर्णमासीको इसी पर्वमें पुण्यतिथि लिखा है और उनमें स्नानकी प्रेरणा की है।

तीर्थोंपर स्नानके लिए जाते है। हिन्दुओंके 'आह्निक सूत्रावली' नामके ग्रथमें हेमाद्रिकृत एक लम्बा चौडा स्नानका 'सकल्प' दिया है। इस सकल्पमे बड़ी तफसीलके साथ, गद्यपद्य द्वारा, उन पापोको दिखलाया है जिनको गगादिक नदियॉ दूर कर सकती हैं और जिनके दूर करनेकी स्नानके समय उनसे प्रार्थना की जाती है। शायद ही कोई पापका भेद ऐसा रहा हो जिसका नाम इस संकल्पमे न आया हो। पाठकोके अवलोकनार्थ यहॉ उसका कुछ अश उद्धृत किया जाता है:—

" रागद्वेषादिजनित कामक्रोधेन यत्कृतम् ।
हिंसानिद्रादिज पाप भेददृष्टया च यन्मया ॥
परकार्यापहरण परद्रव्योपजीवनम् ।
ततोऽज्ञानकृत वापि कायिक वाचिक तथा ॥
मानस त्रिविध पाप प्रायश्चित्तैरनाशितम् ।
तस्मादशेष पापेभ्यस्त्राहि त्रैलोक्यपावनि ॥ "

"...इत्यादि प्रकीर्णपातकाना एतत्कालपर्यंत सचिताना लघुस्थूलसूक्ष्माणा च नि शेषपरिहारार्थं ..देवब्राह्मणसविता-सूर्यनारायणसन्निधौ गगाभागीरथ्या अमुक तीर्थे वा प्रवाहा-भिमुख स्नानमह करिष्ये। "

इससे साफ जाहिर है कि त्रिवर्णाचारका यह सव कथन हिन्दूधर्मका कथन है। हिन्दूधर्मके ग्रथोंसे, कुछ नामादिकका परिवर्तन करके, लिया गया है। और इसे जबरदस्ती जैनमतकी पोशाक पहनाई गई है। परन्तु जिस तरह पर सिंहकी खाल ओढ़नेसे कोई गीदड सिंह नहीं बन सकता इसी तरह उस स्नानप्रकरणमे कहीं कहीं, अर्हन्तादिकका नाम तथा जैनमतकी १४ नदियोंका सूत्रादिक दे देनेसे यह कथन जैनमतका नहीं हो सकता। जैनियोके प्रसिद्ध आचार्य श्रीसमन्तभद्र स्वामि नदीसमुद्रोमें, इस प्रकार धर्मबुद्धिसे,

स्नान करनेका निषेध करते है। और उसे साफ तौर पर लोकमूढता बतलाते है। यथाः—

"आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते॥"

—रत्नकरण्डश्रावकाचार।

सिद्धान्तसार ग्रथमे पृथ्वी, अग्नि, जल और पिप्पलादिकको देवता माननेवालों पर खेद प्रगट किया गया है। यथाः—

"पृथिवीं ज्वलनं तोयं देहलीं पिप्पलादिकान्।
देवतात्वेन मन्यते येते चिन्त्या विपश्चिता॥ ४४॥"

इसीप्रकार जैन शास्त्रोमें बहुतसे प्रमाण मौजूद है, जो यहाँ अनावश्यक समझकर छोड़े जाते हैं। और जिनसे साफ प्रगट है कि, न नदियाँ धर्मतीर्थ है, न तीर्थदेवता और न उनमे स्नान करनेसे पापोका नाश हो सकता है। इस लिए त्रिवर्णाचारका यह सब कथन जैनमतके विरुद्ध है।

४–पितरादिकोंका तर्पण।

हिन्दुओके यहाँ, स्नानका अंगस्वरूप, 'तर्पण' नामका एक नित्यकर्म वर्णन किया है। पितरादिकोको पानी या तिलोदक (तिलोंके साथ पानी) आदि देकर उनकी तृप्ति की जाती है, इसीका नाम तर्पण है। तर्पणके जलकी देव और पितरगण इच्छा रखते हैं, उसको ग्रहण करते है और उससे तृप्त होते है। ऐसा उनका सिद्धान्त है। यदि कोई मनुष्य नास्तिक्य भावसे, अर्थात् यह समझकर कि देव पितरोको जलादिक नहीं पहुँच सकता, तर्पण नहीं करता है तो जलके इच्छुक पितर उसके देहका रुधिर पीते है; ऐसा उनके यहाँ योगि याज्ञवल्क्यका वचन है। यथाः—

"नास्तिक्य भावाद् यश्चापि न तर्पयति वै सुत ।
पिवन्ति देह रुधिर पितरो वै जलार्थिन ॥"

जैनसेन त्रिवर्णाचार (चतुर्थपर्व) में भी स्नानके बाद 'तर्पण' को नित्य कर्म वर्णन किया है और उसका सब आशय और अभिप्राय प्राय: वही रक्खा है जो हिन्दुओंका सिद्धान्त है। अर्थात् यह प्रगट किया है कि **पितरादिकको पानी या तिलोदकादि देकर उनकी तृप्ति करना चाहिए। तर्पणके जलकी देव पितरगण इच्छा रखते हैं, उसको ग्रहण करते हैं और उससे तृप्त होते हैं।** जैसा कि नीचे लिखे वाक्योंसे प्रगट है:—

"असस्काराश्च ये केचिज्जलाशा पितर सुरा ।
तेपा सतोपतृप्त्यर्थं दीयते सलिल मया ॥"

अर्थात्—जो कोई पितर सस्कारविहीन मरे हों, जलकी इच्छा रखते हों और जो कोई देव जलकी इच्छा रखते हो उन सबके सतोष और तृप्तिके लिए मै पानी देता हूँ अर्थात् तर्पण करता हूँ।

"उपघातापघताभ्या ये मृता वृद्धवालका· ।
युवानश्चामगर्भाश्च तेपा तोय ददाम्यहम् ॥ "

अर्थात्—जो कोई बूढे, बालक, जवान और गर्भस्थ जीव उपघात या अपघातसे मरे हो, मैं उन सबको पानी देता हूँ।

"ये पितृमातृद्वयवशजाता, गुरुस्वसृवधू च वान्धवाश्च ।
येलुप्तकर्माश्च सुताश्च दारा, पशवस्तथालोपगताक्रियाश्च ॥
ये पगवश्चान्धविरूपगर्भा, आमच्युता ज्ञातिकुले मदीये ।
आपोडशाद्वा (?) द्वयवशजाता., मित्राणि शिष्या सुतसेवकाश्च ॥
पशुवृक्षाश्च ये जीवा येच जन्मान्तरगता ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु स्वधातोय ददाम्यहम् ॥"

इन पद्योंमे उन सबको तर्पण किया गया है, जो पितृवश या मातृवशमें उत्पन्न हुए हों, गुरुवधु या स्वसृ—बंधु हों, लुप्तकर्मा हो, सुता

हों, स्त्रियाँ हो; अपनी जातिकुलके लगड़े लूले हों, अंधे हो, विरूप हों, गर्भच्युत हो मित्र हो, शिष्य हो, सुत हो, सेवक हों, पशु हो वृक्ष हो और जो सब जन्मातरको प्राप्त हो चुके हो। अन्तमे लिखा है कि मै इन सबको 'स्वधा' शब्द पूर्वक पानी देता हूँ। ये सब तृप्तिको प्राप्त होओ।

"अस्मद्गोत्रे च वंशे ये केचन मम हस्तजलस्य वाछा कुर्वंति
तेभ्यस्तिलोदकेन तृप्यंता नमः।"

अर्थात्—हमारे गोत्र और वंशमें जो कोई मेरे हाथके पानीकी वांछा करते हो मै उन सबको तिलोदकसे तृप्त करता हूँ और नमस्कार करता हूँ।

"केचिदस्मत्कुले जाता अपुत्रा व्यतरा सुरा.।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पडीनोदकम्॥ १३॥"

अर्थात्—हमारे कुलमेंसे जो कोई पुत्रहीन मनुष्य मर कर व्यंतर जातिके देव हुए हों उन्हें मैं धोती आदि वस्त्रसे निचोड़ा हुआ पानी देता हूँ, वे उसे ग्रहण करे। तर्पणके बाद धोती निचोडनेका मंत्र है। * इसके बाद 'शरीरके अंगोपरसे हाथ या वस्त्रसे पानी नहीं पोछना चाहिए, नहीं तो पुनः स्नान करनेसे शुद्धी होगी' ऐसा विधान करके उसके कारणोंको बतलाते हुए लिखा है कि—

"तिस्र कोट्योऽर्धकोटी च यावद्रोमाणि मानुषे।
वसन्ति तावत्तीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत्॥ १७॥
पिबन्ति शिरसो देवा. पिबन्ति पितरो मुखात्।
मध्याश्च यक्षगंधर्वा अधस्तात्सर्वजन्तव॥ १८॥"

---

* हिन्दुओंके यहां इससे मिलता जुलता मन्त्र इस प्रकार है—
"ये केचास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रजा मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्र निष्पीडनोदकम्॥"
—स्मृतिरत्नाकर।

अर्थात—मनुष्यके शरीरमे जो साढे बीन करोड रोम है उतने ही तीर्थ है। दूसरे शरीर पर जो स्नान जल रहता है उसे मस्तक परसे देव, मुखपरसे पितर, शरीरके मध्यभाग परसे यक्ष गधर्व और नीचेके भाग परसे अन्य सब जन्तु पीते है। इस लिए शरीरके अगोंको पोछना नही चाहिए।

जैनसिद्धान्तसे जिन पाठकोका कुछ भी परिचय है, वे ऊपरके इस कथनसे भलेप्रकार समझ सकते है कि, त्रिवर्णाचारका यह तर्पणविपयक कथन कितना जैनधर्मके विरुद्ध है। **जैनसिद्धान्तके अनुसार न तो देव पितरगण पानीके लिए भटकते या मारे मारे फिरते हैं और न तर्पणके जलकी इच्छा रखते या उसको पाकर तृप्त और संतुष्ट होते हैं। इसी प्रकार न वे किसीकी धोती आदिका निचोड़ा हुआ पानी ग्रहण करते है. और न किसीके शरीर परसे स्नानजलको पीते हैं।** ये सब *हिन्दूधर्मकी क्रियायें है। हिन्दुओके यहाँ साफ़ लिखा है कि,* जब कोई मनुष्य स्नानके लिए जाता है, तब प्याससे विह्वल हुए देव और पितरगण पानीकी इच्छासे वायुका रूप धारण करके उसके पीछे पीछे जाते है। और यदि वह मनुष्य स्नान करके वस्त्र (धोती आदि) निचोड देता है तो वे देव पितर निराश होकर लौट जाते है। इसलिये तर्पणके पश्चात् वस्त्र निचोडना चाहिए, पहले नहीं। जैसा कि निम्न लिखित वचनसे प्रगट है:—

> "स्नानार्थमभिगच्छन्त देवा पितृगणै सह।
> वायु भूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ता सलिलार्थिन ॥
> "निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते।
> अतस्तर्पणान्तरमेव वस्त्र निष्पीडयेत् ॥"
>
> —स्मृतिरत्नाकरे वृद्ध वसिष्ठ"।

परन्तु जैनियोंका ऐसा सिद्धान्त नहीं है। जैनियोके यहाँ मरनेके पश्चात् समस्त ससारी जीव अपने अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार देव, मनुष्य, नरक और तिर्यच, इन चार गतियोमेंसे किसी न किसी गतिमें अवश्य चले जाते हैं। और अधिकसे अधिक तीन समय तक 'निराहारक' रह कर तुरन्त दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं। इन चारो गतियोंसे अलग पितरोंकी कोई निराली गति नहीं होती, जहाँ वे विलकुल परावलम्बी हुए असंख्यात या अनन्त कालतक पड़े रहते हो। मनुष्यगतिमें जिस तरह पर वर्तमान मनुष्य किसीके तर्पणजलको पीते नहीं फिरते उसी तरह पर कोई भी पितर किसी भी गतिमें जाकर तर्पणके जलकी इच्छासे विह्वल हुआ उसके पीछे मारा मारा नहीं फिरता। प्रत्येक गतिमें जीवोंका आहारविहार उनकी उस गति, स्थिति और देशकालके अनुसार होता है। इस तरह पर त्रिवर्णाचारका यह सव कथन जैनधर्मके विरुद्ध है और कदापि जैनियोंके आदरणीय नहीं हो सकता। अस्तु। तर्पणका यह सम्पूर्ण विपय बहुत लम्बा चौड़ा है। त्रिवर्णाचारका कर्ता इस धर्मविरुद्ध तर्पणको करते करते वहुत दूर निकल गया है। उसने तीर्थंकरों, केवलियों, गणधरों, ऋषियों[1], भवनवासि, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो, काली आदि देवियों, १४ कुलकरों, कुलकरोकी स्त्रियो, तिर्थंकरोंके मातापिताओ, चार पीढीतक स्वमातापितादिको, तीर्थंकरोंको आहार देनेवालो, तीर्थंकरोंके वंशों, १२ चक्रवर्तियो, ९ नारायणो, ९ प्रतिनारायणों, ९ वलिभद्रों, ९ नारदो, महादेवादि ११ रुद्रों, इत्यादिको, अलग अलग नाम लेकर, पानी दिया है; इतना ही नहीं, वल्कि नदियों,

१ ऋषियोंके तर्पणमें हिन्दुओंकी तरह '**पुराणाचार्य**' का भी तर्पण किया है। और हिन्दुओंके '**इतराचार्य**' के स्थानमें '**नवीनाचार्य**' का तर्पण किया है।

समुद्रों, जगलो, पहाडो, नगरो, द्वीपों, वेदों, वेदागों, कालों, महिनों, ऋतुओं और वृक्षोंको भी, उनके अलग नामोंका उच्चारण करके, पानी दिया है। हिन्दुओके यहाँ भी ऐसा ही होता है। अर्थात् वे नारायण और रुद्रादि देवोंके साथ नदी समुद्रों आदिको भी देवता मानते हैं। * उनके यहाँ देवताओंका कुछ ठिकाना नहीं है। वे नदी समुद्रों आदिको भी देवता मानते है। परन्तु मालूम नहीं कि, त्रिवर्णाचारके कर्ताने इन नद्यादिकोंको देवता समझा है, ऋषि समझा हैं या पितर समझा हैं। अथवा कुछ भी न समझकर **'नकलमें अकलको दखल नहीं'** इस लोकोक्ति पर अमल किया है। कुछ भी हो, इसमे सदेह नहीं कि, त्रिवर्णाचारके कर्ताने हिन्दूधर्मके इस तर्पण-सिद्धान्तको पसंद किया है और उसे जैनियोंमें, जैन तीर्थंकरादिकोंके नामादिका लालचरूपी रग देकर, चलाना चाहा है। परन्तु आखिर मुलम्मा मुलम्मा ही होता है। एक एक दिन असलियत खुले विना नहीं रहती।

५—पितरादिकोंका श्राद्ध।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमे तर्पणकी तरह 'श्राद्ध' का भी एक विषय दिया है और इसे भी हिन्दूधर्मसे उधारा लेकर रक्खा है। पितरोंका उद्देश्य करके दिया हुआ अन्नादिक पितरोंके पास पहुँच जाता है, ऐसी श्रद्धासे शास्त्रोक्त विधिके साथ जो अन्नादिक दिया

---

* जैसा कि **कात्यायन परिशिष्ट सूत्रके** निम्न लिखित एक अशसे प्रगट है —

"ततस्तर्पयेद्ब्रह्माण पूर्वं विष्णु रुद्र प्रजापतिं देवाश्छदासि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान्गन्धर्वानितराचार्यान्सवत्सर सावयव देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान्सागरान्पर्वतान्सरितो मनुष्यान्यक्षान् रक्षासि पिशाचान्सुपर्णान् भूतानि पशून्वनस्पतीनोषधीर्भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यतामित्योंकार पूर्वम्।"

जाता है उसका नाम श्राद्ध है। * हिन्दुओके यहाँ तर्पण और श्राद्ध, ये दोनों विषय करीब करीब एक ही सिद्धान्त पर अवस्थित है। दोनोको 'पितृयज्ञ' कहते है। भेद सिर्फ इतना है कि तर्पणमें अंजलिसे जल छोड़ा जाता है किसी ब्राह्मणादिकको पिलाया नहीं जाता। देव पितरगण उसे सीधा ग्रहण कर लेते है और तृप्त हो जाते है। परन्तु श्राद्धमे ब्राह्मणोंको भोजन खिलाया जाता है—या सूखा अन्नादिक दिया जाता है। और जिसप्रकार 'लैटर बक्स' में डाली हुई चिठ्ठी दूरदेशान्तरोंमे पहुँच जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंके पेटमेंसे वह भोजन देव पितरोके पास पहुँचकर उनकी तृप्ति कर देता है। इसके सिवाय कुछ क्रियाकांडका भी भेद है। त्रिवर्णाचारके कर्ताने जब देव पितरोंको पानी देकर उनका विस्तारके साथ तर्पण किया है तब वह श्राद्धको कैसे छोड सकता था ?—पितरोंकी अधूरी तृप्ति उसे कब इष्ट हो सकती थी ?—इसलिए उसने श्राद्धको भी अपनाया है। और हिन्दुओका श्राद्धविषयक प्रायः सभी क्रियाकांड त्रिवर्णाचारमे दिया है। जैसा कि-श्राद्धके नित्य, नैमित्तिक, दैविक, एकतंत्र, प्रार्वण अन्वष्टका, वृद्धि, क्षयाह, अपर-पक्ष, कन्यागत, गजच्छाया और महालयादि भेदोका कथन करना; श्राद्धके अवसर पर ब्राह्मणोका पूजन करना; नियुक्त ब्राह्मणोसे 'स्वागतं,' 'सुखागतं' इत्यादि निर्दिष्ट प्रश्नोत्तरोका किया जाना; तिल, कुश और जल हाथमे लेकर मासादिक तथा

---

* श्राद्धः—शास्त्रोक्त विधानेन पितृकर्म इत्यमरः। पित्रुद्देश्यक श्रद्धयान्नादि दानम्। 'श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते' इति पुलस्त्य वचनात् श्रद्धया अन्नादेर्दानं श्राद्धं इति वैदिक प्रयोगाधीन यौगिकम्। इति श्राद्धतत्त्व। अपि च सम्बोधन पदोपनीतान् पित्रादीन् चतुर्थ्यन्तपदेनोद्दिश्यहविस्त्यागः श्राद्धम्।

—शब्दकल्पद्रुमः।

गोत्रादिकके उच्चारणपूर्वक 'अद्य मासोत्तमेमासे ' इत्यादि संकल्प बोलना, अन्वष्टकादि खास खास श्राद्धोंके सिवाय अन्य श्राद्धोंमें पितादिकका सपत्नीक श्राद्ध करना, अन्वष्टकादि श्राद्धोमें माताका श्राद्ध अलग करना, नित्य श्राद्धोंमें आवाहनादि नहीं करना, नित्य श्राद्धको छोडकर 'विश्वेदेवो' का भी श्राद्ध करना, विश्वेदेवोंके ब्राह्मणको पितरोंके ब्राह्मणोंसे अलग बिठलाना; देवपात्रों और पितृपात्रोंको अलग अलग रखना; रक्षाका विधान करना और तिल बखेरना, नियुक्त ब्राह्मणोकी इजाजतसे विश्वेदेवो तथा पिता, पितामहादिक (तीन पीढी तक) पितरोका अलग अलग आवाहन करना, विश्वेदेवों तथा पितरोंको अलग अलग आसन देकर बिठलाना और उनका अलग अलग पूजन करना, गगा सिंधु सरस्वतीको अर्घ देना, ब्राह्मणोके हाथ धुलाना और उनके आगे भोजनके पात्र रखना; ब्राह्मणोंकी आज्ञासे अग्नौकरण करना; जौ (यव) बखेरना; प्रजापतिको अर्घदेना; अमुक देव या पितरको यह भोजन मिले, ऐसे आशयका मत्र बोलकर नियुक्त ब्राह्मणोंको तृप्ति पर्यंत भोजन कराना; तृप्तिका प्रश्नोत्तर किया जाना; ब्राह्मणोंसे शेषान्नको इष्टोंके साथ भोजन करनेकी इजाजत लेना, भूमिको लीपकर पिंड देना; आचमन और प्राणायामका किया जाना, जप करना; कभी जनेऊको दाहने कधे पर और कभी बाएँ कधे पर डालना, जिसको 'अपसव्य' और 'सव्य' होना कहते हैं, आशीर्वादका दिया जाना, ब्राह्मणोंसे 'स्वधा' शब्द कहलाना, और उनको दक्षिणा देकर विदा करना, इत्यादि—

ऊपरके इस क्रियाकांडसे, पाठकोको यह तो भले प्रकार मालूम हो जायगा कि इस त्रिवर्णाचारमे हिन्दूधर्मकी कहाँ तक नकल की गई है। परन्तु इतना और समझ लेना चाहिए कि इस ग्रथमे हिन्दूधर्मके

आशयको लेकर केवल क्रियाओंहीकी नकल नहीं की गई बल्कि उन शब्दोंकी भी अधिकतर नकल की गई है जिन शब्दोंमे ये क्रियाये हिन्दूधर्मके ग्रंथोंमे पाई जाती हैं। और तो क्या, बहुतसे वैदिक मंत्र भी ज्योंके त्यो हिन्दु ग्रंथोसे उठाकर इसमे रक्खे गये हैं। नीचे जिनसेन त्रिवर्णाचारसे, उदाहरणके तौर पर, कुछ वाक्य और मंत्र उद्धृत किये जाते हैं जिनसे श्राद्धका आशय, उद्देश, देवपितरोंकी तृप्ति और नकल वगैरहका हाल और भी पाठकों पर विदित हो जायगा:—

" नित्यश्राद्धेऽर्थं गधाद्यैर्द्विजानर्चेत्स्वशक्तितः।
सर्वान्पितृगणान्सम्यक् तथैवोद्दिश्य योजयेत् ॥ १ ॥ "

इस श्लोकमें नित्य श्राद्धके समय ब्राह्मणोका पूजन करना और सर्व पितरोको उद्देश्य करके श्राद्ध करना लिखा है। इसी प्रकार दूसरे स्थानों पर भी 'ब्राह्मणं गंधपुष्पाद्यैः समर्चयेत्,' 'अस्मत्पितुर्निमित्तं नित्यश्राद्धमहं करिष्ये,' इत्यादि वचन दिये हैं।

" नावाहनं स्वधाकारः पिंडाग्नौकरणादिकम्।
ब्रह्मचर्यादि नियमो विश्वेदेवास्तथैव च ॥ २ ॥ "

इस श्लोकमें उन कर्मोंका उल्लेख किया है जो नित्य श्राद्धमें वर्जित हैं। अर्थात् यह लिखा है कि नित्य श्राद्धमें आवाहन, स्वधाकार, पिंडदान, अग्नौकरणादिक, ब्रह्मचर्यादिका नियम और विश्वेदेवोंका श्राद्ध नही किया जाता। यह श्लोक हिन्दूधर्मसे लिया गया है। हिन्दुओंके 'आह्निक सूत्रावलि' ग्रंथमें इसे व्यासजीका वचन लिखा है।

" दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ५ ॥ "

---

१ मै अपने पिताके निमित्त नित्य श्राद्ध करता हूँ। २ मनुस्मृतिमें 'दद्यात्' के स्थानमें 'कुर्यात्' लिखा है। परन्तु मिताक्षरादि ग्रंथोंमें 'दद्यात्' के साथ ही इसका उल्लेख किया है।

अर्थात्—पितरोंकी प्रीति प्राप्त करनेके अभिलाषीको चाहिए कि वह अन्नादिक या जलसे अथवा दूध और मूल फलोंसे नित्य श्राद्ध करे। इससे प्रगट है कि पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया जाता है और पितृगण उससे खुश होते है। यह श्लोक मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायसे उठाकर रक्खा गया है और इसका नम्बर वहाँ ८२ हैं।

" अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ।
अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥ ६ ॥ "
आयुद्धृत्य यथाशक्ति किंचिदन्नं यथाविधि ।
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥ ७ ॥
पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधावाच्यं च कारयेत् ॥ ८ ॥ (पूर्वार्ध) "

ये सब वाक्य कात्यायन स्मृति (१३ वे खंड) के है। वहींसे उठाकर त्रिवर्णाचारमे रक्खे गये है। इनमें लिखा हैं कि यदि कोई दूसरा ब्राह्मण भोजन करनेवाला न मिले अथवा भोजनकी सामग्री अधिक न हो, तो पितृ यज्ञकी सिद्धिके लिए कमसे कम एक ही ब्राह्मणको भोजन करादेना चाहिए। और यदि इतना भी न हो सके, तो कुछ थोडासा अन्न पितरादिकोंके वास्ते ब्राह्मणको जरूर देदेना चाहिए पितरोंके लिए जो दिया जाय उसके साथमें ' पितृभ्यः इदं स्वधा,' यह मंत्र बोलना चाहिए।

" अन्वष्टकासु वृद्धौच सिद्धक्षेत्रे क्षयेऽहनि ।
मातु श्राद्ध पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥ "

अर्थात्—अन्वष्टका, वृद्धि, सिद्धक्षेत्र, क्षयाह, इन श्राद्धोमें माताका श्राद्ध अलग करना चाहिए। दूसरे अवसरो पर पतिके संग कर। यह श्लोक भी हिन्दूधर्मका है और ' मिताक्षरा ' में इसी प्रकारसे दिया

---

१ कात्यायनस्मृतिमें ' स्वधाकारमुदीरयेत् ' ऐसा लिखा है [2] –वह्निपुराण।

है। सिर्फ दूसरे चरणमे कुछ थोडासा भेद हैं। मिताक्षरामें 'क्षयेऽहनि' से पूर्व '**गयायां च**' ऐसा पद दिया है। और इसके द्वारा गयाजीमे जो श्राद्ध किया जाय उसको सूचित किया हैं। त्रिवर्णाचारमें इसको बदलकर इसकी जगह '**सिद्धक्षेत्रे**' बनाया गया है।

"आगच्छन्तु महा भागा विश्वेदेवा महाबला.।
ये यत्र योजिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥"

हिन्दुओके यहाँ, *'**विश्वेदेवा**' नामके कुछ देवता है जिनकी संख्या १० है। ऊपरका यह श्लोक उन्हींके आवाहनका मंत्र है। मिताक्षरामे इसे विश्वेदेवोंके आवाहनका स्मार्त मंत्र लिखा है। हिन्दुओंके **गारुडादि** ग्रंथोमे भी यह मंत्र पाया जाता है। जिनसेन त्रिवर्णाचारमे भी यह मंत्र विश्वेदेवोके आवाहनमें प्रयुक्त किया गया है। परन्तु जरासे परिवर्तनके साथ। अर्थात् त्रिवर्णाचारमे '**महाबला:**' के स्थानमे '**चतुर्दश**' शब्द दिया है। बाकी मंत्र बदस्तूर रक्खा है। त्रिवर्णाचारके कर्ताने जैनियोके १४ कुलकरोंको 'विश्वेदेवा' वर्णन किया है। इसीलिए उसका यह परिवर्तन माळूम होता है। परन्तु जैनियोके आर्ष ग्रंथोमे कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं पाया जाता।

"आर्त्तरौद्रमृता येन ज्ञातिना कुलभूषणा।
उच्छिष्टभागंगृह्णन्तु दर्भेषुविकिराशनम्॥
अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धा कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्तायान्तु परा गतिम्॥"

अर्थात्—जो कोई आर्त या रौद्र परिणामोंके साथ मरे हों, जातियोके भूषण न हो अर्थात् क्षुद्र मनुष्य हो वे सब दर्भके ऊपर डाले

---

* यथा,— "क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कामः कालस्तथाध्वनिः (धृतिः।)
रोचकश्चार्द्रवाश्चैव तथा चान्ये पुरूरवाः॥
विश्वेदेवाभवन्त्येते दशसर्वत्र पूजिताः।"

हुए भोजनके इस उच्छिष्ट भागको ग्रहण करो। और जो मेरे कुलमे अग्निसे दग्ध हुए हों अथवा जिनको अग्निका दाह प्राप्त न हुआ हो वे सब पृथ्वीपर डाले हुए इस भोजनसे तृप्त होओ और तृप्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त होओ। ये दोनों श्लोक पिंड देते समयके मंत्र है। दूसरा श्लोक हिन्दुओंके **मिताक्षरा** और **गारुडादि** ग्रंथोमे भी पाया जाता है। और पहले श्लोकका आशय **मनुस्मृति** तीसरे अध्यायके श्लोक नं० २४५–२४६ से मिलता जुलता है। त्रिवर्णाचारके इन श्लोकोसे साफ जाहिर है कि पितरगण पिंड ग्रहण करते है और उसे पाकर तृप्त होते तथा उत्तम गतिको प्राप्त करते है।

एक स्थानपर त्रिवर्णाचारके इसी प्रकरणमें मोदक और विष्टरका पूजन करके और प्रत्येक मोदकादिक पर '**नम. पितृभ्यः**' इस मंत्रके उच्चारण पूर्वक डोरी बाँधकर उन्हे पितरोंके लिए ब्राह्मणोंको देना लिखा है। और इस मोदकादिके प्रदानसे पितरोंकी अक्षय तृप्ति वर्णन की है और उनका स्वर्गवास होना लिखा है। यथाः—

> "....मातृणा मातामहाना चाक्षया तृप्तिरस्तु।"
> अनेन मोदक प्रदानेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपाणां
> आचार्याणा तृप्तिरस्तु।' स्वर्गेवासोऽस्तु।"

श्राद्धके अन्तमे आशीर्वाद देते हुए लिखा है किः—

> "आयुर्विपुलता यातु कर्णे यातु महत् यश ॥
> प्रयच्छन्तु तथा राज्य प्रीता नृणा पितामहा ॥"

अर्थात्–आयुकी वृद्धि हो, महत् यश फैले और मनुष्योंके पितरगण प्रसन्न होकर श्राद्ध करनेवालोंको राज्य देवे। इस कथनसे त्रिवर्णाचारने श्राद्धद्वारा पितरोका प्रसन्न होना प्रगट किया है। इस श्लोकका उत्तरार्ध और याज्ञवल्क्य स्मृतिमे दिये हुए श्राद्ध प्रकरणके

अन्तिम श्लोकका उत्तरार्ध दोनों एक है। सिर्फ '**प्रयच्छन्ति**' की जगह यहाँ '**प्रयच्छन्तु**' बनाया गया है।

"(१) ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमासन स्वाहा (२) ॐ अमुकगोत्रेभ्य. पितापितामहप्रपितामहेभ्य सपत्नीकेभ्य इदमासनं स्वधा. (३) ॐ विश्वे-देवानामावाहयिष्ये, (४) ॐ आवाहय. (५) ॐ अग्नौकरणमह करिष्ये (६) ॐ कुरुष्व (७) ॐ अग्नयेकव्यवाहनाय स्वाहा. (८) ॐ सोमा यपितृमतेस्वाहा. (९) आपोहीष्टा मयो भुवः (१०) ॐ पृथिवींते पात्रं द्यौरपिधान ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा. (११) तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवोदेवनिर्मित । प्रत्नमद्भि· पृक्त स्वधया पितृंल्लोकान्पृ-णाहि न· स्वाहा।"

ये सब हिन्दुओंके मंत्र हैं। और गारुड या मिताक्षरादि हिन्दू ग्रंथोंसे उठाकर रक्खे गये हैं। इस प्रकार यह श्राद्धका सारा प्रक-रण हिंदूधर्मसे लिया गया है। इतने पर भी त्रिवर्णाचारका कर्ता लिखता है कि मैं '**उपासकाध्ययन**' में कही हुई श्राद्धकी विधिको वर्णन करता हूँ। यथाः—

"गणाधीश श्रुतस्कंधमपि नत्वा त्रिशुद्धितः।
श्रीमच्छ्राद्धविधिं वक्ष्ये श्रावकाध्ययनोदिताम् ॥"

यह सब लोगोंको धोखा दिया गया है। वास्तवमें, तर्पणकी तरह, श्राद्धका यह सब कथन जैनधर्मके विरुद्ध है। जैनधर्मसे इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। जैन सिद्धान्तके अनुसार ब्राह्मणोंको खिलाया हुआ भोजन या दिया हुआ अन्नादिक कदापि पितरोंके पास नहीं पहुँच सकता। और न ऐसा करनेसे देव पितरोंकी कोई तृप्ति होती है।

६—सुपारी खानेकी सजा।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके ९ वे पर्वमे लिखा है कि, जो कोई मनुष्य पानको मुखमें न रखकर, अर्थात् पानसे अलग, सुपारी खाता है वह सात जन्म तक दरिद्री होता है और अन्त समयमें (मरते वक्त) उनको जिनेंद्र देवका स्मरण नहीं होता। यथाः—

"अनिवाय मुखे पर्णं पूग खादति यो नर ।
सप्तजन्मदरिद्र स्यादन्ते नैव स्मरेज्जिनम् ॥ २२५ ॥"

पाठक गण देखा, कैसा धार्मिक न्याय है ! कहाँ तो अपराध और कहाँ इतनी सख्तसजा ! क्या जैनियोंकी कर्म फिलासोफी और जैनधर्मसे इसका कुछ सम्बन्ध हो सकता है? कदापि नहीं । यह कथन हिन्दूधर्मके किसी ग्रथसे लिया गया है । हिन्दुओंके स्मृतिरत्नाकर ग्रथमें यह श्लोक बिलकुल ज्योंका त्यों पाया जाता है । सिर्फ अन्तिम चरणका भेद है । वहाँ अन्तिम चरण '**नरकेषु निमज्जति**' (नरकोंमें पडता है), इस प्रकार दिया है । त्रिवर्णाचारमें इसी अन्तिम चरणको वदलकर उसके स्थानमे '**अन्ते नैव स्मरेज्जिनम्**' ऐसा वनाया गया है । इस परिवर्तनसे इतना जरूर हुआ है कि कुछ सजा कम होगई है । नहीं तो बेचारेको, सात जन्म तक दरिद्री रहनेके सिवाय, नरकमें और जाना पड़ता ।

७–ऋतुकालमें भोग न करनेवाली स्त्रीकी गति ।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १२ वें पर्वमें, गर्भाधानका वर्णन करते हुए, लिखा है कि:–

"ऋतुस्नाता तु या नारी पतिं नैवोपविन्दति ।
शुनी वृकी शृगाली स्याच्छूकरी गर्दभी च सा ॥ २७ ॥"

अर्थात्–ऋतुकालमे, स्नानके पश्चात्, जो स्त्री अपने पतिसे सभोग नहीं करती है वह मरकर कुत्ती, भेडिनी, गीदडी सूअरी और गधी होती है। यह कथन बिलकुल जैनधर्मके विरुद्ध है । और इसने जैनियोंकी सारी कर्मफिलासोफीको उठाकर ताकमें रखदिया है । इसलिये कदापि जैनाचार्योंका नहीं हो सकता । यह श्लोक भी, ज्योंका त्यों या कुछ परिवर्तनके साथ, हिन्दूधर्मके किसी ग्रंथसे लिया गया मालूम होता है। क्यो कि हिन्दूधर्मके ग्रंथोंमें ही इस प्रकारकी आज्ञायें प्रचुरताके साथ पाई जाती हैं । उनके यहाँ जब ऋतुस्नाताके साथ भोग न करने पर

पुरुषको नरकमें पहुँचाया है, तब क्या ऋतुस्नाता होकर भोग न करने पर स्त्रीको तिर्यंचगतिमे न भेजा होगा; जरूर भेजा होगा। पराशरजीने तो ऐसी स्त्रीको भी सीधा नरकमें ही भेजा है। और साथ ही बारबार विधवा होनेका भी फतवा (धर्मादेश) दे दिया है। यथा:—

" ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति।
सामृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ ४-१४ ॥ "
—पराशर स्मृतिः।

इसी प्रकार हिन्दूधर्मके बहुतसे फुटकर श्लोक इस त्रिवर्णाचारमें पाये जाते हैं, जो या तो ज्यों के त्यों या और कुछ परिवर्तनके साथ रक्खे गये हैं।

इस तरह पर धर्मविरुद्ध कथनोंके ये कुछ थोडेसे नमूने हैं। और इनके साथ ही इस ग्रंथकी परीक्षा भी समाप्त की जाती है।

अन्तमें जैन विद्वानोसे मेरा सविनय निवेदन है कि यदि उनमेंसे कोई इस त्रिवर्णाचारको आर्ष ग्रथ या जैन ग्रंथ समझते हो और उनके पास मेरे लेखोंके विपक्षमें कोई प्रमाण मौजूद हों तो वे कृपाकर अवश्य उन्हें शीघ्र ही प्रकाशित करें। अन्यथा उनका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे ऐसे ग्रंथोंके विपक्षमें अपनी सम्मतियाँ प्रगट करके उनका निषेध करें, जिससे आगामीको इन जाली और बनावटी ग्रंथोंके कारण जैनधर्म और जैन समाज पर कुठाराघात न हो सके। इत्यलम्।

देववन्द, जि. सहारनपुर,
ता० १५-८-१४

समाजसेवक—
जुगलकिशोर मुख्तार।

निवेदन।

सम्पादक महाशयके अन्यत्र चले जानेके कारण प्रूफ संशोधनमें गलतियाँ रहना सम्भव है। पाठक क्षमा करें।

व्यवस्थापक



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

१०वाँ भाग] श्रावण, श्री वी०नि०सं० २४४०।[१० वाँ अं०

गत-गौरवकी स्मृति।

(१)

भ्रातृगण, अपनी अवस्थाकी कथा सुन लीजिए,
प्रियवरो, इस ओर भी कुछ ध्यान अपना दीजिए।
शोकसे हो व्यग्र यद्यपि कुछ कहा जाता नहीं,
किन्तु कहनेके बिना भी तो रहा जाता नहीं॥

(२)

थी हमारी क्या दशा, अब हीनता कैसी हुई,
न्यूनता, सकीर्णता, धनक्षीणता कैसी हुई।
एक दिन हमसे सुशोभित थी अहा! सारी मही,
शोक! अब गिनती हमारी उँगलियों पर हो रही॥

(३)

पूर्वके सब तेज, वैभव उठ गये हा सर्वथा,
रह गई अब सिर्फ़ ग्रंथोंमें लिखी उनकी कथा।

वे हमारे कर्म और चरित्र किसने हर लिये?
हा! हमारे पूर्वजोंके साथ ही वे चल दिये॥

(४)

क्या हुआ वह ज्ञान अनुपम? मान क्या अब है कहीं?
हा! जगत कहता हमे है आजकल क्या क्या नहीं।
हाय! निज अपमानका हमको न कुछ भी ध्यान है,
क्या रहा है शेष जिस पर अब हमे अभिमान है?

(५)

व्याकरणमें, न्यायमे, विज्ञानमें, साहित्यमें,
धर्म-दर्शनमें, चिकित्सामे, कला-कौशल्यमे।
ज्ञान वह है कौनसा जिसमे न हम सुप्रवीण थे?
इस तरह तो नहिं कभी पुरुषार्थ औ बलहीन थे?

(६)

बंधुजन, जिनसेनसे पंडित प्रवर हम ही तो थे,
वादिगुरु अकलंकसे हे मित्रवर, हम ही तो थे।
लेश भी निज पूर्वजोंका अब नहीं हममें अहो!
अब कहीं मिलती सदुपमा आपमें उनकी कहो?

(७)

हेतु था इतिहास जो निज अभ्युदयका, लुप्त है,
सात तालोमे पड़ा साहित्य भी तो गुप्त है।
है अतुल जातीय-दुर्बलता हमारी लोकमे,
हाय! सामाजिक हमारा बल गया किस थोकमें?

(८)

छोड़कर निद्रा उठे, कुछ काम मिलकरके करें,
ज्ञान करके प्राप्त जल्दी हीनता अपनी हरें।

जातिका, साहित्यका उत्थान कर जीवित बनें
कर्मवीरो! मृत्युके भी वाद चिरजीवित बनें ॥
-'संशोधक।

महाकवि वल्लुवर और उनका कुरल-काव्य।

तामिल भाषाके साहित्यमें प्राचीन जैन विद्वान् अपनी कीर्तिको सदाके लिए अमर कर गये है। तामिल भाषाका साहित्य बहुत ही प्राचीन है। विक्रम सवतके प्रारभकाल तकके तो कई तामिल काव्य इस समय भी प्राप्त है। इन काव्योंमें सस्कृतका स्पर्शतक नहीं है। ये बिलकुल स्वतन्त्र और स्वाधीन प्रतिभाके बल पर लिखे गये हैं। इनमेंसे अनेक काव्य मद्रास यूनीवर्सिटीकी आर्ट्स परीक्षाओंके पाठ्यग्रन्थ है। तामिलदेशवासियोंको अपने इस प्राचीन साहित्यका बहुत बडा अभिमान है।

जैनहितैषीके गत दूसरे अकमें श्रीयुत टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री एम. ए. का ' प्राची नभारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श ' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हो चुका है। इस लेखमे 'तिरुक्कुरल' नामक काव्यके विषयमें कहा गया है कि " यह तामिल भाषाका सर्वमान्य महाकाव्य है। इसको बड़े बडे लेखकोंने—जो कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी है—सहर्ष उद्धृत किया है और इसका अनुवाद यूरोपकी चारसे अधिक भाषाओंमे हो चुका है। इसके कर्ताका यश इतना अधिक है कि कदाचित् हिन्दू उन्हें अपनेमेंसे ही बतावें किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि वे जैन थे। इत्यादि।" इस ग्रन्थके और इसके कर्ता महाकवि श्रीवल्लुवरके विषयमें हमारे नवीन सहयोगी ' पाटलिपुत्र ' ने अपने भाद्रपद शुक्ला ९ के अकमें एक

विशेष प्रकाश डालनेवाला लेख प्रगट किया है। हितैषीके पाठकोंको हम यहाँपर उसीका सारांश भेट करते है:—

तामिल भाषाके प्राचीन काव्योंमें 'कुरल' का सबसे अधिक आदर है। इसे 'तिरुक्कुरल' और 'मुप्पाल' नामसे भी पुकारते है। इसके कर्ताका नाम 'वल्लुवर' था। वल्लुवर ब्राह्मण नहीं थे, वे परया अथवा अन्त्यज (शूद्र) थे। परन्तु उनका नाम ब्राह्मण नामकी भाँति 'तिरुवल्लुवर' अर्थात् 'श्रीवल्लुवर' पुकारा जाता है। वे मद्रासके मयलापुरके रहनेवाले थे। विक्रम संवत्से कोई १०० वर्ष पीछे, वे पाण्ड्यराजके पास मदुरा (मथुरा) राजधानीमे पहुँचे। उस समय द्रविड़ देशमें कविताकी परीक्षा कविसघ या कविसमूह द्वारा की जाती थी। पाण्ड्यराजके दरबारमे भी एक कविसंघ था। इस कविसंघके सभासदोंमें उरयपुर[1] (चोलराज्यान्तर्गत), कावेरीपट्टन, चेल्लूर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंके कवि सम्मिलित थे। इस कविसंघके कवियोंकी नामावली भी मिलती है।

पाण्डयराज 'उग्र-पेरुवलुथि' और कविसमूहके समक्ष कवि वल्लुवरने अपनी रचना पेश की। संस्कृत, प्राकृत, या तामिलमे ऐसा कोई ग्रन्थ उस समय तक न था। संघने कुरल काव्यको आद्योपान्त श्रवण किया। सुनकर उसकी एकमुखसे प्रशसा की और प्रत्येक कविने अपनी अपनी सम्मति एक एक पद्यके द्वारा पाण्डयराजके सामने प्रकाशित की। इरयनार नामक कविने कहा—"वल्लुवरकी कृति अमर होगी और अनेक पीढ़ियों तक ज्ञानदान करेगी।" कल्लदा नामक कवि बोला--"छह मत है, परन्तु वे छहो मत वल्लुवरके मुप्पाल

---

१ कालिदासने अपने रघुवश काव्यमें इसका 'उरगपुर' के नामसे उल्लेख किया है।

काव्यको अपनानेमें एक है।" एक और कवि कह उठा—"ब्राह्मण वेदोंको इसलिए कण्ठाग्र रखते हैं कि लिखनेसे उनका मोल कम हो जायगा। किन्तु मुप्पाल तालपत्र पर लिखे जाने पर और सबके द्वारा पढे जाने पर भी मानमें कम न होगा।"

संघमें एक 'चथन' नामका कवि भी था। यह अपनी लोहलेखनी मत्थेकी ओर उठाये हुए बैठा रहता था। ज्यो ही कोई बुरा और अशुद्ध पद्य पढा जाता था कि वह कलमसे अपना मत्था ठोंकता था। परन्तु जब कुरल काव्य पढा गया, तब उसने एक बार भी अपनी लोह-लेखनी मत्थेसे न लगाई! इसे देख एक वैद्य सभ्यने कहा कि "मुप्पाल काव्यने हमारे मित्र चथन कविकी शिरःपीड़ा अच्छी कर दी!"

जो विद्वान् तामिल भाषा जानते है वे कहते है कि कुरल काव्यों-का राजा है। उसमें छन्द, भाषा और प्रसादगुणसम्बन्धी कोई भी दोष नाम मात्रको नहीं है। इसीलिए उस सभामें पाण्ड्यनरेश उग्रराजने कहा था कि "स्वय ब्रह्माने विल्लुवरका रूप धारण करके मुप्पाल काव्यकी रचना की है।"

कुरलकाव्यके तीन विभाग है—धर्म, अर्थ और काम। काव्यकी सारी उक्तियाँ चुटीले दोहोंमें है। (टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री, एम. ए. के लेखानुसार इसमें १३३ अध्याय है और प्रत्येक अध्यायमे बीस बीस दोहे है। सब मिलाकर २६६० छन्द है।) कवि वल्लुवरका धर्म जैन था, परन्तु उसकी उक्तियाँ कहे देती है कि उसके धार्मिक विचार बहुत उदार थे। उसकी उक्तियोंका परिचय लीजिए:—

१—"दान लेना बुरा है, चाहे उससे दीनता भले ही दूर हो जाय।"

२—" दानकार्य अच्छा है, चाहे उससे स्वर्ग न भी मिले।"

३—" बाँसुरी मीठी है, वीणा मधुर है, यह उक्ति उनकी है जिन्होंने अपने बच्चोंकी तोतली बोली नहीं सुनी।"

४—" जो धैर्यके मेहनत करते हैं वे अदृष्टको भी जीत लेते हैं।"

५—" एक जीवकी हत्या बचाना, हजार बार घी जलाने (यज्ञ) से उत्तम है।"

६—" सवेरे बुराई करो, शामको उसका फल चखो।"

७—" विद्या किस कामकी, यदि विद्वान् सर्वज्ञकी पूजा न करें।"

कुरलकाव्यका तामिल-भूमिमें इतना आदर है कि उसे कोई बिना स्नान किये नहीं छूता। उसके पाठको ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर सभी गीताके पाठके समान पुनीत मानते हैं। इस काव्यकी पूजा तक की जाती है। तामिलोंको कुरल काव्यका घमण्ड है; कुरलका नाम लीजिए कि वे उसका गुणगान करने लगते हैं। कुरलका अँगरेजी अनुवाद डाक्टर पोपने आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेसमें छपाया है।

लेखके अन्तमें पाटलिपुत्रके सुयोग्य सम्पादक महाशयने लिखा है-"खेद है कि अरबके कुरानका हिन्दी भाषान्तर तो हो और दक्षिणापथके कुरलके नामसे भी हिन्दीभाषी अपरिचित रहें।" इस उक्तिका हमारे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसलिए हमने इस महाकाव्यके हिन्दी अनुवादको प्रकाशित करनेका दृढ निश्चय किया है। देखें, हमारी यह इच्छा कब पूर्ण होती है और हिन्दीभाषाभाषी सज्जनोंके हाथोंमे हम इस दो हजार वर्षके पुराने जैन कविकी कृतिको रखनेमें कब समर्थ होते हैं। यदि कोई धर्मात्मा सज्जन इस काव्यके प्रकाशित करनेमें कुछ आर्थिक सहायता देंगे, तो वह सहर्ष स्वीकार की जायगी।

जीवनका विचित्र परिवर्तन।

(१)

"तू मुझे जानता है? अरे नट, मैं कितना बड़ा आदमी हूँ यह तू समझता है?"

"हाँ, मै तुझे बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। डरपोंक, दुर्बल, कला-रहित और लक्ष्मीका दास, तू एक वनियेका बेटा है। मेरी बेटी अनेक कलाओंमें कुशल है, शरीर और मनको बुद्धिके शासनमें नचानेकी विलक्षण शक्ति रखती है और जगतके मर्कटरूप (बन्दररूप) मनोंको अपने पैरोंकी अँगुलियोंके पोरों पर नृत्य कराया करती है। उसका पाणि-ग्रहण करनेकी तुझमें ज़रा भी योग्यता नहीं है, इस बातको मै भलीभाँति जानता हूँ।"

"अरे भले मानुस, तू भूलता है। तेरी मति केवल नृत्य करना ही जानती है। उसमें स्थिरताका और गहरी समझबूझका लेश भी नहीं है। इसी कारण तू मेरी अवहेलना करके और मेरी नम्रतायुक्त याचनाका तिरस्कार करके अपना और अपने कुटुम्बका द्रोह कर रहा है। क्या तू यह नहीं जानता है कि यदि तू अपनी सुन्दरी-कन्याका करकमल मुझे अर्पण कर देगा, तो वह करोडों–अब्जोंकी ऋद्धिकी रानी वन जायगी, गुणोंका मूल्य न समझनेवाले लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए प्राणोंकी वाजी लगाकर जो तू तरह तरहके शारीरिक खेल दिखलाया करता है, उनसे तुझे सदाके लिए छुट्टी मिल जायगी और एक उच्चकुलसे सम्बन्ध हो जानेके कारण तू अपनी असाधारण उन्नति कर सकेगा?"

"नादान लडके, तू फूटे चश्मेसे देखता है और झूठी तराजूसे तौलता है। क्या मैने अपनी पुत्रीको इसी लिए जन्म दिया है कि उसके द्वारा मै धनाढ्य बनूँ और जिसे लोग 'प्रतिष्ठा' कहते है उस नाम मात्रकी

प्रतिष्ठाको बढ़ाऊँ? क्या मेरी पुत्री ऐशो-आरामके साधनोंसे भरे हुए महलोंकी अपेक्षा मेरे तम्बूके भीतर रहकर कुछ कम सुख भोगती है? क्या मै इतना पतित और नीच हो गया हूँ कि जिसको मैंने, नृत्य, गान सगीतादि नाना कलायें सिखलाकर बुद्धिशालिनी बनाया है उसकी बुद्धि पर मै अपने स्वार्थके लिए अंकुश डालूँ और उसकी रुचि या पसन्दगीका खयाल किये विना उसे जीवनके एक जोखिमसे भरे हुए व्यापारमे उलझा दूँ? मेरी समझमे कन्याको इस व्यापारमे डालनेका अधिकार स्वयं उस कन्याके सिवाय और किसीको भी नहीं है; और तो क्या साक्षात् परमेश्वरको भी नहीं है। यह काम तुम्हे—किरानेके व्यापारियोंको ही मुबारिक रहे! तुम्हें यह शिक्षा जन्मघुट्टीके साथ ही दे दी जाती है कि सस्ते भावसे खरीदना और महँगे भावसे बेचना। इसलिए किरानेके माफ़िक कन्याको भी चाहे जिसके हाथ बेच डालनेका कार्य तुमसे ही बनसकता है। जो लोग कन्याको पत्नीरूपमे खरीद सकते है, वे उसे वेश्याके रूपमें बेच भी सकते है! यद्यपि वणिक् लोग स्त्रियोको खुल्लमखुल्ला वेश्यापना नहीं करने देते है, परन्तु इसमें तो ज़रा भी सन्देह नहीं है कि जिस समाजमे मानसिक प्रेमके बिना बिवाह सम्बन्ध होता है उसमें पुरुप या स्त्री अथवा दोनों ही मानसिक व्यभिचार सेवन करते है। लोकलज्जाके भयसे वे शारीरिक व्यभिचार भले ही सेवन न कर सकें, पर गुप्त अनाचार सेवन करनेके अवसर तो ढूँढ़ते ही रहते हैं। हमारी जातिमें बालकसे लेकर वृद्धतक प्रत्येक स्त्री और पुरुष स्वय परिश्रम करके पेट भरते हैं और जिन्हे स्वयंके परिश्रमसे पेट भरनेकी जोखिमदारीका ज्ञान है वे ऐसा कभी नहीं कर सकते कि अपने जीवनका हिस्सेदार किसी अयोग्य व्यक्तिको वनावें। 'उपयोग' ही हमारा मुख्य सिद्धान्त है और इसीलिए हमने अपनी

पुत्रियोंको उनके लिए 'उपयोगी' हो, ऐसा वर पसन्द करनेका अधिकार दे रक्खा है। रूपको और धनको नहीं किन्तु कलाकौशल और बलको ही हमारी पुत्री पसन्द कर सकती है। अरे नादान वणिक्पुत्र, मुझे तेरी दशा पर बहुत दया आती है। तू मेरी पुत्रीके लिए तड़प तडप कर आधा तो हो चुका है और आगे क्या होगा, सो भी मेरी आँखोंमें झलक रहा है। परन्तु क्या करूँ, तुझ पर दया करके मै अपनी पुत्रीके जीवनभरके सुखको मिट्टीमें नहीं मिला सकता। मैं उसके सुखी बननेके स्वाभाविक अधिकारके मार्गमें कण्टक नहीं बन सकता। हाँ, तुझपर दया करके—किसी लोभके वश नहीं—मैं इतना कर सकता हूँ कि तुझे...."

"क्या तू मेरी हृदयेश्वरीसे मेरी पहचान करा देगा? यह बतलाकर कि मेरे साथ विवाह करके वह कितनी सुखी हो सकेगा क्या तू मेरी ओर उसका चित्त आकर्षित करनेकी कृपा करेगा? नटराज, मैं तेरे इस उपकारको जीवनभर नहीं भूलूँगा।"

"अनुभवहीन लडके, इतना उतावला मत हो! इन हवाई किलोंके बनानेमें यदि कहीं तेरी कल्पनाशक्ति नीचे गिरकर चूर हो गई तो तेरा जीवन और भी अधिक दुःखमय बन जावेगा। मैं तुझे अपनी पुत्रीके पास तक जानेकी छुट्टी देता हूँ, और यह केवल तुझ पर दया करके—तेरे प्राणोंके बचानेके लिए देता हूँ। परन्तु सावधान! कहीं इससे तू बडी बडी आशायें मत बाँध लेना। क्योंकि वह भी एक आत्माभिमानिनी और सुचतुरा कन्या है और ऐसी मूर्ख नहीं है कि अपने भागीदारकी पसन्दगी करनेमें किसी तरह ठगाई जासके। मुझे इस बात पर ज़रा भी विश्वास नहीं है कि तेरी लक्ष्मी और सौन्दर्यके तेजमें वह चकचौंधा जायगी और इसी कारण मैं तुझे उसके समीप

तक जाने देनेमे कोई हानि नहीं देखता। तथापि यदि तेरी इच्छा ही है, तो तू खुशीसे उसके हृदय पर अधिकार करनेका प्रयत्न कर देख।"

"नटराज, तुमने मुझ पर बड़ी भारी कृपा की! यद्यपि तुम्हारे शब्द बहुत ही गर्वसे भरे हुए है तथापि वास्तवमें वे गंभीराशय है और सच्चे हृदयसे निकले हुए है। इस समय तो इन शब्दोंने मुझे मृत्युमुखमें जानेसे बचा लिया है। अच्छा, तो मै तुम्हारी आज्ञासे उस हृदयेश्वरीसे जाकर मिलता हूँ और अपने भाग्यकी परीक्षा करता हूँ।"

वणिक्पुत्रका नाम एलाकुमार है। वह नटको प्रणाम करके अपने सुन्दर कोठेमेंसे बाहर निकला और उससे कहता गया कि जब तक मै वापस न आजाऊँ तब तक तुम यहीं ठहरना।

ऊपर लिखी हुई बातचीतसे पाठक समझ ही गये होंगे कि यह युवा वणिक्पुत्र नटकी लड़की पर मोहित हो गया है और हर तरहके कष्ट सहन करके उसे अपनी पत्नी बनानेके लिए आतुर हो रहा है। अभी कुछ ही दिन पहले नटने अपने आश्चर्यजनक खेल दिखलाये थे। उस समय उसकी कन्या भी साथमे थी। श्रेष्ठिपुत्रकी दृष्टि सारे खेलोकी अवहेलना करके नटकन्यापर जा अटकी और उसका परिणाम यह हुआ कि उसने अपना तनमनधन उस सुन्दरी प्रतिमा पर न्योछावर कर दिया। उसने मनही मन निश्चय किया कि यदि यह मनोमोहिनी न मिलेगी तो इस नीरस शुष्क जीवनको बलपूर्वक समाप्त कर दूंगा। उसने अपना यह विचार अपने पिताके सम्मुख भी स्पष्ट शब्दोमे प्रकट कर दिया। उसका पिता इभ्यश्रेष्ठी इलावर्धन नगरका सबसे बड़ा धनी सेठ था। सेठने अपने प्यारे इकलौते पुत्रको इस अनुचित साहससे दूर रहनेके लिए बहुत कुछ समझाया, अपनी जाति और प्रतिष्ठाका स्मरण दिलाया और यह भी कहा कि इस नटकन्यासे भी अधिक

रूपलावण्यवती, उच्चकुलकी कन्याके साथ तेरा पाणिग्रहण करा दूँगा। परन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। जब देखा कि पुत्रका चित्त ठिकाने नहीं है—बिलकुल परतत्र हो रहा है, तब उसने कुछ समयके लिए इस विषयकी चर्चा ही छोड दी और अवसर मिलने पर उसके समवयस्क मित्रोंके द्वारा समझाने बुझानेका निश्चय किया।

एलाकुमारने पिताके और मित्रजनोंके समझाने बुझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। एक दिन उसने किसी बहानेसे नटको अपने कोठेमें बुलाया और लाखों सुवर्णमुद्राओंके बदले उसकी पुत्रीके हाथकी याचना की। जैसा कि ऊपर प्रकट हो चुका है, इस याचना और लालचके सन्मुख उस स्वाभिमानी नटने बहरे कान कर लिये और पुत्रीकी खुदपसंदगी पर सारी बाते छोड़ दीं। अब एलाकुमार नटपुत्रीके निकट गया है और कदाचित् पाठकोंका चित्त भी उस असाधारण चित्ता-कर्षिणी, भुवनमोहिनी सुन्दरीकी वातचीत सुननेके लिए तड़प रहा होगा। अच्छा तो आइए, हम सब उसके मार्मिक शब्दोके सुननेका प्रयत्न करें।

(२)

इलावर्धन नगरके वाहर मैदानमें एक तम्बू खड़ा है। उसके एक कौनेमें वह नटपुत्री अपने स्वय कल्पना किये हुए एक नवीन प्रकारके नृत्यका अभ्यास कर रही है। एक बेजान पहचानके पुरुषको अपनी ओर आता देखकर उसने नृत्य बन्द कर दिया। समझा कि कोई धनी पुरुष अपने जल्सेका निमन्त्रण देनेके लिए आया है, इस लिए उसे सत्कार-पूर्वक आसन देकर आप सामने बैठ गई और आगमनका कारण पूछने लगी। एलाकुमारने डरते डरते सब बाते प्रकट कर दीं और अन्तमे कहा—“ सुन्दरी, इसके पहले कि तुम मुझे कुछ उत्तर दो मेरे

इस निश्चय पर अवश्य ख़्याल कर लेना कि तुम्हारा 'न' मेरी अकालमृत्युका कारण बन जायगा। तुम जैसी बुद्धिशालिनी मनोमोहिनीके लिए मै अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेके लिए तैयार हूँ और तुम्हारी कठिनसे कठिन शर्तके स्वीकार करनेमें मैं ज़रा भी आनाकानी न करूँगा। इससे तुम जान सकती हो कि मेरा तुम्हारे ऊपर कितना सच्चा और सम्पूर्ण प्रेम है।"

यह सुनकर नटपुत्री हँस पड़ी और फिर बोली—"श्रेष्ठिपुत्र, यदि कोई बालक अपने पितासे कहे कि चन्द्रमाको मेरे खीँसेमे लाकर रख दो और पिता उसकी उक्त इच्छाको तृप्त कर सकता हो, तो मै भी तुम्हारी इस सच्चे हृदयकी किन्तु अशक्य प्रार्थनाको बड़ी खुशीसे स्वीकार कर सकती हूँ। तुम्हारी प्रार्थनाको 'अशक्य' कहनेसे तुम्हे कितना दुःख होता है, सो तुम्हारे चेहरेके बदलते हुए रंगपरसे स्पष्ट दीख पडता है और गीतनृत्यकी कलाओंसे कोमल बना हुआ मेरा हृदय उस रगको देखकर दुखी भी होता है। तथापि मुझे अपने कुलका, अपने व्यापारका और अपने गौरवका भी खयाल रखना ज़रूरी है। एक तो यह सभव नहीं है कि तुम मेरे आदरणीय व्यवसायमे उपयोगी या सहायक बन सकोगे। दूसरे, तुम हर कोई शर्तको स्वीकार करनेके लिए कहते तो हो; परन्तु अपनी जातिको बिना किसी सकोचके राजीनामा देकर मेरी जातिमें मिलनेका साहस कर सको, यह मुझे असंभवित मालूम होता है। तीसरे, तुम्हारी जो अटूट लक्ष्मी है वह तुम्हारे और मेरे बीचके प्रेममें किसी दिन वाधा डालनेवाली बन सकती है। इसलिए जब तक तुम अपने सारे धन परसे अपना अधिकार छोड़कर मेरे पाणिग्रहणकी याचना न करो, तब तक मुझे आशा नहीं है कि मै तुम्हारे साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकूँगी। हे सुन्दर

युवक, मुझे खेद है कि जब तक मेरे और तुम्हारे बीचमे ये बड़े बड़े विघ्नरूप किले खड़े हैं, तब तक मै तुम्हें निराशाकी खाईमें गिरनेसे नहीं बचा सकती।"

एलाकुमारके वदनमण्डलपर आशाके चिह्न दिखलाई देने लगे। वह आसनपरसे उठ बैठा और नटपुत्रीका हाथ धीरेसे अपने हाथमें लेकर बोला—"प्राणवल्लभे, (यदि इस शब्दसे सम्बोधन करनेकी तुम मुझे अनुमति दो, तो) तुम्हारी कृपासे इन सारे विघ्नो और संशयोंके किलोंको धराशायी करनेकी मुझमें शक्ति है। जातिके बन्धनको मै इसी समय तिलांजुलि देता हूँ, और अब्जोंकी सम्पत्ति पर मैं लात मारता हूँ। यद्यपि मैं इस बातको अभी निश्चित शब्दोंमें नहीं कह सकता हूँ कि मैं तुम्हारे काममें कितनी सहायता पहुँचा सकूँगा, तथापि इतना विश्वास इसी समय दिला सकता हूँ कि नटकला सीखनेके लिए मैं इसी क्षणसे अश्रान्त परिश्रम करूँगा और हे रंभोरु, जब तक मैं इस कलामें पारगत न हो जाऊँगा—तेरा सुयोग्य सहायक और भागीदार न बन जाऊँगा, तब तक तेरे सम्मुख 'प्रेम' या 'विवाह' का एक शब्द भी कभी उच्चारण न करूँगा।"

युवाके एक एक शब्दसे नटकन्याका हृदय उद्वेलित होने लगा। उसे उसके सच्चे प्रेम, प्रामाणिक निष्ठा, गहरी प्रतिज्ञा और अमूल्य आत्मबलिकी ओर बहुत ही आदरभाव उत्पन्न हुआ और इस आदर भावमें उस प्रेमीके प्रस्फुटित यौवन और सौन्दर्यने तो और भी वृद्धि की जिससे कि वह तत्काल ही प्रेमरूपमें परिवर्तित हो गया। तथापि स्त्री जातिकी स्वाभाविक लज्जाशीलताके कारण उसने अपना यह कोमल मनोभाव दबा रक्खा; उसके मुँहसे एक भी शब्द न निकला—वह चुप चाप नीचेकी ओर देखती हुई स्थिर हो रही। एलाकुमार उसके मनो-

भावको जान गया और उत्साहमें आकर उसके हाथको चूमकर बोला— "वल्लभे, मेरी इस ढीठताको क्षमा करना; और जिस तरह यह चुम्बन पहला है उसी तरह—यदि मै अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेमें सफल न होऊँ तो इसे ही अन्तिम समझ लेना। प्रिये, मुझ पर दया करो और अपने कुटुम्बके साथ रखके नटकला सिखलानेकी मेरी प्रार्थना अपने पिता पर प्रकट कर दो। जहाँ तक बने इस बातका भी प्रयत्न करो कि कल यहाँसे अपना डेरा कूच हो जाय जिससे कि मुझे अपने पिताकी ओरकी किसी रुकावटका भय न रहे।"

नटसुन्दरीका हृदय नवनीतकोमल हो गया। मस्तक नीचा करनेके सिवाय वह कुछ भी उत्तर न दे सकी। एलाकुमार वहाँसे विदा हुआ और मार्गप्रतीक्षा करते हुए नटसे जाकर मिला। उसके मुँहसे सब बातें सुनकर नटको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद वह अपने डेरे पर चला आया और अपनी पुत्रीसे भी सब समाचार सुनकर कूच करनेकी तयारी करने लगा।

एलाकुमारने अपने पिताको एक पत्र लिखा और उसमे सब वृत्तान्त लिखकर अन्तमें यह निवेदन कर दिया कि मेरी ढूँढ़ खोज न की जाय। यह पत्र उसने अपने नौकरको दे दिया और आप उसी समय शहर छोड़कर उस नगरको चला गया जहाँ नटने अपने पहुँचनेकी सूचना दे दी थी। दूसरे दिन नट भी उससे जा मिला और कुमार उसके कुटुम्बमें रह कर नटकलाका अभ्यास करने लगा।

अभ्यासके वदलेमें जहाँ ऐसा अलौकिक रत्न मिलनेकी आशा हो, वहाँ फिर और कौनसा साधन चाहिए? केवल छह महीनेमे वह अनेक प्रकारकी कसरतें और नृत्य सीख गया और अन्तमें यह निश्चय हुआ कि अपनी कलामें उसने कितनी योग्यता प्राप्त की है

इसकी परीक्षाके लिए वह किसी दरबारमें अपने खेल दिखाकर राजाको प्रसन्न करे।

(३)

नट अपनी मण्डलीसहित बेनातट नगरमें पहुँचा है। वहाँके राजाने नटकला देखनेकी इच्छा प्रकट की है। राजमहलके विशाल चौकमे अश्चर्यजनक कसरतों और खेलोमें काम आनेवाली तरह तरह की चीजें सजाई गई है। खभे गड़ाये गये हैं, झूला बाँधे गये हैं और जमीनमें गडे हुए दो ऊँचे बॉसोंके बीच धातुका एक बारीक तार लगाया गया है। राजा और दरबारी पुरुष चौकके एक भागमें अपनी अपनी योग्यताके अनुरूप आसनों पर बैठे है। महलके छज्जो और झरोखोंमें रानियाँ और अन्त.पुरकी अन्य स्त्रियॉ भी तमाशा देखनेके लिए दम साधे हुए बैठी है।

एक सुन्दर और सुडौल युवा जरीका जॉघिया कसे हुए चौकमे उपस्थित हुआ। उसपर दृष्टि पडते ही दर्शकोंके हृदयो पर एक प्रकारका मोहित करनेवाला प्रभाव पडा। यह युवा पाठकोका पूर्वपरिचित श्रेष्ठिपुत्र एलाकुमार ही था।

एकके बाद एक खेल सफलताके साथ होने लगे। दर्शकगण तालियॉ पीट पीटकर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे। सबके अन्तमें सबसे अधिक जोखिमका–धातुके तार पर नृत्य करनेका खेल शुरू हुआ। एलाकुमार एक हाथमें चमचमाती हुई तलवार और दूसरे हाथमे ढाल लेकर आकाशके साथ बातें करनेवाले उस बारीक तार पर खडा हुआ और नृत्यकलाके तथा पटा खेलनेके आश्चर्यजनक कौतुक दिखलाने लगा। इस प्रयोगमें उसने आशातीत सफलता प्राप्त की। दर्शकोंने एक स्वरसे कहा–"शाबास! नटराज शाबास! शरीर-

साधन विद्याकी हद्द हो चुकी!" परन्तु राजाके मुँहसे एक भी प्रशंसा-सूचक शब्द न निकला। बात यह थी कि उस समय उसकी दृष्टि नटकन्याके सुगठित शरीरमें उलझ रही थी और उसके साथ मानसिक व्यभिचार सेवनमे रत थी। इसलिए उसने देखते हुए भी कुछ न देखा। वह बोला—"अच्छा इस अन्तिम प्रयोगको एक बार और भी करके दिखलाओ।" आज्ञा पाते ही एलाकुमार फिरसे बाँस पर चढ़ गया और नटकन्या अपने मनोमोहनकी थकावट मिटाने और उत्साह बढानेके लिए बाँसके समीप खड़ी होकर उत्तेजक गीत गाने लगी और साथ ही उत्साहप्रेरक ढोलको ध्वनित करने लगी। इसका फल राजाके चित्त पर और भी विलक्षण हुआ। रूपके मोहके साथ कण्ठका मोह और मिल गया। राजा अपने पदको भूल गया और केवल इसी बातके विचारमे तन्मय हो गया कि इस सुन्दरीको कैसे प्राप्त करूँ। इसी बीचमें एलापुत्रका दूसरी बारका खेल पूरा हो गया। वह नीचे उतर कर महाराजके सामने मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। राजाने इस बार भी कुछ प्रसन्नता प्रकट न की और तीसरी बार खेल करनेकी आज्ञा दी।

अबकी बार दर्शकोंको यह समझनेमे कुछ भी बाकी न रह गया कि राजाकी आन्तरिक इच्छा क्या है। उनके हृदयमें राजाके प्रति तिरस्कारकी वर्षा हो रही थी, परन्तु स्वेच्छाचारके जन्मसिद्ध अधिकारको लेकर पृथ्वीमे अवतार लेनेवाले राजाओंके मार्गमें कंटक बिछानेका साहस किसे हो सकता है? दूसरोंके परिश्रमसे लक्ष्मीवान् बनना, उस लक्ष्मीसे प्रत्येक इन्द्रियकी षोड़शोपचार पूजा करना, अपने प्रबल लोभ और मानको पुष्ट करनेके लिए सैकडो—हजारों—लाखो मनुष्योंकी बलि लेना और ऐसी बलिको 'देशभक्ति,' 'राजभक्ति' ठहराना, इन

सब बातोंका हक इन्हे जन्मसे मिला हुआ होता है। इसलिए इनकी इच्छाके विरुद्ध शब्दोंका उच्चारण करना राजद्रोह कहलाता है और जो इस तरहका साहस करनेपर उतारू होता है, उसे अपनी इज्जतसे ही नहीं—जिन्दगीसे भी हाथ धोना पड़ता है। गरज यह कि राजासे कोई कुछ न कह सका; और तो क्या उसके शरीरकी सर्वथा अधिकारिणी महाराणी भी अपने अधिकारको जोखिममें जाता हुआ देखकर कुछ न बोल सकी। देखिए, यह कैसी शोचनीय दासता या गुलामी है। इस पर तुर्रा यह कि हम लोग इसी गुलामीको राजभक्ति और पातिव्रत्य कहकर फूले अग नहीं समाते है। ऐसी अधम मानसिक दुर्बलतासे—राजा या पतिमें इस प्रकार सीमासे अधिक पूज्यपना स्थापित करनेसे हमें समय समय पर बहुत ही बडे बडे कष्ट उठाने पडे हैं। आत्माभिमान क्या चीज है और हमारे मनुष्यत्वसम्बन्धी कुछ अधिकार हैं या नही, अफसोस, कि इन बातोंके जाननेकी भी हमें मनाई की जाती है। हम इस आत्माभिमान और अधिकारको—जो कि प्रकृतिदत्त या स्वाभाविक है—प्रसन्न करनेकी अपेक्षा मनुष्यकृत रूढियो और मनुष्यकृत राजाओंको हर तरहके कष्ट सहन करके प्रसन्न करना, अधिक पसन्द करते हैं। राजा, पति और समाजकृत रूढ़ियोंके आदरके लिए अन्याय और अत्याचार भी सहन करना; इतना ही नही, अन्यायाचरण करते हुए देखकर भी 'न' न करना और इस तरह अपने तथा अपने कुटुम्बके न्याय्य सुखोंको भी होम कर देना ये सब बातें इस देशमें 'भक्ति' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

हमने जब तक इस भक्तिका रोना रोया, तब तक एलाकुमारका तीसरी बारका खेल भी हो गया और फिर वैसी ही आज्ञा मिलनेके कारण वह चौथी बार बाँस पर चढ़ गया। उसे राजाकी व्यभिचा-

रिणी बुद्धिका पता लग चुका था। यदि वह उस प्राणवल्लभाके पाणि-ग्रहणके लिए किसी राजाको प्रसन्न करनेकी प्रतिज्ञा न कर चुका होता तो यह चौथी बारका प्रयत्न कदापि न करता। इसमें वह अपना बडा भारी अपमान भी समझता था। उसका साहस शिथिल हो रहा था कि इतनेमे गद्गतचित्ता नटकन्याने उसको उत्तेजित किया और अन्तमें उसके कानके पास जाकर कह दिया—"मुझे इस कारण बड़ा ही कष्ट हो रहा है कि तुम्हें इस अपमानभरे हुए कष्टमे डालने-वाली मै ही हूँ। परन्तु प्यारे, तुम मुझे अपने दृढ़ निश्चय और सच्चे हृदयसे वरण कर चुके हो, इसलिए अब तुम्हारा यही खेल अन्तिम खेल होगा। राजा प्रसन्नता प्रकट करे या न करे, पर मै तुम्हें अपना जीवनसंगी पति बनानेके लिए तैयार हूँ। मै इसी समयसे तुम्हारी हो चुकी।"

"मै 'तुम्हारी हो चुकी" इन शब्दोने उस थके हुए नटके शरीर-में बलशालिनी बिजली दौडा दी। वह चौथी बार तार पर चढ़ा और लगभग पॉच गज चलकर तारको हिंडोलेके समान हिलाने लगा और साथ ही दोनों हाथोंसे पटा खेलने लगा। दर्शकगणोंकी तालियोंसे आकाश गूँजने लगा। इसके बाद वह आगे बढा और तार पर अद्भुत नृत्य करने लगा। इस समय सबकी दृष्टि उसके पैरोंमें स्थिर हो रही थी; परन्तु स्वय उसकी दृष्टि एक और ही दृश्य देख रही थी। राजमह-लसे थोड़ी ही दूर पर किसी गृहस्थका सुन्दर घर था। उसमेंसे एक अलौकिक रूपलावण्यवती युवती शीघ्र गतिसे बाहर निकली और एक फटेहाल परन्तु युवा साधुके सामने खडी होकर कहने लगी "भगवन्, अपने चरणोंकी रजसे मेरे घरको पवित्र कीजिए और शुद्ध अन्नजल ग्रहण करके मुझे भाग्यशालिनी बनाइए।" साधु चुपचाप

उसके पीछे चलने लगा और युवतीके घरकी पौरमे जाकर खडा हो गया। इतनेमें वह युवती भीतर गई और एक सोनेके थालमें तरह तरहके पक्वान्न सजाकर ले आई तथा उन्हें स्वीकार करनेके लिए साधुसे विनती करने लगी। तार पर नृत्य करता हुआ नट देखता है कि वह साधु न तो ऊँची दृष्टि करता है और न उस पक्वान्नको ग्रहण करता है। इसके बाद वह नीची दृष्टि किये हुए यह कहकर मन्दगतिसे लौटने लगा कि–"हम सर्वसगत्यागियोके लिए पौष्टिक आहार लेना वर्जित है। यदि कोई नीरस लघु भोजन होता तो कदाचित् ग्रहण कर लिया जाता।"

नट सोचने लगा–"कैसे आश्चर्यकी बात है कि एक युवा है और दूसरी युवती है। ऐसे एकान्तस्थानमें कि जहाँ और कुछ नहीं तो एक छुपी नजरसे देख लेनेमें कोई रुकावट नहीं थी, इस साधुने सामने ऊँची दृष्टि करके भी न देखा! यह अनुपम सुन्दरी जिसके शरीरमेंसे यौवनका मद छलका पड़ता है–प्रार्थना कर रही है और अतिशय नम्र हो रही है, पर इस युवाने न उसकी ओर देखा और न अन्नको ही स्पर्श किया। इसके चित्तकी दृढता और स्वाधीनताका कुछ ठिकाना है। कहाँ इसकी निस्पृहता और कहाँ मेरी लालसा! कहाँ इसकी आत्मतुष्टि और कहाँ मेरी विभाववृत्ति! कहाँ इसकी सम्पूर्ण शान्ति और कहाँ मेरी क्षणक्षणमें हिंडोलेसे होड लगानेवाली भ्रान्ति! धन्य है! करोडों वार धन्य है इस पुरुषसिंहको! .. परन्तु, क्या मै भी पुरुष नहीं हूँ? क्या मैंने केवल छह महिनेहीमें कठिनसे कठिन विद्या प्राप्त नहीं की है? तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि ऐसी अडोलवृत्ति प्राप्त करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है? क्षणिक इन्द्रिय-भोगोंके लिए यदि मैं अटूट धन, उच्च कुल और चित्तकी

स्वस्थताका बलिदान कर सकता हूँ, तो क्या अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिए इन सांसारिक भोगोंको उत्सर्ग नहीं कर सकूँगा?" इस तरहके विचारोंकी अटूट परम्परा उस नटके मनमें उठने लगी और उनका वेग—उनकी शक्ति इतनी बढ़ी कि उसके आसपासकी अज्ञानता और निर्बलताके सारे किले बातकी बातमें गिर गये और भीतरका सूर्य प्रकाशित हो उठा! तारपर नृत्य करता हुआ नट एक क्षणमें एक पूजनीय पुरुष बन गया!

—जैनहितेच्छु।

चरित्र-गठन और मनोबल।

हम अपने जीवनके प्रत्येक समयमे ऐसी अनेक नई नई आदतें सीखते रहते हैं जिनका हमें ज्ञान भी नहीं होता। उनमेंसे कुछ आदते तो बहुत अच्छी होती हैं, परन्तु कुछ बहुत बुरी होती है। कुछ ऐसी होती हैं कि स्वयं तो वे बहुत बुरी नहीं होतीं, परन्तु आगे चल कर उनके फल बहुत ही बुरे होते है और उनसे बहुत कुछ हानि, कष्ट और पीडा पहुँचती है। कुछ उनसे बिलकुल उलटी होती हैं जिनसे सदा हर्ष और आनन्द बढ़ता रहता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अपनी आदतें बनाना सदा अपने अधिकारमे हैं? क्या यह बात हमारे हाथमें है कि हम जिस तरहकी चाहें अपनी आदतें बना लें, जिस आदतको चाहे ग्रहण करें और जिस आदतको चाहें छोड़ दें? इसका सक्षिप्त उत्तर यह है कि हाँ, यह बात बिलकुल हमारे हाथमे है। हम अपना चरित्र चाहे जैसा बना सकते हैं। **मनुष्य वही हो जाता है जो वह होना चाहता है।** यह शक्ति मनुष्यमात्रमें स्वाभाविक है। परन्तु यह शक्ति उस समय

तक कुछ भी कार्यकारी नहीं, जब तक इसका उपयोग मालूम न हो। अतएव पहले इसका उपयोग बताना जरूरी है।

सबसे पहले मनुष्यको इस स्वाभाविक शक्तिके अस्तित्व और कार्यका सम्यक् श्रद्धान होना चाहिए। पश्चात् उस महान् नियम पर विचार करना चाहिए जिसपर चरित्रगठनकी नीव रक्खा जाती है, जिसके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे पुरानी, बुरी, खोटी और नीच आदतें छूट जाती हैं, और नई, अच्छी और ऊँची आदतें पैदा हो जाती है, और जिससे जीवनमे सर्वदेश वा एकोदेश परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए केवल एक बातकी जरूरत है और वह यह है कि मनुष्य पहले उस नियम पर सच्चे दिलसे विचार करे, और फिर उसके अनुसार कार्य करनेका दृढ सकल्प करे।

मनोवल ही मनुष्यके सम्पूर्ण कार्योंका उत्तेजक है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्यका प्रत्येक कार्य जो सकल्प द्वारा किया जाता है एक विचारका परिणाम है। जिस कार्यका जितना अधिक विचार किया जाता है वह कार्य भी उतना ही अधिक होता है। जो कार्य वार वार किया जाता है, वह धीरे धीरे आदतका रूप धारण करने लगता है। अनेक आदतोंके समूहका नाम ही चारित्र है। इसीको अँगरेजीमें करैक्टर Character और हिन्दीमें 'चालचलन' कहते हैं। इसलिए तुम जिस तरहके काम करना चाहते हो और जैसा अपने आपको बनाना चाहते हो उसी तरहके विचार तुम्हारे दिलमें आने चाहिए। जो काम तुम करना नहीं चाहते, जिस आदतको तुम ग्रहण करना नहीं चाहते, उनके पैदा करनेवाले विचार कभी क्षणमात्रके लिए भी तुम्हारे मनमें न आने चाहिए।

यह एक मानी हुई बात है और इसमें किसीको तनिक भी विवाद नहीं है कि यदि मनमे कोई विचार कुछ समयतक बराबर आता रहे तो

वह (विचार) धीरे धीरे मस्तकके उस भागमे पहुँच जायगा कि जहाँ वह अंतमे कार्यका रूप अवश्य धारण कर लेगा; अर्थात् जहाँ पहुँच कर वह शरीरको अपने अनुसार कार्य करनेके लिए वाधित कर देगा। अब यदि वह विचार अच्छा है तो उसका फल भी अच्छा होगा और यदि वह विचार बुरा है तो उसका परिणाम भी बुरा होगा। हत्या, वध आदि जितने भी बुरे कर्म है सब इसी तरह होते है और इनके विपरीत जितने उत्तम कार्य हैं, वे भी इसी तरह होते है।

समझने और याद रखनेकी बात है कि प्रत्येक कार्यका कारण विचार है; परन्तु किसी प्रकारके विचारको मनमें रखने या न रखनेका हमें पूर्ण अधिकार है। हम अपने मनके स्वतंत्र राजा हैं। पूर्णरूपसे वह हमारे वशमे है और हमको सदैव उसे अपने वशमे रखना चाहिए। यदि कभी वह वशमे न रहे, तो उसके वशमें करनेका एक उपाय है। उसके अनुसार चलनेसे हम मन और विचार दोनोको अपने अधिकारमे कर सकते है।

मनुष्यके शरीरमें यह गुण है कि उसमे किसी कामको बार बार करनेसे उस कामके करनेकी शक्ति बढ़ती जाती है। पहली बार किसी कामके करनेमें जितनी कठिनाई होती है उससे कहीं कम उसी कामको दूसरी बार करनेमे होती है और उससे भी कहीं कम तीसरी बार करनेमें और तीसरी बारसे भी कम चौथी बारके करनेमें होती है। गरज यह कि हर बार कठिनाई कम होती जायगी और आसानी अधिक मालूम होती जायगी। धीरे धीरे एक दिन वह काम बिलकुल आसान हो जायगा और उसमे ज़रा भी कठिनाई न रहेगी। परन्तु हाँ, उससे उल्टा करनेमें बड़ी कठिनाई मालूम होगी। ठीक यही हालत मस्तककी भी है। एक विचार पहली बार ज़रा कठिनाईसे

पैदा होता है। दूसरी बार उससे आसानीसे, तीसरी बार उससे भी ज्यादह आसानीसे, इसी प्रकार ज्यादह ज्यादह आसानी होती जायगी और वह विचार धीरे धीरे मनका एक अग हो जायगा। अब इसको दूर करना कठिन हो जायगा। परन्तु स्मरण रहे कि ससारमें कोई काम कठिन भले ही हो, परन्तु असम्भव कोई भी नहीं है। धीरे धीरे अभ्यास करनेसे कठिनसे कठिन काम भी सरल हो जाता है। यह प्रत्यक्षसिद्ध सिद्धान्त सर्वमान्य है। इसमें किसीको कोई भी शका नही हो सकती है। इसी सिद्धान्तको दृष्टिमें रखते हुए प्रत्येक मनुष्य अपने विचारोंको वशमे कर सकता है और उनपर अधिकार पा सकता है। यदि शुरूमें सफलता न हो, या कुछ समय तक होती न दीखती हो तो कोई परवा नहीं। निराश कभी मत होओ। उद्योग कभी निष्फल नहीं जाता। बार बार कोशिश करो। बार बारकी कोशिशसे एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी। जिस कामको तुम कठिन समझते हो वह सरल हो जायगा और जिन विचारोंको अभी तुम वशमे नही कर सकते थे उन्हीं विचारो पर तुमको पूर्ण अधिकार हो जायगा।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारोंको वशमें कर सकता है और मनुष्यमात्र इस शक्तिको प्राप्त कर सकता है कि चाहे जिस प्रकारके विचारोंको अपने मनमें आनेसे रोक दे। क्योंकि यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है और हमें इसे कभी न भूलना चाहिए कि किसी भी कामके लिए हमारी प्रत्येक बारकी कोशिश उस कामको ज्यादह आसान बना देती है, चाहे शुरूमें असफलता ही क्यों न हो। अर्थात् चाहे शुरूमें हमें किसी काममें सफलता न हो, तो भी ज्यों ज्यों वह काम किया जायगा त्यों त्यों उसमें ज्यादह आसानी

होती जायगी। ऐसी दशामें असफलतामें भी सफलता है। क्यों कि उद्योगमें तो असफलता होती नहीं और उद्योग चाहे जब किया जाय काम करनेकी शक्तिको ही बढ़ाता है। एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी और हमारी मनोकामना पूर्ण होगी। अतएव यह बात सिद्ध है कि हम अपने विचार चाहे जिस तरहके बना सकते है और चाहे जैसा अपना चारित्र निर्माण कर सकते हैं।

यहाँ पर दो तीन उदाहरण दिये जाते है। आशा है कि उनसे यह विषय बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।

मान लो कि एक आदमी किसी बड़ी कम्पनीका कोषाध्यक्ष (खजानची) या किसी बैंकका मैनेजर है। एक दिन उसने एक समाचारपत्रमे पढ़ा कि एक मनुष्यने सिर्फ़ चार ही पाच घंटोंमें किसी सौदेमें कई लाख रुपये कमा लिये। थोड़े ही दिनके बाद उसने फिर एक ऐसे ही मनुष्यका हाल पढ़ा। अब उसके जीमें भी ऐसी ही लालसा पैदा होने लगी। वह विचार करने लगा कि ये आदमी कितनी थोडी देरमें लखपती हो गये। मैं भी इन्हीं-का अनुकरण करके शीघ्र लखपती हो जाऊँगा। यही विचार उसके मनमें रात दिन घूमने लगा। उसने ऐसे दो चार आदमियोंका हाल तो पढा जो एक बारगी अमीर हो गये, परन्तु यह उसने कभी नहीं सोचा कि ऐसे भी बहुतसे आदमी हैं जो ऐसा करनेसे अपनी सारी पूँजी खोकर भिखारी हो बैठे है। उसकी इच्छा दिनोदिन बढ़ने लगी। अन्तमें एक दिन उसने अपनी तमाम पूँजी वैसे ही किसी काममें लगा दी। परिणाम वही हुआ जो प्रायः ऐसी दशाओंमे हुआ करता है अर्थात् उसको घाटा पड़ गया। उसकी सारी पूँजी जाती रही। अब वह विचार करता है कि अमुक कारणसे मुझे सफलता

नहीं हुई। यदि मेरे पास और रुपया होता तो मैं अवश्य घाटेको पूरा कर लेता और साथमे बहुत कुछ और भी कमा लेता। अब यह विचार बार बार उसके मनमें आता है, और वह सोचता है कि मेरे हाथमें बेंकका जो रुपया है, यदि मैं उसे लगा दूँ, तो इसमें कोई हानि नहीं है। शीघ्र ही जो रुपया कमाऊँगा उसमेंसे दे दूँगा। ऐसी छोटीसी रकमका अदा कर देना कोई कठिन बात नहीं। अन्तमें एक दिन उससे नहीं रहा जाता और वह बेंकके रुपयोंको भी जो उसके अधिकारमें है लगा देता है और खो बैठता है। ऐसी घटनायें प्रतिदिन ही देखने और सुननेमें आती हैं। इनका कारण क्या है? दूसरेके रुपयेको अपने उपयोगमें लानेका वही एक बुरा विचार। यदि कोई बुद्धिमान होता तो मनमें आते ही उस विचारको निकाल देता और अपनी बुरी इच्छाको दबा लेता, परन्तु वह मूर्ख था। उसने उसे स्थान दिया। जितना जितना वह उसे स्थान देगा उतना उतना ही वह विचार बढ़ता जायगा और अन्तमें वह विचार इतना जोरदार हो जायगा कि फिर कार्यरूपमें ही परिणत होता दिखलाई देगा और उसका परिणाम घृणा, अपमान, शोक और पश्चात्ताप होगा। शुरूमें ही जब मनमें कोई विचार उठता है तब उसका हटा देना आसान होता है। बादमें उसका जोर बढता जाता है और उसका हटाना उत्तरोत्तर कठिन होता जाता है। दियासलाई कितनी छोटी चीज़ है। शुरूमें उसके बुझानेके लिए केवल एक फूँक काफी है, परन्तु यदि वह किसी चीजमें लग जाय, तो घरभरमें आग लगा देगी और फिर उसका बुझाना कठिन हो जायगा।

एक और उदाहरण लीजिए। इससे यह माळूम होगा कि किस तरह किसी चीज़की आदत पड़ जाती है और किस तरह वही आदत

छूट जाती है। मान लो कि एक नवयुवक है। चाहे उसके मातापिता धनवान् हों चाहे निर्धन, इससे कुछ मतलब नहीं। चाहे वह उच्च जातिका हो, चाहे नीच जातिका, इससे भी कुछ तात्पर्य नहीं। हाँ, इतना ज़रूर है कि वह एक नेक सदाचारी लड़का है। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ सन्ध्याके समय सैर कर रहा है। उसके मित्र भी वैसे ही साधारण स्थितिके सभ्य सदाचारी लड़के हैं, परन्तु प्रायः साधारण लड़कोंके समान वे भी कभी कभी भूल कर बैठते हैं। ऐसा ही उस दिन भी हुआ। उनमेंसे एकने कह दिया कि चलो, आज किसी जगह चलकर साथ साथ खावें। इसमे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई; सब हँसते खेलते उस स्थान पर पहुँच गये। वहाँ उनमेंसे एक लड़क बोला कि भाई, कुछ पीनेको भी चाहिए। उसके बिना कुछ आनन्द न आयगा। अब हमारा नवयुवक उस समय इकार करना सभ्यताके प्रतिकूल और मित्रताके नियमोंके विरुद्ध समझकर हाँमें हाँ मिला देता है। विवेक अंदरसे रोकता है और पुकार कर कहता है कि सावधान हो, देख, क्या करता है। परन्तु वह इस समय कुछ नहीं सुनता। उसको इस बातका विचार नहीं है कि चरित्रकी दृढता सदा सच्चे मार्ग पर जमे रहनेमें है। वह मित्रोंके साथ उस दिन थोड़ी शराब पी लेता है। यद्यपि वह इस विचारसे नहीं पीता कि उसको शराबसे प्रेम है या वह शराबकी आदत डालना चाहता है, सिर्फ़ यह खयाल करके पी लेता है कि मित्रोंमें इंकार करना ठीक नहीं है। दैवयोगसे दो चार बार ऐसा ही मौका पड़ जाता है और वह हर बार थोड़ी थोड़ी पी लेता है। परन्तु इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। प्रत्येक बार विवेककी रोकटोक कम होती जाती है और धीरे धीरे उसे नशेकी चाट पड़ती जाती है। अब तो वह कभी कभी

स्वय भी खरीद कर थोडीसी पी लेता है। उसको स्वप्नमें भी इस बातका खयाल नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूँ और इसका क्या भयकर परिणाम होगा। धीरे धीरे उसको शरावकी आदत पड जाती है और अव उसके लिए उसका छोडना कठिन हो जाता है। इस पर भी वह कुछ परवा नहीं करता; वह समझता है कि मैं अपनी इच्छासे ही कभी कभी पी लेता हूँ। जब देखूँगा कि इसकी आदत ही पड गई, तव छोड दूँगा, परन्तु यह केवल उसका विचार ही है। उसके लिए शराब दिन दिन ज़रूरी होती जाती है और एक दिन वह आता है कि जब हम उसे पक्का शरावी देखते है। अब उसे स्वय अपनी हालत पर शोक और पश्चात्ताप होता है। लज्जा, घृणा, अपमान और निर्धनताके कारण उसे अपने पिछले दिनोंकी याद आती है। परन्तु अव उसका जविन बिलकुल नीरस और निराश हो गया है। यह उसके लिए आसान था कि वह शराबको कभी पीता ही नहीं, या पीता भी तो इस अवस्थाको पहुँचनेसे पहले ही उसका त्याग कर देता। परन्तु वर्तमान अवस्थामें भी चाहे यह कितनी ही गिरी हुई हो, कितनी ही बुरी हो, वह चाहे तो इसका त्याग कर सकता है और फिर एक बार पहलेके समान सुख और शातिको प्राप्त कर सकता है। आप पूछेंगे कि इसका उपाय क्या है? उपाय यह है कि जब उसके मनमें शराव पीनेकी इच्छा हो, तत्काल उस इच्छाको रोक दे-एक मिनिटकी देर न करे। यदि ज़रा भी देर करेगा—ज़रा भी उस इच्छाको अपने मनमें स्थान देगा, तो फिर उसका निकलना कठिन हो जायगा। चिनगारीका पहले ही बुझा देना आसान है। जब घरमें आग लग जाती है तब उसका बुझाना कठिन हो जाता है। अतएव बुरे विचारको मनमे आते ही रोक दो। इसीमे सारी सफलता है।

यहाँ एक बात, और कह देनी ज़रूरी है कि कोई विचार केवल उस विचारको दूर करनेका ही विचार करनेसे दूर नहीं होता; उसके दूर करनेका सरल और निश्चित उपाय यह है कि मनको किसी और कार्यमे लगाया जाय अथवा मनमे उस विचारका कोई प्रतिकूल वा अन्य कोई उत्तम विचार भर दिया जाय । ऐसा करनेसे बुरा विचार स्वयमेव मनसे निकल जायगा और उत्तम विचार उसका स्थान ले लेगा। पहले पहल किसी विचारको निकालनेके लिए तबियत पर दबाव डालना होगा, परन्तु ज्यों ज्यों उसके लिए उद्योग किया जायगा त्यो त्यो उसमें कठिनाई कम और आसानी अधिक होती जायगी। और इसके विपरीत उत्तम विचारोंको मनमें स्थान देनेकी शक्ति बढ़ती जायगी। परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे शराब पीने अथवा और किसी बुरे कामके करनेका विचार कम होता जायगा और यदि कभी ऐसा विचार आयगा भी, तो वह आसानीसे निकाल दिया जा सकेगा और एक दिन वह आयगा कि जब उस विचारका मनमें प्रवेश ही न होने पायगा। एक उदाहरण और भी दिया जाता है। मान लो कि एक आदमीका स्वभाव ज़रा चिड़चिड़ा है अर्थात् उसे जल्दी गुस्सा आजाता है। यदि कोई उसे कुछ कह देता है अथवा उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम कर देता है तो वह बिगड़ खड़ा होता है और नाराज भी होने लगता है। अब इस दशामें वह जितना अधिक बुरा मानेगा और जितना अधिक अपने रोषको ज़ाहिर करेगा उतना ही अधिक उसका क्रोध बढ़ता जायगा। ज़रा ज़रा सी बात पर उसे क्रोध आने लगेगा और उसके लिए क्रोधका त्याग करना दिन दिन कठिन होने लगेगा; यहाँ तक कि रोष, क्रोध, घृणा, शत्रुता और बदला लेनेकी इच्छा उसके स्वभाव हो जायँगे। प्रसन्नता

और प्रफुल्लता सदाके लिए विदा ले जायगी और हर एकके साथ उसका चिड़चिडानेका व्यवहार हो जायगा। परन्तु यदि वह जिस समय क्रोध आवे उसी समय उसे दवा दे और अपने मनको किसी और विषयकी तरफ़ लगा दे तो उसे प्रथम तो क्रोध आ ही नहीं सकता और यदि आयगा भी, तो शीघ्र ठंडा पड़ जायगा। यदि फिर कभी क्रोध आयगा और वह उसे शात करनेका प्रयत्न करेगा तो उसको पहलेसे ज्यादह आसानी होगी। इस तरह थोडे दिनोंमें ही उसका क्रोध छूट जायगा। तव न कोई वात उसे भडका सकेगी और न किसी भी वातसे उसे क्रोध आयगा। इसके विपरीत उसकी तवियतमें क्षमा, शाति, दया और प्रेम पैदा हो जायँगे जिनका आज वह विचार भी नहीं कर सकता।

इसी प्रकार उदाहरण पर उदाहरण लिये जाओ। एक एक आदत, एक एक स्वभावको देखो। हर जगह इसी उपायको उपयोगी पाओगे। दूसरोंकी वुराई करना, उनके अवगुण देखना, ईर्ष्या, द्वेष, निर्दयता, कायरता, और इनसे उलटी तमाम आदते इसी तरह विचारोंसे पैदा होती हैं। इसी तरह हमारे मनमें राग, द्वेप पैदा होता है। इसी प्रकार हमारी तवियतमे हर्ष, विषाद, शोक, आनन्द या खेद पैदा होता है। ऐसे ही हम स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिए आशा और प्रसन्नताके स्रोत हो सकते है और ऐसे ही उनके लिए निराशा और दुःखके कारण वन सकते है।

मनुष्यके जीवनमें इससे ज्यादह सच्ची और कोई वात नहीं है कि हम जैसे वननेका विचार करते है वैसे ही वन जाते हैं। यह वात विलकुल सच है और इसकी सचाईमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि आदमी जैसा विचार करता है, वैसा ही वन जाता है। उसका

चरित्र आदतोका समूह है । उसकी आदते उसके कार्योंसे वनी हैं । और उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक है, अर्थात् प्रत्येक कार्यके पूर्वमें उसके मनमे उस कार्यके करनेका विचार पैदा हुआ है । अतएव यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि हमारे विचारोसे ही हमारा चरित्र बनता है । विचार ही मूल कारण है ।

विचारोंसे ही हम अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं और विचारोंसे ऊँचेसे ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं । केवल दो बातें ज़रूरी है । एक यह कि मनुष्यको अपना उद्देश और मनोरथ निश्चित कर लेना चाहिए । दूसरा यह कि सदा उनकी प्राप्तिके उद्योग करते रहना चाहिए । चाहे उसमे कितनी ही कठिनाईयॉ सहनी पड़े और कितनी ही आपत्तियोंका सामना करना पड़े । स्मरण रक्खो कि स्थिर प्रकृति और दृढ चरित्र मनुष्य वही है जो अपने मनोरथकी सिद्धिमे भावी लाभके लिए वर्तमान सुखकी परवा नही करता । सदा उसको तलाञ्जलि देनेको तैयार रहता है । वह कठिनाईयॉ दूर करता हुआ और आपत्तियोंको सहता हुआ अपने उद्देशकी प्राप्तिमें लवलीन रहता है और एक दिन अवश्य सफलताको प्राप्त कर लेता है । उसकी मनोकामना पूरी होजाती है और वह इच्छातीत होजाता है । (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय वी. ए. ।

---

* श्रीयुत राल्फ वाल्डो ट्राईनके ' करैक्टर विल्डिंग–थाट पावर ' नामक ग्रन्थका स्वतंत्र अनुवाद ।

डाक्टर जैकोबीका व्याख्यान।

(राजकोटमें दिया हुआ।)

जैनधर्म पर एक व्याख्यान देनेके लिए मुझसे कहा गया है, यह एक ऐसा विषय है जिससे मेरा परिचय चिरकालिक अध्ययनसे और भारतवर्षकी अवस्थाके अनुभवसे हो गया है। हमने जैनधर्मकी स्थिति थोड़े ही कालसे समझी है, पहले विश्वास था कि यह बौद्धधर्मकी शाखा है, क्योंकि उस समय बुद्धदेवको पश्चिमी विद्वान् भली भाँति जान गये थे और चूंकि बौद्धधर्मको उसके अपने जन्मस्थान भारतवर्षके बाहर बहुतसी एशियाकी कौमोंने ग्रहण किया है। अतएव यह धर्म स्वभावतः समान मतोंका मूल समझा जाने लगा और जैनमत भी इन समान मतोंमेसे एक मालूम होता था।

साधु-धर्म।

बौद्धमतकी तरह जैनमत भी असलमें और मुख्य करके साधु-धर्म है। अर्थात् यह मुख्यत साधुओं और साध्वियोंके संघके लिए है और श्रावक दूसरी श्रेणीके समझे जाते है। अतएव यह मालूम होता था कि जैन और बौद्ध साधु अपने जीवनके बाहरी स्वभावमें बहुत कुछ समानता रखते है। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी विशेषता न थी जो इस बातको पुष्ट करती कि इन दोनो मतोंका एक ही निकास था। बौद्ध और जैन प्रतिमाओंमें भी बडी समानता है, दोनों ध्यानस्थ अवस्थामें होती है और कुछ समय पहले बुद्धदेव और तीर्थकरोंको अलग अलग पहचानना कठिन था। इन सब बातोंसे यही परिणाम निकाला गया कि जैनमत बौद्धधर्मका एक सम्प्रदाय है जो बौद्धधर्मसे प्राचीन कालमें ही जुदा हो गया। क्योंकि जैन-

सिद्धान्तोंके विषयमें जो कुछ मालूम हुआ उससे असली बौद्धो और जैनोंके मतोमे बौद्धोके अत्यन्त दूर दूरके सम्प्रदायोसे भी अधिक मौलिक भिन्नता मालूम हुई। इस ऊपरी सिद्धान्तके आधार पर अन्य विद्वानोने नवीन सिद्धान्त बना लिये, जिनकी धृष्टता उतनी ही अधिक है जितनी जैनमतसम्बन्धी असली सामग्री कम है और इसी कमीको इस धृष्टताका कारण आसानीसे कहा जा सकता है। परन्तु गत शताब्दिके ६० वे और ८० वे वर्षके मध्यवर्ती कालमे कुछ परिवर्तन किया गया। उस समय डाक्टर बुहलरको जो गुजरातमे शिक्षा-विभागके निरीक्षक थे-जैनोके हस्तलिखित ग्रन्थोंके संग्रह करनेमें सफलता प्राप्त हुई। ये ग्रन्थ दक्खिन कालिजके पुस्तकालय और इंगलिस्तान, और शेष यूरुपके कुछ पुस्तकालयोंके अधिकारमें चले गये। मैं भी अपने मित्र डाक्टर बुहलरकी सहायतासे मुख्य अंगों और उपांगोंकी हस्तलिखित प्रतियॉ प्राप्त कर सका। इसी समय बौद्ध धर्मग्रन्थोंका अन्वेपण भी बड़े जोशसे हो रहा था और इस काममे बहुत उन्नति हो चुकी थी। इसी समय मुझे जैनधर्मका अध्ययन आरम्भ करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ; इस अध्ययनसे मैंने शीघ्र ही पुरानी कल्पनाको अस्वीकार किया और मुझे विश्वास होगया कि जैनमत बौद्धमतसे सर्वथा स्वतन्त्र है।

अन्तरस्थ साक्षी।

मुझे जैन धर्मग्रन्थोसे बुद्धदेवके समसामयिकों, मगधके राजाओं, और उस समयके कुछ धार्मिक नेताओंके नाम जैनोंके चौवीसवे तीर्थकर श्रीमहावीरके समकालीन मालूम हुए और बौद्धोंके धर्मग्रन्थोंमें महावीरका उल्लेख 'निगंथनातसुत' के नामसे मिला। 'नातसुत' श्रीमहावीरका नाम है, क्यों कि वे क्षत्रियोंकी 'नात' जातिके थे

और ' निगथ ' जैनोंका एक प्राचीन नाम है जिसका प्रयोग उनके धार्मिक ग्रन्थोंमें किया गया है। अतएव इसमें कुछ सन्देह न रहा कि महावीर बुद्धके समकालीन थे; इसके अतिरिक्त बौद्धोंने उस स्थानका नाम भी लिखा है जहाँ श्रीमहावीरको निर्वाण प्राप्त हुआ है। बौद्धधर्मसे जैनधर्मकी स्वतन्त्रता इस प्रकार सिद्ध करके हम एक कदम और आगे बढ सके। बौद्धोंने निगथो अथवा जैनोंको बहुधा अपना प्रतिद्वन्दी (मुकाबलेका) सम्प्रदाय लिखा है; परन्तु उन्होंने इस बातका सकेत भी नहीं किया कि जैन-सम्प्रदाय एक नवीन—स्थापित सम्प्रदाय था। किन्तु जिस रीतिसे वे जैन—सम्प्रदायका उल्लेख करते हैं उससे यह मालूम होता है कि निगंथोंका यह सम्प्रदाय बुद्धदेवके समयमें चिरकालिक स्थिति प्राप्त कर चुका था अर्थात् दूसरे शब्दोंमें बहुतकरके यह मालूम होता है कि जैनधर्म बौद्धधर्मसे बहुत प्राचीन है। आगे चलकर हमको इस मतको पुष्ट करनेके सुबूत मिलेंगे।

बौद्ध—दर्शनके सिद्धान्त।

जब हम एक ओर तो बौद्धदर्शनके और दूसरी ओर जैनदर्शनके सिद्धान्तोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते है, तो दोनोंमें इतनी अधिक भिन्नता मालूम होती है कि दोनोंका एकही निकास होनेका खयाल सर्वथा जाता रहता है। बुद्धदेवने चीजोंकी नित्यताको अस्वीकार किया, उन्होंने सॅलग्न उत्पत्ति मानी। सब नाशवान् है, कुछ भी नित्य नहीं, ये उनके अन्तिम वाक्य कहे जाते हैं। प्रत्येक मौजूद चीज़के नाशवान् होनेके विचारसे सब पदार्थोंके क्षणभगुर होनेका बौद्ध सिद्धान्त बादमें निकल पडा। इस सिद्धान्तने भारतीय दर्शनमें घोर परिवर्तन कर दिया। इस सिद्धान्तका यह आशय है:—प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व केवल एक क्षण रहता है और दूसरे क्षणमें उसके स्थानमें

ठीक वैसा ही पदार्थ आ जाता है। जैसे कि हम बाईसकोपमें चीजोंको घूमते हुए देखते हैं। हम जिसे किसी वस्तुका अस्तित्व या विस्तार कहते है वह केवल श्रेणीबद्ध क्षणिक अस्तित्वोंका क्रम है। अब मैं इस आश्चर्यजनक सिद्धान्तको बिना ब्योरेवार कहे हुए ज़ियादा समझानेका प्रयत्न करूंगा।

जीव और पुद्गल।

यह तो स्पष्ट है कि बौद्धोंको हर चीजकी नित्यता अस्वीकार करनी पडी और वे इस मुख्य विचारको इसके न्याय-सिद्ध परिणामों तक लेजानेमें असावधान न रहे। अतः उन्होंने जीव और पुद्गलका भी नित्य अस्तित्व अस्वीकार किया। वे जीवकी नित्यता पर विश्वास लाना बौद्धमतके सिद्धान्तके अत्यंत विरुद्ध समझते हैं। परन्तु इन सब बातोंमें जैनोंका ज्ञान ठीक विरुद्ध है। उनके अनुसार जीव और पुद्गल दोनों नित्य हैं और स्थायी अस्तित्व रखते हैं। यह मत उनकी दर्शन-पद्धतिका आधार है और जैनपद्धतिके मौलिक सिद्धान्तोंका ख्याल दिलानेके लिए मैं अब इसे अधिक ब्योरेवार बयान करूंगा। जैनोंके अनुसार मौजूद चीज़ोंके समूह दो वर्गोंमें विभक्त हैं; जीव और पुद्गल। इनके अतिरिक्त तीन चीजें और हैं, आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। परन्तु इन पर हम समय व्यय नहीं करेंगे, क्योंकि ये हमारी इस बातसे संबंध नहीं रखते। जीवोंकी संख्या अनंत है। जब तक उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता तब तक वे शरीर-धारण करते रहते हैं। और पुद्गल द्रव्य परमाणुओंसे बना है जो नित्य हैं। परन्तु उनकी पर्याय नित्य नहीं। पुद्गलकी पर्याय स्थितियोंके अनुसार बदलती रहती है। पुद्गल एक ऐसी वस्तु कही जा सकती है जो चाहे जो कुछ हो सकती है।

जो कुछ हमें दिखता है वह वादर अवस्थाका पुद्गल है, परन्तु पुद्गल सूक्ष्म अवस्थामें भी बदल सकता है और उस समय हमको दृष्टिगोचर नहीं होता। अब वह बात जो जैनदर्शन सिद्ध करता है वस्तुओंकी स्थितिका–जैसी कि वे हमको जीव और पुद्गलका एक दूसरे पर असर पडनेसे माळूम होती है–कारण समझाना है और जैन-दर्शनने यह बात अत्यत अनुकूलता और सम्पूर्णतापूर्वक कर दिखाई है। अब मैं कुछ और व्योरेवार कहता हूँ। जैसा कि मैंने पहले कहा था जीव जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करते, शरीर धारण करते रहते हैं। अतएव हमको मोक्ष गये हुए जीव जो ससारी जीवनसे निश्चय-रूपसे मुक्त हो गये हैं, और ससारी जीवोंमें, जो अभी बन्धनमे है, भेद दिखलाना है। ससारी जीव पवित्र नहीं होते किन्तु वे न्यूनाधिक अपावित्र होते है। जीव अपने कर्मोंसे अपवित्र हो जाता है।

कर्म।

सर्व भारतीय दार्शनिक इस बात पर सहमत हैं कि हरएक काम जो हम करते है हमारे जीवों पर असर डालता है, उन पर कुछ चित्र बना देता है और यह चित्र उस समय तक रहता है जब तक वह बे-असर नहीं हो जाता। यह चित्र कर्म कहलाता है और यह उस व्यक्तिके जो अपने कर्मके कारण जीवनकी भिन्न भिन्न स्थितियोंको ग्रहण करता है, सुख या दुःख भोगनेसे बेअसर हो जाता है। अब जैनदर्शनमें केवल जीव और पुद्गल ही माने गये हैं, अत. यह अनु-मान होता है कि कर्म अवश्य पौद्गलिक है, वास्तवमें जैन इस बातको ठीक ऐसा ही मानते हैं। कर्म पुद्गलकाय है। कर्मके विषयमें उनके विचार ये हैं·–किसी व्यक्तिके कर्मसे उसके जीवमें पुद्गलके अणु सूक्ष्मरूपमें जाने लगते हैं; सूक्ष्म पुद्गलोंका जीवमे आस्रव होने लगता

है और हम कह सकते हैं कि जीव कर्मपुद्गलोसे वैसे ही भर जाता है जैसे रेतसे थैला। इस प्रकार कर्मके पुद्गल जीवके प्रदेशोसे मिल जाते है और (कषायके कारण, जो बंधनका काम करती है) जीवसे ऐसे मिल जाते हैं जैसे दूध पानीमें; और इस प्रकार जीव अपवित्र हो जाता है। कर्म जीवात्माके स्वाभाविक गुणोंका आवरण कर लेते है; ये गुण सम्पूर्ण ज्ञान और सुख हैं। कर्म इन गुणोंके प्रगट होनेमें बाधा डालते हैं। भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म भिन्न भिन्न गुणोंके प्रकट होनेमें बाधक हैं। क्योंकि कर्म एक प्रकारके नहीं वरन् आठ तरहके होते हैं। जब कार्मिक पुद्गलोका जीवमें आस्रव होता है तब वे आठ प्रकारके कर्मों अर्थात् कर्मकी आठ प्रकृतियोमें परिणत हो जाते हैं, जिस तरहसे हमारा खाया हुआ भोजन शरीरमे जाकर भिन्न भिन्न प्रकारके रसोंमें परिवर्तित हो जाता है। एक प्रकारका कर्म जीवकी ज्ञानकी स्वाभाविक शक्तिका आवरण करता है, दूसरे प्रकारका कर्म अंतरायका कारण होता है। एक गोत्रका बंधन करनेवाला होता है और दूसरा किसी भवकी आयुको स्थिर करता है और इसी तरहसे दूसरे कर्मोंको भी समझना चाहिए। हर प्रकारका कर्म कुछ काल तक अप्रकट रह सकता है; परन्तु अंतमें उसका असर अवश्य होता है और वह जीवकी स्थितिको अपने स्वभावके अनुसार कर देता है और असर पैदा करनेके बाद कर्मकी जीवसे निर्जरा हो जाती है।

निर्जरा।

निर्जरासे जीव सब कर्मोंसे रहित होकर अपनी स्वाभाविक मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर सकता है; यदि नवीन कर्मोका निरंतर आस्रव

न हो। क्योंकि इससे संसारी जीवनमे आत्माका वन्धन रहा आता है। अतएव मोक्ष पानेके लिए कर्मोंके आस्रवका बंद होना भी आवश्यकीय है। इसको सवर अर्थात् जीवमें कर्मोके आनेके द्वारका बंद होना कहते हैं, अतएव संवर और निर्जरा अर्थात् नवीन कर्मोका रुकना और एकत्रित कर्मोंका झड जाना धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। सदाचार तपस्या और ध्यान इन बातोंकी प्राप्तिके लिए मुख्य कारण हैं। तपस्या, मुख्य करके उपवास, कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले समझे जाते हैं। यदि उनकी निर्जरा न हो तो वे उस व्यक्ति पर अपना बुरा परिणाम प्रकट करेंगे। जब अंतमें आत्मा सब कर्मोंसे रहित होकर पवित्र स्वरूप धारण कर लेता है तब वह अपने कर्मोंके बोझसे इस ससारमें दवा नहीं रहता, किन्तु वह पुद्गलसे-जो कि अपने दबावसे आत्माको नीचे ही रखता है,—रहित हो कर लोकके ऊपर चला जाता है जहाँ वह सदैव मुक्त अवस्थामें रहता है; न तो उस पर ससारी पदार्थ कुछ असर डाल सकते हैं और न वह उन पर कुछ असर डालता है न उनकी पर्वा करता है। ये मुक्त आत्मा अर्थात् सिद्ध हैं और उन्हींमें गत तीर्थंकरोंके आत्मा हैं। तीर्थंकरों-को जैनी परमात्मा मानते है। क्योंकि वे मुक्त आत्मायें हैं जिनका धार्मिक संसारी जीवन पुण्यात्माओंके लिए आदर्श होना चाहिए। परन्तु जैन इस बातको स्पष्ट रूपसे अस्वीकार करते हैं कि वे परमात्मा ससारी कामो पर कोई सीधा असर रखते है। वे ईश्वरको संसारका कर्ताधर्ता माननेके सर्वथा विरुद्ध हैं।

मैंने कर्मसिद्धांतका (दिग्दर्शन मात्र) वर्णन किया है। क्योंकि यह जैनोकी दार्शनिक और धार्मिक पद्धतिका मुख्य आधार है। इस सिद्धान्त पर दृष्टिपात करनेसे उनके चारित्रके बहुतसे नियमोको समझना सुगम होगा।

जैनोंका चारित्रशास्त्र।

मुख्य मुख्य चारित्रक नियमोको प्राचीन कालमें ही सब हिन्दुओंने मान लिया था। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन प्रथम चार व्रतो पर सहमत है; ये व्रत अहिंसा, अचौर्य, सत्य और ब्रह्मचर्य हैं। ऊपरके तीनों संप्रदायोमें एक-पाँचवाँ व्रत है, परन्तु वह भिन्न भिन्न मतोमें भिन्न है। वे प्रथम चार व्रतोंके विषयमें ही नहीं, किन्तु अहिंसाको प्रथम स्थान देनेमें भी सहमत हैं। किसीको इसमें सन्देह नही है कि किसी मनुष्यका घात करना, उसके माल छीन लेने अथवा उसको झूठ बोलकर धोखा देनेकी अपेक्षा कहीं बड़ा पाप है। परन्तु 'अहिंसा' की सीमा केवल मनुष्यजाति तक ही नहीं थी; इसका विस्तार जीवमात्र पर था। बौद्ध और जैन दोनों ही किसी जीवको मारना पाप समझते हैं, परन्तु केवल जैन ही 'अहिंसा' को उसके विस्तृत अर्थमे 'परमो धर्मः' मानते है, और इसके परिणामोंको अंत तक ले गये है। और चूँकि वे वनस्पतिको भी जीवसहित मानते है, अतएव साधारण जीवन व्यतीत करनेवाले किसी पुरुषके अहिंसाका पूर्णतया पालना असंभव ही है; परन्तु साधुओं पर इस व्रतका पूर्ण बन्धन है और चारित्रके नियमोमे से अधिकांश नियम अहिंसासे संबन्ध रखते है। गृहस्थ कमसे कम त्रस कायके जीवोंकी हिंसासे बचते है अतएव वे पक्के शाकाहारी, होते हैं, यह तो तुम जानते ही हो। अहिंसा जैनोका परम कर्तव्य है; उनके चारित्रका मूलाधार है।

जैनोंका श्रद्धान।

मै कह चुका हूँ कि जैन वनस्पतिको भी जीवसहित, जीवोंके रहनेका स्थान अथवा पिंड समझते है। इस बातमें वे अन्य हिन्दू दार्शनिकोंसे सहमत हैं। परन्तु वे जीव-संसारका विस्तार त्रस और

वनस्पति कायके जीवोंसे भी आगे बढा देते है। इस बातमे उनके विचार बड़े अनोखे है और कमसे कम भारतवर्षके कोई दार्शनिक उनसे सहमत नहीं। जैन पृथ्वी, अप्, वायु और तेज कायको जीव-सहित अथवा जीवोंके पिंड समझते हैं, जिनको प्रथम 'काय' और जीव कह सकते है। जब इन प्रथम काय, पृथ्वीकाय अप्-काय इत्यादिमेंसे जीव निकल जाते है, केवल उसी समय वे जीवर-हित पुद्गल होते हैं। तदनुसार शीत जलमें जीव समझे जाते हैं अतः उसे साधु काममें नही लाते। इस प्रकार जैनोकी दृष्टिसे हमको जीव-रहित पुद्गल सीमाबद्ध समझने चाहिए। क्योंकि अधिकाश पदार्थ कमसे कम कुछ समयके लिए जीवसहित गिने जा सकते हैं। परतु यहीं पर अत नहीं है। अभी एक प्रकारके जीव और हैं जो सबसे नीची श्रेणीके हैं और हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं। ये जीव निगोद कहलाते हैं। इस शब्दका अर्थ समझानेके लिए मै बतलाता हूँ कि जैनोंके अनुसार वनस्पतिकाय दृष्टिगोचर और अदृष्टिगोचर दो प्रकारका होता है, निगोद दूसरी प्रकारका है। कुछ वनस्पतियोंमे तो एक ही जीव होता हैं और कुछमे, जिनकी सख्या अधिक है, बहुतसे जीव होते है जो मिलकर एक बस्ती या भंडार होते हैं। निगोद ऐसी ही वनस्पति है। निगोदमे छोटेसे छोटे गोले होते हैं जिनमें असख्य कोठरियाँ होती हैं और प्रत्येक कोठरीमें अनत जीव होते है जिनके जीवनके सब काम एक साथ होते है। इन गोलोंसे सब आकाश अक्षर प्रति अक्षर ठसाठस भरा है। निगोदमेंसे कुछ जीव कभी कभी निकल जाते है और मोक्ष गये हुए आत्माओंके मुक्त होनेसे जो स्थान खाली हो जाते है उनके भरनेके लिए आत्माओंकी श्रेणीमें चढ़ जाते हैं। क्योंकि जीवोंकी एक श्रेणी नीचेसे लेकर त्रस

मनुष्य और देवो तक है; अपने पापपुण्यके अनुसार भिन्न भिन्न जन्मोंमें जीव इस श्रेणी पर उतरा और चढ़ा करते है। परन्तु केवल मनुष्यशरीरसे ही मुक्ति हो सकती है। मैंने जैनोंके जीवसबंधी सिद्धान्तका केवल दिग्दर्शन कराया है, जो एक अत्यन्त आवश्यकीय भाग है।

जैनसाहित्य।

मै अधिक विस्तारके साथ न कहूँगा। अपने व्याख्यानके पहले भागमें जैनमतके अत्यन्त आवश्यकीय सिद्धान्तोको ही मैंने वर्णन करनेका प्रयत्न किया है। इन सिद्धान्तोंका विस्तारपूर्वक वर्णन मौजूद है और उनकी व्याख्या अत्यन्त विस्तृत जैनसाहित्यके ग्रन्थो और टीकाओंमें की गई है। जैन साहित्यका नाम लेकर मै इसे अपने व्याख्यानका अन्तिम विषय बनाता हूं। मै जैनियोंके पवित्र साहित्य अर्थात् श्वेताम्बरियोंके सिद्धान्तों या सूत्रग्रन्थोंके विषयमें कुछ न कहूँगा। मै केवल उन पुस्तकोंके विषयमें कहूँगा जो बादके लेखकोने रची हैं। प्राकृत और संस्कृतके पवित्र ग्रथोंकी केवल टीकाओंसे बना हुआ साहित्य पवित्र ग्रंथोंसे भी–जिनकी संख्या पाँच लाख कही जाती है–बड़ा है। जैनमतके सिद्धान्तोको बतलानेवाले ग्रन्थोके अतिरिक्त बहुतसे प्राकृत और संस्कृत दोनोंके काव्य मौजूद हैं, जिनमें मुनियो, मुख्य करके तीर्थंकरोकी जीवनियाँ लिखी गई है। इन 'चरित्रों'का कुछ अंश ही प्रकाशित हुआ है और अधिकांश केवल हस्तलिखित ही मिलता है। इसमेंसे कुछ काव्यके असली ढंग पर लिखे हैं। इनमें केवल वे ही अलंकार हैं जो असली संस्कृतमें मिलते हैं। अन्य चरित्र कथाके अधिक सरल ढंग पर लिखे है; उनमें प्रायः कहानियॉ और अन्य कथायें–जिनको जैन भलेप्रकार कहना जानते थे–लिखी है। क्योंकि

कदाचित् प्राचीन बौद्धोंके अतिरिक्त भारतीय लेखकोंकी ऐसी कोई भी श्रेणी (समूह) नहीं है जो जैनोंके समान कहानियाँ कहनेके और मुख्यकर ऐसी कहानियाँ-जिनसे धार्मिक शिक्षा निकलती हो-कहनेके शौकीन हों। पचतत्रके लघुरूपोंके लिए जो सबसे अधिक फैले है, हम जैनोंके ही ऋणी हैं। परन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यके लिए एक दूसरी बातमें भी जैनसाहित्य बडे कामका है। प्राचीन पुस्तकोंके लेखोंसे हमको मालूम होता है कि ईसाकी प्रारभिक शताब्दियोंसे दसवीं शताब्दि तक और उसके वाद तक शिक्षित लोगोंके लिए, जो उत्तम सस्कृतके ग्रन्थोंको नहीं पढ सकते थे, एक बडा प्राकृत साहित्य मौजूद था। परन्तु इस बड़े साहित्यमेंसे उत्तम सस्कृत साहित्यके महाकाव्योंके समान अति उत्तम ढग पर लिखे हुए थोडे ही ग्रथ बचे है; शेष सव विस्मरणमें पड गये और सदैवके लिए लुप्त हो गये। हमको यह भी न मालूम होता कि ये किस तरहके ग्रन्थ थे, यदि जैनोंने अपने कुछ प्राकृत ग्रन्थ, कवितायें और कथायें न बचा ली होतीं। मै पहले 'पउमचरियं' (पद्मचरित) का वर्णन करता हूँ जो हमारे अधिकारमें सबसे प्राचीन प्राकृत काव्य है, क्योंकि यह ईस्वी सन्के आदिमें ही रचा हुआ कहा जाता है। यह अवच्छिन्न वीररसमयी शैलीमें लिखा है और प्राकृतके वडे वीररसमय साहित्यका—जो अब सर्वथा लुप्त हो गया है,—शेषाश समझा जा सकता है। लेखकने स्पष्ट रूपसे उस समयके मौजूद आदर्श ग्रथोंका अनुकरण किया है; वह वीररसमय प्रथम ग्रथ लिखनेवाला कदापि नहीं है। वीररसमय साहित्यके अतिरिक्त और कदाचित् उसके कुछ काल पश्चात् गद्य और पद्य दोनोंमें कथाके ग्रथोंका बड़ा साहित्य बन गया। यह हमको अलंकारके लेखकोंके फुटकर उल्लेखोंसे मालूम

हुआ है। परन्तु वे ग्रंथ–जिनका ध्यान उनको उल्लेख करनेके समय था–बहुत कालसे खो गये है और हमको यह भी न माळूम होता कि वे कैसे थे, यदि जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए वैसे ही कुछ प्राकृत ग्रंथ इस समय मौजूद न होते। इन ग्रन्थोमेंसे सबसे प्राचीन और महत्त्व-पूर्ण हरिभद्रकृत समरादित्यकथा है, जिसको हेमचंद्रने सकल कथाका आदर्श लिखा है। यह ग्रन्थ नवीं शताब्दिमें, एक हजारसे भी अधिक वर्ष हुए, लिखा गया था। इसमे प्रेम–कथाये, स्थल और जल पर साहसके कृत्य, दरबारोंके झगडे, लड़ाइयॉ इत्यादि भारतीय जीवनके मध्यकालके नाना प्राकरके दृश्य दिये है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इन्हीं विषयोंकी सामग्रीसे प्राकृतकी आख्यायि-कायें,–जो एक समय शिक्षित समाजको आनंददायक थीं–लिखी गई थीं। इसका क्या कारण है कि प्राकृतमें लिखे हुए कथाओंके ग्रन्थ–जो एक समय बहुलतासे थे–लुप्त हो गये है ? यह स्पष्ट है कि प्राकृतसाहित्यका ज्ञान–जो किसी समय लोगोंकी भाषाका सुशील रूप था और इस लिए सुगमतासे उनकी समझमें आजाता था–समयके व्यतीत होनेसे और सर्वप्रिय भाषाके बदलनेसे, सर्वप्रिय भाषासे ऐसा भिन्न हो गया कि प्राचीन भाषामे लिखे हुए ग्रन्थोंके समझनेके लिए विधिपूर्वक अध्ययनकी जरूरत हो गई। इस प्रकार सर्वसाधारणकी दृष्टिमें जो विद्वत्ताकी भाषा पर प्राचीन भाषाकी उत्त-मता थी वह जाती रही और प्राकृत ग्रंथोंके पढ़नेवाले सिवाय जैन विद्वानोके, जो प्राकृतका आदर संस्कृतके बराबर करते थे, कहीं न मिले। और इस तरह यह हुआ कि अधिक सर्वप्रिय प्राकृत भाषाकी झलकोंके लिए हम जैनोंके ऋणी है।

परन्तु यदि मैं इस विषयको अधिक ब्योरेवार कहूँ तो मेरे श्रोता-ओंके धैर्य पर अधिक भार पड़ेगा। मै ख़याल करता हूँ कि मै यह

दिखानेके लिए काफी कह चुका हूँ कि जैनमतमें ज्ञानका वडा भडार है और यह उनके अन्वेपणके योग्य है जो प्राचीन भारतकी दार्शनिक तथा धार्मिक उन्नति और इतिहासके प्रेमी है।

अनुवादक—
'संशोधक'

सांख्यदर्शन।

(गताङ्ककी पूर्ति)

वेद।

यह वात पहले ही कही जा चुकी है कि साख्यप्रवचनके कर्त्ता ईश्वरको नहीं मानने है, परन्तु वेदको मानते हैं। माळूम होता है कि पृथिवीमें शायद ही कोई दर्शन या शास्त्र होगा जो धर्मपुस्तकका तो प्रामाण्य स्वीकार करता हो;परन्तु धर्मपुस्तकके विषयीभूत और प्रणेता जगदीश्वरके अस्तित्वको स्वीकार न करता हो। यह 'वेदभक्ति' भार-तवर्षकी वड़ी ही विस्मयकारिणी चीज़ है। इस विषयको हम कुछ विस्तारके साथ लिखना चाहते है।

मनुजी कहते हैं—"वेदको छोडकर और सव ग्रन्थ मिथ्या है। भूत भविष्यत् वर्तमान, शव्द स्पर्श रूप गन्ध, चतुर्वर्ण, तीन लोक, चतुराश्रम आदि सव ही वेदसे प्रकाश हुए हैं। वेद मनुष्योंका परम साधन है। जो वेदज्ञ हैं, वही सेनापतित्व, राज्यशासकत्व और सर्व-लोकाधिपत्यके योग्य है। जो वेदज्ञ है वह चाहे जिस आश्रममें रहे सदा ब्रह्ममें लीन होने योग्य है। धर्मजिज्ञासुओंके लिए वेद ही परम-प्रमाण है। जो ब्राह्मण तीन लोककी हत्या करनेवाला और जहाँ तहाँ

खानेवाला है, यदि ऋग्वेद याद हो, तो उसे कोई पाप नहीं लग सकता।" महाभारतके शान्तिपर्वमें कहा है-"वेद शब्दसे सर्वभूतोंके रूप-नाम कर्मादिकी उत्पत्ति हुई है।" ऋक्संहिता और तैत्तिरीयसंहिताके मंगलाचरणमें सायनाचार्य और माधवाचार्यने लिखा है-"वेदसे अखिल जगत्का निर्माण हुआ है।"

इस तरह सर्वत्र ही वेदका माहात्म्य बतलाया है। किसी देशमे किसी भी धर्मग्रन्थकी ऐसी महिमा नहीं गाई गई।

अब प्रश्न यह है कि जो वेद इस तरह सबका पूर्वगामी और उत्पत्तिका मूल है, वह आया कहाँसे? इस विषयमें जुदा जुदा लोगोंके जुदा जुदा मत है। कोई कोई कहते हैं कि वेदका कर्त्ता कोई भी नहीं है—यह ग्रन्थ किसीका भी बनाया हुआ नहीं है; यह नित्य और अपौरुषेय है। दूसरे कहते है कि यह ईश्वरप्रणीत है, इस लिए सृष्ट और पौरुषेय है। हिन्दूशास्त्रोंकी यह कैसी आश्चर्यकारिणी विचित्रता है कि वेदोंको तो वे सब ही मानते है, परन्तु वेदोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे उनमेंसे किसी दो ग्रन्थोंकी भी एकता नहीं दिखलाई देती।

ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें लिखा है कि वेदपुरुष यज्ञसे उत्पन्न हुआ। अथर्ववेदमे एक जगह कहा है कि ऋक्—यजुः—साम स्तम्भसे उत्पन्न हुए है। दूसरी जगह कहा है कि वेदोंका जन्म इन्द्रसे हुआ है। तीसरी जगह कहा है कि ऋग्वेद कालसे उत्पन्न हुआ है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि अग्निसे ऋक्, वायुसे यजुष्, और सूर्यसे सामवेदकी उत्पत्ति हुई है। इसी ग्रन्थमें अन्यत्र लिखा है कि प्रजापतिने वेदसहित जलमे प्रवेश किया। जलसे अण्डा और अण्डेसे पहले तीन वेद उत्पन्न हुए। एक जगह और लिखा है कि वेद महाभूत (ब्रह्म) का निश्वास है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है कि वेद प्रजापतिके स्मश्रु है।

विष्णुपुराणमे कहा है कि वेद ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए। महाभारतके भीष्मपर्वमें है कि सरस्वती और वेद विष्णुने मनसे सृजन किये। इत्यादि।

देखा जाता है कि इन सब ग्रन्थोंमे वेदोंका सृष्टत्व और पौरुषेयत्व प्राय· सर्वत्र ही स्वीकृत हुआ है—अपौरुपेयत्व कदाचित् हीं कहीं बतलाया गया है। परन्तु पीछेके प्राय सब ही टीकाकार और दार्शनिक विद्वान् अपौरुपेयत्ववादी है। उन लोगोंके मत ये हैं:—

सायनाचार्यने ऋग्वेदकी टीकामें कहा है कि "वेद अपौरुषेय है। क्योंकि उसे किसी मनुष्यने नहीं बनाया।" माधवाचार्य तैत्तिरीय यजुर्वेदकी टीकामें कहते है कि "जिस तरह काल आकाशादि नित्य है उसी तरह वेद भी नित्य है।" ब्रह्माको उन्होंने वेदवक्ता स्वीकार किया है। मीमासक कहते हैं कि "वेद नित्य ओर अपौरुषेय है। शब्द नित्य है इस लिए वेद भी नित्य है।" शकराचार्य भी इसी मतको मानते है। नैयायिक इसका प्रतिवाद करते है और कहते हैं— "मन्त्र और आयुर्वेदके समान, ज्ञानी व्यक्तिके वचन प्रामाण्य होते है, इसी लिए वेदोकी भी प्रमाणता माननी चाहिए।" वैशेपिकोंका मत है कि वेद ईश्वरप्रणीत है। कुसुमाजलि-कर्त्ता उदयनाचार्यका भी यही मत है।

इन सब शास्त्रोंकी आलोचना करनेसे जान पडता है कि कोई वेदको नित्य और अपौरुपेय कहते है और कोई सृष्ट तथा ईश्वरप्रणीत बतलाते है। इन दोको छोडकर और तीसरा सिद्धान्त नहीं हो सकता। परन्तु साख्यप्रवचनकारका मत सबसे निराला है। मुरारेस्तृतीयः पन्थः। वे पहले कहते हैं कि वेद कदापि नित्य नहीं हो सकता। स्वय वेदमें ही उसके कार्यत्वका प्रमाण मौजूद है।

यथा—"स तपोऽतप्यत तस्मात् तपस्तेपाना त्रयो वेदा अजायन्त।"
जब वेद ही कहता है कि इस तरह वेदका जन्म हुआ है, तब वेद
कदापि नित्य और अपौरुषेय नहीं हो सकता। और जो अपौरुषेय
नहीं है वह अवश्य ही पौरुषेय होगा। परन्तु सांख्यकारके मतसे वेद
न अपौरुषेय है और न पौरुषेय ही है! पुरुष अर्थात् ईश्वर नहीं है—
वह सिद्ध नहीं होता, इस लिए वह पौरुषेय नहीं है। सांख्यकार
और भी कहते हैं कि वेदके रचनेके योग्य जो पुरुष है वह मुक्त
नहीं हो सकता; बद्ध होगा। जो मुक्त है वह प्रवृत्तिके अभावमें वेद
सृजन नहीं कर सकता और जो बद्ध है वह सर्वज्ञ नहीं—असर्वज्ञ होगा।
इस लिए वेद बनानेमें समर्थ नहीं हो सकता।

तब, पौरुषेय भी नहीं है और अपौरुषेय भी नहीं है, भला यह
कहीं हो सकता है? सांख्यकार कहते हैं—हाँ, हो सकता है—यथा
अंकुरादिः (५,८४)। जो लोग हिन्दूदर्शनशास्त्रोंका नाम सुनते ही
विश्वास कर लेते हैं कि उनमें सर्वत्र ही आश्चर्यजनक बुद्धिका कौशल
है, उनके भ्रमनिवारणके लिए इस बातका विशेष उल्लेख किया गया।
सांख्यकारकी बुद्धिकी तीक्ष्णता भी विचित्र है और भ्रान्ति भी
विचित्र है। हमारा यह विश्वास नहीं है कि सांख्यकार इस रहस्यजनक
भ्रान्तिके गढ़ेमें असावधानीसे गिर पड़े हैं। हमारी समझमें सांख्यका-
रका हृदय वेदको नहीं मानता था, परन्तु उस समयके समाजमें
ब्राह्मण एवं दार्शनिक कोई भी साहस करके वेदकी अवज्ञा नहीं कर
सकता था। इस लिए उन्हें मौखिक वेदभक्ति प्रकाश करनी पड़ी है।
और वेदोंको मानना पड़ा है इस लिए, जहाँ जहाँ आवश्यकता हुई
है वहाँ वहाँ प्रतिवादियोंको निरस्त करनेके लिए उन्होंने वेदकी दुहाई
दी है। किन्तु यह निश्चित जान पड़ता है कि वे वेदोंको अन्तरंगसे

नहीं मानते थे। वेद पौरुपेय नहीं है और अपौरुषेय भी नहीं है, यह वचन केवल व्यंगमात्र है। इस वातके कहनेमें सूत्रकारका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि–"देखो, यदि तुम वेदको सर्वज्ञान-युक्त कहना चाहते हो, तो वेद या तो पौरुपेय होगा या अपौरुषेय। इनमेंसे इस वातका प्रमाण तो वेदमें ही मौजूद है कि वेद अपौरुषेय नहीं है। तव यदि यह पौरुषेय होगा, तो यह भी कहना होगा कि यह मनुष्यकृत है। क्योंकि यह वात सिद्ध की जा चुकी है कि सर्वज्ञपुरुष कोई नहीं है।"

जव वेद पौरुषेय नहीं है और अपौरुपेय भी नहीं है, तव वेद माननीय कैसे हो सकता है? साख्यकारने इस प्रश्नका उत्तर देना आवश्यक समझा था। यदि आजकलकी वात देखी जाय, तो भारत-वर्पमें इससे अधिक गुरुतर प्रश्न और कोई भी नहीं है। एक वार और भी यह प्रश्न उठा था। जिस समय धर्मशास्त्रोंके अत्याचारसे पीडित होकर भारतवर्प त्राहि त्राहि करके पुकार रहा था, तब शाक्यसिंह बुद्धदेवने कहा था–"तुम वेदको क्यो मानते हो? वेदको मत मानो।" यह सुनकर वेदवित् वेदभक्त दार्शनिक मण्डलीने इस प्रश्नका उत्तर दिया था। जैमिनि, वादरायण, गौतम, कणाद, कपिल, जिनकी जैसी धारणा थी उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया था। अतएव प्राचीन दर्शनशास्त्रोंमें उक्त प्रश्नका उत्तर रहनेसे दो वातें जानी जाती है। एक तो यह कि आजकलकी अँगरेजी शिक्षाके दोषसे ही लोग वेदोंकी अलङ्घनीयताके विषयमे सन्देह करने लगे हो, सो वात नहीं है। यह सन्देह वहुत पुराने समयसे चला आ रहा है। प्राचीन दर्शनिकोंके वाद शकराचार्य, माधवाचार्य, सायनाचार्य आदि नवीन दार्शनिक भी इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए चिन्तित हुए थे। दूसरी

यह कि इस प्रश्नको पहले पहल बौद्धोंने उठाया था और प्राचीन दार्शनिकोने पहलेपहल उसका उत्तर दिया था। अतएव बौद्ध धर्म और दर्शनशास्त्रोंकी उत्पत्ति समकालीन समझी जा सकती है।

"वेदको हम क्यो माने ?" इस प्रश्नकी विचारभूमिमे मीमासक जैमिनीको महारथी और नैयायिक गौतमको उसका प्रतिद्वन्द्वी समझना चाहिए। ऐसा नही है कि नैयायिकोंको वेद मान्य नहीं है। नहीं वे वेदको मानते है, परन्तु मीमासक जिन जिन कारणोंसे वेदको मानते है, नैयायिक उनको अग्राह्य करते है। मीमासक कहते हैं कि वेद नित्य और अपौरुषेय है। नैयायिक कहते है कि वेद आप्तवाक्य मात्र है। नैयायिकोंने जिन युक्तियोंसे मीमांसकमत खण्डन किया है उनका सार मर्म यह है:—

मीमासक कहते है कि सम्प्रदायाविच्छेदसे वेदकर्त्ता अस्मर्यमान है। सब बातें लोकपरम्परासे चली आ रही हैं, किन्तु यह किसीको भी स्मरण नहीं है कि वेदको किसने बनाया। इस पर नैयायिक कहते है कि प्रलय कालमें सम्प्रदायविच्छेद हो गया था। इस समय जो वेदका प्रणयन स्मरण नहीं है, सो इससे कुछ यह प्रमाणित नहीं होता है कि प्रलयके पहले वेद प्रणीत नहीं हुआ था। और यह भी तुम प्रमाण नहीं कर सकोगे कि वेदका कर्त्ता कभी किसीको स्मृत ही न था। वे और भी कहते है कि वेदवाक्य कालिदासादिके वाक्योंके समान ही वाक्य हैं। अतएव वेदवाक्य भी पौरुषेय वाक्य हैं। वाक्यत्व हेतुसे, मन्वादि वाक्योंके समान, वेदवाक्योंको भी पौरुषेय कहना होगा। मीमांसक कहते है कि जो वेदाध्ययन करता है उसके पहले उसके गुरुने अध्ययन किया था, उसके पहले उसके गुरुने, और उसके पहले उसके गुरुने; इस प्रकार जहाँ अनन्तपरम्परा है वहाँ वेद अनादि

है। नैयायिक कहते हैं कि महाभारतादिके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार गुरुपरम्परा बतलाई जा सकती है, और वे भी अनादि सिद्ध किये जा सकते है। यदि कहो कि महाभारतके कर्त्ता जो व्यास है वे स्मर्यमान हैं तो वेदके सम्बन्धमें, भी कहा जा सकता है कि—"ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दासि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।" इस तरह पुरुष-सूक्तमें वेदकर्त्ता भी निर्दिष्ट है। मीमासक कहते हैं कि शब्द नित्य है इस लिए वेद भी नित्य है, परतु शब्द नित्य नहीं है। क्योंकि शब्द सामान्यत्ववशतः घटवत् अस्मदादिके बाह्येन्द्रियग्राह्य है। मीमासक उत्तर देते है कि गकारादि शब्द सुनते ही हमको प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह गकार है, अतएव शब्द नित्य है। नैयायिक कहते हैं कि वह प्रत्यभिज्ञान सामान्य विपयत्ववशत· होता है, जिस तरह केश कटकर फिर उग आते हैं। मीमासक और भी कहा कहते हैं कि वेद अपौरुपेय है, इसका एक कारण यह है कि परमेश्वर अशरीरी है—उसके तालु आदि वर्णोच्चारण स्थान नहीं हैं। नैयायिक उत्तर देते है कि परमेश्वर स्वभावतः अशरीरी है, तो भी भक्तानुग्रहके अर्थ उसका शरीरग्रहण, असंभव नहीं है।

मीमासकोंने इन सब बातोका उत्तर दिया है, परन्तु विस्तारभयसे वह छोड़ दिया जाता है। गरज यह कि "वेदको हम क्यों मानें ?" इस तर्कके प्राचीन दर्शनशास्त्रोंसे केवल तीन उत्तर प्राप्त होते हैः—

१ वेद नित्य और अपौरुषेय है, इस लिए वह मान्य है। किन्तु यह बात वेद हीमें मौजूद हैं कि वह अपौरुषेय नहीं है। यथा—"ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि।

२. वेद ईश्वरप्रणीत है, इस लिए वह मान्य है। प्रतिवादी कहेंगे कि वेद ईश्वरप्रणीत है, इसका कोई विशिष्ट प्रमाण नहीं है। वेद-

मे लिखा है कि वेद ईश्वरसंभूत है। किन्तु जब वे वेदको मानते ही नहीं है तब उसकी बात क्यों मानने चले?' इस विषयको लेकर जो वादानुवाद हो सकता है, उसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं। उसको सविस्तर लिखनेकी आवश्यकता भी नहीं है। जो ईश्वरको हीं नहीं मानते, वे वेदको ईश्वरप्रणीत कहकर स्वीकार नहीं कर सकते।

३. वेदकी निज शक्तिकी अभिव्यक्तिके द्वारा ही वेदकी प्रमाणता सिद्ध होती है। सांख्यप्रवचनकारने यही उत्तर दिया है। इस सम्बन्धमें केवल इतना ही वक्तव्य है कि यदि वेदमें इस प्रकारकी शक्ति हो तो वेद अवश्य ही मान्य है। किन्तु वह शक्ति है या नहीं; यह एक स्वतंत्र विचार आवश्यक हो पड़ता है। अनेक लोग कहेगे कि हम वेदमें कोई ऐसी शक्ति नहीं देखते। वेदका अगौरव—अमानता हिन्दू शास्त्रोमें भी मौजूद है। मुण्डकोपनिषत्के आरंभमें 'अपरा' और 'परा' इस तरह दो विद्याये बतलाई गई है। इनमे वेदादिको अपरा और अक्षयप्राप्ति करानेवाली ब्रह्मविद्याको परा कहा है, अर्थात् वेदविद्यासे इस पराविद्याको श्रेष्ठतर बतलाया है। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४२—४४ में वेदपरायणोकी निन्दा की गई है। भागवतपुराण (४।२९,४२) मे नारद कहते है कि परमेश्वर जिस पर अनुग्रह करते है वह वेद त्याग कर देता है। कठोपनिषत्मे कहा है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना श्रुतेन।" अर्थात् वेदके द्वारा आत्मा लभ्य नहीं हो सकता।

शास्त्रानुसन्धान करनेसे इस प्रकारके और भी वचन मिल सकते है। पाठक देखेगे कि 'वेदको क्यों माने?' इस प्रश्नका हमने कोई उत्तर नहीं दिया। देनेकी हमारी इच्छा भी नही है। जो समर्थ है वे

इसकी मीमासा करेंगे। हमने पूर्वगामी पण्डितोंके प्रदर्शित किये हुए पथ पर परिभ्रमण करके जो देखा है, वही पाठकोंके सामने निवेदित कर दिया।

नोट—यह स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके बगला लेखका सारांश है—सब विचार उन्हींके हैं। जैनोंके लिए उपयोगी समझकर प्रकाशित किया जाता है।

विविध–प्रसंग।

१ संस्कृतभाषा कभी बोलचालकी भाषा थी या नहीं?

मराठीके सुप्रसिद्ध पत्र 'विविधज्ञानविस्तार' के अगस्तके अकमे एक महत्त्वका लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें इस विषय पर बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण चर्चा की गई है कि सस्कृत भाषा किसी समय बोलचालकी भाषा थी या नहीं। इस विषयमें एतद्देशीय और पाश्चात्य विद्वानोंमें परस्पर बहुत मतभेद है। एक पक्ष कहता है कि सस्कृत भाषा बोलचालकी भाषा कभी नहीं रहा। वह ब्राह्मण आदि विशिष्ट लोगोंकी-जो शिक्षित थे-उस समयकी प्रचलित भाषासे भिन्न भाषा थी। उनके सिवाय दूसरे लोग उसे नहीं जानते थे। वे स्वय भी उसे पढकर जानते थे। दूसरा पक्ष कहता है कि नहीं, संस्कृत एक समय जीवित भाषा थी। वह एक बडे भारी प्रदेशकी बोलचालकी भाषा रह चुकी है। पाणिनि आचार्यके समयमे वह बोली जाती थी। उस समय उसका नाम 'संस्कृत' नहीं था। पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें उसका सिर्फ़ 'भाषा' के नामसे उल्लेख किया है। 'भाषा' इस नामसे मालूम होता है कि वह सर्व साधारणकी बोलचालकी भाषा थी। लेखकने अपने इस पिछले मतकी पुष्टिमें बहुत ही सतोषयोग्य युक्तियाँ दी हैं और अपने विरुद्ध पक्षका बडी ही योग्यतासे

खण्डन किया है। लेखकका अनुमान है कि ईस्वीसन्‌के ५००-६०० वर्षपूर्वसे शुद्ध संस्कृत भाषाका ह्रास होना शुरू हुआ और होते होते ईस्वीसन्‌के प्रारभमें प्राकृत भाषाका उदय हुआ। इसके पहले संस्कृतका जोरोशोर था। पाणिनिका समय ईस्वी सन्‌से १०००-८०० वर्ष पहले माना जाना है। इत्यादि। यह लेख संस्कृतज्ञ विद्वानोके पढ़ने योग्य है।

आर्यसमाजकृत मेघजातिकी शुद्धि और जैनसमाज।

आर्यसमाजके सिद्धान्त चाहे जैसे हों और उसके सुधारके ढंग चाहे जैसे हों, परंतु इसमें सन्देह नहीं कि उसमें उद्योगी साहसी और कर्मवीर पुरुषोंकी संख्या अच्छी है। उसमें केवल वातोंनी जमाखर्च करनेवाले ही नहीं हैं- काम करनेवाले भी हैं। स्यालकोट, गुरुदासपुर, जम्बू और काश्मीरके कितने ही शहरोंमें मेघ नामकी एक जाति है। इसकी जनसंख्या गत मनुष्यगणनाके अनुसार लगभग १ लाख १५ हजार है। ये लोग साधारणतः गौर वर्णके हैं। उनके आचार-विचार रहन-सहनके भीतर श्रेष्ठ हिंदूपनके लक्षण मिलते हैं। किसी समय वे समाजके ऊँचे दर्जे पर प्रतिष्ठित रह चुके है। इस समय भी उनमें कोई गंदा धंधा करनेवाले नही हैं। वढई, दर्जी आदिके काम करके वे अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। कोई कोई लोग नौकरी भी करते हैं। इन लोगोंके प्रति हिन्दुओका व्यवहार वहुत ही वुरा है। ये लोग हिन्दुओंके ग्रामोंमे या मुहल्लोमें निवास नहीं कर सकते, कुएको स्पर्श नहीं कर सकते, पानी पीनेके लिए दूसरोंकी कृपाकी इन्हे सदा अपेक्षा रहती है। राजमार्गों परसे वे स्वाधीनतापूर्वक नहीं चल सकते। कोई 'पवित्र' हिन्दू उनके स्पर्शसे अपवित्र न हो जाय, इसकारण उन्हे पुकार कर सावधान करते हुए चलना पड़ता है। हिन्दुओंके देवता उन्हें अपने द्वारके पास तक भी

नहीं फटकने देते है। इस जतिकी दुर्दशा पर आर्यसमाजके नेताओंको दया आई है। उन्होंने हर प्रकारके सकट सहन करके इस जातिको ऊपर उठाकर मनुष्योचित स्थान पर वैठानेका उद्योग प्रारंभ कर दिया है। इस उद्योगमें उन्हें वडे व्रड़े विघ्नोंका सामना करना पडता है। एक हिन्दूने तो इस कामसे चिढकर एक समाजीको हथियारसे घायल तक कर डाला है। हमारी समझमें मनुष्य अपने चरित्रसे और व्यवहारसे ही शुद्ध हो सकता है, किसी प्रकारके दिखावटी अनुष्ठानसे नहीं। इसलिए हम समाजकी शुद्धि-प्रथाको अच्छा नहीं समझते है। परन्तु किसी-तरह हो समाजी भाइयोंने मेघोंको उन्नत करनेका मार्ग खोल दिया है। उस दिन उन्होंने २०० मेघोंको शुद्धिसस्कारके द्वारा शुद्ध कर डाला और उनके साथ वहुतसे उच्चकुलके समाजियोंने एक साथ भोजन किया। वे इतना ही करके चुप नहीं हो गये है। मेघोको शिक्षित वनानेके लिए उन्होंने जगह जगह पाठशालायें खोली हैं, और शिल्प शिक्षा देनेके लिए कई शिल्पशालायें स्थापित कर दी है। मेघोंके कई लड़के गुरुकुल व्रह्मचर्याश्रममें भरती हो गये है और उन्हें उच्चश्रेणीकी शिक्षा मिल रही है। इस नोटको लिखते समय हमें दक्षिणके सादुर लोगोंकी याद आगई, जिनके विपयमें हमने पिछले वर्षके तीसरे अकमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित करके जैनसमाजके नेताओंसे प्रार्थना की थी कि वे सादुर लोगोंके लिए धर्मका द्वार खोल दें। परन्तु उस ओर किसीका भी ध्यान न गया। २० हजार सादुर लोग जैनी वनने-के लिए तरस रहे हैं। वे उच्च कुलके हैं, उनके व्यापारादि कार्य उच्च कुलके योग्य है, दक्षिणके दूसरे जैनियोंमें विधवाविवाह जायज है; परन्तु उनमें यह भी नही होता है, और इस काममें कोई विघ्न डालनेवाला भी नही है। इतने पर भी जरा ज़रासी वातोंके लिए वडे

बड़े आन्दोलन करनेवाले जैनसमाजमें दो चार कर्मवीर भी ऐसे नहीं निकलते, जो इन २० हजार भाईयोंको जैनधर्मकी पवित्र छायाके नीचे लाकर खड़े कर देवें। आर्यसमाज और जैनसमाजकी वर्तमान अवस्थाका अन्तर इन्हीं दो उदाहरणोंसे मालूम किया जा सकता है।

'ग्रन्थपरीक्षा' के विषयमें कुछ निवेदन।

पिछले कई अंकोंसे बाबू जुगलकिशोरजीकी लिखी हुई 'ग्रन्थ-परीक्षा' नामक लेखमाला निकल रही है। अबतक इसमें कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, उमास्वामिश्रावकाचार और जिनसेनत्रिवर्णाचार नामक तीन ग्रन्थोंकी विस्तृत समालोचना हो चुकी है। हमको आशा है कि हमारे शिक्षित पाठकोंने इन लेखोंको ध्यान पूर्वक बाँचा होगा। जिन महाशयोंने किसी कारणसे न बाँच पाया हो, हम सिफारिश करते हैं कि वे थोड़ासा समय निकालकर इन्हें अवश्य बाँच डालें। जैन-साहित्यमें शायद यह लेखमाला सबसे पहली समझी जायगी जिसमें धर्मकी दुर्लंध्य मुद्रासे अङ्कित ग्रन्थोंकी इस तरह स्वाधीनतापूर्वक जाँच की गई हो। जिस समाजमें धर्मशास्त्र मात्रकी सीमाके बाहर एक शब्दका उच्चारण करना भी बड़ेसे बड़ा अपराध गिना जाता है, उस समाजके साहित्यमें इस प्रकारके लेखोंका प्रकट होना साधारण बात नहीं। यह लेखमाला उस समयकी और उस साहित्यकी पूर्व सूचनिका है, जिसमें नामीसे नामी ग्रन्थोंकी और नामीसे नामी विद्वानोंकी रचनाकी जाँच विवेक बुद्धिकी उस कठिन कसौटी परसे की जायगी, जो कसौटी सदासे यह दुहाई देती आई है कि—

"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषःकापिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥"

अर्थात् “ न मेरे हृदयमें महावीर भगवानके प्रति कुछ पक्षपात है और न कपिलादिके प्रति द्वेषभाव । मेरा तो यह खयाल है कि जिसका वचन युक्तियुक्त हो, उसीको मान लेना चाहिए । ” इस समय जैनसमाज इस कसौटीको खो बैठा है और इस कारण उसकी दृष्टिमें पीतल और सोना, सीप और चाँदी, काच और हीरा, सब एक ही श्रेणीकी चीजें हैं । बड़े बडे सिद्धान्तग्रन्थोंके आगे वह जितनी नम्रतासे मस्तक झुकाता है, उतनी ही नम्रतासे त्रिवर्णाचार जैसे जाली ग्रन्थोंके सामने झुकनेमें भी उसे कुछ सकोच नहीं होता। झूठी धर्मश्रद्धाके असह्य दबावने उसकी विवेकबुद्धिको इस तरह दबा दिया है कि उसके ‘आगे सब धान बाईस पसेरी’ हो गया है । उसमे इतनी भी शक्ति नहीं रही है कि एक ही विषयके किन्हीं दो ग्रन्थोंके बीच कितना तारतम्य है--कौन श्रेष्ठ है और कौन नहीं, इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कह सके । यही कारण है जो आज शील-कथा और पार्श्वपुराण, आराधनासार और पद्मपुराण, धर्मसंग्रह और रत्नकरण्ड, स्वतन्त्र ग्रन्थ और सग्रहीत या अनुवाद ग्रन्थ सब समान आदरके पात्र बन रहे हैं । इसीके फलसे आज भट्टारकोंका पिछला दुर्बल साहित्य प्राचीन पुष्ट साहित्यको न जाने कहाँ दबाकर साहित्य-सिंहासनको पुनीत कर रहा है । हमको विश्वास है कि यह लेख-माला जैनसमाजकी गई हुई परीक्षाप्रधानताको फिरसे प्रधानता दिलानेका सूत्रपात करेगी और शिक्षित समुद्रायमे प्रत्येक ग्रन्थको सावधानीसे पढ़नेके भाव उत्पन्न करेगी । बाबू जुगलकिशोरजीके लेख यह बतला रहे हैं कि वास्तविक स्वाध्याय किसको कहते हैं और यह कितने परिश्रमसे होता है । एक ग्रन्थकी जाँचके लिए दूसरे कितने ग्रन्थोंकी जाँच पड़ताल करनी होती है । अपने ग्रन्थोंको

समझनेके लिए केवल अपने ही घरको टटोलनेसे काम नहीं चल सकता–दूसरोके ग्रन्थ भी देखने पड़ते है। इन लेखोंने हमे यह भी शिक्षा दी है कि सावधान! किसी ग्रन्थ पर किसी ख्यातनामा आचार्यका नाम देखकर ही उसे आप्तवाक्य न समझ बैठना। कुछ महात्माओकी कृपासे धर्मकी हाटमे चॉदीके साथ साथ रांगेके भी सिक्के चल रहे हैं। ज़रूरत है कि ऐसे सिक्के खोज खोजकर जुदा कर दिये जावें और सर्वसाधारण जन सचेत कर दिये जावे। आशा है कि इस लेखको पढ़कर दूसरे विद्वान् जन भी ग्रन्थोंकी परीक्षा, आलोचना और समालोचनाकी ओर प्रवृत्त होगे और इस तरह जैनसाहित्यकी उन्नतिके एक मार्गको प्रशस्त बनानेके यशके भागी होंगे।

४ जैनगजट और महासभा।

जैनगजट (हिन्दी) के लेखोसे उद्विग्न और उत्तेजित होकर हमारे कई हितैषी मित्र और पाठक हमसे प्रश्न करते है कि "आपने इन दिनों मौन धारण क्यों कर रक्खा है? आप उसके आक्षेपोंका उत्तर क्यों नहीं देते है? उसके लेखोंसे बहुत हानि हो रही है।" ऐसे सज्जनोसे हमारा नम्र निवेदन यह है कि इस समय वह जिस ढंगके लेख लिख रहा है, जैसी सभ्यता, शालीनता और गंभीरता अपने प्रत्येक लेखमे प्रकट कर रहा है, उसकी आलोचना करना या उसके विषयमे तदनुरूप उत्तर देना हम अपनी शक्तिसे बाहर समझते है और शायद अच्छेसे अच्छे लेखकको भी उसकी बे-लगाम कलमके आगे हार माननी पड़ेगी। इसके लिए उसके 'धर्ममर्मज्ञ' 'अनुभवी' सम्पादको और लेखकों जैसी योग्यतावाले सज्जन ही समर्थ हो सकते है। दूसरे उसकी निरन्तरकी वाग्वाणवर्षाको सहन करते करते हमारी सहनशीलता इतनी बढ गई है कि अब हम उसकी

घृणितसे घृणित मर्मपीडक गालियोंसे भी व्यथित या विचालित नहीं होते है, अत उसका प्रतिवाद करनेकी आवश्यकता नहीं देखते। तीसरे हमारा यह भी विश्वास हो गया है कि उसके लेखोंका शिक्षित समुदाय पर कुछ भी असर नही पडता है। लोग अब इतने भोले और नासमझ नहीं रहे है जितना कि वह समझता है। इन सब कारणोंसे उसके विषयमें कुछ लिखनेकी प्रवृत्ति नहीं होती है। अवश्य ही इस बातका दुःख हमें बहुत होता है कि वह भारतवर्षीय जैन-महासभाका मुखपत्र है और महासभा सारे भारतके जैनियोंकी सयुक्त सभा समझी जाती है। जैनमहासभाके मुखपत्रको पढकर जैनेतर लोगोको जैनसमाजकी वर्तमान अवस्थाके विषयमें बहुत बड़ा भ्रम हो सकता है। यदि कोई सज्जन जैनसमाजकी हालत जाननेके लिए लगातार दो चार महीने जैनगजटका पाठ करें, तो उनके हृदयमें जैन-समाजका बहुत ही शोचनीय चित्र अकित हो जायगा। वे निश्चय कर लेंगे कि जैनसमाजमें यदि कुछ प्रगति हो रही है तो गालीगलोजकी, खण्डनमण्डनकी, बाधा और रुकावटोंकी, यदि कुछ काम हो रहा है तो छापेके निषेधका, ग्रन्थप्रचारके विरोधका, तेरह–बीसकी दबी हुई आग सुलगानेका, प्रत्येक समयोपयोगी सुधारोंमें दोप लगानेका, और पुरानी निर्जीव रूढियोंकी प्रशसाके गीत गानेका। वे समझेगे कि जैनसमाजके भाग्यकी बागडोर कुछ खुशामदपसन्द धनिकों और खुशामदखोर अर्द्धदग्ध पण्डित कहलानेवालोंके हाथ-में है। ये ही लोग इस समाजके लेखक, व्याख्याता, प्रचारक और 'सर्वे सर्वा' है। इस समाजमे सकीर्णता, धर्मान्धता और स्वार्थपरा-यणताका साम्राज्य है। इत्यादि इत्यादि। यदि दूसरे लोग इस प्रकारका अनुमान कर लें तो इसमें उनका कोई दोष भी नहीं। एक समाजकी

'रजिस्ट्रीशुदा' महासभाके मुखपत्रके लेखोंसे उस समाजकी अवस्थाका अनुमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। यह दोष उनका है जो दूसरोंको इस प्रकारके अनुमान करनेका मौका दे रहे हैं और हम तो कहेंगे कि जैनगजटके द्वारा हमारे समाजका जो रूप प्रगट हो रहा है, वह भले ही उसका वास्तविक रूप न हो-एक अंश विशेषका ही वह नमूना हो; परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि उस रूपके आगे उसका प्रतिपक्षी रूप (वह कितना ही अच्छा क्यों न हो) बहुत ही कमजोर है। अवश्य ही वह काम कर रहा है, पर उसमें इतना उत्साह, ऐक्यबल और अध्यवसाय नहीं है कि लोगोंको जैनसमाजके उस रूपकी कल्पना न होने दे जो जैनमहासभा और उसके मुखपत्रसे हो रही है। हम यह नहीं चाहते कि जैनगजटके वर्तमान लेखोंके समान लेख प्रकाशित ही न हों, अथवा जैनगजटका निकलना ही बन्द हो जाय, नहीं, हम अभी जैनसमाजमें ऐसे पत्रों और लेखोंकी एक अपेक्षासे बहुत आवश्यकता समझ रहे हैं; परन्तु महासभाके मुखपत्रमें इस प्रकारके लेखोंका प्रकाशित होना सारे जैनसमाजके लिए कलङ्ककी बात समझते है और इसी लिए हमें दुःख होता है। इस समय उसके लेख महासभाके उद्देश्योंसे बिलकुल विरुद्ध, एकपक्षीय और पारस्परिक द्वेषोकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम उनके विरुद्धमे लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं देखते है; परन्तु महासभाके मेम्बरोंका और दूसरे सज्जन हितैषियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किये बिना हमसे नहीं रहा जाता। क्या महासभाका और उसके दो चार कार्यकर्त्ताओंका यह 'एकहत्थी' 'एकपक्षीय' शासनका चाबुक समूचे जैन समाजकी पीठ पर निरन्तर ही पड़ता रहेगा? क्या इससे बचनेका कोई उपाय नहीं है?

५ महावीर भगवानका जीवनचरित और महावीर अंक।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका अवतक कोई ऐसा जीवन-चरित प्रकाशित नहीं हुआ है कि जिससे वर्तमानका शिक्षित समु-दाय इस वातकी कल्पना कर सके कि संसारके प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्म-प्रवर्तकोंमें उनका आसन कितना ऊँचा था, उनकी अखण्ड अव्यावाध और उदात्त फिलासोफी कितनी वहुमूल्य और विज्ञानसम्मत थी, उनका चरित्र कितना ऊँचा था, उनके उपदेशोंने अपने समयके जनसमाजपर क्या प्रभाव डाला था, उनके धर्मने देशको क्या लाभ पहुँचाया था और उनके शासनकी प्रगति तथा अवनति किन किन कारणोंसे हुई। महावीर भगवानके समकालीन बुद्धदेवके विपयमें इस समय संसारका शिक्षित समाज जितना अधिक ज्ञान रखता है उतना महावीर भगवानके विपयमें नहीं रखता। इसका कारण यह है कि ससारकी प्राय॰ प्रत्येक भापामें वुद्धदेवके सैकडों जीवनचरित मौजूद हैं; परन्तु भगवान् महावीरका और तो क्या जैनियोंके घरमें ही कोई ऐसा चरित नहीं है जो इस समयके लोगोंकी जिज्ञासाको पूर्ण कर सके। संसारके एक सर्वोच्च धर्मप्रवर्तक और फिलासफरके विपयमें लोगोंको अज्ञानी रखना हम लोगोंके लिए वड़ी लज्जाकी वात है। हर्षका विपय है कि अव इस ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है और 'जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस हेरल्ड' के सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई वी. ए. एलएल. वी.ने इस विषयमें एक वहुत ही प्रशसनीय उद्योग किया है उन्होंने उक्त पत्रका एक खास अंक प्रकाशित किया है और उसका नाम 'महावीर अक' रक्खा है। यह अंक रायल आठपेजी साइजके लगभग १०० पृष्ठोंका है। इसमें ९ लेख अँगरेज़ीके और शेष सव लेख

गुजराती भाषाके हैं। जितने लेख हैं वे सब ही महावीर भगवानके सम्बन्धमें हैं। दो तीन लेख बहुत ही महत्त्वके है। हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि सम्पादक महाशयको जैन समाजके लेखकोसे इस विषयमे बहुत ही कम सहायता मिली है—हम स्वयं भी अनवकाश-वश इस अंकके लिए कोई लेख नहीं लिख सके। परन्तु फिर भी उन्हें अपने इस पहले प्रयत्नमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। इस तरहके प्रयत्न और भी दो चार बार दो चार विद्वानों द्वारा किये जावेंगे, तो हमें आशा है कि थोड़े ही समयमें 'महावीरचरित' लिखनेके लिए यथेष्ट सामग्री एकट्ठी हो जायगी। हेरल्डके सम्पादक महोदय महावीर भगवानके विषयमें जिन जिन बातो पर लेख चाहते थे, उनकी उन्होंने एक सूची बनाकर लेखकोंके पास भेजी थी। सूची बहुत विचारसे लिखी गई है, इस लिए हम उसे यहाँ प्रकाशित कर देते है। दिगम्बर समाजके विद्वान् और लेखक भी इससे जान सकेंगे कि भगवानके जीवनचरितके लिए क्या क्या सामग्री चाहिए —

१ महावीर प्रभुका बाल्यकाल–विद्यार्थी अवस्था। २ गृहस्थाश्रम और त्याग। ३ अभ्यासी और कर्मवीर महावीर। ४ धर्मोपदेशक और धर्मोद्धारक महावीर। ५ भगवानके गणधर, शिष्य शिष्याये और श्रावक। ६ भगवानके समकालीन राजाओंका दिग्दर्शन। ७ भगवानके समयकी सघकी स्थिति और वस्ती। ८ साधुओंकी दशा। ९ महावीरचरितसे मिलनेवाली शिक्षाये। १० उनके समयके ३६३ पाखण्डियोका परिचय। ११ कालनिर्णय और उसकी कठिनाईयाँ। १२ महावीर और बुद्धदेव। १३ भगवद्भाषित सूत्र। १४ वीरचरितकी आश्चर्यजनक घटनाये और उनकी सायन्सकी

दृष्टिसे जॉच । १५ वीरप्रभुका विहार, विहारभूमियों और कल्याणक भूमियोंका वर्तमान स्थान कहॉ हैं । १६ वीर भगवानके समयकी समग्र भारतकी स्थिति । १७ उस समयके साधुओंका वर्तमान साधुओंसे मिलान । १८ वीरशासनकी पूर्वावस्था और वर्तमान अवस्थाका अन्तर, कैसे सुधारोंकी आवश्यकता है और वे अमलमें कैसे लाये जा सकते हैं ? १९ वीरशासनके गणगच्छों और सघोंका ऐतिहासिक परिचय । २० वीर प्रभुका निर्वाण । २१ वीरचरितके उपलब्ध साधन--पुस्तक, शिलालेख आदि । २२ वीरचरित किस उत्तम प्रणालीसे लिखा जाना चाहिए । २३ श्वेताम्बर और दिगम्बर दृष्टिसे वीरचरितमे क्या क्या फर्क पडेगा ? २४ वीर प्रभुके समयमें वर्णभेद जातिभेद था या नहीं ? २५ इस समय जैनधर्मके अनुयायी प्रधानतः वैश्य ही क्यों है ? २६ वीर प्रभुने पाँचवाँ ब्रह्मचर्यव्रत नया खडा किया, क्या यह सच है ? २७ वर्तमानमें जैनोंकी सख्या तेरह लाख क्यों रह गई ? २८ वीर प्रभुके २७ भवोंका उत्क्रान्तिवाद या विकासवाद । २९ वीर प्रभुकी जुदा जुदा अवस्थाये । ३० प्राचीन शिलालेख और उन परसे उनके जीवन पर क्या प्रकाश पडता है ? ३१ महावीर भगवानकी जन्मकुण्डलीके ग्रहोपरसे ज्योतिप शास्त्रानुसार उनके जन्मका निर्णय । ३२ जैनेतर पुरुपोंकी दृष्टिमें महावीर ।

६ जैनहितेच्छुका खास अंक और जैनसाहित्यका प्रचार ।

हितैपीके पाठकोंको 'जैनहितेच्छु'का परिचय कई बार कराया जा चुका है । इस मासिक पत्रको हम जैनसमाजका सर्वोत्कृष्ट पत्र समझते है । अबकी बार इसका पर्युषण पर्वके उपलक्षमें खास अक प्रकाशित किया गया है । इसका विशाल आकार, एकसे एक बढकर लेखोंका सग्रह, सम्पादनका महत्परिश्रम और इन सब बातोंकी जोडमें

अतिशय तुच्छ मूल्य देखकर हम दंग रह गये। इसमे रायल बारहपेजी साइजके ३०० पृष्ट है, मजबूत कागज है, छपाई अच्छी है, तिस पर भी मूल्य सिर्फ एक आना है ! 'हितेच्छु' के ग्राहक लगभग एक हज़ार हैं; परन्तु इस अंककी चार हज़ार प्रतियाँ छापी गई हैं। सम्पादक महाशयने इस कार्यमें अपनी गिरहके लगभग दो सौ रुपये लगा दिये हैं, अर्थात् इतना घाटा सहकर उन्होंने यह उच्चश्रेणीके साहित्यके प्रचारका कार्य किया है। लेखोंकी दृष्टिसे तो यह अंक बहुत ही महत्त्वका है। प्रत्येक लेख ऊँचे उदारताके गहरे विचारोंसे भरा हुआ है और लेखकोको अपने विचार प्रकट करनेके लिए पूरी पूरी स्वाधीनता दी गई है। सब मिलकर १८ लेख है जिनमेसे ३ अँगरेज़ीके है। जो भाई गुजराती समझ सकते है अथवा अँगरेजी जानते है उन्हे यह अंक अवश्य मँगा लेना चाहिए। हितैपीमे हम इस अंकके कई लेखोंका अनुवाद प्रकाशित करना चाहते है। 'आदर्श आर्या' और 'जीवनका विचित्र परिवर्तन' ये दो गल्पे हितेच्छुसे ही ली गई है। इस अकको देखकर—क्या कभी हमारे हिन्दीहितैपी भाईयोको भी इस प्रकारके सुलभ साहित्यके प्रचार करनेकी सुबुद्धि उत्पन्न होगी ?

८ सूर्यकिरणोंसे यक्ष्मारोगकी चिकित्सा।

फ्रान्सदेशमे सूर्य-किरणोकी सहायतासे राजयक्ष्मा या क्षयरोग (तपेदिक) की चिकित्सा होने लगी है और इससे आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। डाक्टर रोलिये नामक एक फरासीस साहबने इस चिकित्साप्रणालीके अनुसार १२०० यक्ष्मारोगियोंकी चिकित्साकी थी जिनमेसे लगभग १००० रोगी चगे हो गये है। इस प्रणालीके अनुसार रोगीको गर्मीमें कपासके वस्त्र और शीतकालमे ऊनी फलालेन पहनाके रखते है। सिर पर सफेद टोपी और आँखों पर धूपसे

बचनेके लिए पीलेरंगका चश्मा लगाना पडता है। शरीरके जुदाजुदा स्थानोंमें यक्ष्माके बीजाणुओंका आक्रमण होता है, परन्तु इलाज सबका एक ही प्रकारका है। पहले दिन पैरोंके तलुओंको धूपमे फैलाके रखना चाहिए, दूसरे दिन दोनों पैर खुले करके रखना चाहिए, तीसरे दिन जानु, चौथे दिन तलपेट (पेडू या तरेट), पॉचवें दिन छाती और छट्टे सातवें दिन गर्दन तथा मस्तक पर धूप लगाना चाहिए। इस तरहके प्रयोगोसे सूर्यकिरणोकी रासायनिक शक्ति यक्ष्माके बीजोंको नष्ट कर देती है। पार्वतीय प्रदेशोंमें सूर्यकी किरणोकी यह शक्ति बहुत अधिक रहती है—समुद्रतीरके स्थानोंमें उतनी नहीं होती। कनि नामक द्वीपमे एक बडा भारी अस्पताल है। उसमें इस सौर-चिकित्सासे इतना लाभ हुआ है कि न्यूयार्क शहरके लोग-अब एक और हास्पिटल बनानेकी तैयारी कर रहे हैं। हमारे देशके लड़के बच्चे नगे फिरा करते है और खुली हवा तथा सूर्यकिरणोंसे अपने शरीरको स्नान कराते रहते है। इससे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ पहुँचता है। इस बातकी हमने स्वय परीक्षा की है कि प्रतिदिन कुछ समय तक सूर्यकी किरणे शरीर पर पडने देनेसे स्वास्थ्यको बहुत लाभ पहुँचता है। रोमकूपोको स्वच्छ रखनेके लिए सूर्यकिरणें बहुत ही उपयोगी हैं।

भूलसंशोधन—गताङ्कके ५१४ वें पृष्ठके शिलालेखके अन्तमे 'वोद्धे थूपे" और उसके अनुवादमे 'बौद्ध स्तूप' छप गया है। पाठक, इसके स्थानमें 'वोद्ध स्तूप' पढें। और उससे पहलेके आठवें अकमे जो 'डेढ लाख वर्षका पुराना मनुष्य' शीर्षक नोट निकला है वह 'बाबू व्रजमोहनलालजी वर्मा' का लिखा हुआ है। उसके नीचे श्रीयुक्त 'जगन्मोहन वर्मा' का नाम छप गया है। पाठकगण उसे भी सुधार लें।

[इस अकके प्रकाशित होनेकी तारीख ८-९-१४।]



जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] भाद्र, आश्विन [११-१२ वाँ अं०
वी० नि० सं० २४४०।

दक्कन-कालिजका शास्त्रभण्डार और जैनग्रन्थ।

दक्कन-कालिज पूनाकी लायब्रेरीमें हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथोंका एक बड़ा भारी संग्रह है। इस संग्रहमें वेद, वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, चरित्र, स्मृति, छद, अलंकार, काव्य, कोश, व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, मंत्र, तत्र, शिल्प और दर्शनशास्त्रादि सभी प्रकारके हस्तलिखित ग्रथ शामिल हैं। गवर्नमेण्टने बड़े ही परिश्रम और विपुल अर्थव्ययके साथ सन् १८६८ से १८८४ तक, १६ वर्षके भीतर जिन हस्त-लिखित प्राचीन ग्रंथोंका सग्रह इस लायब्रेरीमें किया है उनका एक विशाल सूचीपत्र (Catalogue), सन् १८८८ का छपा हुआ, हालमें मुझे देखनेको प्राप्त हुआ। यह सूचीपत्र अँगरेजीमें है। इसकी पृष्ठसख्या ५४० है। इसमे सगृहीत ग्रंथोंका वार्षिक विवरण दिया है। अर्थात् जिस सालमें जो जो ग्रथ सग्रह किये गये है उनको

उसी क्रमसे, व्यवस्थाके साथ, दिखलाया है। व्यवस्थाके लिखनेमें बड़ा ही परिश्रम किया गया मालूम होता है। प्रत्येक ग्रंथकी पत्रसंख्या कितनी है, पत्रकी पंक्तिसंख्या क्या है, प्रत्येक पंक्तिमें कितने अक्षर हैं, कुलग्रंथका परिमाण कितने श्लोकोंका है, ग्रंथ जीर्णादि किस अवस्थामें है, पूरा है या अधूरा, ताड़पत्र भोजपत्रादि किस चीज पर लिखा हुआ है, लिखे जानेका सम्वत् क्या है, कहाँसे खरीदा या प्राप्त हुआ है और ग्रंथका विषय, ग्रंथकी भाषा तथा ग्रंथकर्ताका नाम इत्यादि सभी ज्ञातव्य विषयोंका न्यूनाधिक्यरूपसे, जहाँतक हो सका, इस सूचीपत्रमे समावेश किया गया है। सूचीपत्रके अन्तमें एक ग्रन्थानुक्रमणिका (Index) भी दी है।

ग्रंथोंका यह संग्रह डाक्टर **बूलहर** (Dr. Buhler), डाक्टर **कीलहार्न** (Dr. Kielhorn) डाक्टर **भांडारकर** (Dr. Bhandarkar) और डाक्टर **पिटर्सन** (Dr. Peterson)के द्वारा अलग अलग हुआ है। इन विद्वानों द्वारा संग्रहीत ग्रंथोंके सिवाय जिन ९७० ग्रंथोका संग्रह पहलेसे पूनाकी प्राचीन संस्कृत पाठशालामें था उनको **विश्रामबाग-संग्रह** (Vishrambag Collection) के नामसे इस सूचीपत्रमें दर्ज किया है। क्योंकि वह पाठशाला उक्त बागमें थी। जोड़ देनेसे कुल संगृहीत ग्रंथोकी संख्या ६,८९६ होती है। इनमेंसे १५०१ ग्रंथ जैनियोंके हैं। इन जैनग्रंथोमें श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके ग्रंथ शामिल हैं। श्वेताम्बर ग्रंथोंकी संख्या करीब १२४५ के और दिगम्बर ग्रंथोंकी संख्या लगभग २५६ के है। जैनग्रंथोंकी यह

---

१ अर्थात् किसी सालके संग्रहमें यदि पंक्तियों और पंक्तिके अक्षरोंकी संख्या नहीं दी है, तो श्लोकोंकी संख्या दे दी है। किसी सालमें ग्रंथके खरीदनेका स्थान नहीं दिया है तो किसी सालमें दिया है इत्यादि रूपसे।

संख्या सूचीमें दिये हुए नम्बरोंकी अपेक्षासे है। परन्तु कहीं कहीं पर ग्रंथसंख्याका नम्बर तो एक दिया है तथापि उसके अवान्तर ग्रंथ और भी लिखे है—संभव है कि एक जिल्द या गुटका होनेकी वजहसे ऐसा किया गया हो—और कहीं कहीं पर कोश, व्याकरण, अलंकार और वैद्यक आदिके ग्रंथोंकी सूचीमें जैनियोंके ग्रन्थ भी सम्मिलित हो रहे है जिनको जैनग्रंथोंकी सूचीमें अलग नहीं दिखलाया। इन सबको मिलानेसे जैनग्रंथोंकी संख्या १६०० से कुछ अधिक होती है। दूसरे शब्दोंमें यो कहना चाहिए कि इस संग्रहमें जैनियोंके करीब एक चौथाई ग्रंथ मौजूद हैं। विश्रामबागसंग्रहमें जैनियोंका कोई ग्रंथ नहीं है। इसलिए जैनियोंके ये सभी ग्रंथ यूरोपियन विद्वान् डाक्टर बूल्हर आदिके द्वारा संग्रह किये गये हैं। संग्रहकर्ताओंने जयपुर, बीकानेर, भटनेर, थराद, काश्मीर, पाटन, सूरत, जैसलमेर, रानदेर, जोधपुर, बढवान, फलोदी, लिम्बडी, उज्जैन और देहली आदि स्थानोंसे जैनग्रंथोंको खरीद किया है। दिगम्बर सम्प्रदायके सबसे अधिक ग्रंथ जयपुरसे खरीदे गये है। सन् १८७५–७६ के सालमें जयपुरसे खरीदे हुए ग्रंथोंकी संख्या १४५ है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके ये सब ग्रन्थ कोई नई नई प्रतियाँ कराकर नहीं खरीदे गये हैं। बल्कि जैनियोंने अपनी प्राचीन प्रतियाँ ही दूसरोंके हाथ बेच डाली है। जैनियोंको अपने धर्मसे और धर्म-ग्रंथोंसे कितना प्रेम है, जिनवाणीकी उनके हृदयमें कितनी सच्ची भक्ति है, वे कितने गुणग्राहक और विद्याविलासी हैं; इन सब बातोंका अनुभव और अंदाजा उनके इस एक ही कृत्यसे हो सकता है। अस्तु।

इन ग्रंथोंमें कोई कोई ग्रंथ ४०० वर्षके, कोई ५०० के, कोई ६०० के और कोई कोई इससे भी अधिक वर्षोंके प्राचीन लिखे हुए हैं।

ताड़पत्रों पर जो ग्रंथ हैं वे विक्रम संवत् ९६२ तकके लिपि किये हुए है। और उनमेंसे कोई कोई ग्रंथ बड़ी ही शोचनीय दशामे है। किसीके पत्र टूट रहे है, कोइ अधूरा है और कोई महाजीर्ण शीर्ण है। प्राचीन ग्रंथोंका मूल्य न जाननेवाले अपात्र जैनियोंके द्वारा, इन ग्रन्थोंमेंसे बहुतसे ग्रंथोंकी जीवन-लीला कभी की समाप्त हो गई होती यदि गवर्नमेण्ट उन्हें अपनी बहुमूल्य अलमारियोंमें, प्रचुर धनव्यय करके, सुरक्षित न रखती। ऐसी हालतमें जैनियोंको गवर्नमेण्ट तथा संग्रहकर्ता विद्वानोंका बहुत ही आभारी होना चाहिए, जिनके अनुग्रहसे इस समय भी उन ग्रंथोंकी प्राचीन प्रतियाँ लोगोंके देखनेके लिए मिल सकती है। लोगोंको ऐसे अनेक ग्रन्थ इस पूना लायब्रेरीसे प्राप्त सुने जाते हैं जो दूसरी जगह नहीं मिलते थे। श्वेताम्बर कान्फरेंस बम्बईने प्राचीन भंडारोंकी बहुत कुछ छानबीन करके एक 'जैनग्रंथावली' नामका सूचीपत्र प्रकाशित किया है जिसका मूल्य २) रुपये हैं। इसमें अनेक ग्रन्थोंके सम्बन्धमे ऐसा नोट दिया गया है कि ये ग्रंथ सिर्फ दक्कन कालिज पूनाकी लायब्रेरीमें है; दूसरी जगह नहीं मिलते। इससे जान पड़ता हैं कि इस लायब्रेरीमे जैनियोंके दो चार नहीं किन्तु बहुतसे दुर्लभ और अलभ्य ग्रंथ भी संगृहीत हैं जिनसे जैनी लाभ उठा सकते है। वास्तवमें, प्राचीन ग्रंथोंकी प्राचीन प्रतियोंका अस्तित्व एक बडे ही महत्त्वकी वस्तु है। उससे अनेक प्राचीन सत्योंका बहुत कुछ अनुसंधान होता है। जिन जिन प्राचीन ग्रंथोंमें पीछेसे कुछ क्षेपक श्लोक मिल गये हैं या कुछ पाठान्तर किया गया है, उन सबकी जाँचमे ऐसी प्रतियाँ बहुत कुछ सहायता देती है।

इस लायब्रेरीमे श्वेताम्बर जैनियोंके पैंतालिस आगम ग्रंथोंमेंसे बहुतसे आगम ग्रंथ बड़ी बड़ी टीकाओंके साथ मौजूद हैं और दिगम्बर

सम्प्रदायके ग्रंथोंमेंसे **गोम्मटसार** (सवृत्ति), **त्रिलोकसार** (सवृत्ति), **सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिकालंकार, मूलाचार** (वसुनन्दिटीका सहित), **परमात्मप्रकाशविवरण, भावादिप्राभृत, तत्त्वार्थसार** (सटीक), **नयचक्र, भगवतीआराधनासार, समयसार** (सटीक), **नियमसार, आदिपुराण** (चूलिकासहित), **स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्त्वार्थवृत्तिसुखबोधिका, चंद्रप्रज्ञप्ति, दर्शनरत्नाकर, धर्मामृत** (सटीक), **जैनेन्द्रव्याकरण** (पचवस्तु तथा महावृत्ति और शब्दार्णवचन्द्रिका टीका सहित) **प्रमाणप्रमेयकलिका, प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टशती** और **आप्तमीमांसालंकृति,** (अष्टसहस्री) आदि बडे बडे ग्रन्थ मौजूद है । **सोमदेवप्रणीत** 'शब्दार्णवचन्द्रिका' की एक प्रति ताड़पत्रो पर लिखी हुई है । इसकी पत्रसख्या २८० दी है । साथ ही यह भी लिखा है कि यह अधूरी और जीर्ण है । **दर्शनरत्नाकर** नामका ग्रथ **इन्द्रनन्दि** आचार्यका बनाया हुआ है । यह कोई विशाल ग्रथ माळूम होता है । इसके न० २३४ से ३३८ तक सिर्फ ८४ पत्र ही मौजूद हैं, शेप पत्र नही हैं । **श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचित नियमसार** ग्रथकी सस्कृत टीका **पद्मप्रभमलधारिदेव**की बनाई हुई है जिसकी पत्रसंख्या १४६ है । **स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा**की सस्कृत-टीका **शुभचंद्रगणि**की बनाई हुई लिखी है और उसकी पत्रसंख्या २७० दी है । **तत्त्वार्थवृत्तिसुखबोधिका** नामकी टीका **श्रीयोगदेवाचार्य**की बनाई हुई है जिसमें आदिके तीन पत्र नहीं है । तत्त्वार्थसूत्रकी **श्रुतसागरी** टीका भी इस भंडारमें मौजूद है जिसकी पत्रसंख्या

---

१ यह ग्रन्थ भाषा और सस्कृत टीकासहित छपनेके लिए तैयार हो रहा है । २ यह टीका वम्बईके भंडारमें मौजूद है । —सम्पादक ।

२६६ है। त्रिलोकसार यहाँ दो है और दोनो सस्कृतटीकासहित है। एकके कर्तामे नाम **अभयनन्दि** और **माधवचन्द्र**का दिया है। और दूसरेके सम्बंधमें मूल प्राकृतके कर्ता **नेमिचंद्र** और टीकाके कर्ता **सागरसेन** लिखे हैं।

एक ग्रंथ इस भंडारमे '**वादिगजगंधहस्तिन्**' नामकी 'तत्त्वार्थ-वृत्ति' है। यह तत्त्वार्थसूत्रकी टीका ताड़पत्रों पर है और **सिद्धसेन दिवाकर**की बनाई हुई है। इसकी पत्रसंख्या ३७३ और श्लोक-संख्या १८,२८२ है। सम्वत् १३०४ की लिखी हुई है। यह ग्रंथ पूर्ण है; परन्तु इसके अन्तिम १०० पत्र प्राय. टूट गये है, ऐसा लिखा है। **सिद्धसेन**की बनाई हुई एक दूसरी '**तत्त्वार्थवृत्ति**' भी इस भंडारमें मौजूद है जो कागज पर है और जिसकी पत्रसंख्या ५४१ तथा लिपि किये जानेका सम्वत् १६८४ है। परन्तु इसके साथमे 'वादि-गजगंधहस्तिन्' ऐसा नाम नहीं दिया और न **सिद्धसेन**के साथ 'दिवाकर' पद ही लगाया है। इसलिए विना देखे नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों तत्त्वार्थवृत्तियें एक ही है या अलग अलग। श्वेताम्बर कान्फरेन्सने जो 'जैनग्रन्थावली' नामका एक विशाल सूची-पत्र प्रकाशित किया है उसमें इन दोनों तत्त्वार्थवृत्तियोंमेसे किसीका भी उल्लेख नहीं किया, यह आश्चर्यकी बात है। और इसका कारण सिवाय भूलके दूसरा समझमें नहीं आता। पहली तत्त्वार्थवृत्ति सन् १८८१–८२ के संग्रहमें नं० ७ पर और दूसरी सन् १८७५-७६ के संग्रहमें न० ५९५ पर दर्ज हैं। ये दोनो तत्त्वार्थवृत्तियॉ अवश्य ही उभय सम्प्रदायके विद्वानो द्वारा देखे जानेके योग्य है। **राजवार्तिक**, **राजवार्तिकालंकार** और **तत्त्वार्थवार्तिकालंकार** ये तीनों नाम एक ही ग्रथके हैं जो **भट्टाकलंकदेव**का बनाया हुआ है। परन्तु

श्वेताम्बर कान्फरेन्सकी उक्त 'जैनग्रन्थावली' में, जिसमें कुछ थोड़ेसे दिगम्बर ग्रंथ भी दिये है, **राजवार्तिक** और **राजवार्तिकालंकार**-को दो अलग अलग ग्रथ सूचित करके दोनोंके कर्ता भी अलग अलग बतलाये हैं। पहलेका कर्ता **अकलंकशिष्य** और दूसरेका **भट्टाकलंक** लिखा है। साथ ही अकलंक-शिष्यके बनाये हुए 'राजवार्तिक' के अस्तित्वका पता 'दक्कन कालिज पूनाका शास्त्रभडार' दिया है। और 'राजवार्तिकालङ्कार' बम्बईके दूसरे भोईवाडेके मदिरमे बतलाया है। सभव है कि श्वेताम्बरी भाइयोकी इस उल्लेख करनेमें कुछ गलती हुई हो। क्योंकि दक्कन-कालिज पूना लायब्रेरीके उक्त सूचीपत्र (Catalogue) में यह ग्रंथ सन् १८७५-७६ के सग्रहमें '**तत्त्वार्थवार्तिकालंकार**' के नामसे न. ५९४ पर दर्ज है और इसका कर्ता अकलंकदेव लिखा है। साथ ही श्लोकसख्या न देकर पत्रसख्या ३२८ दी है। परन्तु जैनग्रन्थावलीमें **राजवार्तिक**की श्लोकसख्या १९००० और **राजवार्तिकालंकार**की १३००० दी है जिससे बहुत बडा भेद मालूम होता है। इसलिए दिगम्बर जैन विद्वानोंको पूना लायब्रेरीके 'राजवार्तिक' को देखकर इस भ्रमको दूर करना चाहिए। एक और ग्रथ इस लायब्रेरीमें, '**संदेशरासक**' नामक है। यह मूलग्रथ प्राकृतमे और टीका सस्कृतमें है। इसकी पत्रसख्या १२ और श्लोकसख्या ६०० दी है। साथही इसके मूल प्राकृतका कर्ता **अब्दुलरहिमान** लिखा है (text in p by Abdalrahiman) जो एक मुसलमान व्यक्ति मालूम होता है। इसलिए यह ग्रथ भी जैन विद्वानोंको देखना चाहिए और मालूम करना चाहिए कि इसका विषय क्या है और यह ग्रथ कब बना है। कोशग्रथोंमें '**अनेकार्थध्वनिमंजरी**' नामका भी एक कोश है जिसको **महाक्षपणक**का

बनाया हुआ लिखा है। यह काश्मीरसे खरीदा गया है और जीर्ण अवस्थामें हैं। बहुतसी पट्टावलियाँ और गुर्वावलियाँ भी इस भंडारमे मौजूद है। कोई कोई पट्टावली और गुर्वावली तो टीका-सहित भी है। इस प्रकार बहुतसे ग्रथ इस भंडारमें मौजूद हैं जिन्हें जैन विद्वानोंको देखने दिखलाने तथा उनकी प्रतियाँ करानेकी जरूरत है। इसी प्रकार और भी बहुतसे जैन अजैन भंडारोंमें प्राचीन जैन-ग्रंथ मौजूद है जिनकी जाँचपड़तालकी जरूरत है। वास्तवमें, जैनियोंके लिए यह समय सोनेका नहीं है। बहुत सो चुके; आलस्य और प्रमादकी निद्रामें हजारों बहुमूल्य ग्रथोंको खो चुके—अब उठना चाहिए। इस समय जैनियोंको आलस्य और प्रमाद छोड़कर, अपना कर्तव्य समझते हुए, प्राचीन जैनग्रंथोंकी सँभाल और जाँच करना चाहिए। जिस जिस भडारमें जो कोई भी प्राचीन जैनग्रंथ हो उन सबका उद्धार करना चाहिए। प्राचीन ग्रंथोंके अस्तित्व और अनस्तित्व पर ही जैनियोका जीवन-मरण अवलम्बित है। जिन ग्रंथोकी एक एक ही प्रति पृथ्वीतल पर अवशेष रह गई है, सोचिए, वे कितने अधिक खतरेमें (विपद्मे) हैं। परन्तु जैनियोंको इसका कुछ भी चेन नही—सर्वस्व लुटा जा रहा है फिर भी खबर नहीं। यह सब कितने दुःखकी बात है। जितना द्रव्य जैनियोका धर्मकार्योंके नामसे खर्च होता है यदि उसका शतांश भी प्राचीन ग्रंथोके उद्धारमें लगा दिया जाय तो जैनि-योंका एकदम उत्थान हो सकता है। ग्रंथोकी प्राप्ति न होनेसे बहुतसे अनुसंधान रुके पड़े हैं और ससारमें अनेक प्रकारके भ्रम फैले हुए है। और तो क्या जैनियोंको यह भी ठीक ठीक मालूम नहीं कि उनके पूर्वाचार्य किस किस समयमें हुए हैं और उन्होंने क्या क्या कृत्य किये अथवा कौन ग्रथ बनाये हैं। यदि प्राचीन आचार्योंके कुछ संस्कृत

और प्राकृत ग्रंथ, अनेक भंडारोंसे तलाश कराकर, एकदम प्रकाशित कर दिये जायँ—विद्वानोंको उनकी प्राप्तिका मार्ग सुगम कर दिया जाय-तो ये सब त्रुटियाँ सहजहीमें दूर होकर जैनियोंका एक अच्छा खासा इतिहास तयार हो सकता है। देखिए, इसके लिए कब किस धनपात्रको सद्बुद्धि उत्पन्न होती है, किसके हृदयमें दयाका स्रोत बहकर जैनसमाजका उद्धार करता है, और कौन अपनी उदारवृत्तिसे प्राचीन ग्रथोंके प्रकाशनमें एकदम तीन चार लाख रुपया लगाकर असीम पुण्यको सचय करता हुआ हमेशाके लिए अपनी कीर्तिको अचल करता है और साथ ही जैनियोंके बच्चेबच्चेके हृदयमें अपने पवित्र नामकी छाप जमाता है। सचमुच, वह दिन धन्य होगा जब जैनसमाजको ऐसा सुअवसर देखनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

देवबन्द, जि० सहारनपुर,
ता० २-१०-१४.

समाजसेवक—
जुगलकिशोर मुख्तार।

सफलता और असफलता।

" यदि हमें इस बातका विश्वास हो कि हमारी वीरता और धीरता किसी अप्रत्यक्ष आत्मीय अवस्थामें फलप्रद हो रही है तो हम यह अत्यन्त आपत्तिपूर्ण जीवन बहुत ही प्रसंन्नताके साथ बिता सकते हैं।"

—प्रो० जेम्स।

प्रत्येक मनुष्य अपनी सफलताकी इच्छा रखता है। अर्थात् सब लोगोंको यही आशा लगी रहती है कि हम अपने कार्यका फल वही पावें जो हमने सोच रक्खा है। यह कोई नहीं चाहता कि जो हमारा इच्छित है उसमें हमें सफलता न मिले। इतने पर भी—प्रयत्न करने पर भी बहुधा मनुष्यके यत्न निरर्थक जाते हैं। एक कविने कहा भी

है कि:—"The many fail, one succeeds" अर्थात् बहुतोंको सफलता नहीं होती; कोई विरला ही विजयी होता है।

यदि ऐसा है तो फिर मनुष्य प्रयत्न क्यों करता है? उद्योग क्यों करता है? परिश्रम करनेका फल क्या? इन सब प्रश्नोंका उत्तर 'सफलता' के अर्थ करने पर निर्भर है। बहुत करके तो धनधान्यकी प्राप्तिमे विजय मिलनेको ही लोग सफलता कहते हैं। जनसाधारणका यही विश्वास है कि जिसे मौज शौकके साधन एकट्ठे करनेके योग्य धन प्राप्त हो गया अथवा जो लोकप्रिय गिना जाने लगा, बस, उसे सफलता प्राप्त हो चुकी। To be rich is to be successful; to be poor is to have failed. अर्थात् लोगोंकी समझमें धनादिकी प्राप्ति हो जाना–श्रीमान् बन जाना सफलता है और द्रव्यकी प्राप्तिका अभाव या निर्धनता निष्फलता या असफलता है। गरज यह कि सर्व साधारणकी दृष्टिसे धन और यशका पाना न पाना ही सफलता और निष्फलता है।

यहाँ कोई यह न समझ ले कि धन और यशके कमानेवाले सब ही लोग असफलता पानेवाले हैं। नहीं, यदि किसी मनुष्यने निरन्तरकी उद्योगशीलता, दूरदर्शिता नियमबद्धता, सावधानता और ईमानदारीसे कोई व्यापार किया हो और उसमे धन कमाया हो, तो इसे कोई अनुचित नहीं कह सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसे इस प्रयत्नमें असफलता हुई है। परन्तु यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि उक्त मनुष्यने जो धन कमाया है उस धन कमानेको ही उसकी सच्ची सफलता न समझ लेना चाहिए। वास्तवमे उसने जो अपने गुणोको विकसित किया और नीतिमार्ग पर दृढता रक्खी, यही उसकी सच्ची सफलता है। यदि वह इन दो बातोंके विना धन कमा सका होता तो अवश्य ही समझा जाता कि उसे असफलता प्राप्त हुई। विरुद्ध इसके यदि एक

दूसरे आदमीने उद्योगशीलता और ईमानदारी आदिके साथ कोई प्रयत्न किया, पर किसी कारणसे वह धन न कमा सका, तो भी तत्त्वदृष्टिसे समझना चाहिए कि उसने सफलता पाई। क्योंकि अनेक तरहकी कठिनाइयोंके बीचमें पडकरके भी उसने अनीतिरूप लालचोंके साथ युद्ध करनेमें अपना बल आजमाया है, बढाया है और उस बलका प्रमाण दिया है जो उसके साथ हमेशा रहेगा। इस प्रयत्नमें जो धन मिलनेवाला था यदि वह मिल जाता, तो भी यह कौन कह सकता है कि वह सदा बना रहता, और धनादि सामग्रियाँ पूर्वकर्मोंकी अनुकूलता प्रतिकूलताके अनुसार मिलती हैं इस कारण उसका मिलना न मिलना अनिश्चित था, अतएव उस धनके प्राप्त करनेके लिए उसने जो प्रामाणिकता नियमितता और सतत उद्योगशीलता दिखलाई है और उससे उसे जो अनुभव प्राप्त हुआ है—उसके गुणसमूहका जो विकास हुआ है वास्तवमें वही उसकी सफलताका प्रमाण है। यहाँ जैसा धनादिके विषयमें कहा गया है, वैसा ही कीर्ति, लोकप्रियता, मानसम्मान आदिके विषयमे भी समझ लेना चाहिए। कभी कभी शुद्ध अन्त.करणसे अच्छेसे अच्छा काम करने पर भी अपकीर्ति होती है, आपको अग्निमे होम देना पडता है, और फाँसीकी रस्सीमें भी लटकनेको लाचार होना पडता है; परन्तु वह अपकीर्ति, अग्नि और फाँसी तुम्हारी अभ्यन्तर सफलताको जरा भी मलिन नही कर सकती, बल्कि ये बातें तो उक्त सफलताको और भी उज्ज्वल—प्रकाशमान करती है। इसी तरह बहुतसे लोग कपटजालसे—युक्तिप्रयुक्तिसे—चालाकीसे मानमर्यादा प्राप्त कर लेते हैं, पूजने लगते हैं—देवतुल्य समझे जाने लगते हैं और सत्यको वर्षों तक छुपाये रखनेमे सफल होते हैं, परन्तु इससे

उन्हें सफलता-प्राप्त नहीं कह सकते; इसको तो निष्फलताका ही उदाहरण समझना चाहिए। कारण कि इस कदाचरणके द्वारा उसकी बुद्धि और हृदय पर जो गहरी 'सील' लग जाती है वह थोड़े वर्षों तक ही नहीं किन्तु सैकड़ों सहस्रों वर्ष पर्यन्त या कई युगों तक उसके लिए अन्तराय और बाधारूप बनी रहती है। ऐसी दशामें हम उसे सफलता क्यों कर कह सकते हैं? इससे अधिक भयंकर निष्फलता और कौनसी हो सकती है।

मनुष्यकी परिस्थितियाँ, मनुष्यके व्यापार और उनके बाह्यकार्योंकी अपेक्षा मनुष्य स्वयं एक बड़े महत्त्वका विषय है, अर्थात् उसका आशय कैसा है और वह कैसे मार्ग पर है; बस, उसमें यही मनुष्यत्व —यही मुख्य वस्तु है।

यह संसार एक बड़ी भारी पाठशाला है कि जिसमें जीव भिन्न भिन्न असंख्य रीतियोंसे शिक्षित और विकसित किये जाते हैं। इस वास्ते शिक्षा और विकास ये ही दो महत्त्वकी चीजें हैं। यदि किसी विद्यार्थीको सर्टिफिकेट न मिला हो तो इससे उसका वह ज्ञान नहीं जाता रहता जो कि उसने प्राप्त किया है। परीक्षामें जहाँ कि एक मात्र स्मरणशक्ति पर ही सफलता और निष्फलताका भार रहता है यदि वह विद्यार्थी—जिसकी मानसिक शक्ति विकसित और स्मरण शक्ति कुछ न्यून है—नापास (फेल) हो जावे तो इसपरसे उसके ज्ञानकी माप करना बड़ी ही भूलकी बात है। आश्चर्य है कि आज कल जगतका सब व्यवहार इसी रीतिपर चल रहा है। थेकरके कहे अनुसार आजकल "Suceess is the greatest of a great man's Guality" अर्थात् बाह्य सफलता प्राप्त कर लेना यही बड़े आदमियोंका बड़ेसे बड़ा गुण गिना जाता है। तुम किसी विषयमें

विजयी हो जाओ, किसी भी प्रकारसे सफलता प्राप्त कर लो, बस इसीसे ससार तुम्हे अभिनन्दन करेगा, बधाई देगा, तुम्हारी वाहवाही होने लगेगी और यदि अविश्रान्त परिश्रमसे तथा सच्चे उत्साहसे काम करने पर भी तुम्हें निष्फलता हुई तो ससार तुम्हे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेगा और शक्तिहीन समझकर तुम्हारी हँसी उडावेगा। यह जगतको तौलनेकी तराजू सच्ची तराजू नहीं है। एक मनुष्य ऐसा है कि विकारोत्पादक कारण उपस्थित होते ही उसके हृदयमें विकार उत्पन्न हो जाता है और वह उसके वशीभूत हो जाता है। दूसरा मनुष्य ऐसा है कि वह उस विकारके साथ अपने मानसिक बलकी परीक्षा करता है, बार बार उस विकारके साथ युद्ध करता है और उसके वशमे न होनेका प्रयत्न करता है; परन्तु अन्तमें उस विकारके आ-धीन हो जाता है। देखा जाय तो ये दोनों मनुष्य बाह्य दृष्टिसे निष्फल हुए है, अर्थात् जीवनसग्राममें उन्हें सफलता नहीं मिली है; परन्तु क्या हम इन दोनोंकी निष्फलताको समान ही गिने ? कदापि नही। कारण पहला मनुष्य तो विकारका गुलाम है और दूसरा उस विका-रके सन्मुख लडनेवाला है—उसका सामना करनेवाला है। ऐसा तो हमसे कहा ही नहीं जा सकता कि हम अपनी समस्त धारणा-ओं—विचारोंके अनुसार सफलता ही सफलता प्राप्त करेंगे, परन्तु यदि हमने भरसक पुरुषार्थ किया तो कर्तव्यपालनमें हमने कुछ भी कमी न रक्खी—हम अपना काम कर चुके। इतने पर भी ससार हमे निष्फल हुआ माने तो खुशीसे माने, उसे वैसा माननेका हक है। परन्तु हमारी वास्तविक उन्नति लौकिक मानापमानके आश्रय नहीं है। यदि हमारे अन्तःकरणको इस बातका सन्तोष हो कि हम सत्य पक्षमे स्थित है और हमने अपना कर्तव्य यथाशक्ति यथामति पालन

किया है, तो फिर जगतके अभिप्रायकी परवाह करना; यह हमारी एक प्रकारकी निर्वलता है। संसारका वहुत वड़ा भाग इसी निर्वलताके वशमें रहता है और दुखी होता है। अपने कामोका अपने चारित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है, हमे केवल यही देखना चाहिए। यदि हमारे कामसे हमारा चारित्र उन्नत होता जा रहा हो तो हमारी सफलता है और यदि हमारे चारित्रको लाछन लगता हो—उस पर मलीनताका वादल छा जाता हो तो वाह्य सफलता मिलने पर भी हमें निष्फलता ही हुई है ऐसा समझना चाहिए। गुप्तज्ञानी कवि ब्राउनिंगका यथार्थ कहना है कि:—

There is no duty patent in the world
Like *trying* to be good and *true oneself*.
I conceive no other duty possible to man
....no other law
By which *to judge life, failure or success,*
What folks call being saved or cast away.

अर्थात् "अच्छे वननेके लिए और अपने अन्तःकरणकी स्फूर्तिके अनुसार सत्य मार्ग पर चलनेके लिए प्रयत्न करनेकी अपेक्षा अधिक महत्त्वका दूसरा कोई भी कर्तव्य नहीं है। यह जाननेके लिए-कि किसी मनुष्यका विजय हुआ या पराभव—उसे सफलता हुई या असफलता —वह डूव गया या तर गया—ऊपर वतलाये हुए कर्तव्यके सिवाय न कोई कर्तव्य है और न नियम है।'

जहाँतक हम अपने हृदयके आदेशानुसार चलते हैं वहाँतक हम विजयी है और जव हम अपनी आत्माके आदेशका तिरस्कार करके सफलता पाते हैं तव तत्त्वदृष्टिसे हमें निष्फलता हुई है।

एक स्त्रीने स्वर्गसे मिस्टर स्टेडको जो एक पत्र लिखा था उसका कुछ अश यहाँ प्रगट करना अनुचित न होगा। वह लिखती है कि:—

"यहाँ मुझे बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवनका सच्चा स्वरूप दीखने लगा है। "Judge not" अर्थात् दूसरेके सम्बन्धमें अपने अभिप्राय मत बाँधो, इस नियमका अपूर्व स्वरूप मुझे यहीं अनुभव-गोचर हुआ है। जो मनुष्य बाहरसे अच्छे दीख पडते थे परन्तु जिनके मनमें विषयवासना और स्वार्थीपन पैठा हुआ था उन मनुष्योंकी अपेक्षा वे मनुष्य जो पहले बाह्यमें मलिन दीख पडते थे परन्तु हृदयसे पवित्र जीवन व्यतीत करते थे, यहाँ (स्वर्गमें) अत्यन्त उच्चस्थानके अधिकारी हैं। जैसी मनोवृत्ति होती है वैसा ही चरित्रगठन होता है। शरीरकी अपेक्षा मन विशेष सामर्थ्यमान और चपल है। शरीर मनका साधन मात्र है। इस वास्ते यहाँ पर हृदयके आशय, मनके विचार तथा अच्छी बुरी कल्पनाओंके अनुसार ही जीवोंकी परीक्षा ली जाती है। स्थूल शरीरके नाश होनेके पश्चात् अन्तरात्माका स्वरूप ऊपर लिखे हुए आशय, विचार और कल्पनाओंके अनुरूप बनता है। विचारशक्तिमें तुम जितनी सोचते हो, उससे भी अधिक प्रबलता है। विचार करनेवाले तुम्हारी समझके अनुसार केवल आलसी मनुष्य ही नहीं हैं। वे यदि कल्पनायें करके बैठे रहें तो काम नहीं कर सकते; परन्तु उनकी कल्पनायें व्यावहारिक काम करनेवालों पर असर डाले बिना नहीं रहतीं। इसी प्रकार जो मनुष्य विषयोंका विचार किया करता है वह एक ऐसी शक्तिको उत्पन्न करता है कि जो दूसरे मनुष्योंके विकारोंको उत्तेजना देकर उनके नाशका कारण बनती है। इस कारण आशय या मनोविचार एक बडे महत्त्वकी वस्तु है। इस बाजूसे वस्तुयें दूसरे ही रूपमें दीख पड़ती हैं। कई मनुष्य ऐसे

देखे जाते है कि जिन्होंने अपनी जिन्दगीमे एक भी अपराध नहीं किया तो भी उनके मनरूपी साँचेमें अगणित अशुभ विचार और खोटी कल्पनायें उत्पन्न हुआ करती है और वे दूसरोंको अपराध करनेके लिए तत्पर करनेकी हेतु होती हैं। सामान्यतः तो पवित्र जीवन व्यतीत करनेवाला भी कभी कभी आवेशमें आकर बड़ाभारी अपराध कर बैठता है, परन्तु वह उपर्युक्त मनुष्योंकी अपेक्षा पवित्रतामे विशेष उच्च जान पड़ता है। इसका यह आशय नहा है कि अपराध करना चाहिए। कहनेका आशय यह है कि किसी मनुष्यका कोई अपराध दृष्टिगोचर हो रहा है, इसी कारणसे उसका हृदय भी दुष्ट होगा ऐसा सदैव न मान लेना चाहिए।"

इन शब्दोंके स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आत्मीय विकासको सफलता और आत्मीय संकोचको निष्फलता (पराभव) समझना चाहिए। बस, यही सूत्र ऊपरके शब्दोंमेंसे फलित होता है।

जब मनुष्य अपने विचारे हुए काममें निष्फल होता है तब वह हताश हो जाता है और उसे माळूम होने लगता है कि मुझमें पुरुपार्थ करनेका अब बिलकुल बल नहीं रहा। हम अमुक विषयमे निष्फल हुए या सफल, यह प्रश्न हमारे विचार करनेका नहीं है; किन्तु प्रश्न यह है कि हमने अपनी निष्फलता किस प्रकार स्वीकार कर ली? यदि अपनी इस निष्फलतासे हम और भी अधिक उत्तेजित होकर प्रयत्न करे तो हमें अवश्य अधिक सफलता प्राप्त होगी। इसी विषयमे चार्लस जेम्स फाक्स नामक विद्वानका कहना है कि:—

"Show me a young man who has not succeeded at first and nevertheless has gone on and I will back

that young man to do better than most of those who have succeeded at the first trial" अर्थात् "जो पहले ही प्रयत्नमें सफल न हुआ हो, परन्तु तो भी जिसने अपना प्रयत्न जारी रक्खा हो ऐसे किसी युवकको मुझे बताओ और जो प्रथम ही बारके प्रयत्न करनेमें सफल हो गये है ऐसे बहुतसे मनुष्योंके नाम बतलाओ। उन सबकी अपेक्षा विशेष अच्छा काम करनेके उपलक्ष्यमें मैं उस युवककी पीठ ठोकूँगा।" सर हम्री डेविस भी लिखते हैं कि "मैंने जो बडेसे बडे आविष्कार किये है उनकी सिद्धि मुझे अपनी निष्फलतामें ही प्राप्त हुई है।"

इस वास्ते अब सफलता और निष्फलताका आधार आत्मीक विकास और सकोच पर निर्भर रहा। परन्तु उसीके साथ एक दूसरा प्रश्न भी पूछना आवश्यक है कि हमने दूसरोंके उन्नतिके कार्यमें कितनी सहायता दी है? हम जगतमे है इस कारण जगतका हमारे ऊपर हक है। "Service is the rent we pay for being here" अर्थात् पृथ्वी पर जीवन धारण करके रहनेका किराया जनसेवा करना है। जनसमाजकी सेवा करना यह महापुरुषोंके लिए उनके काममें उत्तेजना देनेवाला बडेसे बडा बल समझा गया है। हमारे जीवनसे ससारकी कुछ उन्नति हुई है—वह कुछ भी अधिक अच्छी स्थितिमें आया है, इसकी अपेक्षा उन्होंने कभी किसी दूसरे स्मारककी आशा नहीं रक्खी। अर्थात् जनसेवा ही महापुरुषोंका सर्वोत्तम स्मारक है। हक्सलीने कहा है कि:—"मुझे अपनी मृत्युके पश्चात् किसी कीर्तिस्तभ (स्मारक) की बिलकुल इच्छा नहीं है। यदि तुम मुझे याद करना चाहो तो 'इसने अपने जाति भाईयोंके लिए यथाशक्ति सेवा की थी' बस, इन्हीं शब्दोंमें मुझे याद करना।"

जगतके इतिहासकी ओर ध्यान दो। प्राचीन तथा अर्वाचीन महापुरुषोंके जीवनचरितोंका मनन करो। जगतके विभवशालियोंने

ही परोपकारका काम किया है, ऐसा नहीं है। अपने देशके लिए लड़ाईमें मरनेवालोंके नाम तक इतिहासमें गाये गये हैं। डाक्टर लिविंगसटन एफ्रिकाके एक जंगलकी झोपड़ीमें मर गया तो भी एफ्रिकाके सिद्दिओंकी ओर उसने जो दयाभाव प्रकट किया था उसके कारण वहाँका प्रत्येक सिद्दी (नीग्रो) प्रेम और पूज्य भावसे उसका नाम उच्चारण करता है।

हरएक विषयमें बाह्य सफलताके ऊपरसे मनुष्यके महत्त्वकी तुलना करनी ठीक नहीं। फ्रैंकलिन साहबने वायव्य दिशाकी ओर मार्ग खोजनेका प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें निष्फलता हुई। दक्षिण ध्रुवकी ओरका मार्ग शोधनेमें स्काट और उसके मित्र निकले थे, लेकिन इसमें उन्हें सफलता न हुई और स्काट मर गया। परन्तु विचारिए, हजारों साधारण सफलताओंकी अपेक्षा इन मनुष्योंकी निष्फलता क्या विशेष महत्त्वकी नहीं है ?

जब हम स्काटके मरणसमयका इतिहास बाँचते हैं और बर्फके तूफानमेंसे कैसी हिम्मत और धीरतासे वह पार हुआ इस बातका विचार करते हैं तब क्या हमारे हृदयमें धैर्यका आविर्भाव नहीं होता ? क्या हमारे अन्तःकरण पर निःस्वार्थताकी छाप नहीं पड़ती ?

दक्षिण ध्रुवकी ओरका मार्ग शोधनेके लिए निकले हुए स्काट साहबका जब मरणकाल निकट आया, तब उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसके कुछ वाक्य ये हैं:—

"Things have come out against us and therefore we have no cause of complaint, but we bow to the will of the Providence, determined still to do our duty to

the last " अर्थात् " सयोग या परिस्थितियाँ हमारे विरुद्ध निकलीं, परन्तु इसके लिए हमे शिकायत करनेका कोई कारण नहीं। हम परमात्माकी इच्छाके आधीन हैं और अन्तिम पलतक हमने अपना कर्तव्य बजानेका दृढ निश्चय कर रक्खा है। "

इतिहासके पत्रो पर अकित होनेके योग्य पराक्रमके काम करनेका सौभाग्य तो बहुत थोडे मनुष्योंके ललाट पर लिखा रहता है, परन्तु प्रत्येक आदमीको अपना सामान्य कर्तव्य तो करना ही पड़ता है। यदि ये सामान्य कर्तव्य ही भलाभाँति बजाये जावें तो इन्हें भी बहुत कुछ समझना चाहिए। क्यों कि इन पर ही जगतकी उन्नतिका बडा भारी आधार है। जब मेशीनरीके छोटे छोटे चके बराबर चलते हैं, तभी उनके आधारसे बडे बड़े चके चल सकते हैं।

जगतके बाह्य युद्धोमें शामिल होनेका प्रसग तो सेनापतियोंको भी क्वचित् ही प्राप्त होता होगा कि जिसमे वे विजय या पराजय पाते होंगे। परन्तुः—

" The earth's bravest truest heroes,
Fight with an inward foe,
And win a victory grander
Than you or I can know "

अर्थात् जगतके बहादुर और सत्यप्रेमी वीर अन्तरग शत्रुओंके साथ लडते हैं और तुम हम जान सके उससे भी अधिक विजय प्राप्त करते हैं। काम छोटा है या बडा है, इससे कुछ मतलब नहीं, परन्तु वह कैसी वृत्तिसे किया जाता है इसी पर कामकी महत्ता है। वास्तविक सफलता या निष्फलता किन्हीं खास सयोगों या परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है। तुम जिस दशामें हो– जिस सयोगमें हो उसीमें अच्छे-

से अच्छा कार्य करो। बस, इसीमे तुम्हारी विजय या सफलता है। तुमने कौनसी पदवी प्राप्त की है इस परसे तुम्हारी महत्ता नहीं हो सकती; परन्तु उस पदवीके लायक होनेके लिए तुमने कैसी मनोवृत्तिसे किस प्रकार प्रयत्न किया है इसी पर महत्त्वका आधार है। यदि जीवनके युद्धमे कोई मनुष्य निष्फल हो, तो उसपरसे यह न समझ लेना चाहिए कि वह निष्फल हुआ। कारण—यदि उस मनुष्यका उद्देश्य ऊँचा हो कि जिसे प्राप्त करने लायक आर्थिक, शारीरिक और सयोगिक बल उसमे न हो, तो बाह्यमे निष्फलता होनी सभव ही है। और अभी जो उसे निमित्त मिले हैं उनकी प्राप्ति पूर्वसचित कर्मोदयके भी आधीन है। परन्तु बाह्य कारण कैसे भी होने-पर और पूर्वकर्म कैसे भी विघ्नविधायक होनेपर उस मनुष्यने कैसा और कितना श्रम किया है—कितने आत्मबलकी आहुती दी है, यह देखना चाहिए। लोगोके अभिप्रायकी परवाह नहीं करनी चाहिए। लोग बाह्य परिणामको देखकर तुम्हारी निष्फलता समझे तो भले ही समझे; कारण कि वे आन्तरिक सफलता देख ही नही सकते, परन्तु तुम्हे तो अप-ने अन्तःकरणकी आवाज पर आधार रखना चाहिए। इस वास्ते अपने शुद्ध अन्तःकरणकी साक्षीपूर्वक यथासाध्य पुरुषार्थ करो—संसारमे तुम्हे चाहे सफलता मिले या निष्फलता। यदि निष्फलता भी हो, याने आशाके अनुसार नतीजा न भी हो, तो याद रक्खो कि जो तुमने प्रयत्न किया है वह निष्फल कभी नहीं जावेगा। यदि तुमने उत्तम कार्य प्रारंभ किया है, कई महत्त्वके पाठ सीखे है, तुम्हारा मनोबल बढता जा रहा है, कुछ आत्मीक बल जाग्रत होता चला है और दूस-रोंके लिए तुम्हारा बर्ताव मार्गसूचक बना है; इस तरह यदि ऐहिक प्रयत्नोंसे तुम्हे ये सब लाभ हुए है तो फिर बाह्यदृष्टिसे तुम निष्फल भी

हुए दीख पडो, तो इससे तुम्हारा बिगाड़ ही क्या है? हिम्मत मत हारो; किंचित् भी निराश मत बनो। कारण कि उपर्युक्त लाभ आत्मसम्बन्धी हैं, नित्य रहनेवाले हैं और वास्तविक सफलताके सहायक है। इस वास्ते मै जगतकी सारी घटनाओको आजसे, अपनी आध्यात्मिक शक्तिको विकसित करनेमें सहायक गिनूँगा और बाह्य सुखदुःखसे सफलता और निष्फलता न गिनते हुए आत्मीक विकास या सकोचको ही सफलता और निष्फलता मानकर बाहरी प्रतिकूल संयोगोको भी अनुकूल समझकर उनका आदर करूँगा और अपनी बाह्य निष्फलताको आत्मीक सफलताके रूपमें परिणत कर दूँगा। *

नोट—इस लेखमें विजय और पराभव अथवा सफलता और असफलताका रहस्य समझाया गया है। धन, पुत्र, वैभव, मान, इज्जत या इच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिमे ही कुछ सफलताका समावेश नहीं होता है, किन्तु ऊँचे विचारोसे स्वीकार किये हुए उत्तम मार्ग पर साहस और निरालस्यके साथ चले जानेमें ही सफलता है। यदि कोई मनुष्य शुद्ध हृदयसे कोई धार्मिक या समाजिक सुधारका कार्य करना प्रारभ करे और उसे वह न कर सके अथवा निन्दित या आपत्तिग्रस्त हो जाय, तो इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वह असफल हो गया, या उसकी हार हो गई। नहीं, उसका शुद्ध आशय, उत्तम मार्ग और उस मार्ग पर दृढ रहनेकी अटल श्रद्धा, ये सब ही उसकी सफलताये या विजयकीर्तियाँ है। गरज यह कि सफलता बाह्य परिणामो पर नहीं किन्तु हृदयकी स्थिति पर निर्भर है। उस मनुष्यके हृदयमें, बाह्य परिणाम चाहे जैसे होने पर भी, जो आत्मसन्तोष अनुभवगोचर

* पर्यूषण पर्वके "जैनहितेच्छु"में प्रकाशित मिस्टर मणीलाल नाथूभाई बी. ए द्वारा लिखित "विजय के पराभव?" शीर्षक लेखका अनुवाद।

होता है, वह सफलताका सुबूत है। उस मनुष्यकी मृत्युके पश्चात् उसकी उच्च भावनाये इस स्थूल जगत् पर कायम रहकर दूसरोको सन्मार्गमें प्रेरित करेगी—साहस बँधायगीं, इस लिए यह भी उसकी सफलताका एक विशेप सुबूत है और उस मनुष्यकी वह इस लोकमें 'असफलता' के नामसे पुकारी जानेवाली 'सफलता' उसके आत्माका विकास करके उसे उच्चतर लोकमें ले जायगी। इससे भी यही सूचित होता है कि वह सफल हुआ है न कि असफल विजयी हुआ है न कि पराभूत।—V. M. Shah

अनुवादक—
बुधमल पाटणी, इन्दोर।

सर्वसाधारण जनोंकी शिक्षा।

मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे माछ्म होता है कि इस देशमे ३० करोड़ नरनारी निवास करते है। पृथिवी पर ऐसा कोई कार्य नहीं है जो इन ३० करोड़ नरनारियोके द्वारा सिद्ध न हो सकता हो। परन्तु देखते है कि भारतवासियोसे इच्छित कार्य सिद्ध नहीं होते। इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। लोहा यदि गढ़कर शस्त्र (हथियार) बना लिया जाय, तो उससे और तो क्या पत्थर भी काटा जा सकता है; परन्तु मामूली लोहेमे यह गुण नही होता। लोहा जब तरह तरहके उपादानोसे तैयार किया जाता है—तपाया, पीटा और शान पर धरा जाता है तब ईस्पात बनकर काटनेके काम आता है। मनुष्यका भी यही हाल है। वह जब प्रस्तुत, उत्तेजित और शिक्षित किया जाता है तभी उसके द्वारा काम होता है। भारतके ३० करोड मनुष्योसे

कार्य सिद्ध न होनेका कारण यह है कि भारतमें लोकशिक्षा नही है—यहाँ सर्वसधारण लोगोंको शिक्षा नहीं मिलती। जो लोग इस देशकी उन्नति करनेके लिए कटिबद्ध हुए है, उन लोगोंका ध्यान भी सर्व साधारणकी शिक्षाकी ओर नहीं जाता है; वे अपनी अपनी पण्डिताई दिखलानेमें ही मस्त है।

यह कभी सभव नहीं हो सकता कि विद्यालयोंमें पुस्तकें पढाकर व्याकरण, साहित्य, गणित सिखलाकर ३० करोड़ आदमी शिक्षित वनाये जा सके। इस शिक्षाको हम शिक्षा ही नहीं कहते और इस प्रकारसे शिक्षा दी भी नही जा सकती। हमारी समझमें शिक्षा उसे कहना चाहिए जिससे समस्त चित्तवृत्तियोका विकास हो जाय-वे अपने अपने कार्यमे दक्ष हो जायें, और कर्तव्य कार्योंके करनेमें उत्साह या स्फूर्ति वनी रहे। केवल पुस्तकोंका रट लेना या परीक्षा पास कर लेना ही शिक्षा नहीं है। जिस उपायसे हमारी बुद्धिका विकास हो—हम इहलोक परलोक सम्बन्धी कार्य करनेमे समर्थ हो जायँ वही शिक्षा है; फिर वह चाहे स्कूलो—विद्यालयोंमें मिले और चाहे कहीं और।

यूरोपमें सर्वसाधारण लोगोंमे शिक्षाविस्तार करनेके अनेक उपाय हैं। एक तो वहाँ नीचेसे लेकर ऊँचे तक, गरीबसे लेकर अमीर तक सवहीको स्कूलोंमें पढाने लिखानेके प्रवन्ध है। इसके सिवाय वहाँके समाचारपत्र शिक्षाप्रचारके वहुत वडे साधन हैं। उनके द्वारा शिक्षाविस्तारमें कितनी सहायता पहुँचती है, इस वातको इस देशवाले सहज ही नहीं समझ सकते।

इस देशमे प्रत्येक भाषाके इने गिने समाचारपत्र निकलते हैं और उनके ग्राहक इतने थोडे होते है कि मुश्किलसे उनका खर्च चलता है। देशी भापाओंके पत्रोमेंसे तो दश बीस पत्रोंको छोडकर शेष सब

रोते झीकते हुए चलते है। किसीके पाँचसौ ग्राहक है, किसीके हजार; किसीको हजार आदमी पढते है और किसीको दो हजार। यूरोप अमेरिकामे एक एक प्रान्तमें दश दश बीस बीस हजार पत्र निकलते है, कई कई लाख उनकी ग्राहकसंख्या है और करोड़ो आदमी उन्हे पढते है। अमेरिकामे केवल दैनिक पत्रोकी ही संख्या इस समय २३ तेईस हजार है। जर्मनीके एक बर्लिन शहरसे ही ५० दैनिक-पत्र निकलते है! फ्रासके टा और जनरल नामक पत्रोकी ग्राहकसख्या पन्द्रह पन्द्रह लाखके लगभग है! इसके सिवाय वहाँ नगर नगर गावगाँवमे सभाओं और व्याख्यानोका प्रबन्ध है। जिसे कुछ करना होता है वह अपने पड़ोसियोको एकट्ठा करके सुना और समझा देता है। इसके बाद उसकी कही हुई बाते सैकडो सवादपत्रोमे प्रकाशित होकर सैकडो हजारों नगरों और ग्रामोमे प्रचारित होकर सोची समझी जाती है और उनसे लाखो लोग शिक्षित होते है। मामूलीसे मामूली भोजो और निमन्त्रणोमें वहाँके लोग स्वादु खाद्य चर्वण करते करते जो शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं उसका हमे कोई अनुभव भी नही है। उक्त भोजो और निमंत्रणोमे वहाँ व्याख्यानोका खास तौरसे प्रबन्ध किया जाता है। लोग भोजन भी करते है और थोडी बहुत शिक्षा भी प्राप्त कर लेते है। आजकल वहाँ मैजिक लालटेनो और सेनीमेटोग्राफोकी सहायतासे भी साधारण शिक्षाका प्रचार किया जाता है। हमारे देशमे जो समाचारपत्र है—उनकी दशा अच्छी नहीं है यह तो पहले ही कहा जा चुका है; अब रहे व्याख्यान, सो वे लोकशिक्षाकी ओर दृष्टि रखकर बहुत ही कम दिये जाते है। कांग्रेस आदि बड़ी बड़ी सभाओमे, उनके बड़े बड़े व्याख्याता जो कुछ कहते हैं वह देशीय भापाओंमे नही सात समुन्दर पारकी अँगरेजी भाषामे

कहते है। इस लिए उसे बहुत थोडे लोग सुनते पढते हैं और बहुत थोडे लोग समझ सकते है। जिन सर्वसाधारण लोगोकी दशा सुधारनेके लिए इन व्याख्यानोमे कण्ठशोप किया जाता है, उन बेचारोंको माऌम ही नहीं होता कि हमारे लिए क्या किया जा रहा है और उससे वास्तवमे हमें लाभ होगा या नहीं। देशके जो बडे बडे विद्वान् और लेखक है, वे कभी कुछ लिखनेकी कृपा करते हैं तो देशी भापाओके पत्रोमे नहीं—ॲगरेजीके पत्रोमे लिखते है। धार्मिक और सामाजिक सभाओमे जो व्याख्यान और उपदेश होते है, उनमे भी लोकशिक्षाकी ओर ध्यान नही रक्खा जाता। श्रोता चाहे समझे चाहे नही, व्याख्याता महाशय अपनी जटिल भाषामय गहरी तत्त्वचर्चामे गोता लगाने लगेगे और दश पॉंच लोगोसे प्रशसावाक्य सुनकर आपको कृतकृत्य समझने लगेगे। जिन साधारण सरल और नित्य व्यवहारोपयोगी वातोंके ज्ञानकी लोगोको बहुत बडी जरूरत रहती है उनका उपदेश न शास्त्रसभाओमे मिलता है और न व्याख्यानसभाओमें।

इस तरह वर्तमानमें हमारे यहॉ लोकशिक्षाका—सर्वसाधारणको शिक्षित बनानेके उपायोंका एक प्रकारसे अभाव हो रहा है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यहॉ चिरकालसे ही इनका अभाव रहा है। यदि यहॉ लोकशिक्षाके उपाय न होते, तो भगवान महावीरके उपदेशोंसे सारा देश कैसे व्याप्त हो जाता? महात्मा शाक्यसिंहका धर्म देशदेशान्तरोंमे कैसे फैल जाता? विचार करके देखो कि जिन गूढ दार्शनिक तत्त्वो और कूट तर्कोंके समझनेमें आधुनिक दार्शनिकोंके मस्तकोका पसीना एडी तक जा पहुॅचता है उन दुर्बोध्य जैन-बौद्धधर्मोंको महावीर—शाक्यसिंह और उनके शिष्य

समग्र भारतवर्षको—गृहस्थ गृहत्यागी, पण्डित मूर्ख, ब्राह्मण शूद्र, आर्य अनार्य आदि सबको—कैसे समझा जाते यदि उस समय लोक-शिक्षाके सामान न होते? उनके, बाद और भी जो जो धर्मप्रचारक हो गये हैं उन्होंने भी अपने अपने धर्म लोकशिक्षाके साधनोंके द्वारा ही प्रचलित किये थे। परन्तु आजकल वे साधन नहीं रहे हैं इसी कारण ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, देवसमाजादि नवाविष्कृत धर्मोंमें इनेगिने शिक्षित लोग ही देखे जाते है— साधारण लोगों तक इनकी पहुँच ही नहीं हुई।

पुराने जमानेमे लोकशिक्षाके बड़े भारी साधन थे कथकोंके कथा-कीर्तन, साधु महात्माओंके विहार और भाटोंके गीत आदि। उस समय गाँव गाँव और नगर नगरमें कथक लोग सीताका सतीत्व, अर्जुनका वीरधर्म, लक्ष्मणका सत्यव्रत, भीष्मका इन्द्रियविजय, सुदर्शनका अटल पत्नीव्रत, नेमिनाथका संसारत्याग, और राजीमतीकी एक-निष्ठाको सुन्दर सुकोमल भाषामें सर्व साधारणके सामने विवृत करते थे। सदाचार परोपकार धर्मके सजीव पुतले साधु महात्मा गाँव गाँवमे पहुँचते थे और सीधी सरल शिक्षायें देते थे। जो हल जोतते थे, जो कपड़े बुनते थे, जो मजदूरी करते थे, और जो कभी भरपेट पाते थे कभी न पाते थे वे भी—इस तरह साधारणसे भी साधारण लोग उक्त कथाओंसे और शिक्षाओंसे ज्ञानलाभ करते थे। वे सीखते थे कि आत्मा अमर है, पुण्य पाप है, पापका फल बुरा और पुण्यका फल अच्छा है, यह मनुष्यजन्म अपने ही लिए नहीं है, दूसरोंका उपकार करनेके लिए है, अहिंसाके समान धर्म नहीं है, धर्मनिष्ठा बड़ी चीज है, धर्मरहित मनुष्य पशुके तुल्य है। इत्यादि। भाटोंका वीरसंकीर्तन दुर्बलसे दुर्बल स्त्री पुरुषोंके हृदयमे क्षात्र धर्मका सोता खोल देता था और देशधर्म-

के लिए प्रत्येक मनुष्यका क्या कर्तव्य है सो भलीभाँति प्रकट कर देता था। वे सब शिक्षायें अब कहाँ हैं ? वे कथक कहाँ चले गये, यशोगाथायें गानेवाले कहाँ गये ? क्यों चले गये ? इस देशके नवयुवकोंकी कुरुचिके कारण। उन्हें अब पुरानी कथाये पुराने ढगके गानें और यशोगाथाये अच्छी कहाँ लगती हैं ? अब तो थियेटरोंके आगे-फोनोग्राफोंके आगे सब कुछ बाहियात मालूम होता है। इन अल्प-स्वल्प अँगरेजी पढे हुए, स्वधर्मभ्रष्ट, असार युवकोंके दोषसे लोकशिक्षाके साधन लुप्त हो रहे है। यह बात दृढताके साथ कही जा सकती है कि अँगरेजी शिक्षाके प्रभावसे लोकशिक्षाके साधन बढ़ते नहीं हैं धीरे धीरे घटते ही जा रहे हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है ? इसका मूल कारण क्या है ? सुनिए यहाँके शिक्षितों और अशिक्षितोंमें समवेदना नहीं है। शिक्षित अशिक्षितोंके हृदयको नहीं पहचानते। उनकी ओर एक नजर भी नहीं डालना चाहते। उनके सुखदुःखोंको अपना सुखदुःख नहीं समझते। उनसे मिलना जुलना तक उन्हे पसन्द नहीं। वे इस बातके जाननेकी उत्कण्ठा तो रखते हैं कि विलायतकी अमुक सभामें अमुक साहबने अपने व्याख्यानमे क्या कहा, परन्तु अपने पड़ौसके किसानोकी, जुलाहोकी, उन्हे खबर ही नहीं है कि वे क्या करते हैं, किस तरह दिन व्यतीत करते है, उनके सुखदुःख क्या हैं, उनकी दशा कैसी है। वे लोग यह नहीं समझते कि भारतवर्ष इन्हीं अशिक्षित लोगोंका देश हैं—यहाँके जो कुछ हैं सब ये ही हैं। इनकी सख्या २९॥ करोडसे भी अधिक है। यदि हमने इन्हींके मनको न पाया, इन्हींके सुखदुःखोंको न पहचाना, तो फिर किया ही क्या ? यदि हम धडाधड अँगरेजी बोलने लगे और नीचेसे ऊपर नक साहब बन गये तो क्या

हुआ ? हमारे भाई तो जहाँके तहाँ। पडे है—वे तो अशिक्षित ही है–उनके दु:खोंका तो कुछ पार ही नही है । इस वातको हम शिक्षित कहालानेवाले क्यो नहीं समझते ?

शिक्षित जो कुछ समझते है–जो कुछ सीखे है, वह यदि अशिक्षितोको एकट्ठे करके–पास बिठा करके समझाने लगे, तो वे बहुत जल्दी शिक्षित वन जावे । यह बात देश भरमे प्रचारित होना चाहिए–शिक्षित मात्रको यह जान लेना चाहिए । किन्तु यह तब होगा जब शिक्षित लोग अशिक्षितोसे मिलने जुलने लगेगे और उनके सुख-दु:खको अपना सु:खदुख समझने लगेगे ।

—शिक्षाप्रचारक ।

परदेकी प्रथा ।

(पाटलीपुत्रसे उद्धत)

यह प्रथा भारतमे कितने ही वर्षोंसे प्रचलित है । पूरा पता नहीं चलता कि यह प्रथा यहाँ कब और कैसे घुसी । इतना तो अवश्य निश्चय है कि यह वैदिक तथा ऐतिहासिक समय मे प्रचलित नहीं थी। उसके वाद ही की है । मनु ने भी इसे मना किया है । महाभारत आदि मे स्त्रियोका सभाओमे समावेश सूचित है । इसका कोई ठीक पता नहीं चलता कि परदा किसके प्रभाव का फल है । बहुतो का यह कहना है कि यवनो के आगमन के साथ साथ यह प्रथा यहा अनिवार्य्य हो गई । क्योंकि मुहम्मद तुगलक आदि कई वादशाहो के आचरण पर कई एक इतिहासवेत्ताओ ने कटाक्ष किया है । अपनी मान मर्य्यादा के भय से तथा प्रतिष्ठारक्षणार्थ स्त्रियो तथा युवती

वालाओ को घर के भीतर ही रखना उचित समझा जाता था। क्योंकि शक्तिहीन होने के कारण हमारे देश के सभ्य लोग इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय निश्चय नही कर सकते थे। इतना होने पर भी वे लोग स्त्रियों की खोज मे घरो मे घुस जाया करते थे।

यह प्रथा उस समय अत्यावश्यकी समझी जाकर व्यवहृत हुई और धीरे धीरे हमारे यहा के लोगों ने उसे सर्वदा के लिये नियम ही वना डाला। आज कल वहुतों की राय है कि इसे उठा ही देना चाहिये। वे लोग परदे के विरुद्ध कई कारण वतलाते हैं। उनमे से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

(अ) घर मे वन्द रह कर स्त्रिया दुर्वल तथा रोगग्रस्त हो जाती हैं। यह प्राय देखा गया है कि वालिकाए जव माता के घर रहती हैं उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। ज्यो ही अपने पति के घर आती हैं त्यो ही उन्हे भिन्न भिन्न प्रकार की वीमारिया होने लगती हैं और उनका सारा शरीर पीला सा मालूम पडने लगता है। कभी कभी तो उन्हे ऐसे ऐसे रोगो का सामना करना पडता है कि वे अन्तदशा को प्राप्त हो जाती हैं।

(व) परदे के कारण उन्हे घर के भीतर ही वन्दी के समान रहना पडता है। इससे उनका शारीरिक व्यायाम कुछ नहीं होने पाता। यह तो स्वयंसिद्ध विषय है कि विना शारीरिक व्यायाम के पेशिया ढीली ढाली हो जाती है और शरीरके सव यन्त्र अपना अपना कार्य्य पूर्णरूपसे करनेसे वचित रहते है। भोजन उचित रूपसे पचने नही पाता और न मासपिण्ड की वृद्धि होने पाती।

(स) बाहर न निकलने के कारण प्राय: सव स्त्रिया स्वभावतः लज्जावती हो जाती है और चाहे उनका प्राणान्त क्यों न आ पडे,

वे अपना मुख दूसरो को दिखाने मे सर्वदा हिचकती हैं। ऐसा करने से उन्हे अनेक कठिनाइया भोगनी पड़ती हैं।

(द) इन लोगो का कहना है कि स्त्रियां युवा होने पर जब अपने पिता के घर रहती है तब उनके लिये परदा नहीं रहता पर ज्यो ही वे ससुराल आती हैं त्यो ही उन्हे कारागार मे फसना पड़ता है। ये लोग इस सम्बन्ध में प्रायः यह प्रश्न किया करते है कि "क्या वे बालिकाए जब अपने पिता के घर रहती है तब उनका चरित्र दूषित नही होता और ज्यो ही ससुराल आती है त्यों ही उनके आचरण में दाग लगनेकी सम्भावना होने लगती है? क्या वे यहा आते ही अविवेकिका हो जाती है? उन्हे तो अविवेकिका होनेकी अधिक आशङ्का नैहर में ही है। क्योकि वहा उनके साथ पति नही होता और ससुराल में पति साथ होता है।"

(ई)–स्त्रियो को परदे के बाहर रखने से, हमलोग उनको साथ ले हवा खाने जा सकते हैं। ऐसा करने से उन्हे टहलने का परम आनन्द लाभ होगा। प्रिया के साथ दिन भर रहने से मनुष्य को सांसारिक चिन्ता की वेदना अत्यल्प ज्ञात होती है।

(फ) कोई २ तो ऐसा कहते हैं कि स्त्रिया भी मनुष्य ही है। उनको पुरुप के समान अधिकार क्यो न दिया जाय? और यदि आचार व्यवहार की बात गणना मे ली जावे तो शुभ आचरण में उनकी ही सख्या विशेप निकलेगी। क्योंकि उनकी लज्जा उनके आचरण को पवित्र रखने में पूरी सहायता देती है। परिणाम उसका यह होता है कि वे दुष्कर्मोंसे बहुत बची रहती है; पर यह बात पुरुषो में नही। उनका मन चचल होता है। ऐसी दशा में स्त्रियो को कारागार की तरह घरमें बन्द रखना कदापि उचित नहीं।

ससार में जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते है उन सब में गुण तथा दोष दोनों ही अवश्य पाए जाते हैं। हमलोग यह विचार करके उनका ग्रहण और त्याग करते है कि उनमें गुण अधिक हैं कि दोष। यदि गुण अधिक होता है तो स्वीकार करते हैं और यदि दोष अधिक देखा जाता है तो त्याग करते हैं। अब यह विचार करना है कि परदे से हमको अधिक लाभ है वा हानि। यदि उससे हानि अधिक है तो उस का परित्याग ही उपयुक्त है। यह बात प्राय· किसी से छिपी नही है कि लुच्चों गुण्डो की सख्या आज भी कम नहीं है। यह भी प्रायः देखा जाता है कि वे अच्छे अच्छे घरोंकी स्त्रियों पर कुदृष्टि डालने से बाज नहीं आते। स्त्रिया जब कि घरके बाहर निकलने नहीं पातीं तब यह हाल है और जब उन लोगों में कुछ परदा नहीं रह जायगा उस समय न जानें कैसी कैसी आपत्तिया आने लगेगी। यहा की जिन जिन जातियों में यह प्रथा प्रचलित नही है, उनमे अनेकानेक गड-बडी देखी जाती है। विशेषतः बिहार की स्त्रियों के लिए परदे की प्रथा पाठशाला का काम देती है जिस मे वे अपना आचरण शुद्ध रखना सीखती है।

मेरे कहनेका सार यह है कि जब तक बिहारमें स्त्रीशिक्षा सामान्य रूप से भी न होगी और हमारी अबलाए विद्याकी निहाई पर कूटकर ठोस न बनाई जायगी तब तक परदा-पद्धतिका यहा पर रहना बहुत जरूरी है। पहले उनमें विद्याप्रचार होना चाहिए जिस से वे आत्म-रक्षामे समर्थ हों। इस लिए मै परदेकी प्रथा उठा देने के विरुद्ध हू।

पाण्डेय लक्ष्मीश्वर शर्मा।

नोट—यह लेख 'पाटलिपुत्र' से उद्धृत किया जाता है। लेखक महाशयने इसे 'बिहार' प्रान्तको लक्ष्य करके लिखा है। उनके ख्यालमें

'परदे की प्रथा' उस समय तक अच्छी है जब तक स्त्रियोंमें विद्याका प्रचार नहीं हुआ है—वे विवेकशालिनी नहीं हो गई हैं और अपने सतीत्वकी—अपनी इज्जतकी रक्षा करनेकी उनमें स्वाधीन शक्ति नहीं आगई है। यदि उनकी अवस्था इतनी अच्छी हो जाय तो फिर परदेकी प्रथा रखनेकी कोई जरूरत नहीं। गरज यह कि परदे-की प्रथाका अच्छापन या बुरापन देश या समाजकी अवस्था विशेष पर निर्भर है। किसी अवस्थामें वह लाभकारी है और किसी अव-स्थामें हानिकारी। इस विषयमें यदि कोई सज्जन अपने विचार प्रका-शित करना चाहें तो कर सकते हैं। —सम्पादक।

एक सेठजी कैसे सुधरे?

(१)

सेठ शोभाचन्दजी अपने नगरके सबसे बड़े भारी धनी थे। उस नगरके आसपास सौ सौ कोसकी दूरी तक भी कोई उनके जोड़का धनाढ्य न था। धन इतना अधिक था कि उनके घरमें उसे रखने-के लिए जगह न थी। धनकी अपेक्षा तृष्णारूपी धन तो उनके पास और भी अधिक था।

सेठजी घरके द्वारके आगे एक चारपाई डाले हुए पड़े रहते थे और कोई सगा-सम्बन्धी या हितू-मित्र कोई चीज सहायताके तौर पर या उधार न ले जावे, इसकी सावधानी रखते थे। बेचारे भिखमंगे तो उस जगह पैर रखनेमें भी डरते थे। क्यों कि उन्हें देखते ही सेठजी बन्दरके समान दन्तपंक्ति दिखलाकर भिड़कते थे और डारविन साहबके इस सिद्धान्तको सिद्ध कर दिखाते थे कि आदमी बन्दरसे बना है।

सेठजीके इन गुणोंके कारण लोग उन्हे लोभानन्द कहने लगे थे। यह नाम इतना प्रसिद्ध हो गया था कि बहुतसे लोग तो उनके असली नाम 'शोभाचन्द' को भूल ही गये थे।

सेठजीकी कजूसीके मारे जिस तरह सारा नगर तग आ गयाँ था उसी तरह उनके घरके लोगोंकी—लडके और बहुओंकी भी नाको दम आ गई थी। परन्तु उनके आगे किसीकी भी दाल नहीं गलने पाती थी। सब चाहते थे कि आप शीघ्र ही इस पृथ्वीको अपने बोझेसे हलकी कर दें; परन्तु इन दुराशिषों (बद-दुआओ) का समूह बहुत बडा हो जाने पर भी (ये भावनायें स्वार्थयुक्त थीं इस कारण) सेठजीके सिरमे भी कभी दर्द न होता था। उन्हे तो मानो और नई जवानी आती जाती थी। उनका शरीर ऐसा तगडा था कि यदि थोडी बहुत लोभकी मात्रा कम होती तो शायद वे इस उमरमें भी किसी भाग्यशालिनी बालिकाका पाणिग्रहण किये बिना न रहते।

एक दिन एक ब्राह्मण सेठजीके द्वार पर आया। उसे अपने लडकेको विद्याध्ययन करनेके लिए काशी भेजना था और उसके लिए मार्गव्यय (सफर-खर्च) की आवश्यकता थी।

भादों सुदी १४ का दिन था। जैनधर्मके उपासक लोभानन्दके लिए यह दिन बहुत ही बहुमूल्य था। ब्राह्मण जानता था कि इस दिन श्रावक लोग बहुत ही अच्छे परिणाम रखते हैं और अपने परम पिता महावीरके दान-शील-तप-भावनारूप चार गुणोका अनुकरण करनेके लिए शक्तिभर प्रयत्न करते हैं। जिन्होने त्यागी होनेके पहले महान् दानी बनकर अनेक जीवोंको सुखशान्ति प्रदान की थी, उन्हीं महावीर भगवानका भक्त—यह लोभानन्द कमसे कम आज तो अवश्य ही अपना कृपण-स्वभाव छोड देगा, यह विश्वास करके ब्राह्मण सेठजीके पास

आया और ज्यो ही वे मन्दिरके जानेके लिए तैयार हुए त्यो ही सामने आकर बोला—" आशिर्वाद !"

तत्काल ही जवाब मिला—"अरे, तुझे क्या सन्निपात हो गया है ? लात तो नही खायगा ?"

"लात मार करके भी यदि आप मेरे विद्यार्थी पुत्रको सहायता दे सके तो मै आपका बहुत बड़ा उपकार मानूँगा"। यह कहकर ब्राह्मण सेठके पैरों पड़ गया।

"अरे धूर्त मिथ्यादृष्टी ! चल, यहाँसे चला जा ! तू मेरे लाखों रुपयोंके शास्त्रव्याख्यानमे विघ्न क्यो डाल रहा है ? हमारे साधुजी महाराज लाख लाख रुपयेकी एक एक बात सुनाते हैं, उसमे तू अन्तराय बन रहा है !"

"सेठजी, जरा शान्त हूजिए। मै तुम्हारे व्याख्यानमे अन्तराय नहीं डालता हूँ; बल्कि व्याख्यानका जो असली लाभ है, उसे देनेके लिए आया हूँ। तुम्हारे साधुजी तुम्हें प्रतिदिन दान शील-तप-भावनाका उपदेश देते है; परन्तु उन 'शास्त्रके बैंगनोसे' अब तक तुम्हारी आत्मा-का कुछ भी कल्याण नहीं हुआ। इस लिए मैं आपको उक्त चारमेका पहला पाठ सिखलानेके लिए आया हूँ। दान मुझे ही दो और इसी समय दो। इससे तुम्हारे साधुमहाराजका उपदेश कार्यमे परिणत हो-जायगा और इसीसे तुम्हारे भोगान्तराय कर्मकी क्षीणता होगी।"

"अरे, तू तो बड़ा बतक्कड़ निकला ! अब क्या बोलता ही चला जायगा ? चल, निकल यहाँसे ! साधुमहाराज जो कहते है उसमे तू क्या समझे ? ब्राह्मण तो मिथ्यात्वी होते हैं; वे बेचारे जैनधर्मका स्वाद क्या समझे ? शास्त्र जो कहते हैं कि दान साधुओंको देना जिसमे एक कौड़ीका भी खर्च नहीं ! और पैसा खर्च करनेसे तो उलटा पाप

होता है, ऐसा साधुमहाराज रोज ही कहते है । और मुझे तो यह बात सोने सरीखी माळूम होती है; क्यों कि इसमें एक तो 'आरंभ समारभ' नहीं होता और दूसरे तिजोरीकी रक्षा होती है। हमारे श्रावकोंके गुरु कैसे अच्छे होते हैं! तुम्हारा ब्राह्मणोंका क्या? घरमें हुआ तबतक खाया और न हुआ तब भीख माँगने लगे। तुम्हें कुछ शरम थोडे ही है।"

"नहीं, सेठजी, हमें भीख माँगनेमें शरम नहीं लगती। अच्छे कामके लिए भीख मॅागनेमें भी हम नहीं शरमाते, परन्तु तुम लोग तो औरोंके गले काट-काटकर धन कमाते हो, तो भी शरमिंदा नहीं होते। तुम्हारे गुरुमहाराज यदि तुम्हें दानमें पाप बतलाते है और यह कहते हैं कि साधुके अतिरिक्त अन्य किसीको दान करनेमें पाप है, तो मुझे कहना पड़ेगा कि या तो वे तुम्हारे असली धर्मको ही नहीं समझते, या मनुष्य जातिके और मनुष्यत्वके ही शत्रु है।" ब्राह्मणसे इतना कहे बिना न रहा गया।

परन्तु ये शब्द उसके मुँहसे पूरे निकल भी न पाये थे कि सेठजीने अग्निशर्मा बनकर उसे एकके ऊपर एक इस तरह चार छह लातोंका दान दे डाला! दुर्बल ब्राह्मण मूर्च्छित होकर गिर पडा और सेठ उसकी यह दशा देखकर मुँह फाडकर रह गये! घरमें कोई नौकर तो था ही नहीं—नौकरका खर्च उठानेकी उनमें शक्ति कहाँ? इस लिए लगे पडौसियोंसे चिल्लाकर कहने—"अरे भाइयो, जरा यहाँ आकर मुझे सहायता करो जो मैं इस ब्राह्मणको उठकर घरमें डाल दूँ। नहीं तो कोई जान लेगा और दरबारमें जाकर कह देगा, तो राजा साहब मेरा घरबार लूट लेंगे और तब मुझे भी इस ब्राह्मणके समान आशिर्वाद दे-देकर लाते खाना पड़ेंगीं।"

पड़ौसी सुनी अनसुनी कर गये। वे तो उलटा यों कहने लगे कि तेरी लक्ष्मी यदि तेरे यहाँसे उठकर राजा साहबके भंडारमें पहुँच जायगी तो कभी न कभी किसी दुखियाके दुख टालनेके काममें तो आयगी!

(२)

थोड़ी देरमे ब्राह्मणकी मूर्च्छा दूर हो गई। वह स्वस्थ होकर उठा और वहाँसे चुपचाप नगरके बाहर एकान्तमें जाकर ध्यान करने लगा। उसके समाधिमे स्थिर होते ही कोई देव प्रकट हो गया और ब्राह्मणने उससे सहायता करनेकी प्रार्थना की। वह बोला—"तुम जब काशी-मे पढ़ते थे तब वेष पलटनेकी विद्या सीखे थे। उस विद्याको यदि तुम इस समय उपयोगमे लाओगे तो बहुत लाभ होगा। लोभानन्द-का भाई यहाँसे कुछ ही दूर एक गाँवमे बीमार है। उसकी सेवा-शुश्रूषाके लिए वह आज ही जायगा और ८—१० दिन तक वापस नहीं आयगा। तुम उसका रूप धारण कर लो और उसके घरमें प्रवेश करके जितना चाहो उतना धन ढो ढोकर अपने घर ले जाओ।"

ब्राह्मणने हाथ जोड़कर कहा—"देवराज, नही मैं अपनी विद्याको इस तरह भ्रष्ट नहीं करूँगा। मै तुम्हारी कृपाका ऐसा दुरुपयोग नहीं करना चाहता। तुमने जो युक्ति बतलाई है इसमे सन्देह नहीं कि वह बदला लेनेके लिए बहुत ही अच्छी है; परन्तु मैं अपने वैरका बदला अपने लिए नहीं परन्तु उस सेठकी आत्माके लिए लेना चाहता हूँ। मै इसका बदला नहीं लेना चाहता कि मेरी उसने सहायता न की; किन्तु 'भरेपूरे' घरमें आकर वह मूर्ख खाली हाथ चला जायगा, यह देखकर मुझे दया आती है और उसे सहायता करनेके

लिए मैं मौका खोज रहा हूँ। वह बेचारा दीपकमेंसे अँधेरा प्राप्त करता है, गुरुके पाससे अज्ञान एकत्र करता है और धर्मके नामसे अधर्मके गढेमे गिरता है। इस लिए मै कोई ऐसा खेल करना चाहता हूँ जिससे उसे वास्तविक शिक्षा मिले। वह भले ही अपनेका श्रीमन्त समझता हो, परन्तु उसका सकीर्ण हृदय उसकी निर्धनता प्रकट करनेके लिए काफी है। मेरे पास धन पैसेकी अपेक्षा हजारों गुणी कीमती विद्या है, इस लिए मैं उसके समान नीचताका काम न करूँगा—उसके धनको चुरानेकी इच्छा मैं कभी स्वप्नमें भी न करूँगा।"

यह कहकर ब्राह्मण शहरकी ओर चल दिया। वह अभी दश कदम ही चला होगा कि इतनेमें उसने लोभानन्द सेठको एक ताँगेमें बैठकर जाते हुए देखा।

(३)

ब्राम्हण सीधा लोभानन्दके घरकी ओर गया। अब वह अपनी विद्याके बलसे ठीक लोभानन्दकी शकल सूरतका बन गया था। पिताको इतनी जल्दी लौटते देखकर लडके पूछने लगे—"क्यों पिताजी, क्या हुआ? इतनी ही देरमें कैसे लौट आये?" उत्तर मिला कि "रास्तेमें मुझे खबर मिली कि तुम्हारे चाचाको आराम हो गया है, इस लिए लौट आया।"

वेषधारी लोभानन्दने उस दिन तो कुछ भी नहीं किया। दूसरे दिन सवेरे सब लडकोंको एकट्ठा करके वह बोला—"आज मैंने स्वप्नमें देखा है कि तू अब थोडे ही दिनोंमे मर जाऊँगा और आज तक मैंने जो कृपणता की है उसके कारण मुझे नरकमे मार खानी पडेगी; परन्तु 'यदि तू गरीब-गुरबोंको अच्छी तरह दान-पुण्य करेगा तो इस विपत्तिसे बच जायगा।" इस तरह एक देवकी वाणी सुननेसे अब

तो मेरे जीमें यही आता है कि जितना मुझसे बन सके उतना दान करूँ। इस लिए मेरे प्यारे पुत्रो, लक्ष्मीको जी भर खर्च करो और दीन दुखियोंकी आत्माओंको शीतल करो।'

यह सुनकर लड़के बड़े खुश हुए। उन्होने तत्काल ही गढ़ा हुआ धन बाहर निकाला और उसका खुले हाथो खर्च करना शुरू कर दिया। केवल छह ही दिनोमे तीन चतुर्थांश (पौना) धन खर्च हो गया! सातवें दिन जिस समय लोभानन्दके आँगनमें हजारों भिक्षुक एकट्ठे हो रहे थे और उसके लड़के मुट्ठी भर भरके पैसा बाँट रहे थे, उसी समय लोभानन्द अपने भाईके यहाँसे लौटकर वापस आया। उसे दूरहीसे देखकर वेषधारी ब्राह्मण उन लड़कोंसे कहने लगा—"बेटाओ, उस दिन मुझे स्वप्नमे जिसने अच्छी सम्मति दी थी वही देव देखो, वह आ रहा है। उस दिन भी यह मुझे इसी मेरे ही वेशमे मिला था। परन्तु खबरदार, कुछ सन्देह करके तुम सब उसका किसी तरह अनादर अपमान नहीं करना, उसका अच्छी तरह सत्कार करना ही अपना कर्तव्य है।"

लड़कोंने ऐसा ही किया। लोभानन्दको उन्होंने बड़े आगत-स्वागतके साथ लिया और पलग पर तकियेके सहारे लिटाकर वे उसकी पगचपी करने लगे। परन्तु लोभानन्द तो अपने धनको पानीकी तरह बहते हुए देखकर आपेमे नहीं रहा—कोलाहल मचाने लगा। वह चिल्लाकर बोला "अरे मूर्खो, तुम यह क्या कर रहे हो? क्या मैंने तुम्हे इसी लिए जन्म दिया था कि तुम मेरे धनको इस तरह उड़ा दोगे?"

ब्राह्मण शान्तिपूर्वक बोला—"बेटाओ, तुम अपने पूज्य देवकी अवमानना न करना; वे तुम्हारी जाँच कर रहे हैं—तुम्हे कसौटी पर कस रहे हैं।"

अब तो वणिकका क्रोध और भी बढ़ा। और कुछ उपाय न देख-कर वह सीधा दरबारकी ओर दौड़ा और राजाके पास चिल्लाकर कहने लगा—"धर्मावतार, कोई धूर्त मेरा वेषधारण करके मेरा सारा धन पानीके माफिक बहा रहा है। मेरी रक्षा करो।" राजपुरुष तत्कालें ही दौड़े और ब्राह्मणको तथा सेठके पुत्रोको कचहरीमें घसीट ले गये।

ब्राह्मण और सेठ दोनो ही आप आपको लोभानन्द और उन लड़कोका बाप बतलाने लगे। राजा साहब बडी उलझनमे पडे। आखिर उनके मत्रीने पानी भरनेकी एक छोटी झारी मँगवाई और कहा—"तुममेसे जो इस झारीके मुँहमेसे प्रवेश करके टोंटीमेसे निकल जायगा, वही सच्चा लोभानन्द समझा जायगा।"

ब्राह्मण देवता इस युक्तिसे ठगाये जानेवाले नहीं थे—वे मत्रीका मतलब समझ गये; किन्तु उनका आशय दुष्ट नहीं था इस लिए उन्होंने झारीमे प्रवेश करके मत्रीको यह जान लेनेका मौका दिया कि वह लोभानन्द नही, परन्तु एक विद्यावलवाला ब्राह्मण है और फिर सबके सुनते हुए कहा:—

"वास्तवमे लोभानन्दकी लक्ष्मीका स्वामी मै ही हूँ, कारण कि उसका उपयोग मैने ही किया है। यह वणिक् तो उसका पिता था। इसने उसका पालन पोषण करनेके लिए अपने शरीरको बहुत कष्ट दिया; परन्तु उसके शरीरको कभी भूलचूकमें हाथ न लग जाय, इसकी यह बडी ही सावधानी रखता था। कारण कि यह उसका पिता था, पति नहीं। लक्ष्मीको इसने उत्पन्न भले ही की हो, परन्तु काममें तो मै लाया हूँ। इस लिए उसका धनी-पति मैं ही कहलाऊँगा। इसके सिवाय इन लडकोंके हाथसे मैंने सुकृत्य कराया—दान पुण्य कराया,

इस लिए इनका वास्तविक बाप भी मै ही हूँ; इस वणिकने तो इनकी मति भ्रष्ट कर रक्खी थी। वह घर जो इस कंजूसकी कृपणताके कारण सदा सबके लिए त्याज्य हो रहा था, मैंने प्रकट किया—सबसे परिचित कराया, इस लिए उस घरका मालिक भी मै ही हूँ। परन्तु यह सब होने पर भी उस लक्ष्मी, इन लड़को और उस घर परसे मै अपना हाथ उठा लेता हूँ और मै अपने असली रूपमे आप सब लोगोके समक्ष प्रकट होता हूँ।" यह कहते ही वह अपने असली ब्राह्मण रूपमे बदल गया और राजा तथा मंत्रीको नमस्कार करके लोभानन्दसे बोला—"सेठजी, इस नाटक रचनेके विषयमे मुझे क्षमा कीजिएगा। तुमने मुझे छातीमे लाते मारकर मरण-शय्यापर लिटा दिया था, उसके बदलेमे मैने तुम्हें सुबुद्धि दी है और मानो तुम्हे एक नया जन्म दे दिया है। तुम धनी हो-श्रीमन्त हो, तुम यदि लोगोकी हत्या कर सकते हो, तो हम तुम्हें नया जन्म—नया जीवन दे सकते है। अब भी यदि तुम इतना देख सके होओ, तो तुम्हारे पास जो थोड़ी बहुत लक्ष्मी रह गई है उसका सदुपयोग करनेकी सावधानी रखना।"

राजा और मंत्री ब्राह्मणकी वचनावली सुनकर चकित हो रहे। राजाने ब्राह्मणकी निर्धनता उसी समय दूर कर दी; उसकी जीविकाके लिए पाँच गाँव लगा दिये।

उस दिनसे लोभानन्द भी बदल गया। उसने मोक्षकी सबसे पहली सीढी दानको बड़ी दृढतासे पकड़ा और एक दानके ही प्रभावसे वह दूसरे जन्मे प्रतापी देव हुआ। वह दूर आकाशमेसे; अब भी बीच बीचमे आजकलके लोभानन्दोकी कृपणतापर हँसता है और रह रह कर 'दानमें पाप' बतलानेवाले वक्ताओं पर शापकी वर्षा करता है।

—जैनहितेच्छु।

तामिल काव्य कुरल।

पाठको, आपको मालूम हो चुका है कि तामिल साहित्य जैनियोंके ही परिश्रमका फल है। कुरल तामिल साहित्यका सर्वोत्तम काव्य है। उसी कुरलका यहॉ पर कुछ परिचय दिया जाता है।

संसारके विद्वान् इस ग्रंथको बड़े आदरसे देखते है। इसके लेखक कविवर तिरुवल्लुवर हैं। इनकी गणना जगत्के प्रसिद्ध बुद्धिमानोमें है। तामिल भूमिमें इस काव्यकी वडी प्रतिष्ठा है। सुना जाता है कि वहॉके निवासी इसका पूजन तक करते है। यह ग्रंथ उच्च मानसिक विचारोसे भरा हुआ है। इसमें विशेपता यह है कि यह किसी खास जाति, सम्प्रदाय, अथवा धर्मको लक्ष्य करके नहीं लिखा गया, यह सर्व मानवजातिकी सम्पत्ति है। यह ग्रथ ऐसा सार्वजनिक है कि हर स्थितिके मनुष्य इसे रोचक पाते है। राजाओके लिए इसमें शासन करने और वैरियोंसे बचनेके उपाय है; रकोंके लिए ईमानदारीसे धन पैदा करने और उच्चपद प्राप्त करनेकी रीतियॉ है। दुराचारियोंके लिए इसमें मास, मदिरा, जुआ इत्यादि त्याग देनेकी शिक्षा है; सदाचारियोंके लिए मान, माया, लोभ, क्रोध इत्यादि त्याग करके साधुवृत्ति धारण करनेकी नसीहत है। इसमें गृहस्थोंको सुखी जीवनका अर्थ समझाया है और साधुओको परमात्मपद प्राप्त करनेका मार्ग वतलाया है। इसमें कहीं रमाणियोंके सौन्दर्यकी प्रशसा है, तो कहीं प्रीति करनेके गुण और दोषोंकी व्याख्या है। कहीं धनोपार्जनकी रीति बताई है तो कहीं दान पर जोर दिया है। कहीं निष्पक्षता, इद्रियदमन, परस्त्री-त्याग, शिष्टाचार, सतोप इत्यादि गुणोंकी प्रशसा की है, तो कहीं अधम पापोंका फल दिखलाया है। कहीं सैनिकोंको युद्ध-

नीति और किलोंकी उत्तमताका सबक पढ़ाया है तो कृषिकोंको खेतीके सम्बन्धकी बातें बतलाई हैं। इस ग्रंथको चाहे कोई भी पढ़े यह उसीके कामका हो सकता है। इसके सब विषय धर्म, अर्थ और काम इन तीन भागोंमे विभक्त हैं।

यह प्रसिद्ध है कि इसके कर्ता तिरुवल्लुवर जुलाहे थे। इनके माता और पिताका कुछ ठीक पता नहीं चलता। इसमें सन्देह नहीं कि ये परया जातिके थे। ये मद्रासके निकट मलियापुरमें रहते थे। एक जहाजी पदाधिकारी इनका बड़ा मित्र था। मलियापुरकी प्राकृतिक शोभा बहुत अच्छी है; उसने हमारे कविवर पर बहुत प्रभाव डाला होगा। तिरुवल्लुवरका जीवनसमय ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता; परन्तु इसमें संदेह नहीं कि ये ईस्वी सनकी शुरूकी शताब्दीमे रहे होंगे। इनका समागम, खासकर अपने जहाजी मित्र-द्वारा, विदेशियोंसे खूब रहा होगा। इन्होंने उनके मतोंसे परिचय प्राप्त किया होगा। मलियापुरमे उस समय तक ईसाई आचुके थे। पुर्तगाल और आर्मीनियावालोंके प्राचीन गिरजे वहाँ अबतक विद्यमान हैं। ईसाइयोका एक शिलालेख भी पाँचवीं शताब्दिका है। कविवरको जैनधर्मके समान अन्य हिन्दूमतोंका भी ज्ञान अवश्य था। ईसाई धर्मका भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। कुरलकी बहुतसी उक्तियाँ स्पष्टतया ईसाई मतसे मिलती हैं। अतएव इसमे कुछ सन्देह नहीं कि कविवरने बहुतसे विचार ईसाई धर्म-पुस्तकोसे ग्रहण किये हैं। ईसाइयोको भी कुरल बहुत प्रिय है।

तामिल भूमिके सभी मतवाले कुरलके कर्ताको अपना ही बताते हैं। और प्रत्येकने कविवरको अपने ही मतका सिद्ध करनेके लिए कुरल पर टीकायें और गवेषणापूर्ण व्याख्यायें लिखी हैं। जैनी इस

ग्रंथको बहुत अपनाते हैं। विद्वानोंका यही मत है कि इसके कर्ता जैन थे। क्योंकि कर्ताने इसमे जैनियोंके बहुतसे खास शब्दोंका प्रयोग किया है। हिन्दुओंके हर एक सम्प्रदायवाले कुरलके पद्योंका ऐसा अर्थ करते है जो उन्हींके मतके अनुसार हो, यहाँ तक कि यूरुप-वाले भी कहते हैं कि वल्लुवरने हमारे ही धार्मिक सिद्धान्तोंका उप-देश दिया है।

इनके सम्बन्धमें एक बात प्रसिद्ध है। कहते है कि वल्लुवरने यह ग्रंथ अपने देशवालोंकी प्रेरणासे लिखा था। इससे माल्म होता है कि उनकी ख्याति इस ग्रन्थके पहले ही बहुत होगी, नहीं तो लोग इनसे प्रेरणा या विनय ही क्यों करते? परन्तु इनका और कोई ग्रथ उपलब्ध नहीं है। वल्लुवर कुरलको समाप्त होने पर मदुरा (मद्रास प्रात) में ले गये। वहाँ पाड्य राजा वशशेखरके समयका तामिल विद्वानोंका एक बड़ा भारी विद्यालय था। परया (नीच जातिके) होने पर भी इनकी ख्याति इतनी हुई कि वह उक्त विद्यालयके समस्त विद्वानोंकी ख्यातिसे बढ़ गई।

भाषाकी सरलता कुरलकी ख्यातिको दूनी कर देती है। तामिल भाषाके विद्वान् कहते है कि कुरलके छदमें इतनी अच्छी कविता करना वल्लुवरका ही काम है। जिस छन्दमें कुरल लिखा गया है वह तामिल भाषामे बड़ा ही विचित्र और कठिन है, उसमें कविताके नियत निय-मोका उल्लङ्घन बिलकुल नहीं हो सकता। इस ग्रथकी सूक्तियोंकी सक्षिप्तता भी बड़ी अनोखी है। बहुत बड़े आशयको थोड़ेसे शब्दोंमें प्रकट कर दिया है। कुरलने वल्लुवरकी कीर्तिको अमर कर दिया है। इस ग्रन्थमें १३३० पद्य अथवा दोहे हैं और हरएक पद्यमें एक सूक्ति है जो सपूर्ण है।

वल्लुवरका अर्थ है 'परया जातिके अध्यापक अथवा आचार्य'। यह किसी व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। परन्तु हमारे कविवर इसी नामसे पुकारे जाते हैं। कुरल उस तामिल छंदको कहते हैं जिसमे कविवरने अपना ग्रंथ लिखा है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि कविवरने अपने ग्रंथमे न तो अपना ही (असली) नाम दिया है और न ग्रंथ-का। इन नामोका कहीं भी पता नहीं है।

कुरलका किसी भाषामें कैसा ही अनुवाद क्यो न किया जाय; परन्तु मूल ग्रंथका संपूर्ण महत्त्व कदापि नहीं आसकता। परन्तु हमारे लिए अनवादको छोड़कर और कोई मार्ग ही नहीं है जिससे उसके अभिप्रायों तक पहुँच सके। अतः हम यहाँपर कुरलकी कुछ सूक्तियोंका अनुवाद करके पाठकोके विनोदार्थ उपस्थित करते हैं:—

धर्म।

मनकी प्रधानता दिखाते हुए कविवर धर्मके संबंधमे कहते हैं—

करो मन साफ़ तुम अपना,
यही है धर्मका करना।
दिखावट अन्यथा सब है,
किसीमें सार ही कब है॥ सूक्ति न० ३४

सच है, मनसे ही सब काम होते हैं; पहले मनुष्य विचारता है और फिर कार्य करता है। यह नियम है। यदि विचार शुद्ध हों, तो कोई पाप-कर्म बन ही नहीं सकता।

पुनः धर्म और पापके संबधमें यों कहते है। जरा इस कथनकी सादगीको देखिएगा। ऐसा ग्रंथ सर्वप्रिय क्यों न हो?—

'धर्म' में गर्भित है सब जो कुछ कि करना चाहिए।
'पाप' में गर्भित है वह जिससे कि डरना चाहिए॥ न० ४०

दानके विषयमें कहते हैं:—

तपस्वी वे बड़े हैं भूखकी जो वेदना सहते।
अधिक हैं श्रेष्ठ उनसे वे, जो उनकी भूखको हरते॥ न० २२५

इसके साथ हमें 'रहीम' जीका यह दोहा याद आजाता है:—

'रहिमन' वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत 'नाहिं'॥

क्रोधके सम्बधमें जो कुछ कहा जा सकता है, थोड़ेसे स्थानमें कह दिया है—

कांति मनकी, हर्ष मुखका, क्रोध हरता है अहो।
कष्ट इतना और कोई शत्रु है देता कहो? न० ३०४

अहिंसाके विषयमें यह लिखा है, ईसाईयोंको उन्हींकी धर्म-पुस्तकसे समझा दिया है—

सुखके दिनोंमें काल भी उनको सतायेगा नहीं।
जो पालते हैं यह नियम-'तू जीव मारेगा नहीं'॥ न० ३२६

जीवनकी असारताके विषयमें लिखते है:—

कूच कर जाते हैं पक्षी घोंसलोंसे जिस तरह।
क्षणिक जगमें जीव-तनकी मित्रता भी इस तरह॥न० ३३८

अर्थ।

देशके रत्नोंकी व्याख्या सुनिए:—

देशके हैं रत्न पाँचों ये सदा।
स्वास्थ्य, रक्षा, धन, उपज, सुख सर्वदा॥ न० ७३८

गढ़ कैसा होना चाहिए:—

विस्तार, दृढ़ता, उच्चता हो, हो पहुँच उसतक कठिन।
हो युक्त इससे हर किला, विज्ञानका है यह कथन॥ न० ७४२

यह वात कैसी सादा किन्तु कामकी है:—

होगी न बीमारी न कुछ, औषध, चिकित्सा चाहिए।
पच जाय भोजन पूर्वका तव, और खाना चाहिए॥ नं०९४२

काम।

सौन्दर्यकी प्रशंसामें लिखते है। मुखकी चंद्रमासे उपमा देकर क्या वात पैदा की है—

व्यग्र हो आकाशसे तारानिकर है भग रहा।
दूसरा है चद्रमा मुख इस कुमारीका अहा? नं० १११६

पुनः कहते हैं:—

चन्द्र घट बढ़कर चमकता और धब्वेदार है।
दागका मुख पर कुमारीके कहाँ आकार है? नं० १११७

कछुएकी तरह जो अपनी पांचों (इंद्रियों) को वशमें करते हैं उनकी सर्वत्र जय होती है। नं० २०६।

मरनेमें वड़ा दुःख है; परन्तु जो दान नहीं करता उसको इससे भी अधिक जीनेमें दुःख है। २३०।

जीवित वे हैं जिनका जीवन अपयशरहित है; जो यश विना जीते हैं,जीवित नहीं है, चाहे वे जीवित माल्रम हों। २४०।

जव मीठी वाणी वोलना आसान है तो कटु शब्दोंका बोलना मीठे पके फलको छोड़कर कड़वे कच्चे फलका ग्रहण करना है। १००।

प्रेमरहित आत्मा जीवनका सुख तभी जानेगा, जब ऊसर जमीन और नीरस वृक्षोंमें पुष्प खिलेंगे। ७८।

मूर्खका धन उसके शत्रु तो भरपेट खाते है; परन्तु उसके मित्र भूखकी घोर वेदना सहते हैं। ८३७।

भिक्षुकोंसे मेरा एक निवेदन है, यदि तुमको भीखही मागनी है, तो कृपणोंसे मत मॉगो। १०६७।

हे मन, या तो तू प्रेम छोड दे या लज्जा, क्यो कि मै दोनोको एक साथ सहन नहीं कर सकता। १२४७।

उन शत्रुओंसे मत डरो जो तलवार खींचे हुए दिखाई दे रहे है; डरना तो उन शत्रुओंसे चाहिए जो मित्र सरीखे दिखाई देते है। ८८२।

आइए पाठकगण, हम भी कहें:—

क्या हुआ यदि वल्लुवर! तुम अब नही संसारमें ॥*
छा रहा है यश तुम्हारा सब कहीं संसारमें ॥

' संशोधक—'



चरित्र-गठन और मनोबल।

(गतांककी पूर्ति)

हमारा जीवन केवल क्षणिक सुखोंके लिए नहीं है—हमारे जीवनका उद्देश्य केवल सासारिक या शारीरिक, सुखोंको प्राप्त करना नहीं है, किन्तु हमारा जीवन उच्चतम उद्देश्योकी पूर्ति करने, श्रेष्ठतम चरित्र-की प्राप्ति करने और मनुष्यजातिकी सर्वोत्तम सेवा करनेके लिए है। इसमे ही हमको सबसे अधिक आनन्द मिलेगा। क्योंकि वास्तवमे सच्चा आनन्द इसीमें है। जो कोई इस आनन्दको और किसी रीतिसे प्राप्त करना चाहता है अथवा इसके लिए और किसी उपायका अवलम्बन करना चाहता है, वह कदापि सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् उसको सच्चा स्थायी आनन्द कभी नहीं मिल सकता।

प्रश्न यह नही है कि हमारे जीवनकी क्या दशा है–कैसी अवस्था है? किन्तु यह है कि हम उस दशाका–उस अवस्थाका कैसे और क्योंकर सामना करते है? चाहे हमारे जीवनकी कैसी ही दशा हो, चाहे वह सर्वथा हमारे प्रतिकूल हो, परन्तु हमें कदापि उसकी शिकायत नहीं करना चाहिए। शिकायतसे कुछ काम नहीं चलता। शिकायतसे उल्टा विषाद और उद्वेग पैदा होता है। विषादसे वह शक्ति जिससे हमारे जीवनमें एक नये प्रकारका जीवन पैदा होता है दुर्बल हो जाती है और सम्भव है कि वह सर्वथा नष्ट भी हो जावे। अतएव यदि हमारी अवस्था हमारे प्रतिकूल हो तो हमें चाहिए कि हम उसे अपने अनुकूल बना लेवें और यदि हम उसे अपने अनुकूल नहीं बना सकते तो हमे स्वयं उसके अनुकूल हो जाना चाहिए। ऐसा करनेसे हमको कोई आपत्ति नहीं सता सकती और कोई घटना दुखी नहीं कर सकती।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें ऐसी घटनाये नित्य होती रहती हैं जिनको वह अपने लिए बहुत ही बुरी समझता है। स्वय मूलग्रन्थकर्त्ता महाशय लिखते है कि "मेरे जीवनमें समय समय पर ऐसी अनेक घटनायें हुई जिनको मैं बहुत ही बुरी समझता था, जिनसे मुझे कभी कभी लज्जित और अपमानित भी होना पड़ा और पीड़ा-वेदनायें भी सहनी पडीं। परन्तु अब मुझे उनका लाभ माऌम होता है। अब मैं उनका अर्थ और उपयोग समझता हूॅ। अब मैं उनको लाखों रुपयेके बदलेमें भी भूलना पसन्द नहीं करता। उनसे मुझे एक बड़ी भारी शिक्षा मिली है और वह यह है कि चाहे आज मेरी कैसी ही दशा हो, चाहे कैसे ही दुःखकी अवस्था हो और भविष्यत्में भी चाहे कैसी ही स्थिति हो; परन्तु मै उसका सहर्ष स्वागत करूॅगा और तनिक भी शोक या विषाद न करूॅगा। मै उसको यह विचार करके अपने लिए सर्वोत्तम और उपयोगी ही समझूॅंगा कि यद्यपि मैं इस समय यह नही जानता कि यह अवस्था क्यों है, इससे क्या लाभ है और इसका क्या परिणाम होगा; परन्तु एक समय आयगा जब मैं इसके रहस्यको जान सकूॅंगा और उस समय ईश्वरको धन्यवाद दिये बिना न रह सकूॅंगा।" इसमें सन्देह नहीं कि जिस समय कोई घटना होती है उसी समय उसके लाभको समझना कठिन होता है और बादमें भी उसका भेद समझना आसान नहीं होता; परन्तु जहॉतक बुद्धिमानों और दूरदर्शियोंने अवलोकन किया है जो घटनायें आज सर्वथा विपरीत और प्रतिकूल माऌम होती हैं उनका फल भी एक न एक दिन अच्छा ही हुआ है। गरज यह कि मनुष्यके जीवनमें ऐसी कोई क्रिया नहीं होती जो उसके लिए उपयोगी न हो और कोई बात ऐसी नहीं होती जो निरर्थक हो।

प्रायः हरएक आदमी अपनी हालतको, अपनी तकलीफको, सबसे ज़्यादह खराब समझता है। प्रत्येक मनुष्य यही समझता है कि ससा-

रमें मेरे समान कोई दुखी नहीं; मै सबसे दुखी हूँ। जो आपत्ति मुझे सहनी पड़ती है, वह शायद ही किसीको सहनी पड़ी हो। उसको इस बातका खयाल नहीं रहता कि हरएक आदमी अपनी अपनी तकलीफ़ोंमें फँसा हुआ है। किसीको कोई तकलीफ़ है, किसीको कोई रंज है, किसीको कोई कष्ट है, किसीको कोई दुःख है। मेरी हालत भी उन जैसी ही है। जो दुःख मुझे उठाने पड़े है और जिनको मै बहुत ही भारी समझता हूँ, वे ही दुःख मेरे सैकड़ो भाईयोंको उठाने पड़े हैं। बस, हम इसी बातके समझनेमे भूल करते है। हम अपने दुःखोको दुःख समझते हैं। उन्हींका हम अनुभव करते है। दूसरोके दुःखोंको देखते तक भी नहीं। इसी कारणसे हम अपने दुःखोको उनके दुःखोकी अपेक्षा अधिक समझते है। परन्तु असल बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यकी अवस्था भिन्न भिन्न है। अतएव प्रत्येक मनुष्यका चरित्र और व्यवहार भी भिन्न भिन्न होना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यको स्वय विचार करना चाहिए कि किन कारणोंसे मेरी दशा ऐसी ख़राब है और मै ऐसी हीनावस्थामें हूँ। फिर उन कारणोको दूर करने और उस शक्तिके बढानेका उद्योग करना चाहिए जिससे अपनी दशा सुधरे और सुख प्राप्त हो। यह कार्य प्रत्येक मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। इसमे दूसरेका कोई काम नही। हाँ, इतना हम अवश्य कर सकते है कि एक दूसरेको उन उपायो और नियमोका ज्ञान करा सकते है जो इस कार्यमें उपयोगी है—जिनसे यह काम बड़ी आसानीसे हो सकता है। नियमोंका पालन करना प्रत्येक मनुष्यका काम है। जब वह स्वय उन नियमोका पालन करेगा तब ही उसे लाभ होगा। वैद्यका काम ओषधि बता देनेका है। ओषधि सेवन करना रोगीका काम है।

यदि हम अपने आपको किसी हालतमेंसे—जिसमें हम जानते बूझते या भूल कर, इरादा करके या बिना इरादेके फँस गये हैं—निकालना चाहते हैं तो इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम उन कारणों पर विचार करें जिनसे ऐसी हालत हो गई है और फिर उस प्राकृतिक नियमको माल्रूम करें जिस पर उसका आधार है। जब यह नियम माल्रूम हो जाय तब हमको उसका विरोध या प्रतिकूलता नहीं करनी चाहिए, किन्तु उसके अनुकूल या सहकारी रहना चाहिए। यदि हम उसके अनुकूल कार्य करेंगे तो वह हमारे लिए बडा उपयोगी और लाभदायक होगा और हमको हमारे अभीष्ट मनोरथ तक पहुँचा देगा, परन्तु यदि हम उसका विरोध करेंगे अथवा उसके अनुकूल न चलेंगे तो इसका परिणाम हमारे लिए बडा हानिकर होगा। वह हमारा सर्वनाश किये बिना न छोडेगा। प्राकृतिक नियम अटल है। वह अपनी चाल नहीं वदल सकता और हमारे विरोध या प्रतिकूलतासे रुक नहीं सकता। भावार्थ यह है कि यदि उसके अनुकूल चलोगे तो तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण हो जायँगी, परन्तु यदि उसके प्रतिकूल रहोगे तो याद रक्खो, हानि और दुःख उठाओगे।

कुछ दिन हुए मै एक औरतसे मिला। उसके पास पॉच छह एकड ज़मीन थी। उसके पतिका कुछ वर्ष पहले देहान्त हो गया था। यद्यपि वह बडा नेक और मेहनती आदमी था, परन्तु उसमे एक बडा भारी अवगुण था। वह जो कुछ कमाता था सब शराबमें उडा देता था। जब वह मरा तब उसकी औरतके पास उस पॅाच छह एकड़ जमीनका कर देनेको रुपया न था। उसको किसी प्रकारका भी कहींसे सहारा न था और निजका तथा पाँच छह बच्चोंका बोझ उसके सिर पर था; परन्तु

ऐसी दशामे भी उसने साहस और धैर्यको नहीं छोड़ा। वह तनिक भी निराश न हुई। उसने वीरता और दृढ़तासे आपत्तियोका सामना किया और इस वातका दृढ़निश्चय रक्खा कि ऐसे अनेक उपाय है,—यद्यपि वे मुझे इस समय स्पष्टतया दृष्टिगोचर नहीं होते हैं—जिनसे मैं इन दु:खोंसे मुक्त हो सकती हूँ। उसने शीघ्र ही अपने टूटे फूटे सामानको ठीक किया और एक वोर्डिंग हाउसमें काम करना शुरू किया। वह कहती थी कि मैं ४ वजे उठती हूँ और रातको १० वजे तक काम करती रहती हूँ। जाड़ेके दिनोमें जव लड़के चले जाते है तव आसपासके ग्रामोंमे दाईका काम करती हूँ। इस प्रकार अव वह अपनी जमीनका कर भी देती है और उसके वच्चे स्कूलमें भी पढ़ते हैं। अव वे वच्चे वड़े हो गये है और कुछ न कुछ अपनी माताको सहायता भी पहुँचाते हैं। यह उस औरतने स्वयं अपने पुरुषार्थसे किया है। वह कदापि निराश या हतोत्साह नहीं हुई और उसने कभी भय या अरुचिको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया॥ न उसने कभी भाग्यको उलाहना दिया और न कभी साहसको त्यागा; जो कुछ सामने आया सदा हर्षपूर्वक उसे सहन किया और जो कुछ मिला उसी पर संतोष किया। वह कहती थी कि "मुझे इस वातसे वड़ा हर्ष है कि मै सदा कार्यतत्पर रही, और मेरी दशा चाहे कितनी ही गिरी हुई हो, चाहे कितने ही दु:खमें हूँ, परन्तु मैं सदा ऐसे स्त्री पुरुषोंको देखती रही हूँ जिनकी दशा मुझसे भी गिरी हुई है और जिनकी मैं कुछ न कुछ सहायता कर सकती हूँ। मुझे इससे वहुत सन्तोष होता है और मैं समझती हूँ कि संसारमे मैं ही सवसे अधिक दु:खी नहीं हूँ परन्तु मुझसे भी अधिक दु:खी मौजूद हैं। मैं तो अव एक तरहसे सुखी हूँ। अव मुझे अपनी जमीनके कर चुका-

नकी चिन्ता नहीं रही।" वास्तवमे अव वह औरत सुखी है। चरित्रकी दृढता, स्वभावकी नम्रता, दूसरोंके प्रति प्रेम और मित्रता तथा सत्यकी सदा जय होती है। इस वातकी सम्यक् श्रद्धा और गुणोंके कारण वह स्त्री हज़ारों स्त्रीपुरुषोंसे श्रेष्ठ है जो वाह्यमें उससे अच्छी दशामे मालूम होते हैं। अव वे बातें जो वहुतोंका जी तोड देनेके लिए काफी थीं उस स्त्रीके उद्योगसे उसके अनुकूल हो कर उसके लिए उपयोगी हो गई है।

विचार करो कि यदि यह स्त्री ऐसी बुद्धिमती और दूरदर्शिनी न होती तो क्या परिणाम होता। किस प्रकार वह आपत्तियोंको सहन करती और किस तरह कठिनाइयोंका सामना करती। शान्ति उसकी तवियतमेंसे जाती रहती, उत्साह उसका नष्ट हो जाता और भय और चिन्तामें वह सदैव ग्रसित रहती। अथवा वह उस ईश्वरीय नियम और प्राकृतिक सिद्धान्तके विरुद्ध चलती जिसके कारण उसकी यह दशा हुई, उसका जीवन बिल्कुल निरर्थक हो जाता और जिन मनुष्योंसे उसका काम पडता वे सब उससे घृणा करने लगते। अथवा वह यह विचार करती कि मेरे उद्योग और पुरुपार्थसे कुछ काम न चलेगा, किसी न किसीको अवश्य मेरी सहायता करनी चाहिए और इस आपत्तिसे मुझे निकालना चाहिए। इस प्रकार कदापि उसकी इच्छा पूर्ण न होती, उल्टी उसकी आपत्ति दिन दिन बढती जाती और वह उत्तरोत्तर अधिक अधिक कष्टोंका अनुभव करने लगती। कारण कि वह सदा इसी बातका विचार करती—ये ही विचार उसके मनमें घूमते रहते। न वह जमीनको रख सकती और न कुछ दूसरोंका उपकार कर सकती। वह न केवल अपने लिए किंतु ससार भरके लिए दुःख और घृणाका कारण हो जाती।

अतएव किस मनुष्यकी कैसी दशा है और वह किस हालतमे है, इससे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन इससे है कि वह उस दशामें किस तरह रहता है। यदि वह दुःखमे है तो उस दुःखको किस तरह सहन करता है। यदि आपत्तिमे है तो किस तरह उस आपत्तिका सामना करता है। बस, इसीसे सब बातोंका पता लग जायगा। यदि हमको किसी समय अपनी दशा सबसे गिरी हुई और असह्य मालूम हो तो हमको उनकी दशाका विचार करना चाहिए जिनकी दशा हमसे भी गिरी हुई है। जो हमसे धनमें, बलमे—सब चीज़ोंमे कम है; ऐसे मनुष्योका संसारमें अभाव नही। एकसे एक ऊँचा और एकसे एक नीचा है। जहाँ दृष्टि पसार कर देखोगे वहीं मिलेंगे। इस विचारसे हमको कुछ शान्ति होगी और हमारा बोझ कुछ कम हो जायगा।

कहते हैं कि जब सिकन्दर बादशाह मरा तब उसकी माताको बहुत ही दुःख हुआ और किसी तरह भी उसका दुःख कम न हुआ। अन्तमें एक वैद्यने उससे कहा कि माता, मै तेरे पुत्रको जीवित कर सकता हूँ यदि तू एक काम करे। माताने कहा, क्या? मै पुत्रके लिए अपनी जान तक भी देनेको तैयार हूँ। वैद्यराजने कहा—माता, तू स्वयं जाकर एक कटोराभर पानी मुझे उस घरसे ला दे जिसमें पहले कोई मरा न हो। वृद्ध माता घर घर फिरी, परन्तु उसे कोई भी घर ऐसा न मिला जहाँ पहले कोई न मरा हो। बस, अब उसे धैर्य हो गया। अब वह भलीभाँति जान गई कि इस दुःखसे केवल मैं ही दुखी नहीं हूँ; किन्तु ससारके सभी मनुष्य दुखी है। मै एक पुत्रके लिए रोती हूँ; औरोंके तो कई कई पुत्र मर गये है। इसी तरह और बातोंमें भी जब हम अपनेसे अधिक दुखी मनुष्योको देखते है तब हमको कुछ शान्ति हो जाती है, उनसे सहानुभूति और अपनी दशा पर संतोष होने लगता है।

हमारे प्रत्येक कार्यकी उन्नति या अवनति, सफलता या असफलता विचार पर निर्भर है। जिस प्रकारके हम विचार करते हैं, उसी प्रकारके हमारे कार्य होते है। विचारोंमें महान् बल है। वे अपने समान कार्य पैदा करनेकी शक्ति रखते हैं। चाहे हमको उनका ज्ञान हो या न हो। मनकी आकर्षण शक्तिका सिद्धान्त कि 'सजातीय सजातीयको उत्पन्न करता है और समान समानको अपनी ओर खींचता है,' एक महान् विश्वव्यापी सिद्धान्त है, जो हमारे जीवनके प्रत्येक समयमें अपना काम किये जाता है। अतएव जो मनुष्य अपना उद्देश्य स्थिर करके उसकी ओर दृढतासे बढ़ता है, जो अपने उद्देश्यको सदा हृदयंगत रखता हुआ किसी प्रकारके भय या सदेहको अपने मनमें कभी स्थान नहीं देता और जो अपने सासारिक कार्योंमें बिना किसी प्रकारकी शिकायतके अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें तत्पर रहता है और सदा उसके लिए उद्योग किये जाता है, वह एक न दिन अवश्य अपने अभीष्टको प्राप्त कर लेता है।

कुछ मनुष्य ऐसे हैं कि जब वे विचारशक्ति (मनोबल) के इस सिद्धान्तको समझने लगते हैं और जब उनको यह ज्ञात होने लगता है कि हम अपनी आन्तरिक आत्मिक और मानसिक शक्तियोके बलसे अपने जीवनकी दशाको इच्छानुकूल बदल सकते हैं, तब वे अपने जोशके प्रारम्भमे ही यह समझने लगते है, कि बस, इधर विचार किया उधर स्वभाव बदल गया और एक नये सॉचेमें ढल गया। परन्तु यह काम कोई खेल तो है नहीं कि इधर कल ऐंठी और उधर आवाज होने लगी। शुरूमें जल्दी फल प्रगट नहीं होता। इससे उनकी आशाये मिटने लगती है। वे हतोत्साह हो जाते है और समझने लगते है कि यह सिद्धान्त ही कुछ कार्यकारी नहीं है; परन्तु यह

उनकी भूल है। उनको स्मरण रखना चाहिए कि पुरानी आदतोंका छोडना और नई आदतोंका ग्रहण करना कुछ आसान नहीं है। ऐसे कामोंके लिए बहुत समयकी ज़रूरत है।

जैसा हम पहले कह आये हैं, जितना जितना हम किसी कामका विचार करेंगे—ज्यों ज्यों हम उसके लिए उद्योग करेंगे त्यो त्यो वह काम आसान होता जायगा। पहले पहल काम ज़्यादह होता नहीं दिखाई देता, परन्तु धीरे धीरे बारबारके अभ्याससे उस कामके करनेकी शक्ति बढ़ती जाती है। सिद्धान्त वही है कि जितना जितना अभ्यास किया जायगा उतनी ही शक्ति बढ़ती जायगी। यही सिद्धान्त हमारे जीवन तथा संसारके समस्त कार्योंमें कार्यकारी है। जिस कार्यको प्रारम्भ करो, उसमें पहले कठिनाइयाँ आती ही हैं। परन्तु धीरे धीरे सब दूर हो जाती है और कठिनसे कठिन काम भी आसान हो जाता है। जिस मनुष्यने कल गायनविद्याको प्रारम्भ किया है यदि आज उसे सितार या हारमोनियम दे दिया जाय तो वह कदापि अच्छी तरह नहीं बजा सकेगा। अब इससे उसे यह न समझ लेना चाहिए कि मै बजा ही नहीं सकता या मुझमे बजानेकी शक्ति ही नहीं है। शक्ति अवश्य है, पर बात केवल इतनी है कि अभी उसे बजानेका अभ्यास नही है। थोड़े दिनोंमें अभ्यास हो जायगा। बारबारके उद्योगसे बाजे पर उँगलियाँ ठीक ठीक पडने लगेंगीं और उसका खयाल राग पर अधिक जम जायगा और एक दिन वह आयगा कि वह एक अच्छा बजानेवाला हो जायगा। जो बालक अभी पहली कक्षामे पढ़ता है, यदि आप उससे कहें कि एक पत्र लिख दो, तो वह नहीं लिख सकेगा। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वह पत्र लिख ही नहीं सकता या उसमें पत्र लिखनेकी

शक्ति या योग्यता ही नहीं है। नहीं ऐसा नहीं है। बात यह है कि अभी उसकी शक्ति व्यक्त नहीं हुई है। यदि वह बराबर पढता रहा तो थोडे दिनोंमें ही पत्र क्या वडे बडे महत्त्वपूर्ण लेख लिख सकेगा। माताके उदरसे कोई पढा लिखा पैदा नहीं होता। जितने विद्वान् इस भूतल पर विद्यमान है, उन सबोंने एक दिन किसी भाषाकी वर्णमालाका पहला अक्षर पढा था और वही उन्हें कठिन माल्म हुआ था; परन्तु अभ्यास और उद्योगसे ही आज वे ऐसे विद्वान् हो गये। ठीक यही दशा हमारे मनोवल और विचारवलकी है। बार वारके विचार करनेसे उसका वल बढता है और उसमें एक ओर आकर्षित होनेकी शक्ति पैदा होती है जिससे अन्तमें ऐसे आश्चर्यकारी परिणाम होते है कि जो हमारे जीवन मार्गको सर्वथा बदल सकते हैं।

चरित्रगठनकी केवल जवानोंके लिए ही ज़रूरत नही है किंतु, वूढोंके लिए भी है। बूढों बूढोंमें भी कितना अतर है। कितने ही मनुष्य बुढापेम प्रसन्नचित और आनदित रहते है और कितने ही कर्कश और कटुस्वभाव हो जाते हैं। कितने ऐसे हैं कि वे जितने बूढे होते जाते है उतने ही उनके मित्रसबधी उनसे अधिक प्रेम करने लगते है और कितने ही ऐसे हैं कि ऐसी अवस्थामें अपने पुराने मिलने जुलनेवालों और मित्र सम्बधियोंको भी बेगाना कर लेते हैं। पहले प्रकारके मनुष्य प्रत्येक वस्तुमें आनंद अनुभव करते हैं, परतु पिछले प्रकारके मनुष्योंको प्रत्येक वस्तु शून्य और जडरूप माल्म होती है। पहले मनुष्य स्वय भी प्रसन्न रहते हैं और अपने पास रहनेवाले मनुष्योंको भी प्रसन्न करते रहते हैं, परंतु पिछले मनुष्य स्वय भी उदास रहते हैं और दूसरेंको भी उदास करते रहते हैं। न उनको किसीसे प्रीति होती है और न औरोंको उनसे प्रीति

होती है । अब प्रश्न यह है कि इस भिन्नताका कारण भी कुछ है ? क्या यह केवल दैवयोगी घटना है ? कदापि नहीं । हमारी सम्मतिमें तो मानव जीवनमें ही क्या संसार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भी दैव कोई वस्तु नहीं है । कार्यकारणका सिद्धात अटल है । संसारमे कोई कार्य बिना कारणके नही होता, और कार्य सदा कारणके सदृश होता है । यद्यपि कार्यकारणकी समानता कभी कभी दृष्टि-गोचर नहीं होती और उसीके कारण हम दैव कहने लगते हैं, परंतु वास्तवमे प्रत्येक कार्यका कोई न कोई कारण अवश्य होता है । अस्तु । यदि यह भेद दैवी नहीं है तो फिर इसका क्या कारण है कि बूढ़ो बूढ़ोंके स्वभावमें इतना अतर हैं ? कोई भय, चिंता, निर्मूल विचारों और कल्प-नाओका नाम भी नहीं जानता और किसीका जीवन इन्हीं बातोंके लिए अर्पण है। इसका कारण क्या है ? यह कि प्रत्येक मनष्यके जी-वनमे एक समय आता है (यद्यपि भिन्न भिन्न मनुष्योंमें यह भिन्न भिन्न होता है) जब कि उसकी जीवनपर्यंतकी मानसिक अवस्थाये, स्वभाव और गुण अपने आपको चारों ओरसे एक बिंदु पर एकत्रित करने लगते है और तदनन्तर प्रगट होने लगते है । प्रबल विचार अपनेको कार्योंके रूपमे प्रगट करके मनुष्यकी उन प्रकृतियोंको—जो पहले बड़ी निर्बल और अव्यक्त थी—अकस्मात् प्रबल रूपमे प्रगट कर देते है जिससे एक नई रीतिका जीवन हो जाता है ।

उदाहरणके लिए, मानों एक बगीचेमें एक सेवका वृक्ष है । वर्षों-तक उसमें फल आते रहे। थोड़े दिन हुए कि उसमे कलम लगाई गई । इसके बाद वसंतऋतु आई और निकल भी गई । वृक्षके उस भागमे भी कलियाँ खिलीं जिसमें कलम लगाई गई थी और उस भागमें भी जिसमे कलम नहीं लगाई गई थी । दोनों भागोमे कलियाँ

एक सी ही थीं। साधारण मनुष्यको उनमें कोई भेद नही मालूम होता था। अन्तमे फूलोंके स्थानमें फल आये और सारा वृक्ष नन्हें नन्हें सेवोंसे लद गया। इन फलोंमे अब बहुत ही कम अतर मालूम होता है—स्थूल दृष्टिसे देखनेमें तो कोई भेद ही नहीं जान पडता, परन्तु थोडे ही दिनोंमें गुण, रूप, रस, गध और वर्णमें इतना स्थूल अन्तर हो जायगा कि साधारणसे साधारण बुद्धिका मनुष्य भी पहचान सकेगा। एक तरफके फल छोटे छोटे कच्चे कुछ कुछ पीलेपनको लिये हुए हरे रगके खट्टे होंगे, परन्तु दूसरी तरफके बडे बड़े गहरे लाल रगके, मीठे सुंदर और सुगधित होंगे। पहले सेव दस पॉच रोज़हीमे झड़ जायँगे, परन्तु पिछले ऋतु भर रहेंगे और जब तक फिरसे कलियॉ न आयॅगी उसी तरह फले-फूलें रहेगे।

प्राकृतिक बगीचेमे यह अतर क्यों है? इसका कुछ कारण होना चाहिए। कारण यह कि एक समय तक यद्यपि शुरूसे ही वृक्षके दोनो भागोंके फलोंकी बनावटका सामान कुछ कुछ एक दूसरेसे भिन्न था, तथापि उनमें कोई भेद मालूम नहीं होता था। अतमे एक समय आया कि जब उनके भिन्न भिन्न अतरस्थ अव्यक्त गुण और स्वभाव ऐसी शीघ्रतासे व्यक्त होने लगे कि अन्धेसे अन्धा भी हाथमें लेकर उनकी पहचान करने लगा। यद्यपि साधारण मनुष्योंको शुरूमे यह भेद मालूम नहीं होता था, परन्तु बागके मालीको शुरूसे ही मालूम था। उसने पहलेसे ही वृक्षके दोनों भागोंके गुण स्वभाव जान लिये थे। उसने ठीक समय पर थोडासा बाह्य असर डाल कर उनके आभ्यन्तरिक गुणों और अवगुणोंको प्रगट कर दिया।

ठीक यही हाल मनुष्योंका भी है। इस लिए जो मनुष्य अपनी वृद्धावस्थाको आनन्दमय बनाना चाहते है, उनको युवावस्थामें ही इस

ओर ध्यान देना चाहिए। उसी समयसे इसके लिए उन्हें उद्योग करना चाहिए। परन्तु जिन्होंने युवावस्थामें कुछ नहीं किया अथवा जो कुछ किया उसमे सफलता प्राप्त नहीं हुई, तो उन्हें उचित है कि अब उत्साहपूर्वक उद्योग करना शुरू कर दें। निराश न हों। कहावत है कि 'जब तक सॉस है तब तक आस है।' जब तक जीवन है किसी वस्तुको सर्वथा खोई हुई न समझो। इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य अपने बुढापेको विशेष रूपसे सुखी बनाना चाहता है उसको प्रारम्भसे ही उसके लिए तत्पर होना चाहिए। क्योंकि जितनी अवस्था वढ़ती जाती है उतनी ही आदते प्रबल होती जातीं है और फिर उनको छोडना और दूसरी आदतोंका ग्रहण करना कठिन हो जाता है।

भय, चिन्ता, खेद, अशान्ति, स्वार्थ, कृपणता, नीचता, संकीर्णता छिद्रान्वेषण, दूसरोंकी हॅंमें हॉं मिलाना और उनके कार्यों और विचारोंका दास होना, अपने सहधर्मियों और सहजातियोंके प्रति प्रेम और मित्रताका न होना, उनके कार्यों और विचारोंसे सहानुभूति न रखना, चरित्रगठनकी प्रबल शक्तियोका ज्ञान न होना, तथा पर-ब्रह्म परमात्माके अनन्त दर्शन, अनम्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, आदि गुणों पर श्रद्धा न होना, ये बातें जिन लोगोमे जड़ पकड़ जाती हैं, उनको बुढ़ापेमें निरानन्द और सविषाद बना देती है। दूसरोको क्या स्वय उनको अपना स्वभाव बड़ा ही घृणित मालूम होता है; परन्तु इसके विपरीत जहॉं अच्छी आदते पैदा हो जाती है वहाँ वे ईश्वरीय सहायता पाकर वृद्धावस्थाको ऐसा सुन्दर, मनोहर और आनन्दमय बना देती है कि स्वयं उनको भी अपना जीवन उत्तम और मनोहारी मालूम होता है और दूसरोकी भी उनके प्रति प्रीति

और सहानुभूति बढ़ती जाती है। ये दोनों अवस्थायें मनुष्यके केवल विचारों और कार्यों पर ही असर नहीं डालतीं किन्तु उसकी आकृतिको भी बदल देती है। उसका रूप रग सब कुछ बदल जाता है।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनमें थोड़ासा तत्त्वज्ञान भी प्राप्त करे, तो बडा अच्छा हो। वृद्धावस्थामें इससे बडा लाभ होगा और आपत्तिके कठिन समयमें इससे बडी शान्ति मिलेगी। हम कभी कभी ऐसे तात्त्विकोंका हास्य किया करते हैं, परन्तु हमारे लिए उचित यही है कि हम भी उनका अनुकरण करें, अन्यथा ऐसा समय आयगा जब तत्त्वज्ञानके अभावसे हमको कष्ट उठाना पडेगा। यह सत्य है कि कभी कभी ऐसे मनुष्य रुपये पैसेके काममें अथवा सासारिक उन्नतिमें कुछ पीछे रह जाते है, परन्तु स्मरण रहे कि उनके पास वह अमूल्य रत्न है जिसका जीवनके वास्तविक उद्देश पर प्रभाव पडता है और जिसकी आवश्यकता कभी न कभी राजासे लेकर रंक तक प्रत्येक व्यक्तिको पडती है। वे लोग जो एक समय उसके न होनेसे किसी किसी वातमें उन्नति कर गये थे आज उसके न होनेसे इतने चिंतित हो रहे है कि अपनी सारी सम्पत्ति ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण जगतका धन देकर भी उस वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते जिस पर वे एक समय हँसते थे।

हमको इन तमाम वातों पर विचार करके अपना केंद्र जल्द मालूम कर लेना चाहिए। यदि जल्द न हो सके तो देरमें ही सही, परन्तु मालूम अवश्य कर लेना चाहिए—चाहे देर, चाहे सवेर।

जब तक हम जीवित हैं तब तक एक अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि हम सासारिक कार्योंमें अपना पार्ट (हिस्सा) वड़ी वीरता

और उत्तमतासे करते रहें और उसकी सदा बदलती रहनेवाली अवस्थाओंमे अपना प्रेम और उत्साह बराबर बनाये रक्खें, अर्थात् अपने आपको इस संसारकी परिवर्तनशील घटनाओ और अवस्थाओके अनुकूल रक्खे। नहरका पानी मीठा और साफ कब रहता है? जब वायु सदा उस पर चलती रहे और उसको बराबर चलाती रहे अथवा उसका पानी स्वय, आगे बढ़ता रहे। अन्यथा थोड़े ही दिनोंमें पानी पर काई आ जायगी और उसमेसे दुर्गंधि आने लगेगी। यदि हमारे मित्रसम्बधी हमसे प्रेम नहीं करते तो यह हमारा अपना दोष है। हमारे स्वभावमे ही कोई दूषण है। हमारा कर्तव्य है कि हम खोज करके देखें कि क्या दूपण है। फिर उसको दूर करनेका उद्योग करें। इसमें किसी अवस्था विशेपकी ज़रूरत नहीं है। युवा वृद्ध प्रत्येक इसे कर सकता है और अपनेको दूसरोंका प्रिय पात्र बना सकता है। बूढ़े लोग प्राय: इसके समझनेमें भूल करते है। वे समझते हैं कि यह जवानोंका काम है कि हमारा आदर सत्कार करें और हमसे प्रेम और सहानुभूति रक्खें। हमको स्वय ऐसा कुछ नहीं करना है। हमको ज़रूरत नहीं कि हम भी दूसरोंसे प्रेम और प्रीतिका व्यवहार रक्खें। यह केवल दूसरोंका काम है। आदर सत्कार करना तो सम्भव है परन्तु प्रेम और प्रीति एकतरफ़ा नहीं हो सकती। चाहे बूढा हो या जवान; ताली एक हाथसे नहीं बज सकती। बूढ़ोंका भी यह कर्तव्य है कि वे जवानोकी अवस्था पर विचार करें और उनसे प्रेम करना सीखे। परस्परताका सिद्धान्त सब पर घटित होना चाहिए—चाहे बूढे हो चाहे जवान। यदि कोई इस सिद्धान्तकी अवज्ञा करेगा तो परिणाम यही होगा कि उसका सर्वनाश हो जायगा चाहे वह किसी ही अवस्थाका हो।

हमारा जीवन एक महान् लीला या नाटक है जिसमें हर्प विषाद, शोक आह्लाद, धूप छाया, सर्दी गर्मी, सब मिले हुए है और हमको

सबमें योग लेना होता है। हमारा कर्तव्य है कि हम हर एक बातको चाहे कुछ हो और कभी हो बडी वीरता और उत्तमतासे करें। कोई कारण नहीं कि कुछ तो प्रसन्नतासे करें और कुछ अप्रसन्नतासे, प्रत्येक दशामें समयके अनुकूल प्रवृत्ति करें, परन्तु हृदय पर इसका कोई असर न होने दें। हृदयमे सदैव अपने उद्देश्य पर दृष्टि रक्खें और ससारके बदलते हुए रगोसे उस पर कालिमा न लगने दें। जैसे एक 'स्टेज-एक्टर' या नाटकपात्रको इससे कुछ मतलब नहीं कि उसका पार्ट हर्षोत्पादक है या शोकप्रद, राजाका है या रकका, छोटा है या बडा, अच्छा है या बुरा। इसी तरह हमको भी ससारकी घटनाओंमें चाहे वे अच्छी हों या बुरीं, समरूप रहना चाहिए। अच्छीसे हर्ष न करें, और बुरीसे शोक न करें, किन्तु हर एक बातको समान भावसे करें। यदि हमको कोई उच्च पद मिल जाय तो उसका अभिमान न करें और यदि किसी नीच पद पर उतार दिये जायें तो कोई विषाद न करें—प्रत्येक दशामें समभाव और समरूप रहें। इसके अतिरिक्त अच्छे खेलमें प्रवेश और निष्कृतिका भी विचार होता है। जीवनकी रंगभूमिमें प्रवेश तो प्रायः अपने अधिकारसे बाहर होता है, परन्तु रगभूमिमें किस प्रकार अपना पार्ट करना चाहिए तथा वहाँसे किस तरह निकलना चाहिए यह हमारे हाथमें होता है और इस अधिकारको कोई व्यक्ति या कोई शक्ति हमसे छीन नहीं सकती। इसी पर हमारे कामकी अच्छाई बुराई निर्भर है और इसको हम जितना चाहें सुदर और यशस्कर बना सकते हैं। हमारे जीवनकी वर्तमान स्थिति चाहे कितनी ही नीच और पतित क्यों न हो, परन्तु यदि हम अपना पार्ट अच्छी तरह उत्साहके साथ करे तो हमारा इस रगभूमिसे बाहर निकलना अर्थात् हमारी मृत्यु बडी ही प्रशसनीय और आदरणीय होगी।

मेरे खयालमे हम इस संसारमे इस लिए आये है, कि अपने अनुभवसे यह मालूम करे कि शुद्ध आत्मा क्या वस्तु है और इसकी क्या शक्ति है। आत्माकी वास्तविक शक्तिको जानना ही मानो परमात्माकी शक्तिको जानना है। यही हमारा अभीष्ट और यही हमारा उद्देश्य है। जितना हम अपने समयको आनन्दसे व्यय करते है और जीवनकी बदलती हुई अवस्थाओमें समान भावसे प्रवृत्त होते है, उतना ही हम अपने उद्देश्य और मनोरथमे सफल होते है। अतएव हमको जीवनकी प्रत्येक अवस्थामे धीर वीर रहना चाहिए, चाहे वह अवस्था अच्छी हो चाहे बुरी, चाहे नीची हो चाहे ऊँची। जिन कामोंको करनेकी हम शक्ति रखते है उनको यथासम्भव अच्छी तरह करना चाहिए और जो बातें हमारी शक्तिसे बाहर है उनमे व्यर्थ न पड़ना चाहिए। सर्वशक्तिमान ज्ञाता द्रष्टा परमात्मा इन बातोंको स्वयं ही देख रहा है अतएव हमे इनके विषयमे कोई भय या चिंता न करनी चाहिए और न कभी इनका विचार करना चाहिए।

जिन बातो और कार्योंसे हमारा सम्बन्ध है उनको सर्वोत्तम रीतिसे करना, अपने मार्गानुगामी बन्धुओंकी यथाशक्ति सहायता करना, दूसरोकी त्रुटियों और कमियोंको दूर करके तथा उन्हें कुमार्गसे हटा करके सत्य मार्ग पर लाना जिससे वे पापमय जीवन व्यतीत करनेके स्थानमे ससारमे धार्मिक प्रशस्य जीवन व्यतीत करे, तथा अपने स्वभावको सदा सरल, शुद्ध और विनीत रखना जिससे ईश्वरीय शक्तिका विकाश हो सके, अपनेको सदा उत्तम कार्योंके लिए तैयार रखना, सबसे प्रेम और सहानभूति रखना, और किसीसे भी नहीं डरना, परन्तु पापसे सदा भयभीत रहना, समस्त पदार्थोंके उत्तम गुणोंको देखना और उनके प्रकाशकी आशा करना—इन सब बातोंसे

जीवन बडा ही प्रशस्य और आनन्दमय होगा और फिर हमको किसी भी चीजसे डरनेकी जरूरत नहीं रहेगी-न जीवनसे, न मृत्युसे। मृत्यु हमारे स्थायी जीवनका द्वार है। अर्थात् इस स्थूल पौद्गलिक शरीरके विनाशसे ही मोक्ष प्राप्त होता है जहाँ आत्मा शुद्धतम अवस्थाको प्राप्त करके अनन्त सुखका अनुभव करता है। फिर उसके बाद कोई बन्धन नहीं। न जन्म मरण है न दुःख व्याधि है। अतएव हमें मत्युसे कदापि न डरना चाहिए, किन्तु सदैव मृत्युका हृदयसे स्वागत करना चाहिए और अपनेको मृत्युके लिए तैयार रखना चाहिए। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि हम ऐसा जीवन व्यतीत करे कि जिससे जन्म मरणका बन्धन एक बारगी टूट जाय। इसमें सदेह नहीं कि यह एक महान् कठिन कार्य है। इसके लिए अनेक प्रबल शत्रुओंसे युद्ध करना होगा। घोर परिषह सहनी होंगीं, कठिन व्रत धारण करने होंगे, इद्रियोंको दमन करना होगा, कषायोंको शमन करना होगा; परन्तु लाभ भी इससे अनन्त और अपार होगा।

इसमें तनिक भी संशय या विवाद नहीं है कि हमारे जीवनका सम्पूर्ण आचार व्यवहार हमारी आतरिक दशा पर निर्भर है। जीवनका स्रोत ही हमारे अतरगमें है। अतएव हमको अपनी आन्तारिक दशा पर अधिकतर विचार करना उचित है। हमको चाहिए कि प्रतिदिन थोडासा समय शान्तिके साथ एकान्तमें इस विषय पर विचार करनेके लिए नियुक्त करे। इस समय अपने चित्तको अशुभ योगसे रोक कर शान्त भाव धारणकर अपनी आत्माका किंचित् चिन्तवन करें। निश्चयसे यह हमारे लिए वडा ही उपयोगी और लाभदायक होगा। क्यों कि कई कारणोंसे इसकी आवश्यकता है। प्रथम तो इससे यह लाभ होगा कि हम अपने हृदय और अपने जीवनमें से बुराईके बीज निकाल सकेंगे। दू-

सरे यह लाभ होगा कि हम अपने जीवनके उद्देश्य उच्चतर बना सकेंगे। तीसरे यह लाभ होगा कि हम उन बातोंको स्पष्ट रूपसे देख सकेंगे जिन पर हम अपने विचारोंको जमाना चाहते हैं। चौथे यह लाभ होगा कि हम यह जान सकेंगे कि हमारे आत्मामे और परमात्मामें क्या भेद है और उनमें क्या संबन्ध है। अतएव उसकी भक्तिमें अधिक लीन हो सकेंगे। पॉचवे यह लाभ होगा कि हम अपने दैनिक सांसारिक वितडोमें यह याद रख सकेंगे कि वह सर्वशक्तिमान अनत ज्ञान अनंत दर्शन संयुक्त परमात्मा जो जगद्गुरु है वही हमारे जीवनका मूल और हमारी सम्पूर्ण शक्तियोंका स्रोत है और उससे पृथक् न हममें जीवन है और न शक्ति है। इसी बातको अच्छी तरह समझ लेना और सदा इसके अनुसार चलना मानों ईश्वरको प्राप्त कर लेना है। इसीका नाम ईश्वरदर्शन, सत्यार्थ भक्ति और शुद्ध उपासना है। ईश्वर हमारे घटमे विराजमान है। हमसे पृथक् नहीं है। इस विचारके परिपक्व हो जानेसे हमारे हृदयमे ईश्वरीय ज्ञानका प्रकाश होने लगता है और जितना ही यह प्रकाश बढ़ता जाता है उतना ही हमारा ज्ञान, अनुभव, और बल बढता जाता है। वास्तवमे आत्मामें परमात्माका बोध होना ही समस्त मतो और धर्मोंका सार है। इससे हमारा प्रत्येक कार्य धर्मका एक अग बन जाता है और हमारा उठना बैठना, चलना फिरना, खाना पीना भी दर्शन, पूजा और व्रत उपवासके सदृश हो जाता है। इसमे कुछ सन्देह नहीं। जो धर्म मनुष्यकी प्रत्येक क्रिया पर घटित नहीं होता, जिस धर्ममें प्रत्येक कार्यसे पुण्य पापका बंध नहीं होता वह नाम मात्रका धर्म है, वास्तवमे धर्म नहीं है। संसार भरके अवतारो, महात्माओ, धर्मोपदेशको और सिद्धान्तवेत्ताओने चाहे वे किसी युगमे हुए और किसी देशमे हुए, इस बातका एक

स्वरसे समर्थन किया है। चाहे और कितनी ही बातोंमें उनमें अन्तर हो परन्तु यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

महात्मा ईसा (Christ) का यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है कि जब तक तुम छोटे निष्पाप बालकोंकी सदृश न हो जाओ तब तक तुम ईश्वरीय राज्यमें प्रवेश नहीं पा सकते। जैसे छोटे बालकोंकी पापमें प्रवृत्ति नहीं होती, उनमे क्रोध मान माया लोभकी तीव्रता नहीं होती, वे पीतल और सोनेको बराबर समझते है, इसी तरह तुमको भी उचित है कि अपनी कषायोंको मंद करो, हृदयको शुद्ध करो और बुरी वासनाओंको दमन करो। सदैव परमात्माका स्मरण करो और अपने आत्माको परमात्मा बनानेका उद्योग करो। ऐसा करनेसे तुमको ईश्वरीय राज्य अर्थात् मोक्ष मिल सकता है।

आजकल प्राय: इस विषयकी ओर लोगोंका बहुत कम लक्ष्य है। वे रात दिन सासारिक कार्य व्यवहारमें ऐसे लगे रहते हैं कि आत्मिक उन्नतिका विचार तक भी नहीं करते। इसी कारणसे लोग नित्यशः जडवादी नास्तिक होते जाते हैं। आत्मा परमात्मा शब्दोंसे ही उन्हें घृणा हो जाती है। यह बडा भारी दोष है। इसका परिणाम बड़ा भयकर होता है। ऐसे मनुष्योंको सासारिक विषयोंमें भी प्रायः सफलता नहीं होती, कारण कि उनके जीवनका कोई उद्देश्य नहीं होता और इस कारणसे उन्हें कभी संतोष या तृप्ति नहीं होती। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि सासारिक कार्य व्यवहारको ही छोड़ दिया जाय और सिरमुँडाकर भगवें वस्त्र धारण कर लिये जायँ अथवा घर छोड़कर जंगलमें वास किया जाय। आज कल हम लोगोकी शक्तियाँ ऐसी नहीं है कि रात दिन ध्यान आदि कर सकें। इसके अतिरिक्त जब तक गृहस्थीमे रह कर नियमानुसार क्रमबद्ध उन्नति

न की जाय तब तक यह सम्भव भी नहीं। आजकल जितने भगवे वस्त्रधारी अपनेको साधु महात्मा, नियमी संयमी कहते है वे प्रायः सब बहुरूपये है। अतएव हमको कोई अवश्यकता संसार छोडनेकी नहीं है। हमारा अभिप्राय यह है कि हम प्रथम यह विचार करे कि हम कौन है, कहाँसे आये है और क्यों आये है। तदनन्तर अपने जीवनका उद्देश्य स्थिर करे, अर्थात् इस बातका निश्चय करे कि हम अपने आपको क्या और कैसा बनाना चाहते है। बस, फिर चाहें कोई काम करें, सदैव उस उद्देश्यको अपनी दृष्टिके सामने रक्खे। ऐसा करनेसे हमको प्रत्येक कार्यमे सफलता होगी और हम बहुत जल्द अपनी मनोकामनाको पूर्ण कर लेगे।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक दशामे और प्रत्येक कार्यमे अधिकार हमारे ही हाथमे हैं। हम जिस ओर चाहे बढ़े और जहॉ तक चाहें उन्नति करे। गुणप्राप्ति, आत्मानुभव, ईश्वरदर्शन, चरित्रगठन आदि सम्पूर्ण बातें हमारे आधीन है। हम अपने जीवनके स्वामी है और पूर्ण अधिकारी है। चाहे इसे ऊँचे दरजे पर पहुँचा दे, चाहे नीचे गिरा दे। मनुष्य जिस वस्तुके लिए उद्योग करता है वह अवश्य उसको मिल जाती है। ससारमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसके लिए हम शुद्ध हृदयसे इच्छा करें—पूर्णरूपसे उसकी प्राप्तिके लिए उद्योग करें और वह न मिले। मनुष्य जितनी उन्नति करता जाता है, और ज्यो ज्यो अपने अभीष्टके निकट पहुँचता जाता है उसकी शक्ति बढती जाती है और निकटवर्ती मनुष्यो पर उसका प्रभाव अधिक होता जाता है। निर्बल दुःखी मनुष्योको उसे देखकर धीरज बँध जाता है और उनका उत्साह बढ़ जाता है। दूसरे मनुष्य उससे सहारा लेते है और उसकी देखादेखी उसी मार्ग पर चलनेकी इच्छा करते है। जिन मनुष्योंके

विचार और उद्देश्य संकुचित हैं, वे उसका अनुकरण करके अपने उद्देश्य और विचारोंको उच्च और उदार बना लेते हैं। इस प्रकार वह मनुष्य स्वयमेव सत्य मार्गका प्रदर्शक हो जाता है। तनिक आगे बढ़कर उसे ज्ञात होगा कि वह अनेक निर्बल मनुष्योंको केवल अपने मानसिक विचारोंसे उत्साहित करके प्रबल बना सकता है और अनेक असहाय मनुष्योंको केवल अपले मनोबलसे अवलम्बन देकर सहायता पहुँचा सकता है। यह मानसिक उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता है कि यदि इसे पूर्ण रीतिसे समझ कर इसका सदुपयोग किया जाय तो इससे अपरिमित लाभ हो सकता है। सहस्रों व्याख्यानोका भी इतना प्रभाव नहीं पड़ सकता।

जो मनुष्य प्रति दिन थोड़ासा समय एकान्तमें आत्मचिन्तवनमे व्यय करता है और अपने उद्देश्य पर दृष्टि रखकर अपने और परमात्मा-के सम्बधको पहचानता है वह मनुष्य सासारिक कार्योंके लिए भी बडा योग्य और चतुर है। वही मनुष्य अपनी बुद्धि और चतुराईसे कठिनसे कठिन कार्यको भी भली भॉति कर सकता है। वह वर्षोंके लिए नहीं बनाता किन्तु शताब्दियोंके लिए बनाता है। क्यों कि भलाई और सच्चाईका असर वर्षोंसे नहीं मिटता। वह नियत समयके लिए ही काम नहीं करता किन्तु अनंत कालके लिए तैयारी करता है। क्योंकि जब मृत्यु आयगी उस समय इन्द्रियदमन, चित्तनिरोध, आत्मनिर्भरता और ईश्वरानुभव, यही वस्तुयें उसके साथ जायँगी। क्योकि इन्हीं वस्तुओंकी उसके पास बहुलता है। उसको जीवन मृत्युसे कुछ भय या शका नहीं। क्योंकि वह जानता है, समझता है और उसे श्रद्धा है कि परमात्मा मेरी रक्षा करनेके लिए तैयार है। वह निडर जहॉ चाहे जाता है। क्योकि वह जानता है कि मैं

जहाँ जाऊँगा सर्वज्ञदेव मेरी रक्षा करेंगे और कदापि मुझे अध-कूपमें न छोड़ेंगे; किन्तु सदैव मुझे लिये जायँगे यहाँ तक कि अंतमें मैं उस अनंत अक्षय स्थान पर पहुँच जाऊँगा जहाँसे फिर कभी वापिस न आऊँगा और जहाँ अनन्तदर्शन अनन्तज्ञानका धारी हो जाऊँगा। उसी स्थानका नाम मोक्ष है।

—दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.

विविध प्रसंग।

बौद्ध-जातक और बौद्धरामायण।

बौद्धधर्ममें जन्मान्तरवाद माना गया है। उसका सिद्धान्त है कि कोई जीव एक जन्मके कर्मफलसे गौतमादिके समान विभूतिवान् और बुद्ध नहीं हो सकता है; इसके लिए अनेक जन्म धारण करना पड़ते हैं और ज्ञानचारित्रकी उत्तरोत्तर वृद्धि करनी होती है। जिस तरह जैनसाहित्यमें भगवान् महावीर आदिके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त संगृहीत है, उसी तरह बौद्ध साहित्यमे बुद्धदेवके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त है। जिन ग्रन्थोंमें ये पूर्वजन्मकी कथायें ग्रथित है वे जातक ग्रन्थ कहलाते हैं। जातक ग्रन्थ पाली भाषामें हैं और उनकी रचना दो हजार वर्षसे पहले की मानी जाती है। सब मिलाकर ५४७ जातक ग्रन्थ है। इनमें एक जातकका नाम 'दशरथजातक' है। इसे हम बौद्धरामायण कह सकते है। क्योंकि इसमें पुरुषोत्तम रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मणकी कथा है। वाल्मीकि-रामायण और जैन-रामायणकी मूल घटनाओंमें कुछ अधिक पार्थक्य नहीं हैं। इन दोनोंमे जितना सादृश्य है उतना इस बौद्धरामायणमे नहीं है। इसमें कई बाते ऐसी है जो बहुत ही विचित्र हैं और जिनके विषयमे हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इस

रामायणका साराश इस प्रकार है —" दशरथ बाराणसीके महाराजा थे। उनके १६ हजार रानियाँ थीं। पट्टरानीके गर्भसे रामपण्डित, लक्ष्मण कुमार और सीतादेवीकी उत्पत्ति हुई। कुछ समयमें पट्टरानीकी मृत्यु हो गई। इसका दशरथको बहुत शोक हुआ। अन्तमें यह पद और एक रानीको दिया गया। इसके भरत नामका पुत्र हुआ। पुत्रस्नेहके आवेगमें एक दिन राजाने प्रसन्न होकर कहा "प्रिये, मै तुम्हें एक वर दूँगा, कहो तुम क्या चाहती हो?" महारानीने कहा—" महाराज, वर स्वीकार है, परन्तु उसे मै अभी नही लेना चाहती।" जब भरतकुमार सात वर्षका हुआ, तब एक दिन रानीने यह वर माँगा कि मेरे पुत्रको राजसिंहासन दिया जाय। राजाने कहा—" दुष्टे, मेरे प्रज्वलित अगार सदृश दो पुत्र वर्तमान हैं। तू उनको मारके अपने पुत्रको राज्य देना चाहती है?" इस तर्जनसे डरकर महिषी अपने सज्जित कमरेमें चली गई, परन्तु वहाँसे बारबार वर माँगनेका सदेशा भेजने लगी। राजाने वर तो नहीं दिया, परन्तु स्त्रियाँ अकृतज्ञ और मित्रद्रोही होती हैं, महिषी कोई कूटपत्र लिखाकर अथवा रिश्वत देकर सभव है कि मेरे पुत्रोंका प्राणवध करा दे—यह सोचकर अपने पुत्रोंका बाराणसीमें रखना उचित न समझा। उन्होंने पुत्रोंसे सब हाल कहकर उन्हें वनवास करनेकी सम्मति दी और समझा दिया कि मेरी मृत्यु होनेके बाद लौट आना और तब इस वंशगत राज्यको सँभाल लेना। इसी समय ज्योतिषींसे पूछकर यह भी निश्चय कर दिया गया कि मैं बारह वर्ष और जीऊँगा। पुत्र पिताकी आज्ञा माँगकर चल दिये। सीताने कहा, मै भी अपने भाइयोंके साथ जाऊँगी। ये सबके सब वनमें फलमूलसे निर्वाह करते हुए रहने लगे। इधर दशरथने नवें वर्ष प्राण त्याग कर दिये। भरतकी माताने कहा,

भरतको राज्याभिषेक होना चाहिए। मंत्रियोंने यह स्वीकार न किया। निदान भरत स्वयं अपने भाइयोंके लिवानेके लिए गये। पिताका मृत्यु-संवाद सुनकर लक्ष्मण और सीताको बहुत ही शोक हुआ—कई बार मूर्च्छा आई; परन्तु रामपण्डित संसारका स्वरूप जानते थे; उन्हे कुछ भी शोक न हुआ। उन्होंने कहा—अवधिमें अभी तीन वर्ष बाकी हैं—मैं नहीं जाऊगा तबतक तुम शासन करो, नहीं तो मेरी चरणपादुका ले जाओ; वे राज्य करेंगीं। ऐसा ही हुआ; भरत लक्ष्मण और सीताको लेकर चले आये। तीन वर्ष पादुकाराज्य रहा। इसके बाद राम वाराणसीमें आये। बड़े ठाटवाटसे उनका स्वागत किया गया और फिर उनका सीतादेवीके सहित राज्याभिषेक किया गया—सीता रामकी पट्टरानी हुई। इसके अनन्तर रामचन्द्रने १६ हजार वर्ष राज्य करके स्वर्गलोक प्राप्त किया।" बस यही संक्षिप्त बौद्धरामायण है। पाठक देखेंगे कि इसका मूल घटनाओंके साथ भी बहुत बड़ा पार्थक्य है। रामायणकी सबसे बड़ी घटनायें जो सीताहरण, राम-रावणयुद्ध, रावणवध, सीतात्याग आदि हैं उनका इसमें उल्लेख भी नहीं है। इसमें सबसे विलक्षण और आजकलकी दृष्टिमे अतिशय जघन्य बात एक पेटके भाई बहिनका विवाहसम्बन्ध है। इसपर बहुतसे पाठक शायद यह अनुमान करेंगे कि बौद्ध धर्म हिन्दू धर्मका प्रतिपक्षी था, इस लिए उसने हिन्दुओंके पूज्य पुरुषोत्तमको सर्व साधारणकी दृष्टिमे नीचा गिरा देनेके लिए इस कथाकी रचना की होगी; परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं। क्योंकि उक्त जातकमें ऐसी कोई बात नहीं जिससे कथालेखकका यह अभिप्राय प्रकट हो। उसका उद्देश्य कथाके छलसे जनसाधारणको धर्मतत्त्वकी शिक्षा देना है। प्रायः सब ही जातकग्रन्थ इसी उद्देश्यसे लिखे गये हैं।

और किसी सर्वजनग्राह्य कथाका इस प्रकार हास्योद्दीपक परिवर्तन करनेसे केवल उस कथाका ही महत्त्व नहीं घटता है वल्कि कथाका मुख्य उद्देश भी तो नष्ट हो जाता है। किसी किसीका अनुमान है कि वुद्धदेवके समयमें--जव कि जातकोंकी रचना हुई है--रामायणकी कथा इसी असस्कृत रूपसें प्रचलित होगी, पीछे वाल्मीकि आदि वैदिक कवियोंने और रविषेण आदि जैनकवियोने उसे संस्कृत की होगी। परन्तु हमारी समझमें जिस तरह जैन शास्त्रोंमें कालविभाग किये हैं और कुछ कालोंमें 'युगल धर्म' माना है, अर्थात् एक उदरके भाई वहिनोंमे स्त्री-पुरुषसवध माना है, उसी तरह सभव है कि वौद्ध शास्त्रोंमें भी माना होगा और रामसीताको उसी समयके मनुष्य मानकर उनका आख्यान रचा होगा। जो हो, हमने अपने पाठकोंको केवल इस वातसे परिचित कर देनेके लिए यह नोट लिखा है कि वेदानुयायियों और जैनोके समान वौद्धोंके यहाँ भी रामायण है और श्रीरामचन्द्रादिको वे भी अपने धर्मका उपासक और प्रचारक मानते हैं। भारतवर्षका शायद कोई भी ऐसा धर्म न होगा जो पुरुषोत्तम रामको अपना न मानता हो। आश्चर्य नहीं जो वौद्धोंमें श्रीकृष्णचरित्र भी हो।

२ अंगरेजीके विद्वान् और हिन्दी।

इस विषयमें कई वार लिखा जा चुका है कि जव तक उच्च श्रेणीके शिक्षा पाये हुए लोग हिन्दी भाषाके द्वारा व्याख्यानादि देकर या लेखादि लिखकर अपने विचार प्रकट न करेंगे तव तक साधारणजनतामें न तो ऊँचे विचारोंका प्रचार होगा और न वास्तविक शिक्षाके और सुधारोंके प्रति आदरभाव उत्पन्न होगा। इस अकके 'सर्वसाधारण जनोंकी शिक्षा' शीर्षक लेखमें भी इस वात पर वहुत जोर दिया गया है कि शिक्षित लोग सर्वसाधारण लोगोंसे सहानुभूति

रक्खें, उनके सुखदु:खोंको अपना सुखदुख समझें और अपने बड़प्प-
नको भूलकर उनकी सीधी सादी बोलचालकी भाषामें उनकी भला-
ईके लिए अपने विचार प्रकट करे । हम देखते हैं कि अन्य समाजके
शिक्षितोंका ध्यान इस ओर कभीका जा चुका है और अब उनमे
अनेक विद्वान् हिन्दी भाषाके द्वारा देशधर्मकी सेवा करने लगे हैं।
जैनसमाजमें उच्चश्रेणीकी अँगरेज़ी शिक्षा पाये हुए लोगोंकी संख्या अच्छी
है; परन्तु अभीतक दो चार सज्जनोंको छोड़कर किसीका भी ध्यान
इस ओर नहीं गया है । आज २०—२५ वर्षसे जैनसमाजमें शिक्षा-
सम्बन्धी आन्दोलन हो रहा है; परन्तु अबतक उनमेसे बीस पचीस
सज्जन भी ऐसे दयालु न निकले जो और कुछ नहीं तो जैनपत्रोंमे गरी-
बिनी हिन्दी भाषाके द्वारा अपने विचार ही प्रकट करते, साधारण
लोगोंके सामने व्याख्यान ही देते, या दो चार पुस्तकें ही लिखकर
हिन्दी-साहित्यका उपकार करते । यही कारण है जो जैनसमाजके हिन्दी
पत्र कूड़ा-करकटसे भरे हुए होते हैं और इन २०—२५ वर्षोंमे वह
बहुत ही कम आगे बढ़ सका है। परन्तु अब लक्षण कुछ अच्छे दिख-
लाई देने लगे है-समाजके सौभाग्यसे अब इन्हें भी अपनी मातृभाषा पर
तरस आने लगा है। इलाहाबादमें 'जैन-ब्रदर-एसोशियेशन' या 'जैन-
भ्रातृमण्डल' नामकी एक सस्था है। इस संस्थाके कार्यकर्त्ता और
मेम्बर प्राय: कालेजोके विद्यार्थी हैं। इसके सैक्रेटरी श्रीयुत बाबू निहा-
लकरणजी सेठी, बी. एस सी. हमारे एक पत्रके उत्तरमें लिखते है:—
"यह मण्डल हिन्दीभाषाको कदापि नहीं भूल सकता। .... हमें यह
लिखते बहुत हर्ष होता है कि इस वर्ष इसके सम्बन्धमे भी प्रस्ताव
स्वीकृत हुए हैं। मै आपकी सेवामे एक प्रस्तावकी नकल भेजता हूँ।
'इस बातको भले प्रकार समझकर—कि हमारे देशकी उन्नति बिना

उपयुक्त शिक्षाके होना असभव है और उपयुक्त शिक्षा केवल मातृ-भाषामें ही दी जा सकती है; परन्तु हमारी मातृभाषा हिन्दीका साहित्य सवही अगोंमें वहुत हीन है—यह मण्डल अपने सम्पूर्ण सभासदोंसे प्रार्थना करता है कि वे इस वातकी प्रतिज्ञा करें कि हम वहुत ही शीघ्र हिन्दी साहित्यकी पूर्तिके लिए और हिन्दीमें शिक्षा देनेका कार्य सरल करनेके लिए कमसे कम एक एक अच्छी और उपयोगी स्वतत्र पुस्तक हिन्दीमे लिखेंगे या किसी अच्छी पुस्तकका अनुवाद करेंगे।' ... मण्डलकी इस प्रार्थनाको मण्डलके सव ही सभासदोंने स्वीकार किया है और प्रतिज्ञा कर ली है। कुछ लोगोंने इसका पालन कठिन समझ यही प्रतिज्ञा की है कि उक्त कार्य करनेका यथाशक्ति उद्योग करेंगे। यदि सफलता प्राप्त न हो तो कमसे कम किसी भाषासे एक सरल उपन्यासका अनुवाद तो अवश्य कर देंगे। इसके अतिरिक्त मण्डलके अधिवेशन हिन्दी और ॲगरेज़ी दोनोंमें होते हैं—एक हिन्दीमे और दूसरा ॲगरेजीमें। . मण्डलके दफ्तरमें हिन्दीके सामयिक पत्र तथा समाचारपत्र भी आते हैं और वहुतसे सभासद हिन्दीपुस्तकोंको खरीदते रहते हैं।" मण्डलके इस मातृभाषाप्रेमसे हमको वहुत ही प्रसन्नता हुई है और साथ ही यह आशा हुई है कि धीरेधीरे उसका अनुकरण अन्याय ॲगरेजी-पण्डित भी करने लगेगे। हमको विश्वास है कि शिक्षितोंके मातृभाषाप्रेमसे देश और धर्मका वहुत वड़ा कल्याण होगा। देश और धर्मकी उन्नतिका इससे अच्छा और कोई मार्ग नहीं है।

३ हिन्दुओंमें स्त्रियोंकी संख्या कम क्यों है ?

इस प्रश्नका कोई कुछ उत्तर देता है और कोई कुछ। विदेशी लोग कहते है कि वाल्यविवाह और परदेशी चालके कारण हिन्दू स्त्रियोंका

स्वास्थ्य विगड़ जाता है और वे अकालमे ही कालके गालमें पड़ जाती हैं। परन्तु इसके सिद्ध करनेके लिए वे यथेष्ट प्रमाण नही दे सकते। शहरोको छोड़कर ग्रामवासी प्रत्येक स्त्रीको खुली हवा मिलती है और उनका स्वास्थ्य पुरुपोकी अपेक्षा अच्छा रहता है। शहरकी स्त्रियोको यदि खुली हवा नहीं मिलती, तो पुरुष भी तो इस विषयमे कुछ अधिक सौभाग्यवान् नही है। वे यह भी कहते हैं कि हिन्दू लोग विधवा-ओको कष्ट देते है, इस कारण वहुत सी विधवाये कम उमरमें मर जाती है। परन्तु हमारा विश्वास है कि ब्रह्मचर्यके कारण हिन्दू-वि-धवाये अकसर निरोगिनी और चिरजीविनी होती है। एक विद्वान्का मत है कि यद्यपि लड़कियोकी अपेक्षा लड़के सभी लोगोमें अधिक उत्पन्न होते हैं; परन्तु हिन्दुओको छोड़कर और समाजोमे लड़कियोकी तुलनामे लड़के इतने अधिक मरते है; कि अंतमे लड़कियोकी सख्या अधिक हो जाती है। हिन्दुओमे भी लड़कियोकी अपेक्षा लड़के अधिक मरते है; परन्तु इतने अधिक नहीं मरते कि उनकी संख्या लडकियोंकी संख्यासे कम हो जाय। लडके और लडकियोकी जीवन शक्ति या बचे रहनेकी शक्ति भिन्न भिन्न है। सब समाजोमे लड़कोकी जीवन शक्ति लड़कियोकी अपेक्षा कम है, परन्तु हिन्दुओमे लड़कोकी जीवन शक्ति औरोके बराबर कम नहीं है। इसका कारण निरूपण करते हुए एक बगाली विद्वान् कहते हैं कि हिन्दुओमे हजारमे एक दोको छोड़कर सब जगह पिता-की उमर ही मातासे अधिक होती है और बहुत करके इसीसे उनमें पुत्र-सन्तानकी जीवनी शक्ति औरोकी अपेक्षा कुछ अधिक होती है।

४ जैनसमाजमें स्त्रियोंकी कमी।

'प्रगति आणि जिनविजय' ने मनुष्यगणनाकी रिपोर्टका हवाला देकर लिखा है कि जैनसमाजमें भी स्त्रियोंकी सख्या पुरुषोकी अपेक्षा

कम है। यह कमी थोडी नहीं, १ लाख ९२ हजारकी है। इसमेंसे १ लाख ५३ हजारकी कमी जैनसमाजकी विधवाओंके कारण उत्पन्न हुई है। अर्थात् इतनी विधवायें होनेके कारण इतने ही पुरुषोंके विवाह होनेकी सभावना नहीं रही है–डेढ़ लाखसे अधिक पुरुषोंको अविवाहित रहना ही पड़ेगा और यही जैनियोंकी जनसख्याके ह्रासका एक बड़ा भारी कारण है।

५ मृत्युके द्वार पर पहुँची हुई जैनजातियाँ।

सन् १९११ की मनुष्यगणनासे माऌम होता है कि जैनियोकी ५५ जातियाँ ऐसी है जिनकी जनसख्या १०० से भी कम है। ये जातियाँ मृत्युके द्वार पर पहुँच चुकी है। थोडे ही समयमें इनका नाम-शेष हो जायगा–फिर किसीको स्मरण भी नहीं रहेगा कि जैनियोंमें इन नामोंकी भी कोई जातियाँ थीं।

६ मृत्युशय्या पर पड़ी हुई जैनजातियाँ।

उक्त जातियोंके सिवाय १७ जातियाँ ऐसी है जो क्षयसे पीडित होकर मरणकी वेदना भोग रही हैं। इनका नाश किस तरह हो रहा है, वह नीचे लिखे कोष्टकसे माऌम होगा:—

जाति	१९०१ की संख्या	१९११ की सख्या	जाति	१९०१ की सख्या	१९११ की सख्या
बंजारा	२३५	१	फकीर	१०२	८०
सुनार	८१४	९७			
भावा	११२८६	८४२३	हूमड	१७०२४	११९५७
भाटिया	१७८	१२०	जाट	१८३	११८
			खत्री	७०४	४६४
भोजक	७२०	३४७	कुँभार	३२८	१५

जाति.	संख्या. १९०१ की	संख्या. १९११ की	जाति.	संख्या. १९०१ की	संख्या. १९११ की
चित्रा	१३१३	११२८	कुणबी	२२१९	१४७०
			रजपूत	२९४७	८४६
चिटोरी	१०४४	८८०	रंगरेज	४०५	६९
ढिसवाल	९७१	३२५	सेवक	७१७	१२०

७ स्त्रियोंकी संख्या अधिक नहीं है।

सन् १९११ की मनुष्यगणनाके अनुसार भारतके सब धर्म और जातिके पुरुषोंकी कुल गिनती १६ करोड़ १३ लाख ३८ हजार ९२५ है और स्त्रियोंकी कुल गिनती १५ करोड़ ३८ लाख १७ हजार ४६१ है। इनमेंसे हिन्दू पुरुषोंकी संख्या ११ करोड़ ७ लाख ७३ हजार ९४४ और हिन्दू स्त्रियोंकी संख्या १० करोड़ ६६ लाख ४७ हजार ९३४ है। अविवाहित हिन्दू पुरुषोंकी संख्या ५२०७६४८७ और स्त्रियोंकी संख्या ३३८७५३१० है। इससे जो लोग यह युक्ति देकर विधवाविवाहकी अनावश्यकता बतलाते हैं कि विधवाओंका विवाह करनेसे कुमारियोंको अविवाहित रह जाना पड़ेगा वे लोगोंको एक तरहका धोखा देते हैं। विधवाविवाहका अनौचित्य सिद्ध करनेके लिए और दूसरी युक्तियाँ देना चाहिये।

८ विधवाओंकी संख्या।

जो लोग विधवाविवाहके पक्षपाती हैं वे विधवाओंकी संख्या बतलाते समय उन जातियोंकी विधवाओंकी संख्याको भी शामिल कर लेते हैं जिनमें कि विधवाविवाह या धरेजा जायज़ है—जिनके यहाँ दूसरा पति करनेकी कोई रुकावट नहीं है। और इस तरह विधवाओंकी संख्या करोड़ों पर पहुँचा देते हैं। यह भी एक तरहका धोखा देना है। वास्तवमें उच्चवर्णकी खास खास जातियोंमें ही स्त्रियोंका

पुनर्विवाह निषिद्ध है और उन्हींकी विधवाओंकी–सो भी युवती विधवाओंकी–संख्या बतलाकर रोना चाहिए।

९ वंश-विवाह हानिकारक है।

मुसलमान और क्रिश्चियन आदि लोगोंमें काका-जात भाई-बहिनोंका ब्याह करनेकी पद्धति है, अर्थात् एक भाई अपनी लड़की, अपने छोटे या बड़े भाईके लड़केके साथ ब्याह सकता है। इस तरहके विवाह क्रिश्चियन और इसलाम धर्मोंमें विहित माने गये हैं। शरीरशास्त्रज्ञ विद्वानोंमें बहुत दिनोंसे इस विषयको लेकर खूब वादविवाद चल रहा है कि इस प्रकारके विवाहोंकी सन्तान अच्छी होती है या नहीं। एक पक्ष कहता है कि स्ववंशविवाहकी सन्तान बहुधा रुग्न विकलाङ्ग और बुद्धिहीन होती है, परन्तु दूसरा पक्ष इसे स्वीकार नहीं करता है। डाक्टर जोजेफ स्काट् नामक एक विद्वानने जो बहुत समयसे ईराणमें रहते हैं इस विषयमें अनेक परीक्षाओ गवेषणाओं और दीर्घ कालके मननसे यह स्थिर किया है कि स्ववंशविवाहका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। ईराणमें 'बाहाई' नामक जातिके लोग सबसे अधिक बुद्धिवान् और बलवान् होते है और इसका कारण यह है कि वे वंशमे विवाह कदापि नहीं करते। वहाँके हकीम लोग भी स्ववंशविवाहका विरोध कर रहे हैं। रक्तका सम्बन्ध जितने अधिक दूरका होगा उतना ही अधिक अच्छा होगा। हमारे देशमें मालूम होता है, इसी कारण निकट सम्बन्धका निषेध है। पहले मामाकी लड़की लेनेकी जो चाल थी वहभी शायद इसी कारण बन्द कर दी गई होगी। 'कन्यारत्न दुष्कुलादपि'की प्रथा भी इसी नीवपर खड़ी की गई है।

१० उड़नेवाली रेलगाड़ी ।

वाशले नामके एक फ्रेंच विद्वानने आकाशमे अधर चलनेवाली रेलगाड़ीका आविष्कार किया है । यह प्रत्येक घण्टेमें ३०० मीलके हिसाबसे दौड़ सकेगी। अर्थात् आजकलकी शीघ्र चलनेवाली मेलट्रेनकी अपेक्षा यह दशगुणी चलेगी।

११ ईसामसीहकी जाति ।

ईशूख्रीष्टकी जातिके सम्बन्धमे मतभेद है । कोई कहते है कि वे कृष्णकाय नीग्रो थे और कोई कहते है कि नही, श्वेतकाय गोरे थे। अँगरेज़ीके विख्यात विश्वकोश एनसाईक्लोपेडियाके मुद्रासंग्रह विषयक निबन्धमे ईस्वीसन् ७०९ के एक सिक्केके आधारसे सिद्ध किया गया है कि नहीं, वे काले नीग्रो लोगोंके वशज थे । नीग्रो लोग यह जानकर बहुत ही खुश हुए है कि प्रभु ईशूख्रीष्ट हमारी ही जातिके थे। गोरे लोग यह जानकर भी क्या कालोसे घृणा करना छोड़ देंगे?

स्वर्गीय मि० भग्गूभाई फतेहचन्द कारभारी ।

यह जानकर हमको बहुत ही शोक हुआ कि 'जैन' पत्रके सम्पादक श्रीयुत भग्गूभाई फतहचन्द कारभारीका यूरोपमें देहान्त हो गया। कारभारीजी उन पुरुषोंमेसे एक थे जिनका आदर्श जीवन एक गिरे हुए समाजको ऊपर उठानेके काममें समाप्त हो जाता है; पर उस समाजको उनके जीते जी यह खयाल भी नही होता कि इन्होने मेरी भलाईके लिए क्या क्या कष्ट उठाये थे । आप अपने पिताके एकलोते पुत्र थे । अँगरेज़ी और गुजराती भाषाके आप नामी विद्वान् और लेखक थे । आपका सारा जीवन साहित्यसेवामें व्यतीत हुआ । गुजराती भाषामें आपने कई नामी नामी ग्रन्थ लिखे है । टाड राज-

ध्यानका सबसे पहला गुजराती अनुवाद आपहीने किया था। आपकी बनाई हुई अँगरेजी-गुजराती और गुजराती-अँगरेजी डिक्शनरी इस प्रान्तमें बहुत अच्छी समझी जाती है। स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द पर आपकी बड़ी भक्ति थी। इस लिए आपने उनके कर्मयोग, राजयोग, पातंजलयोगदर्शन, भक्तियोग, पत्रव्यवहार आदि अनेक ग्रन्थोंका गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया था। स्वर्गीय गांधी वीरचन्दजीके जैन-फिलासफी, जैनयोग आदि अँगरेजी ग्रन्थोंका प्रकाशित होना और नाममात्रके मूल्यमें विक्रीत होना आपहीके उद्योग और परिश्रमका फल था। धर्मबिन्दु, शत्रुंजयमाहात्म्य आदि जैनग्रन्थ भी आपके द्वारा प्रकाशित हुए थे। बम्बईमें जो 'सेठ देवचन्द लालचन्द पुस्तकोद्धार फंड' नामक संस्था है और जिसके द्वारा श्वेताम्बरसम्प्रदायके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित होकर लागतसे भी कम मूल्य पर बिक रहे हैं, उसके लिए आपहीने अतिशय प्रयत्न किया था। पहले आप अहमदाबादमें 'प्रजाबन्धु' नामका साप्ताहिक पत्र निकलते थे जो कि इस समय बहुत अच्छी दशामें चल रहा है। 'पेट्रियट' नामका अँगरेजी साप्ताहिकपत्र भी आप कुछ समय तक निकालते रहे थे। सन् १९०३ में आपका ध्यान जैनसमाजकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ और आपने 'जैन' नामका गुजराती साप्ताहिकपत्र निकालना शुरू किया। इस पत्रकी उन्नति करनेके लिए आपने कुछ भी नहीं उठा रक्खा। जैनोंका शायद यह सबसे पहला समाचारपत्र था जो इतने अच्छे ढंगसे और 'अप टू डेट' निकलता था। इसके लगातारके आन्दोलनोंने श्वेताम्बरसमाजमें एक सनसनी पैदा कर दी और नया जीवन डाल दिया। सच तो यों है कि इस पत्रके लिए आपने अपना सर्वस्व और शरीर तक अर्पण कर दिया। आपने खूब घाटा उठाया और

तन्दुरुस्ती इतनी खराब कर ली कि उसीमे आपके जीवनका अन्त हो गया। आपकी निष्पक्ष सेवाका फल आपको इतना ही नहीं मिला, समाजका बहुत बड़ा भाग आपके विरुद्ध हो गया और उसीके कारण एक मामलेमे आपको जेलकी हवा तक खानी पड़ी। परन्तु इन सब बातोंके होने पर भी इस कर्मवीरका उत्साह और प्रेम कभी क्षीण न हुआ। आप कहा करते थे कि "जैनपत्रके चलानेमे मेरा स्वार्थ केवल इतना ही है कि जैनबन्धुओंमें वाचनाभिरुचि उत्पन्न करके उन्हें वर्तमान समयका ज्ञान करा दिया जाय, सरकारमें अपने स्वत्वोंकी रक्षा कैसे हो इसकी सूचनायें की जायँ, हमारे अगुओंके कर्तव्य क्या हैं, जैन जाति आगे किस तरह बढ़ सकती है, उसमें एकता कैसे हो सकती है और उसकी बदनामी कैसे दूर हो सकती है, ये सब बातें बतलाई जावें। जैनपत्र मेरी कमाईका साधन नहीं है। मैंने जो कुछ विद्या प्राप्त की है, उससे जैनजातिका उपकार हो केवल इसीलिए मै इसे निकालता हूँ।" यह कथन अक्षर अक्षर सत्य था। कुछ समय पहले यहाँके 'ट्रान्सलेटर ऑफिस' में आपको ३००) मासिक वेतनकी जगह मिलती थी; परन्तु समाजसेवा और साहित्यसेवाके आगे आपने उसे तुच्छ समझा और स्वीकार नहीं किया। आपका स्वास्थ्य कुछ दिनोंसे बिगड़ रहा था; परन्तु यूरोपभ्रमण करनेकी आपकी इतनी तीव्र इच्छा थी कि उसे आप न रोक सके; चल ही दिये और पेरिस (फ्रांस)के समीप एक ग्राममें गत १० वीं सितम्बरको आपका शरीर छूट गया। आपकी मृत्युसे इस समय आपके प्रतिपक्षियों और शत्रुओंके मुँहसे भी आपका स्तवन सुन पड़ता है और वह यह बतलाता है कि सच्चे हृदयसे की हुई निःस्वार्थ सेवाकी अन्तमे विजय होती है। हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारे श्वेताम्बरी

भाई स्वर्गीय भग्गूभाईका एक अच्छा स्मारक बनानेका प्रयत्न कर रहे है। इस कार्यमें प्रत्येक जैनी ही क्यों भारतवासी मात्रको सहायता करनी चाहिए।

१३ कलकत्ताकी संस्कृत यूनीवर्सिटीमें जैनग्रन्थ।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सस्कृत यूनीवर्सिटी कलकत्ताने अब अपने पठनक्रममें दिगम्बर जैनग्रन्थ भी भरती कर लिये है। फिलहाल व्याकरण और न्यायग्रन्थ स्वीकृत हुए हैं। व्याकरणमें शाकटायन और जैनेन्द्र तथा न्यायमें न्यायदीपिका, परीक्षामुख, आप्त-परीक्षा सटीक और प्रमेयरत्नमालाकी भरती हुई है। जैनेतर विद्यार्थी भी इन ग्रन्थोंका अध्ययन करके परीक्षायें देनेके लिए उत्ते-जित होवें इसके लिए पूज्य प० पन्नालालजी बाकलीवालकी प्रेरणासे दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने कुछ मासिक वृत्तियाँ देना स्वीकृत किया है। इसके लिए उन्होंने ६००) रुपयाकी सहायता दी है। ये वृत्तियाँ महामहोपाध्याय प० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए. की मार्फत दी जावेंगी। इस बातका भी प्रबन्ध किया गया है कि परीक्षार्थी विद्या-र्थियोंको पाठ्यग्रन्थ डाक खर्च मात्र लेकर भेज दिये जावे। इसके लिए ‘ पं० पन्नालालजी, मैदागिनी जैन मन्दिर, बनारस ’ के पतेसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

१४ तामिल काव्य कुरल।

तामिल काव्य ‘ कुरल ’ के विषयमें इस अंकमें भी हम अपने एक मित्र महाशयका लिखा हुआ लेख प्रकाशित करते है। इस लेखसे उक्त काव्यके सम्बन्धकी अनेक ज्ञातव्य बातोंका पता लगेगा और साथ ही कुरलकी कुछ सरल स्वाभाविक सूक्तियोंका रसास्वादन भी पाठक कर सकेंगे। कुरलके अँगरेजी अनुवादक डा० पोपका मत है

कि "कवि वल्लुवर ईसाई धर्मसे परिचित रहे होंगे। क्योंकि उस समय मलियापुरमें ईसाई आ चुके थे। उनकी बहुतसी सूक्तियाँ स्पष्टतया ईसाई मतसे मिलती है। उन्होंने बहुतसे विचार ईसाई धर्मपुस्तकोंसे ग्रहण किये है।" हमारे लेखक मित्रने डा० पोपके इस मतको ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया है। इसके विषयमे हमारा निवेदन है कि एक तो कविवर वल्लुवरका समय निश्चित नहीं है, दूसरे इस विपयमें भी मतभेद है कि ईसाई सबसे पहले यहाँ कब आये थे और तीसरे साधारण धर्म और नीतिकी बातें चाहे जब, चाहे जिस देशके वासी-के हृदयमें एक ही रूपमें उत्पन्न हो सकती है। यह जरूरत नहीं है कि एक देशवासी एक कवि दूसरे देशवासी दूसरे कविकी रचनाको पढ़कर ही उन बातोको अपनी रचनामें शामिल करे। भारतवर्षके एक कविके हृदयमे जो कल्पना आजसे हजार वर्ष पहले उठी थी वही कल्पना एक इंग्लेंडवासीके हृदयमें आज भी उठ सकती है और ऐसे एक साधारण उपदेशके विषयमें कि 'तू जीवको मत मार' यह कल्पना करना कि वह 'बाइबिल' से लिया गया है बिलकुल असंगत मालूम होता है। जिस समय बाइबिलका जन्म भी न हुआ था उस समय भी भारतके धर्मग्रन्थोंका यह बहुत ही साधारण वाक्य था जिसे यहाँका बच्चा बच्चा जानता था। ऐसी सूक्तियोको लेकर यह सिद्ध करना—कि कवि ईसाई धर्मग्रन्थोंको जानता था—व्यर्थ है। इसके लिए स्पष्ट भ्रमरहित प्रमाण चाहिए। हमारे ईसाई विद्वान् ईसाई धर्मके महत्त्वमे मोहित होकर इस प्रकारके विधान अकसर किया करते हैं। अभी कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'गीताञ्जलि' काव्यके विषयमें भी ऐसा ही हुआ है। उक्त काव्यकी भक्ति-पूर्ण कविता पढ़कर अनेक समालोचक उसे क्रिश्चियन भक्तिसाहि-

त्यके साथ तुलना करनेका व्यर्थ परिश्रम उठा रहे हैं । भारतवर्षीय वैष्णव भक्तिवादकी उत्पत्तिका अनुसन्धान करते हुए ईसाई विद्वान् कहते हैं कि "दक्षिण भारतमें ईसाई पादरी आये थे। मालूम होता है कि उन्हींके द्वारा बाइबिलका भक्तिवाद श्रवण करके इस देशके लोगोंने वैष्णवधर्मका सगठन किया है।" बस इसी तरहका अनुमान कुरलकाव्यके विषयमे डाक्टर पोपका है। यदि कवि वल्लुवर वास्तवमें ही ईसाई धर्मसे परिचित रहे हो तो इसमें हमारी कोई हानि नहीं है- इसमें कविका बहुश्रुतत्व ही सिद्ध होगा; परन्तु दुःख इस बातका है कि यह अनुमान सत्यकी भित्ति पर नहीं मालूम होता ।

१५ सेठीजी क्या हवालातमें ही पड़े रहेंगे ?

दिल्ली और आरेके मुकद्मोंका फैसला हो चुका, परन्तु श्रीयुत सेठी अर्जुनलालजी बी. ए. के भाग्यका फैसला न हुआ। इन दोनों मामलोंसे उनका सम्बन्ध बतलाया जाता था, इसलिए इनके साथ ही इनके मामलेका भी अन्त हो जाना चाहिए था, परन्तु अबतक उनके छोडे जानेके विषयमें कुछ चर्चा भी नहीं है। जैनसमाज भी कानोंमें तेल डाले सो रहा है। हमारी समझमे उसे अपनी पुकार फिर भी अपनी न्यायशील सरकार तक पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिए कि एक निरपराध व्यक्तिको क्यों व्यर्थ ही कष्ट दिया जा रहा है। हम सरकारसे भी आशा करते है कि वह शीघ्र ही सेठीजीके मामले पर विचार करके उन्हें मुक्त कर देनेकी उदारता दिखलावेगी।

१६ बाबू माणिकचन्दजीका व्याख्यान ।

सिद्धवरकूटमें ता० ७ नवम्बरको बाबू माणिकचन्दजीका व्याख्यान बहुत महत्त्वका हुआ। उसका सार भाग अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। हम अपने पाठकोंसे सिफारिश करते है कि वे उसे पढ़ें और उस पर विचार करें ।

नये वर्षकी सूचना।

(प्रत्येक ग्राहकको पढ़ना चाहिए।)

इस अंकके साथ जैनहितैषीका वर्ष समाप्त होता है। आगामी अंकसे नया वर्ष शुरू हो जायगा। पहला अंक बहुत जल्दी तैयार करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। इस लिए जो सज्जन आगे ग्राहक न रहना चाहे वे कृपा करके इस अंकके पाते ही एक कार्डसे हमको सूचित कर देवे। क्यो कि नया अंक वी. पी. के द्वारा भेजा जायगा और वी. पी. वापस होनेसे व्यर्थ ही इस समाजसेवक पत्रको घाटा उठाना पड़ेगा। जो सज्जन हितैषीके लेखोंको आदरकी दृष्टिसे देखते है उनसे तो हम इस समय यही आशा करते है कि वे अपने मित्रोमेसे

एक एक दो दो नये ग्राहक

बनाकर भेजेंगे और इस पत्रकी ग्राहकसंख्या बढानेमें सहायता पहुँ-चावेगे। जबतक इसकी ग्राहकसंख्या काफी न होगी तब तक यह वैसा ऊँचे दर्जेका पत्र नही बन सकता है जैसा कि हम चाहते हैं। अभी तक 'मुनाफा' रहना तो दरकिनार रहा इसका खर्च ही वर्तमान ग्राहकोकी आमदनीसे बड़ी कठिनाईसे निभता है। और अब

युद्धके कारण

कागजका भाव पहलेसे सवाया डेवड़ा हो गया है—छपाईका चार्ज भी बढ़ गया है। आगे और भी न जाने क्या क्या कठिनाइयाँ आयँगी। क्योंकि इस युद्धका निश्चय नहीं कि कब तक समाप्त होगा। इन सब बातों पर विचार करके पाठकोको, इस साल और कुछ नहीं तो ग्राहकसंख्या बढ़ानेके लिए अवश्य ही प्रयत्न कर देना चाहिए।

उपहारकी बात

पिछले वर्ष सम्पादक महाशयकी बीमारीके कारण उपहारका प्रबन्ध

नहीं कर सके थे। परन्तु इस वर्ष हितैषीके ग्राहकोंको उपहार देनेका प्रबन्ध किया गया है। इस वर्षका उपहार पिछले वर्षोंसे किसी बातमें कम न होगा बल्कि बहुत बडा और उपयोगी होगा। जो लोग उपहार न मिलनेके कारण पिछले वर्प ग्राहक न हुए थे उन्हें इस वर्प अवश्य ही ग्राहक वन जाना चाहिए। उपहारके ग्रन्थ बहुत शीघ्रतासे तैयार कराये जा रहे हैं। पहले अकके साथ वे अवश्य ही रवाना कर दिये जावेंगे। परन्तु उपहारका वी. पी. उन्हें ही भेजा जायगा जो महाशय इस अकके साथ भेजे हुए कार्डको लिखकर भेज देंगे—अर्थात् जो हमें सूचना दे देंगे कि "हाँ, उपहारके अमुक ग्रन्थोका वी.पी. भेज दीजिए। हम उसे छुड़ा लेगे।" जो महाशय इस तरहकी आज्ञा न देंगे उन्हें

सिर्फ जैनहितैषीका वी. पी.

भेजा जायगा और आगे वे उपहार पानेके हकदार न रहेंगे। बहुतसे सज्जन वर्ष शुरू हो जानेके दो दो, चार चार, छह छह महीने पीछे तक हितैषीके ग्राहक वनते है और उपहारके ग्रन्थ तथा पीछेके सब अक मँगाते हैं। ऐसे महाशयोंको मालूम होना चाहिए कि इस वर्ष उपहार देनेकी अवधि या म्याद बहुत ही थोड़ी रक्खी गई है। उपहार रवाना होनेके एक महीने बाद तक जिनकी वी. पी. भेजनेकी सूचना आजावेगी उन्हें ही नियमित मूल्यमें उपहार दिया जायगा। इसके बाद उपहार लेनेवालोंको चार आने अधिक देना पड़ेंगे और पिछले अक यदि मौजूद होगे तो दिये जावेंगे, नहीं तो नहीं। इस वर्ष

उपहारी खर्च

सिर्फ दश आना रक्खा गया है। अर्थात् जैनहितैपीका वर्ष भरका मूल्य १॥), उपहारका खर्च ॥=) और म० आ० खर्च एक आना, इस

तरह दो रुपया तीन आनेका वी. पी. भेजा जायगा। परन्तु एक महीनेके बाद आर्डर भेजनेवालोंको दो रुपया सात आने देना होंगे।

दो तरहका उपहार

देनेका इस वर्ष प्रबन्ध किया गया है। क्योंकि हमारे बहुतसे ग्राहक ऐसे है जिन्हे सिर्फ जैनग्रन्थ लेना ही पसन्द है। सर्वसाधारणोपयोगी शिक्षाप्रद ग्रन्थ चाहे वे कितने ही अच्छे क्यो न हों उन्हें पसन्द नहीं आते। और बहुतसे ग्राहक साधारण शिक्षाप्रद ग्रन्थोंको पसन्द करते है। अतएव इस वर्ष ग्राहक चाहे तो जैनग्रन्थ मँगा लें और चाहे साधारण ग्रन्थ।

उपहारके जैन ग्रन्थ।

दो चुने गये हैं। एक है नेमिचरित या **नेमिदूत काव्य**। यह संस्कृतमें है और महाकवि कालिदासके मेघदूतके चौथे चरणोकी समस्यापूर्ति करके रचा गया है। बहुत ही सुन्दर काव्य है। इसमें भगवान् नेमिनाथ और राजीमतीका पवित्र चरित्र ग्रथित किया है। साथमे भाषाटीका भी है जो बहुत ही सरल और सुन्दर भाषामे लिखी गई है। मूल ग्रन्थकर्त्ता कविवर विक्रमका परिचय बड़ी खोजके साथ लिखा गया है। छपाई सफाई दर्शनीय है। दूसरा ग्रन्थ है धर्मविलास या **द्यानतविलास**। इसमें कविवर द्यानतरायजीकी उन सब कविताओंका संग्रह है जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुई थीं। कविता बड़े ही परिश्रमसे संशोधित की गई है। जैनधर्मके गूढसे गूढ और सादेसे सादे तत्त्व इन कविताओमें समझाये गये है। प्रत्येक स्वाध्यायप्रेमीको इस ग्रन्थको अपने पास रखना चाहिए। चर्चाकरनेवालोंके लिए तो यह बहुत ही कामका है। प्रथम ग्रन्थका मूल्य साढ़ेचार

आना और इस दूसरेका एक रुपया है। इस मूल्यमें ये छह महीनेसे बराबर बिक रहे हैं। जैनहितैषीके ग्राहकोंको ये सवा रुपयेके ग्रन्थ सिर्फ दश आनेमें दिये जावेंगे। इस दश आनेमें दो आने डांक-खर्चेके भी शामिल है। अर्थात् ये सिर्फ आठ आनेमें ग्राहकोंको पड़ेंगे।

सर्वसाधारणोपयोगी उपहार-ग्रन्थ

तो बहुत ही अच्छे चुने गये हैं।

पहला ग्रन्थ **आत्मोद्धार** है। यह सुप्रसिद्ध नीग्रो कर्मवीर 'बुकर टी. वाशिंगटन' का जीवनचरित है। इस महापुरुषका परिचय जैन-हितैषीके पिछले किसी अङ्कमें दिया जा चुका है। इस पुस्तकके स्वाध्या-यसे पाठक समझेंगे कि एक अतिशय गिरी हुई पराधीन जातिमें उत्पन्न होकर भी मनुष्य अपनी उन्नति किस तरह कर सकता है, अपने जीव-नको आदर्श कैसे बना सकता है, अपने जातिभाइयोंकी सेवा किस तरहकी जाती है, आदर्श पाठशालायें कैसी होती है; उनकी उन्नति कहाँ तक की जा सकती है, स्वालम्बनकी और परिश्रम करनेकी शिक्षा कैसे दी जाती है और सच्चे हृदयसे की हुई सेवाका फल कितना अच्छा होता है। प्रत्येक जैनीको यह पुस्तक पढनी चाहिए। इसे पढ़कर जैनसमाज अपनी सस्थाओंका बहुत कुछ सुधार और उद्धार कर सकेगा। इस पुस्तककी सरस्वतीके ख्यातनामा सम्पादक महोदयने बहुत ही प्रशसा की है। वे लिखते हैं कि "आत्मावलम्बनकी शिक्षा देनेवाली सैकड़ों पुस्तकोंसे जो लाभ न होगा वह आत्मोद्धारकी अद्भुत मूर्ति, बुकर टी० वाशिंगटनके आत्मचरितसे हो सकती है।" जैन-जातिमें भी महात्मा वाशिंगटन जैसे पुरुषरत्न उत्पन्न हों, केवल इसी विचारसे इस पुस्तकको उपहारमें देनेकी योजना की गई है। हमारी समझमें तो हिन्दीमें इसके जोडकी शिक्षाप्रद पुस्तक एक भी प्रकाशित

नहीं हुई है। यह लगभग २६० पृष्ठका ग्रन्थ होगा और इसका स्वतंत्र मूल्य एक रुपयेसे कुछ अधिक होगा।

दूसरा ग्रन्थ है 'कठिनाईमें विद्याभ्यास।' हिन्दीमें यह ग्रन्थ अपने ढंगका बिल्कुल नया है। इसमें उन महापुरुषोंके—बड़े बड़े विद्वानोंके चरित दिये गये हैं जो बचपनमें बहुत ही दरिद्र थे—खाने पीने और कपड़े लत्तोंके लिए भी मुहताज थे और मजदूरी करके पेट पालते थे। कोई मोची था, कोई नाव चलानेवाला था, कोई जिल्दसाज था और कोई व्यापारी था। इन सबने कितनी कितनी कठिनाइयों और दुःखोंमें रहकर विद्याभ्यास किया है—विद्यादेवीकी उपासनाकी है, इसका बड़ा ही उत्साहवर्धक और साहस बढ़ानेवाला वर्णन लिखा गया है। इस ग्रन्थको पढ़कर शायद ही कोई अभागा ऐसा निकले जो विद्या पढ़नेके लिए तैयार न हो जाय। हम चाहते हैं कि यह ग्रन्थ प्रत्येक जैन कुटुम्बमें पढ़ा जाय और इसी लिए यह उपहारमें दिया गया है। यह लगभग १६० पृष्ठका होगा और इसका जुदा मूल्य दश-बारह आना होगा। इस तरह ये दोनों ग्रन्थ पौने दो रुपयेके लगभग मूल्यके होंगे और ग्राहकोंको सिर्फ दश आना अधिक लेकर दिये जावेंगे।

उपहार दो तरहके हैं इसलिए जो जिस तरहके उपहारको पसन्द करते हों वे हमें उसीके विषयमें साथ भेजे हुए कार्डके द्वारा साफसाफ सूचित कर दें। यह ध्यान रखना चाहिए कि एक तरह के

एक ग्रन्थके बदलेमें दूसरा ग्रन्थ।

दूसरी तरहका न दिया जायगा। अर्थात् यदि कोई एक जैन ग्रन्थ और एक साधारण ग्रन्थ चाहेगा तो न ले सकेगा। या तो दोनों जैनग्रन्थ ही मिल सकेंगे या दोनों साधारण ग्रन्थ मिल सकेंगे।

दो रुपयामें १२०० पृष्ठ ।

अन्तमें हम एकबार फिर अपने पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस वर्ष ग्राहकसंख्या बढ़ानेकी कोशिश करें । लगभग ४०० पृष्ठके उपहार ग्रन्थ और ८०० पृष्ठका जैनहितैषी इस तरह लगभग १२०० पृष्ठका वाचन देनेवाले पत्रका मूल्य दो रुपया दो आना कितना तुच्छ है, इसका हमारे प्रत्येक पाठकको विचार करना चाहिए ।

जैनहितैषीकी १०० कापियाँ मुफ्तमें

जाया करती हैं । जैनधर्मके प्रेमी विद्वानों, पुस्तकालयों, सभा ओं और सस्थाओंको ये कापियाँ भेजी जाती हैं । इतने पर भी हमारे पास नई नई माँगे आया करती हैं जिन्हें हम लाचार होकर इंकार कर देते हैं । इस विषयमें हम अपने धर्मात्मा पाठकोंको सूचित करते हैं कि यदि वे कृपा करके धर्मादेसे कुछ सहायता भेजें अथवा भिजवावेंगे तो वह स्वीकार की जायगी और उनकी ओरसे धार्मिक सस्थाओंके या धर्मात्माओंके नाम जैनहितैषी जारी कर दिये जाया करेंगे ।

—मैनेजर ।

संवाददाताओं और लेखकोंको सूचना ।

बहुतसे सज्जन हमारे पास सभा पचायातियोंके, मेलोंके तथा अन्याय उत्सवोंके समाचार भेजा करते हैं, सस्थाओंके सम्बन्धमें तथा दूसरी सामयिक घटनाओंके विषयमें भी लिखा करते है । कारण वे जैन-हितैषीको एक समाचारपत्र (न्यूजपेपर) समझते हैं । परन्तु वास्त-वमें यह एक मासिकपत्र या मेगजीन है । इसका उद्देश्य उच्चश्रेणीके स्थायी साहित्यको प्रकाशित करना है । इसमें समाचारों या सवादोंके योग्य स्थान नहीं रहता । इसलिए प्रार्थना है कि कोई महाशय समाचारादि प्रकाशित करनेके लिए न भेजा करें । हाँ, जो

महाशय उच्चश्रेणीके लेख निबन्धादि भेजेंगे, वे सहर्ष प्रकाशित कर दिये जावेंगे।

—संपादक।

जैनहितैषीकी विशेषतायें।

१ इसके प्रायः प्रत्येक अंकमे कमसे कम एक ऐतिहासिक लेख अवश्य प्रकाशित होता है। जैन–इतिहासकी जानकारीकी इच्छा रखनेवालोंको यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिए।

२ इसके प्रायः प्रत्येक अंकमें एकाध गल्प या कहानी रहती है। और वह वहुत ही मनोहर तथा शिक्षाप्रद रहती है।

३ उच्चश्रेणीके लेख प्रकाशित करनेमें जैनहितैषी एक ही है। जैनसमाजके किसी भी हिन्दी पत्रमे इसकी जोड़के लेख प्रकाशित नहीं होते।

४ जैनहितैषीका प्रत्येक अंक अथसे इति पर्यंत पढ़ने लायक होता है। उसकी एक एक लाइन विचारपूर्वक लिखी हुई होती है। समाचारों रिपोर्टो अथवा प्राप्ति स्वीकारोंसे इसके पृष्ठ नहीं भरे जाते।

५ जैन समाजके प्रधान प्रधान लेखकोंका मुख्य पत्र यही है। जैनेतर विद्वान् भी इसके द्वारा अपने विचार प्रगट किया करते हैं।

६ इसमें पुस्तकोंकी समालोचनाये वहुत ही विचारपूर्वक प्रकाशित की जाती हैं और पाठकोंको उच्च श्रेणीके साहित्यका परिचय कराया जाता है।

७ इसमें अधूरे लेख प्रकाशित नहीं होते। जहाँ तक होता है, एक या दो अंकोमें प्रत्येक लेख समाप्त कर दिया जाता है।

दिगंवर-जैन-मालवा-प्रान्तिक सभाके सिद्धवरकूटस्थ अधि-
वेशनकी स्वागतकारिणी सभाके सभापति

बाबू माणिकचन्दजी बी. ए. एल एल. बी. का

व्याख्यान ।

(सार भाग)



प्रिय प्रतिनिधिगण, ऐसे पवित्र तथा प्राचीन स्थल पर उपस्थित होनेसे यह स्वाभाविक है कि हमको अपने धर्मकी तथा अपनी कौमकी प्राचीन श्रेष्ठताका—अपने पूर्वजोंके प्राचीन गौरवका—हमारी इतिहासप्रसिद्ध पुरातन उन्नत अवस्थाका स्मरण हो, तथा वर्तमान-कालमें अन्य भगिनी-जातियोंसे हमारी पिछड़ी हुई दशाका विचार करके हमको दुःख हो; परन्तु भाइयो, केवल अपने पूर्वजोंके कीर्ति-गानमें तथा अपनी वर्तमान अवनत अवस्थाका दुखड़ा रोनेमें मैं समझता हूं कि कुछ भी लाभ नहीं. इसमें सन्देह नहीं कि किसी भी कौमकी—पिछड़ी हुई कौमकी—भावी उन्नतिके लिए यह एक बहुत बड़े महत्त्वकी, बड़े लाभकी, बात है कि उसे अपने पीछे अवलोकन करनेके लिए उसका अतीतकाल उन्नत हो, क्योंकि, एक प्रसिद्ध लेखकके कथनानुसार, " उससे उस जातिके वर्तमान जीवनको स्थिरता प्राप्त होती है, जातिका जीवन उससे उन्नत होता है तथा नीचेकी ओर गिरने नहीं पाता, एवं उसके द्वारा अपने पूर्वजोंके महत्कार्य, क्लेशसहन और नानाविध अनेक सिद्धियोंका स्मरण होते

रहनेसे जातीय जीवन सदा प्रकाशमान तथा उन्नत रहता है;" और इस सम्बन्धमें हमारे लिए यह परम सौभाग्यकी बात है कि हमारा प्राचीन संसारकी अन्य कौमोंके प्राचीनसे यदि अधिक नहीं तो कम तेजस्वी भी नहीं. मैंने एक पश्चिमीय विद्वान्‌को निःसंकोच यह कहते सुना था कि "हम लोगोंको इस बातका बड़ा गर्व है कि हमारे पूर्वज असभ्य, जंगली तथा अशिक्षित थे तथा पृथ्वीमें कंदरायें बना कर रहते थे और हम उनकी संतान सभ्य, उन्नत तथा शिक्षित होकर पूर्वकी जातियोंसे आगे बढ़े हुए हैं जिन्हें इस बातसे लज्जित होना चाहिए कि उनके पूर्वज सभ्य, उन्नत तथा शिक्षित थे और वे उनकी संतान अवनत दशाको प्राप्त हो गये." मै देखता हूं कि हम लोगोंमें, उक्त कथनके विपरीत, सदा अपने पूर्वजोंकी कीर्तिके गान गाकर ही—अपने पूर्वजोंकी उन्नत सभ्यताकी तुलना अन्य जातियोंकी दशासे करके ही—प्रसन्न होकर रह जाने तथा वर्तमान स्थितिका निरीक्षण करके अपनी उन्नतिका अधिक विचार न करनेकी हानिकारक टेव कुछ काल पहले अधिक प्रचलित थी. यह हर्षका विषय है कि इधर कुछ दिनोंसे यह टेव कम होती जाती है, तथा हमारे सार्वजनिक उत्साही भाइयों तथा हमारे आदरणीय विद्वानों व मुखियाओंका ध्यान इस ओर अधिक झुकता जा रहा है.

अपनी भावी उन्नतिके संबन्धमें एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न यह होता है कि इस उन्नातिके लिए जो चेष्टा हम कर रहे है उसका आदर्श क्या होना चाहिए. महाशयगण, इस सम्बन्धमें हमारी समाजमें बहुधा दो प्रकारकी सम्मतिया दिखलाई पड़ती है. एक सम्मति तो यह कि अपने प्राचीनका पुनरुज्जीवन यही हमारा आदर्श होना चाहिए. इस

मतके अनुसार हमें केवल इतना करना चाहिए कि हम अपनी प्राचीन संस्थाओंके समान संस्थायें स्थापित करके जो स्थिति जिस प्रकारसे प्राचीन कालमें थी उसी प्रकारकी वही स्थिति पुनः स्थापित करा दें इसके सिवा अधिक कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं; यही सम्मति इस मतके अनुयायी महाशयोंकी जान पड़ती है. दूसरी सम्मति यह जान पड़ती है, यद्यपि इसके धारक कम है, कि हमें हर बातमें पश्चिमका अनुकरण करना चाहिए. किन्तु इन दोनों प्रकारकी सम्मतियोंसे मेरा मत विभिन्न है. मै उन कतिपय लोगोंमेंसे हूं जिनकी सम्मतिमें जैनसमाजकी भावी उन्नतिका आदर्श, अन्य जातियोंके समान यह होना चाहिए कि हमारी समाजरूपी इमारतके बनानेमें नीव हमारे प्राचीनकी हो, स्टाइल हमारी हो, परन्तु मसाला जहां अच्छा मिले वहासे लाकर उसे अपनी आवश्यकताओंके अनुकूल बनाकर दीवारें तथा छत उसीकी बनाई जावें. मै उन लोगोंमेंसे हूं जो नकल करनेको बुरा समझते हैं चाहे वह नकल प्राचीन पूर्वकी हो अथवा अर्वाचीन पश्चिमकी हो. मेरी सम्मतिमें हमें भली बातें ग्रहण करनेमें ज़रा भी संकोच न करना चाहिए चाहे वे कहीं मिलें—प्राचीन कालसे मिलें या वर्त्तमानकालसे—पूर्वसे मिलें या पश्चिमसे. उन भली बातोंको हमें अपने उपयुक्त बनाकर उन्हें ग्रहण करनी चाहिए. रीतियें—रस्में इत्यादि किसीकी सम्पत्ति नहीं होतीं, उन पर सब कौमोंका हक है. अपने समाजरूपी शरीरका धड़ हमें अपने प्राचीन पर कायम करके इसे जहा तहांसे सुन्दर वस्त्राभूषण लाकर सुसज्जित करना चाहिए—इस प्रकारका वेष कदाचित् बेढंगा जान पड़े, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह सुखकर होगा. अतीत कालका

पुनरुज्जीवन करनेकी सम्मति रखनेवाले सज्जनोंसे मेरा निवेदन है कि यदि वे चीनके समान अपनी जातिके चारों ओर दीवार बनाकर रहें तो भी हमारी समाज वर्तमान कालके प्रभावसे नहीं बच सकती. अन्य जातियों व देशोंके मनुष्योंने भी समाजविज्ञानका अभ्यास करके सामाजिक-विकास सम्बन्धी जो शोध किये है उनसे लाभ न उठाना अनुचित है. उन्हें विचार करना चाहिए कि कितनेका पुनरुज्जीवन संभव तथा लाभदायक है तथा उतनेहीका पुनरुज्जीवन करना चाहिए, बाकीके लिए और जगहोंसे मसाला लाकर सुधार करना चाहिए. इसी मार्गको मै अपनी जातिके लिए अपनी अल्प सम्मतिमें लाभदायक समझता हूं और इसीको अपनी उन्नतिके आंदोलनका उचित आदर्श मानता हूं.

इसी आदर्शको सामने रखकर हमको विचार करना चाहिए कि अपने परम पवित्र प्राचीन धर्मके प्रसारके लिए तथा अपनी सामाजिक उन्नतिके लिए हमको क्या क्या काम करने चाहिएं, किस प्रकारकी संस्थायें स्थापित करनी चाहिएं, क्या क्या सुधार करने चाहिएं और किन किन मूल सिद्धान्तों पर चलना चाहिए.

मेरे विचारमें हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वका विषय जैन-साहित्यकी रक्षाका है; क्योंकि इस धर्मके अस्तित्वका आधार इसी पर है. यह बड़े संतोषकी बात है कि हमारी कौम अब जानने लगी है कि वर्तमानकालमें हमारे धर्मका अस्तित्व हमारे लिखित साहित्यके—हमारे धार्मिकग्रन्थोंके अस्तित्व पर और हमारे धर्मका प्रसार हमारे ग्रन्थोंके प्रसार पर निर्भर है; और हमारे लिए यह एक गौरवका कारण है कि हमारा लिखित साहित्य अन्य धर्मोंके साहित्योंसे

श्रेष्ठतामें किसी प्रकार कम न होकर हमारी अधिकांश आवश्य-कताओंको पूर्ण कर सकता है, और यदि हम इसकी वृद्धिके लिए कुछ भी न करें और केवल इसकी रक्षा तथा प्रचारहीके लिए उचित उद्योग करते रहें तो हमारे धर्मके प्रति संसारका अनुराग आकर्षित होनेमें सन्देह नहीं. मुझे इस बातका ख्याल करनेसे अत्यंत खेद होता है कि जिस कौममें वाणीकी पूजा की जाती है तथा देवता-ओंके तुल्य आदर किया जाता है और जिसमें शास्त्र-सभाओंकी परिपाटी आजतक दृढ़तासे चली जाती है उसने अभी तक अपने पवित्र ग्रन्थोंकी रक्षाके लिए एक भी ऐसा जिनवाणीका मंदिर अथवा ग्रंथसंग्रहालय नहीं बनाया जिसमें हमारे समग्र ग्रंथोंका तथा हमारे ऐतिहासिक ताम्रलेख, शिलालेख आदि वस्तुओंका संग्रह हो, और जिसके द्वारा हमारे ग्रन्थोंका प्रकाशन एवं प्रसार सतत किया जाता रहे. आराके सिद्धान्तभवनकी योजनाके तथा उसके प्रति अब तक हमारी जातिने प्रायः जो उदासीनताका व्यवहार किया है उसे देख यह आशा कम होती है कि उसके द्वारा हमारी इस आवश्यकताकी पूर्ति हो. मेरी सम्मतिमें मालवा प्रान्तिकसभाको चाहिए कि वह इस कार्यको हाथमें लेकर आराके सिद्धान्तभवनको ही वास्तविक सि-द्धान्तभवन बनानेका अथवा इंदौरमें अपने श्रीमान् सभासदोंकी उदार सहायतासे इस प्रकारकी एक संस्था स्थापित करनेका प्रयत्न करे तथा जैनधर्मकी नीवको सदैवके लिए दृढ़ कर देनेका यह कार्य सं-पादन करनेका यश ग्रहण करे.

ग्रंथप्रकाशनके कार्यकी ओर देखा जावे तो इसके लिए भी जैसा चाहिए वैसा प्रयत्न होता नहीं दिखलाई पड़ता. निःसन्देह

कतिपय कार्यालय तथा संस्थाओंने इसके लिए प्रशंसनीय उद्योग किया है, परन्तु कार्यके विस्तारका विचार करनेसे यह कुछ भी नहीं जान पड़ता. यह बड़े दुःखकी वात है कि हमारी कौमका एक भाग अभी तक भी हमारे धार्मिक ग्रन्थोंके छापे जानेमें जिनवाणीका अविनय समझता है, और इस लिए हमारे ग्रंथप्रकाशनके कार्यका विरोध करता है. मेरा ख्याल है कि ग्रन्थोके छपनेके लाभ तो हरकोई स्वीकार करता है केवल हठ रह गया है. अब हमको चाहिए कि अपने धर्मके हितके लिए इस हठको छोड़कर धर्मप्रचारके एक महान् साधनके कार्यमें पूरे तौरसे उद्योग करें. मेरा मत तो इस सम्बन्धमें यही है कि समयके अनुसार धर्मरक्षा तथा धर्म-प्रचारके लिए यह परम आवश्यक है कि जैन-ग्रन्थ इस प्रचुरताके साथ छपवाकर वितीर्ण किये जावें कि सारा संसार उनसे पूर्ण हो जावे तथा लोग उन्हें पढ़नेको मजबूर हों. इस कार्यके लिए संस्थायें स्थापित करके संसारकी अनेक भाषाओंमें हमारे ग्रन्थोंके अनुवाद प्रकाशित किये जाने चाहिए। यह वड़ी प्रसन्नताकी वात है कि मेरें मित्र वैरिस्टर वावू जुगमंदरलाल जैनी एम. ए. के उद्योगसे मि. हर्वर्ट वारनके प्रबंधमें एक 'जैन लिटरेचर सोसायटी' नामकी इस प्रकारकी संस्था स्थापित हुई है जो हमारे ग्रन्थोंके अँगरेजी भाषामें अनुवाद कराके प्रकाशिन करनेका उद्योग कर रही है. इस संस्थाको सहायता देना हम सबका परम कर्तव्य है. मै निवेदन तथा अनुरोध करता हूं कि माळवा प्रान्तिक सभाकी ओरसे इस संस्थाको किसी न किसी रूपमें अवश्य सहायता दी जाय. उक्त संस्थाके यूरोपियन विभागकी वार्षिक रिपोर्टके देखनेसे जान पड़ता है कि उसके

द्वारा शीघ्र ही हमारे अनेक पूजनीय ग्रन्थोंके अँगरेजी भाषामें अनुवाद प्रकाशित होंगे. सोसायटीने ' प्रवचनसार ' ' स्याद्वादमंजरी ' ' षड्दर्शनसमुच्चय ' के समान महत्त्वके ग्रन्थोंके अनुवाद शीघ्र प्रकाशित करनेका प्रबंध कर लिया है, और ' समयसार ' ' तत्त्वार्थाधिगमसूत्र ' ' अष्टसहस्री ' तथा ' सम्मतितर्क ' आदि ग्रन्थोंके अनुवाद करानेकी योजना कर रही है. इधर ' जैनयंगमेन्स एसोसिएशन ' ने जो कि ' भारतजैनमहामंडल ' के नामसे प्रसिद्ध है इसी प्रकारसे ' जैनियोंके पवित्र ग्रन्थ ' नामक एक ग्रंथमाला प्रकाशित करनेकी योजना की है. मैं आशा करता हूं कि इस कार्यमें भी हमारी ओरसे उचित सहायता दी जायगी. मेरा विश्वास है कि पुरातत्त्वके शोधन योग्य विद्वानों द्वारा इस प्रकारसे धार्मिक ग्रन्थ अनुवादित तथा संपादित होकर इस प्रकारकी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित होनेसे जैनसाहित्य एवं जैनधर्मके प्रसारमें बहुत बडे महत्त्वकी सहायता मिलेगी. इस समय पाश्चात्य विश्वास-संसारमें एक भारी विप्लव हो रहा है, आज्ञा-प्रमाणका प्रभाव पश्चिमके विद्वानोंके हृदय पर कमजोर होकर बुद्धि अथवा युक्तिकी प्रधानता प्रतिदिन अधिकाधिक स्वीकृत की जा रही है, विश्वके संबन्धमें रचना-सिद्धांतपरसे लोगोंका विश्वास हटकर विकास-सिद्धांतकी ओर झुका जा रहा है. ऐसे समयमें हमारे धर्मके—हमारी फिलॉसफीके ऊँचे वैज्ञानिक सिद्धांतोंका रहस्य वर्तमान ढंग पर वर्तमान प्रणालीसे प्रचलित भाषाओंके द्वारा प्रकट करनेसे हमारे धर्मका निःसन्देह प्रसार होगा और हम लोगोंमें भी धार्मिक विश्वासकी स्थिति संदेहरहित होगी.

प्रिय प्रतिनिधिगण, हमारे धर्मकी रक्षा तथा उसका प्रसार केवल हमारे साहित्यके द्वारा हम न कर सकेंगे. आज कालके व्यावहारिक वस्तुओंके संसारमें संसारके विचारशील तथा साधारण पुरुषोंके चित्त पर किसी भी धर्मकी श्रेष्ठता—किसी धर्मका महत्त्व तब तक नहीं बैठाया जा सकता जब तक कि यह न दिखा दिया जावे कि वह धर्म उसके धारण करनेवाले किसी भी जन-समुदायके भौतिक तथा आत्मिक जीवनको उन्नत करनेमें बहुत कृत-कार्य हुआ है। किसी भी धर्मको धारण करनेवाली जातिके जीवनकी श्रेष्ठता उस धर्मकी श्रेष्ठताको संसारमें प्रकट करनेका पहला साधन होती है. अत एव यह आवश्यक है कि जैनधर्मको वर्तमान कालमें जो जनसमुदाय धारण किये हुए है उस जैन-जातिको सब जातियोंसे श्रेष्ठ बनाया जावे. मै इस बातको बड़े ही संतोष तथा गर्वका कारण मानता हूँ कि चारित्रके खास खास अंगोंमें जैनजाति संसारकी अन्य जातियोंसे बहुत कुछ श्रेष्ठ है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी यह चरित्र-श्रेष्ठता हमारे धर्मकी श्रेष्ठता अन्यधर्मी भाइ-योंके चित्तपर अंकित किये विना न रहेगी. क्योंकि हमारा धर्म जो चारित्रकी शुद्धता पर इस प्रकार ज़ोर देता है, हमारी चारित्र-श्रेष्ठता इसीका परिणाम है; परन्तु भाइयो, वर्तमान कालमें केवल चारित्रकी शुद्धता एवं श्रेष्ठतासे ही हम अन्य जातियोंका चित्त अपने धर्मकी ओर आकर्षित नहीं कर सकते. इसकी सहायताके लिए हमें ज्ञानकी श्रेष्ठताकी परमावश्यकता है और इस लिए हमारी जाति-के लिए शिक्षाका प्रश्न बड़े महत्त्वका है.

महाशयगण, सरकारी रिपोर्टोंके आधार पर हमारी जैनजातिमें

अशिक्षितोंकी संख्या अन्यजातियोंके अशिक्षितोंकी संख्याके साथ तुलना करनेसे बहुत कम जान पड़ती है और यह एक प्रसन्नताकी बात है, किन्तु साथहींमें खेद यह जानकर होता है कि उच्च शिक्षामें हम लोग औरोंकी अपेक्षा बहुत ही पिछडे हुए हैं. मै यह बहुत ही आवश्यक समझता हूं कि हमारी कौममें शिक्षाके प्रचारके लिए उचित उद्योग किया जाय. मेरा यह कहना नहीं है कि हमने इसके लिए उद्योग नहीं किया, उद्योग तो हमने अवश्य किया, भारतकी अन्य कौमोंसे अधिक नहीं तो कम भी उद्योग नहीं किया, और हमारे सार्वजनिक आन्दोलनोंमें इसी उद्योगको हमने पहला तथा महत्त्वका स्थान दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्थान स्थान पर हमने पाठशालायें, विद्यालय, छात्रालय, तथा श्राविकाश्रम स्थापित कर दिये, तथा करते जा रहे हैं, व हमारी धनिकमंडली अपना द्रव्य इस कार्यके लिए उदारताके साथ दे रही है, परंतु मुझको खेदके साथ कहना पड़ता है कि एक दोको छोड़कर शिक्षासंबन्धी हमारी इन संस्थाओंसे हमारी कौमको वास्तविक लाभ न हुआ न हो रहा है. निःसन्देह इसके कई कारण है, परन्तु मेरी समझमें प्रधान कारण यह है कि हम इस कार्यको हमारी शिक्षासंबन्धी उचित प्रणाली निश्चित किये बिना कर रहे है. मै कहूंगा कि जिस प्रणालीका अनुसरण कर हम लोग पाठशालायें आदि स्थापित करते जा रहे हैं वह हमारी आवश्यकताओंके अनुरूप नहीं है तथा समयके विपरीत है. मेरी सम्मतिमें ऐसी कोई भी शिक्षाप्रणाली सर्वसाधारणको प्रिय तथा स्वीकृत नहीं हो सकती जो उन्हें लौकिक शिक्षा प्रदान कर उनको लौकिक लाभ तथा लौकिक उन्नतिके और जीवननिर्वाहके मार्ग न प्रदान करे.

इसी कारण साधारण लौकिक शिक्षाके विषयमें सरकारी शिक्षा-पद्धातिके विरुद्ध एक स्वतंत्र पद्धति स्थापित कर पृथक् पाठशालायें कायम करनेकी मै जैनसमाजके लिए आवश्यकता नहीं समझता. ऐसा करनेसे कुछ भी न होगा. गवर्नमेंटकी शिक्षासंबन्धी चेष्टाने इस देशको बहुत कुछ लाभ पहुंचाया है, और उससे आगे बहुत कुछ लाभ पहुंचनेकी आशा है; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि गवर्नमेंटकी शिक्षासंबन्धी प्रणाली अनेक अंगोंमें अपूर्ण है तथा अनेक बातोंमें हानिकारक है. इस लिए उन अंगोंकी पूर्ति करने तथा उन हानियोंके दूर करनेका कार्य हमें खास अथवा स्वतंत्र उद्योग द्वारा करना चाहिए, और साधारण शिक्षाके लिए यही उद्योग हमारे लिए उचित होगा. हमको चाहिए कि सरकारी पाठशालाओंमें ही हम अपने युवकोंकी शिक्षाका प्रबंध करें. उन्हें उन पाठशाला-ओंमें उचित लौकिक शिक्षा मिलती रहेगी; तथा उनकी धार्मिक शिक्षाके लिए हमें पृथक् प्रबन्ध करना चाहिए. बोर्डिंगोंकी अल्प-कालिक धार्मिक शिक्षाका चाहे जितना उपहास किया जावे, परन्तु मेरा विश्वास है कि योग्य पाठ्य पुस्तकें तथा उचित क्रमकी योजना होनेसे समाजको इनसे वास्तविक लाभ होगा. साधारण धार्मिक शिक्षाके प्रचारका यही उत्तम साधन है. गवर्नमेंट इस बात पर विचार कर रही है कि सरकारी स्कूलों तथा कालेजोंमें जो विद्यार्थी पढ़ते हैं उनकी धार्मिक तथा नैतिक शिक्षाके लिए पाठ-शालाओंमें ही कुछ प्रबन्ध किया जाय. यदि इस प्रकारका प्रबंध हो गया तो इससे भी धार्मिक शिक्षाका अभाव दूर होनेमें बहुत सहायता होगी. इस प्रकारके उद्योगोंद्वारा साधारणतः धार्मिक

शिक्षाका जितना प्रचार होगा उससे अधिक प्रचार करनेकी चेष्टा करना मेरी सम्मतिमें तो अव्यवहार्य है. हा, विशेष प्रकारकी उच्च धार्मिक शिक्षाके लिए हमें अवश्य कुछ संस्थायें खास खास स्थानोंमें स्थापित करनी होंगीं जिनमें विद्यार्थियोंको ऊँचेसे ऊँचे दरजेकी धार्मिक शिक्षा मुख्य रूपसे वर्तमान ढंग पर दी जाकर साथहीमें गौणरूपसे भाषाओं, साहित्य, विज्ञान, इतिहास आदिकी शिक्षा दी जावे. परन्तु इस प्रकारकी संस्थायें जहां तक हो सके कम हों, खास खास स्थानोंमें हों और उनका प्रबंध आदर्श हो. मै समझता हूं कि इस प्रकारकी दश मामूली छोटी छोटी तथा अव्यवस्थित संस्थाओंकी अपेक्षा एक विशाल तथा सुव्यस्थित संस्था अधिक लाभदायक होगी. इधर कुछ दिनोंसे इस प्रकारकी संस्थाओंको बढ़ानेकी जो आकांक्षा हमारी समाजमें दिखलाई पड़ रही है उससे मैं कुछ भी लाभ नहीं समझता. बेहतर होगा कि हमारी जो दो एक इस प्रकारकी संस्थायें चल रही है उन्हें ही हम सहायता देकर सुव्यवस्थित करके बृहत् करनेकी चेष्टा करें. इस प्रकारकी संस्थायें साधारण शिक्षालयोंके समान बहुतायतसे नहीं हो सकतीं. सर्व साधारण जनसमाजमें ऐसे लोग विरले ही होते हैं जो अपने बालकोंको ऊँचे प्रकारकी धार्मिक शिक्षा दिलाकर उनका जीवन धर्म-सेवा साहित्य-सेवा तथा समाज-सेवाके कार्योंमें अर्पण करनेको तत्पर हों. यही कारण है कि हमारी अधिकाश इस प्रकारकी संस्थाओंमें प्रायः यही शिकायत रहती है कि विद्यार्थी नहीं, और यदि विद्यार्थी मिले भी तो ऐसे कि जिन्हें विद्यार्थी कहनेकी अपेक्षा भोजनार्थी कहना अधिक उपयुक्त होगा. विशेष प्रकारकी शिक्षामें ऊँची धार्मिक शिक्षा-

हीके समान मैं उच्चप्रकारकी कलाकौशल तथा व्यापारसंबन्धी शिक्षाके लिए भी एक संस्था किसी खास स्थानमें स्थापित करनेकी अपनी कौमके लिए परम आवश्यकता समझता हूं, और मेरा निवेदन है कि मालवाप्रान्तिकसभाके व्यवसायी सभासद्गण इस बातकी अवश्य चेष्टा करें.

महाशयगण, हमारी शिक्षा-पद्धातिके संबन्धमें जो विचार मैंने प्रकट किये वे बालकोंकी शिक्षा तथा स्त्री-शिक्षा दोनोंके लिए हैं. यह बड़े संतोषकी बात है कि स्त्री-शिक्षाके प्रति हमारा जो विरोध था वह दिन पर दिन कम होता जा रहा है; हमारे भाई स्त्री-शिक्षाके लाभों तथा उसकी आवश्यकतासे परिचित होते जाते हैं तथा स्थान स्थान पर कन्यापाठशाला, श्राविका-शाला, विधवाश्रम तथा स्त्री-सभायें स्थापित होती जा रही हैं.

महाशयगण, मुझे अच्छी तरह विदित है कि हमारी समाजमें जो हमारे आदरणीय मुखिया लोग हैं वे अपने पुराने ढंगके विचारोंके कारण अब तक भी यह समझते हैं कि स्त्री-शिक्षाके प्रचारसे हमारी समाजको हानि होगी तथा स्त्री-समाओंका होना, स्त्रियोंका खड़े होकर व्याख्यान देना और स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करना स्त्रीधर्मके विरुद्ध तथा हानिकारक है. उनसे मेरा यही निवेदन है कि जिस प्रकार वे इसे वस्तुतः हानिकारक समझते हैं उसी प्रकार अनेक विचारशील तथा वयोवृद्ध पुरुष इसे वस्तुतः लाभदायक समझते हैं, और वे यदि अपनी पीठकी ओर देखते रहनेकी चेष्टा छोड़कर अपने चारों ओर तथा सन्मुख देखें तो उन्हें विदित हो जायगा कि उनका विचार मूलसे भरा हुआ है.

मेरा विश्वास है कि स्त्री-शिक्षाके प्रचारको कोई शक्ति नहीं रोक सकती और इसका प्रचार हमारी जातिमें प्रतिदिन बढ़ता जायगा. हमें चाहिए कि इस प्रचारको रोकनेकी अपेक्षा इसे सहायता पहुंचावें तथा स्थान स्थान पर सुव्यवस्थित और विश्वस्त, सच्चरित्रा तथा योग्य कार्यकरनेवालियोंके प्रबंधमें कन्याशालायें, श्राविकाशालायें आदि स्थापित करते जावें.

महाशयगण, मैंने आपके सन्मुख हमारी शिक्षा-पद्धतिके संबंधमें कुछ विचार प्रकट किये. मुझे यह बहुत आवश्यक जान पड़ता है कि इस पद्धति पर समय समय पर विचार करनेके लिए तथा इसे गवर्न करने व कार्यमें परिणत करनेके लिए दो सार्वजनिक सस्थायें स्थापित की जावें. एक तो हमें एक जैनशिक्षा-कान्फरेंस स्थापित करनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिए जो प्रतिवर्ष किसी उचित अव-सर पर किसी उचित स्थानमें हुआ करे जिसमें हमारे शिक्षासंबन्धी अनेक विषयों पर विचार होते रहें तथा हमारी शिक्षा-प्रणाली पर विवेचन होता रहे. दूसरे मैं भी यह आवश्यक समझता हूं कि बना-रसके सेंट्रल हिन्दूकॉलेज, अलीगढके मुसलमानोंके एंग्लो ओरियंटल-कॉलेज, आर्यसमाजियोंके दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेजके समान हम लोग भी 'महावीर जैन कॉलेज' अथवा 'सेंट्रल जैन कॉलेज' नामसे एक कॉलेज स्थापित करें. अवश्यमेव यह सूचना कोई नवीन नहीं है, इसके लिए कुछ वर्ष पहले हमारी कौमने कुछ चेष्टा की थी—चंदा इकट्ठा करनेके लिए डेप्युटेशन तक मुकर्रर हो चुके थे, किन्तु हमारे अभाग्यके उदयसे अनेक कारणोंसे यह चेष्टा सफल न हुई. बम्बई प्रान्तिकसभाके बबईवाले अधिवेशनके सभापति मेरे मित्र

बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. के अपने व्याख्यानमें इसका पुनः जिक्र करनेसे समाचारपत्रोंमें इसके लिए फिर एक बार चर्चा छिड़ी थी, परन्तु सिवा चर्चाके अधिक कुछ न हो पाया. मैं समझता हूं कि समय पुकार कर कह रहा है कि इसके लिए पुनः उद्योग किया जावे. मैंने जब यह सुना था कि हमारे उत्साही भाई रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी इंदौरमें एक जैन हाइस्कूल स्थापित करना चाहते है तो मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई थी, किन्तु इसकी शिक्षाप्रणाली जिस प्रकार निश्चित की जा रही है उसे देख भय होता है कि यह स्कूल नामके लिए तो हाइस्कूल होगा परन्तु वास्तवमें यह हाइस्कूल न होगा. यह हमारे लिए खेदका विषय है. मैं इस बातकी सम्मति दूंगा कि उक्त सेठ साहब इसे हाइस्कूलका वास्तविक रूप देकर क्रमशः इसकी उन्नति करते हुए इसे ही हमारे इच्छित जैन कॉलेजके रूपमें पहुंचावें. मेरा निवेदन है कि आप लोग सेठ कल्याणमलजीका ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित करें.

प्रिय भ्रातृगण, हमारा यह प्रदेश शिक्षाके विषयमें बहुत ही पिछड़ा हुआ है. इस लिए हमें यहां शिक्षाके प्रचारकी प्रबल चेष्टा करनी चाहिए. मैं समझता हूं कि हमारे प्रदेशके खास खास स्थानोंमें जहां न हों वहा शीघ्र बोर्डिंग हाउस कन्या-पाठशालायें, श्राविकापाठशालायें स्थापित करनी चाहिएं, शास्त्र-सभाओंकी प्रणालीका सुधारकर उनको दृढ करना चाहिए, तथा पुस्तकालय खोलने चाहिएं, स्कालरशिप तथा पुरस्कारोंकी योजना करनी चाहिए; व इंदौर जैसे स्थानमें एक

कन्यामहापाठशाला तथा खंडवेमें एक लड़कियोंके लिए एंग्लोमिडिल-स्कूल स्थापित करना चाहिए. इंदौरमें मालवाप्रान्तिकसभाके सभापति श्रीमान् सेठ हुकमचंदजी, रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी तथा राय-बहादुर सेठ कस्तूरचदजी शिक्षाप्रचारका जो कार्य कर रहे हैं उसके लिए समाजको उनका धन्यवाद करते हुए उसका विस्तार करनेका प्रयत्न करना चाहिए. हमारे सेठ हुकमचदजीने हालहींमें हमारी कौममें शिक्षाप्रचारके लिए जो चार लाखका दान दिया है उससे बहुत कुछ लाभ समाजको पहुँचनेकी समावना है. यदि इस दानकी सेठ कल्याणमलजीके हाइस्कूलके साथ योजना कर एक सम्मिलत फंड कायम कर 'जैनकॉलेज'का आधार निर्मित किया जाता तो मेरी सम्मतिमें वह समाजके लिए वास्तविक लाभकारी होता. मुझे यह जानकर खेद हुआ कि उक्त दानके सहारे कई छोटी छोटी सस्थायें स्थापित की जायँगीं. इसमें कोई सन्देह नहीं कि उदासीनाश्रम, महाविद्यालय तथा श्राविकाश्रम आदि सस्थायें सब लाभदायक तथा श्रेष्ठ है, परन्तु मेरी सम्मतिमें समाजकी दशाको देखते हुए अनेक छोटी छोटी सस्थाओंकी अपेक्षा एक बड़ी संस्थाका स्थापित होना अधिक लाभदायक होता. इतना तो मैं अवश्य कहूगा कि अपने चार लाखके दानमेंसे दो लाख पैंसठ हजारके खर्चसे आपने जो 'महाविद्यालय' की योजना की है उससे इच्छित लाभ न होगा, उसकी इतनी आवश्यकता न थी. मै आशा करता हूं कि सेठ साहब इस बात पर विचार करेंगे. इसी प्रकार सेठ कल्याणमलजीसे भी मैं निवे-दन करूंगा कि वे अपनी 'जैनकन्याशाला' को वास्तविक 'जैन-कन्यामहापाठशाला' बनानेका उद्योग करें.

महाशयगण, मुझको यह देखकर बहुत खेद होता है कि एक आवश्यक विषयकी ओर हमारी कौममें बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है. यह विषय समाज-सुधारका है जो अँगरेज़ीमें सोशलरिफ़ॉर्मके नामसे प्रसिद्ध है. भाइयो, इस विषयका हमारी कौमके जीवनसे घनिष्ठ संबन्ध है—हमारी जातिके जीवनकी स्थिति तथा अभाव इसी पर निर्भर है. मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि जैनजातिमें सामाजिक सुधारका प्रचार उचित रीतिसे प्रबलताके साथ न किया जायगा तो आश्चर्य नहीं कि इस समाजका संसारमें नाममात्र रह जावे. हमारी कौममें अनेक कुरीतियां इस प्रकारकी प्रचलित है कि उन्हें एकदम शीघ्र बंद कर देना चाहिए, तथा अनेक रीतियां इस प्रकारकी प्रचलित है कि उनका शीघ्र सुधार होना चाहिए. महाशयगण, सामाजिक विषयोंके संबन्धमें मेरे विचार आप सब पर मेरा अनुमान है कि प्रकट ही है. आपको विदित है कि मैं हमारी कौममें जातिभेदको और विशेषकर उपभेदको बहुत ही हानिकारक, एकताका विरोधी, सामाजिक विकासका अवरोधक तथा अनावश्यक कृत्रिम भेद मानता हूं. मेरी सम्मतिमें इसके उठा देनेसे हमारी समूहशक्तिमें बहुत वृद्धि निश्चयरूपसे होगी. मेरा आपसे ऐसा कहना नहीं है कि आप इसे इकदम उठा देवें. मेरा निवेदन केवल इतना है कि समय आ गया है कि हमको इसकी सख्तीको कम करके इसको धीरे धीरे उठा देनेका काम आरंभ कर देना चाहिए. अवश्यमेव समाजसुधारके कार्य धीरे धीरे होते है, और इसी प्रकार करने भी चाहिएं. मेरा ख्याल है कि निमाड़ तथा मालवा व आसपासके जिलेमें जैन कौमकी विशेषकर दो जातियां निवास करती है—अर्थात् खंडेलवाल व पोर

वाड़. जहां तक मैं जानता हूं इन दोनों जातियोंके आचार, व्यवहार, रहन सहन, खानपान, रस्मारिवाज, भाषा आदि करीब करीब एकसे हैं फिर मेरी समझमें नहीं आता कि क्यों किसी विचारशील पुरुषको इनमें खानपान तथा विवाह आदिमें परस्पर संबन्ध होनेका विरोध करना चाहिए. मेरा निवेदन है कि इस आवश्यक प्रश्नका विचार करते समय हम हठ तथा प्राचीन-प्रियताको सर्वथा दूर रखकर इसक समाजके हिताहित मात्रके विचारसे निर्णय करें, तथा यह लाभदायक जान पड़े तो इसका आरंभ करें. भाइयों, मै फिर कहता हूं कि यह बड़ा आवश्यक विषय है. आपकी जागड़ा पोरवाड़ जातिहीको लीजिए. इसी छोटेसे प्रदेशमें इसके तीन भाग है. एक भाग खंडवा, सनावद, बड़वाहा, मडलेश्वर, महेश्वर तथा आसपासके ग्रामोंमें है. इस भागकी गृहसंख्या कुछ समय पहले पांचसौ समझी जाती थी, परन्तु इस समय यदि गिनतीकी जाय तो इससे भी बहुत कम निकलेगी. इससे भी छोटा भाग हरदाके निकट नेमावर आदि स्थानोंमें है. इनकी गृहसख्या कठिनतासे ८०—१०० होगी. दूसरा हिस्सा शाहपूर, आसेर, मलकापूर, आदि कतिपय नगरोंमें हैं जिसकी गृहसंख्या १०० से भी कम सुननेमें आती है. बराड़ व नेमावरके इन हिस्सोंकी दशा शोकदायक है. ये स्वयं खंडवा सनावद आदिके पोरवाड़ भाइयोंमें सम्मिलित होनेके लिए उत्सुक हैं, व कई दिनोंसे चेष्टा करते आ रहे है. इनकी दशा यहा तक खराब हो रही है कि यदि तीनों हिस्सोंको शीघ्र इकट्ठा न किया जायगा तो दोनों छोटे छोटे हिस्सोंका या तो लोप हो जायगा या उन्हें किसी अन्य-धर्मी जातिका संबन्ध ग्रहण करना पड़ेगा. प्रिय प्रतिनिधिगण,

आपसे मेरा निवेदन है कि आप इस अवसर पर इसका विचार करें तथा इस अधिवेशनमें इस लाभकारी कार्यको संपादन कर डालनेकी चेष्टा अवश्य करें.

सज्जनो, इसीसे संबन्ध रखता हुआ विषय हमारी 'विवाह–प्रथा–सुधार' का है. हमारी सरल साधारण धार्मिक विवाहपद्धतिको छोड़कर हम लोगोंने अनेक रीतियां तथा रस्में विवाहोंके अवसर पर जारी करके जो द्रव्य, समय तथा शक्तिका हम लोग व्यर्थ व्यय किये जा रहे हैं उसे हजार चेष्टा करने पर भी कम न करना बल्कि बढ़ाये जाना क्यों उचित समझा जा रहा है सो मेरी समझमें नहीं आता. जातिके मुखिया भाइयोंसे मेरा निवेदन है कि वे इस बातका विचार कर पंगतों आदिमें जो व्यर्थव्यय किया जाता है उसको शीघ्र रोकें. विवाहके संबन्धमें वर वधूकी आयु-व्यका विचार करना और भी अधिक आवश्यक है. यद्यपि मेरी सम्मतिमें पुरुषका विवाह उस अवस्था तक न होना चाहिए जब तक वह अपना स्वयं निर्वाह करनेके, संसारयात्रा विना अवलंबलनके करनेके, और पति तथा पिताके कर्तव्य पालन करनेके योग्य न हो जावे, और वर्तमानकालमें यह अवस्था २५ वर्षके पहले नहीं प्राप्त हो सकती; और कन्याका विवाह उस अवस्था तक न होना चाहिए जब तक वह स्त्रीके तथा माताके कर्तव्यपालन करनेकी योग्यता प्राप्त न कर ले, और ऐसी योग्यता सोलह वर्षसे कम अवस्थामें प्राप्त नहीं हो सकती, तो भी मै यह कदापि न कहूंगा कि आप एकदम इस प्रकारकी रीति प्रचलित कर दें. मैने केवल आदर्श प्रगट किया है, परन्तु मेरा यह नम्र किन्तु सानुरोध निवेदन है कि आप इस

ओतका अवश्य नियम करें कि लड़केका विवाह अठारह वर्ष व लड़कीका विवाह तेरह वर्षसे कम अवस्थामें कदापि न किया जाय. नौ नौ वर्षकी वालिकाओंके वारह वारह वर्षके वालकोंके साथ विवाह करके हम लोग जो उनके शरीरोंका—उनके जीवनका नाश कर रहे हैं उसे शीघ्र मेरी सम्मतिमें वंद करना चाहिए.

किन्तु ऐसा करनेमें एक आपत्ति वतलाई जाती है और मेरे विचारसे वह ठीक भी है, अर्थात् यह कि लड़के लड़कियोंका अधिक अवस्था तक अविवाहित रखना सुरक्षित नहीं. परन्तु हमें जानना चाहिए कि यह आपत्ति दूर हो सकती है. इसके लिए एक तो हमें विवाह काल तक वालक वालिकाओंकी योग्य शिक्षाका प्रवध करना चाहिए, और दूसरे ' मंगनी ' की अनावश्यक तथा हानिकारक प्रथाको या तो विल्कुल तोड़ देना चाहिए या इसे विवाहके साथ ही रखना चाहिए. मैंने जहां तक विचार किया तो अनेक वुराइयोंकी जड़ यही मालूम हुई. इसीसे अनेक प्रकारके व्यर्थ व्यय होते हैं और इसीसे लड़कियोंको अल्प अवस्थामें स्त्रीयोग्य वेश, भेष, आभूषण आदि पहननेका तथा लज्जा, घूंघट आदि करनेका व सास, ससुर, पति इत्यादि किन्हें कहते हैं इसे जाननेका अवसर मिलते रहनेसे स्त्री-पुरुषके स्वाभाविक भेदका शीघ्र ज्ञान होकर यौवनका प्रादुर्भाव होने लगता है. इस लिए इस सुधारका प्रचार, मेरा निवेदन है कि इस सभाके द्वारा अवश्य हो क्योंकि इसी प्रदेशमें इस कुप्रथाका अधिक प्रचार है.

विवाहके संवन्धमें एक और वातकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित कराया चाहता हूं. यह वड़े खेदकी वात है कि जैन-

जातिके समान धनिक जातिमें हमें कन्याविक्रयके समान घृणित तथा हानिकारक प्रथाके होनेकी शिकायत करनी पड़े. पहले यह कुछ बंद हो गई थी, पर कुछ दिनोंसे फिर इसका प्रादुर्भाव हुआ है. मै आशा करता हूं कि आप इसे सर्वथा बंद करनेके लिए सभामें अवश्य चेष्टा करेंगे.

इन मोटी मोटी बातोंके सिवा और भी अनेक छोटी छोटी हानिकारक रस्में तथा रीतियां विवाहसंस्कारके संबन्धमें है जिन्हें बंद कर देना या जिनका सुधार करना अत्यावश्यक है. मसलन विवाहोंके अवसर पर सभामें वेश्यानृत्य करानेकी प्रणाली, अनेक पंगतें करके व्यर्थ व्यय करनेकी चाल, बाजारोंसे होकर स्त्रियोंका गाते हुए निकलनेका ढंग, सीठने अथवा निवालियां गानेकी निर्लज्ज रीति, अनावश्यक रीतियोंकी अधिकता, अतिव्ययी पहरामनियां अथवा कपड़े देनेकी चालें इत्यादि अनेक ऐसी ऐसी रीतियां हैं जिन्हें हमें शीघ्र या तो बंद कर देना चाहिए या सुधार देनी चाहिए, और मैं आशा करता हूं कि इस सभामें इस कार्यका आरंभ अवश्य किया जायगा. विवाहसंस्कारके ही समान मृतकक्रियाकी प्रणालीका भी हमें अवश्य सुधार करना चाहिए. मृतककी आयुका विचार ज़रा भी न करते हुए प्रत्येक व्यक्तिके नुक्ते अथवा मृतकसंस्कारके समय पंगतें करनेकी प्रथाको जारी रखना केवल रीतिका दासत्व करना है. लहानके समान अनावश्यक खर्च करानेवाली चाल केवल यही जनाती है कि हममें विवेक नहीं और हम केवल आँखें मूँदकर रीतियोंका पालन करना जानते है क्योंकि लहानका बाँटना पेट भरेको मिठाई खिलानेके समान है. मेरा निवेदन है कि आप लोग इसका

भी सुधार करनेका प्रयत्न करें. महाशयगण, मेरा नम्र निवेदन है कि जातिहितके लिए आप इन विवाह तथा मृत्युकी रस्मोंको जितना सरल तथा उदात्त बना सकें उतना बनानेका प्रयत्न अवश्य करें.

सज्जनगण, समाजसुधार तथा धर्मसुधारके प्रश्न बड़े ही नाज़ुक हैं. इनको जितना ही सम्हालकर हाथमें लिया जावे उतना ही कम है. ये कार्य बड़े कठिन हैं और इनको संपादन करनेवालेके कन्धे बहुत मजबूत होने आवश्यक हैं. यह सच कहा गया है कि ' उन्नतिका मार्ग विरोधके दाँतोंमें होकर है. ' जिन जिन लोगोंके विचार उन्नति एवं धार्मिक तथा सामाजिक सुधारके पक्षमें है उन्हें बहुत ही समझ बूझकर उन विचारोंको प्रकट करना चाहिए तथा विचारपूर्वक धीरजके साथ कार्य करना चाहिए. ऐसा करना ही मैं जातिके लिए हितकर समझता हूं. इन कार्योंमें शीघ्रता, उदंडता तथा हठसे काम लेना मेरी सम्मतिमें हानिकारक होगा. इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी मत अथवा पक्षके प्रतिपादन करनेमें कटु अथवा तीव्र शब्दोंका प्रयोग करना तथा ज़िद करना उस पक्षकी कमज़ोरीको प्रकट करना तथा उसे उलटी हानि पहुं- चाना है. मेरा यह कथन नहीं है कि हमें विरोध देखकर डर जाना चाहिए, या अपने पक्षको छोड़ देना चाहिए, या अपने विचार पलट देना चाहिए, या औरोंको खुश करनेके लिए हाँमें हाँ मिलाते जाना चाहिए. इसके विपरीत हमारी युवासमाजसे मेरा निवेदन है कि उन्हें अपने विचारों पर दृढ़ रहना चाहिए, उन विचारोंको सतत प्रकट करते हुए उनका प्रचार करते रहनेका उद्योग करते जाना चाहिए. जब कभी अवसर मिले तब उनको कार्यमें लानेकी यथा-

शक्ति चेष्टा करनी चाहिए तथा जातिको उन्नतिकी ओर लेजानेका उद्देश सदा सामने रखते जाना चाहिए, केवल इतना ही ध्यान रखना चाहिए कि अपनी जातिके पुराने मुखियाओंकी अवहेलना कर उन्हें चिढ़ाकर विरोधको बलवान् कर देनें तथा जातिमें फूट पैदाकर औरोंके सामने अपनी हँसी होनेका अवसर कभी नहीं आने देना चाहिए. जातिके मुखियाओंकी सम्मतिका आदरकर उनके विचारोंको तथा विशेषकर नई पीढ़ीके विचारोंको प्रगतिकी ओर झुकानेका अवश्य उद्योग करते रहना चाहिए. यदि अनेक वर्षमें भी हम इस विचार-परिवर्तनको संपादन कर सकें तो इच्छित कार्य अवश्य संपादित होगा. लेकिन जब मै हमारी युवकमंडलीको धीरज, सहनशीलता तथा उदारताके साथ काम करनेका परामर्श देता हूं तब हमारी जातिके मुखयाओंसे भी एक निवेदन नम्रतापूर्वक किये बिना नहीं रह सकता. भाइयो, हमको अपनी चारों ओरकी स्थितिको देखना चाहिए. समय प्रतिदिन पलटता जाता है तथा नित नई माँगें पैदा करता जाता है. इस देशमें नये प्रकाशकी—नई जागृतिकी—जो बाढ़ आ रही है उससे जैन कौम वंचित नहीं रह सकती. यदि हम चीनकी दीवारके समान अपने चारों ओर दीवार भी बना लें तो भी वह प्रवेश कर जायगी. वह लाभके लिए है और उससे लाभ उठानेहीमें हमारी कौमका कल्याण है. हमारा पंचायती बल उसे रोकनेमें हमें व्यर्थ खर्च न करना चाहिए. हमारी कौमकी नई पीढ़ीकी विचार-गतिको देखकर हमारे जाति-मुखिया भाइयोंको चाहिए कि वे उसका अधिक विरोध न करें क्योंकि मै विश्वास दिलाता हूं कि उनके विरोध करते रहते भी सुधारका प्रवाह तो समाजमें अवश्य प्रवेश

करेगा. किन्तु उनके ऐसा करनेसे उन्हें ही अपने पक्षसे हाथ धोना पड़ेगा, और वे विना प्रजाके राजा—विना अनुयायिओंके मुखिया रह जावेंगे. हमारी संख्या प्रतिदिन घटती जाती है, समाज कुरीतियोंके प्रभावसे नष्ट होता जा रहा है, अन्य जातिया आगे बढ़ती जा रही है—ऐसी दशामें हमारे जातिमुखिया भाइयोंको खूब सोच विचार कर अपनी रुख निश्चित करनी चाहिए. मैं जानता हूं कि खास इस सभामें अनेक ऐसे हमारे आदरणीय भाई विद्यमान है जो इन सब बातोंसे घृणा करते हैं, जिन्हें ये सब बातें हानिकारक जान पड़ती हैं और जो स्त्रीशिक्षा, स्त्रीसभायें तथा श्राविकाश्रम, विधवाश्रम आदि समाजके लिए हितकर नहीं मानते, इसीसे मुझको इन बातोंका निवेदन करना पड़ता है. मै उनकी सम्मतिका सदा आदर करता हूं, परन्तु इस अवसर पर उनके प्रति नम्रतापूर्वक इतना निवेदन किये विना नहीं रह सकता कि उनके भय भ्रमसे भरे हुए है और उनकी सम्मति मेरी समझमें भूलकारक है. मैं दृढ़ताके साथ उनसे अपील करता हूं कि वे अपने भयोंको दूरकर अपने विचारोंको पलटें तथा जातिके इन कल्याणकारी कार्योंमें अपने पदकी सहायता देकर पुण्य ग्रहण करें.

प्रिय भ्रातृगण, जैनसमाजमें आज जो कोई नई जागृति चारों ओर दिखलाई पड़ रही है उसे पैदा हुए अनुमान एक डजनसे भी अधिक वर्ष हो चुके. इधर कुछ वर्षोंसे यह जागृति अधिक विस्तृत तथा प्रकाशमान हो रही है. अवश्यमेव यह हमारे लिए बड़ी भारी प्रसन्नताका कारण है. इसी जागृतिका यह परिणाम देखनेमें आता है कि देशभरमें जहां तहां पाठशालायें, आश्रम, बोर्डिंग हौस, अनाथालय

तथा सभा इत्यादि सांप्रदायिक सार्वजानिक संस्थायें स्थापित हुई और हो रही हैं; परन्तु इन संस्थाओंकी इतनी प्रचुरता होते हुए भी मुझे शोकके साथ कहना पड़ता है कि जो फल हमको इनके द्वारा प्राप्त होना चाहिए था उसका अल्प भाग भी न प्राप्त हुआ. इस असफलताका पहला कारण तो मुझे यह जान पड़ता है कि सार्व-जनिक संस्थायें स्थापित करनेमें हम लोग देश, काल और हमारी आवश्यकताओंका उचित विचार नहीं करते. यदि हम देशभरके लिए अपने सार्वजनिक कार्योंकी एक योजना निश्चित करके उसके अनुसार संस्था स्थापित करनेका कार्य करें तो मेरी सम्मतिमें हमको इस प्रकारकी खेदकारक असफलताका सामना न करना पड़े. दूसरा कारण मेरी समझमें यह है कि हमारी अधिकांश संस्थायें विना योजनाहीके स्थापित की जाती हैं और यदि योजना की भी गई तो अपूर्ण, अयुक्त तथा अव्यवहार्य. तीसरा कारण जो कि वास्त-विक कारण है वह मेरी सम्मतिमें उचित प्रबंधका अभाव है. हमारी अधिकांश सार्वजनिक संस्थाओंके सबन्धमें यह कहना अत्युक्त न होगा कि उनके प्रबंधका हाल यही है कि 'घर घोड़ी पिया सालवे और जीन समंदर पार' संस्था एक स्थानमें तो प्रबंधक दूसरे स्थानमें; और जिनके लिए संस्था हो वे तीसरे ही स्थानमें; यदि संस्था और प्रबन्धक एक ही स्थानमें हुए तो प्रबंधक योग्य नहीं. सच तो यह है कि सार्वजनिक संस्थाका वही प्रबंधक योग्य हो सकता है जो उस संस्थाके लिए दम भरता हो और संस्थाका जो पक्ष है उसे अपने जीवनका मूल उद्देश मानता हो, और मैं कहूंगा कि इस प्रकारके प्रबंधकोंकी हमारे यहा कमी है. महाशयगण, शोकके साथ कहना

पड़ता है कि इन्हीं कारणोंसे हम लोगोंकी सबसे पुरानी विशाल सार्व-
जनिक संस्था दिगम्बर जैनमहासभासे हमको वह लाभ न पहुंचा जो
पहुंचना चाहिए था. इन्हीं कारणोंसे महासभा द्वारा स्थापित मथुराके
महाविद्यालयने कुछ भी कार्य हमारे लिए न किया, इन्हीं कारणोंसे
देश भरमें अनेक पाठशाला तथा बोर्डिंग, आश्रम आदि होते
हुए भी एक भी जैन विद्वान् ऐसा न निकला जो स्वामी विवेकानंद
या स्वामी रामतीर्थ आदिके समान विदेशोंमें जाकर जैनधर्मके
सिद्धान्तोंको प्रकाश करता, अथवा जो मैक्सम्यूलर या डा० भाडार-
करके समान जैनग्रन्थोंका सविवेचन अभ्यास करके उनको प्रका-
शित करता और उससे जैनधर्मकी महिमा बढ़ाता अथवा जो माननीय
गोखले आदिके समान अपने जीवनको सार्वजनिक संस्थाके लिए अर्पण
करके उसके द्वारा समाजका हित कराता. मुझे विदित है कि हमारे
इस मालवा प्रदेशमें प्रबलताके साथ हमारी कौममें जागृति पैदा
हो रही है और सार्वजनिक संस्थायें स्थापित हो रही हैं तथा होने-
वाली है और इन्दौरके हमारे जैन भ्रातृत्रय अपने द्रव्यको परोपकार-
के कार्योंमें लगा रहे हैं. इसीकारण यहापर मुझे इस समय इन
विचारोंके प्रकट करनेकी आवश्यकता जान पड़ी मैं आशा करता हूं
कि मालवा प्रान्तिक सभा इस ओर उचित ध्यान देगी अन्यथा यदि
सपरिणाम फलकी न देनेवाली सार्वजनिक संस्थायें इसी प्रकार
स्थापित होकर हमारे द्रव्य तथा हमारी शक्तिका व्यर्थ व्यय कराती
रहीं तो संभव है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब हमें उचित प्रबंधके
अभावसे जिस प्रकार आज मंदिरोंकी अधिकताकी शिकायत करनी
पड़ती है उसी प्रकार इन संस्थाओंकी प्रचुरताकी शिकायत करनी पड़े.

सज्जनगण, अपने भाषणको समाप्त करनेके पहले मैं दो एक और बातोंका निवेदन आपसे करना आवश्यक समझता हूं. जैन जाति और खासकर हमारे इस मालवा तथा निमाड़की जैनजाति व्यवसायमें व्यापार-प्रधान जाति है, और निःसन्देह यह हमारे लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात है. हमारे लिए उचित है कि हम अपने व्यापार—उद्योगकी वृद्धि करें तथा हमारी जातिके साधारण तथा गरीब भाइयोंको व्यापार करनेमें सहायता पहुंचानेका साधन तैयार करें. मेरी सम्मतिमें हम लोगोंको एक जैन बैंक स्थापित करके उसीको इस बातका साधन बनाना चाहिए. गत वर्षमें बैंकोंके जो दिवाले निकले और उनसे साधारण जन-समाजको जो हानि हुई है उसे देख हमें एक विश्वस्त तथा सुव्यवस्थित बैक इस प्रदेशमें स्थापित करनेकी आवश्यकता और प्रबल जान पड़ती है. मेरा विश्वास है कि यदि हम उचित योजना तथा व्यवस्थाके साथ एक जैन बैक कायम करें तो उसके द्वारा हमारी कौमको व्यापारोन्नतिके सिवा अन्य कई प्रकारके लाभ पहुंचेंगे. मैं निवेदन करता हूं कि आप सब इस बात पर अवश्य विचार करें.

दूसरी बात जिसकी ओर मैं आपका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित कराया चाहता हूं वह हमारे मंदिरोंके कोषोंके संबन्धमें है: यह बड़े खेदका विषय है कि हमारे मंदिरोंके कोषोंका प्रबंध जैसा चाहिए उस प्रकारका नहीं है. ये कोष तथा इनका हिसाब किताब खास खास व्यक्तियोंके पास रहनेके कारण अकसर हमारी जातिमें झगड़े पैदा होकर तड़ें पड़ जाया करती हैं, तथा आपसमें द्वेष पैदा होकर धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें बड़ी हानि पहुंचती

है. यदि हम इन कोषोंको खास व्यक्तियोंके पास न रखके बैंक इत्यादिमें रखनेका इसका प्रबंध करें तथा इनके प्रबंधके लिए कुछ नियम निश्चित करें तो बहुत कुछ लाभ होना संभव है. हालहीमें बड़वाहामें जो हमारी जातिमें तड़ विद्यमान है उसका कारण यही मंदिरसंबन्धी तथा पंचायती कोष है. मेरा निवेदन है कि इस बातका विचार आप अवश्य करें तथा इसके लिए अमली कार्रवाई अवश्य करें. बड़वाहाकी तड़को मिटानेका सुकार्य संपादन करनेका यश इस सभाको अवश्य ग्रहण करना चाहिए. यह कोई कठिन कार्य नहीं है. यदि दोनों तड़ोंके मुखिया अपने धर्म तथा अपनी जातिके हितके लिए हठ तथा ज़िदको छोड़कर परस्पर प्रेमका वर्ताव करें तो यह तड़ सुगमतासे मिट सकती है. इसी प्रकार इन्दौरकी जैनसमाजमें भी जो आपसी झगड़ा चला जा रहा है उसका अब अंतकर देनेके लिए मै आपसे अवश्य नम्र निवेदन करता हूं.

महाशयगण, हमारे इस प्रदेशकी जैनसमाजकी दशाका विचार करते हुए यह आवश्यक जान पड़ता है कि एक फंड इस प्रकारका कायम किया जावे जिसके द्वारा स्कालर्शिप अथवा छात्रवृत्तियां देकर विद्यार्थी उच्च प्रकारकी वैज्ञानिक तथा कलाकौशलसंबन्धी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विदेशोंमें भेजे जावें. मेरा विश्वास है कि इस कार्यसे हमारी जैनजातिको अवश्य लाभ होगा तथा मै आशा करता हूं कि मालवाप्रान्तिक सभा इसके लिए अवश्य प्रयत्न करेगी.

प्रिय सज्जनो, एक और आवश्यक विषयकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना मै उचित समझता हूं. हम लोग उस पवित्र जैनधर्मके धारक है जो आलादर्जेके विश्वबन्धुत्व, पृथ्वीपर शांति

तथा जीव मात्रके प्रति हितेच्छनाका उपदेश करता है, जो सर्व जीवोंके प्रति समान दयाभावके धारण करनेकी आज्ञा करता है और जो कषायको दूरकर अन्य जातियोंके साथ प्रीति भाव धारण करनेका आदेश करता है. हमारा यह पहला धर्म है कि हम अन्य जातियोंके साथ मित्रताका व्यवहार करें, उनसे मेल करें, तथा ऐसा कोई कार्य न करें कि जिससे उनके हमारे बीचमें अनावश्यक मैल पैदा हो. मुझे सदा इस बातका दुःख रहता है कि हमारे पवित्र जैनधर्मकी धारक जातिके भिन्न भिन्न संप्रदायोंमें आपसमें जिस प्रकारका चाहिए उस प्रकारका मेल नहीं रहता तथा भ्रातृ-भावका लोप होकर आपसमें सदा झगडे होते रहते हैं. ये झगडे अधिकतर तीर्थक्षेत्रोंके कारण हुआ करते है जिससे हमें न्याया-लयोंकी शरण लेकर अपने द्रव्यका व्यर्थ नाश करना पड़ता है तथा आपसमें वैमनस्य बढ़ता रहता है. इन झगड़ोंकी दोषी चाहे कोई संप्रदाय हो इसमें सन्देह नहीं कि इन्हें अन्य रीतिसे तय करनेकी चेष्टाका दोनों ओर कम ज्यादा अभाव दिखलाई पड़ता हैं. मै यह नहीं कह सकता कि हमको इनमें योग ही न देना चाहिए क्योंकि कभी कभी अपने यथान्याय्य सत्त्वोंकी रक्षाके लिए ऐसा लाचार करना ही पड़ता है, परन्तु मेरा पूर्ण विश्वास है कि जातियोंके झगड़ोंका अंतिम नाश लड़ लेनेसे कदापि नहीं होता. उन झगड़ोंको तय करनेके लिए भ्रातृभाव तथा प्रेमके सिवा और कोई साधन नहीं है. इसलिए इन झगड़ोंमें लगे रहते भी हमें इस भ्रातृभाव तथा प्रेमका त्याग कदापि न करना चाहिए. इस संबंधमें भारतजैनमहामंडल जो सदा प्रशंसनीय

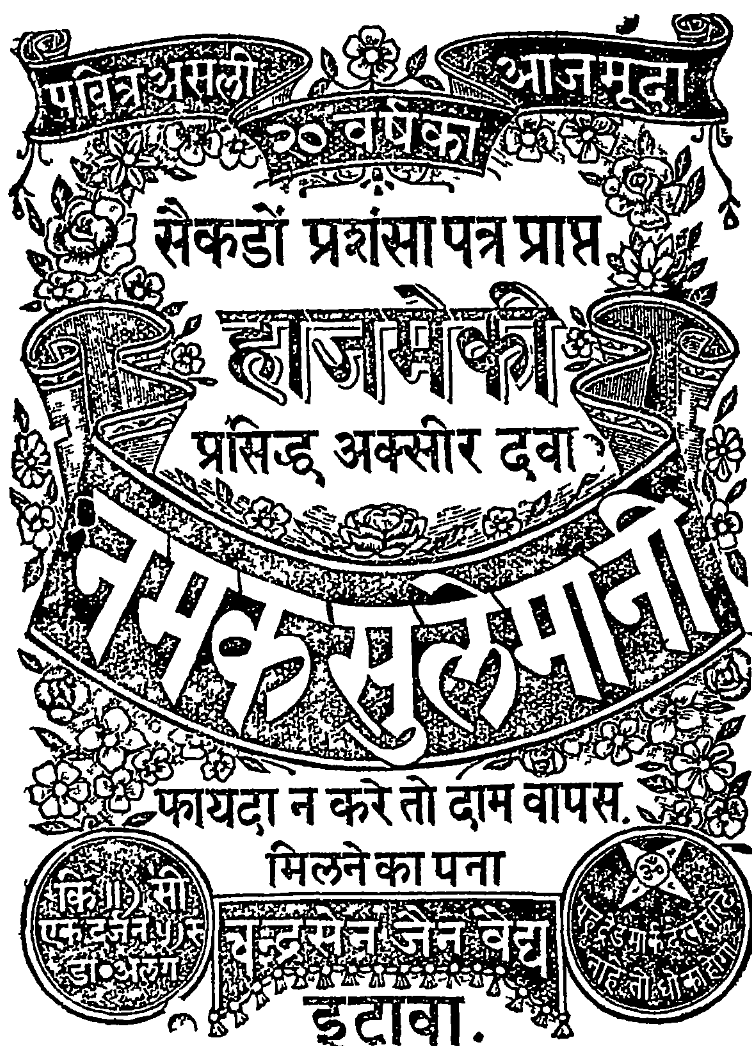
उद्योग करता रहता है उसकी सहायता करनेके लिये मैं आपसे निवेदन करता हूं, क्योंकि जैनजातिमें यही एक संस्था है जो विश्वव्यापी भ्रातृभाव, प्रेम तथा जीवदया धर्मके जैनसिद्धान्तों-का अन्य देशों तथा जातियोंमें प्रचार करनेका उद्योग करती है.

महाशयगण, अपनी धर्मोन्नति, अपनी जाति–उन्नति तथा अपने धर्मप्रसारका कौमी व सांप्रदायिक कार्य करनेमें हमको एक बातका और स्मरण रखना चाहिए. हमें सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हम हिन्दू जातिके एक अंग है और हमको कदापि इससे पृथक् होनेकी चेष्टा न करनी चाहिए. हम-को यह कभी न भूलना चाहिए कि हम केवल जैन ही नहीं हैं हम हिन्दू भी है. हिन्दूजातिके साथ हमारा अंगशरीरकासा संबन्ध है और हमें कोई कार्य ऐसा न करना चाहिए जिससे इस संबंधमें बाधा पहुंचे. हमको यह भी स्मरण रखना चा-हिए कि हम हिन्दुस्तानके निवासी है अतएव इस देशकी भक्ति तथा सेवा करना हमारा धर्म है. मुझे इस बातका बहुत खेद है कि हमारे जैनी भाई सार्वजनिक आन्दोलनोंमें—राजभक्त, नियमबद्ध, देशोपकारी आन्दोलनोंमें बहुत ही कम योग देते हैं. हमें इस प्रकारके आन्दोलनोंमें सदा भाग लेना चाहिए. राजनैतिक बातोंके प्रति हमारी जो उदासीनता है उसे मैं अपनी कौमके लिए बहुत हानिकारक समझता हूं. मेरी सम्मतिमें राजनैतिक बातोंमें हमें हमारे मुसलमान भाइयोंके समान इस देशकी अन्य जातियोंसे पृथक् होकर कार्य करनेकी नीतिको कभी ग्रहण न करनी चाहिए. मेरी समझसे हमारी राजनैतिक अधिकांश मागें अन्य

कौमोंकी मांगोंहीके समान हैं इसलिए उनके लिए हमें सबके साथ मिलकर ही उद्योग करना चाहिए और हमारी विशेष मांगोंके लिए हम हमारी जातिसभाओंके द्वारा चेष्टा कर सकते है. भारतीय राष्ट्रत्वका आदर्श हमको अपना आदर्श अवश्य मानना चाहिए. अन्तमें सब महाशयोंका हार्दिक स्वागत करके मै एक सुयोग्य लेखककी इन पंक्तियोंको आपके सामने निवेदन कर अपने व्याख्यानको समाप्त करता हूं:—

'चढ़ता है सो गिरता भी है, पर गिरकर जो उठै नहीं,
उससे बढ़कर शोच्य जगतमें, मिल सकता कब मनुज कहीं।
साधुवृत्त कन्दुकसम गिरकर बेरबेर ऊपर आते,
वृत्तहीन मृत्पिण्ड सदृश गिर तुरत धूलिमें मिल जाते।
उठते हैं वे वीरपुत्र जिनको पितरोंका है अभिमान,
नहीं उठानेसे उठते जो जारज कायर मृतक समान।
पैरोंमें गिर ठोकर खाना यह कब किसको प्यारा था,
उठना और उठाना सबको, यह एक काम हमारा था॥"

——.०:——


पवित्र असली
२० वर्षका
सैकडों प्रशंसा पत्र प्राप्त
हाजमेकी
प्रसिद्ध अकसीर दवा
फायदा न करे तो दाम वापस.
मिलने का पता
चन्द्रसेन जैन वैद्य
इटावा.

नई छपी हुई पुस्तकें।

स्वदेश—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीजका आठवाँ ग्रन्थ तैयार है। इसमें रवीन्द्र बाबूके अद्वितीय विचारोंसे भरे हुए आठ निवन्ध हैं। मूल्य दश आना।

मितव्ययिता—(किफायतशारी)—एक अंग्रेजी ग्रंथके आधारसे वावू दयाचन्दजी जैनी बी. ए. ने लिखी है। प्रत्येक घरके स्त्री पुरुषों बालक बालिओंको इसे पढ़ना चाहिए। फिजूलखर्ची और बुरी आदतें छुड़ानेके लिए यह गुरुका काम देगी। मूल्य चौदह आने।

श्रीपालचरित—पहली वार जो श्रीपालचरित छपा था, वह चौपाईवंध था—उसे सव लोग सहज ही न समझ सकते थे, इस कारण अवकी वार मास्टर दीपचन्दजीकी वनाई सरल वोलचालकी भाषामे छपाया गया है। पक्की जिल्द बँधी है। मूल्य १=)

जम्बूस्वामीचरित—यह भी वोलचालकी भाषामें छपा है। मूल्य ।)

जैनार्णव—इसमे १०० पुस्तके हैं। मू० १)

जैनगीतावली—बुन्देलखण्डकी स्त्रियोंके लिए व्याह शादियोंमें गानेलायक गीतोंका सग्रह। मू० ।-)

विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य—एक नामी विद्वानका लिखा हुआ निवन्ध। प्रत्येक विद्यार्थीको पढ़ना चाहिए। मू० एक आना।

सच्ची मनोहर कहानियां—भारतवर्षके प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर और वीरांगनाओंकी हृदयको फड़का देनेवाली ऐतिहासिक कहानिया। सरल, सवके पढने योग्य, जैनसमाजमें प्रचार करनेके लिए खास तौरसे मँगाई गई हैं। मू० ॥)

सीताचरित—वावू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. ने जैन ग्रन्थोके आधारसे सरल हिन्दीमे बड़ी योग्यतासे लिखा है। मूल्य तीन आने।

दिगम्बर जैन डिरैक्टरी—सारे हिंदुस्तानमें कहाँ कहाँ, कितने, किस जातिके जैनी वसते हैं, क्या धंदा करते हैं, मंदिर कितने हैं, मुखिया कौन कौन हैं, तीर्थ कहाँ कहाँ हैं, उनका प्राचीन इतिहास आदि सैकड़ों जानने लायक बातोंका सग्रह है। मूल्य आठ रुपया। डाक खर्च एक रुपया।

मिलनेका पताः—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीरावाग, पो. गिरगाव-बम्बई।

जैनहितैषी ।

(मासिकपत्र)

दशवाँ भाग ।

सम्पादक—नाथूराम प्रेमी ।

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

वीर निर्वाण संवत् २४४०

Printed by G N. Kalkarni at the Karnatak Printing
Press No 7, Girgaon Back Road Bombay,

and

Published by Nathuram Premi, Proprietor Hindi Grantha-
Ratnakar Karyalaya, Hirabaug, Bombay.

विषयानुक्रमणिका।

१ धार्मिक।

२ सामाजिक।

३ शिक्षासम्वन्धी।

४ ऐतिहासिक।

५ वैज्ञानिक।

६ जीवनचरित।

७ व्याख्यान।

८ साहित्य ।

९ समालोचना ।

१० कविता ।

११ गल्प या कहानियाँ ।

१२ मनोरंजक ।

१३ फुटकर ।

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी छपी हुई पुस्तकें।

मोक्षमार्गप्रकाश १॥)
शाकटायन प्रक्रियासंग्रह (संस्कृत) ३)
प्रद्युम्नचरित्र भाषावचनिका २॥)
बनारसीविलास (कविता) १)
प्रवचनसार परमागम (कविता) १)
वृन्दावनविलास (कविता) ॥)
धूर्त्ताख्यान ≡)
नित्यनियमपूजा ।)
भाषापूजासंग्रह ॥)
मनोरमा उपन्यास ॥)
ज्ञानसूर्योदय नाटक ॥)
तत्त्वार्थसूत्रकी बालबोधिनी भाषा टीका ॥)
जैनपदसंग्रह पहला भाग ।=)
जैनपदसंग्रह दूसरा भाग ।)
जैनपदसंग्रह चौथा भाग ॥=)
जैनपदसंग्रह पांचवां भाग ।=)
ज्ञानदर्पण ।)
रत्नकरण्डश्रावकाचार सान्वयार्थ ।)
द्रव्यसंग्रह अन्वय अर्थ सहित ।)
भक्तामरस्तोत्र-सान्वयार्थ और भाषापद्य ।)
सूक्तमुक्तावली ।=)
श्रुतावतारकथा ≡)
भूधरजैनशतक ≡)॥
क्षत्रचूडामणि काव्य ॥)
उपमिति भवप्रपंचाकथा प्रथम प्रस्ताव ॥)
उपमितिभवप्रपंचाकथा द्वितीय प्रस्ताव ।-)
जैनविवाहपद्धति ≡)
बारस अणुवेक्खा -)।
भाषानित्यपाठसंग्रह-रेशमीजिल्दका ॥) सादा ।-)
प्राणप्रिय-काव्य =)
क्रियामंजरी =)
सज्जनचित्तवल्लभ =)
सप्तव्यसन चरित्र ॥=)
पंचेन्द्रियसंवाद -)
जैनसिद्धान्त प्रवेशिका ≡)
जैनबालबोधक प्रथम भाग ।)
बालबोधजैनधर्म प्रथम भाग -)॥
बालबोधजैनधर्म द्वि० भाग -)
बालबोध जैनधर्म तृ० भाग =)
बालबोध जैनधर्म च० भाग ।-)

शीलकथा	।)
दानकथा	=)
दर्शनकथा	≡)
निशिभोजनकथा	=)
रविव्रतकथा	-)
दियातले अंधेरा	-)॥
सदाचारी बालक	-)॥
समाधिमरण-दो तरहका	-)
समाधिमरण और मृत्यु महोत्सव	=)
अरहंतपासाकेवली	-)॥
भक्तामर-मूल और भाषा	-)
पंचमंगल	-)
दर्शनपाठ	-)
शिखरमाहात्म्य-भा० व०	-)
निर्वाणकांड	-)
सामायिक और आलोचना	-)
सामायिक पाठ भा०टी०	-)
कल्याणमन्दिर और एकीभावस्तोत्र	)॥।
आरतीसंग्रह	)॥।
छहढाला-दौलतराम कृत	)॥॥
छहढाला-बुधजनकृत	-)
छहढाला-द्यानतराय कृत	-)
इष्टछत्तीसी	)॥
मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) मूल	-)॥
मुनिवंश दीपिका	)॥
परमार्थ जकडीसंग्रह	-)॥
सामाजिकचित्र	-)
विनतीसंग्रह	=)
जिनेन्द्रगुणानुवाद पच्चीसी	-)॥
आप्तपरीक्षा-मूल पाठमात्र	-)
आप्तमीमांसा ,,	-)
जिनसहस्रनाम	=)
द्यानतविलास	१)
चर्चाशतक	॥)
न्यायदीपिका भाषाटी०स०	॥)

दूसरोंकी छपाई हुई पुस्तकें।

वृहद्द्रव्यसंग्रह	२)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	१)
ज्ञानार्णव	४)
आत्मख्याति समयसार	४)
भगवती आराधनासार	४)
सर्वार्थसिद्धि भाषावचनिका	४)
विश्वलोचनकोष	१।≈)
धन्यकुमारचरित्र	॥)
भद्रबाहुचरित्र	॥=)
षटपाहुड़	१)
धर्मसंग्रहश्रावकाचार	२)
धर्मरत्नोद्योत	१)
स्याद्वादमंजरी	४)
त्रैवर्णिकाचार (मराठी)	३)
इन्द्रियपराजयशतक	=)
अनुभवप्रकाश	।=)

पुस्तक	मूल्य
संशयतिमिर प्रदीप	॥।)
वाग्भट्टालंकार संस्कृत और भा० टी०	१॥)
परमात्म प्रकाश	।≡)
पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय—संक्षिप्त अर्थ	।)
देवगुरु शास्त्र पूजा-सार्थ	≡)
सुखानन्द मनोरमा नाटक	॥।)
अंजना सुन्दरी नाटक	॥)
सोमासती नाटक	-)॥
श्रावक वनिता बोधिनी	।)
कातंत्रपंच संधि-भा० टी०	≡)
अमरकोश मूल	।≡)
अमरकोश भा० टी०	१॥)
हिन्दीकी पहली पुस्तक	≡)॥
हिन्दीकी दूसरी पुस्तक	।)
हिन्दीकी तिसरी पुस्तक	।≡)
हिन्दीकी तीसरी पुस्तक नाथूराम प्रेमीकृत	।=)
शील और भावना	-)॥
वसुनन्दि श्रावकाचार भाषा टीका सहित	॥)
स्त्रीशिक्षा प्रथम भाग	≡)
स्त्रीशिक्षा द्वितीय भाग	≡)
यशोधरचरित्र-प्राकृत और भाषा टीका सहित	२)
जैननियम पोथी	)॥
सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा	-)
खंडेलवाल इतिहास	≡)॥

पुस्तक	मूल्य
पंचस्तोत्र भाषा	≡)
पंचस्तोत्र संस्कृत	≡)
मानिकविलास	।)
द्रव्यसंग्रह-सूरजभानु कृत	॥)
धर्मामृत रसायण	-)
लावनी रत्नमाला	-)
चौबोल चौबीसी	-)
वर्ष प्रबोध (ज्योतिष)	॥।)
आर्यमतलीला	।≡)
जैनसम्प्रदाय शिक्षा	३॥)
चौबीस तीर्थंकर पूजा मनरंगलाल कृत	॥)
आराधना सार कथाकोश	३॥)
जिनेन्द्र गुन गायन	≡)
जैन उपदेशी गायन	≡)॥
गृहस्थधर्म	१≡)
जैनधर्मका महत्त्व	॥।)
अनुभवानन्द	॥)
विद्वद् रत्नमाला	॥≡)
जिनेन्द्रमत दर्पण प्रथमभाग	-)
जैन जगदुत्पत्ति	)॥
क्या ईश्वर जगत्कर्ता है	)॥
प्रद्युम्नचरित्र (सार)	।≡)
यशोधर चरित	।)
नागकुमार चरित	।≡)
पवनदूत	।)
धर्मप्रश्नोत्तर	२)
यात्रादर्पण	२)
हनुमानचरित्र	।≡)

पुस्तक	मूल्य
प्रवचनसार	३)
गोम्मटसार कर्मकाण्ड	२)

संस्कृत ग्रन्थ ।

पुस्तक	मूल्य
सुभाषित रत्नसंदोह	॥)
जीवन्धर चम्पू	१)
नेमिनिर्वाणकाव्य	॥=)
चन्द्रप्रभचरित	॥)
धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य	१)
द्विसंधान महाकाव्य	१॥)
यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य प्रथमखंड	३॥)
,, उत्तरखंड	२॥)
काव्यमाला सप्तमगुच्छक	१)
काव्यानुशासन वाग्भटकृत	।=)
काव्यानुशासन-हेमचन्द्राचार्यकृत	२)
अध्यात्मकल्पद्रुम	॥)
जयन्तविजय	१)
जैननित्यपाठ संग्रह	।=)
पंचस्तोत्र	=)
तिलक मंजरी	२॥)
प्रभावक चरित	१॥)
पांडव चरित	४॥)
हीरसौभाग्य	५॥)
सनातन जैनग्रन्थमाला प्रथम गुच्छक	१)
अलंकार चिन्तामणि	॥)
पार्श्वाभ्युदय सटीक	॥)
परीक्षामुख	।)
गोम्मटसार जीवकांड मूल	।=)
जीवंधर चरित्र	१)
शाकटायन प्रक्रिया संग्रह	३)
आप्तपरीक्षा	-)
आप्तमीमांसा	-)
मोक्षशास्त्र मूल	-)॥
सहस्रनाम	=)
जैनस्तोत्र संग्रह	।)
गणरत्न महोदधि	३)
जिनकथा द्वात्रिंशति	=॥)
यशोधर चरित काव्य	॥)
जैनेन्द्र पंचाध्यायी	।)
जैनेन्द्र प्रक्रिया	॥)
आप्त परीक्षा पत्र परीक्षा	१)

सर्वसाधारणोपयोगी पुस्तकें ।

उपन्यास और कहानियाँ ।

पुस्तक	मूल्य
आदर्शदम्पती	॥=)
आश्चर्यघटना (नौकाडूबी)	१)
कादम्बरी	॥)
चन्द्रलोककी यात्रा	१)
ठोकपीटकर वैद्यराज	।)
दुःखिनीबाला	-)॥

देवरानीजिठानी	॥)
देवीउपन्यास	।॥)
दोवहन	।॥)
धर्मदिवाकर	।)
धोखेकी टट्टी	।=)
नि.सहायहिन्दू	≡)
नूतनचरित्र	।॥)
प्रणयिमाधव	१)
पृथ्वी परिक्रमा	।-)
प्रेमप्रभाकर	१)
पारस्योपन्यास	१)
महाराष्ट्रजीवन-प्रभात	।॥=)
माधवीकंकण (इंडियन-प्रेसका)	।॥)
माधवीकंकण (वेंकटेश्वर-प्रेसका)	॥=)
मुकुट	।)
युगलांगुलीय	≡)
रमामाधव	॥)
राजपूतजीवनसंध्या	।॥)
विचित्रवधूरहस्य	।॥)
वीर मालोजी भोंसले	॥≡)
शिवाजीविजय	।॥)
शेखचिल्लीकी कहानियाँ	॥)
षोडशी	१)
स्वर्णलता	१॥)
समाज (रमेशचन्द्रदत्तकृत)	।॥)
सासपतोहू	॥)
हिन्दूगृहस्थ	॥=)

नाटक।

किंगलियर नाटक	॥=)
प्रभासमिलन नाटक	॥=)
प्रेमलीला नाटक	॥=)
महाराणा प्रतापसिंह	।॥)
वेनिसका व्यापारी	।॥)
शकुन्तलानाटक	१)

बालकोपयोगी।

कर्त्तव्यशिक्षा	१)
कहानियोंकी पुस्तक	।-)
बच्चोंका खिलौना	।-)
खेलतमासा	=)
लड़कोंका खेल	=)॥
प्रबोधचन्द्रिका	।॥)
बाल आरब्योपन्यास चार भागोंमें प्रत्येक भागका	॥)
बालनिबंधमाला	।=)
बालनीतिमाला	॥)
बालपंचतंत्र	॥)
बालहितोपदेश	॥)
बालविनोद पहला भाग -) दूसरा भाग -)॥ तीसरा भाग ≡) चौथा भाग ।-) पांचवा भाग ।≡)	
बालहितोपदेश	॥)
बालहिन्दी व्याकरण	।)
बाल स्वास्थ्य रक्षा	॥)
भाषापत्रबोध	-)॥
भाषाव्याकरण	≡)

हिन्दीव्याकरण ≡)
हिन्दीशिक्षावली पहला भाग -)
दूसरा भाग -)॥ तीसरा भाग =) चौथा भाग ≡)॥ पाचवा भाग ।)॥

स्त्रियोपयोगी पुस्तकें।

आर्यललना ।)
गृहिणी भूषण ॥)
पतिव्रता ॥।)
पाकप्रकाश ≡)
बालापत्र बोधिनी ।=)
बाला बोधिनी पहला भाग =)
दूसरा भाग ≡)॥ तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाचवा भाग ।=)
भारतीय विदुषी ।=)
स्वामी और स्त्री ॥=)
सीताचरित १।)
सुशीलाचरित्र १)
सौभाग्यवती =)॥

कविताकी पुस्तकें।

जयद्रथ-वध ॥)
पद्य-प्रबंध ॥=)
रंगमें भंग ।)
हम्मीरहठ ॥)
हिन्दी मेघदूत ।=)

इतिहास।

इंग्लेंडका इतिहास ॥=)
जर्मनीका इतिहास ।=)
जापानका इतिहास ॥)
जापानका उदय ॥।)
जापान दर्पण ॥।)
नैपालका इतिहास ॥)
फ्रांसका इतिहास ।≡)
राजस्थान (राजपूताने) का इतिहास प्र० भाग १०)
" " दू० भा० १०)
रूसका इतिहास ।=)
सिंधका इतिहास ।=)॥

जीवन चरित।

अब्दुलरहमानखां ॥।)
इतिहास गुरुखालसा ३)
उम्मेदसिंह चरित १)
औरंगजेबनामा प्र० भा० ।=)
" द्वि० भा० ।=)
गारफील्ड ॥)
दशकुमार चरित ॥=)
बुद्धका जीवन चरित ॥)
राबिन्सनक्रूसो १॥)
हिन्दीकोविदरत्नमाला १॥)

वैद्यक।

आरोग्यविधान =)॥
परिचर्याप्रणाली ।)
सुखमार्ग ।)
क्षयरोग ।-)

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत।

अर्थशास्त्र प्रवेशिका ।)

कुमारसंभवसार (कविता) ।)
कालिदासकी निरंकुशता ।)
जलचिकित्सा ।)
नाट्यशास्त्र ।)
महाभारत (सचित्र) ३)
रघुवंश महाकाव्य २)
वेकनविचार रत्नावली ॥)
शिक्षा २॥)
हिन्दीभाषाकी उत्पत्ति ।)

विविध विषयोंकी पुस्तकें।

इन्साफसंग्रह ।=)
उपदेशकुसुम =)
कर्मयोग ।=)
ठहरो (उपदेशदर्पण) ।)

चन्द्रकान्त (वेदान्त) २॥)
जानस्टुअर्ट ब्लैकी ॥=)
नवजीवनविद्या १॥)
नाट्यप्रबंध ।)
पश्चिमीतर्क १)
भारतभ्रमण (पांचभाग) ६)
मनोविज्ञान ॥)
मानसदर्पण ।-)
राज्यप्रबंधशिक्षा ॥)
राष्ट्रीयसन्देश ।=)
व्यवहारपत्रदर्पण ॥)
स्वर्गीयजीवन ॥≈)
स्वाधीनविचार ।)
समाज (रवीन्द्रनाथकृत) ॥)

नये जैनग्रन्थ।

द्यानतविलास या धर्मविलास—कविवर द्यानतरायजीकी कविताकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। सब ही जैनी उससे परिचित हैं। उनका यह ग्रन्थ जिसमें उनकी प्राय सब ही कविताओंका संग्रह है बड़ीही मिहनत, शुद्धता और सुन्दरतासे छपाया गया है। इसमें सारे जैनसिद्धान्तका रहस्य भरा हुआ है। मूल्य सिर्फ १) रु०। (इसमे चरचाशतक, द्रव्यसंग्रह शामिल नहीं है क्योंकि ये ग्रन्थ जुदा छप चुके हैं।)

चर्चाशतक—मूलपद्य और सरल हिन्दी टीका सहित। मूल्य ॥)

न्यायदीपिका—मूल संस्कृत और सरल हिन्दी भाषाटीका। मूल्य ॥)

गृहस्थ धर्म—श्रावक धर्मका खुलाशा वर्णन है। मूल्य १=)

जैनधर्मका महत्त्व—अजैन विद्वानों, लेखकों, व्याख्यातायों द्वारा जैन-धर्मका महत्त्व दिखलाया गया है। मूल्य बारह आने।

अनुभवानन्द—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी रचित अध्यात्मका मनन करने योग्य ग्रन्थ है। मूल्य आठ आने।

विद्वद्रत्नमाला—जिनसेन, गुणभद्राचार्य आशाधर, अमितगतिसूरि, वादिराज सूरि, महाकवि मल्लिषेण, और समन्तभद्राचार्य इतने विद्वानोंका बड़ी खोजसे लिखा हुवा इतिहास। मूल्य दश आने।

जिनेन्द्रमत दर्पण प्रथम भाग—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी रचित। मूल्य एक आना।

जैन जगदुत्पत्ति—सृष्टि कर्ता खण्डन विषयक एक लेख। मूल्य ।।

क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है—अनेक युक्तियोंद्वारा जगत्का कोई कर्त्ता नहीं है यह बतलाया है। मूल्य ।।

उपमिति भवप्रपंचा कथा द्वितीय प्रस्ताव—चारोंगतियोंके दुःखोंका वर्णन है। मूल्य पाच आने।

प्रद्युम्न चरित्र—प्रद्युम्नकी कथा का संक्षेपमें वर्णन। मूल्य छह आने।

यशोधर चरित काव्य—एकीभाव स्तोत्रके कर्त्ता वादिराज सूरिने यशोधर महाराजका सुन्दर चरित वर्णन किया है। ग्रन्थ मूल संस्कृतमें है। मूल्य आठ आने।

यशोधर चरित—उपर्युक्त ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद। मूल्य चार आने

नागकुमार चरित—सरल हिन्दीमें नागकुमारका चरित है। मूल्य छह आने।

पवनदूत—मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित। मूल्य चार आने।

धर्मप्रश्नोत्तर—सकलकीर्ति आचार्य कृत मूल ग्रन्थकी यह हिन्दी भाषाटीका है। इसमें प्रश्नोत्तर रूपसे श्रावकाचारका वर्णन किया गया है। मूल्य दो रु०।

यात्रा दर्पण—यह अभी हालहीमे छपा है। तीर्थक्षेत्रोंके सिवा और भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंका वर्णन है। एक तीर्थस्थानोका नकशा भी अलग दिया गया है जिससे यात्रियोंको बड़ा सुभीता हो गया है। मूल्य दो रु०।

हनुमान चरित्र—हनुमानजीका संक्षिप्त चरित सरल भाषामें लिखा गया है। मूल्य छह आने।

प्रवचन सार—मूल संस्कृत, छाया अमृतचन्द्र सूरि और जयसेन सूरि कृत दो संस्कृत टीका और-पं० मनोहरलालजी कृत भाषाटीका सहित। मूल्य तीन रु०।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड—मूल, संस्कृत छाया और पं०मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीकासहित। मूल्य दो रुपया।

सत्यार्थ यज्ञ—दूसरा नाम मनरंगलालजी कृत चौवीस तीर्थंकर पूजा। यह विधान अभी हाल हीं में छपा है। मूल्य आठ आने।

यशोधर चरित—मूल प्राकृत और भाषाटीका सहित। मूल्य २)

आराधनासार कथा कोश—इसमे १०८ कथायें कवितामें वर्णन की गई हैं। मूल्य ३॥)

जिनेन्द्रगुणगायन—इसमें नाटककी चालके हुजूरी नई तर्जेके पद, भजन, दादरा, ठुमरी, गजल, रेखता इत्यादि हैं। मूल्य दो आने।

जैन उपदेशी गायन—इसमे नई तर्जके नाटकादिके ५२ भजनोंका संग्रह है। मूल्य ढाई आने।

हितोपदेश वैद्यक—जैनाचार्य श्रीकंठसूरि रचित। मुरादाबाद निवासी पं० शंकरलालजी जैन वैद्यने इसकी भाषा टीका की है। मूल्य १)

समरादित्यसंक्षिप्त—श्वेताम्बराचार्यकृत प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ। इसका कथाभाग और कवित्व बहुत सुन्दर है। मूल्य ढाई रुपया।

जैनेन्द्र पचाध्यायी—मूल सूत्र पाठ मात्र। मूल्य चार आने।

जैनेन्द्र प्रक्रिया—पुर्वार्द्ध, आचार्य वर्य गुणनन्दि रचित व्याकरण ग्रंथ मूल्य बारह आने।

सनातन जैन ग्रंथमाला—प्रथम खण्ड, आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा संस्कृत टीका सहित हैं। मूल्य एक रु०

अन्यान्य स्थानोंकी पुस्तकें।

स्वर्गीय जीवन—अमेरिकाके प्रसिद्ध अध्यात्मिक विद्वान राल्फ वाल्डो ट्राईनकी अंग्रेजी पुस्तकका अनुवाद। अनुवादक, सुखसम्पत्तिराय भंडारी उपसम्पादक सद्धर्म प्रचारक। पवित्र, शान्त, निरोगी, और सुखमय जीवन कैसे बन

सकता है, मानसिक प्रवृत्तियोंका शरीरपर और शारीरिक प्रवृत्तियोंका मनपर क्या प्रभाव पड़ता है आदि बातोंका इससे बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है। प्रत्येक सुखाभिलाषी स्त्रीपुरुषको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥=)

स्वामी और स्त्री—इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है। अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और शिक्षित स्त्री अपढ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी संबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य दश आना।

गृहिणीभूषण—इस पुस्तकमें नीचे लिखे अध्याय हैं– १ पतिके प्रति पत्नीका कर्तव्य, २ पति पत्नीका प्रेम, ३ चरित्र, ४ सतीत्व एक अनमोल रत्न है, ५ पतिसे बातचीत करना, ६ लज्जाशीलता, ७ गुप्तभेद और बातोंकी चपलता, ८ विनय और शिष्टाचार, ९ स्त्रियोंका हृदय, १० पड़ोसियोंसे व्यवहार, ११ गृहसुखके शत्रु, १२ आमदनी और खर्च, १३ वधूका कर्तव्य, १४ लड़कियोंके प्रति कर्तव्य, १५ गंभीरता, १६ सद्भाव, १७ सन्तोष, १८ कैसी स्त्रीशिक्षाकी जरूरत है, १९ फुरसतके काम, २० शरीररक्षा, २१ सन्तान पालन, २२ गृह कर्म, २३ गर्भवतीका कर्तव्य और नवजात शिशुपालन, २४ विविध उपदेश; प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री इस पुस्तकसे लाभ उठा सकती है। भाषा भी इसकी सबके समझने योग्य सरल है। मूल्य आठ आने।

कहानियोंकी पुस्तक—लेखक लाला मुन्शीलालजी एम ए. गवर्नमेंट पेन्शनर लाहौर। इसमें छोटी छोटी ७५ कहानियोंका संग्रह है। बालकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी है। इसकी प्रत्येक कहानी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेसमें छपी है। मूल्य पाच आना।

समाज—वंग साहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। इस पुस्तककी प्रशंसा करना व्यर्थ है। सामाजिक विषयोंपर पाण्डित्यपूर्ण विचार करनेवाली यह सबसे पहली पुस्तक है। पुस्तकमेंके समुद्रयात्रा, अयोग्यभक्ति, आचारका अत्याचार आदि दो तीन लेख पहले जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुके हैं। जिन्होंने उन्हें पढ़ा होगा वे इस ग्रन्थका महत्त्व समझ सकते है। मूल्य आठ आना।

राष्ट्रीय सन्देश—परमहस श्रीस्वामी रामतीर्थजी एम् ए. के अंग्रेजी लेखों-का अनुवाद। अनुवादक बाबू नारायणप्रसादजी अरोड़ा बी. ए कानपुर। इस पुस्तकमे स्वामी रामतीर्थजीके उत्तम उत्तम लेख और उनकी सक्षिप्त जीवनी है। इनमेंसे अधिकतर लेख स्वामीजीने अमेरिकामे या अमेरिकासे आनेके पश्चात् लिखे थे इसमे स्वामीजीका अमेरिकाका अनुभव भी मौजूद है। इन लेखोंसे स्वामीजीका देश प्रेम और असली वेदान्त टपकता है। पृष्ठ सख्या ९६ मूल्य छ आने।

स्वाधीन विचार—श्रीयुक्त लाला हरदयालसिंहजी एम् ए के नामसे देशका शिक्षित समुदाय अपरिचित नहीं। आज कल आप सयुक्त राज्य अमेरिकाके बडे भारी विश्वविद्यालयमें हिन्दू दर्शन शास्त्रके अध्यापक हैं। इस पुस्तकमें आपके ही लेखोका सग्रह है। इसमें निम्न लिखित ९ विषय हैं १ पजाबमें हिन्दीके प्रचारकी जरुरत, २ भाषा और जातिका सम्बन्ध, ३ धर्मका प्रचार, ४ अमेरिकामे भारत-वर्ष, ५ यूरोपकी नारी, ६ राष्ट्रकी सम्पत्ति, ७ कुछ भारतीय आन्दोलनोंपर विचार, ८ भारतवर्ष और ससारके आन्दोलन, ९ महापुरुष। पृष्ठ सख्या ९४ मूल्य सिर्फ चार आना।

राज्यप्रबंध शिक्षा—यह सुप्रसिद्ध देशी राजनीतिज्ञ ट्रावंकोर, बड़ोदा, इन्दोरके भूतपूर्व दीवान सर टी माधवरावके अँगरेजी ग्रन्थ 'माइनर हिंटेस्का हिन्दी अनुवाद है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाने छपवाया है। इसमें देशी राजाओं और जमीदारोंको अपनी रियासतोंका प्रबन्ध कैसे करना चाहिए, प्रजाके प्रति उनका क्या कर्तव्य है आदि बातोका बड़ी सरल भाषामे वर्णन है। मूल्य ॥)

पश्चिमीतर्क—इसे डी. ए वी कालेज लाहौरके प्रोफेसर लाला दीवानचन्द एम ए, ने लिखा है। इसमे पाश्चात्य ससारके दर्शनशास्त्रका प्रारभसे लेकर अबतकका इतिहास, उसका विकाश, उसके सिद्धान्त और दार्शनिकोंका इति-हास आदि है। पुस्तक इतनी अच्छी है कि पजाबके शिक्षाविभागने लेखकको प्रसन्न होकर १५००) पारितोषिक दिया है। मूल्य एक रुपया।

प्रेमप्रभाकर—रूसके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा टाल्सटायकी २३ कहानि-योंका हिन्दी अनुवाद। प्रत्येक कहानी दया, करुणा, विश्वव्यापी प्रेम, श्रद्धा और भक्तिके तत्त्वोंसे भरी हुई है। बालक स्त्रियाँ जवान बूढे सब ही इनसे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य १)

धर्मदिवाकर—इसमे मनुष्यके जीवनका आदर्श बतलाया गया है। ससारमे कितना दु ख है और परोपकार स्वार्थत्याग प्रेममें कितना सुख है, यह उसमें एक कथाके बहाने दिखलाया है। मूल्य ।)

नवजीवनविद्या—जिनका विवाह हो चुका है अथवा जिनका विवाह होनेवाला है उन युवकोंके लिए यह बिलकुल नये ढंगकी पुस्तक हाल ही छपकर तैयार हुई है। यह अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर काविनके ' दी सायन्स आफ ए न्यू लाईन' नामक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। इसमे नीचे लिखे अध्याय हैं—१ विवाहके उद्देश्य और लाभ, २ किस उमरमें विवाह करना चाहिए, ३ स्वयंवर, ४ प्रेम और अनुरागकी परीक्षा, ५ स्त्रीपुरुषोंकी पसन्दगी, ७ सन्तानोत्पत्तिकारक अवयवोंकी बनावट, ९ वीर्यरक्षा, १० गर्भ रोकनेके उपाय, ११ ब्रह्मचर्य, १२ सन्तानकी इच्छा, १३ गर्भाधानविधि, १४ गर्भ, १५ गर्भपर प्रभाव, १६ गर्भस्थजीवका पालनपोषण, १७ गर्भाशयके-रोग, १८ प्रसवकालके रोग, इत्यादि प्रत्येक शिक्षित पुरुष और स्त्रीको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। हम विश्वास दिलाते हैं कि इसे पढ़कर वे अपना बहुत कुछ कल्याण कर सकेंगे। पक्की जिल्द मूल्य पौने दो रुपया।

चन्द्रकांत प्र० भा०—(वेदान्त ज्ञानका मुख्यग्रंथ) बम्बईप्रान्तके सुप्रसिद्ध ' गुजराती ' साप्ताहिक पत्रके गुजराती ग्रंथका अनुवाद, अनेक ग्रंथोंका सार लेकर इस ग्रंथकी रचना हुई है। वेदान्त जैसे कठिन विषयको बड़ी सहज रीतिसे समझाया है। मूल्य २॥)

विद्यार्थीके जीवनका उद्देश—क्या होना चाहिए उसका एक ग्रेजुएट द्वारा लिखित इंग्लिश लेखका हिन्दी अनुवाद। मूल्य एक आना।

विचित्रवधूरहस्य—बंगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगाली उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रबाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं करुणारसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ॥।)

स्वर्णलता—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

माधवीकंकण—बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्रदत्तके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥।)

षोड़शी—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एँटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड उपन्यास हैं। मूल्य १ु

महाराष्ट्रजीवनप्रभात—सर रमेशचन्द्र दत्तके बगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है ।।।≈)

राजपूतजीवनसन्ध्या—यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

सुशीलाचरित—स्त्रियोपयोगी बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ। मूल्य एक रुपया

शेख चिल्लीकी कहानियाँ। पुराने ढगकी मनोरंजक कहानियाँ हाल ही छपी हैं। बालक युवा वृद्ध सबके पढ़ने योग्य। मूल्य ॥)

ठोक पीटकर वैद्यराज। यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सोभी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

आर्यललना—सीता, सावित्री आदि २० आर्यस्त्रियोंका सक्षिप्तजीवन चरित। मूल्य ।ु

बालाबोधिनी—पाँच भाग। लड़कियोंको प्रारंभिक शिक्षा देनेकी उत्तम पुस्तक। मूल्य क्रमसे ≈), ≈), ।), ।-), ।≈)।

आरोग्यविधान—आरोग्य रहनेकी सरल रीतिया। मू० ≈)॥

अर्थशास्त्रप्रवेशिका—सम्पत्तिशास्त्रकी प्रारंभिक पुस्तक। मूल्य ।)

सुखमार्ग-शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त करनेके सरल उपाय। मू० ।)

कालिदासकी निरंकुशता—महाकवि कालिदासके काव्यदोषोंकी समालोचना। प० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत। मूल्य ।)

हिन्दीकोविदरत्नमाला—हिन्दीके ४० विद्वानों और सहायकोंके चरित। मू० १॥)

कर्तव्यशिक्षा—लार्ड चेस्टर फील्डका पुत्रोपदेश। मूल्य १)

रघुवंश—महाकवि कालिदासके सस्कृत रघुवशका सरल, सरस और भावपूर्ण हिन्दी अनुवाद। प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित। मूल्य २)

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज़।

हमने श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकी ओरसे हिन्दी साहित्यको उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नोंसे भूषित करनेके लिए उक्त ग्रन्थमाला निकालना शुरु की है। हिन्दीके नामी नामी विद्वानोंकी सम्मतिसे इसके लिए ग्रन्थ तैयार कराये जाते हैं। प्रत्येक ग्रन्थकी छपाई, सफाई, कागज़, जिल्द आदि लासानी होती है। स्थायी ग्राहकोको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते है। जो ग्राहक होना चाहें उन्हें पहले आठ आना जमा कराकर नाम दर्ज करा लेना चाहिए। सिर्फ ५०० ग्राहकों की जरूरत है। अब तक इसमें जितने ग्रन्थ निकले हैं, उन सबहीकी प्राय सब ही पत्रोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है। हमारे जैनी भाइयोको भी इसके ग्राहक बनकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिए। नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है.—

१ स्वाधीनता।

यह हिन्दी साहित्यका अनमोल रत्न, राजनैतिक सामाजिक और मानसिक स्वाधीनताका अचूक शिक्षक, उच्च स्वाधीन विचारोंका कोश, अकाट्य युक्तियोंका आकर और मनुष्य समाजके ऐहिक सुखोंका पथप्रदर्शक ग्रन्थ है। इसे सरस्वतीके धुरन्धर सम्पादक पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीने अँग्रेजीसे अनुवाद किया है। मूल्य दो रु०।

२ जॉन स्टुअर्ट मिलका जीवन चरित।

स्वाधीनताके मूल लेखक और अपनी लेखनीसे युरोपमें नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले मिल साहबका बड़ा ही शिक्षाप्रद जीवन चरित है। इसे जैनहितैषीके सम्पादक नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मू० चार आने.

३ प्रतिभा।

मानव चरितको उदार और उन्नत बनानेवाला, आदर्श धर्मवीर और कर्मवीर बनानेवाला हिन्दीमें अपने ढँगका यह पहला ही उपन्यास है। इसकी रचना बड़ी ही सुन्दर प्राकृतिक और भावपूर्ण है। मूल्य कपड़ेकी जिल्द १।), सादी १)

४ आँखकी किरकिरी।

जिन्हें अभी हाल ही सवालाख रुपयेका सबसे बड़ा पारितोषिक (नोबेल प्राइज) मिला है जो संसारके सबसे श्रेष्ठ महाकवि समझे गये हैं, उन बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध बंगला उपन्यास 'चोखेर वाली' का यह हिन्दी अनुवाद है। इसमें मानसिक विचारोंके, उनके उत्थान पतन और घात प्रतिघातोंके बड़े ही मनोहर चित्र खींचे हैं। भाव सौन्दर्यमें इसकी जोड़का दूसरा कोई उपन्यास नहीं। इसकी कथा भी बहुत ही सरस और मनोहारिणी है। मूल्य पक्की जिल्दका १॥।) और सादीका १।) रु०

५ फूलोंका गुच्छा।

इसमें ११ खण्ड उपन्यासों या गल्पोंका संग्रह है। इसके प्रत्येक पुष्पकी सुगन्धि, सौन्दर्य और माधुर्यमें आप मुग्ध हो जावेंगे। प्रत्येक कहानी जैसी सुन्दर और मनोरंजक है वैसी ही शिक्षाप्रद भी है। मूल्य दश आने।

६ मितव्ययिता।

यह प्रसिद्ध अँगरेज लेखक डा० सेमवल स्माइल्स साहबकी अँगरेजी पुस्तक 'थिरिफ्ट' का हिन्दी अनुवाद है। इसके लेखक हैं बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी ए। इस फिजूल खर्ची और विलासिताके जमानेमें यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासी बालक युवा वृद्ध और स्त्रीके नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। इसके पढ़नेसे आप चाहे जितने अपव्ययी हों, मितव्ययी संयमी और धर्मात्मा बन जावेंगे। बड़ी ही पाण्डित्य पूर्ण युक्तियोंसे यह पुस्तक भरी है। इसमें सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय आदि सभी दृष्टियोंसे धन और उसके सदुपयोगोंका विचार किया गया है। स्कूलके विद्यार्थियोंको इनाममें देनेके लिए यह बहुत ही अच्छी है। जून महीनेमें तैयार हो जायगी।

७ चौबेका चिट्ठा।

बंगभाषाके सुप्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके लिखे हुए 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक पं० रूपनारायण पाण्डेय। इस पुस्तकके ५-६ लेख जैनहितैषीमें 'विनोद विवेक-लहरी' के नामसे निकल

चुके हैं। जिन पाठकोंने उन्हें पढ़ा है वे इस पुस्तककी उत्तमताको जान सकते हैं। हँसी दिल्लगी और मनोरंजनके साथ इसने ऊँचेसे ऊँचे दर्जेकी शिक्षा दी है। देशकी सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक बातोंकी इसमें बड़ी ही मर्मभेदी आलोचना है। हिन्दीमें तो इसकी जोड़का परिहासमय किन्तु शिक्षा पूर्ण ग्रन्थ है ही नहीं, पर दूसरी भाषाओंमें भी इस श्रेणीके बहुत कम ग्रन्थ हैं। एकबार पढ़ना शुरू करके फिर आप इसे मुश्किलसे छोड़ सकेंगे। मूल्य ग्यारह आने।

स्वदेश (रवीन्द्र बाबूकृत), शिक्षा (रवीन्द्रकृत) आदि और कई ग्रन्थ तैयार हो रहे हैं।

क्या ईश्वर जगत्का कर्ता है ?

दूसरी बार छपकर तैयार है। इसके लेखक बाबू दयाचन्द जैन बी. ए ने इस छोटेसे लेखमें अनेक युक्तियों द्वारा इस बातको सिद्ध किया है कि इस जगतका कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं है। ईश्वरको जगतका कर्ता माननेवाले आर्यसमाजी आदि मतावलम्बियोंमें बाटनेके लिए यह ट्रेक्ट बड़ा अच्छा है। मूल्य)॥ सैकड़ा २॥) मंगानेका पता—अजिताश्रम—लखनऊ।

मिलनेका पता

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

मुंबईवैभव प्रेस.

नई छपी पुस्तकें ।

भाषानित्यपाठसंग्रह—जिसमें नमस्कारस्तवन, सुप्रभाताष्टक, दर्शनाष्टक, दौलतकृत दर्शनपाठ, भूधरकृत दर्शनपाठ, प्रात स्मरणीय पद, आदिनाथस्तोत्र नाथूरामप्रेमीकृत, आदिनाथस्तोत्र हेमराजजीकृत, विषापहारस्तोत्र, कल्याणमंदिरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र, भूपालचौवीसी, आलोचनापाठ, सामायिकपाठ, वैराग्यभावना, निर्वाणकाण्ड, गुरुस्तुति, वारह भावना, और सरस्वतीस्तवन इस प्रकार १९ पाठ भाषाके है । निर्णयसागर प्रेसमें छपा है । मनोहर रेशमी जिल्दका आठ आना । रेशमी पट्टीवाली जिल्दका मूल्य छह आना है ।

सामायिकपाठ—अमितगतिआचार्यकृत मूल और शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत भाषाटीका, प्रथमावृत्ति हाथोंहाथ विक जानेसे फिरसे छपाया गया है। मूल्य एक आना ।

मोक्षशास्त्र—बालबोधिनी भाषाटीका । सशोधन और परिवर्धन करके पहिलेकी अपेक्षा मोटे और पुष्ट कागजपर यह सस्करण छपाया गया है । मूल्य सादी जिल्दका वारह आना, कपड़ेकी जिल्दका चौदह आना ।

अनुभवप्रकाश—प दीपचदजीशाहकृत अध्यात्मका वचनिकामय ग्रथ। खुले १२० पत्रोंपर छपा हुवा । मूल्य सिर्फ छह आना ।

ज्ञानदर्पण—यह भी पं दीपचन्दजीशाहकृत अध्यात्म विषयका छन्दोवद्ध मनोहर ग्रथ है । मूल्य चार आना ।

मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्रका रंगीन चित्र—देखने योग्य है । मूल्य पाच आना ।

गणरत्नमहोदधि—व्याकरणका अपूर्व ग्रथ है । इसकी कुछ कापीयें हमने विक्रियार्थ मगाई है । मूल्य दो रुपिया ।

धन्यकुमारचरित्र—पुष्ट कागजपर वनारसका छपा हुया है। मूल्य वारह आना ।

पुस्तकोंका विशेप हाल जानना हो तो वडा सूचीपत्र मगाकर देखिये ।

मैनेजर—श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई ।

नये वर्षका उपहार ।

पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्गप्रकाश ।

जो ग्रन्थ एक बार छपकर तीन रुपयेमे हाथोंहाथ बिक गया है, वही महान् ग्रन्थ बहुत ही शुद्धतापूर्वक छपा हुआ जैनहितैषीके ग्राहकोंको केवल डांक खर्चादिके लिये आठ आना अधिक लेकर उपहारमें दिया जायगा । जैनहितैषी सरीखा एक छोटासा मासिक-पत्र इससे अधिक और क्या साहस कर सकता है ?

भाषावचनिकामें अभीतक जैनधर्मके जितने ग्रन्थ बने है, मोक्ष-मार्गप्रकाश उनमें सर्वोपरि है । यह किसी मूलग्रन्थका अनुवाद अथवा टीका नहीं है, किन्तु एक आचार्य तुल्य विद्वानके बहुत बड़े धार्मिक अनुभवोंका स्वतंत्र संग्रह है । गहन से गहन विषयोंका जितनी मार्मिकतासे इस ग्रन्थमें निरूपण किया है, वैसा शायद ही किसी ग्रन्थमें मिलेगा । प्रत्येक घरमें इस ग्रन्थके विराजमान होनेकी जरूरत देखकर हमने इस वर्ष इसे उपहारमें रक्खा है । पहिली बार जब यह लाहोरमें छपा था, तब भाषामें बहुत फेरफार किया गया था, परंतु अबकी बार हमने ग्रन्थकर्त्ताकी खास भाषामें ज्योंका-त्यों बहुत ही शुद्धतापूर्वक पुष्ट कागजोंपर छपाया है । सब मिला-कर ५०० पृष्ठका पूरा ग्रंथ है । पिछले वर्षोंके उपहार ग्रन्थोंमें इस वर्षका ग्रन्थ ढाई गुणा बड़ा है ।

ग्रंथ तयार हो गया है।

जिन २ ग्राहकोंकी वी. पी. भेजनेकी मंजूरी आगइ है । उन्हें वी. पी. भेजे जा रहे है । जिन्होंने अभीतक वी. पी. भेजनेकी मंजूरी नहीं लिखी है, उन्हें शीघ्र लिखना चाहिये । पुराने ग्राहक अपना ग्राहक नम्बर या पुराना ग्राहक, और नये ग्राहक नया ग्राहक इतना शब्द जरूर लिख देवें ।

मैनेजर—श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,